नारायणलाल बेनीमाधव
इलाहाबाद

श्रीमते डा० सत्यव्रताय
प्रीति रेखा — सस्नेहं
समर्पिता

कामेश्वरद्विवेदी
२५।२२।६८

महाकवि–श्रीभवभूतिप्रणीतम्

उत्तररामचरितम्

('भारती' नामक संस्कृत-टीका, हिन्दी अनुवाद, विस्तृत टिप्पणी, सर्वांगपूर्ण भूमिका तथा ७ आवश्यक परिशिष्टों से युक्त)

प्रणेता—

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य,

एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी), एम० ओ० एल०, डी० फिल्० (प्रयाग),
विद्याभास्कर, साहित्यरत्न, व्याकरणाचार्य, पी० ई० एस०,
अध्यक्ष संस्कृत-विभाग,
गवर्नमेंट कालेज, ज्ञानपुर (वाराणसी)।

प्रणेता—अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन, अथर्ववेदकालीन-संस्कृति, संस्कृत-व्याकरण, प्रौढ-रचनानुवादकौमुदी, रचनानुवादकौमुदी आदि।

प्रकाशक

रामनारायणलाल बेनीमाधव

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

इलाहाबाद–२

प्रथम संस्करण] १९६८ [मूल्य रु० ७·७५ पैसे

प्रकाशक
रामनारायणलाल बेनीमाधव
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
इलाहाबाद

मूल्य रु० ७·७५ पैसे
प्रथम संस्करण २,००० प्रतियाँ
सन् १९६८ ई०

मुद्रक
विजयकुमार अग्रवाल
नव साहित्य प्रेस
इलाहाबाद

प्राक्कथन

उत्तररामचरित का प्रस्तुत आलोचनात्मक संस्करण बी० ए०, एम० ए० तथा तत्समकक्ष विद्यार्थियों की आवश्यकता की पूर्ति को लक्ष्य में रख कर लिखा गया है। अभी तक उत्तररामचरित का कोई ऐसा संस्करण उपलब्ध नहीं है, जो हिन्दी के माध्यम से उनकी सम्पूर्ण आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके। इस संस्करण में उनकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति का यथाशक्ति प्रयत्न किया गया है। (१) यह आलोचनात्मक संस्करण है, यह इस ग्रन्थ की मुख्य विशेषता है। इसमें उत्तररामचरित का मूल पाठ वही रखा गया है, जो आलोचनात्मक दृष्टि से प्रामाणिक सिद्ध हुआ है। निर्णयसागर संस्करण के मूलपाठ को आधार बनाया गया है। डा० पी० वी० काणे और श्री प्रो० एम० आर० काले ने अपने संस्करणों में श्लोकों में जो पाठान्तर माने हैं, वे उसी पृष्ठ पर पाद-टिप्पणी में दिए गए हैं और उसका हिन्दी अनुवाद भी साथ ही दिया गया है। पाठभेद वाले स्थलों पर संकेत के लिए संबद्ध पाठ्य-अंश के नीचे पतली लकीर दी गई है। पतली लकीर का अभिप्राय यह है कि उतने अंश में किसी संस्करण से कुछ पाठभेद है। तदर्थ पाद-टिप्पणी देखें। संक्षेप के लिए निर्णयसागर-संस्करण के लिए 'नि०', काणे-संस्करण के लिए 'का०' और काले-संस्करण के लिए 'काले' का प्रयोग किया गया है। गद्य अंश में पाठभेद इतना अधिक है कि पाद-टिप्पणी में उसका देना संभव नहीं था, अतः गद्य-अंश में निर्णयसागर-संस्करण का ही मूल पाठ मुख्यतया दिया गया है। गद्य-अंश में कुछ स्थलों पर अन्य संस्करणों के पाठ अधिक उपयुक्त थे, अतः वहाँ पर अन्य पाठों को ही अपनाया गया है। (२) पाठकों की सुविधा के लिए प्राकृत वाले स्थलों पर संस्कृत-छाया पहले दी गई है और उसका मूल प्राकृत-रूप बाद में कोष्ठ में दिया गया है। (३) सुबोधता और स्पष्टता के लिए पाठ्य-अंश को मोटे टाइप में छापा गया है। संस्कृत-पाठ्य १६ प्वाइन्ट काले में दिया गया है और प्राकृत-अंश १६ प्वाइन्ट सफेद में दिया गया है। पूरी पुस्तक मोनो टाइप में छापी गई है।

प्रकाशक

रामनारायणलाल बेनीमाधव
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
इलाहाबाद

मूल्य रु० ७·७५ पैसे
प्रथम संस्करण २,००० प्रतियाँ
सन् १९६८ ई०

मुद्रक
विजयकुमार अग्रवाल
नव साहित्य प्रेस
इलाहाबाद

प्राक्कथन

उत्तररामचरित का प्रस्तुत आलोचनात्मक संस्करण बी० ए०, एम० ए० तथा तत्समकक्ष विद्यार्थियों की आवश्यकता की पूर्ति को लक्ष्य में रख कर लिखा गया है। अभी तक उत्तररामचरित का कोई ऐसा संस्करण उपलब्ध नहीं है, जो हिन्दी के माध्यम से उनकी सम्पूर्ण आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके। इस संस्करण में उनकी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति का यथाशक्ति प्रयत्न किया गया है। (१) यह आलोचनात्मक संस्करण है, यह इस ग्रन्थ की मुख्य विशेषता है। इसमें उत्तररामचरित का मूल पाठ वही रखा गया है, जो आलोचनात्मक दृष्टि से प्रामाणिक सिद्ध हुआ है। निर्णयसागर संस्करण के मूलपाठ को आधार बनाया गया है। डा० पी० वी० काणे और श्री प्रो० एम० आर० काले ने अपने संस्करणों में श्लोकों में जो पाठान्तर माने हैं, वे उसी पृष्ठ पर पाद-टिप्पणी में दिए गए हैं और उसका हिन्दी अनुवाद भी साथ ही दिया गया है। पाठभेद वाले स्थलों पर संकेत के लिए संबद्ध पाठ्य-अंश के नीचे पतली लकीर दी गई है। पतली लकीर का अभिप्राय यह है कि उतने अंश में किसी संस्करण से कुछ पाठभेद है। तदर्थ पाद-टिप्पणी देखें। संक्षेप के लिए निर्णयसागर-संस्करण के लिए 'नि०', काणे-संस्करण के लिए 'का०' और काले-संस्करण के लिए 'काले' का प्रयोग किया गया है। गद्य अंश में पाठभेद इतना अधिक है कि पाद-टिप्पणी में उसका देना संभव नहीं था, अतः गद्य-अंश में निर्णयसागर-संस्करण का ही मूल पाठ मुख्यतया दिया गया है। गद्य-अंश में कुछ स्थलों पर अन्य संस्करणों के पाठ अधिक उपयुक्त थे, अतः वहाँ पर अन्य पाठों को ही अपनाया गया है। (२) पाठकों की सुविधा के लिए प्राकृत वाले स्थलों पर संस्कृत-छाया पहले दी गई है और उसका मूल प्राकृत-रूप बाद में कोष्ठ में दिया गया है। (३) सुबोधता और स्पष्टता के लिए पाठ्य-अंश को मोटे टाइप में छापा गया है। संस्कृत-पाठ्य १६ प्वाइन्ट काले में दिया गया है और प्राकृत-अंश १६ प्वाइन्ट सफेद में दिया गया है। पूरी पुस्तक मोनो टाइप में छापी गई है।

मैंने पूर्ण प्रयत्न किया है कि ग्रन्थ में कहीं भी अनावश्यक विस्तार न हो, परन्तु संक्षेप के लिए कहीं भी आवश्यक विवरण का परित्याग नहीं किया गया है। अतएव ग्रन्थ का रूप कुछ बृहत् हो गया है। टीका में पहले मूलपाठ का हिन्दी अर्थ दिया गया है, बाद में श्लोकों की संस्कृत-टीका और उसके पश्चात् हिन्दी में विस्तृत टिप्पणी है। प्रत्येक स्थान पर टिप्पणी में सभी आवश्यक बातों का संग्रह किया गया है। टिप्पणी में कठिन शब्दों के अर्थ, व्याकरण-संबन्धी बातों का स्पष्टीकरण, समासादि का निर्देश, अलंकारों और छन्दों का स्पष्टीकरण, ग्रन्थान्तरों में समान उक्तियाँ, अन्तर्गत कथाएँ आदि तथा नाटकीय विशेषताओं का मुख्यतया समावेश किया गया है। संस्कृत-टीका में इस बात का ध्यान रखा गया है कि व्याख्या अत्यन्त सरल, सुबोध और स्पष्ट हो। ग्रन्थ को अत्युपयोगी बनाने के लिए सुविस्तृत भूमिका दी गई है। इसमें उत्तररामचरित और भवभूति से संबद्ध सभी आवश्यक विषयों का पूर्णरूप से विवेचन है। इसमें इन विषयों का मुख्य रूप से विवेचन है :—नाटक की रूपरेखा, भवभूति का जीवन-वृत्त, उसका समय, मूलकथा में परिवर्तन, उत्तरराम० और कुन्दमाला की तुलना, उत्तर० में वर्णित समाज और संस्कृति, भवभूति का शास्त्रीय पाण्डित्य, उसकी नाट्यकला, भवभूति का काव्यसौन्दर्य, रस-निरूपण और शैली, भवभूति और कालिदास की तुलना। ग्रन्थ के अन्त में सात अत्युपयोगी परिशिष्ट दिए गए हैं। जिनमें पारिभाषिक शब्दों के लक्षण, छन्दःपरिचय, उत्तर० के सुभाषित, संक्षिप्त प्राकृत-व्याकरण विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस ग्रन्थ के संपादन में प्रायः सभी उपलब्ध संस्करणों का पूरा उपयोग किया गया है। पाठ-निर्णय और आवश्यक विवेचन में इन संस्करणों से विशेष सहायता प्राप्त हुई है :—निर्णयसागर संस्करण, डा० काणे, प्रो० काले, डा० संसारचन्द्र, प्रो० आनन्दस्वरूप और श्री तारिणीशझा के संस्करण। इनके अतिरिक्त इन ग्रन्थों से भी पर्याप्त सहायता मिली है :—प्रो० शारदारंजनराय, श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल, डा० लालरमायदुपाल सिंह तथा चौखम्बा के उत्तर० के संस्करण एवं डा० गंगासागर रायकृत 'महाकवि भवभूति'। इन ग्रन्थों से जो सहायता प्राप्त हुई है, तदर्थ इनके लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ।

संक्षेप के लिए निम्नलिखित संकेतों का उपयोग किया गया है—प्रथम पुरुष (प्र० या प्र० पु०), मध्यम पुरुष (म० या म० पु०), उत्तमपुरुष (उ० या उ०

पु०), एकवचन (१), द्विवचन (२), बहुवचन (३)। प्रथमा आदि विभक्तियों के लिए प्रथम वर्ण (प्र०, द्वि० आदि) दिए गए हैं। समास आदि में भी इसी प्रकार प्रारम्भिक अक्षर दिए गए हैं, जैसे—तत्पु०=तत्पुरुष।

भूमिका में उत्तररामचरित के सन्दर्भ-निर्देश में ग्रन्थ-विस्तार के भय से प्रत्येक स्थान पर उत्तर०, अंक और श्लोक शब्द न देकर केवल अंक और श्लोक संख्या दी गई है। यथा—१-२ का अर्थ है—उत्तररामचरित अंक १ और श्लोक-संख्या २। जहाँ पर गद्य अंश का निर्देश है, वहाँ पर अंक-संख्या और वाक्य-संख्या दी गई है। यथा—१ वा० २९ का अर्थ है—उत्तर० अंक १ की वाक्य-संख्या २९। जहाँ पर अन्य ग्रन्थों के सन्दर्भ हैं, वहाँ पर उन ग्रन्थों का नाम या प्रारम्भिक अक्षर संकेतार्थ दिए गए हैं। निर्णय-सागर संस्करण के लिए नि० सं० संकेत है और चौखम्बा-संस्करण के लिए चौ० सं० संकेत है। इसी प्रकार अन्य संस्करणों के लिए उनके प्रारम्भिक अक्षर दिए गए हैं।

प्रूफ-संशोधन के कार्य में श्रीमती ओम्शान्ति द्विवेदी, चि० भारती और भारतेन्दु से सहायता प्राप्त हुई है, तदर्थ इन्हें धन्यवाद है। चि० विश्वेन्दु और आर्येन्दु ने ग्रन्थ को निर्विघ्न समाप्त होने देने में विशेष सहायता की है, तदर्थ वे आशीर्वाद के पात्र हैं। श्री प्रह्लाददास अग्रवाल और श्री विजयकुमार अग्रवाल ने बड़े परिश्रम और अत्यन्त तत्परता से इस ग्रन्थ को इतने सुन्दर रूप में छापा है, तदर्थ उन्हें विशेष धन्यवाद है।

इस ग्रन्थ के विषय में जो भी विद्वान् उचित संशोधनादि के विचार भेजेंगे, उनका विशेष अनुगृहीत होऊँगा। यदि संस्कृत-प्रेमी जनता और विद्यार्थियों का इससे कुछ भी लाभ हो सका तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

यदि सन्ति गुणा ग्रन्थे विकसन्त्येव ते स्वयम्।
नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते॥

गवर्नमेंट कालेज, ज्ञानपुर (वाराणसी)

कपिलदेव द्विवेदी

विषय-सूची

(क) भूमिका

(ख) मूलग्रन्थ और अनुवाद

(ग) परिशिष्ट

भूमिका

(१) नाटक का महत्त्व

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।

(नाट्यशास्त्र १–११६)

संस्कृत के साहित्यशास्त्रियों ने काव्य को दो भागों में विभक्त किया है, एक दृश्य और दूसरा श्रव्य।

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।
दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।।

(साहित्यदर्पण ६–१)

दृश्य काव्य में नाटकों या रूपकों तथा उपरूपकों का ग्रहण होता है, क्योंकि इनका अभिनय किया जाता है। ये जनता के द्वारा दृश्य होते हैं। नाटक के लिए संस्कृत में पारिभाषिक शब्द 'रूपक' है। अभिनेता अभिनय की अवस्था में अपने ऊपर नाटकीय पात्र के स्वरूप का आरोप कर लेता है, अतः नाटक को रूपक कहा गया है। रूपक के ही १० भेदों में से एक भेद नाटक है। रूपक के १० भेद हैं और उपरूपक के १८। दस रूपकों के नाम हैं—(१) नाटक, (२) प्रकरण, (३) भाण, (४) व्यायोग, (५) समवकार, (६) डिम, (७) ईहामृग, (८) अंक, (९) वीथी, (१०) प्रहसन।

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।।

(साहित्यदर्पण ६–३)

(रूपकों और उपरूपकों के विस्तृत विवेचन के लिए देखिए साहित्यदर्पण परिच्छेद ६ तथा दशरूपक प्रकाश १ और ३)। श्रव्य काव्यों में रघुवंश आदि का ग्रहण होता है, जो केवल पठन या श्रवण के विषय हैं। ये अभिनेय नहीं हैं।

नाटकों में श्रव्य की अपेक्षा हृदयग्राहिता, मनोरंजकता, आकर्षकता, भावाभिव्यंजकता और विषय की विविधता अधिक होती है, अतः श्रव्य काव्य की अपेक्षा दृश्य काव्य अधिक जनप्रिय होता है। अतएव कहा गया है कि—**काव्येषु नाटकं रम्यम्**। काव्य की अपेक्षा नाटक अधिक रमणीय होता है। भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में नाटकों की विशेषता का उल्लेख करते हुए कहा है कि—नाटक में ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, नवीन योजना, क्रिया-कुशलता आदि सभी का समन्वय रहता है, अतएव नाटकों का महत्त्व श्रव्य काव्य की अपेक्षा बहुत अधिक है। न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं ········ (नाट्यशास्त्र १—११६)

(२) संस्कृत-नाटकों की उत्पत्ति

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह अपने भावों और विचारों को दूसरों तक पहुँचावे। इसके लिए मनुष्य साधारणतया शब्दों का प्रयोग करता है। इसके अतिरिक्त कभी इंगित से तथा कभी नृत्य-गीत आदि के द्वारा वह अपने भाव प्रकट करता है। मनोरंजनार्थ दूसरे का अनुकरण करने की प्रवृत्ति भी मनुष्य में स्वाभाविक है। अतएव धनंजय ने दशरूपक में अनुकरण को ही नाट्य का मूल माना है और दूसरे की अवस्था के आरोप के कारण इसका रूपक नाम माना है।

अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्। रूपकं तत्समारोपात्।

(दशरूपक १–७)

इस अनुकरण को जब कथोपकथन या वार्तालाप, संगीत, नृत्य, वेशभूषा एवं भावभंगी आदि से समन्वित कर देते हैं तथा उसे नाट्य का रूप दे देते हैं, तभी नाटक का प्रारम्भ हो जाता है।

भारतीय नाट्यशास्त्र की विवेचना करते हुए महामुनि भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में उल्लेख किया है कि सम्पूर्ण देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि हमें ऐसी मनोरंजन की वस्तु दीजिए जो दृश्य और श्रव्य दोनों हो, जिसको चारों वर्णों के व्यक्ति समान रूप से अपना सकें। उनकी प्रार्थना पर ब्रह्मा ने चारों वेदों से सारभाग लेकर पाँचवें वेद नाट्यवेद की सृष्टि की। ब्रह्मा ने ऋग्वेद से

पाठ्य (संवाद, कथोपकथन आदि), सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस के तत्त्वों को लिया ।।

एवं संकल्प्य भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन् ।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसंभवम् ।।
जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि ।।

(नाट्यशास्त्र १–१६, १७)

भरत-मुनि के कथन को यदि स्थूल रूप में भी लिया जाए तो यह स्पष्ट है कि नाटक के लिए चार तत्त्वों की विशेष आवश्यकता है, अर्थात् संवाद, संगीत, अभिनय और रस। ये चारों तत्त्व चारों वेदों में प्राप्य हैं, अतः चारों वेदों से नाटकों की उत्पत्ति मानना सर्वथा बुद्धिगम्य है। ऋग्वेद में संवादसूक्त कई हैं, यथा––यम-यमी सूक्त (ऋग्० १०–१०), पुरूरवा-उर्वशी-संवाद सूक्त (ऋग्० १०–९५), सरमा-पणि-संवाद (१०–१०८), इन्द्र-मरुत्-संवाद (१–१६५; १–१७०), विश्वामित्र-नदी-संवाद (३–३३), इन्द्र-इन्द्राणी-वृषाकपि-संवाद (१०–८६), अगस्त्य-लोपामुद्रा-संवाद (१–१७९) आदि। इन सूक्तों में नाटकोपयोगी संवाद का तत्त्व बहुत सुन्दर रूप से प्राप्य है। इन्द्र, अग्नि, उषस्, मरुत् आदि देवताओं के महत्त्वबोधक सूक्तों में नाटकोपयोगी पाठ्य बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। सामवेद संगीतमय वेद है ही। यजुर्वेद के यज्ञिय क्रिया-कलाप में अभिनय का अंश विद्यमान है तथा अथर्ववेद में प्रायः सभी रसों की प्राप्ति होती है। इस प्रकार चारों वेदों से आवश्यक तत्त्वों का संग्रह करके नाटकों का प्रारम्भ हुआ है, यह मानना उचित है। यही नाटक शनैः शनैः परिष्कृत होते हुए उच्च कोटि के नाटकों के रूप में प्राप्त होते हैं।

कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने नाटक की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न मत प्रस्तुत किए हैं, जो कि केवल एकांगी भावना से प्रेरित होकर प्रस्तुत किए गए हैं। इनमें विभिन्न तथ्यों की ओर पूर्ण ध्यान नहीं दिया गया है, अतः ये मत सर्वांगीण रूप में ग्राह्य नहीं हैं। उदाहरणार्थ कुछ मत निम्नलिखित हैं––(१) प्रो० रिजवे (Ridgeway)––नाटकों का उद्भव मृतात्माओं को प्रसन्न करने तथा उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए हुआ। (२) पर्ववाद––विभिन्न पर्वों पर खेले

जाने वाले छोटे नाटकों से नाटकों का जन्म हुआ। (३) रासलीला आदि से नाटकों का जन्म हुआ। (४) प्रो० हिलब्रैंड (Hillbrandt) और प्रो० स्टेन कोनो (Sten Konow)——नाटकों का जन्म लोकप्रिय स्वाँगों से हुआ। (५) प्रो० पिशेल (Pischel)——नाटकों का जन्म कठपुतलियों के नाच से हुआ। (६) प्रो० ल्यूडर्स (Luders)——नाटकों का जन्म छायानाटकों अर्थात् छाया द्वारा दिखाए जाने वाले नाटकों से हुआ। (७) प्रो० मैक्स म्यूलर (Max Muller), प्रो० सिलवन लेवी (Sylvain Levi), प्रो० फॉन श्रोएडर (Von Schroeder) और डा० हर्टल (Hertel)—— भारतीय नाटकों की उत्पत्ति ऋग्वेद के संवाद-सूक्तों से हुई है। (८) प्रो० वेबर (Weber) और प्रो० विंडिश (Windisch) ने भारतीय नाटकों के उद्‌गम में यूनानी नाट्यकला के प्रभाव को सिद्ध करने का प्रयास किया है। परन्तु प्रो० सिलवन लेवी आदि विद्वानों ने इस मत का समूल खण्डन किया है। विस्तार के भय से यहाँ पर इन मतों की विस्तृत विवेचना नहीं की जा रही है।

पाश्चात्त्य विद्वान् भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि नाटकों का प्रारम्भ सर्वप्रथम भारतवर्ष में ही हुआ है। प्रो० मैक्स म्यूलर, पिशेल, लेवी, मैकडानल (Macdonell) और कीथ (Keith) आदि ने इसी मन्तव्य को स्थिर किया है। रामायण और महाभारत में स्पष्ट रूप से नाटकों का उल्लेख प्राप्त होता है। वाल्मीकीय रामायण के निम्नलिखित श्लोकों में नाटक, नट, नर्तक आदि का स्पष्ट उल्लेख है। नाटकों में रस-परिपाक होता है, इसका भी निर्देश किया गया है।

(क) रसैश्शृङ्गारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः ।
वीरादिभिः रसैर्युक्तं काव्यमेतदगायताम् ।।
(रामायण १–४–९)

(ख) नाराजके जनपदे प्रकृष्टनटनर्तकाः ।
(रामायण २–६७–१५)

(ग) वादयन्ति तथा शान्ति लासयन्त्यपि चापरे ।
नाटकान्यपरे प्राहुर्हास्यानि विविधानि च ।।
(रामायण २–६९–४)

(घ) शैलूषाश्च तथा स्त्रीभिर्यान्ति०।

(रामायण २–८३–१५)

इसी प्रकार महाभारत में भी सूत्रधार, नट, नर्तक आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।

(क) इत्यब्रवीत् सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तथा।

(महा० १–५१–१५)

(ख) नाटका विविधाः काव्याः कथाख्यायिककारकाः।

(महा० २–१२–३६)

(ग) आनर्ताश्च तथा सर्वे नटनर्तकगायकाः।

(महा० २–१५–१३)

महाभारत के विराट पर्व में रंगशाला का भी उल्लेख मिलता है। महाभारत के हरिवंश पर्व (६१ से ६७ अध्याय) में उल्लेख मिलता है कि वज्रनाभ नामक राक्षस की नगरी में रामायण और कौबेररम्भाभिसार नामक नाटक खेले गए थे।

महर्षि पाणिनि का समय ईसा से कम से कम ४५० वर्ष पूर्व माना जाता है। पाणिनि ने अपने सूत्रों में दो नटसूत्रों अर्थात् नाट्यशास्त्रों का उल्लेख किया है। एक नाट्यशास्त्र के रचयिता शिलालिन् थे और दूसरे थे कृशाश्व।

पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः। (अष्टा० ४–३–११०)

कर्मन्दकृशाश्वादिनिः। (अष्टा० ४–३–१११)

इससे ज्ञात होता है कि महर्षि पाणिनि से बहुत समय पूर्व नाट्यशास्त्र अपनी पूर्ण उन्नत अवस्था को प्राप्त हो चुका था। पाणिनि ने केवल अष्टाध्यायी की ही रचना नहीं की, अपि तु 'जाम्बवतीजय' नामक नाटक[1] भी लिखा था। जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से ज्ञात होता है।

१—'जाम्बवतीजय' नाटक के कुछ प्रसिद्ध श्लोक ये हैं—

गतेऽर्धरात्रे परिमन्दमन्दं गर्जन्ति यत् प्रावृषि कालमेघाः।
अपश्यती वत्समिवेन्दुबिम्बं तच्छर्वरी गौरिव हुंकरोति ।।१।।
उपोढरागेण विलोलतारकं तथा गृहीतं शशिना निशामुखम्।
यथा समस्तं तिमिरांशुकं तया पुरोऽपि रागाद् गलितं न लक्षितम् ।।२।।
विलोक्य संगमे रागं पश्चिमाया विवस्वतः।
कृतं कृष्णं मुखं प्राच्या न हि न हि नार्यो विनेर्ष्यया ।।३।।

स्वस्ति पाणिनये तस्मै येन रुद्रप्रसादतः।
आदौ व्याकरणं प्रोक्तं ततो जाम्बवतीजयम्॥

महर्षि पतंजलि (१५० ई० पू०) ने अपने महाभाष्य (३-२-१११) में 'कंसवध' और 'बलिबन्धन' नामक नाटकों के खेले जाने का उल्लेख किया है। पतंजलि का कथन है--

ये तावदेते शोभनिका नामैते प्रत्यक्षं कंसं घातयन्ति, प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्तीति। (महाभाष्य ३-२-१११)

भारतीय नाट्यशास्त्र के प्रधान आचार्य भरत मुनि माने जाते हैं। उनका नाट्यसम्बन्धी 'नाट्यशास्त्र' नामक श्लोकबद्ध विशाल ग्रन्थ उपलब्ध हो चुका है। इसमें ३६ अध्याय हैं। लगभग ५०० पृष्ठ के इस विशाल ग्रन्थ में नाट्य-संबन्धी सभी विषयों का विस्तृत और प्रामाणिक विवेचन है। इसका भी समय २०० ई० पू० के लगभग माना जाता है। इससे ज्ञात होता है कि ई० पू० तृतीय या चतुर्थ शताब्दी में भारतीय नाट्यकला अपनी उन्नत अवस्था में थी।

इसी प्रकार बौद्ध ग्रन्थों, जैन ग्रन्थों और वात्स्यायन के कामसूत्र में भी नाटकों और नटों का उल्लेख मिलता है। वात्स्यायन (दूसरी शताब्दी ई०) ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि नट नागरिकों को नाटक दिखाव और दूसरे दिन अपना पारिश्रमिक या पुरस्कार लें। अगले दिन नागरिक चाहें तो फिर नाटक देखें, नहीं तो नटों को विदा करें।

कुशीलवाश्चागन्तवः प्रेक्षणकमेषां दद्युः। द्वितीयेऽहनि तेभ्यः पूजां नियतं लभेरन्। यथाश्रद्धमेषां दर्शनमुत्सर्गो वा। (कामसूत्र १. ४. २८-३१)

भारतीय नाटककारों में सबसे प्राचीन रचनाएँ महाकवि भास की प्राप्त होती हैं। तत्पश्चात् शूद्रक, कालिदास, अश्वघोष, हर्ष, भवभूति आदि के नाटक हैं।

(३) नाटक की संक्षिप्त रूपरेखा

किसी भी नाटक के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक है कि उसके मूल-तत्त्वों को ठीक समझ लिया जाय। नाट्यशास्त्र के मूलतत्त्वों का

विस्तृत वर्णन धनंजय-कृत दशरूपक और विश्वनाथ-कृत साहित्यदर्पण (परिच्छेद ६) में है। यहाँ पर विद्यार्थियों के लाभार्थ उसकी संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की जाती है। विस्तृत विवेचन के लिए उक्त दोनों ग्रन्थों को देखें।

धनंजय के अनुसार नाटक में तीन तत्त्व होते हैं, जिनके आधार पर उनका विभाजन होता है—वस्तु, नेता और रस। **'वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः'** (दशरूपक १–११)। इसमें वस्तु का वर्णन विशेष महत्त्व रखता है। वस्तु को कथा, कथावस्तु (Plot), इतिवृत्त आदि नाम से पुकारा जाता है।

वस्तु के दो भेद—वस्तु या कथावस्तु को दो भागों में विभक्त किया गया है—(१) आधिकारिक, (२) प्रासंगिक।[१] (१) **आधिकारिक**—वह कथा-वस्तु है जो कि मुख्य कथा होती है। अधिकार का अर्थ है—फल का स्वामित्व। अतः जो फल का स्वामी होता है अर्थात् नायक होता है, उससे सम्बद्ध कथानक आधिकारिक होता है। जैसे—रामायण में रामचन्द्र की कथा। (२) **प्रासंगिक**—वह कथा है जो गौण रूप से हो और मुख्य कथा का अंग हो। जैसे—रामायण में सुग्रीव या शबरी की कथा।[२] प्रासंगिक कथा के भी दो भेद हैं—(१) पताका, (२) प्रकरी। (१) पताका उस कथा को कहते हैं जो नाटक में दूर तक चलती जाती है। इसका नायक दूसरा व्यक्ति होता है। वह मुख्य नायक का साथी होता है और गुणों में उससे न्यून होता है। उसके कार्य का उद्देश्य कोई स्वतन्त्र फल नहीं होता है। जैसे—रामायण में सुग्रीव की कथा। (२) प्रकरी—छोटे-छोटे प्रसंग या कथानकों को प्रकरी कहते हैं। जैसे—रामायण में शबरी आदि की कथाएँ।[३]

सम्पूर्ण कथावस्तु को तीन भागों में विभाजित किया गया है :—

(१) **प्रख्यात**—जो इतिहास आदि पर अवलम्बित हो। जैसे—शाकुन्तल की कथा महाभारत और पद्मपुराण पर अवलम्बित है। (२) **उत्पाद्य**—कवि द्वारा कल्पित होता है। जैसे शूद्रक का मृच्छकटिक, भवभूति का मालतीमाधव।

---

१. दशरूपक १–११, साहित्यदर्पण ६–४२।

२. दश० १–१२, सा० दर्पण ६–४२, ४३।

३. दश० १–१३, सा० द० ६–६७, ६८।

(३) **मिश्र**--इसमें कुछ अंश इतिहास पर अवलम्बित होता है और अधिक अंश कविकल्पित होता है।[१]

पाँच अर्थप्रकृतियाँ--अर्थप्रकृतियाँ नाटकीय कथावस्तु के पाँच तत्त्व हैं। धनंजय और विश्वनाथ ने अर्थप्रकृति का अर्थ किया है--**प्रयोजनसिद्धिहेतवः।** जो प्रयोजन की सिद्धि में कारण हों। अर्थप्रकृतियाँ पाँच हैं--(१) बीज, (२) बिन्दु, (३) पताका, (४) प्रकरी, (५) कार्य। (१) **बीज**--वह तत्त्व है जो वृक्ष के बीज की तरह प्रारम्भ में संक्षेप में निर्दिष्ट हो और आगे उसका ही अनेक प्रकार से विस्तार हो। यह नायक के मुख्य फल का प्रमुख कारण होता है।[२] (२) **बिन्दु**--अवान्तर कथा से मूल कथा के टूट जाने पर जो उसे जोड़ता है और आगे बढ़ाता है, उसे बिन्दु कहते हैं।[३] (३) **पताका**--वह प्रासंगिक कथा जो मुख्य कथा के साथ दूर तक चली जाती है। (४) **प्रकरी**--वह प्रासंगिक कथा जो मुख्य कथा के साथ थोड़ी ही दूर चलती है। (५) **कार्य**--कार्य का अर्थ फल है। जिस फल की प्राप्ति के लिए यत्न किया जाता है, जो साध्य होता है, वह कार्य है। जैसे--रामायण में रावण का वध। यह फल धर्म, अर्थ, काम में से कोई भी हो सकता है। इसको ही मुख्य प्रयोजन, लक्ष्य आदि कहते हैं।[४]

पाँच अवस्थाएँ--नाटक में जो कार्य प्रारम्भ किया जाता है, उसकी प्रगति के विभिन्न विश्रामों को अवस्थाएँ कहते हैं। ये अवस्थाएँ उसकी गतिविधि को सूचित करती हैं। ये पाँच अवस्थाएँ हैं--(१) आरम्भ, (२) यत्न, (३) प्राप्त्याशा, (४) नियताप्ति, (५) फलागम।[५] (१) **आरम्भ**--मुख्य फल की सिद्धि के लिए नायक में जो उत्सुकता होती है, उसे आरम्भ कहते हैं।[६]

१. दश० १–१५, १६।
२. दश० १–१७, सा० द० ६–६५, ६६।
३. दश० १–१७, सा० द० ६–६६।
४. दश० १–१६, सा० द० ६–६९, ७०।
५. दश० १–१९, सा० द० ६–७०, ७१।
६. दश० १–२०, सा० द० ६–७१।

(२) **यत्न**—फल की प्राप्ति के लिए नायक बड़े वेग से जो प्रयत्न करता है, उसे यत्न कहते हैं।[1] (३) **प्राप्त्याशा**—जब अनुकूल परिस्थितियों के कारण फलप्राप्ति की सम्भावना होती है और विघ्नों के कारण वह असम्भव दीखती है, उस संदिग्ध अवस्था को प्राप्त्याशा कहते हैं।[2] (४) **नियताप्ति**—जब विघ्नों के हट जाने के कारण फल की प्राप्ति निश्चित जान पड़ती है, उस अवस्था को नियताप्ति कहते हैं।[3] (५) **फलागम**—जब इष्ट फल की प्राप्ति हो जाती है, उस अवस्था को फलागम कहते हैं।[4]

पाँच सन्धियाँ—पाँचों अर्थप्रकृतियों को पाँचों अवस्थाओं से जो सम्बद्ध करती हैं, उन्हें सन्धियाँ कहते हैं। ये क्रमशः अर्थप्रकृति से अवस्था का सम्बन्ध करती हैं। सन्धियाँ पाँच हैं—(१) मुख, (२) प्रतिमुख, (३) गर्भ, (४) विमर्श, (५) उपसंहृति या निर्वहण।[5] (१) **मुख**—बीज और आरम्भ को मिलाकर मुख-सन्धि होती है। (२) **प्रतिमुख**—बिन्दु और यत्न को मिलाकर प्रतिमुख सन्धि। (३) **गर्भ**—पताका और प्राप्त्याशा को मिलाकर गर्भसन्धि। जहाँ पताका न हो, वहाँ पर प्राप्त्याशा पर ही अवलम्बित रहती है। (४) **विमर्श**—प्रकरी और नियताप्ति को मिलाकर विमर्श-सन्धि। इसको ही विमर्ष और अवमर्श भी कहते हैं। जहाँ प्रकरी न हो वहाँ नियताप्ति पर ही निर्भर रहती है। (५) **उपसंहृति**—कार्य और फलागम को मिलाकर उपसंहृति-सन्धि। इसको ही निर्वहण-सन्धि भी कहते हैं। सन्धियों को कथा का स्थूल भाग कहा जा सकता है। इनके आधार पर ही नाटक का विभाजन किया जाता है।[6]

मुख-सन्धि में बीज की उत्पत्ति का वर्णन होता है। प्रतिमुख में बीज का कुछ प्रकट होना दिखाया जाता है। गर्भ में बीज का नष्ट होना और उसके लिए

---

१. दश० १—२०, सा० द० ६—७२।
२. दश० १—२१, सा० द० ६—७२।
३. दश० १—२१, सा० द० ६—७३।
४. दश० १—२२, सा० द० ६—७३।
५. दश० १—२४, सा० द० ६—७५।
६. दश० १—२२, २३, सा० द० ६—७४।

पुनः अन्वेषण का वर्णन होता है। विमर्श में गर्भ की अपेक्षा बीज अधिक प्रकट होता है, परन्तु शाप या क्रोध आदि के कारण उसमें विघ्न दिखाया जाता है। उपसंहृति में बिखरे हुए अर्थों को एकत्र किया जाता है और मुख्य फल का वर्णन होता है।[1]

अर्थप्रकृतियों आदि को निम्नलिखित रूप में रखकर सरलता से समझा जा सकता है। प्रथम से प्रथम का, द्वितीय से द्वितीय का, इस प्रकार इनका सम्बन्ध है।

अर्थप्रकृतियाँ	अवस्थाएँ	सन्धियाँ
१. बीज	आरम्भ	मुख
२. बिन्दु	यत्न	प्रतिमुख
३. पताका	प्राप्त्याशा	गर्भ
४. प्रकरी	नयताप्ति	विमर्श
५. कार्य	फलागम	उपसंहृति

कथावस्तु के दो विभाग—कथावस्तु को रंगमंच पर प्रदर्शित करने की दृष्टि से दो विभाग किए गए हैं—(१) सूच्य, (२) दृश्यश्रव्य। (१) **सूच्य**—कुछ वस्तुएँ नीरस होती हैं या रंगमंच पर उनका प्रदर्शन उचित नहीं है। ऐसी वस्तुओं की केवल सूचना दे दी जाती है। (२) **दृश्यश्रव्य**—जो वस्तुएँ वस्तुतः दर्शनीय और श्रवणीय हैं, उनका प्रदर्शन किया जाता है। सूच्य वस्तुओं को जिन उपायों से सूचित किया जाता है, उन्हें अर्थोपक्षेपक (अर्थ—वस्तु, उपक्षेपक-सूचक) कहते हैं। वे पाँच हैं—(१) **विष्कम्भक**—भूत और भावी घटनाओं की सूचना मध्यम श्रेणी के पात्रों के द्वारा दी जाती है। इनकी भाषा संस्कृत होती है। (२) **प्रवेशक**—भूत और भावी घटनाओं की सूचना निम्न श्रेणी के पात्रों के द्वारा दी जाती है। इनकी भाषा प्राकृत होती है। (३) **चूलिका**—पर्दे के पीछे बैठे हुए पात्रों के द्वारा वस्तु या घटना की सूचना देना। जैसे—नेपथ्य से कथन। (४) **अंकास्य**—अंक की समाप्ति के समय जाते हुए पात्रों के द्वारा

१. दश० १–२४, ३०, ३६, ४३, ४८, सा० द० ६. ७५–८१।

अगले अंक में आने वाली घटना की सूचना देना। (५) **अंकावतार**—अंक की समाप्ति के पहले ही अगले अंक की कथावस्तु का प्रारम्भ करना।[1]

कथावस्तु के तीन विभाग—कथावस्तु को सुनाने या न सुनाने की दृष्टि से तीन विभाग किए गए हैं—(१) **सर्वश्राव्य या प्रकाश**—जो बात सबको सुनाने योग्य है। इसको ही प्रकाश भी कहते हैं। (२) **अश्राव्य या स्वगत**—जो बात सुनाने के योग्य न हो और मन ही मन कही जाए। (३) **नियतश्राव्य**—जो बात कुछ लोगों को ही सुनानी होती है। इसके दो विभाग हैं—(क) **जनान्तिक**—हाथ की ओट करके दो पात्रों का वार्तालाप करना कि अन्य पात्र उसे न सुन पावें। (ख) **अपवारित**—मुँह फेर कर किसी दूसरे पात्र की गुप्त बात कहना। इसके अतिरिक्त एक और भेद आकाशभाषित है। ऊपर मुँह करके स्वयं ही अकेले बात करना।[2]

(४) भवभूति का जीवन-वृत्त तथा उसकी कृतियाँ

(क) भवभूति का वंश-परिचय

सामान्यतया संस्कृत के प्राचीन महाकवियों और नाटककारों के विषय में न प्रामाणिक सामग्री मिलती है और न विस्तृत विवरण ही प्राप्त होता है। हर्ष की बात है कि महाकवि भवभूति के विषय में आवश्यक विवरण उनके तीन नाटकों से प्राप्त होता है। इससे उसके वंश आदि का विवरण ठीक-ठीक ज्ञात हो जाता है। महावीरचरित की प्रस्तावना में लेखक ने सबसे अधिक विस्तृत विवरण दिया है। मालतीमाधव और उत्तररामचरित में अपेक्षाकृत कम विवरण है। इन विवरणों से जीवनवृत्त संबन्धी तथ्यों का पूर्ण निश्चय किया जा सकता है। संबद्ध अंश ये हैं :—

(क) **अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्। तत्र केचित् तैत्तिरीयाः काश्यपाश्चरणगुरवः पङ्क्तिपावनाः पञ्चाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिन उदुम्बर-नामानो ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति। तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो वाजपेययाजिनो महाकवेः पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तिर्नीलकण्ठस्यात्म-**

१. दश० १.५६–६३, सा० द० ६. ५४–६०।

२. दश० १.६४–६६, सा० द० ६. १३७–१४०।

संभवः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः कविर्मित्रधेयमस्माकमिति भवन्तो विदांकुर्वन्तु।

श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणां यथाङ्गिराः।
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः ।।५।।

(महावीरचरित, प्रस्तावना)

(ख) अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्। तत्र ब्राह्मणाः केचित् तैत्तिरीयाः पङ्क्तिपावनाः काश्यपाः पञ्चाग्नयः सोमपीथिनो धृतव्रता उदुम्बरनामानो ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति।

ते श्रोत्रियास्तत्त्वविनिश्चयाय,
भूरिश्रुतं शाश्वतमाद्रियन्ते।
इष्टाय पूर्ताय च कर्मणेऽर्थान्
दारानपत्याय तपोऽर्थमायुः।।

तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तेर्नीलकण्ठस्य पुत्रः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम कविर्निसर्गसौहृदेन भरतेषु वर्तमानः स्वकृतिमेवंभूयसीमस्माकं हस्ते समर्पितवान्। .....

गुणैः सतां न मम को गुणः प्रख्यापितो भवेत्।
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधिर्गुरुः ।।६।।

(मालतीमाधव, प्रस्तावना, टीकाकार त्रिपुरारिसंमत पाठ)

टीकाकार जगद्धर ने पूर्वोक्त मूलग्रन्थ के पाठ में निम्नलिखित अन्तर माना है :—

अस्ति दक्षिणापथे विदर्भेषु पद्मपुरं.....। तत्र....तैत्तिरीयिणः काश्यपाश्चरणगुरवः....डम्बरनामानो..।....नीलकण्ठस्यात्मसंभवो भट्टश्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिनामा जातूकर्णीपुत्रः कविः.......।........अतो यदस्माकमर्पितं प्रियसुहृदात्रभवता भवभूतिनाम्ना प्रकरणं स्वकृतिर्मालतीमाधवं नाम०।

(मालतीमाधव०, प्रस्तावना, जगद्धरसंमत पाठ)

(ग) अस्ति खलु तत्रभवान् काश्यपः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः। (उत्तररामचरित, प्रस्तावना)

उपर्युक्त विवरण के आलोचनात्मक समीक्षण से भवभूति के जीवन-वृत्त-विषयक निम्नलिखित तथ्य हमें ज्ञात होते हैं :—

(१) भवभूति दक्षिणापथ अर्थात् दक्षिणभारत का निवासी था। उसके पूर्वज पद्मपुर नामक नगर में रहते थे। कुछ संस्करणों ने 'विदर्भेषु' पद और जोड़ा है, जिसका अभिप्राय यह है कि पद्मपुर नगर विदर्भ (अर्थात् बरार) प्रदेश में है। अन्य संस्करणों में विदर्भेषु पाठ नहीं है, अतः ज्ञात होता है कि 'विदर्भेषु' पद बाद में जोड़ा गया है। पद्मपुर को विदर्भ से जोड़ना बाद की कल्पना है। पद्मपुर विदर्भ से बाहर है, इसका आगे विवेचन किया गया है। यहाँ पर यह ध्यान रखना उचित है कि भवभूति ने पद्मपुर को नगर कहा है, न कि ग्राम।

(२) भवभूति के पूर्वजों का विवरण इस प्रकार है :—वे कृष्ण-यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के पढ़ने वाले थे। इनका गोत्र काश्यप था, अर्थात् ये कश्यप-गोत्रोत्पन्न थे। ये चरणगुरु थे, चरण अर्थात् वेद की शाखाओं को पढ़ने वाले वेदज्ञों के गुरु थे। ये पंक्तिपावन ब्राह्मण माने जाते थे। पंक्तिपावन का अर्थ है —पंक्ति पावयन्तीति, अथवा—पङ्क्तौ पावनाः, पंक्ति को पवित्र करने वाले, या भोजनादि के अवसर पर बैठने वाली ब्राह्मण-पंक्ति में सबसे पवित्र। पंक्ति-पावन ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण माने जाते हैं। भवभूति के पूर्वज सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मणों में थे। जो ब्राह्मण यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में पारंगत होते थे, उन्हें ही पंक्तिपावन कहा जाता था। ये उच्चकोटि के वेदज्ञ विद्वान् होते थे। 'अग्र्याः सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रवचनेषु च। श्रोत्रियान्वयजाश्चैव विज्ञेयाः पङ्क्ति-पावनाः॥' (मनु०)। 'यजुषां पारगो यस्तु साम्नां यश्चापि पारगः। अथर्व-शिरसोऽध्येता ब्राह्मणः पङ्क्तिपावनः' (मालती० की टीका में जगद्धर द्वारा उद्धृत श्लोक)। ये पञ्चाग्निहोत्र करते थे। पाँच अग्नियों के नाम हैं—दक्षि-णाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय, सभ्य और आवसथ्य। ये धृतव्रत अर्थात् चान्द्रायण आदि व्रतों को करने वाले थे। ये सोमपीथी थे, अर्थात् सोमयाग करते थे और उसमें सोमरस का पान करते थे। इनका उपनाम 'उदुम्बर' था। कुछ

संस्करणों में इनका नाम 'डम्बर' दिया गया है। ये ब्रह्मवादी थे, अर्थात् वेदज्ञ, वेदप्रवचनकर्ता और ब्रह्मवेत्ता थे। ये श्रोत्रिय अर्थात् वेदाध्यायी ब्राह्मण थे। ये ब्रह्मरूपी तत्त्व के ज्ञानार्थ निष्कामभाव से षडंगवेद के अध्ययन में प्रेम रखते थे। इष्ट (यज्ञादि) तथा पूर्त (धर्मार्थ कूप-तडागादिनिर्माण) के लिए धनसंग्रह करते थे। वंशपरम्परा के लिए विवाह करते थे और तपोमय जीवन बिताने के लिए जीवन धारण करते थे।

(३) भवभूति के पूर्वजों के नामादि इस प्रकार हैं—भवभूति के पाँचवीं पीढ़ी के पूर्वज (अर्थात् पितामह के पितामह) का नाम 'महाकवि' था। इन्होंने वाजपेय यज्ञ किया था। इनके पितामह का नाम भट्टगोपाल था। भवभूति के पिता का नाम नीलकण्ठ था। ये एक उच्चकोटि के यशस्वी विद्वान् थे। भवभूति की माता का नाम 'जतुकर्णी' था। कुछ विद्वान् इनकी माता का नाम 'जातूकर्णी' मानते हैं।

(४) भवभूति का विवरण इस प्रकार प्राप्त होता है :—(क) भवभूति को 'श्रीकण्ठपदलाञ्छन' कहा गया है। एक स्थान पर उसे 'भट्टश्रीकण्ठपदलाञ्छन' भी कहा गया है। (ख) भवभूति पदवाक्यप्रमाणज्ञ था। इसका अभिप्राय यह है कि वह पद (व्याकरण), वाक्य (न्यायशास्त्र) और प्रमाण (मीमांसादर्शन) का महाविद्वान् था। इसका नाम 'भवभूति' था। इसकी जन्म से ही अभिनय और नाट्यशास्त्र में विशेष रुचि थी, अतः वह भरतों (अभिनेताओं) के साथ अत्यन्त प्रेमभाव से रहता था। इसके गुरु का नाम 'ज्ञाननिधि' था, जो कि यथार्थ नाम वाले थे। इसके गुरु परमहंस संन्यासी थे और अंगिरा ऋषि के समान उच्चकोटि के तत्त्ववेत्ता थे। (ग) (संकटा० उ० १–८) भवभूति को अपने जीवन में बहुत संकटों का सामना करना पड़ा था।

(ख) श्रीकण्ठपदलाञ्छन और भवभूति

भवभूति का पितृकृत या असली नाम क्या था—श्रीकण्ठ या भवभूति? इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वान् भवभूति का मूलनाम भवभूति ही मानते हैं और 'श्रीकण्ठ' उसकी उपाधि मानते हैं। कुछ विद्वान् इसके विपरीत मूलनाम श्रीकण्ठ मानते हैं और भवभूति उसकी उपाधि। जो विद्वान्

मूल नाम श्रीकण्ठ मानते हैं, वे प्रायः टीकाकारों के कथनों का आश्रय लेते हैं। इस विषय में निम्नलिखित युक्तियाँ दी जाती हैं :—

(१) वे 'श्रीकण्ठपदलाञ्छनः' का अर्थ करते हैं—श्रीकण्ठशब्द जिसका लाञ्छन अर्थात् नाम है। 'भवभूतिर्नाम' का अर्थ करते हैं—'भवभूति' नाम से प्रसिद्ध। नाम शब्द नाम अर्थ में न होकर प्रसिद्धिसूचक अव्यय है।

(क) श्रीकण्ठः इति पदं शब्दः लाञ्छनं यस्य स तथोक्तः। श्रीकण्ठनामक इत्यर्थः। भवभूतिर्नाम भवभूतिरिति प्रसिद्धनामवान्।

(उत्तरराम० वीरराघवकृत टीका)

(ख) श्रीकण्ठपदं लाञ्छनं यस्य सः। भवभूतिरिति व्यवहारे तस्येदं नामान्तरम्। **(मालती० श्लोक० ७, त्रिपुरारिकृत टीका)**

(ग) श्रीः सरस्वती कण्ठे यस्य स श्रीकण्ठः। तद्वाचकं पदं लाञ्छनं चिह्नं यस्य सः। नाम्ना श्रीकण्ठः। प्रसिद्धचा भवभूतिरित्यर्थः।

(मालती० जगद्धरकृत टीका)

(घ) श्रीकण्ठपदं लाञ्छनं नाम यस्य सः। पितृकृतनामेदम्।

(महावीर० वीरराघव कृत टीका)

(२) वीरराघव का कथन है कि 'साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः' इस पद्य में भवभूति शब्द के सुन्दर प्रयोग से सन्तुष्ट होकर राजा ने उसको 'भवभूति' उपाधि से अलंकृत किया।

एतत्कृतः 'साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः' इति श्लोकश्रवणसंतुष्टो राजा भवभूतिरित्येनं ख्यापयामासेति कथा अत्रानुसन्धेया। एवमन्यत्रापि कबितानुसारेण तत्तन्नामधेयम्। यथा—रत्नखेटकः, कोटिसार इति।

(उत्तरराम० वीरराघवकृत टीका, तथा महावीर० टीका)

वीरराघव का कथन है कि पद्यों के आधार पर भी कवियों के नाम पड़ते हैं, जैसे—रत्नखेटक, कोटिसार आदि।

(३) इस विषय में दूसरा मत यह है कि निम्नलिखित श्लोक में भवभूति शब्द के प्रयोग को सुनकर विद्वानों ने प्रसन्न होकर उसे 'भवभूति' उपाधि दी। आर्यासप्तशती के टीकाकार अनन्त पंडित ने श्लोक (१—३६) की टीका में निम्नलिखित श्लोक दिया है :—

तपस्वी कां गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव।
गिरिजायाः कुचौ वन्दे भवभूतिसिताननौ।।

सदुक्तिकर्णामृत में भवभूति का यह श्लोक इस रूप में मिलता है :—कां तपस्वी गतोऽवस्थामिति स्मेराविव स्तनौ। वन्दे गौरीघनाश्लेषभवभूतिसिताननौ।।

(४) इस विषय में तीसरा मत यह है कि भव अर्थात् शिव से इसको भूति (ऐश्वर्य) प्राप्त हुई थी। शिव ने ब्राह्मण का रूप धारण करके इसे विभूति प्रदान की थी, अतः इसे भवभूति कहने लगे।

भवात् शिवात् भूतिः भस्म संपत् यस्य, ईश्वरेणैव जातु द्विजरूपेण विभूतिर्दत्ता, तदाप्रभृति भवभूतिरिति प्रसिद्धो जात इति च परावरविदो वदन्ति।
(उत्तरराम० प्रस्तावना, टीकाकार घनश्यामकृत व्याख्या)

(५) टीकाकार घनश्याम ने श्रीकण्ठपदलाञ्छन का अर्थ किया है :— श्रीकण्ठ—शिव के, पद—दोनों चरण ही, लाञ्छन—जिसकी प्रशस्ति हैं, अर्थात् शिव के चरणकमलों में संलग्न।

श्रीकण्ठस्य शिवस्य पदे पादावेव लाञ्छनं विरुदं यस्येति वार्थः। शिवपादाब्जनिरत इति यावत्। (उत्तर० प्रस्तावना, टीकाकार घनश्याम)

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि टीकाकारों ने जनश्रुति के आधार पर लेखक का मूल नाम श्रीकण्ठ और भवभूति उपाधि मानी है। डा० बेल्वल्कर इसी मत को मानते हैं।

यदि आलोचनात्मक दृष्टि से विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि भवभूति का मूलनाम भवभूति ही था, श्रीकण्ठ उसका उपनाम या उपाधि थी। निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि भवभूति का मूलनाम भवभूति ही था।

(१) भवभूति ने तीनों नाटकों में की प्रस्तावना में स्पष्ट रूप से 'भवभूतिर्नाम' प्रयोग किया है। इसका स्पष्ट रूप से अर्थ है कि नाटककार का नाम भवभूति है। जो विद्वान् 'भवभूतिर्नाम' में नाम शब्द को प्रसिद्धिसूचक अव्यय मानकर 'भवभूतिनाम से प्रसिद्ध' ऐसा अर्थ करते हैं, उसकी अयथार्थता मालतीमाधव

में प्राप्त जगद्धरस्वीकृत पाठ 'भवभूतिनामा' से सिद्ध होती है। इससे स्पष्ट है कि उसका नाम भवभूति है। इसका 'भवभूति' उपाधि यह अर्थ करना सर्वथा असंभव है। इसका ही आगे मूलपाठ में समर्थन प्राप्त होता है कि 'भवभूतिनाम्ना' प्रियमित्र भवभूति-नामक ने अपनी मालतीमाधव नामक कृति हमें दी है। निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट है कि भवभूति ने 'नाम' का प्रयोग नामक अर्थ में किया है, न कि प्रसिद्ध अर्थ में।

अतो यदस्माकमर्पितं प्रियसुहृदात्रभवता भवभूतिनाम्ना प्रकरणं स्वकृतिमालतीमाधवं नाम०। (मालती० प्रस्तावना, जगद्धरसंमत पाठ)।

(२) 'श्रीकण्ठपदलाञ्छनः भवभूतिर्नाम' का यह अर्थ करना सर्वथा अनुचित और असंगत है कि श्रीकण्ठ नाम है और भवभूति उपाधि। यदि ऐसा अर्थ अभीष्ट होता तो इसका पाठ होता—भवभूतिपदलाञ्छनः श्रीकण्ठो नाम। परन्तु नाटककार को अभीष्ट है कि वह अपना नाम भवभूति स्पष्ट रूप से दे। लेखक के शब्दों को इस प्रकार तोड़-मरोड़ कर अर्थ निकालना सर्वथा असंगत और अनुचित है।

(३) सुभाषित ग्रन्थों आदि में भवभूति के जितने उद्धरण दिए गए हैं, वे सभी भवभूति नाम से दिए गए हैं, कहीं पर भी श्रीकण्ठ नाम से नहीं।

(४) सभी टीकाकारों ने केवल जनश्रुति को आधार माना है, किसी ने भी कोई ऐतिहासिक तथ्य उद्धृत नहीं किया है। इस पक्ष की असारता इस बात से सिद्ध होती है कि यदि भवभूति उपाधि होती तो उसके लिए कोई एक संपुष्ट कथा होती। उपर्युक्त उद्धरणों से सिद्ध होता है कि भवभूति नाम के लिए तीन विभिन्न जनश्रुतियाँ दी गई हैं—१. राजा ने भवभूति उपाधि दी, २. विद्वानों ने 'भवभूतिसिताननौ' के कारण भवभूति उपाधि दी, ३. शिव ने उसे भूति दी, अतः उसका नाम भवभूति पड़ा। इससे स्पष्ट है कि भवभूति उपाधि या उपनाम के पीछे कोई पुष्ट विचार नहीं है। केवल जनश्रुति के आधार पर यह मान लिया गया कि भवभूति उपाधि या उपनाम है। बाद में इस धारणा को लेकर विभिन्न मत प्रस्तुत किए गए।

(५) टीकाकार लेखक से बहुत परकालवर्ती हैं, अतः यह संभव है कि उन्हें वास्तविकता का ठीक ज्ञान न हो। बहुत सी असंपुष्ट जनश्रुतियाँ भी भारतीय

साहित्य में पूर्णतया प्रचलित हो गई हैं, जैसे--हंस का नीरक्षीर-विवेक, काक का एकचक्षु होना, चन्द्रमा का मृगांक होना आदि।

(६) टीकाकारों ने भी स्वीकार किया है कि भवभूति उसका नाम है और श्रीकण्ठ उपाधि या उपनाम है। टीकाकार त्रिपुरारि का कथन है--भवभूति भी कवि का दूसरा नाम है।[1] टीकाकार जगद्धर कवि का प्रसिद्ध नाम भवभूति मानते हैं और श्रीकण्ठ का अर्थ करते हैं--सरस्वती जिसके कण्ठ में निवास करती है।[2] टीकाकार घनश्याम ने श्रीकण्ठपदलाञ्छन का अर्थ किया है--शिव के चरण-कमलों में लीन, अर्थात् शिवभक्त।[3] उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि टीकाकार भी श्रीकण्ठपदलाञ्छन में श्रीकण्ठ का अर्थ श्रीकण्ठ नाम मानने में एकमत नहीं हैं। दूसरी ओर वे स्वीकार करते हैं कि प्रचलित नाम भवभूति ही था।

(७) इस विषय में मेरा विचार निम्नलिखित है:—

कवि का मूल नाम (पुकारने का नाम या व्यावहारिक नाम) भवभूति ही था। यह मालतीमाधव के 'भवभूतिनामा' और 'भवभूतिनाम्ना०' पदों से निर्विवाद सिद्ध होता है। भवभूतिविषयक जनश्रुतियों का आधार यह प्रतीत होता है कि सूर, तुलसी, केशव, रहीम आदि कवियों के तुल्य भवभूति को भी यह रुचिकर था कि वह अपने श्लोकों में भवभूति शब्द का प्रयोग करे तथा श्लेष के द्वारा अपना नाम और भवभूति (शिव का ऐश्वर्य, शिव का भस्म आदि) अर्थ प्रकट करे। भवभूति के ऐसे प्रयोगों से तत्कालीन राजा और विद्वान् बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने भवभूति नाम को सार्थक मानते हुए उसकी प्रशंसा में विभिन्न जनश्रुतियाँ बनाईं।

तीनों नाटकों में प्राप्त भवभूति का परिचय पढ़ने से ज्ञात होता है कि श्रीकण्ठ उसका व्यावहारिक नाम नहीं था और न किसी के द्वारा प्रदत्त उपाधि।

१. भवभूतिरिति व्यवहारे तस्येदं नामान्तरम् (मालती० प्रस्तावना, त्रिपुरारिकृत टीका)।

२. श्रीः सरस्वती कण्ठे यस्य स श्रीकण्ठः। तद्वा पदं लाञ्छनं चिह्नं यस्य सः। नाम्ना श्रीकण्ठः। प्रसिद्ध्या भवभूतिरित्यर्थः। (मालती० प्रस्तावना, जगद्धरकृत टीका)।

३. शिवपादाब्जनिरत इति (उत्तर० प्रस्तावना, घनश्याम)।

माता-पिता आदि के द्वारा घर में व्यवहृत प्रेममूलक उसका नाम श्रीकण्ठ या भट्ट-श्रीकण्ठ था, जिस प्रकार आजकल बालकों के प्रचलित नाम—राजा, राजा बाबू, शिशु आदि होते हैं। यह उसका घर या परिवार में व्यवहृत प्रेममूलक नाम था। भवभूति को अभीष्ट था कि उसका 'श्रीकण्ठ' या 'भट्ट श्रीकण्ठ' यह उपनाम भी जनता को ज्ञात रहे, अतः उसने सभी नाटकों में 'श्रीकण्ठपदलाञ्छनः' जानबूझ कर प्रयोग किया है। इसका अर्थ है—श्रीकण्ठ शब्द जिसका लाञ्छन (उपनाम या सूचक शब्द) है। टीकाकार जगद्धर ने मालतीमाधव की प्रस्तावना में 'भट्टश्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिनामा' यह पाठ स्वीकार करके इस बात को पूर्णतया असन्दिग्धरूप से स्पष्ट किया है। भवभूति को घर में श्रीकण्ठ या भट्ट श्रीकण्ठ नाम से पुकारा जाता था। 'श्रीकण्ठ' पद को किसी प्रकार उपाधि माना जा सकता है, पर भट्ट-श्रीकण्ठ शब्द का उपाधिसूचक मानना असंभव है। ये भट्ट ब्राह्मण थे, अतः पितामह का नाम भट्टगोपाल था। उपाध्याय आदि शब्दों के तुल्य भट्ट उपजातिसूचक शब्द है। पिता नीलकण्ठ के नाम के सादृश्य पर घर में पुकारने के लिए श्रीकण्ठ शब्द चुना गया। इसके पीछे भावना थी कि यह बालक महाविद्वान् होगा और श्री अर्थात् सरस्वती इसके कण्ठ में विद्यमान रहेगी।

(ग) भवभूति और उम्बेक

नाटककार भवभूति और प्रसिद्ध मीमांसक उम्बेक एक ही व्यक्ति हैं या दो विभिन्न व्यक्ति? इस विषय पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। डा० पी० वी० काणे[1], प्रो० कुप्पुस्वामी शास्त्री[2] और श्री पण्डित एस० आर० रामनाथ शास्त्री[3] का मत है कि भवभूति और उम्बेक दोनों एक ही व्यक्ति हैं। इसके

---

१. काणेकृत—उत्तररामचरित (प्रस्तावना, पृष्ठ २२ से २७ तथा हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र भाग ५ पृष्ठ ११८८–११९९)।

२. प्रोसीडिंग्स ऑफ दी सेकण्ड ओरियण्टल कान्फरेन्स (कलकत्ता, १९२३ पृष्ठ ४१० से ४१२)।

३. क्वार्टर्ली जर्नल ऑफ आन्ध्र एच० आर० एस० (जन० १९२७ पृष्ठ १२५–१२९)।

विपरीत डा० मिराशी[१] और डा० कुन्हन राजा[२] ने भवभूति और उम्बेक को दो पृथक् व्यक्ति माना है।

सर्वप्रथम यह प्रश्न श्री शंकर पांडुरंग पंडित ने वाक्पतिराज कृत गउडवहो (गौडवध) की भूमिका में उठाया है। उनका कथन है कि उन्हें इन्दौर के श्री एम० वी० लेले से मालतीमाधव की लगभग ५०० वर्ष पुरानी एक पांडुलिपि मिली है, जिसमें तृतीय, षष्ठ और दशम अंकों की पुष्पिका (अंक का अन्तिम वाक्य) में लेखक का नाम इस प्रकार दिया गया है—अंक ३—कुमारिल भट्ट शिष्यकृत, अंक ६—कुमारिलस्वामिशिष्य उम्बिकाचार्यकृत, अंक १०—भवभूतिकृत।[३] इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं—१. भवभूति कुमारिल भट्ट का शिष्य था, २. भवभूति का दूसरा नाम—उम्बिकाचार्य या उम्बेक था।

भवभूति और उम्बेक एक ही व्यक्ति हैं, इसके लिए निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं:—

१. चित्सुखाचार्य ने अपनी टीका 'तत्त्वप्रदीपिका' (चित्सुखी) में भवभूति और उम्बेक के एकत्व का संकेत किया है।[४] चित्सुखी के टीकाकार प्रत्यग्रूप भगवान् ने अपनी 'नयनप्रसादिनी' टीका में भवभूति और उम्बेक को स्पष्टरूप से एक व्यक्ति माना है।

भवभूतिरुम्बेकः। एतदेव ग्रन्थान्तरस्थेन तद्वचनेन संमतयति, उक्तं चैतदिति। (चित्सुखी पृ० २६५ की नयन० टीका)

---

१. स्टडीज़ इन इन्डोलाजी, (भाग १ पृष्ठ ४४–५२)।

२. श्लोकवार्तिक पर उम्बेककृत तात्पर्यटीकायुक्त संस्करण की भूमिका।

३. इति भट्टकुमारिलशिष्यकृते मालतीमाधवे तृतीयोऽङ्कः, इति श्री कुमारिलस्वामिप्रसादप्राप्तवाग्वैभव-श्रीमदुम्बिकाचार्य-विरचिते मालतीमाधवे षष्ठोऽङ्कः, इति श्रीमद्भवभूतिविरचिते मालतीमाधवे दशमोऽङ्कः। (गउडवहो की भूमिका पृष्ठ २०६ तथा आगे)।

४. नहि पुराप्त एव सन् नाटकनाटिकादिप्रबन्धविरचनमात्रेणानाप्तो भवति भवभूतिः। चित्सुखी (निर्णय० सं० १९१५, पृष्ठ २६५)।

२. कुमारिल के श्लोकवार्तिक पर उम्बेक ने तात्पर्यटीका लिखी है और उसके प्रारम्भ में यह श्लोक दिया है :—

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥

यह श्लोक मालतीमाधव (१–८) की प्रस्तावना में भी आता है।

अतः ज्ञात होता है कि दोनों एक ही व्यक्ति हैं, क्योंकि भवभूति ने अपने ग्रन्थों में अपने श्लोकों की पुनरावृत्ति प्रायः की है।

३. दार्शनिक ग्रन्थों के विभिन्न टीकाकारों ने अपने ग्रन्थों में उम्बेक का नाम तथा उसके मन्तव्यों का उल्लेख किया है और उसे श्लोकवार्तिक का टीकाकार भी माना है। (क) हरिभद्रसूरिकृत प्रसिद्ध ग्रन्थ 'षड्दर्शनसमुच्चय' पर गुण-रत्न नामक जैन ने टीका की है और उसमें ओम्बेक को कारिका अर्थात् श्लोक-वार्तिक का ज्ञाता कहा गया है। 'ओम्बेकः कारिकां वेत्ति'। (ख) श्रीहर्ष के खण्डनखण्डखाद्य पर आनन्दपूर्ण ने विद्यासागरी टीका लिखी है। अपनी टीका में उसने श्लोकवार्तिक के दो श्लोक उद्धृत किए हैं और 'उबैक' कृत टीका का भी उल्लेख किया है। (ग) बोधघनाचार्य ने अपनी पुस्तक तत्त्वशुद्धि में उम्बेक का उल्लेख किया है।[1]

४. भवभूति ने अपने आपको 'पदवाक्यप्रमाणज्ञः' तीनों नाटकों की प्रस्तावना में कहा है। प्रमाणज्ञः का अर्थ है मीमांसादर्शन का ज्ञाता। अतः ज्ञात होता है कि प्रसिद्ध मीमांसक उम्बेक और भवभूति एक ही हैं।

५. 'तत्त्वसंग्रह' के लेखक बौद्ध दार्शनिक शान्तरक्षित (७०५–७६२ ई०) के शिष्य कमलशील ने सर्वप्रथम ओवेयक (Oveyaka, उम्बेक) का उल्लेख किया है और उसने कुमारिल के श्लोकवार्तिक की आलोचना की है। कमलशील का समय ७६०–८०० ई० माना जाता है। अतः उम्बेक का समय ७६० ई० से से पहले मानना चाहिए।

---

१. बलदेव उपाध्यायकृत संस्कृत-सुकवि-समीक्षा, (पृ० ३१९–३२०)।

श्री पी० वी० काणे ने अपने ग्रन्थ 'धर्मशास्त्र का इतिहास' भाग ५ (पृ० ११८८–११९९) में इस विषय पर विशेष विस्तार के साथ विचार किया है और अपना मत प्रकट किया है कि भवभूति और उम्वेक को एक मानना अधिक संभव है, यद्यपि अभी तक इसके पूर्ण पोषक प्रमाण नहीं मिले हैं।

डा० कुन्हन राजा और डा० मिराशी कुमारिल और उम्बेक के एकत्व का खंडन करते हैं। डा० कुन्हनराजा ने उम्बेककृत तात्पर्यटीका (मद्रास यूनि० द्वारा प्रकाशित) की एक विस्तृत भूमिका लिखी है और उसमें दोनों के एकत्व का खंडन किया है। डा० मिराशी प्रायः डा० कुन्हन राजा के मतों को मानते हैं। उन्होंने भवभूति और उम्बेक को एक न मानने के दो कारण बताए हैं— १. दोनों का समय भिन्न है, २. दोनों विभिन्न स्थान के निवासी थे।[1] डा० काणे का मन्तव्य है कि ये दोनों कारण समाधेय हैं।[2] संक्षेप में उसका विवरण इस प्रकार है :—

(१) डा० मिराशी भवभूति का समय ८वीं शती ई० प्रथम चरण मानते हैं और उम्बेक का समय ७७५ से ८०० ई०। डा० काणे का मन्तव्य है कि उम्बेक को ७५० ई० में जीवित मानना उचित है। कमलशील का समय ७६० से ८०० ई० है। कमलशील ने उम्बेक का खंडन किया है, अतः उम्बेक ७६० ई० से पूर्ववर्ती है। यदि भवभूति का जन्म ६८० ई० के लगभग माना जाए और उसकी आयु लगभग ८० वर्ष मानी जाए तो उसका समय ६८० से ७६० ई० होगा। यह संभव है कि उसने ४५ या ५० वर्ष तक नाटकादि लिखकर पर्याप्त यश पा लिया था। ५० वर्ष की आयु के बाद उसकी विशेष प्रवृत्ति मीमांसा की ओर हुई और वह कुमारिल का शिष्य हुआ तथा मीमांसा-विषयक ग्रन्थ लिखे। इस प्रकार ७५० ई० के लगभग भवभूति और उम्बेक दोनों की सत्ता संभव है।

(२) डा० मिराशी भवभूति को उत्तरभारत का निवासी मानते हैं और उम्बेक को दक्षिण भारत का। डा० काणे का कथन है कि मिराशी के मतानुसार भी भवभूति कुछ वर्ष कालपी (कन्नौज) में रहे और उन्हें विदर्भ, पंचवटी,

१. स्टडीज़ इन इन्डोलाजी (भाग १ पृष्ठ ५२)।
२. काणे, उत्तररामचरित की भूमिका (पृष्ठ २२ से २७)।

दक्षिण भारत के विभिन्न भागों का पूर्ण परिचय था। भवभूति के ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि उसे दक्षिण भारत की भाषा, रहन-सहन का ढंग और वहाँ के प्रदेशों का वहुत सूक्ष्मता से परिचय था। उसने मालतीमाधव में श्रीपर्वतादिहाहं० (१०–१४) में उल्लेख किया है कि माधव श्रीपर्वत से वायुमार्ग से सौदामिनी के साथ पद्मावती आया। श्रीपर्वत पर योगाभ्यासी और शाक्त तन्त्रों के विशेषज्ञ रहते थे। उत्तररामचरित के टीकाकार घनश्याम ने भवभूति के विभिन्न प्रयोगों के आधार पर सिद्ध किया है कि वह द्राविड़ था। जैसे—मातर्जीवामि (अंक २, वाक्य ४६), वत्सयोः पितुः संनिधानेन (अंक ३ वाक्य ८१), अकुङ्कुम० (६–३७), ये प्रयोग द्रविड़ देश में ही प्रसिद्ध हैं। मालतीमाधव में केरल की सुन्दरियों का वर्णन है, (केरलीकपोलकोमलोद्वेल०, मालती० निर्णय० पृ० ८७), केरलवधू० (मालती० ६–१६)। केरल में मीमांसादर्शन का अध्ययन विशेषरूप से होता था, अतः भवभूति वहाँ पर्याप्त समय रहा। भवभूति ने दक्षिण में जाकर अपना नाम उम्बेक रखा। अतः भवभूति और उम्बेक को एक ही व्यक्ति मानना उचित है।

डा० काणे ने उम्बेक शब्द की संभावना उमा या उम्बा (पार्वती) से मानी है। उम्बायाः अयम् औम्बेयः, औम्बेयकः। उमा या उम्बा का पुत्र। औम्बेयक से औम्बेक>उम्बेक। मेरे विचार से उम्बेक का मूल शब्द अम्बिकाचार्य था। भवभूति ने ५० या ६० वर्ष की आयु में संन्यास की दीक्षा ली और अपना संन्यास का नाम अम्बिकाचार्य रखा। अतएव पूर्वोक्त प्राचीन मालतीमाधव की पुष्पिका में 'उम्बिकाचार्यविरचिते षष्ठोऽङ्कः' पाठ है। प्राकृत और पाली में अ को उ हो जाता है। अम्बिकाचार्य>उम्बिकाचार्य>उम्बेक, ओम्बेक, उवैक आदि। द्राविड़ भाषाओं में आर्य का ऐयर, नार्य या अनार्य का नैयर प्रचलित हैं। शैव-प्रभाव के कारण भवभूति को अम्बिका नाम अधिक रुचिकर रहा होगा। अम्बिकादत्त, अम्बिकाप्रसाद आदि नाम उत्तरभारत में भी प्रचलित हैं।

मेरे विचार से भवभूति और उम्बेक को एक ही व्यक्ति मानना चाहिए। भवभूति स्थान और समयानुसार नाटककर्ता होने से नाटकीय पात्रों के तुल्य अपना नाम बदलने में निपुण था। दक्षिण भारत में उसने द्रविडोचित उम्बेक या ओम्बेक नाम रख लिया।

(घ) मण्डन, विश्वरूप और सुरेश्वर

कुछ ग्रन्थों में ऐसे संकेत मिलते हैं, जिनके आधार पर कतिपय विद्वान् मण्डन, विश्वरूप और सुरेश्वर भी भवभूति के ही नाम मानते हैं।[1] याज्ञवल्क्य स्मृति पर विश्वरूप की बालक्रीडा नामक टीका है। उस पर विभावना नाम की एक व्याख्या है। इसमें एक श्लोक में विश्वरूप को प्रणाम किया गया है और उसका नाम भवभूति तथा सुरेश (सुरेश्वर) बताया गया है। विद्यारण्यकृत शंकरदिग्विजय में उम्बेक और मण्डन को एक माना गया है।[2] यही ग्रन्थ विश्वरूप और मण्डन को भी एक मानता है।[3] आनन्दगिरिकृत शंकरविजय (पृष्ठ २३६–२३७) का कथन है कि मण्डन कुमारिल भट्ट की बहिन का पति अर्थात् कुमारिल का जीजा था। यह ग्रन्थ 'कुमारिल और मण्डन को समसामयिक मानता है। शंकरदिग्विजय (७–१२०) के अनुसार मण्डन और शंकराचार्य के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ से पूर्व ही कुमारिल का स्वर्गवास हो गया था।

डा० पी० वी० काणे ने 'हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र' भाग ५ (पृ० ११८८–११९९) में इस विषय पर विस्तृत विवेचन किया है और इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि—(१) मण्डन और उम्बेक एक व्यक्ति नहीं हैं, (२) उम्बेक कुमारिल का शिष्य था और उसने कुमारिल के श्लोकवार्तिक पर तात्पर्यटीका लिखी तथा उम्बेक ने ही मण्डन के भावनाविवेक पर भी टीका लिखी है। (३) मण्डन और विश्वरूप भी एक व्यक्ति नहीं हैं। (४) विश्वरूप और सुरेश्वर एक व्यक्ति हैं। विश्वरूप ने ही संन्यास की दीक्षा लेने पर अपना नाम सुरेश्वर रखा था। इसका रचनाकाल है—८०० से ८४० ई०। (५) भवभूति और विश्वरूप एक व्यक्ति नहीं हैं। (६) भवभूति और उम्बेक संभवतः एक व्यक्ति हैं। (७) मण्डन कुमारिल भट्ट का कनिष्ठ समसामयिक था। इसने कुमारिल के

---

१. यत्प्रसादादयं लोको धर्ममार्गस्थितः सुखी। भवभूतिसुरेशाख्यं विश्वरूपं प्रणम्य तम्।। (त्रिवेन्द्रम् सं० सी०, बालक्रीडा की प्रस्तावना में गणपति शास्त्री द्वारा उद्धृत)।

२. उम्बेक इत्यभिहितस्य तस्य० (शंकरदिग्विजय ७–११६)।

३. शंकरदिग्विजय (८–३२, ६३)।

कुछ श्लोक उद्धृत किए हैं। इसका रचना काल ६८० से ७२० ई० माना जा सकता है। (८) भवभूति और मण्डन एक व्यक्ति नहीं हैं। भवभूति या उम्बेक ने मण्डन के भावनाविवेक की टीका की है, अतः भवभूति मण्डन से परवर्ती है।

इस स्थिति में भवभूति के मण्डन, विश्वरूप और सुरेश्वर नाम मानना उचित नहीं है। ये सभी दार्शनिक हैं और कुछ अन्तर से प्रायः समकालीन हैं, अतः भ्रमवश परकालीन लेखकों ने इन्हें एक मानना प्रारम्भ कर दिया होगा। इनके विचारों में साम्य होना भी इस भ्रम का कारण हो सकता है।

(ङ) भवभूति का निवासस्थान

भवभूति के निवासस्थान के विषय में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। भवभूति ने मालतीमाधव और महावीरचरित की प्रस्तावना में अपना परिचय देते हुए लिखा है कि——

अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्। **(मा०, महा०, प्रस्तावना)**

टीकाकार जगद्धर ने दक्षिणापथे के बाद विदर्भेषु पाठ अधिक माना है। इसका अर्थ है दक्षिणापथ में पद्मपुर नामक नगर है। वहाँ पर भवभूति के पूर्वज रहते थे। उत्तरापथ और दक्षिणापथ परस्पर संबद्ध शब्द हैं। प्रसिद्ध कोशकार श्री वी० एस० आप्टे के अनुसार उत्तरापक्ष का अर्थ है—उत्तर की ओर जाने वाला मार्ग या उत्तरी मार्ग। इसी प्रकार दक्षिणापथ का अर्थ है——दक्षिण की ओर जाने वाला मार्ग। दक्षिणापथ का मुख्यार्थ दक्षिणभारत नहीं है, अपितु यह इसका गौण अर्थ है। इस बात की ओर ध्यान न देने से उपर्युक्त वाक्य का अधिकांश विद्वानों ने अनर्थ किया है। वे इसका अर्थ करते हैं——दक्षिणभारत में विदर्भ प्रान्त में पद्मपुर नामक नगर है। प्रो० मिराशी जसे विद्वानों ने उपर्युक्त वाक्य के नगर शब्द पर भी ध्यान नहीं दिया है और उन्होंने विदर्भ (बरार) के भण्डारा जिले के पद्मपुर ग्राम से इसका साम्य स्थापित किया है। उन्होंने भंडारा और चाँदा जिलों में पद्मपुर से साम्य वाले ६ गाँवों का पता लगाया है, जिनके नाम हैं——पद्मपुर, पदमपुर या पद्मापुर। उल्लेखनीय है कि भवभूति के पूर्वजों की जन्म-भूमि पद्मपुर नगर थी, न कि पद्मपुर ग्राम। साथ ही कवि का यह कथन अभीष्ट है कि दक्षिण की ओर जाने वाले मार्ग पर यह नगर है। कवि को विदर्भ का

उल्लेख अभीष्ट नहीं है। विदर्भेषु पाठ प्रक्षिप्त ही समझना चाहिए। इसीलिए अधिकांश प्रतियों में विदर्भेषु पाठ नहीं है। आगे के विवेचन से ज्ञात होगा कि पद्मपुर विदर्भ से बाहर है।

पद्मपुर कहाँ है? यह एक टेढ़ा प्रश्न है। अभी तक कोई विद्वान् इसका पूर्ण संतोषजनक उत्तर नहीं दे सका है। इस विषय में केवल टीकाकार जगद्धर का आश्रय लिया जाता है। उसने मालतीमाधव की टीका में कहा है—'पद्मनगरं पद्मावती। नाम प्रसिद्धौ।' (माल० प्रस्तावना)। इसका अभिप्राय यह है कि जगद्धर ने पद्मपुर और पद्मनगर को एक माना है और पद्मपुर को पद्मावती माना है। डा० काणे आदि ने टीकाकार त्रिपुरारि का भी यही मत माना है, पर त्रिपुरारि ने अपनी टीका में इस विषय में कुछ नहीं लिखा है। डा० काणे पद्मपुर और पद्मावती को एक नहीं मानते हैं, पर यह बताने में असमर्थ हैं कि पद्मपुर कहाँ है? पूर्ण निर्णायक ढंग से यह नहीं कहा जा सकता है कि पद्मपुर कहाँ है? पर पद्मावती को पद्मपुर मानना अधिक संभव है।

टीकाकार जगद्धर ने जो सुझाव दिया है, वह ग्राह्य है। मालतीमाधव के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भवभूति को पद्मावती का बहुत सूक्ष्म ज्ञान था। उसने अंक ४ और ६ में पद्मावती का सूक्ष्म वर्णन दिया है। मालतीमाधव के वर्णन से यह भी ज्ञात होता है कि पद्मावती विदर्भ से बाहर थी। विदर्भराज के मन्त्री देवरात ने अपने पुत्र माधव को विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर से आन्वीक्षिकी (न्यायशास्त्र) पढ़ने के लिए पद्मावती भेजा था।[1] वस्तुतः आन्वीक्षिकी पढ़ने के बहाने वह पद्मावती के मन्त्री भूरिवसु की पुत्री मालती से विवाह के लिए आया था।[2] इससे ज्ञात होता है कि पद्मावती का राज्य विदर्भ से बाहर था। दोनों मन्त्री अपने पुत्र और पुत्री का विवाह-संबन्ध चाहते थे। इससे यह भी

१. तदिदानीं विदर्भराजस्य मन्त्रिणा सता देवरातेन माधवं पुत्रमान्वीक्षिकी-श्रवणाय कुण्डिनपुरादिमां पद्मावतीं प्रहिण्वता सुविहितम्। (मालती० १–१२ के बाद, निर्णय० पृष्ठ १३)।

२. अपि नाम कल्याणिनोर्भूरिवसुदेवरातापत्ययोरनयोर्मालतीमाधवयो-रभिमतं पाणिग्रहमङ्गलं स्यात्। (अमात्यभूरिवसुः····) (निर्णय० पृष्ठ १०–११)

ज्ञात होता है कि उस समय पद्मावती में दर्शनशास्त्र के विशेषज्ञ विद्वान् रहते थे, अतः माधव न्यायशास्त्र पढ़ने के बहाने पद्मावती आया था। यह संभव है कि इन विद्वत्परिवारों में भवभूति के परिवार का भी संकेत हो।

मालतीमाधव में पद्मावती का जो वर्णन प्राप्त होता है, उसका अत्युपयोगी अंश नीचे दिया जा रहा है। इससे पाठकों को ज्ञात हो सकेगा कि पद्मावती नगरी कहाँ थी और उसका क्या महत्त्व था ?

(१) सौदामिनी--

(क) पद्मावती विमलवारिविशालसिन्धु-
पारासरित्परिकरच्छलतो बिभर्ति।
उत्तुङ्गसौधसुरमन्दिरगोपुराट्ट-
संघट्टपाटितविमुक्तमिवान्तरिक्षम् ॥१॥

(ख) सैषा विभाति लवणा वलितोर्मिपङ्क्ति० ॥२॥

(ग) स एष भगवत्याः सिन्धोर्दारितरसातलस्तटप्रपातः।
यत्रत्य एष तुमुलध्वनिरम्बुगर्भ० ॥३॥

(घ) एताः···· अरण्यगिरिभूमयः स्मारयन्ति···· गोदावरीमुखरित-विशालमेखलाभुवो दक्षिणारण्यभूधरान्। अयं च मधुमतीसिन्धुसंभेदपावनो भगवान् भवानीपतिरपौरुषेयप्रतिष्ठः सुवर्णबिन्दुरित्याख्यायते।

(मालती० अंक ९ श्लोक १–४, निर्णय० पृष्ठ २०३–२०५)

(२) माधवः--वरदासिन्धुसंभेदमवगाह्य नगरीमेव प्रविशावः। (जगद्धरसंमतपाठ–पारासिन्धुसंभेद०) ।

(मालती० अंक ४ श्लोक ९ के बाद निर्णय० पृष्ठ १०७)

उपर्युक्त उद्धरणों से पद्मावती नगरी के विषय में निम्नलिखित बातें स्पष्ट रूप से ज्ञात होती हैं :--

(१) पद्मावती नगरी सिन्धु और पारा दो नदियों से घिरी हुई है। पारा का ही दूसरा नाम वरदा भी है। (२) इनमें से सिन्धु नदी बहुत विशाल है। सिन्धु नदी अपने समीपवर्ती तटों को काटती है। इसके समीप ही पर्वत हैं। यह प्रचण्ड ध्वनि करती हुई पर्वत-गुफाओं में होती हुई बहती है। (३) यहाँ के

पर्वतीय वन गोदावरी के कलनादयुक्त दक्षिणारण्य (दण्डकवन) के पर्वतों की याद दिलाते हैं। (४) इसके पास ही मधुमती और सिन्धु नदियों का संगम है। इस संगम पर अनादिकाल से प्रतिष्ठित शिव का एक मन्दिर है, उसे 'सुवर्णबिन्दु' कहते हैं। (५) सौदामिनी इस संगम पर स्थित शिव की स्तुति करती है— जय देव भुवनभावन० (९–४)। (६) माधव और मकरन्द सिन्धु और वरदा (पारा) नदियों के संगम में स्नान करके पद्मावती में प्रवेश करते हैं। (७) पद्मावती नगरी में महल, देवमन्दिर, मुख्यद्वार और गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ थीं। (८) इसके पास ही एक छोटी लवणा नदी है, जो वर्षा में बहुत बढ़ जाती है और समीपस्थ वनभूमि को तृणाच्छादित कर देती है। (९) यहाँ के पहाड़ी वनों में चन्दन, अश्वकर्ण, सरल (चीड़) और पाटला (लाल लोध) आदि के वृक्ष अधिक हैं। पके बेल की सुगन्ध व्याप्त रहती है कदम्ब और जामुन के वृक्षों का घोर वन है। (१०) लवणा नदी वर्षा में बहुत बढ़ जाती है और उसके कारण वहाँ गायों के चरने योग्य उलप नाम की घास अधिकता से होती है। वर्षा ऋतु में लोग मनोरंजनार्थ लवणा के किनारे जाते थे। (अभ्रागमे, जनपदप्रमदाय यस्याः। गोगर्भिणीप्रियनवोलपमालभारि०, मा० ९–२)

उपर्युक्त विवरण से निम्नलिखित निष्कर्ष सरलता से निकाले जा सकते हैं—

(१) भवभूति को पद्मावती की भौगोलिक स्थिति का अतिसूक्ष्म ज्ञान था। (२) वह पद्मावती का इसी प्रकार भाव-विभोर होकर वर्णन करता है, जैसे अपनी जन्मभूमि का। (३) भवभूति ने अपने तीनों नाटकों में इतना विस्तृत और सांगोपांग वर्णन किसी नगरी का नहीं किया है। (४) पद्मावती नगरी सिन्धु और पारा नदियों के संगम के मध्य में और उनके समीप थी। उसके समीप ही लवणा और मधुमती नदियाँ भी थीं। (५) पद्मावती के समीप ही वन और पर्वत थे। (६) पद्मावती एक संपन्न नगरी थी। इसमें बड़े-बड़े महल और मन्दिर थे। (७) पद्मावती एक प्रतिष्ठित विद्या का क्षेत्र था। यहाँ पर दर्शन-शास्त्र आदि के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् रहते थे। (८) पद्मावती के समीप ही मधुमती और सिन्धु नदियों के संगम पर एक अत्यन्त प्राचीन और महत्त्वपूर्ण शिव का मन्दिर था, जिसका वह भक्त था। (९) भवभूति पद्मावती के समीपस्थ वन, पर्वत, वृक्ष, फल आदि से पूर्णतया परिचित था। उसे ज्ञात था कि सिन्धु

एक बड़ी पहाड़ी नदी है और पारा, लवणा तथा मधुमती छोटी नदियाँ हैं। (१०) पद्मावती भवभूति की जन्मभूमि थी या वह वहाँ पर्याप्त समय तक रहा था।

भवभूति ने पद्मावती का जो भावपूर्ण वर्णन किया है, उसके द्वारा मेरा विचार है कि वह उसकी जन्मभूमि थी। उसने मधुमती और सिन्धु के संगम पर जिस शिव-मन्दिर का उल्लेख किया है, वह उसका उपासना-स्थल था।

जेनरल कनिंघम (General Cunningham) ने इस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मालतीमाधव में वर्णित पद्मावती का दृश्य नरवार (Narwar) के अनुकूल है। यह स्थान ग्वालियर राज्य में सिन्धु या सिन्ध नदी के तट पर है। मालतीमाधव में वर्णित सिन्धु वर्तमान सिन्ध नदी है। पारा (या पार्वती) वर्तमान पारा नदी है। यह सिन्ध नदी से ५ मील दूर बहती है। मधुमती और लवणा छोटी नदियाँ हैं। मधुमती दक्षिण की मोहवार या मधुवार है। लवणा उत्तर की लुण या नुन नदी है। भवभूति द्वारा वर्णित मधुमती और सिन्धु के संगम पर स्थित सुवर्णबिन्दु तीर्थ का सम्बन्ध समीपवर्ती सुनेन्दु या सोनेन्दु से स्थापित किया जा सकता है।[1]

पुरातत्त्वविभाग ग्वालियर के श्री गर्दे (Garde) ने कुछ खुदाइयाँ कराई थीं और उसके आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पद्मावती वर्तमान पवाया ग्राम है, जो कि सिन्धु और पारा (पार्वती) नदियों के संगम के समीप स्थित है। यह स्थान ग्वालियर से ४० मील दक्षिण-पूर्व है और नरवार से थोड़ा उत्तर-पूर्व है।[2]

ग्वालियर के स्वर्गीय श्री एम० वी० लेले ने भी अपने ग्रन्थ 'मालतीमाधव सार वा विचार' में यही भाव व्यक्त किए हैं। उन्होंने भी भवभूति की जन्मभूमि पद्मावती मानी है और वर्तमान पवाया को पद्मावती माना है।[3]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि पद्मावती और पद्मपुर को एक मानना

---

१. Ancient Geography of India सं० १९२४ (पृष्ठ ७२६–७२७)। Coins of Mediaeval India by G. Cunningham (पृष्ठ २२)।

२. काणे, उत्तररामचरित की भूमिका (पृष्ठ ७)।

३. प्रो० मिराशी—Studies in Indology (भाग १ पृष्ठ २२–२३)।

उचित है। वर्तमान पवाया ही प्राचीन पद्मावती है और यही भवभूति की जन्मभूमि थी।

महामहोपाध्याय डा० वासुदेव विष्णु मिराशी ने इस विषय में पर्याप्त अन्वेषण किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पद्मावती भवभूति की जन्मभूमि नहीं थी। भवभूति की जन्मभूमि पद्मपुर भण्डारा जिले के आमगाँव से लगभग २½ मील दूर पदमपुर नामक गाँव है। यहाँ से खुदाई में कुछ प्राचीन सुन्दर मूर्तियाँ और ध्वंसावशेष प्राप्त हुए हैं।[1] पद्मपुर विदर्भ में ही है। चाँदा और भण्डारा जिलों में पद्मपुर, पदमपुर और पद्मापुर नाम के ६ ग्राम हैं।

डा० मिराशी ने यह निष्कर्ष भी निकाला है कि वर्तमान पदमपुर में वाकाटक नरेशों की राजधानी भी थी। उन्हें एक तरफ खुदा हुआ एक ताम्रपत्र दुर्ग जिले में प्राप्त हुआ है। यह पद्मपुर से लिखा गया था। इस ताम्रपत्र पर दो सम्राटों का निर्देश है—एक सम्राट् प्रवरसेन प्रथम का और दूसरा उसके पौत्र एवं उत्तराधिकारी का। द्वितीय राजा के नाम के स्थान पर ही यह ताम्रपत्र खण्डित हो गया है। इसमें अस्थायी-निवास-सूचक वासकात्, स्थानात्, विजयस्कन्धावारात् आदि पद नहीं हैं। अतः पदमपुर को वाकाटकों की राजधानी मानना चाहिए।

डा० पी० वी० काणे ने उत्तररामचरित की भूमिका (पृष्ठ ७–८) में डा० मिराशी के मन्तव्यों का खंडन किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि:—
१. आमगाँव के समीपस्थ पदमपुर वाकाटक–नरेशों की राजधानी नहीं थी।
२. विदर्भ के चाँदा और भण्डारा जिलों में ६ पद्मपुर ग्राम हैं। अभी तक केवल एक ग्राम में ही खुदाई हुई है। जब तक शेष पाँच पद्मपुर में खुदाई नहीं हो जाती, तब तक यह कह सकना असंभव है कि कौन सा पद्मपुर भवभूति की जन्मभूमि थी। पद्मपुर इन ६ के अतिरिक्त भी हो सकते हैं।

डा० काणे पद्मावती को पद्मपुर नहीं मानते हैं, पर वे स्पष्टरूप से यह बताने में असमर्थ हैं कि पद्मपुर कहाँ था? उनका झुकाव है कि यह पद्मपुर दक्षिण में

१. प्रो० वी० वी० मिराशी—Indian Historical Quarterly भाग ११, पृ० २८७–२९९ तथा Studies in Indology (भाग १ पृष्ठ २१–३४)।

उस स्थान पर होना चाहिए, जिसके समीप गोदावरी नदी, दण्डकवन आदि हैं, क्योंकि भवभूति बारबार दण्डकारण्य और गोदावरी आदि का वर्णन करता है। भवभूति ने निम्नलिखित स्थानों पर गोदावरी आदि का वर्णन किया है :—दण्डकारण्य (उत्तर० अंक २ और ३), गोदावरी नदी (उ० अंक २,३), जनस्थान और पंचवटी (उ० २–२७,२८), प्रस्रवण गिरि (उ० २–२४), क्रौंच पर्वत (उ० २–२९), जटायुशिखर और सीतातीर्थ (उ० ३–१४ के बाद)। महावीरचरित के अंक ४ और ५ में भी गोदावरी, जनस्थान और प्रस्रवण गिरि, पंचवटी आदि का उल्लेख है।[1] मालतीमाधव में भी सिन्धु की घोर ध्वनि सुनकर सौदामिनी को गोदावरी और दक्षिणारण्य (दण्डकारण्य) की स्मृति आती है।[2]

डा० काणे के उपर्युक्त कथन से केवल इतना ही सिद्ध होता है कि भवभूति को दण्डकारण्य और गोदावरी नदी का प्रदेश अत्यन्त प्रिय था। इस विषय में मेरा विचार है कि भवभूति की जन्मभूमि पद्मपुर (पद्मावती, वर्तमान पवाया) ही मानना उचित है। भवभूति ने दक्षिण भारत का बहुत अधिक भ्रमण किया था, अतः उसे जो स्थान अत्यन्त मनोहर लगे, उनका उसने बारबार वर्णन किया है। परन्तु यह निःसंकोच और निःसन्देह कहा जा सकता है कि उसने पद्मावती के तुल्य अतिसूक्ष्म वर्णन किसी भी स्थान का नहीं किया है।

(च) कालप्रियानाथ या कालप्रियनाथ

इसी प्रसंग में कालप्रियानाथ शब्द पर भी विचार कर लेना उचित है। कुछ संस्करणों ने कालप्रियनाथ शब्द को अधिक पसन्द किया है। कालप्रियानाथ का अर्थ है—शिव, काल–शिव की, प्रिया–प्रियतमा पार्वती, उसके नाथ अर्थात् स्वामी शिव। कालप्रियायाः नाथः। कालप्रिया पार्वती का नाम है, उसके पति। कालप्रियनाथ का अर्थ भी शिव है। कालप्रियः चासौ नाथः। कालप्रिय—शिव, नाथः—स्वामी। अथवा कालप्रियायाः नाथः। आ को ह्रस्व अ।

---

१. अयम्····गोदावरीमुखकन्दरः····जनस्थानमध्यगो गिरिः प्रस्रवणो नाम। इयं च पञ्चवटी। (महावीर० ५–१५ के बाद, निर्णय० पृष्ठ १९०)।

२. स्मारयन्ति····गोदावरीमुखरितविशालमेखलाभुवो दक्षिणारण्यभूधरान्। (मालती० ९–३ के बाद, निर्णय० पृष्ठ २०४–२०५)।

भवभूति के तीनों नाटकों में कालप्रियानाथ या कालप्रियनाथ का उल्लेख है। इसकी यात्रा या उत्सव के अवसर पर ये तीनों नाटक खेले गए थे। तीनों नाटकों के प्रारम्भ में इस तथ्य का विशेष महत्त्व के साथ उल्लेख है।[1] इन नाटकों की प्रस्तावना में जो वाक्य मिलते हैं, उनसे निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है :—

१. जहाँ पर ये नाटक सर्वप्रथम खेले गए थे, वहाँ पर शिव का मन्दिर था।

२. यह कोई तीर्थ-स्थान था, जहाँ पर लोग तीर्थ-यात्रा के लिए आते थे।

३. मालतीमाधव के विवरण से ज्ञात होता है कि वहाँ पर किसी विशेष अवसर पर मेला लगता था और तीर्थयात्रा की दृष्टि से उस अवसर पर भारत के सुदूर प्रान्तों से लोग वहाँ आते थे। इस मेले में मनोरंजन के लिए नाटकों आदि का भी आयोजन होता था। उस समय विद्वानों ने भवभूति से अनुरोध किया था कि जनता के मनोरंजनार्थ कोई अपूर्व नाटक प्रस्तुत करें। अतः उसने मालतीमाधव प्रस्तुत किया।

आदिष्टोऽस्मि विद्वत्परिषदा यथा—अद्य त्वयाऽपूर्ववस्तुप्रयोगेन वयं विनोदयितव्या इति।

(मालती० प्रस्तावना)

कालप्रियानाथ का मन्दिर कहाँ है? इस प्रश्न का स्पष्ट और असन्दिग्ध उत्तर कोई भी विद्वान् आज तक नहीं दे सका है। जितने विद्वानों ने इस प्रश्न पर विचार किया है, सभी ने केवल जनश्रुतियों या अनुमान का आश्रय लिया है, अतः यह प्रश्न सुलझने के स्थान पर उलझता ही चला गया। इन नाटकों के टीकाकारों की व्याख्याएँ भी वस्तु-स्थिति को स्पष्ट नहीं कर सकी हैं। कालप्रियानाथ और कालप्रियनाथ का अर्थ टीकाकारों ने शिव किया है। टीकाकार

---

१. (क) अद्य खलु भगवतः कालप्रियानाथस्य यात्रायामार्यमिश्रान् विज्ञापयामि। (उत्तर० प्रस्तावना, निर्णय० पृष्ठ ५)।

(ख) भगवतः कालप्रियानाथस्य यात्रायामार्यमिश्राः समादिशन्ति। (महावीर० प्रस्तावना, निर्णय० पृष्ठ ६)।

(ग) संनिपतितश्च भगवतः कालप्रियनाथस्य यात्राप्रसङ्गेन नानादिगन्तवास्तव्यो जनः। (मालती० प्रस्तावना, निर्णय० पृष्ठ ५)।

त्रिपुरारि ने कालप्रियनाथ का अर्थ किया है—महाकाल नामक शिव।[१] वीरराघव का कथन है कि कालप्रिया पार्वती का नाम है, उसके नाथ अर्थात् शिव। वीरराघव ने यह भी स्पष्ट किया है कि यह शब्द कालप्रियानाथ और कालप्रियनाथ दोनों प्रकार से लिखा जाता है, इसका कारण यह है कि 'कालप्रियायाः नाथः' तत्पुरुष समास करने पर 'ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्' (६-३-६३) सूत्र से संज्ञावाचक होने के कारण टाप् के आ को विकल्प से ह्रस्व होता है, अतः दोनों रूप बनते हैं। दोनों का अर्थ शिव ही है। वीरराघव ने इतना और स्पष्ट किया है कि किसी क्षेत्र-विशेष में शिव की मूर्ति का यह नाम था, अतः यह संज्ञावाचक शब्द है।[२] जगद्धर का कथन है कि कालप्रियनाथ एक स्थान-विशेष के किसी देवता का नाम है और यात्राप्रसंगेन का अभिप्राय है कि उस समय नृत्य आदि होते थे।[३]

टीकाकारों की व्याख्या से स्पष्ट रूप से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :—

१. कालप्रियानाथ शिव का नाम है। यह शब्द कालप्रियानाथ और कालप्रियनाथ दोनों प्रकार से लिखा जाता है। दोनों का अर्थ एक ही है।

२. कालप्रियानाथ का मन्दिर किसी क्षेत्र-विशेष में था। यह उज्जयिनीं के महाकाल के मन्दिर से भिन्न है, क्योंकि किसी प्राचीन टीकाकार को उज्जयिनी का महाकाल-मन्दिर अभीष्ट नहीं है।

३. इस मन्दिर पर मेला लगता था और उसमें नृत्य गीत आदि का आयोजन होता था।

---

१. कालप्रियनाथस्य महाकालास्पदस्य शंभोः (मालती० प्रस्तावना, त्रिपुरारिकृत टीका)।

२. कालप्रियानाथस्य कालप्रियानामिकाम्बिकापतेः। 'कालप्रियनाथस्य' इति ह्रस्वान्तप्रियशब्दयुक्तः पाठः प्रचुरो दृश्यते। तत्राप्यर्थः पूर्ववत्। क्षेत्र-विशेषस्येश्वरमूर्तिविशेषसंज्ञाभूते कालप्रियानाथशब्दे 'ङ्यापोः संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्' इति वैकल्पिकह्रस्वप्रवृत्तेः। यात्रायाम् उत्सवे। (महावीर० प्रस्तावना निर्णय० पृष्ठ ६ तथा उत्तर० निर्णय० पृष्ठ ५, वीरराघवकृत टीका)।

३. कालप्रियनाथस्य तद्देशदेवभेदस्य। यात्राप्रसङ्गेनेति नृत्यकालसूचनम् (मालती० प्रस्तावना, जगद्धरकृत टीका, निर्णय० पृष्ठ ५)।

कालप्रियानाथ का मन्दिर कहाँ है, जहाँ पर इन नाटकों का अभिनय हुआ था? इस प्रश्न पर यदि गम्भीरतापूर्वक और निष्पक्षभाव से विचार किया जाए तो इसका स्पष्ट और असन्दिग्ध उत्तर हमें भवभूति के अपने शब्दों में ही मालती-माधव अंक ९ में प्राप्त होता है। विद्वानों ने अन्त:साक्ष्य की उपेक्षा करके बाह्य साक्ष्यों का आश्रय लिया है, अतः उत्तर सन्दिग्ध और अपूर्ण रहे हैं। काल-प्रियानाथ के निर्णय के लिए हमें इन बातों का उत्तर चाहिए :—

१. वहाँ शिव का अत्यन्त प्रसिद्ध मन्दिर होना चाहिए। २. वहाँ मेला लगना चाहिए। ३. वह तीर्थ स्थान होना चाहिए, जहाँ मेले में दूर-दूर के व्यक्ति आते हों। ४. वह स्थान भवभूति की जन्मभूमि के समीप होना चाहिए।

इन बातों का उत्तर हमें मालतीमाधव अंक ९ में प्राप्त होता है। संबद्ध अंश इस प्रकार है :—

सौदामिनी—...अयं च मधुमतीसिन्धुसंभेदपावनो भगवान् भवानीपति-रपौरुषेयप्रतिष्ठः सुवर्णबिन्दुरित्याख्यायते। (प्रणम्य)

जय देव भुवनभावन जय भगवन्नखिलवरद निगमनिधे।
जय रुचिरचन्द्रशेखर जय मदनान्तक जयादिगुरो ॥४॥

(मालतीमाधव अंक ९ श्लोक ४, निर्णय० पृष्ठ २०५)

भवभूति ने इससे पूर्व पद्मावती नगरी का वर्णन किया है। उसने वहाँ बहने वाली सिन्धु, पारा और लवणा नदियों का वर्णन किया है। वहाँ के वन, वृक्षों और पर्वत का उल्लेख किया है। तत्पश्चात् सौदामिनी के द्वारा उसने वर्णन किया है कि—यहीं पर मधुमती और सिन्धु नदियों के संगम को पवित्र करने वाला भगवान् शिव का मन्दिर है, जिसकी प्रतिष्ठा श्रुतियों में वर्णित है। इस संगम-स्थान को सुवर्णबिन्दु कहते हैं। (प्रणाम करके) हे देवस्वरूप, समस्त-संसार के उत्पादक, समस्त वरों को देने वाले, समस्त ज्ञान के भंडार, चन्द्रशेखर, मदन-नाशक और संसार के सर्वप्रथम ज्ञानदाता आपकी जय हो।

इस सम्बन्ध में टीकाकारों ने निम्न तथ्यों का स्पष्टीकरण किया है :—

१. यह शिवमन्दिर इस संगम-स्थान को पवित्र करने वाला है।[1]

---

१. संभेदः संगमस्तस्य पावनः पवित्रतोत्पादकः। (त्रिपुरारि, निर्णय० पृष्ठ २०५)।

२. यहाँ पर शिवमन्दिर होने के कारण यह बहुत बड़ा तीर्थस्थान है।[१]

३. अपौरुषेयप्रतिष्ठः––इस मन्दिर की स्थापना किसी पुरुष ने नहीं की है, अर्थात् यह मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है या अनादिकाल से है। श्रुतियों में इसके माहात्म्य का वर्णन है।[२]

४. शिव देवता हैं, सृष्टि के कर्ता हैं, भक्तों को भोग और मुक्ति आदि वर देते हैं, वेदों के प्रणेता हैं, चन्द्रशेखर हैं, मदन के संहारक हैं और सृष्टि के प्रथम ज्ञानदाता हैं।[३]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ :––

(१) भवभूति ने जिस कालप्रियानाथ का उल्लेख किया है, वह सिन्धु और मधुमती नदियों के संगम पर स्थित शिव का मन्दिर ही है। इसे सुवर्णबिन्दु तीर्थ कहते थे। (२) भवभूति को कालप्रियानाथ से उज्जयिनी का महाकाल-मन्दिर, कालपी का सूर्य या शिव-मन्दिर अथवा काशी का विश्वनाथ मन्दिर अभीष्ट नहीं है। (३) यह एक अत्यन्त प्राचीन शिव मन्दिर था, जिसका महत्त्व 'अपौरुषेयप्रतिष्ठः' शब्द से स्पष्ट होता है। इस तीर्थ का महत्त्व प्राचीन धर्म ग्रन्थों में वर्णित था। (४) भवभूति ने जिस भावातिरेक से इस शिव-मन्दिर का वर्णन किया है, उससे ज्ञात होता है कि यह उसके उपास्य देव का मन्दिर था। श्लोक के 'अखिलवरद' और 'निगमनिधे' पदों से प्रतीत होता है कि उसे यहीं अपनी साधना के फलस्वरूप 'भव-भूति' (शिव से ज्ञानादि ऐश्वर्य) प्राप्त हुई। अतएव पद्मावती नगरी के वर्णन के साथ शिव-स्तुति का प्रसंग न होने पर भी उसने कथानक में गतिरोध उत्पन्न करते हुए एक श्रद्धालु भक्त के समान

१. स्वयंभूसंनिधानस्य महातीर्थहेतुत्वात् (जगद्धर, निर्णय० पृ० १०२)।

२. अपौरुषेयप्रतिष्ठः पुरुषप्रयत्नाजन्यस्थापनः श्रुतिप्रतिपाद्यमाहात्म्यो वा। (त्रिपुरारि, पृ० २०५)। अपरिमिताऽज्ञाता पुरुषकृता प्रतिष्ठा स्थितिर्यस्य। एतेन स्वयंभूत्वमुक्तम्, (जगद्धर, पृ० १०२)।

३. भुवनभावन चतुर्दशभुवनोत्पादक, अखिलवरद समस्तानतकामप्रद, निगमनिधे समस्तवाङ्मयनिधे। आदिगुरुत्वं च सर्गादौ ब्रह्मणोऽप्युपदेशकत्वात्। (त्रिपुरारि, पृ० २०५), निगमो वेदस्तन्निधे तत्कर्तः (जगद्धर, पृ० १०३)।

शिवस्तुति की है। (५) संभवतः शिवरात्रि के अवसर पर यहाँ मुख्यरूप से मेला लगता था, जिसमें सुदूर स्थानों से शिवभक्त एकत्र होते थे। इसी अवसर पर नृत्य, गीत और नाटकों आदि का आयोजन होता था। (६) यह सुवर्णबिन्दु तीर्थ भवभूति की जन्मभूमि पद्मावती के अत्यन्त निकट था।

उत्तररामचरित के टीकाकार रामचन्द्रबुधेन्द्र भी यह स्वीकार करते हैं कि कालप्रियानाथ का मन्दिर पद्मपुर में ही था और वहीं पर इन नाटकों का सर्वप्रथम अभिनय हुआ था[1]। डा० काणे का भी कथन है कि भवभूति के समय में पद्मपुर में कालप्रियानाथ नामक शिव-मन्दिर का होना बहुत संभव है।[2]

डा० काणे का अधिक झुकाव उज्जयिनी के महाकाल-मन्दिर को कालप्रियानाथ का मन्दिर मानने का है, क्योंकि वहाँ मेला लगता है और देश के विभिन्न भागों से वहाँ यात्री आते हैं। डा० काणे ने टीकाकार त्रिपुरारि के महाकाल शब्द को लेकर उज्जयिनी के महाकाल का निर्देश माना है।[3] इस विषय में मेरा कथन है कि उज्जयिनी के महाकाल की प्राचीनता, प्रसिद्धि और लोकप्रियता के विषय में किसी को मतभेद नहीं है। यहाँ पर प्रश्न उस कालप्रियानाथ का है, जहाँ पर भवभूति के नाटक अभिनीत हुए। यदि भवभूति को उज्जयिनी का महाकाल-मन्दिर अभिप्रेत होता तो वह निःसंकोच अपने नाटकों में कहीं न कहीं उज्जयिनी की मनोरम चर्चा करता। वह मालतीमाधव के नवम अंक में शिवस्तुति के समय उज्जयिनी के महाकाल का अवश्य स्मरण करता।

डा० मिराशी ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कालप्रियानाथ का मन्दिर कालपी में था। यह शिव-मन्दिर न होकर सूर्य-मन्दिर था। उसके सामने ही नाटकों का अभिनय हुआ था।[4]

---

१. कालप्रियनाथे नाम पद्मनगरे प्रतिष्ठितो देवमूर्तिविशेषः। तस्य यात्रायामुत्सवे नाटकमिदं भगवतः कालप्रियनाथस्य पुरतः प्रथममभिनीतमासीत्। (उत्तर० प्रस्तावना, रामचन्द्रकृत टीका)।

२. काणे, उत्तररामचरित—भूमिका, पृष्ठ ६।

३. काणे, उत्तररामचरित—भूमिका, पृष्ठ ११–१२।

४. मिराशी, Studies in Indology (भाग १ पृष्ठ ३५–४२)

डा० काणे ने उत्तररामचरित की भूमिका में डा० मिराशी के मन्तव्यों का बहुत विस्तार के साथ खंडन किया है और अपना निष्कर्ष इस प्रकार दिया है[1]—

(१) कालप्रियानाथ का मन्दिर पद्मपुर में हो सकता है या उज्जयिनी में, कालपी में सर्वथा नहीं। (२) कालपी में सूर्यमन्दिर के सामने ये नाटक खेले गए थे, यह मत सर्वथा अग्राह्य है। (३) कालपी का प्राचीन नाम कालप्रिय है, परन्तु कालप्रियानाथ और कालप्रिय को एक मानना बहुत बड़ी भूल है। कालप्रिय नगर है और कालप्रियानाथ एक मन्दिर है। कालप्रिय का प्रयोग मन्दिर के अर्थ में सर्वथा नहीं हुआ है। ४. सूर्य-मन्दिरों के नाम के बाद 'नाथ' शब्द कहीं नहीं लगता है। ५. इस बात का कहीं नाममात्र भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष निर्देश नहीं है कि भवभूति कभी भी अधिक समय कालपी में रहा हो। वस्तुतः कालपी से उसका सम्बन्ध रहा ही नहीं है। ६. सूर्यमन्दिरों का इतिहास ६०० ई० से प्रारम्भ होता है। ह्वेनत्सांग और अलबेरुनी आदि के यात्रा-विवरणों से ज्ञात होता है कि मुल्तान में एक सूर्यमन्दिर था। कालपी के सूर्य-मन्दिर का वे उल्लेख तक नहीं करते।

राजशेखर ने काव्यमीमांसा में कालपी का प्राचीन नाम कालप्रिय दिया है और कहा है कि जो स्थान गाधिपुर (कन्नौज) के दक्षिण में है, वही कालप्रिय (कालपी) के उत्तर में है।

यो गाधिपुरस्य दक्षिणः स कालप्रियस्योत्तर इति। (काव्य० अध्याय १७)

कालपी कन्नौज से ७५ मील दक्षिण में है। डा० डी० सी० सरकार ने काम्बे प्लेट में प्राप्त निम्नलिखित श्लोक के आधार पर कालप्रिय और कालपी को एक माना है और कालप्रियानाथ को भी कालपी माना है।[2]

यन्माद्यद्द्विपदन्तघातविषमं कालप्रियप्राङ्गणं
तीर्णा यत्तुरगैरगाधयमुना सिन्धुप्रतिस्पर्धिनी।

इससे केवल इतना ही सिद्ध होता है कि कालपी यमुना के किनारे स्थित

---

१. काणे, उत्तररामचरित—भूमिका, पृष्ठ ९ से २२।

२. सरकार, Studies in the Geography of Ancient and Mediaeval India, (पृष्ठ २४१–२४५)

है, वहाँ बड़ा मैदान है और इसका प्राचीन नाम कालप्रिय था। परन्तु कालप्रिय और कालप्रियानाथ (या कालप्रियनाथ) को एक मानना बड़ी भूल होगी।

अतः यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि कालप्रियानाथ से भवभूति का अभिप्राय सुवर्णबिन्दु तीर्थ पर विद्यमान शिव का मन्दिर है। उस तीर्थ पर होने वाले मेले के समय शिवमन्दिर के समक्ष भवभूति के नाटकों का सर्वप्रथम अभिनय हुआ था।

(छ) भवभूति और उसकी कृतियाँ

अब तक जो साहित्य उपलब्ध हुआ है, उसके आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि भवभूति के तीन नाटक हैं :—

१. मालतीमाधव, २. महावीरचरित और ३. उत्तररामचरित।

भवभूति और उम्बेक को एक व्यक्ति मानने पर उसके अन्य दो दार्शनिक ग्रन्थ प्राप्त होते हैं :—१. कुमारिल भट्ट के श्लोकवार्तिक की तात्पर्यटीका, २. मण्डनमिश्र के भावनाविवेक की टीका।

निम्नलिखित सुभाषित-संग्रहों में भवभूति के उद्धरण प्राप्त होते हैं :—

१. शार्ङ्गधरपद्धति, २. श्रीधरदासकृत सदुक्तिकर्णामृत, ३. जल्हणकृत सूक्तिमुक्तावली, ४. गदाधरकृत रसिकजीवन, ५. सुभाषितावली, ६. कवीन्द्रवचनसमुच्चय।

प्रायः सभी अलंकार-ग्रन्थों में भवभूति के उद्धरण प्राप्त होते हैं। उनमें मुख्य ये हैं :—

१. काव्यप्रकाश, २. दशरूपक, ३. साहित्यदर्पण, ४. सरस्वतीकण्ठाभरण, ५. रसगङ्गाधर, ६. काव्यालंकारवृत्ति, ७. अलंकारसर्वस्व, ८. काव्यानुशासन आदि।

पूर्वोक्त सुभाषित-ग्रन्थों में भवभूति के नाम से उद्धृत श्लोकों में एक दर्जन से अधिक श्लोक ऐसे हैं, जो उसके वर्तमान तीन नाटकों में उपलब्ध नहीं होते हैं। इससे प्रतीत होता है कि भवभूति ने इन तीन नाटकों के अतिरिक्त भी कुछ नाटक, काव्यग्रन्थ और स्फुट पद्य लिखे थे, जो अपरिपक्व अवस्था की कृति होने के कारण कालगति से लुप्त हो गए। इनके विषय में कोई जानकारी प्राप्य नहीं है।

बल्लालसेन ने भोजप्रबन्ध में सभी प्रमुख कवियों को समकालीन बताकर कालिदास और भवभूति का संलाप कराया है। ऐतिहासिक दृष्टि से भोजप्रबन्ध सर्वथा अप्रामाणिक है। कालिदास ने भवभूति से पूरा उत्तररामचरित सुनकर किमपि किमपि० (उत्तर० १–२७) श्लोक में भवभूति के 'रात्रिरेवं व्यरंसीत्' पाठ के स्थान पर अनुस्वाररहित 'रात्रिरेव व्यरंसीत्' पाठ सुझाया। इस तथ्य की ऐतिहासिकता अग्राह्य है।

भवभूति के पूर्वोक्त तीनों नाटकों का रचनाक्रम क्या है, अर्थात् कौन-सा नाटक सर्वप्रथम लिखा गया है और कौन-सा बाद में। इस विषय में भी पर्याप्त मतभेद है। अधिकांश विद्वान् निम्नलिखित क्रम मानते हैं :—महावीरचरित, मालतीमाधव, उत्तररामचरित।

मेरे विचार से निम्नलिखित क्रम मानना अधिक उपयुक्त एवं न्यायसंगत है :—

१. मालतीमाधव, २. महावीरचरित, ३. उत्तररामचरित।

उत्तररामचरित में भवभूति की नाट्यकला और काव्यकला दोनों का पूर्ण परिपाक है, अतः उत्तररामचरित को अन्तिम रचना मानने में किसी को मतभेद नहीं है।

जो महावीरचरित को मालतीमाधव से पूर्ववर्ती रचना मानते हैं, वे मुख्यतया निम्नलिखित तर्क देते हैं :—

१. महावीरचरित में कवि ने अपना वंश-परिचय सबसे विस्तृत दिया है। २. प्रस्तावना में नट कहता है—'अपूर्वत्वात् प्रबन्धस्य' (निर्णय० पृ० १०) (नवीन–रचना है)। ३. इसमें 'ये नाम केचिदिह० (मालती० १–८) श्लोक नहीं है। ४. विभिन्न कारणों से महावीरचरित की कटु आलोचना हुई। जैसे—रामायण की कथा में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन, श्लोकों में लंबे समासों का प्रयोग (महा० १–४६, ५–१९, २१, ४५, ५४), शैली का घटिया होना आदि। ५. बाद में मालतीमाधव लिखा गया और उसमें उसने 'ये नाम०' (१–८) के द्वारा विद्वानों को चुनौती दी है।[1]

---

१. काणे, उत्तररामचरित—भूमिका, पृष्ठ १०–११

महावीरचरित को सर्वप्रथम रचना मानने के लिए जो तर्क दिए गए हैं, वे त्रुटिपूर्ण हैं :—

१. मालतीमाधव में वंश-परिचय महावीरचरित से अधिक दिया गया है। मालतीमाधव में केवल एक पंक्ति विवरण कम है—'वाजपेययाजिनो महाकवेः पञ्चमः' और 'जतुकर्णीपुत्रः।' इसके स्थान पर एक पूरा श्लोक 'ते श्रोत्रिया-स्तत्त्वविनिश्चयाय०' (मा० १–७) विवरण अधिक है, जिससे भवभूति के पूर्वजों के विषय में कई तथ्यों पर विस्तृत प्रकाश पड़ता है। मालतीमाधव में विवरण अधिक मिलता है।

२. 'अपूर्वत्वात् प्रबन्धस्य' का अर्थ है कि राम के विषय में ऐसी रचना अभी तक नहीं हुई है, यह राम-विषयक अनोखी रचना है। यही बात नट के पूरे वाक्य से सिद्ध होती है—'अपूर्वत्वात् प्रबन्धस्य कथाप्रदेशं समारम्भे श्रोतुमिच्छन्ति।' (पृ० १०)। इसके विपरीत मालतीमाधव में स्पष्ट रूप से निर्देश है कि यह उसकी सर्वप्रथम रचना है।

सूत्रधारः—···अद्य त्वयाऽपूर्ववस्तुप्रयोगेण वयं विनोदयितव्या इति। (मालती० प्रस्तावना, पृ० ५)

सर्वप्रथम वस्तु के अभिनय के द्वारा जनता का मनोरंजन करना है।

३. मालतीमाधव में 'ये नाम०' (१–८) श्लोक है।[1] इसका अभिप्राय है कि जो मेरी कटु आलोचना करते हैं, वे वस्तुतः कुछ नहीं जानते हैं और न उनके लिए मेरी यह रचना है। समय अनन्त है और पृथिवी विशाल है। मेरे जैसा कोई विद्वान् पैदा होगा और वह इनका महत्त्व समझेगा। इससे ज्ञात होता है कि भवभूति ने इससे पहले कुछ अप्रौढ रचनाएँ की थीं, उसके आधार पर विद्वानों ने उसकी कटु आलोचना की थी। उनके लिए पाण्डित्यपूर्ण रचना उसने प्रस्तुत की है। सुभाषित-ग्रन्थों आदि से स्पष्ट है कि भवभूति की अन्य रचनाएँ थीं। इस श्लोक से महावीरचरित की ओर संकेत नहीं है।

---

१. ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां,
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यते मम तु कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ (मा० १–८)

४. महावीरचरित में कथानक में परिवर्तन आदि भवभूति की प्रौढ़ता के सूचक है। महावीरचरित में बहुत लंबे समासों वाले श्लोक मालतीमाधव की अपेक्षा कम है। महावीरचरित और उत्तररामचरित की शैली, भाव, भाषा, शब्दावली और उक्तियों में अत्यधिक साम्य और सामीप्य है। अतः महावीर-चरित को मालतीमाधव के बाद की रचना मानना चाहिए।

भवभूति का प्रथम नाटक मालतीमाधव है

मेरे विचार से भवभूति का प्रथम नाटक मालतीमाधव है, द्वितीय महावीर-चरित और तृतीय तथा अन्तिम उत्तररामचरित। ऐसा मानने के निम्नलिखित कारण हैं :—

१. भवभूति ने मालतीमाधव के मंगलाचरण में ४ श्लोक दिए हैं, जिनमें ३ शिवस्तुति के हैं और १ गणेशस्तुति का। सूत्रधार ने सूर्यस्तुति भी की है। महावीरचरित में ब्रह्म-स्तुति है (चैतन्यज्योतिषे नमः) और उत्तररामचरित में भी ब्रह्म (वाग्ब्रह्म, शब्दब्रह्म) की स्तुति है (वन्देमहि च तां वाणीम्० १–१, शब्दब्रह्मविदः० ७–२१)। इससे स्पष्ट है कि वह पहले शिवभक्त था, साथ ही गणेश, सूर्य आदि का भी भक्त था। बाद में मीमांसा और वेदान्त आदि के गंभीर अध्ययन से वेदान्ती और ब्रह्मोपासक हो गया था। मालती० को मध्य में रखना उसके मानसिक क्रम-विकास में बाधक है। वेदान्ती, शैव, वेदान्ती, यह क्रम मानने में क्रमभंग दोष है।

२. मालती० शृंगारप्रधान नाटक है, महा० और उत्तर० दोनों रामकथा से संबद्ध हैं। रामकथा से संबद्ध नाटकों के बीच में एक प्रेमाख्यान-नाटक लिखना भवभूति के लिए शोभाजनक नहीं है। महा० रामकथा का पूर्व भाग है तो उत्तर० उत्तरभाग। एक कथा से संबद्ध उत्तरभाग को न लिखकर बीच में दूसरा नाटक लिखने लगना, यह कोई भी लेखक पसन्द नहीं करेगा। महा० और उत्तर० संबद्ध नाटक हैं, अतः इनके लेखन का क्रम भी यही होगा।

३. रससिद्धान्त की दृष्टि से मालती० में शृंगाररस प्रधान है, महा० में वीररस और उत्तर० में करुणरस। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य में युवावस्था में शृंगार आता है, प्रौढावस्था में वीररस और वृद्धावस्था में करुणरस प्रधान होता है। यही भवभूति के बौद्धिक विकास का क्रम मानना चाहिए।

४. भवभूति स्वयं स्वीकार करता है कि मालती० उसका प्रथम नाटक है। इसके लिए मालती० की प्रस्तावना (श्लोक ५ के बाद का गद्य) विशेष सावधानी से द्रष्टव्य है। यह उसके प्रथम नाटक का अभिनय है, अतः उसने 'अद्य त्वया अपूर्ववस्तुप्रयोगेण वयं विनोदयितव्या इति' कहा है अर्थात् यह नाटक अपूर्व वस्तु (प्रथम नाटक) है। कालप्रियानाथ की यात्रा के प्रसंग से दूर-दूर से यात्री आए हैं। विद्वत्परिषद् के अनुरोध पर भवभूति ने यह नाटक प्रस्तुत किया है। भवभूति के प्रथम नाटक का यह अभिनय है, अतः अभिनेता भी कुछ हिचक रहे हैं (तत् किमित्युदासते भरताः, निर्णय० पृ० ५)। इस नाटक के अभिनय के बाद भवभूति की प्रतिष्ठा बढ़ गई थी, अतः अन्य नाटकों में इतना विस्तृत वर्णन नहीं दिया गया है।

५. वंश-वर्णन सबसे विस्तृत मालती० में है, इससे कम महा० में और सब से कम उत्तर० में। अन्तिम दो नाटकों में ही माता का नाम मिलता है।

६. भवभूति की फुटकर रचनाओं के आधार पर कुछ विद्वान् उसकी कटु आलोचना करते थे, उनको चुनौती देने के लिए उसने मालती० में 'ये नाम०' (१–८) श्लोक दिया है और शृंगाररस-प्रधान यह नाटक अभिनय के लिए प्रस्तुत किया है। इसका उद्देश्य है—विद्वन्मंडली पर अपने पांडित्य और वैदग्ध्य की धाक जमाना। (तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्ध्ययोः, मा० १–१०)। भवभूति का यह उद्देश्य इस नाटक से पूरा हो गया। इससे विद्वन्मंडली पर उसके पांडित्य की धाक जम गई और अगले नाटकों में उसे चुनौती देने आदि का प्रसंग ही नहीं आया। अगले दोनों नाटकों में वह वश्यवाक् और परिणतप्रज्ञ हो गया है। उसे भाव, भाषा और वाणी पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया है। (वश्यवाचःकवेर्वाक्यम्०, महा० १–४, यं ब्रह्माणमियं देवी वाग् वश्येवानुवर्तते, उ० १–२, परिणतप्रज्ञस्य० उ० ७–२१)। महा० में विद्वानों को चुनौती के स्थान पर उन्हें गुणज्ञ कहा है। (लब्धश्च वाक्यनिष्यन्दनिष्पेषनिकषो जनः, महा० १–४)

७. मालती० में अपनी योग्यता और विद्वत्ता का परिचय देता है (यद् वेदाध्ययनं तथोपनिषदां०, १–१०), अन्य नाटकों में नहीं।

८. भाव, भाषा और रचनाशैली के अन्त:साक्ष्य से भी यही बात सिद्ध होती है। बाण की प्रथम रचना हर्षचरित में पाण्डित्यप्रदर्शन है, परन्तु बाद की रचना कादम्बरी में भाव और भाषा में निखार है, काठिन्य के स्थान पर सौकुमार्य है, समास-प्राधान्य के स्थान पर माधुर्य और प्रसाद गुण हैं। यही स्थिति भवभूति की है। मालती० में अत्यन्त क्लिष्ट, श्रमसाध्य और समासप्रधान श्लोकों की संख्या २१ है, महा० में १९ और उत्तर० में ११। भवभूति ने मालती० में चामुण्डा (दुर्गा का बीभत्सरूप) की स्तुति में (प्रचलितकरिकृत्ति०, ५–२३) एक इतना लंबा समास-प्रधान दण्डकवृत्त दिया है, जिसके एक चरण में ५४ वर्ण हैं और जो अकेला श्लोक साधारण ४ श्लोकों के बराबर हैं। इसी प्रकार समास-प्रधान गद्य वाले वाक्यों की संख्या १४ है, जिनमें ६ पंक्ति से लेकर ३६ पंक्ति वाले गद्य हैं। इनमें भी अधिकांश प्राकृत वाले गद्य हैं। ऐसे गद्य-सन्दर्भों की संख्या महा० और उत्तर० में नहीं के बराबर है। इनमें ३ या ४ पंक्ति वाले दो-तीन समास-प्रधान गद्य हैं। इनका विवरण इस प्रकार है :—

(क) क्लिष्ट समस्तपद वाले श्लोक :—

१. मालती०—१–१, ३। ५–१३, १४, १९, २२, २३, ३४। ६–५, १९। ८–९, १०। ९–५, १३, १४, १७, १८, ३१, ४३। १०–१०, १९। (२१)

२. महावीर०—१–३४, ३५, ४६, ५४। २–१६, १७, ३३। ३–३२, ४८। ५–२, १९, २१, ४५, ४८, ५४। ६–१८, १९। ७–७, ८। (१९)

३. उत्तर०—२–९, १६, २९, ३०। ४–२९। ५–५, ६, ९, १४। ६–३, ३७। (११)

(ख) समास-प्रधान वाक्य वाले गद्य-सन्दर्भ :—

मालती०—(निर्णय० सं०) पृष्ठ—२८, ५२, ७५, ८३–८७, ८९–९१, १४२, १४३, १७१, १७३, १७४, १७६–१७९, १९७–१९८, २०५, २१८। (१४)

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि भवभूति ने अनुभव किया कि समास-प्रधान गद्य श्रोताओं को अरुचिकर हैं, अतः उसने अगले दोनों नाटकों में ऐसे

गद्य-सन्दर्भों को समाप्त कर दिया। ३६ पंक्ति के समासप्रधान प्राकृतभाषा के गद्य को धैर्य से सुनने वाले श्रोताओं का नितान्त अभाव है। पद्यों में भी उसने क्रमशः न्यूनता करके अपने स्वभाव में सुधार का परिचय दिया है। इनमें कुछ श्लोक ऐसे भी हैं जो तीनों नाटकों में प्राप्य हैं। भवभूति ने ये श्लोक कठिन परिश्रम से बनाए थे, अतः वह प्रसंगानुसार इन श्लोकों की पुनरावृत्ति करने में अपने लोभ का संवरण न कर सका। महावीरचरित भाव, भाषा, शैली, रचना एवं पद-विन्यास आदि सभी दृष्टि से उत्तर० का निकटपूर्ववर्ती ज्ञात होता है।

(५) भवभूति का समय

प्रसन्नता की बात है कि भवभूति के काल के विषय में बहुत कुछ तथ्य ज्ञात हैं, जिनके आधार पर उसकी पूर्वसीमा और अपरसीमा सरलता से निर्धारित की जा सकती है। १०,२० वर्षों का अन्तर हो सकता है, परन्तु वह किस शती से किस शती के किस चरण तक रहा, यह निश्चयपूर्वक बताया जा सकता है।

पूर्वसीमा और अपरसीमा––भवभूति भास और कालिदास का ऋणी है, यह पहले बताया जा चुका है। बाण ने हर्षचरित के प्रारम्भ में अपने पूर्ववर्ती प्रसिद्ध कवियों, नाटककारों और लेखकों का उल्लेख किया है। उसने भास, कालिदास, सुबन्धु आदि का उल्लेख किया है, परन्तु भवभूति का नाम नहीं दिया है। भवभूति यदि उससे पूर्ववर्ती होता तो वह इतने बड़े नाटककार का नाम नहीं छोड़ सकता था। इससे ज्ञात होता है कि भवभूति बाण से परवर्ती है। बाण हर्ष का आश्रित कवि था। हर्ष का राज्याभिषेक अक्टूबर ६०६ ई० में हुआ और उसकी मृत्यु ६४८ ई० में हुई। अतः बाण का समय भी सातवीं शती का पूर्वार्ध माना जाता है। इस प्रकार भवभूति का समय ६५० ई० के बाद ही माना जाएगा।

वामन ने अपने काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में भवभूति के दो श्लोकों को उद्धृत किया है :—

१. दोर्लीलाञ्चित० (महा० १–५४) को काव्यालंकार० (१–२–१२) में गौडी रीति का उदाहरण दिया है। २. इयं गेहे लक्ष्मी० (उत्तर० १–३८) को (काव्या० ४–३–६) में रूपक का उदाहरण दिया है। कल्हण के अनुसार

वामन जयापीड का सभापण्डित था। (बभूवुः कवयस्तस्य वामनाद्याश्च मन्त्रिणः)। जयापीड का समय ७७९–८१३ ई० है। अतः वामन का समय ८वीं शदी ई० का उत्तरार्ध और नवम शती ई० का प्रथम चरण माना जाता है। वामन ने भवभूति से उद्धरण दिए हैं, अतः वह वामन से पूर्ववर्ती है। इस प्रकार भवभूति का समय ७७० ई० से पूर्व होना चाहिए।

इस विवरण के अनुसार भवभूति का समय ६५० से ७७० ई० के बीच में निर्धारित होना चाहिए।

वामन के अतिरिक्त अन्य परवर्ती लेखकों ने भी भवभूति की रचनाओं से उद्धरण दिए हैं। यथा—राजशेखर (९०० ई० के लगभग) ने काव्यमीमांसा और बालरामायण में, धनपाल (१०वीं शती उत्तरार्ध) ने तिलकमंजरी में, सोमदेव (९५९ ई०) ने, धनंजय (९९५ ई० के लगभग) ने दशरूपक में, महिम-भट्ट (११वीं शती प्रारम्भ) ने व्यक्तिविवेक में और मम्मट (११०० ई० के लगभग) ने काव्यप्रकाश में अनेक उद्धरण दिए हैं। क्षेमेन्द्रकृत औचित्यविचार-चर्चा और सुवृत्ततिलक, सुभाषितग्रन्थ शार्ङ्गधरपद्धति, कवीन्द्रवचनसमुच्चय और सदुक्तिकर्णामृत तथा सरस्वतीकण्ठाभरण आदि में भी अनेक उद्धरण प्राप्त होते हैं।

अन्य तथ्य—कल्हण ने राजतरंगिणी (लगभग ११५८ ई०) में कन्नौज के राजा यशोवर्मा का उल्लेख किया है और उसे भवभूति तथा वाक्पतिराज आदि कवियों का आश्रयदाता बताया है।

कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः ।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिबन्दिताम् ॥
(राज० ४–१४४)

वाक्पतिराज यशोवर्मा का प्रमुख आश्रित कवि था। उसने यशोवर्मा की प्रशस्ति के रूप में गउडवहो (गौडवधः) नामक एक प्राकृत-काव्य लिखा था। इसमें दो तथ्यों का उल्लेख है—१. एक पद्य में भवभूति के काव्यगौरव की प्रशंसा की गई है।

भवभूइजलहिनिग्गय-कव्वामय-रसकणा इव फुरन्ति।
जस्स विसेसा अज्जवि वियडेसु कहाणिवेसेसु।।
(गउडवहो, पद्य सं० ७९९)

इसका संस्कृत-रूपान्तर है :—

भवभूतिजलधिनिर्गतकाव्यामृतरसकणा इव स्फुरन्ति।
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथानिवेशेषु।।

भवभूति के विकट कथा-प्रबन्धों में कुछ विशेष बातें आज भी इसी प्रकार चमक रही हैं, जैसे भवभूतिरूपी समुद्र से निकले हुए काव्यरूपी अमृतरस के कण हों।

इससे प्रतीत होता है कि वाक्पतिराज भवभूति से बहुत अधिक प्रभावित था और उस समय तक भवभूति की बहुत ख्याति हो चुकी थी। 'अद्यापि' से प्रतीत होता है कि भवभूति की रचनाएँ उससे पर्याप्त समय पहले प्रसिद्ध हो चुकी थीं और उस समय तक लोग विशेष आदर से उसके ग्रन्थों को पढ़ते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि यशोवर्मा के राज्यकाल के प्रारम्भिक समय में भवभूति राजकवि था और बाद में वाक्पतिराज राजकवि रहा। दोनों यशोवर्मा के आश्रित कवि थे, इसमें सन्देह नहीं है।

डा० काणे ने इस विषय में सन्देह प्रकट किया है कि भवभूति यशोवर्मा का आश्रित कवि था।[1] उनका कथन है कि वाक्पतिराज स्पष्ट शब्दों में यह नहीं लिखता है कि भवभूति यशोवर्मा का आश्रित कवि है। कल्हण ने भवभूति-जलधि० श्लोक को पढ़ कर संभवतः यह अनुमान लगाया है कि भवभूति भी यशोवर्मा का आश्रित कवि था, अतः उसने राजतरंगिणी में दोनों का नाम लिख दिया। मैं डा० काणे के इस विचार से सहमत नहीं हूँ। केवल जनश्रुति या अनुमान के आधार पर कल्हण या अन्य कोई प्रामाणिक लेखक इस प्रकार की बात नहीं लिख सकता है। भवभूति को 'श्रीभवभूति' इस आदर के साथ संबोधित करना कल्हण की अज्ञता नहीं अपितु विशेषज्ञता को सूचित करता है।

वाक्पतिराज ने दूसरा तथ्य गउडवहो[2] में लिखा है कि जिस समय काश्मीर

१. काणे, उत्तररामचरित—भूमिका पृष्ठ २९।
२. गउडवहो (पद्य ८२७-८३१) पंडित-संस्करण।

के ललितादित्य ने कन्नौज के राजा यशोवर्मा पर आक्रमण किया था, उस समय एक खग्रास सूर्यग्रहण पड़ा था। प्रो० याकोबी ने ज्योतिषीय गणित के आधार पर सिद्ध किया है कि ऐसा सूर्यग्रहण १४ अगस्त ७३३ ई० को कन्नौज में दिखाई पड़ा था।

इससे सिद्ध होता है कि वाक्पतिराज ७३३ ई० में यशोवर्मा का आश्रित कवि था और उससे पूर्व भवभूति की कीर्ति व्याप्त हो चुकी थी।

राजतरंगिणी के अनुसार ललितादित्य ने यशोवर्मा को पराजित किया और उसे वशवर्ती बनाकर गद्दी पर बना रहने दिया। कनिंघम ने ललितादित्य के राज्याभिषेक का समय ६९३ ई० माना है। श्री शंकर पांडुरंग पंडित ने गउड-वहो की भूमिका में ललितादित्य का राज्याभिषेक ६९५ से ७३२ ई० के मध्य माना है। अन्य विद्वानों ने चीनी साक्ष्यों के आधार पर ललितादित्य का राज्य-काल ७२४ से ७६० ई० या ७३१ से ७६७ ई० माना है। डा० भण्डारकर ने जैन साक्ष्यों के आधार पर यह मत व्यक्त किया है कि यशोवर्मा की मृत्यु ७५३ ई० के लगभग हुई थी।[1]

राजशेखर (८८०–९२० ई०) ने बालरामायण में एक श्लोक दिया है और उसमें कहा है कि पहले वाल्मीकि कवि हुए, तत्पश्चात् वही भर्तृमेण्ठ हुए, वही भवभूति हुए और अब वही राजशेखर है। इस प्रकार अपने आपको भवभूति का अवतार बताता है।

बभूव वल्मीकभवः पुरा कविस्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया, स वर्तते संप्रति राजशेखरः।।
(बालरामायण १–१६)

राजशेखर कन्नौज के राजा महेन्द्रपाल का गुरु था। महेन्द्रपाल के शिला-लेख ९०३ ई० और ९०७ ई० के हैं। राजशेखर का अपने आपको भवभूति का अवतार बताना विशेष महत्त्वपूर्ण है। इससे स्पष्ट होता है कि वह अपने ही तुल्य भवभूति को भी कन्नौज के राजा (यशोवर्मा) का गुरु मानता है तथा

१. काणे, उत्तररामचरित—भूमिका, पृष्ठ २९।

कन्नौज में भवभूति के रहने आदि का उसे पूर्ण ज्ञान था। दोनों ही कान्य-कुब्जेश्वर के राजगुरु थे।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखने पर यह सिद्ध होता है कि भवभूति ६५० ई० के बाद में हुआ है। ७३३ ई० में वह यशोवर्मा का आश्रित कवि था। उसी समय वाक्पतिराज भी यशोवर्मा के आश्रय में था। ७३३ में यशोवर्मा की पराजय के बाद वह राजाश्रय छोड़कर संभवतः संन्यास लेकर दक्षिण में चला गया और वहाँ उसने उम्बेक नाम रखकर मीमांसा-श्लोकवार्तिक आदि की टीकाएँ लिखीं। वाक्पतिराज संभवतः ७३० ई० के लगभग से ७५० ई० या ७५३ ई० तक यशोवर्मा का आश्रित कवि रहा। गउडवहो का रचनाकाल ७४० ई० के लगभग माना जाता है। यदि ७३३ ई० में भवभूति की आयु लगभग ५० वर्ष मानी जाए तो उसका जन्म-समय ६८३ ई० या ६८० ई० मानना उचित है और यदि उसकी आयु ७० या ८० वर्ष मानी जाए तो उसका स्वर्गवास ७५० या ७६० ई० के लगभग माना जाएगा। इस प्रकार वह बाण से परवर्ती और वामन से पूर्ववर्ती सिद्ध होता है। मेरे विचार से भवभूति का समय लगभग ६८० ई० से ७५० ई० तक मानना उचित है।

इसमें अन्य संबद्ध घटनाओं का भी समावेश हो जाता है। वह प्रारम्भिक जीवन में अधिकतर अपने जन्मस्थान पद्मावती में रहा। वहीं तीनों नाटकों की रचना हुई और सर्वप्रथम वहीं कालप्रियानाथ के मन्दिर पर इनका अभिनय हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि वह बहुत थोड़े समय यशोवर्मा का आश्रित कवि रहा, संभवतः ८ या १० वर्ष। बाल्यकाल में उसने दक्षिणभारत की पर्याप्त यात्रा की थी, अतः तीनों नाटकों में दक्षिण भारत के सुन्दर दृश्यों का वर्णन है। बाद में यशोवर्मा के आश्रित रहा, अतः इन नाटकों में यशोवर्मा और कन्नौज का उल्लेख नहीं है।

(६) उत्तररामचरित की संक्षिप्त कथा

प्रथम अंक

(स्थान-अयोध्या) नान्दी-पाठ के पश्चात् सूत्रधार नाटककार भवभूति का परिचय देता है और सूचित करता है कि राज्याभिषेक के समय आए हुए

अतिथियों को महाराज राम ने विदा कर दिया है। महाराज दशरथ की पुत्री शान्ता के पति ऋष्यशृंग ने बारह वर्ष चलने वाला यज्ञ प्रारम्भ किया है। उस यज्ञ में संमिलित होने के लिए महर्षि वसिष्ठ के नेतृत्व में राम की माताए और अरुन्धती गई हैं। सूत्रधार सीताविषयक लोकापवाद का संकेत करता है और नट कहता है कि सीता की अग्नि-शुद्धि पर लोगों को अविश्वास है। सूत्रधार आशंका प्रकट करता है कि यदि यह बात राम तक पहुँचेगी तो अनिष्ट की संभावना है। नट विश्वास प्रकट करता है कि देवगण सर्वथा कल्याण करेंगे। महाराज जनक की विदाई से सीता दुःखित हैं। उन्हें सान्त्वना देने के लिए राम अन्तःपुर में जाते हैं। (प्रस्तावना)

तदनन्तर सीता को आश्वासन देते हुए राम का रंगमंच पर प्रवेश। ऋष्य-शृंग के आश्रम से महर्षि वसिष्ठ आदि का सन्देश लेकर आए हुए अष्टावक्र का प्रवेश। अष्टावक्र ने सन्देश सुनाया कि वसिष्ठ ने सीता को आशीर्वाद दिया है कि वह वीरप्रसवा (वीर सन्तान को जन्म देने वाली) हो। अरुन्धती और शान्ता आदि ने राम से आग्रह किया है कि वह गर्भिणी सीता के दोहदों (गर्भिणी की इच्छाएँ) को पूर्ण करें। ऋष्यशृंग ने कहा है कि वह पुत्रवती सीता का दर्शन करेंगे। वसिष्ठ ने राम को आदेश दिया है कि वह प्रजा को सर्वथा प्रसन्न रखें। इसके उत्तर में राम का कथन है कि मैं प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए सीता को भी छोड़ सकता हूँ। राम का यह कथन सीता के भावी परित्याग की सूचना देता है। अष्टावक्र का प्रस्थान। लक्ष्मण का प्रवेश। वे खिन्न सीता के मनोविनो-दार्थ राम और सीता को चित्रवीथी में राम-चरित से संबद्ध चित्रों को देखने के लिए ले जाते हैं। इस चित्रवीथी में सीता की अग्निशुद्धि तक के चित्र हैं। राम सीता की पूर्ण पवित्रता की घोषणा करते हैं। जृम्भक अस्त्रों के चित्र को देख-कर राम सीता को वर देते हैं कि ये जृम्भक अस्त्र तुम्हारी सन्तान को प्राप्त होंगे। तत्पश्चात् राम का अपने विवाह, मन्थरा-वृत्तान्त, वनवासार्थ जटा-धारण, भागी-रथी नदी, यमुनातटवर्ती वट-वृक्ष, विराध राक्षस की घटना, जनस्थान-मध्यवर्ती प्रस्रवण पर्वत, गोदावरी नदी, शूर्पणखा-विवाद, सीता को रावण के द्वारा हरण की स्मृति, राम के द्वारा सीता को आश्वासन, जटायु के पराक्रम का चित्र, कुंज-वान् पर्वत, मतंग ऋषि के आश्रम में श्रमणा नामक सिद्ध तपस्विनी, पम्पा

तालाब, हनुमान् और माल्यवान् पर्वत के चित्रों को देखना। सीता को वन-विहार और गंगा-स्नान का दोहद। तदर्थ राम का लक्ष्मण को रथ लाने का आदेश। सीता को नींद आना। दुर्मुख नामक दूत का प्रवेश। वह सीता-विषयक लोकापवाद की सूचना राम को देता है। इस सूचना से राम का मूर्छित होना। लोकाराधन के लिए राम का सीता को निर्वासित करने का निश्चय। राम का अपने आपको दोषी बताना। राम के आदेशानुसार लक्ष्मण का सीता को रथ में बैठाकर वन में छोड़ने के लिए जाना।

द्वितीय अंक

(स्थान-दण्डकारण्य का जनस्थान प्रदेश) विष्कम्भक में सीता-परित्याग के वाद बारह वर्षों में घटित घटनाओं की सूचना दी गई है। तपस्विनी आत्रेयी और वनदेवता का प्रवेश। आत्रेयी ने सूचित किया कि किसी देवता ने महर्षि वाल्मीकि को कुश और लव नाम के दो बालक लाकर समर्पित किए हैं। इन्होंने अभी माता का दूध छोड़ा है। ये दोनों बालक अद्भुत गुणों वाले हैं। इन्हें रहस्य-सहित जृम्भक अस्त्र जन्मसिद्ध हैं। वाल्मीकि ने इनका पालन-पोषण किया है, इनका क्षत्रियोचित उपनयन संस्कार करके इन्हें वेदत्रयी तथा अन्य तीन विद्याएँ (आन्वीक्षिकी, वार्ता और दण्डनीति) सिखाई हैं। दोनों बालक अत्यन्त प्रतिभाशाली हैं। महर्षि वाल्मीकि को क्रौंच-वध के कारण दया आना और सहसा 'मा निषाद०' श्लोक का उद्गार। ब्रह्मा का वाल्मीकि को आर्षदृष्टि देना और आदेश देना कि तुम राम-चरित वर्णन करो। आत्रेयी सूचित करती है कि ऋष्यशृंग का १२ वर्ष चलने वाला यज्ञ समाप्त हो गया है। वसिष्ठ, अरुन्धती आदि सीता-परित्याग के कारण राम से अप्रसन्न हैं, अतः वे वाल्मीकि के आश्रम में जाते हैं। उधर राम ने अश्वमेध नामक यज्ञ प्रारम्भ किया है और उसमें पत्नी के स्थान पर सीता की स्वर्ण-मूर्ति स्थापित की है। दिग्विजय के निमित्त अश्वमेध का घोड़ा छोड़ा गया है और उसके रक्षकों का नेतृत्व लक्ष्मण का पुत्र चन्द्रकेतु कर रहा है। इस बीच एक ब्राह्मण-वालक की अकालमृत्यु होती है और आकाशवाणी होती है कि शम्बूक नाम का एक शूद्र तप कर रहा है, उसको मारकर ब्राह्मण-वालक को पुनर्जीवित करो। राम शम्बूक को ढूंढ़ते हुए दण्डकारण्य में जाते हैं। (विष्कम्भक)

राम का शम्बूक को मारना। शम्बूक का दिव्यपुरुष का रूप धारण करके राम के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना। शम्बूक से यह जानकर कि यह दण्डक वन है, राम का पूर्व घटनाओं को स्मरण करना और विलाप करना। अगस्त्य के निमन्त्रण पर पंचवटी-दर्शन के बिना ही पुष्पक विमान से राम का अगस्त्य के आश्रम के लिए प्रस्थान।

तृतीय अंक

(स्थान--दण्डकारण्य का पंचवटी प्रदेश)। विष्कम्भक में शरीरधारी तमसा और मुरला नामक दो नदी-देवताओं का प्रवेश। दोनों के संवाद से सूचित होता है कि सीता के परित्याग से राम अत्यधिक दुःखित एवं शोकातुर हैं। गोदावरी नदी से प्रार्थना की गई है कि वह राम के जीवन के प्रति सावधान रहें। कुश और लव के विषय में और विवरण प्राप्त होता है कि वाल्मीकि के आश्रम के समीप सीता को छोड़कर जब लक्ष्मण लौट जाते हैं, तब सीता ने प्रसवपीड़ा से पीड़ित होकर अपने आपको गंगा के प्रवाह में डाल दिया और वहीं उसके दो पुत्र उत्पन्न हुए। गंगा और पृथ्वी कृपा करके सीता को पाताल ले गईं। जब दोनों बालकों ने माता का दूध छोड़ दिया तब देवी गंगा ने स्वयं वे दोनों बालक महर्षि वाल्मीकि को समर्पित किए। इधर राम अगस्त्य के आश्रम से लौटकर पंचवटी में आते हैं। गंगा को सन्देह है कि कहीं राम कुछ अनिष्ट न कर बैठें, अतः वह सीता-सहित गोदावरी के पास आती है। उस दिन कुश और लव की १२वीं वर्षगाँठ थी। गंगा ने सीता को आदेश दिया कि वह अपने हाथ से एकत्रित फूलों से सूर्य की पूजा करे। साथ ही सीता को सिद्धि प्रदान की कि वह अदृश्य होकर रहेगी। उसे मनुष्य ही नहीं, अपितु वनदेवता भी नहीं देख सकेंगे। अतएव आगे के वर्णन में राम भी सीता को नहीं देख पाते हैं। सीता गोदावरी के जल से निकलती है और साक्षात् करुणा की मूर्ति एवं शरीरधारिणी विरह-व्यथा प्रतीत होती है। (विष्कम्भक)।

राम पंचवटी में प्रवेश करते हैं और अपने पूर्वपरिचित स्थानों को देखकर मूर्छित होते हैं। सीता अपने हाथ के स्पर्श से राम को होश में लाती है। राम सीता के प्रति अपने हार्दिक एवं मार्मिक उद्गार प्रकट करते हैं। सीता भी अदृश्य

रहते हुए राम के हार्दिक भावों से परिचित होती है। वनदेवता वासन्ती का पंचवटी में राम से मिलना। राम वासन्ती से वार्तालाप करते हैं, उधर अदृश्य रहते हुए सीता तमसा से बात करती है। पंचवटी के दृश्यों का वर्णन। वासन्ती राम से सीता के विषय में प्रश्न पूछती है और सीता-परित्याग के लिए राम की भर्त्सना करती है कि कीर्तिलाभ के लिए क्या सीता-परित्याग उचित कार्य था? राम दुःखित होते हैं और आशंका प्रकट करते हैं कि वन में सीता को हिंसक पशु खा गए हैं। राम भावावेश में विलाप करते हैं। वे मूर्छित होते हैं और सीता के हस्तस्पर्श से होश में आते हैं। राम सूचित करते हैं कि उन्होंने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया है और उसमें सीता की स्वर्ण-प्रतिमा को उन्होंने पत्नी के स्थान पर रखा है। राम अश्वमेध के लिए अयोध्या लौट जाते हैं और सीता पुत्रों की वर्षगाँठ मनाने के लिए गंगा के पास जाती है।

चतुर्थ अंक

(स्थान—महर्षि वाल्मीकि के आश्रम का समीपवर्ती स्थान)। वाल्मीकि के शिष्य सौधातकि और दण्डायन के वार्तालाप से ज्ञात होता है कि वाल्मीकि के आश्रम में वसिष्ठ, अरुन्धती, राम की माताएँ और जनक अतिथिरूप में आए हैं। सीता के शोक से सन्तप्त राजर्षि जनक आश्रम के बाहर वृक्ष के नीचे बैठे हैं। (विष्कम्भक)।

जनक का प्रवेश। वे सीता के शोक में विलाप करते हैं। वसिष्ठ के आदेशानुसार अरुन्धती के साथ कौसल्या जनक से मिलने आती हैं। जनक और कौसल्या सीता-शोक के कारण दुःखित होते हैं तथा राम और सीता के विवाह के पश्चात् की घटनाओं को स्मरण करके दुःखित होते हैं। अरुन्धती का कथन कि वसिष्ठ ने बताया है कि इन सब घटनाओं का अन्त सुखद होगा। नेपथ्य में शिष्टानध्याय के कारण खलते हुए बालकों का कोलाहल। बालकों में राम के सदृश आकृति वाला बालक दिखाई देता है। जनक उसे कंचुकी से बुलवाते हैं। बालक लव आकर उन वृद्धों को प्रणाम करता है। कौसल्या यह देखकर आनन्दित होती है कि लव की आकृति सीता से मिलती-जुलती है। कौसल्या लव से उसके माता-पिता का नाम पूछती है। लव अपने आपको वाल्मीकि का पुत्र बताता है।

लव रामायण की कथा तथा उसके पात्र राम, लक्ष्मण, जनक आदि की जानकारी प्रकट करता है। जनक के यह पूछने पर कि दशरथ के किस-किस पुत्र के कितनी सन्तान हैं, लव सूचित करता है कि यह अंश अभी तक अप्रकाशित है और वाल्मीकि ने यह अंश मेरे बड़े भाई कुश के संरक्षण में अभिनय के लिए भरत मुनि के पास भेजा है। इसी बीच अश्वमेध का अश्व आश्रम के समीप आता है और बालक घोड़ा दिखाने के लिए लव को ले जाते हैं। अश्व-रक्षकों से विवाद बढ़ जाने के कारण लव अपना धनुष उठाकर युद्धार्थ तैयार हो जाता है।

पंचम अंक

(स्थान——वाल्मीकि के आश्रम का समीपवर्ती स्थान)। सारथि सुमन्त्र के साथ लक्ष्मण-पुत्र चन्द्रकेतु का प्रवेश। दोनों यह देखकर आश्चर्य-चकित हैं कि लव ने अश्व-रक्षकों को हरा दिया है और मार भगाया है। चन्द्रकेतु लव को युद्धार्थ आह्वान करता है। वार्तालाप में विघ्न करने के कारण लव जृम्भक अस्त्र के प्रयोग से सैनिकों को निश्चेष्ट कर देता है। लव राम के शौर्य को कुछ नहीं समझता है और उन पर आक्षेप करता है। क्रुद्ध चन्द्रकेतु लव से युद्ध के लिए तैयार हो जाता है।

षष्ठ अंक

(स्थान——वाल्मीकि के आश्रम का समीपवर्ती स्थान)। विष्कम्भक में विद्याधर और विद्याधरी के संवाद से सूचना मिलती है कि लव और चन्द्रकेतु में दिव्य अस्त्रों से घोर युद्ध हो रहा है। चन्द्रकेतु ने आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया है, उसके प्रतिकार-स्वरूप लव ने वारुण अस्त्र का प्रयोग किया है। पुनः उसके प्रतिकार रूप में चन्द्रकेतु ने वायव्य अस्त्र छोड़ा है। इसी समय शम्बूक के वध के बाद लौटे हुए राम का प्रवेश। (विष्कम्भक)

लव और चन्द्रकेतु राम को प्रणाम करते हैं। लव को देखकर राम को हार्दिक प्रसन्नता होती है और वे उसे गले लगाते हैं। लव जृम्भक अस्त्र को लौटा लेता है। लव राम को सूचित करता है कि जृम्भक अस्त्र उसे जन्मसिद्ध है। इसी समय भरत के आश्रम से लौटे हुए कुश का प्रवेश। कुश लव से राम का परिचय प्राप्त करके उन्हें प्रणाम करता है। राम कुश और लव की आकृति से

अनुमान करते हैं कि ये दोनों बालक सीता के पुत्र हैं, ये युगल हैं, इन्हें जृम्भक अस्त्र जन्मसिद्ध हैं। अपने अनुमान की पुष्टि के लिए वे उनसे कुछ प्रश्न पूछते हैं, परन्तु सीता के विषय में उनके उत्तर उदासीन के तुल्य हैं, अतः राम अपना अनुमान त्याग देते हैं। शिशु-कलह को सुनकर वसिष्ठ, वाल्मीकि, जनक, दशरथ की रानियाँ और अरुन्धती वहाँ पहुँचते हैं। शोकसंतप्त एवं लज्जित राम उनको प्रणाम करने के लिए जाते हैं।

सप्तम अंक

(स्थान—वाल्मीकि के आश्रम का समीपवर्ती स्थान)। इस अंक में वाल्मीकि के आश्रम के समीप गंगा के तट पर वाल्मीकि की कृति का अप्सराओं के द्वारा अभिनय दिखाया गया है। इस अभिनय को देखने के लिए राम के सहित सारी प्रजा उपस्थित होती है। वाल्मीकि नें अपनी तपस्या के प्रभाव से चराचर के सहित समस्त देवों और असुरों को वहाँ बुला लिया है। इस गर्भनाटक का उद्देश्य है—सीता को सर्वथा निर्दोष सिद्ध करके उसका तथा कुश लव का राम के साथ समागम और नाटक को सुखान्त बनाना। इसमें सीता-परित्याग से लेकर कुश-लव के जन्म तक की कथा का वर्णन है। सीता प्रसववेदना से पीड़ित होकर अपने आपको गंगा में डाल देती है। सीता जल में ही दो पुत्रों को जन्म देती है। गंगा और पृथ्वी एक-एक बच्चे को गोद में लिए हुए सीता को सहारा देकर जल से बाहर लाती हैं। पृथ्वी सीता-परित्याग के कारण राम पर क्रुद्ध होती है, गंगा उसे समझाती है। आकाश में तीव्र प्रकाश होता है और प्रकाशमय जृम्भक अस्त्र कुश तथा लव को प्राप्त होते हैं। पृथ्वी के आदेशानुसार सीता दूध छोड़ने तक दोनों बालकों का पालन करती है और तत्पश्चात् गंगा उन दोनों को महर्षि वाल्मीकि को समर्पित करती है। सीता के रसातल को सुशोभित करने के समाचार को सुनकर राम मूर्छित हो जाते हैं, इसी समय गंगा और पृथ्वी के साथ सीता जल से प्रकट होती है। सीता के हस्तस्पर्श से राम होश में आते हैं। पृथिवी अपने उत्तरदायित्व से मुक्त होती है कि अब तक मैंने सीता की रक्षा पूरी की। राम पृथ्वी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। अरुन्धती सीता की पवित्रता की घोषणा करती है और सभी देवादि तथा चराचर प्राणिवर्ग उसका समर्थन करते हैं। राम निर्दोष सीता को स्वीकार करते हैं। कुश और लव के साथ वाल्मीकि

का प्रवेश। कुश और लव का माता-पिता से मिलन। भरतवाक्य के साथ नाटक की समाप्ति।

(७) मूलकथा और उसमें परिवर्तन

(क) कथा का आधार

उत्तररामचरित में वर्णित कथा का मूल आधार वाल्मीकीय रामायण का उत्तरकांड है। इसमें राम के राज्याभिषेक तथा सीता के परित्याग के बाद की घटनाओं का वर्णन है। भवभूति ने अपने नाटकीय कौशल और प्रतिभा का परिचय देते हुए मूलकथा में अनेक परिवर्तन किए हैं। वाल्मीकीय रामायण की कथा दुःखान्त है, परन्तु भवभूति ने भारतीय पद्धति का अनुसरण करते हुए नाटक को सुखान्त बनाया है।

महाभारत (सभापर्व अ० ३८, वनपर्व अ० २७७) में तथा कुछ पुराणों (यथा--ब्रह्मपुराण, गरुड़पुराण, स्कन्दपुराण, अग्निपुराण आदि) में रामकथा वर्णित है। परन्तु इनमें राम के राज्याभिषेक के बाद की घटनाओं का उल्लेख नहीं है और इस अंश के वर्णन का अभाव है।

पद्मपुराण के चतुर्थ खंड (पातालखंड, अध्याय १ से ६८) तथा पंचम खंड (सृष्टिखंड, अ० २६९–२७१) में राम-कथा वर्णित है, परन्तु दोनों खंडों में वर्णित कथाओं में भेद है। सृष्टिखंड में वर्णित कथा वाल्मीकीय रामायण की कथा से मिलती-जुलती है, परन्तु पातालखंड में वर्णित कथा और उत्तररामचरित की कथा में बहुत अधिक साम्य है। यदि यह कहा जाए कि भवभूति ने इस नाटक की कथा के लिए पद्मपुराण (पातालखंड) की कथा को आधार बनाया है, तो कोई अत्युक्ति न होगी। भवभूति ने पद्मपुराण की कथा में भी कई परिवर्तन किए हैं, परन्तु इन्हें भवभूति की मौलिकता एवं निजी कल्पना ही कहना चाहिए। इन परिवर्तनों का वर्णन आगे किया गया है।

भवभूति भास और कालिदास का ऋणी

उत्तररामचरित में वर्णित कतिपय प्रसंगों के लिए भवभूति भास और कालिदास का भी ऋणी है। भवभूति को भास और कालिदास की कृतियों

में कुछ प्रसंग रोचक प्रतीत हुए और उसने अपने इस नाटक में उनका समावेश किया है।

(१) भवभूति ने उत्तररामचरित अंक ३ (वाक्य सं० १४५ से १६०) में मूर्छित राम सीता के हस्तस्पर्श से उसे पहचानते हैं और वासन्ती से कहते हैं कि सीता जीवित है और वह पुनः प्राप्त हो गई है। वासन्ती ने पूछा--सीता कहाँ है? राम ने सीता के हस्तस्पर्श का अनुभव करते हुए कहा कि—देखो सामने खड़ी है। (रामः—पुनरपि प्राप्ता जानकी। वासन्ती—क्व सा। रामः—पश्य, नन्विमं पुरत एव)। भवभूति इस प्रसंग के लिए भास के ऋणी हैं। भास ने स्वप्नवासवदत्त (अंक ५) में ठीक इसी प्रकार का वर्णन वासवदत्ता का किया है। सोते हुए उदयन ने वासवदत्ता का स्वप्न देखा। उसी समय वासवदत्ता वहाँ आ जाती है और उदयन के हाथ का स्पर्श करती है। उदयन विदूषक से कहता है--वासवदत्ता जीवित है। विदूषक ने पूछा—वह कहाँ है? उदयन ने उत्तर दिया—मुझ अर्धनिद्रित को वह जगाकर अभी गई है। मेरा हाथ अभी तक रोमांचित है।

२. निम्नलिखित प्रसंगों के लिए वह कालिदास का ऋणी है:--

(क) उत्तररामचरित के प्रथम अंक में वर्णित चित्रवीथी के दृश्य के लिए वह कालिदास का ऋणी है। कालिदास ने रघुवंश में वर्णन किया है कि चित्रशाला में बैठे हुए राम-सीता दण्डकारण्य की दुःखद घटनाओं के चित्रों को देखकर अब सुख का अनुभव करते हैं।

तयोर्यथाप्रार्थितमिन्द्रियार्थानासेदुषोः सद्मसु चित्रवत्सु।
प्राप्तानि दुःखान्यपि दण्डकेषु संचिन्त्यमानानि सुखान्यभूवन्॥
(रघु० १४–२५)

भवभूति ने भी चित्रदर्शन में यही प्रसंग उपस्थित किया है।

(ख) सीता और शकुन्तला दोनों ही पति के द्वारा परित्याग के समय गर्भवती हैं। परित्याग के बाद दोनों की रक्षा के लिए कोई दिव्यशक्ति-संपन्न व्यक्ति (वाल्मीकि, मेनका) आता है और उन्हें अपने पास ले जाता है। परित्याग के कुछ ही समय बाद पवित्र आश्रम में दोनों के पुत्र होते हैं।

(ग) सीता के परित्याग के समय रघुवंश और उत्तररामचरित के राम एक सा ही शोक प्रकट करते हैं। दोनों का ही कथन है कि मेरा पवित्र वंश मेरे द्वारा आज कलंकित हो रहा है :—

१. राजर्षिवंशस्य रविप्रसूतेरुपस्थितः पश्यत कीदृशोऽयम्।
मत्तः सदाचारशुचेः कलङ्कः पयोदवातादिव दर्पणस्य।।
(रघु० १४–३७)

२. यत् सावित्रैर्दीपितं भूमिपालैर्लोकश्रेष्ठैः साधु शुद्धं चरित्रम्।
मत्संबन्धात् कश्मला किंवदन्ती स्याच्चेदस्मिन् हन्त धिङ्मामधन्यम्।।
(उत्तर० १–४२)

(घ) सीता और शकुन्तला दोनों ही अपने पीछे अपना कोई चिह्न नहीं छोड़ती हैं। दोनों के पति बहुत समय बीतने पर महर्षियों के आश्रम में अपने पुत्रों का अकस्मात् और अपरिचित रूप में दर्शन करते हैं। राम और दुष्यन्त मुखाकृति-सादृश्य के आधार पर बालकों को अपना पुत्र होने का अनुमान करते हैं। दोनों को पुत्रों के अंगस्पर्श से अभूतपूर्व आनन्दानुभूति होती है। भवभूति का वर्णन कालिदास के अनुकरण पर है। पिता को देखते ही दोनों (लव और भरत) अपनी धृष्टता छोड़ते हैं। (शाकुन्तल अंक ७, वाक्य सं० ५५ से ६०, उत्तर० अंक ६, वाक्य० १५, १६, ५३–५८)

१. अस्य बालकस्य तेऽपि संवादिन्याकृतिः।
अपरिचितस्यापि तेऽप्रतिलोमः संवृत्तः। (शाकु० ७ वा० ५७)

२. विरोधो विश्रान्तः···· तदौद्धत्यं क्वापि व्रजति० (उ० ६–११)।
न केवलमस्मद्वंशसंवादिन्याकृतिः। अपि जनकसुतायास्तच्च तच्चानुरूपं०
(उ० ६–२६)
(शा० ७–१९)

३. अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण०
४. अङ्गादङ्गात् सृत इव निजस्नेहजो देहसारः० (उत्तर० ६–२२)

(ङ) राम-सीता और दुष्यन्त-शकुन्तला दोनों ही युगल विरह-दुःख से अत्यन्त पीड़ित और कृश हो जाते हैं। पुनर्मिलन के समय दोनों एक दूसरे को कठिनाई से पहचान पाते हैं।

१. दुष्यन्त——वसने परिधूसरे वसाना, नियमक्षाममुखी० (शाकु० ७–२१)
२. शकुन्तला——न खल्वार्यपुत्र इव। (शाकु० ७ वाक्य० ८८)
३. तमसा——करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी, विरहव्यथेव वनमेति जानकी।
(उ० ३–४)
४. सीता——कथं प्रभातचन्द्रमण्डलापाण्डुरपरिक्षामदुर्बलेनाकारेण।
(उ० ३ वा० २७)

(च) दोनों रानियों का एक उच्चकोटि के महर्षि के आश्रम में अपने पति से मिलन होता है।

(छ) दुष्यन्त और राम प्रियावियोग से दुःखित होने पर भी कर्तव्य-भावना के कारण अब्रह्मण्यम्० (शाकु० ६ वाक्य १८१, उत्तर० १ वा० १४२) सुनते ही राक्षस-वधार्थ तैयार हो जाते हैं।

(ख) वाल्मीकि-रामायण में वर्णित कथा

वाल्मीकि-रामायण के उत्तरखंड में (सर्ग ४२ से सर्ग ९७ तक) राम के राज्याभिषेक से लेकर सीता के पृथ्वी में अन्तर्धान होने तक का वर्णन है। संक्षिप्त कथा इस प्रकार है :—

राम का राज्याभिषेक होता है। सीता को गर्भवती जानकर सभी को प्रसन्नता है। राम सीता से पूछते हैं कि कोई अभिलाषा बताओ, जिसे पूरा करूँ। सीता ने पवित्र तपोवन देखने की इच्छा प्रकट की। राम ने स्वीकृति दी। उसी दिन राजसभा में भद्र नामक सभासद् ने लोकापवाद की बात कही कि रावण द्वारा अपहृत सीता को राम ने तुरन्त स्वीकार कर लिया है और उन्होंने इसकी थोड़ी भी निन्दा नहीं की है। (कीदृशं हृदये तस्य सीतासंभोगजं सुखम्··· रक्षसां वशमापन्नां कथां रामो न कुत्सति, सर्ग ४३. १४–१८)। इससे राम को बहुत दुःख हुआ और उन्होंने लक्ष्मण को आदेश दिया कि सीता को रथ पर बैठा कर वाल्मीकि के आश्रम के समीप छोड़ आओ। लक्ष्मण ने वैसा किया। रोती हुई सीता को मुनि बालकों ने देखा और उन्होंने यह सूचना महर्षि वाल्मीकि को दी। वाल्मीकि आश्वासन देकर सीता को अपने आश्रम में ले गए। कुछ समय बाद राम ने लवणासुर को मारने के लिए सेनासहित शत्रुघ्न को मधुपुर भेजा। जाते

समय शत्रुघ्न वाल्मीकि के आश्रम में रुके। उसी दिन रात्रि में सीता के दो पुत्र हुए। (तामेव रात्रिं सीतापि प्रसूता दारकद्वयम्, ६६–१)

लवणासुर को मारकर १२ वर्ष बाद शत्रुघ्न लौटते समय फिर वाल्मीकि के आश्रम में रुके। उस समय कुश-लव १२ वर्ष के हो गए थे और उन्हें रामायण कण्ठस्थ थी। शत्रुघ्न अयोध्या लौटे। राम ने उन्हें मधुपुर का राजा बनाकर भेज दिया। इसके बाद राज्य में किसी ब्राह्मण का पुत्र मर गया। वह उसे राज-द्वार पर लाया और कहा कि बालक की मृत्यु राजा के दोष के कारण हुई है। राम ने महर्षियों के सामने यह प्रश्न रखा। नारद ने कहा कि एक शूद्र की तपस्या के कारण यह अकालमृत्यु हुई है। राम पुष्पक विमान से उसे ढूंढ़ने निकले। दक्षिण में पहाड़ पर शम्बूक नामक शूद्र को तपस्या करते हुए देखा और उसका वध किया। ब्राह्मण-बालक जीवित हो गया। राम अगस्त्य मुनि का दर्शन करके अयोध्या लौटे। अयोध्या लौट कर अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया। उसमें वाल्मीकि को भी बुलाया था। उनके साथ लव-कुश भी आए। वहाँ लव-कुश ने रामायण सुनाई। परिचय पूछने पर वाल्मीकि ने बताया कि ये सीता के पुत्र हैं। दूतों के द्वारा सीता को अयोध्या यज्ञभूमि में बुलवाया गया और सीता से कहा गया कि वह वाल्मीकि के संमुख अपनी निर्दोषता प्रमाणित करे। सीता आई और उसने यज्ञभूमि में अपनी निर्दोषता की शपथ लेते हुए पृथ्वी से प्रार्थना की कि वह अपने अन्दर उसे स्थान दे। इसी बीच पृथ्वी फटी और भूमि के अन्दर से एक दिव्य सिंहासन निकला। पृथ्वी ने सीता का अभिनन्दन किया और हाथ पकड़ कर उसे सिंहासन पर बिठाया। उस समय देवों ने उस पर पुष्पवृष्टि की। फिर वह आसन सीता-सहित भूमि के अन्दर चला गया।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार यह कथा दुःखान्त है।

भवभूति ने वा० रामायण के तीन श्लोक (अंक ६–३१, ३२, ३६) मूलरूप में दिए हैं। क्रौंच कथानक (अंक २) पूरा लिया है। अंक ७ में वाल्मीकि को रंगमंच पर भी लाया है। इस प्रकार वह वाल्मीकि का पूर्णतया ऋणी है।

भवभूति ने मूलकथा में ये परिवर्तन किए हैं :—

१. शत्रुघ्न लवणासुर के वधार्थ जाते समय वाल्मीकि के आश्रम में नहीं रुकते हैं (अंक १)। २. उत्तर० में दूध छोड़ने के बाद सीता गंगा की संरक्षता

में पाताल में रहती है और दोनों बालक १२ वर्ष वाल्मीकि के पास रहते हैं (अंक २)। ३. राम और वासन्ती का मिलन (अंक ३)। ४. अदृश्य सीता का तमसा से मिलन (अंक ३)। ५. अदृश्य सीता-द्वारा राम की मूर्छा को दूर करना (अंक ३)। ६. वसिष्ठ, जनक, कौसल्या आदि का वाल्मीकि के आश्रम में रहना (अंक ४)। ७. लव और चन्द्रकेतु का युद्ध (अंक ५)। ८. नाटक के अन्त में राम-सीता का मिलन (अंक–७)।

(ग) पद्मपुराण में वर्णित कथा

पद्मपुराण में वर्णित कथा का उत्तररामचरित में वर्णित कथा से बहुत अधिक साम्य है। अतः पद्मपुराण की कथा को उत्तररामचरित की कथा का आधार कहा जा सकता है। पद्मपुराण (पाताल खंड, अध्याय १–६८) में वर्णित कथा संक्षेप में इस प्रकार है :—

राम का राज्याभिषेक, जनापवाद के कारण बाध्य होकर राम के द्वारा सीता का परित्याग, वाल्मीकि के द्वारा कुश-लव का पालन और उन्हें अस्त्रविद्या की शिक्षा देना, अश्वमेध यज्ञ के अश्व का वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचना, लव का अश्व को पकड़ना, सैनिकों से लव का युद्ध, वाल्मीकि द्वारा कुश-लव का राम से परिचय कराना तथा अन्त में राम-सीता का मिलन।

इस प्रकार यह कथा सुखान्त है तथा उत्तररामचरित में वर्णित प्रायः सभी तथ्य इसमें प्राप्त होते हैं।

भवभूति ने पद्मपुराण में वर्णित कथा में मुख्य परिवर्तन ये किए हैं :— (१) पद्मपुराण में अश्वमेधीय अश्व का रक्षक भरत का पुत्र पुष्कल है, उत्तर० में लक्ष्मण-पुत्र चन्द्रकेतु है। (२) पद्म० में वाल्मीकि ने कुश-लव को अस्त्रविद्या सिखाई है, उत्तर० में जृम्भकादि दिव्य अस्त्र उन्हें जन्मसिद्ध हैं। (३) पद्म० में लव पहले विजयी होता है, पर बाद में बन्दी बना लिया जाता है। बाद में कुश ने आकर सारी सेना को जीता है और लव को मुक्त कराया है। सीता बीच में पड़कर बन्दी बने सेनापतियों को तथा अश्वमेधीय अश्व को मुक्त कराती है। (४) अश्वमेध यज्ञ में राम ने वाल्मीकि से कुश-लव के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त की। तब उन्हें ज्ञात हुआ कि ये दोनों बालक

राम के ही पुत्र हैं। (५) अश्वमेध यज्ञ में सीता को बुलवाया जाता है। वाल्मीकि के कहने पर राम सीता को ग्रहण करते हैं। (६) पद्म० में राम युद्धभूमि में नहीं आते हैं। उनका अयोध्या में कुश-लव से परिचय होता है। पद्म० में पृथ्वी भी प्रकट नहीं होती है। वाल्मीकि के कथन पर ही राम सीता को ग्रहण करते हैं।

(घ) मूलकथा में परिवर्तन

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि भवभूति ने यद्यपि रामायण की कथा को आधार बनाया है, तथापि कथावस्तु के लिए उसने पद्मपुराण को ही विशेषरूप से आधार माना है। भवभूति ने उसमें भी आवश्यकतानुसार अनेक परिवर्तन किए हैं। विभिन्न प्रसंगों को नाटकोपयोगी बनाने के लिए आवश्यक था कि वह उनमें उचित परिवर्तन करे।

यहाँ पर यह स्मरण रखना आवश्यक है कि इस नाटक में भवभूति का उद्देश्य है करुणरस का प्रवाह लाना और सभी अन्य रसों को करुणमूलक सिद्ध करना, अतएव उसने प्रत्येक घटना के मूल में करुणा की भावना को स्थान दिया है। भवभूति ने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए घटनाओं में यथास्थान परिवर्तन किया है, घटनाओं के क्रम को बदला है, नवीन दृश्यों को जोड़ा है, नवीन पात्रों की कल्पना की है और नाटक को सुखान्त बनाया है। इन परिवर्तनों के कारण भवभूति की मौलिकता और नाटकीय प्रतिभा का परिचय मिलता है। भवभूति ने विभिन्न प्रसंगों को इस प्रकार जोड़ा है कि उनमें नाटकीय गति और स्वाभाविकता प्रतीत होती है।

विशेष उल्लेखनीय परिवर्तन ये हैं :—

(१) **प्रथम अंक।** चित्रवीथी का दृश्य भवभूति की मौलिक कल्पना है। इसके द्वारा वह राम-सीता के पारस्परिक अगाध प्रेम को प्रदर्शित करता है और सीता-परित्याग के लिए उपयुक्त आधार तैयार करता है। सीता स्वयं दोहद के द्वारा वनदर्शनार्थ जाना चाहती है, उसको ही बहाना बनाकर राम द्वारा सीता को वन में भेजा जाता है। यहाँ पर लोकापवाद का सूचक भद्र सभासद् के स्थान पर दुर्मुख नामक गुप्तचर है। अष्टावक्र की उपस्थिति भी सीता-परित्याग

में सहायक हुई है। अन्य प्रसंग में रामायण में वर्णित लवणासुर-वधार्थ शत्रुघ्न को भेजने का यहाँ दूसरे प्रसंग में वर्णन है।

(२) **द्वितीय अंक।** सीता गंगा के प्रवाह में दो बच्चों को जन्म देती है, गंगा और पृथ्वी उसे बाहर लाती हैं। दूध छोड़ने के बाद बालक वाल्मीकि के पास रहते हैं और सीता गंगा के संरक्षण में पाताल में रहती है। मूलकथा में सीता ने आश्रम में ही बच्चों को जन्म दिया और वहीं रही। उत्तर० में जृम्भकादि अस्त्र कुश-लव को जन्मसिद्ध प्राप्त हैं, पद्म० में वाल्मीकि ने उन्हें ये सभी अस्त्र सिखाए हैं। रामायण में अन्य प्रसंग में वर्णित क्रौंच-वध और शम्बूक-वध उत्तर० में इस अंक में वर्णित हैं। यह सीता-परित्याग के १२ वर्ष बाद की घटना है। शम्बूक के प्रसंग से राम दण्डक वन में आते हैं और पूर्वानुभूत स्थानों का दर्शन करते हैं। इसके द्वारा राम और सीता के मिलन के लिए भूमिका तैयार होती है। राम परिचित स्थानों को देखकर बार-बार सीता को स्मरण करते हैं और रोते हैं।

(३) **तृतीय अंक।** इस अंक में छायादृश्य भवभूति की मौलिक कल्पना है। इस दृश्य के द्वारा भवभूति ने नाटक में छायानृत्य के तुल्य ही छायादृश्य उपस्थित करने की नवीन योजना रखी है। नाटकीय पात्रों के अतिरिक्त सीता और तमसा अदृश्य रहते हुए राम और वासन्ती का वार्तालाप सुनती हैं और पर्दे पर छाया के तुल्य दिखाई जाती हैं। वे दोनों परस्पर वार्तलाप करती हैं। तमसा के कहने पर मूर्छित राम को सीता हस्तस्पर्श से होश में लाती है। मूलकथा में तृतीय अंक की कथा का सर्वथा अभाव है। वासन्ती, तमसा और मुरला भवभूति की मौलिक कल्पनाएँ हैं। वासन्ती सीतापरित्याग के लिए राम को कड़े ढंग से फटकारती है (उ० ३ वा० १०७ से ११६)। राम और सीता दोनों के हृदयों से ही कटुता समाप्त हो गई है। दोनों पुर्नमिलन के लिए उद्यत दिखाए गए हैं। दोनों शोक के कारण बार-बार मूर्छित होते हैं।

(४) **चतुर्थ अंक।** मूलकथा में चतुर्थ अंक की कथा का सर्वथा अभाव है। भवभूति ने इस अंक में वसिष्ठ, अरुन्धती, कौसल्या आदि तथा राजर्षि जनक सभी को वाल्मीकि के आश्रम में एकत्र किया है। कौसल्या-जनक का संवाद, जनक का अपनी पुत्री सीता के लिए शोक करना, खेलते हुए बालकों का कोलाहल,

कौसल्या और जनक का मुखाकृति-सादृश्य के आधार पर लव को राम-पुत्र होने का अनुमान करना, वाल्मीकिरचित नाटक की चर्चा, ये घटनाएँ मूलकथा में नहीं हैं। मूलकथा में अश्वमेधीय अश्व का रक्षक भरत-पुत्र पुष्कल है, उत्तर० में लक्ष्मणपुत्र चन्द्रकेतु है।

(५) **पंचम अंक।** इस अंक में चन्द्रकेतु और लव का वार्तालाप है। लव ने जृम्भक अस्त्र से चन्द्रकेतु की सेना को निश्चेष्ट कर दिया है। लव राम के पौरुष की निन्दा करता है। दोनों युद्धार्थ तैयार होते हैं। मूलकथा में चन्द्रकेतु के स्थान पर पुष्कल है। राम के पौरुष की निन्दा नहीं है।

(६) **षष्ठ अंक।** चन्द्रकेतु और लव का दिव्य अस्त्रों से युद्ध होता है। इसी समय राम वाल्मीकि-आश्रम में आते हैं। दोनों तुरन्त युद्ध रोक देते हैं। कुश का आगमन, लव-कुश को पुत्र मानकर राम का उनसे प्रेम करना, कुश-लव का राम के प्रति उदासीन सा व्यवहार और उनका सीता-वियुक्त राम को धैर्य बँधाना, वसिष्ठ वाल्मीकि जनक आदि का युद्ध-स्थल पर पहुँचना, ये घटनाएँ मूलकथा में नहीं हैं। मूलकथा में लव बन्दी बनाया जाता है और कुश उसे छुड़ाता है। सीता बीच में पड़कर अश्व को मुक्त कराती है। राम वाल्मीकि के आश्रम में नहीं आते हैं और न उनके कारण युद्ध बन्द होता है।

(७) **सप्तम अंक।** इस अंक में गर्भनाटक का दृश्य भवभूति की मौलिक कल्पना है। इसके द्वारा भवभूति ने सभी पात्रों एवं समस्त चराचर जगत् को वाल्मीकि के आश्रम में एकत्र किया है। वाल्मीकि के तपोबल का महत्त्व भी दिखाया गया है। गंगा और पृथ्वी सीता के चरित्र की पूर्ण पवित्रता की घोषणा करती हैं। सभी देवता सीता के ऊपर पुष्पवृष्टि करते हैं। अरुन्धती और जन-मत के आदेशानुसार राम सीता को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार वाल्मीकि के आश्रम में ही राम-सीता का तथा उनका अपने पुत्र कुश-लव से मिलन होता है। पद्मपुराण में अश्वमेधयज्ञ में सीता बुलाई जाती है और वाल्मीकि के आदेशानुसार राम सीता को स्वीकार करते हैं।

(८) उत्तररामचरित और कुन्दमाला

भवभूति के उत्तररामचरित का अनुसरण करते हुए दिङ्नाग ने कुन्दमाला

नामक नाटक लिखा है। दिङ्नाग का नाम धीरनाग या वीरनाग भी माना जाता है। दिङ्नाग का समय १००० ई० के लगभग है, क्योंकि रामचन्द्र गुणचन्द्र (११०० ई०) ने सर्वप्रथम अपने नाट्यदर्पण में कुन्दमाला का उल्लेख किया है। (यथा वीरनागनिबद्धायां कुन्दमालायां०, नाट्यदर्पण पृ० ४८)। इसमें भी राम के द्वारा सीता के परित्याग से लेकर राम-सीता-मिलन तक की घटना का वर्णन है। गोमती के तट पर घूमते हुए राम-लक्ष्मण ने जल में बहती हुई कुन्दफूलों की माला को देख कर सीता का पता लगाया, अतः नाटक का नाम कुन्दमाला है।

इन दोनों नाटकों में पर्याप्त समानताएँ ह तथा कुछ विषमताएँ भी हैं। उनका संक्षप में विवरण निम्नलिखित है :—

उत्तररामचरित और कुन्दमाला में समानताएँ

(१) दोनों कथानक के लिए वाल्मीकि के ऋणी हैं। दोनों ने उत्तरकांड के सीता-परित्याग की कथा को आधार बनाया है। (२) दोनों नाटक सुखान्त हैं। दोनों में राम-सीता का मिलन दिखाया गया है। (३) दोनों में अदृश्य सीता की कल्पना की गई है। सीता अदृश्य रहते हुए राम की वियोगावस्था और रामकृत विलाप को देखती है। राम सीता के प्रति अपने हार्दिक प्रेमोद्गार को प्रकट करते हैं। (४) दोनों करुण रस के कवि हैं। दोनों ने करुणरस की सुन्दर व्यंजना की है। (५) दोनों ने प्रकृति के सुन्दर रूप का वर्णन किया है, साथ ही प्रकृति के कठोर और भयावह रूप का भी सुन्दर वर्णन किया है। (कण्डूलद्विप०, उत्तर० २–६, निष्कूजस्तिमिताः० उत्तर० २–१६, नादः पाताल-मूलात् प्रभवति तुमुलं पूरयन् व्योमरन्ध्रम्०, कुन्द० ६–२४)। (६) दोनों नाटकों में सीता के वियोग में राम बार-बार रोते हैं। उत्तररामचरित में पत्थर का हृदय भी पिघल जाता है, (अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्, उत्तर० १–२८) और कुन्दमाला में पशु-पक्षी भी रो पड़ते हैं। (एते रुदन्ति हरिणा हरितं विमुच्य, हंसाश्च शोकविधुराः करुणं रुदन्ति, कुन्द० १–१८)। (७) भाव और भाषा की दृष्टि से भी दोनों में पर्याप्त साम्य है। कहीं-कहीं तो दोनों नाटकों के वाक्य भी एक जैसे हैं। यथा—(क) त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयम्० (उत्तर० ३–२६), त्वं देवि, चित्तनिहितगृहदेवता मे० (कुन्द०

१–१४)। (ख) आर्ये, एष निर्लज्जो लक्ष्मणः प्रणमति (उत्तर०), आर्ये, वध्यः पातकी लक्ष्मणः प्रणमति (कुन्द०)।

दोनों नाटकों में विषमताएँ

(१) भवभूति अधिक उत्कृष्ट नाटककार है। उसकी कवित्वशक्ति अधिक उच्चकोटि की है। उसमें मार्मिकता और भाव-प्रचुरता अधिक है। वह मानवीय मनोभावों का सूक्ष्म पारखी है। दिङ्नाग की कवित्वशक्ति मध्यम कोटि की है। वह मार्मिकता, भावप्रचुरता और मानवीय मनोभावों के विश्लेषण में उतना सूक्ष्मदृष्टि नहीं है। (२) भवभूति के वर्णन रूढि-संमत नहीं हैं। दिङ्नाग के वर्णन प्रायः रूढि-संमत हैं। (३) रस और भाव की दृष्टि से उत्तररामचरित अत्युत्तम है, किन्तु सजीवता और क्रियाशीलता की दृष्टि से कुन्दमाला अधिक उत्तम है। (४) यदि उत्तररामचरित एक उत्तम नाटकीय काव्य है तो कुन्दमाला अभिनय की दृष्टि से नितान्त उपयुक्त नाटक है। (५) उत्तररामचरित में लंबे-लंबे समास हैं, गौडी रीति का आधिक्य है, ओजगुण की प्रधानता है, संवादों में गद्यांश कहीं-कहीं बहुत लंबा हो गया है; इसके विपरीत कुन्दमाला में लंबे समासों का नितान्त अभाव है, वैदर्भी रीति और प्रसाद-गुण की सुन्दर छटा है। संवाद बहुत रोचक, कुतूहलवर्धक, चुस्त, सुगम और हृदयग्राही हैं। (६) उत्तररामचरित में वर्णन श्रमोत्पादित हैं, दुर्बोध पदों का बाहुल्य है और चरित्रचित्रण में वैशद्य न्यून है। इसके विपरीत कुन्दमाला में वर्णन सरल और सरस हैं, दुर्बोध पदों का अभाव है और चरित्र-चित्रण अधिक विशद मनोहर और चित्रवत् है। (७) उत्तररामचरित में करुणरस के साथ वीररस का भी समावेश है, किन्तु कुन्दमाला में केवल शुद्ध करुणरस की प्रधानता है। (८) दिङ्नाग के पात्र भवभूति की अपेक्षा अधिक पार्थिव हैं। (९) भवभूति ने राम को आदर्श पुरुष और सीता को सती-साध्वी पतिव्रता नारी के रूप में प्रस्तुत किया है, परन्तु दिङ्नाग ने उनमें मानवीय न्यूनताओं का भी समावेश किया है। अकारण परित्याग के कारण सीता के हृदय में विक्षोभ, असन्तोष और विरोध की भावना उत्पन्न होती है। वह व्यंग्यपूर्ण शब्दों में राम के इस व्यवहार की कटु आलोचना भी करती है, (किन्तु खलु तस्यैव निरनुक्रोशस्य०, कुन्द०)। दिङ्नाग के चरित्र-चित्रण में अधिक स्वाभाविकता है। (१०) उत्तररामचरित में राम-सीता का

मिलन एक बार होता है, कुन्द० में दो बार। (११) उत्तर० में राम को सीता की पहचान केवल हस्तस्पर्श से होती है, परन्तु कुन्द० में ६ प्रकार से सीता की पहचान होती है :—१. हस्तस्पर्श से, २. सीताशरीरस्पर्शी वायु से, ३. कुन्द-माला से, ४. सीता के जलगत प्रतिबिम्ब से, ५. पदचिह्न से, ६. वस्त्रों से। (१२) उत्तर० में दाम्पत्य-प्रणय का सुन्दर वर्णन है, कुन्द० में इसका ग्रभाव है। (१३) उत्तर० में विदूषक नहीं है, कुन्द० में है। (१४) उत्तर० में गंगा ग्रौर पृथ्वी सीता को स्वयं लेकर प्रकट होती हैं, कुन्द० में सीता पृथ्वी से प्रकट होने की प्रार्थना करती है। (१५) उत्तर० में तिलोत्तमा की घटना नहीं है, कुन्द० में इसका सुन्दर समावेश है। (१६) उत्तर० में कुश ग्रौर लव के राज्याभिषेक का उल्लेख नहीं है, कुन्द० में कुश को महाराज ग्रौर लव को युवराज पद पर ग्रभिषिक्त किया गया है। (१७) उत्तर० में सीता कुश-लव के दूध पीना छोड़ने पर पाताल जाती है, कुन्द० में सीता ग्रन्त तक ग्रपने पुत्रों के साथ ग्राश्रम में रहती है।

(९) उत्तररामचरित में वर्णित समाज एवं संस्कृति

भवभूति के उत्तररामचरित से उस समय की सामाजिक ग्रवस्था का पर्याप्त विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। उत्तररामचरित में जिस समाज ग्रौर संस्कृति का वर्णन है, वह प्रायः रामायणकालीन संस्कृति है। विस्तार के भय से यहाँ पर केवल संक्षिप्त रूपरेखा दी जा रही है :—

उस समय का समाज उन्नत ग्रवस्था में था। समाज धर्मप्रिय था। वर्णा-श्रम-व्यवस्था प्रचलित थी। वेदादि के ग्रध्ययन, ग्रस्त्र-शस्त्रादि के शिक्षण तथा कलात्मक प्रवृतियों में जनता की ग्रभिरुचि थी। उनकी यज्ञ, संस्कार, तप ग्रौर दार्शनिक विचारों के प्रति विशेष निष्ठा थी।

ब्रह्मचारी ऋषि-महर्षियों के ग्राश्रम में रहकर संयमी जीवन बिताते थे ग्रौर शिक्षा प्राप्त करते थे। वे गुरुकुलीय जीवन व्यतीत करते थे। वे ब्रह्मचारी के लिए विहित जटा, मेखला, यज्ञोपवीत, दण्ड, मृगचर्म धारण करते थे। क्षत्रिय बालक धनुष, बाण, तूणीर भी धारण करते थे। इन गुणों से युक्त बालक लव का वर्णन उत्तर० ४–२० में किया गया है।

पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पलः। (उ० ४–२०)

वेदारम्भ से पूर्व गुरु उनका यज्ञोपवीत करता था, तत्पश्चात् वेदत्रयी की शिक्षा दी जाती थी। क्षत्रिय का उपनयन ११ वर्ष की आयु में होता था। यज्ञोपवीत से पहले आन्वीक्षिकी (न्यायशास्त्र), वार्ता (अर्थशास्त्र) और दण्डनीति (राजनीतिशास्त्र) की शिक्षा वाल्मीकि ने कुश-लव को दी थी।

तयोस्त्रयीवर्जमितरास्तिस्रो विद्याः सावधानेन परिनिष्ठापिताः। तदनन्तरं भगवतैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय त्रयीविद्यामध्यापितौ।

(उत्तर० अंक २ वाक्य० १८)

क्षत्रिय बालक आयुर्वेद, धनुर्वेद और गान्धर्ववेद भी पढ़ते थे। उपनयन के बाद षडङ्ग वेदों की शिक्षा दी जाती थी।

इतराः 'आयुर्वेदो धनुर्वेदस्तथा गान्धर्वनामकः' इत्यर्थः। (वीरराघव)

गृहस्थ लोग विवाह के बाद आहिताग्नि (अग्निहोत्री) होते थे। गृहस्थ जीवन में व्यक्तियों को झंझट लगे रहते थे, अतः उनका जीवन प्रायः कष्टमय होता था।

संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता। (उत्तर० १–८)

दुर्जन उनके सत्कार्यों में विघ्न डालते रहते थे।

दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति। (उ० १ वाक्य० ८४)

दाम्पत्य-जीवन सुख का सार माना जाता था।

भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत् प्रार्थ्यते। (उ० १–३९)

स्त्री को प्रसन्न रखना पति अपना कर्तव्य समझता था।

कान्तानुवृत्तिचातुर्यमपि शिक्षितं वत्सेन। (उ० ३ वाक्य० ७३)

गर्भवती स्त्री की इच्छा (दोहद) को पूर्ण करना आवश्यक कार्य माना जाता था।

यः कश्चिद् गर्भदोहदो भवत्यस्याः सोऽवश्यमचिरान्मानयितव्यः।

(उ० १ वाक्य० २९)

यज्ञ में पति के साथ पत्नी भी बैठती थी। पत्नी के अभाव में उसकी स्वर्ण-मूर्ति रखकर काम चलाया जाता था।

हिरण्मयी सीताप्रतिकृतिर्गृहिणीकृता। (उ० २ वाक्य० ४६)

समाज में स्त्रियों का स्थान ऊँचा नहीं था। जनता रूढिवादों से ग्रस्त थी। सीता की अग्निशुद्धि पर भी लोगों ने अविश्वास किया। अनुचित अन्धविश्वास के कारण राम को बाध्य होकर सीता-परित्याग करना पड़ा।

यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः। (उ० १–५)
देव्यामपि हि वैदेह्यां सापवादो यतो जनः। (उ० १–६)

जनता स्त्री-निन्दा और स्त्री-विषयक अफवाहों में विशेष दिलचस्पी लेती थी। साथ ही एक शिष्ट वर्ग ऐसा भी था जो स्त्रियों को पूर्ण सम्मान देना चाहता था।

समन्ततः प्रवृत्तबीभत्सकिंवदन्तीकाः पौराः। (उ० ४–३७)
आलर्कं विषमिव सर्वतः प्रसृप्तम्। (उ० १–४०)
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि (उ० १–१४)

स्त्रियाँ आभूषण एवं कंकण धारण करती थीं। (अयमागृहीतकमनीय-कंकणः०, (उ० १–१८)। नव-वधू का सास आदि विशेष आदर करती थीं। (नूतने दारसंग्रहे, मातृभिश्चिन्त्यमानानाम्०, उ० १–१९)। सती स्त्री अग्नि के तुल्य पवित्र मानी जाती थी। (अग्निरिति वत्सां प्रति लघून्यक्षराणि, उ० ४ वा० ३९)

स्त्रियाँ वेद और वेदान्त आदि दर्शन पढ़ती थीं तथा ब्रह्म-विद्या की उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं।

आत्रेयी—तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां
वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि॥ (उ० २–३)

दम्पती के लिए पुत्र-प्राप्ति का बहुत महत्त्व था। वह आनन्द की ग्रन्थि माना जाता था।

आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति पठ्यते। (उ० ३–१७)

अतिथिसत्कार गृहस्थ का मुख्य कार्य था। वह फल-फूल और अर्घ से अतिथिसत्कार करता था।

फलकुसुमगर्भेण पल्लवार्घ्येण दूरान्मामुपतिष्ठते। (उ० २ वा० २)

वृद्धावस्था में पुत्रों को उत्तराधिकारी बनाकर वानप्रस्थ लेते थे और जटा आदि रखते थे।

पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद् वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम्।
धृतं बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यकव्रतम्।। (उ० १–२२)

ब्राह्मण अपनी विद्या और वाणी के बल के लिए प्रसिद्ध होते थे। उनकी वाणी में तेज होता था। ये तत्त्वज्ञानी और सिद्ध होते थे। ये असत्यभाषण को महापाप समझते थे।

भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता
नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति।। (उ० ४–१८)
सिद्धं ह्येतद् वाचि वीर्यं द्विजानाम्०। (उ० ५–३२)

ऋषि महर्षि सहस्रों वर्ष की समाधि लगाते थे और वे अपने तपोबल से इष्टसिद्धि प्राप्त करते थे। वे तपोबल से जृम्भक आदि अस्त्रों को सिद्ध करते थे। वाल्मीकि जैसे महर्षि अपने तपोबल से सारे चराचर जगत् को एकत्र कर सकते थे।

परःसहस्रं शरदस्तपांसि, एतान्यपश्यन् गुरवः पुराणाः० (उ० १–१५)
वाल्मीकिना···सचराचरो भूतग्रामः स्वप्रभावेण संनिधापितः।
(उ० ७ वा० १)

क्षत्रिय बालक बाल्यावस्था में वेदत्रयी के साथ धनुर्विद्या आदि की उच्च शिक्षा प्राप्त करते थे। वे युद्ध-विद्या में निपुण होते थे। कुश, लव और चन्द्रकेतु उच्चकोटि के योद्धा थे। राजा लोकोपकारी कार्य में व्यस्त रहता था। प्रजा-पालन उसका मुख्य कार्य था। वह राक्षसों का नाश करता था। यश को परम-धन समझता था। राम प्रजारंजनार्थ सीता तक को छोड़ते हैं।

१. यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।। (उ० १–१२)

२. युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्या-
स्तस्माद् यशो यत् परमं धनं वः।। (उ० १–११)

३. माधुरस्य····उन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि। (उ० १ वा० १४५)

४. जगतामाभ्युदयिकैः कार्यैर्व्याप्तस्य रामभद्रस्य०। (उ० ३ वा० ८)

वासन्ती ने राम से कहा है कि पत्नी-रक्षा भी तुम्हारा कर्तव्य है। सीता-परित्याग से तुमने बड़ा अपयश प्राप्त किया है।

अयि कठोर यशः किल ते प्रियं
किमयशो ननु घोरमतः परम्०। (उ० ३–२७)

क्षत्रिय राजकुमार आग्नेय, वारुण, वायव्य और जृम्भक आदि अस्त्रों की भी विशेष योग्यता प्राप्त करते थे। (उ० ६ वा० १–६)

जनक जैसे राजर्षि आवश्यकतानुसार चाप और शाप दोनों का प्रयोग कर सकते थे। (चापेन शापेन वा, उ० ४–२४)

समाज में शूद्रों का स्थान निकृष्ट था। उन्हें तपस्या करने का अधिकार नहीं था। ब्राह्मण-बालक की अकालमृत्यु के लिए शूद्र को दोषी ठहराया गया और राम ने उसका वध किया।

शम्बूको नाम वृषलः पृथिव्यां तप्यते तपः।
शीर्षच्छेद्यः स ते राम तं हत्वा जीवय द्विजम्॥ (उ०२–८)

उस समय यज्ञों और संस्कारों का बहुत महत्त्व था। ऋृष्यशृंग ने १२ वर्ष चलने वाला यज्ञ किया था। (द्वादशवार्षिकं सत्रमारब्धम्, उ० १ वा० ७)। राम ने अश्वमेधनामक यज्ञ किया। वाल्मीकि ने कुश-लव का उपनयन संस्कार किया और वेदादि की शिक्षा दी। (उ० २ वा० १८)।

उस समय बहुत सी मान्यताएँ प्रचलित थीं। भवभूति ने कुछ मान्यताओं का उल्लेख किया है। उस समय तीर्थों और तीर्थजल की पवित्रता का बहुत महत्त्व था।

तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः। (उ० १–१३)

गंगा के पवित्र जल के प्रभाव से भगीरथ ने कपिलमुनि के शाप से भस्म हुए अपने पूर्वज ६० हजार सगरपुत्रों का उद्धार किया और वे स्वर्ग को गए।

अगणिततनूतापस्तप्त्वा तपांसि भगीरथो
भगवति, तव स्पृष्टानद्भिश्चिरादुदतीतरत्॥ (उ० १–२३)

राम सीता की रक्षा के लिए गंगा से प्रार्थना करते हैं। गंगा की शक्ति से सीता को अदृश्य होने का वरदान मिला। राम भी सीता को नहीं देख पाते हैं।

न त्वामवनिपृष्ठवर्तिनीमस्मत्प्रभावाद् वनदेवता अपि द्रक्ष्यन्ति किमुत मर्त्याः।
(उ० ३ वा० ६)

तपस्या से विराट् लोकों की प्राप्ति होती है और ऐसे व्यक्ति देवयान से जाते हैं।

वैराजा नाम ते लोकास्तैजसाः सन्तु ते शिवाः। (उ० २–१२)
शिवास्ते पन्थानो देवयानाः। (उ० २ वा० ६४)

बच्चों की वर्षगाँठ मनाने की प्रथा थी। सीता कुश-लव की १२वीं वर्षगाँठ मनाती हैं।

कुशलवयोर्द्वादशस्य जन्मवत्सरस्य संख्यामंगलग्रन्थिरभिवर्तते।
(उ० ३ वा० ६)

उस समय कलाप्रियता उन्नति की ओर अग्रसर थी। प्रथम अंक में वर्णित चित्रवीथि से इसकी पुष्टि होती है। वाल्मीकिरचित नाटक का अभिनय भरत ने अप्सराओं से करवाया है, इससे सिद्ध होता है कि उस समय ऐसे भी नाटकों का अभिनय होता था, जिसमें केवल स्त्रीपात्र ही अपना और पुरुष-पात्रों का भी अभिनय करते थे।

स किल भगवान् भरतस्तमप्सरोभिः प्रयोजयिष्यतीति। (उ० ४ वा० ६६)

उस समय लोगों को पुष्पक विमान की सत्ता तथा उसके उपयोग पर पूर्ण विश्वास था। राम पुष्पक विमान से दण्डकवन की यात्रा करते हैं और फिर विमान से ही अयोध्या लौट जाते हैं। राम के कथन पर विमान रुकता और उतरता है।

विमानराज, अत्रैव स्थीयताम्। (उ० ३ वा० २०)
प्रजविना पुष्पकेण स्वदेशमुपगत्याश्वमेधाय सज्जो भव। (उ० २ वा० ६७)

भवभूति ने दार्शनिक विचारों का भी उल्लेख किया है। कर्मफल और भवितव्यता पर लोगों का विश्वास था।

भवितव्यं तथेत्युपजातमेव। (उ० ४ वा० ५१)

भवभूति ने कई स्थानों पर शब्दब्रह्म और विवर्त का उल्लेख किया है तथा रामायण को शब्दब्रह्म का विवर्त माना है। विवर्तवाद वेदान्तदर्शन का

पारिभाषिक शब्द हैं। इसका अर्थ है--किसी वस्तु का अतात्त्विक रूपान्तरण। जैसे--ब्रह्म से अविद्या या माया। वह अन्य रसों को भी करुण रस का विवर्त मानता है। उसने सांख्यसंमत परिणामवाद या विकारवाद (तात्त्विक विकार) की भी चर्चा की है। उसने वेदान्तविद्या का भी उल्लेख किया है। अगस्त्य उस समय बड़े ब्रह्मवेत्ता और तत्त्वज्ञानी थे। वे उद्गीथविद् अर्थात् ओम्रूपी त्रिगुणात्मक एकाक्षर ब्रह्म के ज्ञाता थे।

१. **शब्दब्रह्मणस्तादृशं विवर्तमितिहासं रामायणं प्रणिनाय।** (उ० २ वा० २४)
२. **शब्दब्रह्मविदः कवेः०** (उ० ७-२२)
ब्रह्मणीव विवर्तानाम्० (उ० ६-६)
३. **एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्···श्रयते विवर्तान्।**
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्०। (उ० ३-४७)
४. **अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति।**
तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां, वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि। (उ० २-३)

उसने पुनर्जन्म के सिद्धान्त की चर्चा की है।

संजीवितः शिशुरसौ मम चेयमृद्धिः। (उ० २-११)

आत्महत्या के पाप से मनुष्य प्रकाशरहित लोकों को प्राप्त होता है।

असूर्या नाम ते लोकाः प्रेत्य तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिनः। (उ० ४ वा० २४ ख)

इस प्रकार हमें उत्तररामचरित से तत्कालीन सामाजिक स्थिति एवं धार्मिक और दार्शनिक विचारों का पर्याप्त विवरण प्राप्त होता है।

(१०) भवभूति का शास्त्रीय और कलात्मक पाण्डित्य

भवभूति की कृतियों को देखने से ज्ञात होता है कि उसका शास्त्रीय और कला-विषयक ज्ञान अगाध था। उसने वेद, उपनिषद्, दर्शन, धर्मशास्त्र, नीति-शास्त्र, राजनीति, धनुर्वेद, साहित्य, कामशास्त्र, व्याकरण, ज्योतिष, संगीत, नृत्य, चित्रकला, मनोविज्ञान, भूगोल और इतिहास आदि का गंभीर अध्ययन किया था। भवभूति के पांडित्य-सूचक स्थल अनेक हैं। उत्तररामचरित के अतिरिक्त उसने

मालतीमाधव और महावीरचरित में भी बहुत से ऐसे प्रसंग दिए हैं। यहाँ पर मुख्य रूप से उत्तररामचरित में प्राप्य स्थलों का ही संकेतमात्र दिया गया है। मालतीमाधव[1] में भवभूति ने कहा है कि उसने वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग आदि का उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त किया है, किन्तु नाटक में उनके ज्ञान के प्रदर्शन की कोई आवश्यकता नहीं है। तीनों नाटकों में उसने अपने आपको पदवाक्यप्रमाणज्ञः कहा है। इसका अर्थ है कि वह व्याकरण, न्यायशास्त्र और मीमांसादर्शन का विद्वान् था। (क) **वेदज्ञान**--उसने निम्नलिखित स्थलों पर वैदिक साहित्य के ज्ञान का परिचय दिया है :--(१) यत्रानन्दाश्च मोदाश्च० (२-१२) में वैराज लोकों का वर्णन है। ऋग्वेद (९-११३-११) में भी ऐसा ही वर्णन है--यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते। (२) भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मी-निषक्ता० (४-१८) में ब्रह्मवित् ब्राह्मणों की वाणी की सत्यता का वर्णन है। यह ऋग्वेद (१०-७१-२) का ही रूपान्तर में वर्णन है--भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि। (३) ब्रह्मद्विषो ह्येष निहन्ति सर्वानाथर्वणस्तीव्र इवाभिचारः (महावीर० १-६२) और पुण्योऽपि······.बिभ्रदिवाथर्वणो निगमः (महा० २-२४) से ज्ञात होता है कि वह अथर्ववेद का विशेष विद्वान् था। उसने अभिचार-कर्मों आदि का वर्णन किया है। (४) पठितमेव हि युष्माभिरपि तत्काण्डम्० (४ वा० १२८) में अश्वमेधीय अश्व और उसके रक्षकों का वर्णन है। यह प्रसंग तैत्तिरीय ब्राह्मण (३-८-९-४) और शतपथब्राह्मण (१३-१-६-३) में वर्णित है। वहीं के कांड का संकेत है। (५) द्वादशवार्षिकं सत्रम् (१ वा० ७) में १२ वर्ष चलने वाले यज्ञ का वर्णन है। (६) ऋषीणां पुनराद्यानाम्० (१-१०) में वैदिक ऋषियों का उल्लेख है। (७) राजक्रतुरश्वमेधः० (२ वा० ४२) में अश्वमेध का वर्णन है। (८) अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या० (४ वा० २४ ख) में आत्महत्या को घोर पाप बताया है। यह यजुर्वेद (४०-३) के मन्त्र असुर्या नाम० का ही निर्देश है। (९) उषसमिव वन्दे० (४-१०) और स त्वां पुनातु देवः० (४ वा० ३५) में ऋग्वेदोक्त उषा और सूर्य की स्तुति है। (१०) देवस्त्वां सविता० (५-२७) में सूर्य-स्तुति वाले ऋग्वेदीय मन्त्रों का अनुकरण है। (११) ऋषयो०

१. यद् वेदाध्ययनं तथोपनिषदां सांख्यस्य योगस्य च।
ज्ञानं तत्कथनेन किं नहि ततः कश्चिद् गुणो नाटके ॥ (मालती० १-१०)

(५–२६) और कामं दुग्धे० (५–३०) तथा वाक्य (५ वा० ५७) वैदिक भाषा के अनुकरण पर लिखे गए हैं। **(ख) उपनिषद्**—(१) उद्गीथविदो वसन्ति (२–३) में छन्दोग्य उपनिषद् (१–१–१) में वर्णित उद्गीथ (प्रणव, ओम्) का उल्लेख है। (२) आविर्भूतशब्दप्रकाशम्० (२ वा० २४) में उपनिषदों में वर्णित ब्रह्मज्ञान का निर्देश है। (३) यत्रानन्दाश्च० (२–१२) में आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात् (तैत्तिरीय उप० ३–६) से संबद्ध आनन्द आदि का वर्णन है। (४) अथ स्वस्थाय देवाय० (महावीर० १–१) में वर्णित चैतन्य ब्रह्म उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म ही है। यथा—नित्यो नित्यानां० (श्वेताश्व० उप० ४–१३), य आत्मा० (छा० उप० ८–७–३), तद्देवा ज्योतिषां ज्योतिः (बृहदा० उप० ४–४–१६)। (५) पन्थानो देवयानाः (२ वा० ६४) में वर्णित देवयान प्रश्नोपनिषद् आदि में वर्णित है। (६) याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ (४–६) याज्ञवल्क्य ने जनक को ब्रह्मविद्या की शिक्षा दी, यह बृहदारण्यक उपनिषद् (५-४-१–२३) की ओर स्पष्ट निर्देश है। **(ग) दार्शनिक सिद्धान्त**—(१) साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः (उ० ७ वा० ८), साक्षात्कृत-ब्रह्मणामृषीणां० (महा० ४ पृष्ठ १५५) में साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः (निरुक्त १–२०) की व्याख्या है। (२) ब्रह्मणीव विवर्तानाम्० (६–६), शब्दब्रह्मणस्तादृशं विवर्तम्० (२ वा० २४), एको रसः ········ विवर्तान् (३–४७) में वेदान्तदर्शनोक्त विवर्तवाद की व्याख्या है। (३) प्रचीयमान-सत्त्वप्रकाशाः० (५ वा० ३०) में सांख्य के सत्त्वगुण का निर्देश है और मन्त्रद्रष्टा का उल्लेख है। (४) ऋतंभराणि ····· प्रज्ञानानि (७ वा० ८) में योगदर्शन में वर्णित ऋतंभरा प्रज्ञा का वर्णन है। (५) महावीरचरित में एक वाक्य में ही योगदर्शन के चार सूत्रों का भावार्थ दिया है :—चतस्रो मैत्र्यादिभावनाः। विशोका ज्योतिष्मती चित्तवृत्तिः। ऋतंभराभिधानं···प्रज्ञानम्। (महा० ३–४ के बाद पृ० ६६–६७) में योगदर्शन के (१–३३, ३६, ४७, ४८) सूत्रों का भावार्थ है। (६) मालतीमाधव अंक ४ और ६ में योगदर्शन की सिद्धियों आदि का विस्तृत वर्णन है। गुरुचर्यातपस्तन्त्रमन्त्रयोगाभियोगजाम्। इमामाकर्षिणीं सिद्धिम्० (मा० ६–५३) में तप, तन्त्र, मन्त्र और योग का स्पष्ट उल्लेख है तथा आकर्षिणी सिद्धि का वर्णन है। तन्त्रशास्त्रों में षट्कर्माणि में आकर्षण का भी उल्लेख है। प्रभवति महिम्ना स्वेन योगीश्वरीयम् (मालती० ६–५४) में

योगीश्वरी का वर्णन है। मन्त्रसाधनात्० (मालती० ५–२५) में मन्त्रसाधना का उल्लेख है। तन्मयमिव करोति वृत्तिसारूप्यतश्चैतन्यम् (मा० ५–९ के बाद पृ० ११७) में योगदर्शन के सूत्र १. ३–४ का शब्दशः उल्लेख है। (७) वन्देमहि च तां वाणीममृतामात्मनः कलाम् (उ० १–१) में अक्षर वाग्ब्रह्म का वर्णन है। (८) पदवाक्यप्रमाणज्ञः (उ० १ वा० २) में प्रमाणज्ञः से कवि मीमांसादर्शन में विशेषज्ञता बताता है। (९) प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्मणि (उ० २ वा० २४) में वाग्ब्रह्म का वर्णन है और रामायण को शब्दब्रह्म का विवर्त माना है। (शब्दब्रह्मणस्तादृशं विवर्तम्, उ० २ वा० २४)। (१०) विद्यां वागिव याम-सूत भवती० (उ० ४–५) में वाक्तत्त्व को ज्ञान का आधार और कारण बताया गया है। (११) युगान्तयोगनिद्रानिरुद्धसर्वद्वारं० (उ० ६ वा० ९) में योगनिद्रा का वर्णन है। (१२) अव्याहतान्तःप्रकाशा हि देवताः सत्त्वेषु (उ० ७ वा० ४१) में देवों की सर्वशक्तिमत्ता का वर्णन है। (१३) शब्दब्रह्मविदः (७–२१) में व्याकरणदर्शन में प्रतिपादित शब्दब्रह्म का वर्णन है। (१४) भो निगृहीतोऽसि (उ० ४ वा० १२) में न्यायदर्शन में वर्णित निग्रहस्थान का उल्लेख है।

(घ) मनोविज्ञान—भवभूति ने अनेक स्थानों पर मनोविज्ञान के सिद्धान्तों और तथ्यों का उल्लेख किया है। (१) नूनं संकल्पाभ्यासपाटवोपादान० (उ० ३ वा० ५२) में विचारों का मनुष्य पर प्रभाव वर्णित है। (२) संतानवाहीन्यपि० (उ० ४–८) में प्रिय-वियोगजन्य दुःख में संबन्धियों के दर्शन को अधिक दुःखद बताया गया है। (३) दरविस्पष्ट० (उ० ४ वा० ७०) में कौसल्या आकृति और ध्वनि से लव को राम का पुत्र मानती है। (४) मम मनः पारिप्लवं धावति (उ० ४–२२) में सीतास्मरण से मानसिक चंचलता का वर्णन है। (५) यदृच्छासंवादः० (उ० ५–१६) में दर्शनमात्र से प्रेमाविर्भाव को प्राचीन संस्कार-जन्य बताया गया है। (६) तारामैत्रकं चक्षूराग इति (उ० ५ वा० ३३) और अहेतुः पक्ष-पातो० (५–१७) में प्रेम को अकारण एवं सहज बताया गया है। यथेन्दावानन्दं० (५–२६) में भी यही भाव है। (७) विरोधो विश्रान्तः० (६–११) में महापुरुष के दर्शन का मन पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह वर्णित है। (८) व्यतिषजति० (६–१२) और स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्ष इति विप्रतिषिद्धमेतत् (उ० ६ वा० १६) में प्रेम को आन्तरिक कारणों पर निर्भर एवं अकारण बताया गया है। (९) चिरध्यानविनोद० (उ० ६ वा० ६५) में प्रियवियोग का मन

पर क्या प्रभाव पड़ता है, वर्णित है। (१०) जितमपत्यस्नेहेन (उ० ७ वा० ३२) में संतान-प्रेम के प्रभाव का वर्णन है। (११) सर्वसाधारणो·····संसारतन्तुः (उ० ७ वा० ३२) में सन्तान-प्रेम को संसार का संयोजक तत्त्व बताया है। (१२) क्षुभिताः कामपि दशां० (७–१२) में करुणभाव के प्रभाव का वर्णन है।

(ङ) धर्मशास्त्र—भवभूति ने धर्मशास्त्रों में वर्णित सिद्धान्तों और मन्तव्यों का अनेक स्थानों पर वर्णन किया है। (१) चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में मधुपर्क संमास होता है या अमांस, इसका विस्तृत वर्णन किया है। (समांसो मधुपर्कः······ धर्मसूत्रकाराः समामनन्ति, उ० ४ वा० ११)। (२) पराक, सान्तपन आदि तपों का वर्णन। (परापकसान्तपनप्रभृतिभिस्तपोभिः० उ० ४ वा० २४)। मनुस्मृति (११–२१२, २१५) में इन तपों का वर्णन है। (३) किं त्वनुष्ठान-नित्यत्वं० (१–८) गृहस्थों का कर्तव्य है कि वे पंचयज्ञादि अनुष्ठान नियम से करें। (४) युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्याः० (१–११) राजा का कर्तव्य है कि वह प्रजा को सन्तुष्ट रखे। (५) तीर्थोदकं च वह्निश्च० (१–१३) तीर्थजल और अग्नि सदा पवित्र हैं। (६) पुत्रसंक्रान्त० (१–२२) वानप्रस्थ का कर्तव्य है कि वह गृहत्याग करके वन में साधना करे। एतानि तानि० (१–२५) वान-प्रस्थ वृक्षों के नीचे रहें और युक्ताहारविहार हों। (७) सतां केनापि० (१–४१) राजा का कर्तव्य है कि सर्वस्व त्याग करके भी प्रजा को सन्तुष्ट रखे। (८) ऋषीणाम्० (१–५०) राजा शत्रुओं और राक्षसों का नाश करे। (९) यथेच्छा० (२–१) अतिथि की जल, फल-मूल से सेवा करे। (१०) प्रियप्राया० (२–२) सज्जन निश्छल भाव से प्रेम करते हैं और प्रिय वचन बोलते हैं।११) (इतरेतरानुरागो······मनश्चक्षुषोर्निर्बन्धः० (मालती० २ निर्णय० पृ० ५९)। विवाह वहाँ करना चाहिए, जहाँ दोनों ओर से प्रेम हो और जो मन तथा आँखों को प्रिय हो। (१२) यज्ञे सहधर्मचारिणी (२ वा० ४५) यज्ञ में स्त्री पति के साथ बैठे। (१३) अयि कठोर यशः० (३–२७) अपनी पत्नी की रक्षा करना भी राजा का कर्तव्य है। (१४) स्वयमुपेत्यैव० (४ वा० २७) स्वयं बड़ों के पास जाकर उनका सत्कार करना चाहिए। (१५) कन्यायाः किल० (४–१७) वर-पक्षीय व्यक्ति कन्यापक्ष के पूज्य होते हैं। (१६) अविज्ञातवयः० (४ वा० ६६) अपरिचित पूजनीयों को सामूहिकरूप से प्रणाम करे। (१७) न रथिनः पादचारम्० (५ वा० ३८) रथी रथी से युद्ध करे और पैदल-पैदल से,

यह शास्त्रकारों का मत है। (१८) इतिहासं० (५-२३) वृद्धजन कुल-परम्पराओं और मर्यादाओं को जानते हैं। (१९) न तेजस्तेजस्वी० (६-१४) क्षत्रिय का कर्तव्य है कि वह वीर के साथ वीरता प्रकट करे। **(च) नीतिशास्त्र**—(१) सर्वथा व्यवहर्तव्यं० (१-५) लोकापवाद की चिन्ता न करके जैसा ठीक समझे वैसा करे। (२) किन्तु संतापकारिणो० (१ वा० १५) इष्ट व्यक्ति का वियोग दुःखदायी होता है। (३) पुरन्ध्रीणां चित्तं० (४-१२) स्त्रियों का चित्त फूल के तुल्य सुकुमार होता है। (४) सुहृदिव० (४-१५) भाग्य कभी सुखद होता है और कभी अत्यन्त दुःखद। (५) भवितव्यं तथेति० (४ वा० ५१) होनहार होकर रहती है। (६) सिद्धं ह्येतद् वाचि वीर्यं द्विजानां० (५-३२) ब्राह्मणों की वाणी में शक्ति होती है और क्षत्रियों की भुजाओं में। (७) न किंचिदपि कुर्वाणः० (६-५) प्रिय व्यक्ति प्रेमी की संपत्ति है। (८) को नाम पाकाभिमुखस्य० (७-४) कर्मफल को टाला नहीं जा सकता है। **(छ) राजनीति**—(१) युक्तः प्रजानाम० (१-११), कष्टं जनः० (१-१४) राजा प्रजा को सन्तुष्ट रखे। (२) स मया पौरजानपदेष्वपसर्पः प्रहितः (१ वा० १२६) जनता की गुप्त जानकारी के लिए राजा गुप्तचरों को नियुक्त करे। (३) दुर्जना नाम० (१ वा० १३९) राजा प्रजा की निन्दा न सुने। (४) इक्ष्वाकुवंशो० (१-४४) राजा प्रजा का प्रिय हो। (५) राजधानीस्थितस्यास्य० (३ वा० ८) राजा संसार के अभ्युदय के कार्यों में व्यस्त रहे। (६) शूद्रस्य दण्डधारणार्थम्० (३ वा० २४) अनुचित कार्य करने वालों को राजा दण्ड दे। (७) अपरिहीनधर्मः खलु स राजा (३ वा० २५) राजा अपने कर्तव्यों का पालन करे। (८) इदं विश्वं पाल्यं० (३-३०) राजा दत्तचित्त होकर संसार का पालन करे। (९) न किल भवतां० (३-३२) प्रजा को संतुष्ट करने के लिए स्त्री तक का परित्याग करे। (१०) न केनचिदाश्रमा० (४ वा० ८०) ऋषियों के आश्रम में सेना प्रवेश न करे। (११) तीक्ष्णतरा० (४ वा० १३७) सैनिक शिशुओं की भी दर्पपूर्ण उक्ति को सहन न करें। (१२) वीराणां समयो हि० (५-१९) क्षत्रिय युद्धभूमि में प्रिय व्यक्ति से भी युद्ध करे। (१३) एष सांग्रामिको न्यायः० (५-२२) युद्ध करना क्षत्रिय का कर्तव्य है। (१४) इक्ष्वाकूणां० (७-६) प्रजा को संतुष्ट रखना राजा का कर्तव्य है। **(ज) धनुर्वेद**—(१) एतान्यपश्यन्० (१-१५) तपोबल से दिव्य

अस्त्र प्राप्त होते हैं। (२) सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि० (२ वा० १६) जृम्भक आदि अस्त्रों के छोड़ने और संहार के कुछ रहस्य थे। (३) मेध्याश्वरक्षा० (४ वा० ८१) अश्वमेधीय अश्व की रक्षा के लिए सशस्त्र सैनिक जाते थे। (४) सांग्रामिके च पठ्यते (४ वा० ११७) धनुर्वेद में अश्व का वर्णन है। (५) प्रत्येकं शतसंख्याः० (४ वा० १२८) अश्वमेधीय अश्व के रक्षार्थ सैकड़ों कवचधारी, दण्डधारी और तूणीरधारी रक्षक होते थे। (६) ज्याजिह्वया० (४-२६) में धनुष चलाने की विधि और किरति कलित० (५-२) में धनुष की टंकार का वर्णन है। (७) विनिर्वर्तित० (५-८) धनुष का कार्य है—शत्रुसेनासंहार। (८) संख्यातीतै० (५-१२) समबल के साथ युद्ध करे। एक के साथ अनेक युद्ध न करें। (९) व्यतिकर इव० (५-१३) जृम्भक अस्त्र का विस्फोट परमाणु बम के विस्फोट के तुल्य था। (१०) भवभूति ने षष्ठ अंक के प्रारम्भ में आग्नेय, वारुण और वायव्य दिव्य अस्त्रों का वर्णन किया है। **(झ) कामशास्त्र**—भवभूति ने अनेक स्थानों पर कामसूत्र और कामशास्त्र से परिचय दिया है। (१) भवभूति ने स्पष्ट रूप से कामसूत्र का उल्लेख किया है। (औद्धत्यमायोजित-कामसूत्रम्, मालती० १-४)। (२) मालतीमाधव में कामसूत्र का एक वाक्य ही पूरा उद्धृत किया है। (कुसुमधर्माणो हि योषितः ······ एवं किल कामसुत्तआरा मन्तेन्ति, मालती० ७, निर्णय० पृष्ठ १६८)। यह वाक्य वात्स्यायनकृत कामसूत्र के संप्रयुक्ताधिकरण के द्वितीय अध्याय में है। (३) गर्भिणी स्त्री के दोहद (इच्छाएँ) तुरन्त पूर्ण करने चाहिए। (यः कश्चिद् गर्भदोहदो०, उ० १ वा० २६)। (४) पत्नी का हस्तस्पर्श पति के लिए संजीवन-ओषधि है। (प्रियस्पर्शो हि पाणिस्ते, उ० ३-१०, संजीवनौषधिरसो० ३-११)। (५) पत्नी को प्रसन्न करने के लिए उसकी खुशामद भी करनी चाहिए। (कान्तानुवृत्तिचातुर्यमपि०, ३ वा० ७४)। (६) शिशु के स्मरण से माता के स्तनों में दूध उमड़ना। (अपत्यसंस्मरणेनोच्छ्वसितप्रस्नुतस्तनी०, ३ वा० ८१)। (७) पत्नी की दृष्टि पति के लिए स्नेह-सरिता है। (स्नपयति० ३-२३)। (८) पत्नी पति की प्राणरूपा है, दूसरा हृदय है। (त्वं जीवितं० ३-२६)। (९) पति-पत्नी में घनिष्ट आकर्षण होता है। (प्रत्युप्तस्येव० ३-४६)। (१०) युवावस्था के साथ ही स्त्री में कामभाव का उभार, स्तनादि का विस्तार

होता है। (यदा किंचित्० ६–३५), (ञ) **साहित्यशास्त्र**—(१) रस-सिद्धान्त की विशेषज्ञता का परिचय दिया है। (भूम्ना रसानां गहनाः प्रयोगाः०, मालती० १–४)। (२) करुण, वीर और अद्भुत रसों का उल्लेख। (यत्र वीरः स्थितो रसः, महावीर० १–३, एको रसः करुण एव०, उ० ३–४७, करुणाद्भुतरसं० उ० ७ वा० ७)। (३) प्रौढि, उदारता आदि काव्यगुणों का उल्लेख। (यत् प्रौढित्व-मुदारता च०, मालती० १–१०)। (ट) **नाट्यशास्त्र**—भवभूति ने नाट्य-शास्त्रकार भरतमुनि का उल्लेख किया है और उसे तौर्यत्रिक (नृत्य, गीत, वाद्य) का लेखक बताया है। (भगवतो भरतस्य तौर्यत्रिकसूत्रधारस्य, ४ वा० ६४)। अप्सराएँ नाटकीय अभिनय करती थीं। (भरतस्तमप्सरोभिः०, ४ वा० ६६)। **(ठ) व्याकरण**—(१) पदवाक्यप्रमाणज्ञः (उ० १ वा० २) में पदज्ञ से व्याकरण की विशेषज्ञता बताता है। (२) भवभूति ने अनेक स्थानों पर व्याकरण की विशेषज्ञता सूचित की है। यथा—व्यजीजनत् (१–४), अजीजनः (१–५१), अपस्किरमाण, विष्किर (२–९), आगर्जद्० (५–६), अवीवृधत् (६–२०), शब्दब्रह्म का उल्लेख (७–२१), व्ययूयुजत् (मालती० ९–४९)। **(ड) ज्योतिष**—राहु के द्वारा चन्द्र-ग्रहण। (राहोश्चन्द्रकलामिवा०, मालती० ५–२८)। **(ढ) चित्रकला**—(१) उत्तररामचरित के प्रथम अंक में चित्रवीथि का सुन्दर और आकर्षण वर्णन। (२) चित्रकार का उल्लेख। (अर्जुनेन चित्र-करेण०, उ० १ वा० ३८)। (३) चित्र देखने का हृदय पर प्रभाव। चित्र-दर्शनाद् विरहभावना०, १ वा० १२९)। **(ण) इतिहास**—अनेक स्थानों पर इतिहास के गहन अध्ययन का परिचय मिलता है। यथा—(१) याज्ञवल्क्य ने सूर्य से वेद-ज्ञान प्राप्त किया। (आदित्यशिष्यः किल याज्ञवल्क्यो०, महा० २–४३)। (२) भगीरथ के द्वारा सगरपुत्रों का उद्धार। (तुरग० १–२३)। (३) रामायण इतिहास-ग्रन्थ है (इतिहासं रामायणम्, २ वा० २४)। राम के सहयोगियों के कार्य (व्यर्थं यत्र०, ३–४५), आदिकवि वाल्मीकि (३–४८), याज्ञ-वल्क्य का जनक को ब्रह्मविद्या की दीक्षा देना (याज्ञवल्क्यो०, ४–९), इतिहास और पुराण (५–२३), राम के आपत्तिजनक कार्य (वृद्धास्ते० ५–३४), प्रलय-वर्णन (यत्प्रलय०, ६ वा० ९)। **(त) भूगोल**—भवभूति का भौगोलिक ज्ञान भी प्रशंसनीय था। उसने इन स्थानों का सुन्दर एवं विस्तृत वर्णन किया है:—पद्मावती (मालती० ९ श्लोक १–४), जनस्थान एवं प्रस्रवणपर्वत (गिरिः

प्रस्रवणो० १ वा० ७६), पम्पा सरोवर (१-३१), माल्यवान् पर्वत (१-३३), पंचवटी (२ वा० ३०), दण्डक वन (२-१६; २-२०, २१), प्रस्रवण पर्वत और गोदावरी नदी (२-२३, २४, २५), पंचवटी (२-२८), क्रौंच पर्वत (२-२६, ३०), वाडवानल (वडवावक्त्रहुतभुक्० ५-६)।

(११) भवभूति की नाट्यकला

संस्कृत साहित्य में कालिदास के बाद भवभूति का ही नाम उत्कृष्ट नाटककार के रूप में लिया जाता है। उसके मालतीमाधव, महावीरचरित और उत्तररामचरित, इन तीन नाटकों में उत्तररामचरित ही सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है। इसमें भवभूति अपने आपको परिणतप्रज्ञ (उ० ७-२१) कहता है। इसमें उसने अपनी योग्यता और विद्वत्ता का चरम रूप प्रकट किया है। यह नाटक उसकी नाटकीय प्रतिभा का सर्वोत्तम निदर्शन है। इसमें निम्नलिखित विशेषताएँ मुख्य रूप से परिलक्षित होती हैं—घटना-संयोजन में सौष्ठव, घटनाओं और वर्णनों की सार्थकता, वर्णनों में स्वाभाविकता, चरित्र-चित्रण में वैयक्तिकता, कथोपकथन में स्वाभाविकता, मनोहर शैली, देश-काल का विचार, कवित्व और रस-परिपाक। भवभूति के जीवनकाल में ही उसके तीनों नाटकों का सफलता के साथ अभिनय हो चुका था, इससे उसके नाटकों की अभिनेयता सिद्ध होती है।

धनंजय के अनुसार नाटक में तीन तत्त्व होते हैं—(१) कथावस्तु, (२) नेता या पात्र, (३) रस। आधुनिक विद्वानों के अनुसार नाटक में ६ तत्त्व होते हैं:—(१) कथावस्तु, (२) पात्र, (३) शैली, (४) कथोपकथन, (५) अन्वितियाँ, (६) उद्देश्य।

(१) कथावस्तु

(क) घटना-संयोजन में सौष्ठव—कथावस्तु की दृष्टि से उत्तररामचरित सर्वथा सफल नाटक है। इसमें घटनाएँ इस सुन्दर ढंग से समन्वित और गुम्फित हैं कि घटनाओं में पूर्ण स्वाभाविकता ज्ञात होती है। प्रथम अंक से सप्तम अंक तक की घटनाएँ इस प्रकार रखी गई हैं कि वे परस्पर समन्वित हैं। प्रथम अंक की घटनाओं का सप्तम अंक की घटनाओं से साक्षात् संबन्ध है। यदि प्रथम अंक

के चित्रदर्शन को हटा दिया जाए तो सप्तम अंक की घटनाएँ अस्पष्ट एवं दुर्बोध हो जाएँगी। द्वितीय अंक में वनदेवता वासन्ती और आत्रेयी के संवाद से कुश-लव के जन्म का विवरण मिलता है। राम शम्बूक के वधार्थ दण्डक वन में जाते हैं। दिव्यरूपधारी शम्बूक से राम का वार्तालाप। तृतीय अंक में तमसा के साथ अदृश्य रूप में सीता भी दण्डक वन में पहुँचती है। राम वनदेवता वासन्ती से मिलते हैं और दण्डक वन तथा सीता के विषय में दोनों का वार्तालाप होता है। अदृश्य सीता राम के भावों और विचारों से पूर्णतया परिचित होती है। उसके हृदय से राम के प्रति क्रोध का भाव शान्त होता है। वह मूर्छित राम को हस्तस्पर्श से पुनः होश में लाती है। दोनों अंक की घटनाएँ दण्डक वन में होती हैं और वासन्ती दोनों अंकों की घटनाओं को संबद्ध करती है। चतुर्थ से सप्तम अंक तक चारों अंक वाल्मीकि के आश्रम एवं उसके समीपस्थ भूमि में घटित हुए हैं। चतुर्थ, पंचम और षष्ठ अंक पूर्णतया संबद्ध हैं। चतुर्थ अंक में वसिष्ठ, अरुन्धती, जनक, कौसल्या आदि का एकत्र होना, लव का दर्शन; पंचम अंक में लव और चन्द्रकेतु का युद्धार्थ आह्वान; षष्ठ अंक में लव-चन्द्रकेतु का युद्ध एवं राम से मिलन, कुश का आगमन। इस प्रकार ये तीनों अंक पूर्णतया संबद्ध हैं। षष्ठ अंक के अन्त में राम के सभी इष्ट व्यक्ति वाल्मीकि के आश्रम में एकत्र हैं। सप्तम अंक प्रथम और षष्ठ दोनों अंकों से संबद्ध है। इसमें सीता का साक्षात्कार, उसकी निर्दोषता के साथ ही राम-सीता का मिलन। इस प्रकार भवभूति ने सातों अंकों को संबद्ध किया है।

(ख) **मूलकथा में परिवर्तन**--भवभूति ने मूलकथा में जो परिवर्तन किए हैं, उनका उल्लेख पहले हो चुका है। करुणरस-प्रधान एवं दुःखान्त कथानक को उसने अपनी मौलिक प्रतिभा के द्वारा अद्भुत रस का आश्रय लेकर सुखान्त बनाया है। यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि भवभूति ने रामायण की कथा में से केवल उतना ही अंश लिया है, जितना अत्यावश्यक है एवं करुण रस का पोषक है। अनावश्यक अंश छोड़ दिया है। भवभूति को यह बताना भी अभिप्रेत है कि धर्मपालन और कर्तव्यपालन का अन्त सुखद होता है।

(ग) **चित्रदर्शन का महत्त्व**--प्रथम अंक में चित्रवीथि-दर्शन कई दृष्टि से उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। (१) खिन्न राम सीता का मनोरंजन करता है।

(२) चित्रदर्शन में रामायण में प्राप्य करुणरस-प्रधान सभी दृश्यों और घटनाओं का संकलन है। इन दृश्यों का ही उत्तररामचरित के अन्य अंकों में यथास्थान विस्तृत वर्णन है। (३) चित्रदर्शन से सीता को गंगा-स्नान और वन-गमन का दोहद उत्पन्न होता है। (४) यह सीता-निर्वासन के लिए उपयुक्त परिस्थिति स्वयं उत्पन्न कर देता है। (५) इससे सीता की अग्निशुद्धि और सीता-विषयक लोकापवाद का ज्ञान होता है। इससे सीता-परित्याग में सहायता मिलती है। (६) राम का वरदान कि सीता के पुत्रों को जृम्भक अस्त्र स्वतः सिद्ध होंगे। इससे सप्तम अंक में राम को कुश-लव के पहचानने में सहायता मिलती है। (७) राम गंगा और पृथ्वी से सीता की रक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं। सप्तम अंक में दोनों अपनी कृतकृत्यता प्रकट करती हैं। (८) इससे राम-सीता के घनिष्ट दाम्पत्य-प्रेम का ज्ञान होता है। (९) चित्रदर्शन से राम-सीता के अतीत की घटनाओं का ज्ञान होता है। साथ ही उनके प्रिय स्थानों का भी पता चलता है। (१०) चित्रदर्शन सीता-परित्याग में परिणत होता है।

(घ) तृतीय अंक का नाटकीय महत्त्व—कतिपय विद्वानों ने तृतीय अंक की नाटकीय उपयोगिता पर आपत्ति की है। उनके मतानुसार यह अंक अनावश्यक और अनुपयुक्त है। इस अंक को हटा दिया जाए तो भी नाटक को कोई क्षति नहीं होती है। ये विचार सुसंगत नहीं हैं। यह अंक नाटकीय दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। (१) सीता-परित्याग के बाद घटित अनेक घटनाओं का इससे बोध होता है। यथा—कुश-लव की उत्पत्ति की विस्तृत सूचना, सीता-परित्याग के बाद राम की शारीरिक और मानसिक स्थिति, सीता-परित्याग के १२ वर्ष बीत जाना, राम का अश्वमेध यज्ञ करना और उसमें सीता की प्रतिमा को रखना। (२) राम और सीता की मानसिक स्थिति का मनोवैज्ञानिक अध्ययन। (३) इस अंक में सीता का अदृश्य होकर राम को देखना, यह भवभूति की नवीन कल्पना एवं योजना है। सीता का अदृश्य होकर रहना और राम से वार्तालाप करना, यह एक सुन्दर नाटकीय सृष्टि है। भवभूति ने संभवतः इसके लिए छाया-नृत्यों से प्रेरणा प्राप्त की है। छाया-नृत्यों के अनुकरण पर उसने छाया-नाटक की एक छटा इस अंक में प्रस्तुत की है। राम सीता को नहीं देख रहे हैं। वे वासन्ती से वार्तालाप के मध्य सीता के विषय में अपने हार्दिक विचार सुस्पष्ट

रूप से प्रकट करते हैं। सीता राम की प्रत्येक गतिविधि को देख रही है। वह राम की बातों का उत्तर भी देती है, जिसे दर्शक सुन सकते हैं। वह राम के प्रेम-मूलक विचारों को सुनकर सन्तुष्ट है। राम के वचनों से उसका क्रोध दूर हो जाता है। वह अपने हस्तस्पर्श से राम के प्राणों की रक्षा भी करती है। (४) यदि इस अंक में अदृश्य सीता की उपस्थिति न दिखाई गई होती तो राम और सीता में विद्यमान क्रोध या आवेश की भावना समाप्त न होती। यह अंक राम-सीता के पुनर्मिलन के लिए अत्यन्त सुदृढ सोपान है। राम के हार्दिक प्रेम के कारण सीता द्रवित है और सीता के हार्दिक स्नेह से राम द्रवित हैं। सीता-परित्याग होने पर भी दोनों का अन्योन्यानुराग नाममात्र को भी न्यून नहीं हुआ है। (५) अदृश्य सीता की उपस्थिति इस अंक में प्राणसंचार कर देती है। एक ओर दर्शक करुणरस के प्रवाह में मग्न हो जाते हैं, दूसरी ओर दृश्य राम और अदृश्य सीता के वार्तालाप को सुनकर आश्चर्यचकित रहते हैं। केवल करुण रस के प्रवाह से जो थकान उत्पन्न होती है, उसे यह दृश्य-वैचित्र्य तत्क्षण दूर करता जाता है। साथ ही दर्शक राम और सीता के मनोभावों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर पाता है। (६) तृतीय अंक वस्तुतः उत्तररामचरित का प्राणस्वरूप है। यही अंक है, जहाँ पर भवभूति ने करुण रस की हृदय खोलकर अभिव्यक्ति की है। पुट-पाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः (३–१) से यह करुण रस प्रारम्भ करके एको रसः करुण एव० (३–४७) के साथ स्वाभिमत समाप्त किया है। (७) दृश्य-वैचित्र्य, मनोभावों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, छाया-नाटक की सृष्टि, करुणरस का सतत-प्रवाह और दाम्पत्य-जीवन की झांकी, इनकी सुन्दर अभिव्यक्ति के कारण तृतीय अंक नाटकीय और सामाजिक दोनों दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

(ङ) **घटनाओं और वर्णनों की सार्थकता**—भवभूति ने उत्तररामचरित में प्रत्येक घटना बहुत सोच-समझ कर रखी है। घटनाओं और वर्ण्य वस्तुओं का संकलन बहुत सावधानी से किया गया है। प्रत्येक घटना किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए है। यदि किसी एक घटना को हटाया जाएगा, तो उससे कथानक में न्यूनता आ जाएगी। चित्रदर्शन में और तृतीय अंक में जितनी घटनाएँ वर्णित हैं, उनका प्रमुख लक्ष्य है——करुण रस के परिपाक में योग देना। कोई भी घटना ऐसी नहीं है, जो करुणरस को पुष्ट न करती हो। प्रथम अंक में चित्रवीथि-दर्शन,

द्वितीय अंक में शम्बूक-वध, जनस्थान-दर्शन, तृतीय अंक में पंचवटी-वर्णन, चतुर्थ अंक में जनक का कौसल्या और अरुन्धती से संवाद तथा लव से वार्तालाप, पंचम अंक में लव और चन्द्रकेतु का वीर-संवाद, षष्ठ अंक में लव-चन्द्रकेतु का दिव्य अस्त्रों से युद्ध, राम का आगमन, उनका लव-कुश से मिलना, सप्तम अंक में सब की स्वीकृति से राम का सीता को स्वीकार करना, ये सभी घटनाएँ नाटकीय दृष्टि से अत्यन्त सार्थक हैं। ये रस-निष्पत्ति में सहायक हैं।

(च) वर्णनों में स्वाभाविकता—भवभूति ने घटनाओं को इस क्रम से सजाया है कि उनके वर्णन पूर्णतया स्वाभाविक ज्ञात होते हैं। चित्रवीथि के दृश्यों का वर्णन, पंचवटी की पूर्वानुभूत वस्तुओं का वर्णन, अश्वमेधीय अश्व का वर्णन, अश्वरक्षकों का वर्णन, राम का लव-कुश से संवाद तथा सप्तम अंक में जृम्भक अस्त्र-वर्णन तथा सीता के जल से निकलने के वर्णन, अत्यधिक स्वाभाविकता से ओत-प्रोत हैं।

(छ) कतिपय न्यूनताएँ—श्री प्रो० शारदारंजन राय ने उत्तररामचरित के अपने संस्करण 'उत्तरचरितम्' की भूमिका में (पृष्ठ २४ से २६) नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से ६ न्यूनताओं का उल्लेख किया है। ये न्यूनताएँ कथावस्तु और नाटकीय रचना से संबद्ध हैं। संक्षेप में ये न्यूनताएँ हैं :—

(१) उत्तरराम० (अंक १ वा० २) में एषोऽस्मि····आयोध्यक:० में अयोध्यावासी होने से पूर्व उसे प्रस्तावना समाप्त करनी चाहिए। (२) नटः—भाव, प्रेषिता० (१ वा० ३) में सूत्रधार के लिए भाव पारिभाषिक शब्द है। यह अयोध्यावासी के लिए प्रयुक्त नहीं हो सकता है। (३) तत् किमिदानीं विश्रान्तचारणानि० (१ वा० २), वसिष्ठाधिष्ठिता० (१-३) में वसिष्ठ का कौसल्या आदि के साथ ऋष्यशृंग के यज्ञ में जाना संगीत बन्द होने का कारण बताया है। वसिष्ठ आदि के जाने से संगीत बन्द होना अनुचित है। (४) वत्से, कठोरगर्भेति० (१वा० ३१) सीता पूर्णगर्भा होने के कारण ऋष्यशृंग के यज्ञ में नहीं गई, किन्तु यह सब ज्ञात होते हुए भी राम उसे उसी दिन निर्वासित कर देते हैं। यह कथानक में त्रुटि है। (५) अष्टावक्र (१ वा० २६) का कथन कि सीता का दोहद तुरन्त पूर्ण करना, अनुचित है। प्रसवकाल समीप होने पर दोहद-पूर्ति का ध्यान आना कौसल्या आदि के लिए हास्यास्पद है। (६) क्रियते

यद्येषा० (१ वा० ३०) राम के कथन से ज्ञात होता है कि सीता बहुत लज्जा-शील है, परन्तु इसके बाद सीता तुरन्त गंगास्नान और वनदर्शन की इच्छा व्यक्त करके राम की बात को असत्य सिद्ध करती है। (७) अष्टावक्र द्वारा वसिष्ठ का राम को सन्देश कि––जामातृयज्ञेन····युक्तः प्रजानाम्० (१–११) तुम प्रजापालन में तत्पर रहना, अनुचित है। ऋष्यश्रृंग के यज्ञ में जाने से पूर्व वसिष्ठ का कर्तव्य था कि यह उपदेश राम को देते। त्वं बाल एवासि० से वे राम की योग्यता और कार्यदक्षता पर सन्देह करते हैं। यह अनुचित है। (८) नाहं वधूविरहिताम्० (२ वा० ४०) सीतारहित अयोध्या में अरुन्धती वसिष्ठ आदि नहीं जाएँगे। अतः वाल्मीकि के आश्रम में जाते हैं। वसिष्ठ का भी आश्रम था, वे सब वहाँ भी जा सकते थे। वाल्मीकि के आश्रम में अंक ७ में राम-सीता-मिलन होगा, यदि इसके लिए गए थे तो इस बात को प्रकारान्तर से स्वाभाविक रूप में लाना चाहिए था। (६) उत्खातलवणो० (७ वा० १११) प्रथम अंक के अन्त में गए हुए शत्रुघ्न सातवें अंक के अन्त में लवण राक्षस को मारकर लौटते हैं। प्रथम अंक की घटना को १२ वर्ष हो गए हैं। क्या लवण राक्षस को मारने में १२ वर्ष लगे?

इन न्यूनताओं का यह अभिप्राय नहीं है कि भवभूति का कृतित्व दोषपूर्ण है। भवभूति का कृतित्व अपने स्थान पर पूर्ण है। वह करुणरस के वर्णन में अनुपम है। दर्शक अश्रुपूर्ण दृष्टि से उसके नाटकों को देखते हैं। उपर्युक्त न्यूनताएँ उसकी काव्य एवं नाटकीय कला के गौरव के समक्ष नगण्य हैं। भवभूति का कर्तव्य था कि वह इन न्यूनताओं का भी परिमार्जन करता।

(२) पात्र

चरित्र-चित्रण––भवभूति चरित्रचित्रण में असाधारण पटु है। उसके पात्र सजीव एवं सक्रिय हैं। उनमें स्फूर्ति हैं एवं भाव-प्रकाशन की क्षमता है। उनमें उत्साह है और संघर्ष करने की शक्ति है। वे भावहीन एवं शून्य-हृदय नहीं हैं। उनमें मानव को मानव बनाने वाले सभी गुण हैं, जैसे––परिस्थिति के अनुसार अपने आपको बनाना, कठिन परिस्थितियों में कठोरता और सामान्य परिस्थितियों में कोमलता, दया, प्रेम, सहानुभूति, सहनशीलता आदि। वह मानव पात्रों को

मानवीय स्तर पर ही रखता है और देवों को दैवी स्तर पर। मानव का अमानवीय स्तर पर ले जाना, उसे प्रिय नहीं है। राम और सीता में भी मानवीय दुर्बलताएँ हैं। राम कर्तव्यनिष्ठ हैं। वे कर्तव्यनिष्ठा के कारण सीता का परित्याग करते हैं, परन्तु एक आदर्श पति के रूप में उन्हें सीता-वियोग से उतना ही दुःख है, जितना एक सामान्य व्यक्ति को होता है। वे बार-बार रोते हैं, विलाप करते हैं और मूर्छित हो जाते हैं। उनका रोदन मनुष्यमात्र को ही नहीं, अपितु पर्वतों और वज्र का भी हृदय द्रवित कर देता है। परित्यक्ता सीता में भी राम के प्रति सहानुभूति और सद्भाव है। वह राम के जीवन की रक्षा के लिए सदा उद्यत है। जनक राजर्षि होते हुए भी सीता-वियोग से खिन्न और विषण्ण हैं। अरुन्धती सत्त्वगुणसंपन्न श्रद्धेय तपस्विनी है। जनक के क्रुद्ध होने पर वह उन्हें शान्त करती है। लव और कुश के चरित्र में बालोचित चंचलता है। उनमें गुरुजनों के प्रति आदरभाव है। वे जनक आदि को प्रणाम करते हैं। उनमें जन्मसिद्ध वीरता और शस्त्रास्त्र-निपुणता है। वे बड़ी से बड़ी सेना को हराने की क्षमता रखते हैं। कुश जब आवेश में आता है तो लव उसे समझा कर शान्त करता है।

भवभूति के प्रत्येक पात्र अपने आप में पूर्ण हैं। प्रत्येक पात्र किसी सांस्कृतिक आदर्श को प्रस्तुत करता है। यथा—राम कर्तव्यनिष्ठा को, सीता आदर्श स्त्रीत्व को, लव क्षत्रियोचित वीरत्व को, वाल्मीकि शान्ति और सद्भावना को। भवभूति के पात्रों में गंभीरता और आत्मसंयम है। उनमें तुच्छता, हीनता और उच्छृंखलता नहीं है। उनमें चुलबुलापन की भी कमी है। भवभूति के नाटकों में विदूषक का पूर्णतया अभाव है। उसके नाटकों में अधिक गंभीरता है, अतः विदूषक का समावेश अधिक उपयुक्त नहीं होता। वह कुछ रस-भंग उत्पन्न करता। भवभूति के नाटकों में पात्रों का वैविध्य उतना नहीं मिलता है, जितना भास के नाटकों में प्राप्य है।

भवभूति के पात्रों में मौलिकता है, गंभीरता है, भावुकता है, कर्तव्यनिष्ठा है और आदर्शवादिता है, परन्तु उनमें मृच्छकटिक के पात्रों के तुल्य सजीवता और चुलबुलापन नहीं है। भवभूति के पात्र एक प्रकार के हैं। सभी गंभीर, शान्त और आदर्शवादी हैं। उनमें वैविध्य नहीं है।

(३) रस

उत्तररामचरित में करुण रस प्रधान है। अन्य रस गौण हैं। भवभूति ने करुण रस के वर्णन में अपनी असाधारण पटुता दिखाई है। वह सिद्धहस्त कवि है। करुण रस के वर्णन के साथ ही दर्शकों के नेत्रों से भी अश्रुधारा बह चलती है। उसकी वाणी में इतना रस और आकर्षण है कि शुष्क-हृदय व्यक्ति भी करुण-रसमयी गाथा सुनकर भाव-विभोर हो जाता है और अपना धैर्य खो बैठता है। रस-विषयक विस्तृत वर्णन आगे दिया गया है।

(४) शैली

भवभूति की शैली का विस्तृत वर्णन आगे दिया गया है। भवभूति मूलतः गौडी रीति का कवि है। इसके अन्य नाटकों में गौडी रीति ही प्रमुख है। उत्तररामचरित में करुणरस प्रधान है, अतः उसने गौडी रीति का बहुत संयत ढंग से प्रयोग किया है। साथ ही अधिकांश रचना वैदर्भी रीति में की है। वैदर्भी रीति में मृदु-पदावली और समास का अभाव या न्यूनता होती है।

(५) कथोपकथन या संवाद

भवभूति के संवाद सुन्दर और रस की निष्पत्ति में सहायक हैं। उसकी भाषा संयत और भाव-प्रकाशन में समर्थ है। उसके पात्र हृदय खोलकर अपने भावों का प्रकाशन करते हैं। संक्षिप्त वर्णन या संक्षेप भवभूति की प्रकृति के विरुद्ध है। वह संवादों में भी विस्तार को पसन्द करता है। अतएव संवाद कहीं-कहीं बहुत लंबे हो गए हैं। इस त्रुटि की ओर सभी आलोचकों का ध्यान गया है। इन लम्बे संवादों के कारण नाटक में कई स्थानों पर अरोचकता और गति-रोध उत्पन्न हो गया है। द्वितीय अंक में आत्रेयी-वासन्ती-संवाद, राम-शम्बूक-संवाद और अंक ३ में राम-वासन्ती-संवाद बहुत लंबे हो गए हैं। भवभूति की इस न्यूनता के कारण कतिपय आलोचकों ने उत्तररामचरित को अभिनेय नाटक न मानकर पाठ्य-नाटक की संज्ञा दी है।

(६) अन्वितियाँ या संकलनत्रय

पाश्चात्त्य नाटचकला में अन्वितियों या संकलनत्रय को बहुत महत्त्व दिया गया है। नाटक में समय, स्थान और कथानक की गति की अन्विति या संकलन

होना चाहिए, अर्थात् घटना एक ही समय की हो, एक ही स्थान की हो और सुसंबद्ध एक ही गतिशील कथा या प्रसंग होना चाहिए। भारतीय नाटककारों ने इन अन्वितियों के औचित्य को स्वीकार नहीं किया है। इन अन्वितियों को मानने पर नाटक की व्यापकता नष्ट हो जाती है। उत्तररामचरित के प्रत्येक अंक में अवश्य इन अन्वितियों का ध्यान रखा गया है। किसी अंक में ऐसी दो घटनाओं का संमिश्रण नहीं है, जो विभिन्न स्थान और काल की हों। पूरे उत्तररामचरित में इन अन्वितियों का अवश्य अभाव है। उत्तररामचरित की पूरी घटना १२ वर्ष की है। स्थान की दृष्टि से कुछ घटनाएँ अयोध्या के राजप्रासाद की हैं, कुछ जनस्थान और दण्डकवन की और कुछ वाल्मीकि के आश्रम की। कथानक में भी पूरी उत्तर-रामकथा है। तृतीय अंक में नाटकीय त्वरा नहीं है।

(७) उद्देश्य

इस नाटक का उद्देश्य है—राजा का परम कर्तव्य है कि वह प्रजा का अनुरंजन करे। राम ने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए सीता का परित्याग किया। कर्तव्यपालन का अन्त सुखद होता है, अतएव नाटक के अन्त में राम-सीता-मिलन होता है। इसमें चतुर्वर्ग की दृष्टि से धर्म की प्रधानता है।

(८) नाट्यशास्त्र पाण्डित्य

(क) कथावस्तु—इसमें आधिकारिक कथा रामायण में वर्णित उत्तर-रामकथा है। राम के द्वारा सीता का परित्याग और अन्त में पुनर्मिलन। यह कथा रामायण पर आश्रित है, अतः प्रख्यातवृत्त है। राजशेखर ने इसे एकनायक परक्रियारूप इतिहास का उदाहरण माना है।

(ख) अर्थप्रकृतियाँ—(१) **बीज**—'नटः—देव्यामपि हि वैदेह्यां ......' से लेकर 'नटः—सर्वथा ऋषयो देवाश्च श्रेयो विधास्यन्ति' तक। (अंक १ वाक्य ११ से १३ तक)। सीता-विषयक जनापवाद इसका बीज है, साथ ही अन्त सुखद होगा, इसकी सूचना मिलती है। (२) **बिन्दु**—'मुरला—सखि तमसे ...' से लेकर 'अनिर्भिन्नो .... रामस्य करुणो रसः' (अंक ३ वा० २)। राम का करुण रस और उसकी दयनीय स्थिति नाटक का बिन्दु है। शम्बूक-वृत्तान्त के कारण विच्छिन्न मूलकथा को पुनः जोड़ता है। (३) **पताका**—लव के प्रसंग

को पताका कह सकते हैं। (४) **प्रकरी**—शम्बूक का प्रसंग प्रकरी है। (५) **कार्य**—राम और सीता का पुनर्मिलन है।

(ग) पाँच अवस्थाएँ—(१) **आरम्भ**—'रामः—यथा समादिशति भगवान् मैत्रावरुणिः····आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा। (अंक १ वाक्य ३४)। लोकानुरञ्जनार्थ प्राणप्रिया सीता को भी छोड़ सकता हूँ। राम का लक्ष्य है—प्रजानुरंजन। (२) **यत्न**—रामः—हन्त हन्त, संप्रति विपर्यस्तो जीवलोकः०, दुःखसंवेदनायैव····वज्रकीलायितं हृदि। (अंक १ वाक्य १४१ ख)। यहाँ से लेकर द्वितीय अंक में विष्कम्भक की समाप्ति तक। वासन्ती—अपि नाम रामभद्रः पुनरिदं वनमलंकुर्यात् (अंक २ वा० ५१) तक। खिन्न राम की दण्डक वन में आने की संभावना होती है। (३) **प्राप्त्याशा**—रामः—···करपल्लवः स तस्याः···स्विद्यतः स्विद्यन्। (अंक ३ वा० १५८) से लेकर 'उपायानां···निरवधिरयं तु प्रविलयः (अंक ३ श्लोक ४४) तक। इसमें सीता की प्राप्ति की आशा होती है। (४) **नियताप्ति**—देव्यौ—जगन्मङ्गलमात्मानं····पवित्रत्वं प्रकृष्यते। (अंक ७ श्लोक ८)। इससे सीता की पूर्ण पवित्रता सिद्ध होती है और राम-सीता के मिलन का मार्ग प्रशस्त होता है। (५) **फलागम**—सप्तम अंक के अन्त में राम-सीता का मिलन तथा दोनों का अपने पुत्रों (कुश-लव) से मिलन होता है।

(घ) पाँच सन्धियाँ—(१) **मुखसन्धि**—'रामः—इयं गेहे लक्ष्मी··· यदि परमसह्यस्तु विरहः' (अंक १–३८) से लेकर 'रामः—शैशवात् प्रभृति··· सौनिके गृहशकुन्तिकामिव' (अंक १–४५) तक। इसके अंग पूरे प्रथम अंक में फैले हुए हैं। (२) **प्रतिमुखसन्धि**—'आत्रेयी—तस्य भगवतः····दारकद्वयमुपनीतम्' (अंक २ वाक्य १२) से लेकर 'वनदेवता—अयमध्ययनप्रत्यूहः' (अंक २ वा० १९) तक। इसके अंग पूरे अंक २ में फैले हुए हैं। (३) **गर्भसन्धि**—'तमसा—तत्सर्वं श्रूयताम्····'(अंक ३ वा० ५) से लेकर 'तमसा··· साहमधुना यथादिष्टमनुतिष्ठामि' (अंक ३ वा० ९) तक। इसके अंग अंक ४ के अन्त तक फैले हैं। (४) **विमर्श सन्धि**—अंक ५ के प्रारम्भ से लेकर अंक ६ के अन्त तक है। (५) **निर्वहण या उपसंहृति सन्धि**—सप्तम अंक के प्रारम्भ से अन्त तक है।

(ङ) नाटकीय तत्त्वों का समावेश--(१) **विष्कम्भक**—भवभूति ने चार अंकों के प्रारम्भ में विष्कम्भक का प्रयोग किया है। अंक २ और ३ में शुद्ध विष्कम्भक और अंक ४ तथा ६ में मिश्र विष्कम्भक का प्रयोग किया है। इसके द्वारा उसने कुश-लव का जन्म, सीतापरित्याग को १२ वर्ष, अश्वमेध की सूचना तथा जनक आदि के वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचने की सूचना दी है। (२) **पताकास्थानक**—भवभूति ने अंक १ में पताकास्थानक का भी प्रयोग किया है। इयं गेहे····यदि परमसह्यस्तु विरहः (अंक १ श्लोक ३८) में सीता-वियोग को असह्य कहते ही उसने सीता-वियोग का प्रारम्भ दुर्मुख के प्रवेश के साथ दिखाया है।

(६) उत्तररामचरित की कथा का समय

उत्तररामचरित में १२ वर्ष की घटनाओं का वर्णन है।

अंक १—इस अंक का प्रारम्भ दिन में मध्याह्नोत्तर होता है। उससे पूर्व राम की माताएँ, वसिष्ठ, अरुन्धती आदि ऋष्यशृंग के यज्ञ में चली जाती हैं। अपराह्न में राम धर्मासन छोड़ते हैं। सायंकाल के समय लक्ष्मण सीता को लेकर वन में छोड़ने के लिए जाते हैं। सीता पूर्णगर्भा है।

अंक २—इस अंक की घटना १२ वर्ष बाद की है। कुश-लव १२ वर्ष के हो गए हैं। ऋष्यशृंग का १२ वर्ष चलने वाला यज्ञ समाप्त हो गया है। आत्रेयी-वासन्ती-संवाद मध्याह्न की सूचना देता है। कठोरश्च दिवसः (२ वा० ५३)।

अंक ३—इस अंक की घटना उसी दिन अपराह्न की घटना है। कुश-लव की १२वीं वर्षगाँठ मनाई जा रही है।

अंक ४—इस अंक की घटना संभवतः १ दिन बाद की घटना है। राम संभवतः एक दिन पंचवटी और दण्डक वन के दर्शनार्थ रुके थे।

अंक ५—अंक ४ और ५ एक ही दिन की घटनाएँ हैं। दोनों के बीच में १ या २ घंटे का व्यवधान हो सकता है।

अंक ६—अंक ५ की घटना के तुरन्त बाद ही अंक ६ की घटना प्रारम्भ होती है। अंक ४, ५ और ६ एक दिन की ही घटनाएँ हैं। अंक ६ के प्रारम्भ में लव और चन्द्रकेतु का युद्ध चल रहा है।

अंक ७---इसकी घटना संभवतः १ दिन बाद अर्थात् अगले दिन प्रारम्भ हुई। इस अवसर पर राम आदि सभी आश्रम में उपस्थित थे। अगले दिन ही गर्भ-नाटक दिखाया गया।

(१२) उत्तररामचरित में रस-निरूपण

(क) उत्तररामचरित में प्रधान रस करुण है

विद्वानों में इस विषय में बहुत अधिक मतभेद है कि उत्तररामचरित में अंगी या प्रधान रस कौन सा है? कोई करुण-विप्रलंभ नामक श्रृंगाररस मानते हैं और कोई करुण रस। दोनों पक्षों में बहुत कुछ कहा जा सकता है। शास्त्रीय दृष्टि से कुछ अंश तक यह सिद्ध भी किया जा सकता है कि उत्तररामचरित में करुण-विप्रलंभ नामक श्रृंगार रस है। कुछ शास्त्रज्ञ विद्वानों ने निःसंकोच अपना यह मत व्यक्त भी किया है, परन्तु वस्तुस्थिति सर्वथा इसके विपरीत है। उत्तर-रामचरित में करुण-विप्रलंभ नामक श्रृंगार रस मानना भवभूति की आत्मा के साथ विद्रोह है। भवभूति स्पष्टरूप से इसे करुणरस-प्रधान नाटक मानता है। इतना ही नहीं वह करुण रस को अन्य रसों का आधारभूत रस मानता है। उसके मतानुसार करुणरस ही रूपान्तरित होकर श्रृंगार वीर आदि रसों के रूप में परिणत होता है। सर्वत्र रसों की आत्मा के रूप में करुण रस है। करुण रस प्रकृति है और श्रृंगार रस आदि विकृति हैं।

एको रसः करुण एवं निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारा-
नम्भो यथा सलिलमेव हि तत् समस्तम्।।

(उत्तर० ३-४७)

इस श्लोक में विवर्त शब्द परिणाम या विकार के अर्थ में है, अतएव तृतीय चरण में विकारान् पद दिया गया है। इस श्लोक के प्रारम्भ में 'तमसा—अहो

संविधानकम्' का भाव वीरराघव ने स्पष्ट किया है कि भवभूति तमसा के द्वारा अपना अभीष्ट प्रकट करना चाहता है कि करुणरस का यह अपूर्व नाटक आश्चर्य की बात है। (अपूर्वरूपकनिर्माणं विस्मयनीयम् इत्यर्थः, वीरराघव)। टीकाकार वीरराघव और घनश्याम ने भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि भवभूति का अभिमत है कि करुण ही एक रस है, वह प्रकृतिरूप है, अन्य रस उसकी विकृति हैं। करुणरस ही अन्य रसों के रूप में परिणत होता है।

इदमत्र कवेर्मतम्—यद्यपि शृङ्गार एक एव रस इति शृङ्गारप्रकाशकारादिमतम्, तथापि प्राचुर्याद् रागिविरागिसाधारण्यात् करुण एक एव रसः। अन्ये तु तद्विकृतयः।

(वीरराघव ३–४७ पर)

एवं च रसान्तरापेक्षया प्रकृतित्वमेव करुणस्य। (वीरराघव ३–४७ पर)

शृङ्गारादिरसोपाधिभिर्भिन्न इव दृश्यमानोऽपि करुणो रसः अन्यतस्तदभिन्नः सन् एक एवेति भावः।

(घनश्याम ३–४७ पर)

इससे अधिक स्पष्ट शब्दों में भवभूति ने इस नाटक में करुण रस माना है। राम के अन्दर करुण रस का प्रवाह है। राम अन्दर ही अन्दर पुटपाक के तुल्य घुटते रहते हैं और उनकी व्यथा बहुत घनी है।

पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः। (उत्तर० ३–१)

तृतीय अंक का प्रारम्भ इस 'करुणो रसः' से होता है और इस अंक की समाप्ति 'एको रसः करुण एव०' से होती है। इन दोनों श्लोकों से कवि ने अत्यन्त स्पष्ट निर्देश किया है कि इस नाटक में करुण रस है। यदि उसे विप्रलंभ-शृंगार या करुण-विप्रलंभ-शृंगार अभिमत होता तो वह ऐसा लिखने में नाममात्र भी संकोच न करता। अतएव महावीरचरित में उसने स्पष्ट निर्देश किया है कि इस नाटक में वीर रस है। 'यत्र वीरः स्थितो रसः' (महा० १–३)।

इससे भी अधिक स्पष्ट शब्दों में भवभूति ने स्वीकार किया है कि इस नाटक में करुण रस है और निर्वहणसंधि में उसने अद्भुत रस का आश्रय लिया है। इस प्रकार करुण-रस-प्रधान और गौण अद्भुतरस से युक्त यह नाटक है।

यदिदमस्माभिरार्षेण चक्षुषा समुद्वीक्ष्य पावनं वचनामृतं करुणाद्भुतरसं च किंचिदुपनिबद्धम्, तत्र काव्यगौरवादवधातव्यमिति।

(उत्तर० अंक ७ वाक्य सं० ७)

सूत्रधार महर्षि वाल्मीकि का कथन प्रस्तुत करता है कि यह नाटक आर्ष दृष्टि से देखकर अमृतमय वचनों से युक्त तथा करुण और अद्भुत रसों से युक्त बनाया गया है। यदि भवभूति को करुण-विप्रलंभ या विप्रलंभ शृंगार अभीष्ट होता तो वह यह वाक्य नाटक में आने ही न देता।

(ख) क्या नाटक में शृंगार और वीर रस ही अंगी हो सकते हैं ?

विश्वनाथ (१४वीं शताब्दी ई० पूर्वार्ध) ने साहित्यदर्पण और धनंजय (लगभग ९०० ई०) ने दशरूपंक में उल्लेख किया है कि नाटक में शृंगार या वीर रस को अंगी (प्रधान) रस बनाना चाहिए और अन्य रसों को अंग (गौण) तथा निर्वहण-सन्धि में अद्भुतरस का प्रयोग करना चाहिए।

एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः।।

(सा० दर्पण ६-१०)

विश्वनाथ और धनंजय का यह भाव कदापि नहीं है कि शृंगार और वीर के अतिरिक्त अन्य रस अंगी नहीं हो सकते हैं। उनके कथन का भाव है कि अधिकांशतः नाटकों में शृंगार या वीर रस ही होते हैं, अतः उन्हें मुख्य रूप में रखना चाहिए, अन्य रसों को गौण। धनंजय और विश्वनाथ भवभूति से परवर्ती हैं, अतः उनका कथन भवभूति के लिए मान्य नहीं है। यह माना जा सकता है कि भवभूति से पूर्ववर्ती आचार्यों न भी इस प्रकार की कोई बात कही हो। नाटकों में अंगी के रूप में शृंगार और वीर रस का नियन्त्रण हास्यास्पद है। यह मानने पर करुण, शान्त या हास्य रस-प्रधान नाटक हो ही नहीं सकता। परन्तु यह मत विद्वज्जनों को सर्वथा अग्राह्य है। अतएव आनन्दवर्धनाचार्य ने ध्वन्यालोक में स्पष्ट रूप से निर्देश किया है कि नाटकों और महाकाव्य आदि में अनेक रस रहते हैं, परन्तु लेखक के लिए यह अत्यन्त उपयुक्त है कि वह उन वर्णित विभिन्न रसों में से किसी भी एक रस को अंगी बनावे और अन्य रसों

को अंग (गौण) बनावे। जिस रस को अंगी (प्रधान) बनाना है, उस रस का उस ग्रन्थ में प्रधानतया वर्णन होना चाहिए।

प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धानां नानारसनिबन्धने।
एको रसोऽङ्गी कर्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता॥

(ध्वन्या० ३–७७)

प्रबन्धेषु महाकाव्यादिषु नाटकादिषु वा विप्रकीर्णतयाऽङ्गाङ्गिभावेन वा बहवो रसा उपनिबध्यन्त इत्यत्र प्रसिद्धौ सत्यामपि, यः प्रबन्धानां छायाऽतिशयमिच्छति, तेन तेषां रसानामन्यतमः कश्चिद् विवक्षितो रसोऽङ्गित्वेन निवेशयितव्य इत्ययं युक्ततरो मार्गः।

(ध्वन्या० ३–७७ पर)

अतएव आनन्दवर्धनाचार्य का कथन है कि अंगी रस आदि से अन्त तक स्थायी रूप से विद्यमान रहता है। अन्य वर्णित गौण रस उसकी प्रधानता के विघातक नहीं हैं।

रसान्तरसमावेशः प्रस्तुतस्य रसस्य यः।
नोपहन्त्यङ्गितां सोऽस्य स्थायित्वेनावभासिनः॥

(ध्वन्या० ३–७८)

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि शृंगार और वीर के अतिरिक्त करुण आदि रस भी मुख्य रस के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं।

भवभूति उत्तररामचरित से पहले दो नाटकों की रचना कर चुका था। मालतीमाधव में पूर्वपरम्परा के अनुसार उसने शृंगार को ही मुख्य रस बनाया है तथा शृंगार के संभोग और विप्रलंभ दोनों पक्षों का पूर्ण विस्तार से वर्णन किया है। दूसरे नाटक महावीरचरित में उसने वीर रस को प्रधान रस बनाया है। इस प्रकार वह प्राचीन परम्परा का पूर्णतया निर्वाह कर चुका है। तीसरे नाटक उत्तररामचरित में उसका उद्देश्य है कि शृंगार और वीर रस के तुल्य ही करुण रस को भी प्रधान रस बनाया जा सकता है और करुण रस का भी उसी प्रकार सुन्दरता से नाटक में निर्वाह किया जा सकता है। इतना ही नहीं, इससे भी आगे जाकर यह सिद्ध किया जा सकता है कि वस्तुतः मुख्य रस करुण ही है, अन्य रस उसके विकृति-मात्र हैं।

यहाँ पर एक प्रश्न उपस्थित होता है। यदि करुण रस को अंगी रस माना जाएगा तो उसका स्थायी भाव शोक होगा। यदि स्थायी भाव शोक होगा तो नाटक दुःखान्त होगा। परन्तु नाटक का दुःखान्त होना किसी भी प्राचीन आचार्य को अभिमत नहीं है। तो क्या करुण रस-प्रधान नाटक लिखा ही न जाए? नहीं, प्राचीन आचार्यों ने इसके लिए व्यवस्था की है। उनका कथन है कि निर्वहण संधि अर्थात् नाटक के अन्तिम अंश में अद्भुत रस का प्रयोग करना चाहिए।

कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः। (सा० दर्पण ६–१०)

सर्वेषां काव्यानां नानारसभावयुक्तियुक्तानाम्।
निर्वहणे कर्तव्यो नित्यं हि रसोऽद्भुतस्तज्ज्ञैः॥

(नाट्यशास्त्र)

ऐसा क्यों? यह इसीलिए कि नाटक के अन्त में अद्भुत रस का आश्रय लेकर नाटक को सुखान्त और आनन्दप्रद बनाया जा सके। अन्यथा भरतमुनि आदि का निर्वहण संधि में अद्भुत रस के प्रयोग का कथन निरर्थक होता। भरत मुनि नाटक के अन्त में अद्भुत रस के प्रयोग को अनिवार्य बताते हैं। (कर्तव्यो नित्यं हि रसोऽद्भुतः)।

यदि भरतमुनि के कथन पर सूक्ष्मता से विचार किया जाए तो उत्तरराम-चरित के रस की गुत्थी सरलता से सुलझ जाती है। भवभूति ने पूरे नाटक में करुणरस का वर्णन करने के बाद इसको सुखान्त बनाने के लिए अद्भुतरस का आश्रय लिया है और इस अद्भुत रस के प्रयोग से उसने गंगा और पृथ्वी के साथ जल से निकलती हुई सीता का दर्शन कराया है। सबकी स्वीकृति होने पर राम सीता को स्वीकार करते हैं। अतएव भवभूति का कथन स्पष्ट होता है कि—

करुणाद्भुतरसं किंचिदुपनिबद्धम्। (उत्तर० अंक ७ वा० ७)

सभी आचार्य यह मानते हैं कि रामायण में करुण रस है। अतएव वाल्मीकि ने कहा कि—शोकः श्लोकत्वमागतः। इसलिए ध्वनिकार ने स्पष्टरूप से कहा है कि रामायण में करुण रस है और वाल्मीकि ने सीता के अत्यन्त-वियोग तक अपने काव्य की रचना करके उस करुण रस को निभाया है।

रामायणे हि करुणो रसः स्वयमादिकविनाऽऽसूत्रितः—'शोकः श्लोकत्वमागतः' इत्येवंवादिना। निर्व्यूढश्च स एव सीताऽत्यन्त-वियोगपर्यन्तमेव स्वप्रबन्धमुपरचयता।
(ध्वन्या० ४-१०९ पर)

जो रस रामायण में है, वही रस उत्तररामचरित में है। इतना ही नहीं, अपि तु वह करुणरस इसमें अत्यन्त उत्कर्ष को प्राप्त हुआ है। अन्तर केवल एक है और वह है दुःखान्त को सुखान्त में परिणत करना। इसके लिए नाटकीय नियमों का अक्षरशः पालन करते हुए भवभूति ने अद्भुत रस को निर्वहण संधि में डाला है और करुणरस को शोक-पर्यवसायी न बनाकर सुख-पर्यवसायी बनाया है। अद्भुतरस अंग है, करुण रस अंगी है। यही 'करुणाद्भुतरसम्' भवभूति का मन्तव्य है।

(ग) करुणरस और करुण-विप्रलम्भ-शृंगार में अन्तर

करुण रस और करुण-विप्रलंभ श्रृंगार में क्या अन्तर है? यह समझ लेने से यह विषय अधिक स्पष्ट हो सकेगा। प्राचीन भरत मुनि आदि आचार्यों ने श्रृंगार के दो ही भेद किए हैं—संभोग और विप्रलंभ। परन्तु विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण (३-१८७) में विप्रलंभ के भी चार भेद माने हैं:—(१) पूर्व-राग, (२) मान, (३) प्रवास, (४) करुण। करुण-विप्रलंभ वहाँ माना जाता है, जहाँ पर प्रेमी-प्रेमिका में से एक की मृत्यु हो जाती है, परन्तु देवकृपा आदि से उसके पुनर्जीवित होने या पुनः प्राप्त होने की आशा होती है। जैसे—कादम्बरी में पुण्डरीक और महाश्वेता के वृत्तान्त में। यदि प्रेमपात्र व्यक्ति से मिलन न हो सके या जन्मान्तर में मिलन हो तो उसे करुण रस ही कहेंगे।

यूनोरेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये।
विमनायते यदैकस्तदा भवेत् करुणविप्रलम्भाख्यः॥

(सा० द० ३-२०९)

यथा कादम्बर्यां पुण्डरीकमहाश्वेतावृत्तान्ते। पुनरलभ्ये शरीरान्तरेण वा लभ्ये तु करुणाख्य एव रसः।
(सा० द० ३-२०९ पर)

यहाँ पर यह अवधेय है कि विश्वनाथ ने इस श्लोक में दम्पत्योः या स्त्री-पुंसयोः पद न देकर 'यूनोः' पद दिया है। इसका स्पष्ट अभिप्राय है कि वह करुण

विप्रलंभ वहीं पर मानता है, जहाँ पर दम्पती या पति-पत्नी नहीं, अपितु प्रेमी-प्रेमिका या युवक-युवती में से एक का कुछ समय के लिए वियोग होता है। यह विवाहितों के नहीं, अपितु अविवाहितों के प्रणय-संबन्ध की चर्चा है और प्रणय के परिणय के रूप में परिवर्तित होने से पूर्व ही असफल-मनोरथ प्रेमि-युगल के विरह-वैक्लव्य के संग्रहार्थ नवीन करुण-विप्रलंभ शृंगार की योजना की गई है। अतएव पण्डितराज जगन्नाथ न रसगङ्गाधर में करुण-विप्रलंभ नामक शृंगार के भेद को ही अस्वीकार करते हुए अरुचिपूर्वक 'केचित्तु' यह कहकर इसका उल्लेख किया है:—

केचित्तु रसान्तरमेवात्र करुण-विप्रलम्भाख्यमिच्छन्ति।

(रसगंगाधर, चौ० सं० पृष्ठ १३१)

श्री जगन्नाथ का कथन है कि ऐसे स्थलों पर विप्रलंभ शृंगार ही मानना चाहिए। देव-कृपा आदि से प्रेमी का जीवित हो जाना ऐसा ही है, जैसे उसका चिरप्रवास से लौटना। ऐसे स्थलों पर करुणरस नहीं माना जा सकता है, क्योंकि वह सदा के लिए विनष्ट नहीं हो जाता।

यदा तु सत्यपि मृतत्वज्ञाने, देवताप्रसादादिना पुनरुज्जीवनज्ञानं कथंचित् स्यात्, तदालम्बनस्यात्यन्तिकनिरासाभावात् चिरप्रवास इव विप्रलम्भ एव, न स करुणः। (रसगंगाधर चौ० सं० पृष्ठ १३१)

श्री जगन्नाथ ने इस विषय को और अधिक सुन्दर रूप में दिया है। उसका कथन है कि पुत्र आदि इष्ट व्यक्तियों के वियोग (सदा के लिए वियोग) या मरण आदि से उत्पन्न होने वाली विकलता-नामक चित्तवृत्ति को शोक कहते हैं। यह शोक ही करुण रस का स्थायिभाव है। स्त्री और पुरुष के वियोग में यदि उनके जीवित होने का ज्ञान रहता है तो वहाँ विप्रलंभश्रृंगार ही मानना चाहिए। यदि वियुक्त दम्पती के मृतत्व का ज्ञान होता है तो वहाँ पर करुण रस होगा। यदि मृत के बाद पुनर्जीवित हो जाएगा तो विप्रलंभ शृंगार होगा।

पुत्रादिवियोगमरणादिजन्मा वैक्लव्याख्यश्चित्तवृत्तिविशेषः शोकः। स्त्री-पुंसयोस्तु वियोगे जीवितत्वज्ञानदशायां वैक्लव्यपोषिताया रतेरेव प्राधान्यात्

शृङ्गारो विप्रलम्भाख्यो रसः, वैक्लव्यं तु संचारिमात्रम्। मृतत्वज्ञानदशायां तु रतिपोषितस्य वैक्लव्यस्येति करुण एव।

(रसगंगाधर चौ० सं० पृष्ठ १३०–१३१)

आचार्य भरतमुनि ने नाटचशास्त्र में करुण रस और विप्रलंभ शृंगार के अन्तर को स्पष्ट किया है। उनका कथन है कि करुण रस इष्टजन-वियोग आदि विभावों से उत्पन्न होता है। इसमें निरपेक्षभाव व्याप्त रहता है, अर्थात् इष्ट-व्यक्ति से मिलन की आशा नहीं रहती है। विप्रलंभ शृंगार में उत्सुकता और चिन्ता रहती है तथा सापेक्षभाव बना रहता है, अर्थात् इष्ट-व्यक्ति से मिलन की आशा बनी रहती है। करुण में निराशा है और विप्रलंभ में आशा। यही दोनों का मुख्य अन्तर है।

करुणस्तु शापक्लेशविनिपतितेष्टजनविभवनाशवधबन्धसमुत्थो निरपेक्षभावः। औत्सुक्यचिन्तासमुत्थः सापेक्षभावो विप्रलम्भकृतः। एवमन्यः करुणोऽन्यश्च विप्रलम्भ इति।

(नाटचशास्त्र ६–४६ से पूर्व, बड़ौदा सं० पृ० ३०९–३१०)

भोज (१००५ से १०५४ ई०) ने शृंगारप्रकाश में करुण-विप्रलंभ और करुणरस के स्थायिभाव शोक में निम्नलिखित अन्तर किया है:—(१) करुण-विप्रलंभ का कारण एकमात्र रति है। इसमें पुनः संगम होता है। इसके आलंबन स्त्री और पुरुष हैं। इसमें पुनर्मिलन की आशा रहती है। (२) करुण-रस के स्थायिभाव शोक के कारण अनेक हैं–-प्रेम दया आदि। इसमें पुनः संगम नहीं होता है। इसके आलंबन स्त्री-पुरुष से भिन्न व्यक्ति भी हो सकते हैं। इसमें पुनर्मिलन की आशा नहीं रहती है।

तथा हि रत्येकहेतुः करुणः, प्रीतिदयाद्यनेकहेतुः शोकः। पुनः संगमफलः करुणः, अपुनःसंगमफलः शोकः। स्त्रीपुंसविषयः करुणः, अस्त्रीपुंसविषयः शोकः। सप्रत्याशरूपः करुणः, निष्प्रत्याशरूपः शोकः, इत्यन्य एव शोकः, अन्यश्च करुणः।

(शृंगारप्रकाश)

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि भोज (१००५ ई०) ने शृंगार के जिस करुण-विप्रलंभ भेद की उद्‌भावना की थी और उसे व्यापक रूप दिया था,

उसे विश्वनाथ (१४वीं शती ई०) ने केवल युवक-युवती या प्रेमी-प्रेमिका तक सीमित किया और जगन्नाथ (१५९०–१६५५ ई०) ने उसे अनावश्यक बनाकर उस भेद को ही समाप्त किया। जगन्नाथ के अनुसार ऐसे स्थलों को करुण-विप्रलम्भ न कहकर केवल विप्रलंभ शृंगार कहना चाहिए।

विश्वनाथ ने करुणरस और करुण विप्रलंभ में अन्तर दिया है कि करुणरस में स्थायिभाव शोक होता है और विप्रलंभ में स्थायिभाव रति होती है और वह पुनर्मिलन का कारण है।

शोकस्थायितया भिन्नो विप्रलम्भादय रसः।
विप्रलम्भे रतिः स्थायी पुनः संभोगहेतुकः॥

(सा० दर्पण ३–२२६)

आनन्दवर्धनाचार्य और विश्वनाथ ने अपनी संमति प्रकट की है कि विप्रलंभ-शृंगार में मृत्यु का वर्णन नहीं होना चाहिए, क्योंकि इससे रस का विच्छेद हो जाएगा। करुण रस में इसकी उपयोगिता है, अतः वहाँ मृत्यु का वर्णन प्रासंगिक है। आनन्दवर्धनाचार्य का कथन है कि यदि विप्रलंभ में करुणरस का वर्णन करने लगेंगे तो प्रस्तुत शृंगार रस का नाश हो जाएगा और अप्रस्तुत रस प्रस्तुत हो जाएगा।

तदङ्गत्वे च संभवति मरणोपन्यासो न न्याय्यः। करुणस्य तु तथाविधे विषये परिपोषो भविष्यतीति चेद्, न, तस्याप्रस्तुतत्वात्, प्रस्तुतस्य च विच्छेदात्। यत्र तु करुणस्यैव काव्यार्थत्वम्, तत्राविरोधः। (ध्वन्यालोक, ३–७६ पर)

रसविच्छेदहेतुत्वान्मरणं नैव वर्ण्यते। (सा० द० ३–१९३)

आनन्दवर्धनाचार्य का कथन है कि करुण और विप्रलंभ शृंगार अत्यन्त सुकुमार रस हैं, अतः इनमें समास एवं क्लिष्ट रचना सर्वथा त्याज्य है।

करुणविप्रलम्भशृङ्गारयोस्त्वसमासैव संघटना। तयोर्हि सुकुमारतरत्वात् स्वल्पायामप्यस्वच्छतायां शब्दार्थयोः प्रतीतिर्मन्थरीभवति।

(ध्वन्यालोक ३–६२ पर)

आनन्दवर्धनाचार्य ने रस के विषय में अपना निश्चित मत व्यक्त किया है कि नाटक या काव्य में एक ही मुख्य रस का प्रधानता से वर्णन करना चाहिए,

इससे उसका सौन्दर्य परिपुष्ट होता है। इसको उदाहरण देकर स्पष्ट किया है कि जैसे रामायण में करुण रस ही मुख्य रस है।

रसादिमय एकस्मिन् कविः स्यादवधानवान्।। (ध्वन्या० ४–१०६)

प्रबन्धे चाङ्गी रस एक एवोपनिबध्यमानोऽर्थविशेषलाभं छायातिशयं च पुष्णाति।····रामायणे हि करुणो रसः। (ध्वन्या० ४–१०६ पर)

इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक कवि अपने ग्रन्थ में मुख्यतया एक ही रस का वर्णन करता है। रामायण में यद्यपि सभी रसों का वर्णन है, परन्तु प्रमुख रस करुण ही है। यही अवस्था उत्तररामचरित में है। इसमें भी शृंगार, वीर आदि प्रायः सभी रसों का वर्णन है, परन्तु प्रमुख रस करुण ही है। सारे ग्रन्थ में वही रस व्याप्त है। यदि वाल्मीकिरामायण करुणरस-प्रधान महाकाव्य है तो कोई भी कारण नहीं है कि उत्तररामचरित में करुणरस का अपलाप किया जा सके। भरतमुनि ने करुणरस-प्रधान नाटकों में रोदन, मूर्छा, विलाप आदि का प्रधानतः अभिनय आवश्यक बताया है। उत्तररामचरित आदि से अन्त तक इसकी पुष्टि करता है।

सस्वनरुदितैर्मोहागमैश्च परिदेवितैर्विलपितैश्च।
अभिनेयः करुणरसो देहायासाभिघातैश्च।।

(नाट्यशास्त्र ६–६३)

(घ) उत्तररामचरित में करुण रस मानने के कारण

(१) भवभूति को उत्तररामचरित में करुण रस ही मान्य है। इसका उसने स्वयं स्पष्ट एवं असन्दिग्ध शब्दों में उल्लेख किया है।

(२) सामान्यतया करुण-विप्रलंभ-शृंगार अविवाहित प्रेमी-प्रेमिका के प्रणय-संबन्ध से संबद्ध है। उसके आलम्बन विवाहित दम्पती नहीं हैं, यह विश्वनाथ की व्याख्या से स्पष्ट है।

(३) विप्रलंभ शृंगार के लिए स्थायिभाव रति का निर्बाध रहना अनिवार्य है। उत्तररामचरित में सीता के परित्याग से पूर्व रति निर्बाध है, परन्तु सीता-परित्याग के साथ रति समाप्त हो जाती है। इष्ट-व्यक्ति के वियोग या

नाश से तथा अनिष्ट की प्राप्ति से करुणरस होता है। इसका स्थायिभाव शोक है और शोचनीय व्यक्ति इसका आलम्बन होता है। सीता-परित्याग सीतानाश के समकक्ष है। शोचनीय सीता इसका आलम्बन है। सीता-विषयक शोक स्थायिभाव है। उत्तररामचरित के आद्यन्त वर्णनों से स्थायिभाव शोक की पुष्टि होती है और करुणरस का परिपाक होता है।

(४) रति दाम्पत्य-संबन्ध और दाम्पत्य-सुख का मूल है। सीता-परित्याग से पूर्व यह रति थी। रावण-द्वारा सीता-हरण-काल में विप्रलंभ शृंगार मान्य है, परन्तु उत्तररामचरित में सीता परित्यक्ता, निर्वासिता, अपमानिता और विधुरा है। परित्याग के साथ ही वह अपना सौभाग्य खो चुकी है। वह और उसके बच्चे अनाथ हो चुके हैं। राम के द्वारा सीता-परित्याग के साथ ही सीता और राम का दाम्पत्य-संबन्ध समाप्त हो चुका है। दाम्पत्य-मूलक रति समाप्त हो चुकी है। अतः संभोग या विप्रलंभ दोनों शृंगार समाप्त हो चुके हैं। रति शोक में परिणत हो चुकी है।

इस सन्दर्भ में ये वचन ध्यान देने योग्य हैं :—(१) तमसा—सीता करुणा की मूर्ति है या शरीरधारिणी विरह-व्यथा है। (करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी, विरहव्यथेव वनमेति जानकी, उ० ३–४)। (२) सीता—राम ने मेरा अकारण परित्याग किया है (निष्कारणपरित्यागिनोऽप्येतस्य० उ० ३ वा० ४८)। (३) सीता—राजा मुझे देखकर तथा मेरे सामीप्य से क्रुद्ध होंगे। (मां प्रेक्ष्यानभ्यनुज्ञातेन संनिधानेन राजाधिकं कोपिष्यति, उ० ३ वा० ४२) (४) सीता—मेरा हृदय अकारण परित्याग के कारण अत्यन्त दुःखित है (निष्कारणपरित्यागशल्यितः०, उ० ३ वा० ५१)। (५) सीता—मुझ अभागिनी के लिए दिखाई पड़ता हुआ भी यह संसार अब नहीं के बराबर है (मम पुनर्मन्दभाग्याया दृश्यमानमपि सर्वमेवैतन्नास्ति, उ० ३ वा० ६३)। (६) सीता—मैं अकेली और असहाय हूँ (एकाकिनीमशरणाम्, उ० ७ वा० ९)। (७) सीता—मेरे ये दोनों बालक अनाथ हैं। गंगा—सनाथ हैं कि अनाथ? सीता—मैं अभागिनी सनाथ कहाँ हूँ? (सीता—किमेताभ्याम् अनाथाभ्याम्। सीता—कीदृशं मे अभाग्यायाः सनाथत्वम्, उ० ७ वा० ४९ से ५२)। (८) सीता—मैं लोगों के इस अपमान को सहन नहीं कर सकती। (न सहिष्ये ईदृशं जीवलोकस्य परिभवमनुभवितुम्, उ० ७ वा० ७३)

(५) सीता-परित्याग के साथ ही राम के लिए भी सीता नहीं है। राम का भी दाम्पत्यसंबन्ध समाप्त हो गया है। राम विधुर हैं। सीता-परित्याग के कारण वे दोषी और पापी हैं। वे सीता के स्पर्श के भी अधिकारी नहीं हैं। संभोग या विप्रलंभ-मूलक रति तो बहुत दूर रही। राम के लिए सीता मर चुकी है। जीवित सीता भी उनके लिए मृततुल्य है, क्योंकि अब वे उसके पति नहीं हैं। परित्याग के साथ ही उसका संवन्ध-विच्छेद हो गया है। राम अब असहाय हैं। उनके लिए सारा संसार सूना हो गया है।

इस सन्दर्भ में ये वचन अवधेय हैं—(१) राम—मैं अस्पृश्य और पापी हूँ। मुझे अधिकार नहीं है कि सीता को अपने स्पर्श से दूषित करूँ। मैं असहाय हूँ। संसार मेरे लिए सूना हो गया है। मेरा जीवन व्यर्थ है। (तत्किमस्पृश्यः पातकी देवीं दूषयामि, शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत्, अशरणोऽस्मि, उ० १ वा० १४१ ख)। (२) राम—मैं विधुर और अभागा हूँ। (विधुरो मज्जतीवान्त-रात्मा·····मन्दभाग्यः, उ० ३–३८)। (३) राम—मैं असहाय रो रहा हूँ। (अशरणैरद्यास्माभिः····रुद्यते, उ० ३-३२)। (४) राम—मैंने स्वयं सीता का परित्याग किया है, अतः मुझे रोने का भी अधिकार नहीं है। (स्वयं कृत्वा त्यागं० उ० ३–३०)। (५) राम—सीता को अवश्य ही हिंसक पशु खा गए हैं। (क्रव्याद्भिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता, उ० ३–२८)। (६) राम—मेरे लिए संसार सूना हो गया है। (शून्यं मन्ये जगद्०, उ० ३–३८)

(६) राम का रोदन वियोगी प्रेमी का रोदन नहीं है, अपि तु विधुर पति का रोदन है। वह नाशितप्रियतमः है, उसने स्वयं अपनी पत्नी का विनाश किया है। सदा के लिए सीता के निर्वासन का पूर्ण उत्तरदायित्व उस पर है। प्रजा-नुरंजन के लिए उसने सीता की बलि चढ़ाई है। जनता ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी कि सीता के पूर्ण परित्याग के अतिरिक्त राम के पास और कोई चारा नहीं था। अब राम के हृदय में शोक है, न कि रति।

द्रष्टव्य प्रसंग—(१) राम—मेरा हृदय फट रहा है। (स्फुटति हृदयम्, उ० ३–३८)। (२) राम—मेरा हृदय शोकाधिक्य से फट रहा है। (दलति हृदयं शोकोद्वेगात् उ० ३–३१)। (३) राम—सीता को मरे हुए १२ वर्ष

हो चुके हैं। (देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः, उ० ३–३३)। (४) राम—मैंने अपनी प्रियतमा सीता का स्वयं विनाश किया है। (एकः संप्रति नाशित-प्रियतमः०, उ० २–२८)। (५) भागीरथी—लोगों ने लोकापवाद के द्वारा राम को बाध्य किया कि वह सीता का परित्याग करे। (घोरं लोके वितत-मयशो······· किं स वत्सः करोतु, उ० ७–६)।

(७) यदि सीता-परित्याग सावधि होता और पुनर्मिलन की आशा होती तो विप्रलंभ शृंगार माना जा सकता है। परन्तु यह परित्याग निरवधि है और इसमें पुनर्मिलन की कोई आशा नहीं है। (कटुस्तूष्णीं सह्यो निरवधिरयं तु प्रविलयः, उ० ३–४४)। लोगों के कहने में आकर राम ने सीता का स्थायी परित्याग किया गया है, न कि वह प्रवास में गई है। राम उसको मृत समझते थे। सीता के हस्तस्पर्श से उन्हें सीता के अस्तित्व का कुछ विश्वास है। परन्तु जीवित सीता भी राम के दाम्पत्य-संबन्ध के लिए अस्तित्व-हीन है। सीता-परित्याग-जन्य शोक ही स्थायी भाव है, अतः करुण रस मान्य है।

(८) परित्यक्ता सीता के प्रति सभी की सहानुभूति है। समस्त शिष्टवर्ग सीता-परित्यागार्थ राम को दोषी मानता है। राम भी अपने आपको दोषी मानते हैं। इस बीभत्स कृत्य के कारण राम अपने आपको चाण्डाल कहते हैं। (अपूर्व-कर्मचण्डालम्, उ० १ वा० १४१ ख)। यदि राम में आत्मिक बल न होता तो संभव था कि वह कभी का मर चुका होता या उसने आत्महत्या कर ली होती। (न च रामो न जीवति, उ० ३–३३, न मुञ्चति चेतनाम्, उ० ३–३१)। इस सीता-परित्याग के कारण जनक, अरुन्धती, कौसल्या आदि सभी दुःखित हैं। करुणरस में अन्य व्यक्ति भी उस दुःख से दुःखित होते हैं, विप्रलंभ शृंगार में केवल पति या पत्नी ही दुःखित होते हैं। सीता के परित्याग से न केवल उसके संबन्धी ही शोकाकुल हैं, अपितु गंगा, पृथ्वी तथा ऋषि-मुनि आदि सभी शोकाकुल हैं।

(९) भवभूति ने नाटक को सुखान्त बनाने के लिए अन्त में अद्भुत रस का आश्रय लिया है। वाल्मीकि के प्रताप से तथा गंगा और पृथ्वी के सहयोग से गंगाप्रवाह से निकलती हुई सीता का दर्शन कराया जाता है। सारी प्रजा एवं देव, ऋषि आदि सीता को निर्दोष बताते हैं। अरुन्धती के प्रस्ताव को सभी

स्वीकार करते हैं। देवता ऋषि आदि के आदेशानुसार राम सीता को पुनः स्वीकार करते हैं। भवभूति इस प्रकार अद्भुत रस का आश्रय लेकर करुण को भी सुखान्त बनाता है।

(ङ) उत्तररामचरित में विविध रसों का वर्णन

उत्तररामचरित करुण-रस-प्रधान नाटक है। इसमें करुण रस अंगी (मुख्य) है और शृंगार, अद्भुत, वीर, रौद्र, हास्य, भयानक, बीभत्स, वात्सल्य और शान्त रस अंग (सहायक) ह। यद्यपि उत्तररामचरित में करुण रस का पर्याप्त विस्तार से वर्णन हुआ है, तथापि अन्य रसों का सुन्दर समन्वय हुआ है। अद्भुत रस का निर्वहण संधि में प्रयोग करके करुणरस-प्रधान नाटक को भी सुखान्त बनाया गया है तथा अन्त में सीता और राम के पुर्नामिलन से इस नाटक की समाप्ति की गई है। रसों का संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

(१) **करुण रस**—इष्ट व्यक्ति के वियोग या नाश से इस रस की उत्पत्ति होती है। इसका स्थायिभाव शोक होता है। इसमें सीता के परित्याग के कारण राम का सीता से स्थायी वियोग होता है और राम सीता के प्रति अपने शोकोद्-गार प्रकट करते हैं। जनक, अरुन्धती, गंगा और पृथ्वी आदि भी सीता-परित्याग-रूपी दुःखद घटना से शोक-विह्वल हैं। सीता-परित्याग-जन्य दुःख का ही विभिन्न आश्रयों के द्वारा विभिन्न रूप में वर्णन है।

सीता के परित्याग का निर्णय करते ही राम को सारा संसार सूना वन-सा दिखाई पड़ने लगता है। संसार असार प्रतीत होता है। जीवन निष्फल दिखाई देता है। शरीर की चेतना समाप्त होने लगती है। राम अपने आपको असहाय अनुभव करते हैं। (शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत्····अशरणोऽस्मि, अंक १ वाक्यसंख्या १४१ ख)। राम कहते हैं कि मेरा जीवन केवल दुःख भोगन के लिए है। मर्मस्थलों को पीड़ा देने वाले दुःख ने हृदय में वज्र की कील सी ठोक दी है। (दुःखसंवेदनायैव०, १–४७)। राम कहते हैं कि सीता-परित्याग का निर्णय करके मैंने ऐसा ही पाप किया है, जसे गर्भवती सीता की बलि हिंसक पशुओं को दी है। (विस्रम्भादुरसि०, १–४६)। राम को सीता के बिना पंचवटी का दर्शन ऐसा दुःखद हो गया है, जैसे उनके शरीर में विष फैल गया हो

या कोई बड़ा फोड़ा हृदय में फट गया हो। (चिराद् वेगारम्भी०, २–२६)। राम ने सीता का विनाश किया है, अतः वह पापी है। उसे पंचवटी में जाने में हिचक हो रही है। (यस्यां ते दिवसाः०, २–२८)। राम के हृदय में घोर वेदना है। उनका शोक पुटपाक के सदृश हो गया है।

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः॥

(उ० ३–१)

पंचवटी को देखकर सीता-वियुक्त राम के हृदय में प्रचण्ड शोकाग्नि उद्दीप्त हो जाती है और उससे उत्पन्न होने वाला मोह उन्हें घेर लेता है। (अन्तर्लीनस्य०, उ० ३–६)। सीता के शोक में राम भी पीले पड़ गए हैं, उनकी शक्ति क्षीण हो गई है। वे अत्यन्त कृश हो गए हैं। उनकी अवस्था इतनी दयनीय हो गई है कि इष्ट जन उन्हें पहचान नहीं पाते हैं। (विकलकरणः०, ३–२२)। पंचवटी में सीता द्वारा पोषित मृग आदि को देखकर उनका हृदय शोक से इतना द्रवित हो जाता है कि उससे एक नया स्रोत निकल सकता है। (भवति मम विकारः०, ३–२५)। राम को यह विश्वास है कि परित्याग के बाद सीता को हिंसक पशु खा गए हैं। (त्रस्तैकहायन०, ३–२८)। शोक से क्षुब्ध हृदय को शान्त करने के लिए रोना ही एकमात्र मार्ग है। (पूरोत्पीडे० ३–२६)। सीता का शोक राम को दिन-रात सुखा रहा है। स्वयं परित्याग किया है, अतः रोने की भी सुविधा नहीं है। राम रोकर ही अपने आपको बचा पाए हैं। (इदं विश्वं पाल्यम्०, ३–३०)। सीताविषयक शोक के कारण राम का हृदय फटा जाता है, सारे शरीर में व्याकुलता है, अन्दर का सन्ताप उन्हें सदा जला रहा है। भाग्य भी प्रतिकूल है और वह मर्मवेधी घटनाएँ उपस्थित करता रहता है। (दलति हृदयं०, ३–३१)। राम नागरिकों को उलाहना देते हैं कि आप लोगों को सीता का घर में रहना अभीष्ट नहीं था। आप लोगों की इच्छापूर्ति के लिए मैंने भी सीता को तृण के तुल्य फेंक दिया और शोक करने का अधिकारी नहीं रहा। मैं आज असहाय होकर रो रहा हूँ, आप लोगों की आत्मा को शान्ति प्राप्त हो। (न किल भवतां०, ३–३२)। आज १२ वर्ष हो गए हैं। संसार से सीता का नाम भी नष्ट हो गया है, पर मैं केवल अर्थसम्पादनार्थ ही धैर्य धारण करके

जीवित हूँ। (देव्या शून्यस्य०, ३–३२)। भयंकर शोकरूपी कील मेरे मर्म-स्थलों को काट रही है। तिरछा काँटा लगे हुए तथा जहरीला दाँत लगे हुए व्यक्ति के तुल्य में आज अत्यन्त पीडित हूँ। फिर भी मैं इन दुःखों को सहन कर रहा हूँ। (यथा तिरश्चीन० ३–३५)। प्रबल शोक के उद्रेक को रोकने के लिए मैं जो भी प्रयत्न करता हूँ, उसे आन्तरिक मनोविकार इसी प्रकार बहा देता है, जैसे रेत के पुल को प्रबल जल की बाढ़। (वेलोल्लोल०, ३–३६)। वासन्ती-द्वारा वर्णित प्राचीन घटनाओं को सुनकर राम शोक-विह्वल हो उठते हैं। उनका हृदय फटने लगता है, शरीर से चेतना निकलती हुई प्रतीत होती है, आन्तरिक सन्ताप प्रबल हो उठता है और आँखों के आगे अन्धेरा छा जाता है और वे बेहोश हो जाते हैं। (हा हा देवि०, ३–३८)। राम पुराने वियोग और इस वियोग की तुलना करते हुए कहते हैं कि सीताहरणजन्य वियोग उपायसाध्य था, वह रावणनाश तक था, किन्तु यह वियोग निरवधि है, उपायसाध्य नहीं है और चुप होकर सहना पड़ रहा है। (उपायानां भावाद० ३–४४)। पहले वियोग में वानरों, हनुमान्, जाम्बवान्, नल और लक्ष्मण के प्रयत्नों से उद्धार हुआ था परन्तु इस वियोग में कोई कुछ सहायता नहीं कर सकता और न इससे उद्धार ही संभव है। (व्यर्थं यत्र०, ३–४५)। अतः तमसा कहती है कि करुण ही एक रस है, वही विभिन्न रसों का रूप धारण करता है। जैसे जल भँवर, बुलबुले और तरंग आदि का रूप धारण करता है।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान्। (उ० ३–४७)

कुश-लव को देखकर राम को सीता के सुन्दर मुख की स्मृति आ जाती है। दोनों बालकों के दाँत, ओष्ठ, कान और आँख सीता के तुल्य हैं। वे सीता की स्मृति में रो पड़ते हैं। (अपि जनक० ६–२६, शुक्लाच्छदन्त० ६–२७)। राम की यह अवस्था देखकर कुश कहता है कि राम-सीता में घनिष्ट प्रेम था। सीता के नाश के कारण राम के लिए सारा संसार जंगल और दुःखमय हो गया है। (विना सीतादेव्या० ६–३०)। पुरानी बातों को स्मरण करके राम अत्यन्त शोकाकुल हो जाते हैं। पुरानी घटनाएँ उनके लिए अत्यन्त असह्य हैं। (क्व तावानानन्दो० ६–३५, प्रियागुण० ६–३४, यदा किंचित्० ६–३५)। राम के

लिए संसार जीर्ण अरण्य हो गया है। उनका हृदय मानो तुषाग्नि में जल रहा है। (चिरं ध्यात्वा० ६–३८)।

सीता के ऊपर आई हुई इस विपत्ति से राजर्षि जनक अत्यन्त शोक-सन्तप्त हैं। उनके हृदय में दिन-रात सन्ताप है। उनकी स्थिति अन्दर से जलते हुए वृक्ष के तुल्य है। (हृदि नित्यानुषक्तेन०, ४-१)। इस घटना से जनक का हृदय इतना पीडित है, जैसे आरे से उनके मर्मस्थलों को काटा जा रहा हो। (अपत्ये यत् तादृग्०, ४–३)। जनक इतने अधिक दुःखित हैं कि वे भुलाने पर भी उस घटना को नहीं भुला पाते। यदि वेदादि आत्महत्या में पाप न बताते तो वे आत्महत्या तक कर सकते थे। (न मे दारुणो दुःखसंवेगः प्रशाम्यति०, उ० ४ वा० २४ ख)। उन्हें सदा सीता के शैशव के मुखकमल का स्मरण हो आता है और उसकी बचपन की बातें याद आती हैं। (अनियतरुदित० ४–४)। वे पृथ्वी को उपालंभ देते हैं कि तुमने यह सीतापरित्याग की दुर्घटना कैसे सही। (त्वं वह्निर्मुनयो० ४–५)। लव को देखकर उन्हें सीता की स्मृति आती है और वे दुःखातुर हो जाते हैं। (वत्सायाश्च०, ४–२२)। उन्हें सीता-परित्याग के समय की स्मृति आती है और वे कहते हैं कि हिंसक पशुओं से चारों ओर घिरे होने पर रक्षार्थ तुमने मुझे याद किया होगा। (नूनं त्वया०, ४–२३)। जनक सीता-परित्याग की घटना को अनभ्र-वज्रपात समझते हैं। (एतद्वैशसवज्र-घोरपतनं०, ४–२४)। उनका कथन है कि इस कार्य से राम ने हमारा अपमान किया है। (पुनः परिभूयामहे, ४ वा० ३८)।

कौसल्या और अरुन्धती आदि भी सीता-परित्याग के दुःख से अत्यन्त पीडित हैं। कौसल्या शोकभार के कारण अपने हृदय को संभालने में असमर्थ हैं। जनक से मिलने का नाम सुनते ही घबड़ा जाती हैं। (ईदृशे काले०, ४ वा० २९)। अरुन्धती का कथन है कि इष्टवियोगजन्य दुःख ऐसा ही असह्य होता है। (संतानवाहीन्यपि०, ४–८)। कौसल्या इस दुःख से इतनी कृश हो गई हैं कि पहचान में नहीं आती हैं। (आसीदियं० ४–६)। कौसल्या शोकावेग के कारण मूर्छित हो जाती हैं। उन्हें बहुत देर तक होश नहीं आता। जनक कमण्डलु का जल छिड़क कर उन्हें होश में लाते हैं। (४ वा० ४०, ४४, ४५)। कौसल्या

ऐसे जीवन से मृत्यु को अधिक अच्छा समझती हैं। अरुन्धती उन्हें समझा-बुझा कर शान्त करती हैं। (४ वा० ५०, ५१)।

इस परित्याग के शोक से सीता की दशा अवर्णनीय है। वह पीली पड़ गई है, उसका मुँह सूख गया है, उसके श्रृंगार समाप्त हो गए हैं, मुँह पर बाल विखरे पड़े हैं, वह अत्यन्त दयनीय हो गई है। वह करुणा की मूर्ति हो गई है। उसको देखने से ऐसा प्रतीत होता है, मानो साक्षात् विरह-व्यथा है। दीर्घकालीन शोक ने उसे ऐसा सुखा दिया है, जैसे शरत्कालीन धूप केतकी के फूल के अन्दर के पत्ते को। वह डंठल से टूटे हुए किसलय के तुल्य सूख गई है। (किसलयमिव०, उ० ३–५)।

करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी,
विरहव्यथेव वनमेति जानकी।। (उ० ३–४)

भवभूति ने द्वितीय अंक में क्रौंच-पत्नी-वध को देखकर सहसा महर्षि वाल्मीकि के मुख से निःसृत अमृतमय करुणोद्गार (मा निषाद०, उ० २–५) का भी उल्लेख किया है।

(२) **संभोग श्रृंगार**—भवभूति ने अंग रस के रूप में उत्तररामचरित में प्रथम अंक में तथा अन्यत्र चित्रदर्शन आदि के प्रसंगों में राम-सीता के प्रणय-संबन्ध तथा दाम्पत्य-सुख के वर्णनों में संभोग श्रृंगार की सुन्दर छटा प्रस्तुत की है। यद्यपि संभोग श्रृंगार के श्लोकों की संख्या कम है, फिर भी वर्णन सुन्दर और हृदयहारी हैं। चित्रदर्शन में अपने विवाह का दृश्य देखकर सीता के पाणि-ग्रहण की घटना राम की आँखों के सामने नाचने लगती है और वे मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। (समयः स वर्तत० १–१८)। चित्रदर्शन में यमुना के किनारे वटवृक्ष को देखकर उन्हें प्राचीन घटना स्मरण हो आती है, जब परिश्रान्त सीता उनकी गोद में सोई थी। (अलसललित० १–२४)। जनस्थान के मध्य में प्रस्रवण गिरि के चित्र को देखकर उन्हें स्मरण हो आता है कि वे गोदावरी के किनारे कुटी बनाकर सीता के साथ प्रणयालाप करते हुए किस प्रकार सारी रात बिता देते थे। (किमपि किमपि० १–२७)। चित्रदर्शन से थकी हुई सीता को राम कहते हैं कि मेरे गले में अपना हाथ डालकर सो जाओ। (जीवयन्निव० १–३४)।

सीता का हाथ गले में पड़ते ही राम भाव-विभोर हो जाते हैं और आनन्दातिरेक के कारण अपनी सुध-बुध भुला देते हैं। (विनिश्चेतुं० १–३५)। राम सीता के प्रेमालाप को श्रवणसुखद और मन के लिए रसायन बताते हैं। (म्लानस्य० १–३६)। सीता के सोते समय राम अपना हाथ तकिए के स्थान लगाते हैं और कहते हैं कि विवाह-समय से आज तक इस हाथ ने तुम्हारे लिए तकिए का काम दिया है। (आ विवाहसमयाद्० १–३७)। सोई हुई सीता को देखकर राम उसे गृहलक्ष्मी और नेत्रों के लिए अमृतशलाका कहते हैं। उसका स्पर्श चन्दन रस के तुल्य है और गले में पड़ा सीता का हाथ मोती की माला का काम दे रहा है। राम कहते हैं कि यदि सीता का कभी वियोग हुआ तो मैं उसे सहन नहीं कर सकूँगा।

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो-
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः। (उ० १–३८)

सीता के हस्तस्पर्श को राम कल्पवृक्ष के पत्ते का रस, चन्द्रमा की किरणों का रस और संजीवन ओषधि बताते हैं। (आश्च्योतनं नु० ३–११)। सीता का हस्तस्पर्श उनके मोह को दूर करके आनन्दाधिक्य के कारण उन्हें निश्चेष्ट बना देता है। (स्पर्शः पुरा० ३–१२)। सीता की प्रेमभरी दृष्टि राम के लिए स्नेह की धारा है और दूध की नहर है। (विलुलित० ३–२३)। सीता का हस्तस्पर्श राम के अन्दर अमृत का संचार कर देता है और उन्हें हर्ष से आप्लावित कर देता है। (आलिम्पन्० ३–३९)। सीता भी राम के स्पर्श से स्वेद, रोमांच और कम्पन से युक्त हो जाती है। (सस्वेद० ३–४२)। राम और सीता का प्रेम इतना अधिक बढ़ गया था कि दोनों बहुत कुछ निःसंकोच हो गए थे। राम को सीता के उदर-स्पर्श से यह ज्ञात था कि उसके युगल-पुत्र होंगे। (परां कोटिं० ६–२८)। भवभूति ने दाम्पत्य-संबन्ध की अपूर्वता का बहुत सुन्दर वर्णन करते हुए कहा है कि यह सुख और दुःख में समान रहता है, जीवन की सभी परिस्थितियों में एक सा रहता है, यह हृदय को शान्ति देता है, वृद्धावस्था में भी इसका रस न्यून नहीं होता, विवाह से मृत्यु तक प्रेमरूप में ही बना रहता है।

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत् स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत् प्रार्थ्यते।।

(उ० १–३६)

(३) विप्रलंभ शृंगार—इसका भी वर्णन थोड़ा है, परन्तु सीताहरण आदि का वर्णन करते हुए विप्रलंभ शृंगार की बहुत सुन्दर अभिव्यक्ति भवभूति ने की है। सीताहरण के चित्र को देखकर राम को पुनः उस घटना की स्मृति आ जाती है। लक्ष्मण उस समय की राम की स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि आपके विलाप को देखकर पत्थर भी रो पड़े थे और वज्र का भी हृदय फट गया था।

जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै-
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।। (उ० १–२८)

सीताहरण का स्मरण आते ही राम की आँखों से आँसू की धारा बह चलती है। वे सिसकने लगते हैं और उनका हृदय अत्यन्त क्षुब्ध हो जाता है। (अयं तावद् बाष्प० १–२६)। वह पुरानी घटना जब जब उन्हें याद आती है, तभी उनकी शोकाग्नि प्रदीप्त हो जाती है और हृदय सन्तप्त हो जाता है। (तत्कालं० १–३०)। पम्पा सरोवर का दृश्य देखकर सीता राम से कहती हैं कि यहाँ पर ही आप जी भर कर रोए थे। राम उस समय निरन्तर रोते रहते थे और आँसू गिरना तथा आँसू आने के मध्यकाल में हंसयुक्त सरोवर की शोभा देख पाते थे। (एतस्मिन्० १–३१)। राम जनस्थान में अपनी कुटी देखकर वह घटना याद करते हैं, जब सीता ने विलम्ब के लिए राम से क्षमायाचना की थी। उस कुटी को देखकर राम अत्यन्त दुःखित होते हैं। (अस्मिन्नेव० ३–३७)।

(४) अद्भुतरस—भवभूति ने अद्भुतरस की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। इसके ही सफल प्रयोग से उसने नाटक को सुखान्त बनाया है। द्वितीय अंक में आत्रेयी सूचित करती है किसी देवता ने वाल्मीकि को दो अद्भुत बालक दिए हैं। ये ऋषियों को ही नहीं, अपितु पशु-पक्षियों को भी मन्त्रमुग्ध किए हुए हैं।

(केनापि देवता०, २ वाक्य १२)। क्रौंच-पत्नी-वध को देखकर वाल्मीकि के मुख से सहसा शोक श्लोकरूप में परिणत होकर निकल पड़ता है। (मा निषाद० २–५)। उसी समय वाल्मीकि को ब्रह्मा के दर्शन होते हैं और ब्रह्मा उन्हें आदि-कवि होने का वरदान देते हैं। (ऋषे प्रबुद्धोऽसि०, २ वा० २४)। एक ब्राह्मण बालक की अकालमृत्यु पर आकाशवाणी होती है कि शम्बूक नाम का शूद्र तपस्या कर रहा है, उसे मार कर बालक को पुनर्जीवित करो। (शम्बूको नाम० २–८)। परित्याग के बाद प्रसववेदना से पीड़ित होकर सीता अपने आपको गंगा में फेंक देती है, परन्तु पृथ्वी और गंगा उसे बचाकर बच्चों सहित जल से बाहर लाती हैं। (पुरा किल० ३ वा० ५)। मुरला कहती है कि बड़ों की बात बड़ी है। सीता की रक्षा के लिए गंगा और पृथ्वी पहुँचती हैं। (ईदृशानां० ३–३)। जन-स्थान में आने पर राम शोकाकुल होकर दिवंगत न हो जाएँ, इसके लिए लोपा-मुद्रा, गंगा और गोदावरी आदि सभी चिन्तित हैं। वे राम को मृत्यु से बचाने के लिए दिव्य उपाय निकालती हैं। (इदानीं तु०, ३ वा० ७)। पंचम अंक में जृम्भक अस्त्र के अद्भुत प्रभाव का बहुत सुन्दर वर्णन है। चन्द्रकेतु की सारी सेना निश्चेष्ट हो गई है। जृम्भक अस्त्र से परमाणुबम के विस्फोट का दृश्य उपस्थित हो गया है। (व्यतिकर इव० ५–१३, पातालोदर० ५–१४)। वाल्मीकि के प्रभाव से सारा चराचर जगत् वाल्मीकि के आश्रम के समीप नाटक देखने के लिए एकत्र हो गया है। (अद्य खलु भगवता०, ७ वा० १), भवभूति ने करुण और अद्भुतरस-युक्त वाल्मीकिकृत गर्भनाटक प्रस्तुत किया है। (करुणाद्भुत-रसम्, ७ वा० ७)। सप्तम अंक में अद्भुत जृम्भक अस्त्र का अवतरण दिखाया गया है। (अद्भुततरं किमपि०, ७ वाक्य ५६–५८)। अन्त में नाटक को सुखान्त बनाने के लिए अद्भुत रस का प्रयोग करके गंगा और पृथ्वी के साथ सीता का गंगा-प्रवाह से निकलना दिखाया गया है। (मन्थादिव० ७–१७)।

(५) **वीर रस**—उत्तररामचरित में वीररस का सुन्दर वर्णन हुआ है। लव और चन्द्रकेतु के युद्ध के वर्णन में वीररस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। चित्रदर्शन के प्रसंग में लक्ष्मण जटायु के चित्र को देखकर उसकी वीरता की प्रशंसा करते हैं। (अथैतन्मन्वन्तरपुराणस्य० १ वा० ९१)। द्वितीय अंक में राम की वीवंरता का र्णन है कि उन्होंने चौदह हजार चौदह राक्षसों को तथा

खर, दूषण और त्रिमूर्धा इन तीनों को युद्ध में मारा था। (चतुर्दश सहस्राणि० २–१५)। अश्वमेधीय अश्व के रक्षकों से राम की वीरता की प्रशंसा सुनकर लव सेना से लड़ने को तैयार हो जाता है और अपने साथियों से कहता है कि इस घोड़े को पकड़ कर आश्रम में ले चलो। यह मृगों से साथ रहेगा। (यदि नो सन्ति० ४–२८)। जब सैनिक उसे अपने विकट अस्त्र-शस्त्र दिखाते हैं तो वह भी ताव में आकर अपना धनुष तान कर खड़ा हो जाता है और कहता है कि उसका धनुष सारी सेना को खा जाएगा। (ज्याजिह्वया० ४–२९)। लव के द्वारा अपनी सेना पर घोर बाणवर्षा देखकर चन्द्रकेतु लव की वीरता पर मन्त्र-मुग्ध हो जाता है। (किरति कलित० ५–२)। चन्द्रकेतु की सभी सेना ने लव को घेर रखा है। उनके हाथों में घोर शस्त्र हैं, परन्तु लव उनके लिए अजेय है। इतना ही नहीं वह सारी सेना का संहार प्रारम्भ कर देता है। (अयं हि शिशु० ५–५ तथा वा० ५, ६)। चन्द्रकेतु के मुख से लव की वीरता की प्रशंसा सुनकर राम लव को साधुवाद देते हैं और कहते हैं कि तेजस्वी दूसरे के तेज को सहन नहीं कर सकता। (न तेजस्तेजस्वी० ६–१४)।

(६) **रौद्र रस**—भवभूति ने उत्तररामचरित में रौद्र रस के भी सुन्दर दृश्य उपस्थित किए हैं। जनता को सीता-परित्याग का कारण जानकर जनक सारी जनता को ही अपने चाप और शाप से नष्ट करने को तैयार हो जाते हैं। अरुन्धती के समझाने पर वे शान्त होते हैं। (एतद्वैशस० ४–२५)। लव के द्वारा अश्वहरण की बात सुनकर सारे सैनिक आपे से बाहर हो जाते हैं और तीक्ष्ण शस्त्रों से बालकों के वध के लिए उद्यत हो जाते हैं। (तीक्ष्णतरा० ४ वा० १३७, १३८)। सारी सेना के आक्रमण से क्रुद्ध लव अपनी क्रोधाग्नि की उपमा वडवानल से देता है, जो सारी सेना को समाप्त कर देगी। (अयं शैला-घात०, ५–६)। चन्द्रकेतु लव के मुख से राम की निन्दा सुनकर अत्यन्त उद्दीप्त हो जाता है। दोनों ही क्रोधावेश में लड़ने के लिए उन्मत्त हो जाते हैं। (क्रोधे-नोद्धत० ५–३५)। लव और चन्द्रकेतु दोनों ओर से ही घोर बाण-वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। (झणज्झणित० ६–१)। चन्द्रकेतु और लव के युद्ध को सुनकर कुश वहाँ पहुँचता है। वह क्रोधावेश में कहता है कि मैं आज संसार से राजा शब्द ही समाप्त कर दूँगा और क्षत्रियों का दर्प सदा के लिए समाप्त कर दूंगा।

(आयुष्मतः किल० ६–१६)। वह अपना धनुष चढ़ा कर प्रसन्न है कि आज सूर्यवंशियों का संहार कर दूंगा। (दत्तेन्द्राभय० ६–१८)।

(७) **हास्य रस**——हास्य रस के केवल चार प्रसंग प्राप्त होते हैं। प्रथम अंक में अष्टावक्र ऋषि का प्रवेश होता है। वे आठ स्थानों से विकृत हैं, अतः दर्शक उन्हे देखकर हँस पड़ते ह। वीरराघव का कथन है कि हास्य रस के लिए ही अष्टावक्र का प्रवेश दिखाया गया है। (हास्यरसानुप्रवेशार्थमष्टावक्रप्रवेशः, वीर०, उ० १ वा० २२)। सीता उर्मिला के चित्र की ओर संकेत करके लक्ष्मण से कहती है कि यह किसका चित्र है? लक्ष्मण मुस्कराकर बात टाल देते हैं। (इयमप्यपरा का०, उ० १ वा० ५७, ५८)। चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में सौधातकि और दण्डायन के वार्तालाप में हास्यरस का पुट है। सौधातकि मांसभक्षण के कारण वसिष्ठ को बघेरा बताता है। (मया पुनर्ज्ञातं० ४ वा० ८)। बच्चों के द्वारा घोड़े का वर्णन भी हास्यरस का कारण है। वे घोड़े की पूँछ, गर्दन, खुर और लीद आदि का बालोचित वर्णन करते हैं। (पश्चात् पुच्छं० ४–२६)।

(८) **भयानक रस**——इस रस का थोड़ा ही वर्णन प्राप्त होता है। चित्रदर्शन में परशुराम का चित्र दिखाते ही सीता डर जाती हैं। (कम्पितास्मि, १ वा० ५६)। चित्रदर्शन में शूर्पणखा के विवाद का दृश्य देखकर सीता डर कर कहती हैं कि आर्यपुत्र, यहीं तक आपका दर्शन हुआ था। डरी हुई सीता को राम आश्वासन देते हैं। (वियोगत्रस्ते०, १ वा० ८१–८४)। द्वितीय अंक में जनस्थान की सीमा पर विद्यमान भयंकर वन का वर्णन है। वहाँ जंगली जन्तुओं की प्रचण्ड ध्वनि हो रही है। बड़े सर्पों और अजगरों के श्वास से वन में आग लग जाती है। (निष्कूज० २–१६)। भालुओं की भयंकर ध्वनि चारों ओर फैल रही है। (दधति कुहर० २–२१)। क्रौंच पर्वत का वर्णन करते हुए शम्बूक कहता है कि यहाँ पर उल्लुओं की घू-घू ध्वनि से कौए चुप पड़ जाते हैं। चन्दन के वृक्षों पर मोरों से डरे हुए साँप इधर-उधर घूम रहे हैं। (गुञ्जत्० २–२६)। अश्वमेधीय अश्व के रक्षक सैनिकों के तीक्ष्ण हथियारों को देखकर मुनि-बालक डर जाते हैं और भाग पड़ते हैं। (तर्जयन्ति० ४ वा० १३७–१३८)।

षष्ठ अंक के प्रारम्भ में आग्नेय, वारुण और वायव्य अस्त्रों के प्रयोग से विद्याधर-युगल अत्यन्त भयभीत हैं। (तत्किमिति० ६ वा० १–१०)।

(९) **बीभत्स रस**—इस रस के भी थोड़े ही प्रसंग हैं। राम तलवार निकाल कर शम्बूक के वधार्थ तैयार होते हैं। वे गर्भिणी सीता के निर्वासन के कारण अपने आपको बीभत्सकर्मा कहते हैं। (रे हस्त० २–१०)। जनस्थान के वन में गिरगिट अजगरों का पसीना पी रहे हैं। (तृष्यद्भिः० २–१६)। लव ने युद्ध में अपने प्रचण्ड शस्त्रों से हाथियों के माथे की गाँठें तोड़-फोड़ दी हैं। (दलितकरि० ५–३)। अकेले लव को मारने के लिए सैकड़ों सैनिकों, रथों और हाथियों का झुण्ड एकत्र है। (अयं हि० ५–५)। लव ने भी चन्द्रकेतु के सैनिकों का वह महासंहार प्रारम्भ किया कि सैकड़ों के सिर और धड़ अलग-अलग होकर लुढ़कने लगे। (आगर्जद्० ५–६)।

(१०) **वात्सल्य रस**—भवभूति ने कई प्रसंगों में वात्सल्य रस की बहुत सुन्दर अभिव्यक्ति की है। सीता कुश-लव की स्मृति आते ही भाव-विभोर हो जाती है। उसके स्तनों में दूध उभर आता है। (किं वा ममा०, ३ वा० ७९–८१)। पुत्र माता-पिता के स्नेह का आधार है और दोनों के लिए आनन्द की गाँठ है। (अन्तःकरण० ३–१७)। पुत्री सीता की विपत्ति से जनक का हृदय अत्यन्त दुःखित है। वे दिन-रात शोक में रहते हैं। (अपत्ये० ४–३)। जनक सीता के बाल्यावस्था के मुख को स्मरण कर अत्यन्त भाव-विह्वल हैं। (अनियत० ४–४)। जनक पृथ्वी को उलाहना देते हैं कि तुमने सीता की यह घोर विपत्ति कैसे सही? (त्वं वह्नि० ४–५)। कौसल्या और अरुन्धती लव को देख कर इतनी अधिक मोहित हो गई हैं कि उसे अपनी आँखों का तारा और अमृतांजन कहती हैं। (कुवलय० ३–१९ तथा वा० ५५–५६)। जनक लव को देखकर इतने मन्त्रमुग्ध हैं कि वे लव को चुम्बक और अपने आपको लोहा बताते हैं। (अयोधातुं० ४–२१)। वे लव की आकृति में राम-सीता का प्रतिबिम्ब देखते हैं और सीता को स्मरण कर व्याकुल हो जाते हैं। (वत्सायाश्च० ४–२२)। राम चन्द्रकेतु को देखते ही उसे गले लगा लेते हैं। (दिनकरकुल० ६–८)। राम लव को देखकर उसकी आकृति पर मुग्ध हो जाते हैं। (अतिगम्भीरमधुर० ६ वा० १४)। राम कुश की ध्वनि सुनकर आनन्द से रोमांचित हो उठते हैं।

(अथ कोऽयम्० ६–१७)। कुश के प्रणाम करते ही वे उसे छाती से लगाने के लिए व्याकुल हो जाते हैं। (अमृता० ६–२१)। राम कुश को छाती से लगाते ही पुत्र मानकर उसे अपने देह का सार, अपनी चेतना की प्रतिमूर्ति और अपने लिए शीतलता-प्रद बताते हैं। (अङ्गादङ्गात् सृत इव०, ६–२२)।

(११) **शान्त रस**––शान्त रस की थोड़े ही प्रसंगों में अभिव्यक्ति हुई है। चित्रदर्शन में राम के जटाधारण के चित्र को देखकर लक्ष्मण कहते हैं कि आपने बाल्यावस्था में ही वानप्रस्थ ले लिया। (पुत्रसंक्रान्त० १–२२)। राम दण्डक-वन के यतियों की कुटियों और आश्रमों का वर्णन करते हैं कि ये झरनों के समीप हैं, यति वृक्षों के नीचे निवास करते हैं। ये अल्पसंग्रही अतिथिपूजक मुनिलोग हैं। (एतानि तानि० १–२५)। द्वितीय अंक में आत्रेयी अगस्त्य ऋषि के पवित्र आश्रम का वर्णन करती है कि वहाँ अगस्त्य मुनि ब्रह्मविद्या का उपदेश देते हैं। (अस्मिन्नगस्त्य० २–३)। राम आनन्दमय विराट् लोकों का वर्णन करते हैं। (यत्रानन्दाश्च० २–१२)। राम दण्डक वन में अपने निवास का वर्णन करते हैं, जहाँ उन्होंने गृहस्थ और वानप्रस्थ दोनों प्रकार के जीवन बिताए थे। (एतत्पुन० २–२२)। वे वहाँ के पर्वतों, वनस्थलों और नदी-तटों का मनोहर वर्णन करते हैं। (एते त एव० २–२३)। राम को देखते ही लव के हृदय में शान्त रस की धारा बह चलती है। (विरोधो विश्रान्तः० ६–११)।

(१३) भवभूति का काव्य-सौन्दर्य

(१) **महाकवि भवभूति**––भवभूति एक उच्चकोटि का नाटककार होने के साथ ही उच्चकोटि का महाकवि है। उसका हृदय कवि की मनोरम कल्पनाओं, ऊँची उड़ानों और सुकुमार भावनाओं से युक्त है। वह उत्तररामचरित में अनेक प्रसंगों में कथा के प्रवाह की चिन्ता न करके किसी भी सुन्दर भाव के सांगोपांग वर्णन में तल्लीन हो जाता है। वह उन्मुक्तभाव से उस वर्ण्य विषय का वर्णन करता है। अतएव कतिपय आलोचकों ने उसे सफल नाटककार के स्थान पर सफल महाकवि कहा है और उत्तररामचरित को कवित्वपूर्ण नाटक। भवभूति में कवि के सभी गुण पूर्णरूप से हैं। वह सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षक है, उसमें सम-वेदना और सहानुभूति है, उसका भाव और भाषा पर असाधारण अधिकार है,

वह सरल से सरल और कठिन से कठिन भावों को सुपुष्ट भाषा में वर्णन कर सकता है। उसमें असाधारण पांडित्य और वैदग्ध्य है। उसके नाटकों में प्रौढ़ता, भावों का उत्कर्ष और अर्थगौरव, इन तीन गुणों का सुन्दर समन्वय है।

(२) **उत्तररामचरित के मार्मिक प्रसंग**––उत्तररामचरित के मार्मिक प्रसंगों में निम्नलिखित स्थल विशेष उल्लेखनीय हैं––प्रथम अंक में चित्र-दर्शन, द्वितीय और तृतीय अंक में दण्डक वन तथा पंचवटी का वर्णन, चतुर्थ अंक में बालक लव का वर्णन, पंचम अंक में लव और चन्द्रकेतु के विवाद का वर्णन, षष्ठ अंक में राम के द्वारा सीता का वर्णन और सप्तम अंक में गंगा तथा पृथ्वी का वार्तालाप।

(३) **अन्तःप्रकृति और बाह्य प्रकृति का समन्वय**––भवभूति प्रकृति के साथ तादात्म्य का अनुभव करता है। पृथ्वी और गंगा सीता-परित्याग से उतनी ही दुःखित हैं, जितना कोई सामान्य सहृदय व्यक्ति। वनदेवता वासन्ती स्वयं सीता-परित्याग के लिए राम को उपालंभ देती है। (अयि कठोर०, ३–२७)। तमसा, मुरला और गोदावरी नदियाँ राम और सीता की सुरक्षा के लिए उतनी ही दत्तचित्त हैं, जितना कोई एक सेवक हो सकता है। राम के दुःख में प्रकृति भी दुःखित होती है, पर्वत भी रो पड़ते हैं। इतना ही नहीं वज्र का भी हृदय फट जाता है। (अयि ग्रावा रोदित्यपि० १–२८)। राम पंचवटी को एक सहृदय व्यक्ति समझते हैं और सीता-परित्याग के कारण उससे मिलने से झिझकते हैं। (पापः पंचवटीं विलोकयतु० २–२८)। राम पंचवटी के वृक्षों और मृगों को अपना बन्धु बताते हैं। (यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे० ३–८)। सीता द्वारा पालित मोर सीता को माता समझता है और सीता को स्मरण करता है। (स्मरति गिरिमयूर एष देव्याः० ३–२०)। सीता मृगों, पक्षियों और वृक्षों को पुत्रवत् मानकर पालती थी। (त एव जातनिर्विशेषा मृगपक्षिणः पादपाश्च, ३ वा० ६३)। सीता वृक्षों को जल से, पक्षियों को धान्य से और मृगों को घास से प्रतिदिन पालती थी। उनके प्रति उसका पुत्रवत् स्नेह था। (करकमलवितीर्णैः० ३–२५)।

(४) **सौन्दर्य और प्रेम का चित्रण**––भवभूति ने शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा आन्तरिक सौन्दर्य को अधिक महत्त्व दिया है। अतः वह कहता है कि––

गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः (४–११)। भवभूति गुणों को सर्वोत्तम आदर का स्थान मानता है। भवभूति प्रेम को अकारण और नैसर्गिक मानता है। उसका कथन है कि प्रेम आन्तरिक कारणों से उत्पन्न होता है। (व्यतिषजति पदार्थान्० ६–१२)। वह स्नेह को कारण-जन्य होने का स्पष्ट निषेध करता है। (स्नहश्च निमित्तसव्यपेक्ष इति विप्रतिषिद्धमेतत्, ६ वा० १६)। प्रेम को वह संसार का एक पवित्र बन्धन मानता है। (स हि स्नेहात्मकस्तन्तु० ५–१७)। वह प्रेम को संसार की स्थिति का कारण मानता है। प्रेम से ही संसार चल रहा है। (सर्वसाधारणो ह्येष० ७ वा० ३२)।

भवभूति ने दाम्पत्य प्रेम का अत्युत्तम वर्णन किया है और उसे जीवन का सार बताया है। (अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं० १–३९)। वह सीता को गृह-लक्ष्मी और अमृत की शलाका कहता है। पत्नी पति के लिए अमृत-धारा है। (इयं गेहे लक्ष्मी० १–३८)

(५) **अलौकिक तत्व**––भवभूति ने उत्तररामचरित में अलौकिक तत्त्वों को भी स्थान दिया है। कोई अलौकिक देवता महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में स्तन्यत्याग के बाद लव-कुश को पोषणार्थ पहुँचा देता है। (केनापि देवताविशे-षेण० २ वा० १२)। अंक २ में ब्राह्मण बालक की मृत्यु पर आकाशवाणी होती है और कहती है कि शम्बूक नामक शूद्र तपस्या कर रहा है, उसका वध करके बालक को जीवित करो। (अशरीरिणी वागुदचरत् २ वा० ५०)। अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा ने गोदावरी नदी को सन्देश दिया है कि वह राम की सुरक्षा करे। (तद् भगवति गोदावरि० ३ वा० २ ख)। गंगा और पृथ्वी मूर्च्छित सीता को बचाती हैं और उसे दोनों बालकों के सहित जल से बाहर लाती हैं। (भगवतीभ्यां गंगा० ३ वा० ५)। गंगा पृथिवी को समझाती है कि वह राम पर क्रोध न करे। (भगवति वसुन्धरे० ७ वा० ४०)। गंगा का जल क्षुब्ध होता है और गंगा तथा पृथ्वी सीता को लेकर जल से ऊपर निकलती हैं। (मन्थादिव क्षुभ्यति० ७–१७)।

भवभति के प्रकृति-प्रेम, भाषा के सौन्दर्य, लालित्य और माधुर्य आदि का वर्णन शैली के विवरण में दिया गया है। भवभूति वस्तुतः एक उच्चकोटि का महाकवि है।

(१४) भवभूति की शैली

भवभूति संस्कृत-साहित्य का उच्चकोटि का नाटककार और कवि है। कालिदास के बाद भवभूति ही सर्वश्रेष्ठ कवि है। उत्तररामचरित में वह कवित्व में कालिदास से भी आगे निकल गया है। अतएव कहा जाता है कि 'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते'। उसकी असाधारण ख्याति के कारण हैं :— उसका भाषा पर पूर्ण अधिकार, प्रसाद माधुर्य और ओज गुणों से युक्त शैली, वर्णनों में असाधारण पटुता, मानवीय भावनाओं का सूक्ष्मतम अध्ययन और विवेचन, गंभीर से गंभीर भावों को सरल और सुबोध भाषा में प्रकट करना, भाषा में प्रौढता, उदारता (उदात्तता, भावोत्कर्ष) और अर्थगांभीर्य।

भवभूति की शैली की मुख्य विशेषताएँ ये हैं :—

(१) **गौडी और वैदर्भी रीति**—भवभूति गौडी रीति का सर्वश्रेष्ठ कवि है। उसने मालतीमाधव और महावीरचरित में गौडी रीति को अपनाया है। उत्तररामचरित करुणरस-प्रधान नाटक है, अतः उसने इस नाटक में करुणरस के वर्णनों में वैदर्भी रीति को अपनाया है तथा वीर रस एवं प्रकृति-वर्णनों में गौडी रीति का आश्रय लिया है। इस प्रकार उत्तररामचरित में गौडी और वैदर्भी रीति का मणिकांचन संयोग है।

विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में गौडी और वैदर्भी रीतियों की ये विशेषताएँ बताई हैं :—(क) ओजःप्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बरः पुनः। समासबहुला गौडी० (सा० ९–३, ४)। (ख) माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका। अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते। (सा० ९–२, ३)। गौडी रीति में ओजगुण वाले टवर्ग आदि वर्ण होते हैं, रचना में पांडित्य-प्रदर्शन होता है और समास अधिकता से होते हैं। वैदर्भी रीति में मधुर शब्द, ललित रचना, समासों का सर्वथा अभाव या थोड़े समासयुक्त पदों का होना। भवभूति ने वीर-रस और प्रकृति के वर्णनों में गौडी रीति को अपनाया है। जैसे—(क) **वीररस के वर्णन**—आगर्जद्गिरिकुञ्ज० (५–६), अयं शैलाघातक्षुभित० (५–९), जृम्भकास्त्र का वर्णन—पातालोदरकुञ्ज० (५–१४), रणत्कारक्रूर० (५–२६)।

(ख) **प्रकृति-वर्णन**--गुञ्जत्कुञ्जकुटीर० (२-२६), एते ते कुहरेषु गद्गद० (२-३०), इह समदशकुन्ता० (२-२०)। करुण अत्यन्त सुकुमार रस माना गया है, अतः इसमें ओजगुण और समास वर्जित हैं। भवभूति ने ऐसे प्रसंगों में वैदर्भी रीति को अपनाया है। (ग) **करुण रस के वर्णन**--अथेदं रक्षोभिः० (१-२८), करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी० (३-४), इदं विश्वं पाल्यं० (३-३०), दलति हृदयं शोकोद्वेगाद्० (३-३१), क्व तावानानन्दो० (६-३३), यदा किंचित् किंचित्० (६-३५), चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा० (६-३८), घोरं लोके विततमयशो० (७-६)।

(२) **प्रसाद, माधुर्य और ओजगुण**--भवभूति ही ऐसा कवि है, जिसकी रचनाओं में प्रसाद, माधुर्य और ओज, इन तीनों गुणों का समानरूप से संमिश्रण मिलता है। कालिदास की रचनाओं में प्रसाद और माधुर्य गुण अत्यन्त उन्नत रूप में हैं, परन्तु ओजगुणयुक्त वर्णनों में भवभूति से बहुत पीछे है। करुण रस तथा सामान्य प्रकृति-वर्णनों में वैदर्भी रीति का आश्रय लेने से प्रसाद और माधुर्य गुणों के अति सुन्दर उदाहरण उत्तररामचरित में प्राप्त होते हैं। वीर रस एवं भयावह प्रकृति के वर्णनों में ओजगुण का अत्यन्त मनोहर परिपाक हुआ है। उदाहरणार्थ कुछ श्लोक प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

(क) **प्रसाद गुण**--निम्नलिखित श्लोकों में प्रसाद गुण मुख्य रूप से है। इनको पढ़ते ही श्लोक का भाव स्पष्ट हो जाता है। सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता० (१-५), विश्वंभरा भगवती० (१-६), लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते० (१-१०), जामातृयज्ञेन० (१-११), स्नेहं दयां च सौख्यं च० (१-१२), जनकानां रघूणां च० (१-१७), समयः स वर्तत इवैष० (१-१८), इक्ष्वाकुवंशो० (१-४४), शैशवात्प्रभृति० (१-४५), अयि कठोर यशः किल ते प्रियं० (३-२७), उपायानां भावा० (३-४४), व्यर्थं यत्र कपीन्द्र० (३-४५), शिशुर्वा शिष्या वा० (४-११), स संबन्धी श्लाघ्यः० (४-१३), पश्चात् पुच्छं वहति० (४-२६), अहेतुः पक्षपातो यः० (५-१७), सिद्धं ह्येतद् वाचि वीर्यं द्विजानाम्० (५-३२), न किंचिदपि कुर्वाणः० (६-५), त्रातुं लोकानिव परिणतः० (६-६), घोरं लोके विततमयशो० (७-६)। **अन्य उदाहरण**--१-२५, २६; ५-१६, १६, २७; ६-७; ७-७ से १६, २०, २१।

(ख) **माधुर्य गुण**—निम्नलिखित श्लोकों में माधुर्य गुण मुख्य रूप से है। इनको पढ़ते ही हृदय में आनन्द की अनुभूति होती है। किमपि किमपि मन्दं० (१–२७), इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयोः० (१–३८), करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी० (३–४), त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं० (३–२६), गृहीतो यः पूर्वं० (३–४०), यया पूतंमन्यो० (४–१०), स राजा तत्सौख्यं० (४–१२), वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च० (४–२२), अत्यद्भुतादपि० (५–१०), यदृच्छासंवादः० (५–१६), एतस्मिन् मसृणित० (५–१८), यथेन्दावानन्दं० (५–२६), कामं दुग्धे० (५–३०), विरोधो विश्रान्तः० (६–११), व्यतिषजति पदार्थान्० (६–१२), अङ्गादङ्गात्सृत इव० (६–२२)। **अन्य उदाहरण**—उत्तर० १–१४, २०, २४; ३–१९; ५–२४; ६–२४ से २८।

(ग) **ओजगुण**—निम्नलिखित श्लोकों में ओजगुण मुख्य रूप से है। इनको पढ़ने से हृदय में उत्साह एवं आश्चर्य की अनुभूति होती है और वीरत्व का संचार होता है। १. क्रौंचपर्वत का वर्णन—गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कारवत्कीचक० (२–२९)। २. दक्षिण के पर्वतों का वर्णन—एते ते कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयो० (२–३०)। ३. सशर धनुष का वर्णन—ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्रम्० (४–२९)। ४. नरसंहार का वर्णन—आगर्जद्गिरिकुञ्जकुञ्जरघटा० (५–६), अयं शैलाघातक्षुभितवडवा० (५–९)। ५. जृम्भक अस्त्र का वर्णन—व्यतिकर इव भीमो० (५–१३), पातालोदरकुञ्जपुंजिततमः० (५–१४)। ६. लव की वीरता का वर्णन—रणत्कारक्रूरक्वणितगुणगुञ्जद्० (५–२६)। **अन्य उदाहरण**—उत्तर० १. वाक्य ७९; ५–२, ५, ६–३, वाक्य ३ ख, वा० ९।

(३) **भाषा पर अधिकार**—भवभूति का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। वह भाषा को जिस प्रकार चाहता है, नचा सकता है। महावीरचरित में वह अपने आपको वश्यवाक् (वाणी जिस के अधिकार में है) कहता है। (वश्यवाचः कवेर्वाक्यम्, महा० १–४)। उत्तररामचरित में उसका कथन है कि वाणी वशवर्तिनी होकर उसका अनुसरण करती है। (यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते, उ० १–२)। भवभूति का यह कथन अनधिकार चेष्टा नहीं है, अपि तु उसने महावीरचरित और उत्तररामचरित की रचनाओं से इस कथन को यथार्थ

सिद्ध किया है। उसकी भाषा सरल और क्लिष्ट, सुबोध और दुर्बोध, कोमल और कठोर, समासरहित और समासप्रधान, इन दोनों परस्पर-विरोधी गुणों से युक्त है। अतएव उसका यह कथन सत्य है कि उसने कोमल और कठोर तथा अर्थगांभीर्य से युक्त वाणी का प्रयोग किया है। (प्रसन्नकर्कशा यत्र विपुलार्था च भारती, महावीर० १—२)। वह पांडित्य की प्रतिमूर्ति है। पग-पग पर उसके शास्त्रीय पांडित्य का दर्शन होता है। कोमल और मधुर पदावली के लिए उपर्युक्त प्रसाद और माधुर्य के उदाहरण देखें तथा क्लिष्ट, कठोर, दुर्बोध एवं समासप्रधान रचना के लिए पूर्वोक्त ओजगुण के उदाहरण देखें। शास्त्रीय पांडित्य के लिए पूर्ववर्णित 'भवभूति का शास्त्रीय पांडित्य' शीर्षक देखें।

(४) **भावानुकूल भाषा**—भवभूति का शब्दकोष अगाध है। वह भाव और प्रसंग के अनुसार सरल से सरल और कठिन से कठिन शब्दावली का अत्यन्त दक्षता के साथ प्रयोग करता है। वह प्रत्येक स्थान पर अत्यन्त उपयुक्त और सार्थक शब्दों का ही प्रयोग करता है। भाषा और शब्दकोष पर असाधारण अधिकार के कारण उसकी भाषा में असाधारण मनोरमता, प्रौढता, प्रांजलता, परिष्कार और अर्थगांभीर्य है। उसकी कृतियों में पांडित्य और वैदग्ध्य का अपूर्व संमिश्रण है। उसने मालतीमाधव में पांडित्य और वैदग्ध्य के प्रकाशनार्थ प्रौढता, उदारता और अर्थगांभीर्य का होना अनिवार्य बताया है। साथ ही अपनी रचनाओं में इन गुणों के समावेश की घोषणा की है। (यत् प्रौढित्वमुदारता च वचसां यच्चार्थतो गौरवं, तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमकं पाण्डित्यवैदग्ध्ययोः, मा० १—१०)। शृंगार, करुण और शान्त रसों के प्रयोग में भाषा अत्यन्त सरल और सुबोध है। यथा—(क) शृंगाररस के वर्णन—समयः स वर्तत० (उ० १—१८)। अन्य उदाहरण—उ० १—२४, २६, २७, ३६, ३७, ३८ आदि। (ख) करुण रस—अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् (उ० १—२८)। अन्य उदाहरण—उ० १—२६, ३०, ४० से ४६; ३—३० से ३५। (ग) शान्त रस—उ० १—२५, २—१, २, २२। वीर, बीभत्स, भयानक, रौद्र और अद्भुतरसों के वर्णन में शब्दावली क्लिष्ट और दुर्बोध है। यथा—एतद्वैशस० (४—२४), ज्याजिह्वया० (४—२६), आगर्जद्० (५—६), अयं शैलाघात० (५—६), पातालोदर० (५—१४)।

(५) भाषा सबल, संपुष्ट और परिष्कृत—भवभूति की भाषा सबल, संपुष्ट, परिष्कृत और संतुलित है। वह गंभीर से गंभीर भावों को अत्यन्त परिष्कृत और प्रभावपूर्ण भाषा में प्रकट करने में निष्णात है। वह भावों के अनुकूल शैली को अपनाता है और तदनुसार ही शब्दावली का संचयन करता है। उत्तररामचरित परिणतप्रज्ञ अवस्था की कृति है, अतः इसमें अन्य नाटकों की अपेक्षा प्रौढता अपने चरम उत्कर्ष पर है। भवभूति की भाषा में शक्ति है। वह करुण रस के प्रसंगों में गंभीर से गंभीर व्यक्ति को रुला सकता है। इतना ही नहीं, वह पत्थरों को भी रुलाने का दावा भरता है। (अपि ग्रावा रोदित्यपि०, उ० १–२८)। वीर रस के प्रसंगों में मृतप्राय एवं निर्जीव में भी वह वीरत्व और उत्साह के संचार की क्षमता रखता है। मनोभावों के विश्लेषण और विवेचन में संस्कृत साहित्य में कोई भी कवि उसकी समता नहीं कर सकता है। (क) मनोभावों का वर्णन—विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा० (१––३५), तटस्थं नैराश्याद्० (२–१३), संतानवाहीन्यपि० (४–८)। अन्य उदाहरण—४–२१; ५–१६, १७, २६; ६–१२; ७–वा० ३२, १२। करुण और वीर रस के श्लोक पहले दिए जा चुके हैं।

(६) विवरणात्मक और वाच्यार्थप्रधान शैली—भवभूति की शैली विवरणात्मक, व्याख्यात्मक और वाच्यार्थ-प्रधान है। उसने अपने नाटकों में अभिधावृत्ति का विशेषतः प्रयोग किया है। वह लक्षणा और व्यंजना वृत्तियों का न्यूनतम आश्रय लेता है। जहाँ कालिदास को संक्षिप्त और व्यंग्यात्मक शैली प्रिय है, वहाँ भवभूति को विस्तृत और वाच्यार्थप्रधान शैली रुचिकर है। वह प्रत्येक वस्तु का सांगोपांग विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करता है। किसी भी वर्ण्य-वस्तु के विषय में जो कुछ भी कहा जा सकता है, वह पूरे का पूरा स्वयं प्रस्तुत करना चाहता है और पाठकों या दर्शकों के लिए कुछ भी ज्ञातव्य नहीं छोड़ना चाहता। अतएव वर्ण्य वस्तु को आँखों के सामने साक्षात् चित्रित कर देता है, जिससे पाठक या दर्शक मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। कई स्थानों पर इस विस्तृत विवरण के कारण नाटकीय प्रगति में अवरोध भी उत्पन्न हुआ है। यथा—लव और कुश के शौर्य, शारीरिक सौन्दर्य, सुशीलता, विनम्रता, मनोज्ञता आदि का वर्णन—कुवलयदल-स्निग्धश्यामः० (उ० ४–१९)। अन्य श्लोक—उ० ४–२०

से २२; ५–२ से ५, ११, १२, १६, १८; ६–६, १३, १७, १६, २२ से २७। इसी प्रकार राजर्षि जनक के द्वारा पुत्री सीता का वर्णन—अपत्ये यत्तादृग्दुरितमभवत्० (उ० ४—३)। अन्य श्लोक—उ० ४–४ से ८, ११, १६, २२, २३। राम के द्वारा सीता के सौन्दर्य और गुणों आदि का वर्णन—इयं गेहे लक्ष्मी० (उ० १–३८)। अन्य श्लोक—उ० १–२०, ३४, ४३, ४५, ४६; ३–११, १२, १४, २८, ३६; ७–२६ से २८, ३३ से ३५, ३७, ३८, ४२।

(७) **रससिद्ध कवि**—भवभूति रस-सिद्ध कवि है। उसका विभिन्न रसों पर समान अधिकार है। उसने प्रमुख तीन रसों को लेकर अपने तीन नाटक लिखे हैं। जैसे—शृंगाररस-प्रधान मालतीमाधव, वीररस-प्रधान महावीरचरित और करुणरस-प्रधान उत्तररामचरित। वह करुणरस का निर्विवाद सर्वश्रेष्ठ कवि है। उसके करुण रस के प्रसंग बलात् मन को हर लेते हैं। उसके करुण रस के प्रसंगों को पढ़कर या देखकर पाठकों एवं दर्शकों के नेत्रों से हठात् अश्रु-धारा प्रवाहित हो जाती है। वह शृंगार और वीर रसों के वर्णन में भी उतना ही सिद्धहस्त हैं। अन्य रसों के वर्णन में भी वह दक्ष है। उसने अपने नाटकों में प्रायः सभी रसों का वर्णन किया है। उसने ही अपने नाटकों में रौद्र, भयानक, बीभत्स और अद्‌भुत रसों का बहुत सफलता के साथ वर्णन किया है। उसने मालतीमाधव (अंक ५ श्लोक ११ से १६) में श्मशान घाट का विस्तृत वर्णन करके भयानक और बीभत्स रसों का सुन्दर वर्णन किया है। भवभूति दार्शनिक एवं कुछ गंभीर-प्रकृति का कवि है, अतः उसके नाटकों में हास्य रस अपेक्षाकृत बहुत कम है। अतिपरिचित पात्र विदूषक का सर्वथा अभाव है। हास्य रस के प्रसंग भी अत्यन्त परिष्कृत और सुसंयत हैं। उसने शिष्टसंयत हास्य का ही प्रयोग किया है। रस-संबन्धी विवरण के लिए देखें—'उत्तररामचरित में रस-निरूपण' शीर्षक।

(८) **वर्णन-कुशलता**—भवभूति प्रकृति-वर्णन, शारीरिक सौन्दर्य-वर्णन, आन्तरिक सौन्दर्य-वर्णन, मनोभाव-वर्णन, आन्तरिक-दशावर्णन और मानवीय भावों के वर्णन में असाधारण पटु है। उसकी सूक्ष्म दृष्टि स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्वों की ओर अव्याहतगति से प्रवेश करती है। उसने प्रत्येक पदार्थ और तत्त्व को बहुत गहराई से देखा, सुना और समझा है। उसने नश्वर

जगत् की क्षणभंगुरता और नश्वरता को देखकर रोना भी सीखा है और जीवन की कठिन परिस्थितियों से संघर्ष करना भी सीखा है। अतः एक ओर वर्णनों में करुण रस की धारा अविच्छिन्न है तो दूसरी ओर वीर-रस भी उतना ही संपुष्ट है। भवभूति में भावाभिव्यंजन की अपूर्व शक्ति है। वह अपने वर्णनों के द्वारा मूर्तवस्तु को साक्षात् चित्रित कर देता है और अमूर्तभावों का इतना विशद चित्रण करता है कि पाठक उन भावों का सम्यक्तया ज्ञान प्राप्त कर लेता है। यह कवि के लिए अत्यन्त श्लाघ्य है। अनुभूति और वर्णन, इन दोनों का सापेक्ष सम्बन्ध है। अनुभूति के विना वर्णन निःसार है और सशक्त भाषा में वर्णन के विना अनुभूति का महत्त्व नहीं है। भवभूति ने सशक्त भाषा में स्वानुभूतियों का विशद वर्णन किया है, यही उसका महत्त्व है। जसे--(क) **शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन**--लव और कुश के शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन--कठोरपारावत-कण्ठमेचकं० (६-२५)। कुश का वर्णन--अथ कोऽयमिन्द्रमणिमेचकच्छविः० (६-१७), दृष्टिस्तृणीकृत० (६-१९), अमृताध्मातजीमूत० (६-२१), शुक्लाच्छदन्तच्छविसुन्दरेयं० (६-२७)। **(ख) आन्तरिक सौन्दर्य का वर्णन**--लव-कुश के गुणों का वर्णन--अहो प्रश्रययोगेऽपि० (६-२४), वपुरवियुत-सिद्धा० (६-२४)। लव के गुणों का वर्णन--महिम्नामेतस्मिन्० (४-२१), वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च० (४-२२)। सीता के गुणों का वर्णन--इयं गेहे लक्ष्मी० (१-३८), म्लानस्य जीवकुसुमस्य० (१-३६), त्वं वह्निर्मुनयो० (४-५), शिशुर्वा शिष्या वा० (४-११)। **(ग) मनोभावों का वर्णन**--भाव-शबलता का वर्णन--विनिश्चेतुं शक्यो० (१-३५), व्यतिषजति पदार्थान्० (६-१२), क्षुभिताः काममपि दशां० (७-१२) **(घ) आन्तरिक दशा का वर्णन**--सीता की आन्तरिक अवस्था का चित्रण--तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं० (३-१३)। करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी० (३-४)। राम की आन्तरिक अवस्था--अयं तावद्वाष्प० (१-२९), तत्कालं० (१-३०)। **(ङ) मानवीय भावों का वर्णन**--प्रेम का वर्णन--स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्ष इति विप्रतिषिद्धमेतत् (६ वा० १६)। गुणों का महत्त्व--महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः (६-११), गुणाः पूजास्थानं० (४-११)। स्त्री-सौकुमार्य का वर्णन--पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति (४-१२)।

भवभूति गंभीर और सुकुमार मानवीय भावों के वर्णन में अनुपम है। वह कोमल और गंभीर भावों के वर्णन में सरल और समासरहित पदावली का प्रयोग करता है। यथा—त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं० (३–२६), अयि कठोर यशः किल ते प्रियं० (३–२७), इदं विश्वं पाल्यं० (३–३०), हा हा देवि स्फुटति हृदयं० (३–३८)।

भवभूति भावों की व्यंजना में अद्वितीय है। उसकी कृतियों में भाव-पक्ष प्रधान है और विभाव-पक्ष गौण। उसने भावों की गंभीरता में प्रवेश किया है और स्वानुभूति के साथ उसका वर्णन करता है। उसने नाना भावों, मनोविकारों और संवेगों का भी सूक्ष्मता से अध्ययन किया है। अतः उसकी रचनाओं में भावों के साथ तादात्म्य मिलता है। उसे मानवीय प्रवृत्ति की सुन्दर परख है। यदि उसे मानवीय भावनाओं का कवि कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। वह अनेक भावनाओं का बहुरूपी चित्रण करके पाठकों के हृदय को बलात् हर लेता है। जैसे—सीता की भावशबलता का वर्णन—तटस्थं नैराश्याद्० (३–१३)। राम की भाव-शबलता—विनिश्चेतुं शक्यो० (१–३५)। राम की भाव-विह्वलता का वर्णन—अयं तावद् बाष्प० (१–२९), अथेदं रक्षोभिः० (१–२८)।

जीवन की विविध घटित घटनाओं का वह चित्र सा उपस्थित कर देता है। प्रस्रवण-पर्वत पर तथा गोदावरी के समीप निवास का वर्णन—स्मरसि सुतनु तस्मिन् पर्वते लक्ष्मणेन० (१–२६)। रात्रि के प्रेमालाप का वर्णन—किमपि किमपि मन्दं० (१–२७)। जनक का दशरथ को स्मरण करना—स राजा तत् सौख्यं० (४–१२), स संबन्धी श्लाघ्यः० (४–१३), कन्यायाः किल० (४–१७)।

भवभूति अपने वर्णनों के लिए नवीन घटनाओं की उद्भावना करता है और इसमें उसने स्वतन्त्रवृत्तिता तथा प्रतिभा का परिचय दिया है। यथा—तृतीय अंक में गज का जल-विहार (३–१५, १६), गिरि-मयूर का नर्तन (३–२०), सीताद्वारा पालित मृगों का वर्णन (३–२५)। उसने बाल्यावस्था की मनोहरता, युवावस्था की प्रौढता और वृद्धावस्था की क्षीणता का भी सुन्दर वर्णन किया है। सीता की बाल्यावस्था का वर्णन—प्रतनुविरलैः० (१–२०), अनियतरुदितस्मितं० (४–४)। सीता की युवावस्था का वर्णन—अलसललित-

मुग्धा० (१–२४), भ्रमिषु कृतपुटान्तर० (३–१९), गज की युवावस्था—लीलोत्खात० (३–१६)। वसिष्ठ आदि की वृद्धावस्था का वर्णन—वसिष्ठो वाल्मीकि० (६–३९)।

भवभूति माधुर्य गुण में अवश्य कालिदास से निम्न स्तर पर है, परन्तु भावों की गहराई और परिस्थितियों के बहुरूपी चित्रण में वह कालिदास से आगे है। उसके करुण रस के प्रसंगों में व्यापकता और सघनता दोनों गुण विद्यमान हैं।

(९) प्रकृति-वर्णन—भवभूति प्रकृति-वर्णन में असाधारण दक्ष है। उसने प्रकृति को बहुत सूक्ष्मता से देखा है। उसने प्रकृति के केवल सुकुमार पक्ष को ही नहीं देखा है, अपितु उसके कठोर, उग्र और रौद्र रूप को भी उतने ही प्रेम से देखा है। उसकी सशक्त भाषा जितनी सफलता के साथ प्रकृति के सुकुमार रूप को व्यक्त कर पाई है, उससे अधिक प्रौढ भाषा में उसने प्रकृति के कठोर रूप को अभिव्यक्त किया है। वह प्रकृति के साथ तादात्म्य का अनुभव करता है। पशु, पक्षी और वृक्ष तक से वह प्रेम करता है और फलस्वरूप पशु-पक्षी आदि भी उसके हर्ष में हर्षित और दुःख में दुःखित होते हैं। उसने प्रकृति को आलम्बन के रूप में लिया है, उद्दीपन के रूप में नहीं। **(क) प्रकृति के सुकुमार रूप का वर्णन**—पम्पासर का वर्णन—एतस्मिन् मदकलमल्लिकाक्ष० (१–३१), झरनों का वर्णन—इह समदशकुन्ताक्रान्त० (२–२०), आश्रम का वर्णन—एतत् पुनर्वनमहो० (२–२२), एते त एव गिरयो० (२–२३), प्रस्रवण पर्वत का वर्णन—मेघमालेव यश्चायम्० (२–२४), अस्यैवासीन्महति शिखरे० (२–२५), नदी और पर्वतों का वर्णन—पुरा यत्र स्रोतः० (२–२७)। **(ख) प्रकृति के कठोर रूप का वर्णन**—गोदावरी के किनारे मध्याह्न की भीषण गर्मी का वर्णन—कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणाकम्पेन संपातिभिः० (२–९), दण्डक वन की भयंकरता का वर्णन—निष्कूजस्तिमिताः क्वचित् क्वचिदपि प्रोच्चण्ड-सत्त्वस्वनाः० (२–१६), स्निग्धश्यामाः० (२–१४)। जंगली भालुओं आदि का वर्णन—दधति कुहरभाजामत्र भल्लूकयूनाम्० (२–२१), क्रौंच पर्वत पर मोरों से भयभीत सर्पों से युक्त चन्दन के वृक्षों का वर्णन—गुञ्जत्कुञ्ज-कुटीरकौशिकघटा० (२–२९)। भयंकर ध्वनियुक्त नदियों के संगम का वर्णन—एते ते कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयो० (२–३०) **(ग) प्रकृति से**

तादात्म्य--सीता का गज-शावक से प्रेम--सीतादेव्या स्वकरकलितैः० (३-६)। राम का वृक्ष और मृगादि से प्रेम--यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे० (३-८)। सीता का मोर को पालना और उसे नृत्य सिखाना--अनुदिवसमवर्धयत् प्रिया मे० (३-१८), भ्रमिषु कृत० (३-१९)। सीता का मृगों को पालना--नीरन्ध्रबालकदलीवनमध्यवर्ति० (३-२१), करकमलवितीर्णै० (३-२५)।

प्रकृति के सभी पक्षों के वर्णन में भवभूति सफल रहा है।

(१०) संवादों में औचित्य और रोचकता--भवभूति ने संवादों में सर्वत्र औचित्य और रोचकता का ध्यान रखा है। वह संवादों में उतना ही अंश देता है, जितना नाटकीय प्रवाह में बाधक न हो और रोचकता नष्ट न हो। संवाद और उनकी भाषा सर्वथा पात्रों के अनुकूल है। प्रत्येक पात्र अपनी आयु, योग्यता आदि के अनुकूल ही भाव और भाषा का प्रयोग करता है। अंक १ में चित्रवीथि-दर्शन में राम, लक्ष्मण और सीता बहुत छोटे वाक्यों का ही प्रयोग करते हैं। अंक ३ में राम और वासन्ती के संवाद में तथा सीता और तमसा के कथोपकथन में सरल, ललित और संक्षिप्त पदावली का ही प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार अंक ४ में जनक, कौसल्या और अरुन्धती के संवाद में भाषा संयत, संक्षिप्त और रोचक है। संवादों में अनावश्यक विस्तार का परित्याग है। कुछ स्थानों पर अवश्य समासयुक्त पदावली और लम्बे वाक्य दिए गए हैं, वे प्रगति और रोचकता को न्यून करते हैं। जैसे--अहो, दलन्नवनीलोत्पल० (१ वाक्य ५१), प्रवृत्त एवायमुच्चण्ड० ६ वा० ३ ख; यत्प्रलयवातोत्क्षोभ० (६ वा० ९)।

(११) पात्रों का चरित्र-चित्रण--भवभूति ने पात्रों का चरित्र-चित्रण अत्यन्त उत्कृष्ट रूप से किया है। वह आदर्शवादी है, अतः उसके सभी पात्र आदर्श-पालक हैं। वे किसी एक उच्च आदर्श के प्रतीक हैं। राम आदर्श राजा हैं तो सीता आदर्श सती स्त्री, जनक स्नेही पिता हैं तो कौसल्या स्नेहमयी माता, वाल्मीकि आदर्श महर्षि हैं तो अरुन्धती आदर्श तपस्विनी, लक्ष्मण आदर्श भाई हैं तो वासन्ती आदर्श सखी। प्रत्येक पात्र आदर्श के लिए जीते हैं और मरते हैं। दुर्मुख जैसा गुप्तचर भी अपने कर्तव्य-पालन से च्युत नहीं होता है और सीता-विषयक किंवदन्ती राम को सुनाता है। प्रत्येक पात्र अपने अनुकूल ही भाषा का

प्रयोग करता है। लव और कुश बालोचित चंचलता, शूरवीरता और विनय का परिचय देते हैं। जनक और कौसल्या वृद्धोचित भाव और भाषा का प्रयोग करते हैं। चन्द्रकेतु में एक ओर शौर्य है तो दूसरी ओर बालोचित प्रेमभावना। (अत्यद्भुतादपि० ५–१०)। सौधातकि और दण्डायन बालोचित हास्य करते हैं और सौधातकि वसिष्ठ को व्याघ्र बताता है। (उ० ४ वा० ८)। गंगा और पृथ्वी अपनी गंभीरता, स्निग्धता एवं परदुःखकातरता का परिचय देती हैं। उनके कथनों में शील, सौजन्य एवं गंभीरता है। वाल्मीकि सूत्र रूप में केवल तीन अर्थगांभीर्ययुक्त वाक्य बोलते हैं। वनदेवता वासन्ती को वन से संबद्ध एवं तमसा आदि नदियों को जल से संबद्ध उपमाएँ प्रिय हैं। उदाहरणार्थ देखो— उ० ३–२१ से २४, २६, ३४, ३७, ४२, ४७। भवभूति ने चरित्र-चित्रण में आदर्शवाद, मनोवैज्ञानिकता एवं मर्यादा का पूर्णरूप से ध्यान रखा है। उसने पात्रों के चरित्रांकन में विशेष सावधानी एवं कुशलता प्रदर्शित की है। यह सत्य है कि शूद्रक के मृच्छकटिक आदि के तुल्य पात्रों का वैविध्य, वैषम्य एवं अनेकरूपता भवभूति में नहीं है, परन्तु भवभूति अपने नाटकों में आदर्शहीन एवं चरित्रहीन पात्रों को स्थान नहीं देना चाहता है।

(१२) **अलंकारों का प्रयोग**—भवभूति के नाटकों को देखने से ज्ञात होता है कि उसने प्रायः सभी मुख्य अलंकारों का प्रयोग किया है। अलंकारों का प्रयोग उसने एक दक्ष कलाकार के तुल्य किया है। उसका भाव और भाषा पर ऐसा असाधारण अधिकार है कि अलंकार स्वतः आते चले जाते हैं। अलंकारों के लिए उसे प्रयास नहीं करना पड़ता है। उसने नवीन उपमाओं को जन्म दिया है। उसके अर्थान्तरन्यास के कतिपय पद सुभाषित के रूप में प्रचलित हो गए हैं। उसने उत्तररामचरित में ३८ अलंकारों का प्रयोग किया है। ये अर्थालंकार हैं, शब्दालंकारों की गणना नहीं की गई है। उसने ७४ श्लोकों में उपमा, ३८ में उत्प्रेक्षा, २६ में काव्यलिंग, २१ में रूपक और १५ श्लोकों में अर्थान्तरन्यास का प्रयोग किया है। ये अलंकार उसको अत्यन्त प्रिय हैं। उत्तररामचरित में जिन अलंकारों का प्रयोग हुआ है, उनका ही यहाँ पर निर्देश किया जा रहा है। उल्लिखित अलंकारों की व्याख्या के लिए उन-उन श्लोकों की संस्कृत-व्याख्या और टिप्पणी देखें। टिप्पणी में अलंकारों का विशदीकरण है। यहाँ पर उपमा

और अर्थान्तरन्यास का पृथक् संक्षिप्त वर्णन दिया गया है। शेष अलंकारों का संकेतमात्र (अंक और श्लोकसंख्या) दिया जा रहा है। शब्दालंकार अत्यधिक मात्रा में हैं, अतः उन पर ध्यान नहीं दिया गया है।

(१) **उपमा**—१–२, ५, ९, २०, २४, २९, ३०, ३४, ४०, ४५, ४७, ४९; २–४, २४, २८; ३–१, ५, ७, ९, १५, १८, १९, २०, २२, २३, २५, २७, २८, ३०, ३२, ३५ से ३७, ४० से ४३, ४६, ४७; ४–२ से ७, १०, १२, १५, १६, १९, २१, २६; ५–२ से ५, ८, ९, १३, १८, २६; ६–१ से ३, ६, ११, १३, १७, १९, २१, २४ से २६; ७–२१=७४। (२) **उत्प्रेक्षा**—१–२, १८, ३३, ३४, ४८; २–६, ९, २४, २६, २७; ३–४, १३, १४, २३, २८, ३३, ३७ से ३९, ४६, ४७; ४–३, ६, ८, १९; ५–६, १३, १४; ६–९, १०, १४, १९, २२, २६, ३६ से ३८; ७–१७=३८। (३) **काव्यलिंग**—१–५, ६, ११, ४४, ४६; २–१०, १३, २१, २७, २८; ३–३, १५, २०, २४, ४१, ४४; ४–२४; ५–१, ७, १६, १८, २४; ६–२०, ३९, ४२; ७–३=२६। (४) **रूपक**—१–३६, ३८, ५१; २–२९; ३–५, १६, २६, ३५; ४–७, १३ १७, २९; ५–९, १७, २७, २९, ३३; ६–१६, १८, ३७, ३८=२१। (५) **अर्थान्तरन्यास**—१–४१; २–१, ११, १९; ३–१०; ४–११, १२, १८; ५–१७, १९; ६–११, १२, १४, ३०; ७–४=१५। (६) **तुल्ययोगिता**—१–९, १२, १६, ४१; २–२२, २३; ३–४८; ४–५, २०, २२, २३; ५–२३; ६–२८; ७–५=१४। (७) **अर्थापत्ति**—१–१२, १७; २–७; ३–८, ३५; ४–१२, २८; ५–२८; ६–८, ४०; ७–४=११। (८) **स्वभावोक्ति**—१–२७; २–९, १४, १६, २०, २९; ३–८, १६; ४–४, २६=१०। (९) **अतिशयोक्ति**—१–२८; ३–११, १२, २६; ४–६, १३, २७; ५–४, ६=९। (१०) **निदर्शना**—१–४६; ५–११, २७, ३०, ३५; ६–४, २७, २९=८। (११) **विषम**—२–७, ११, १३; ३–४, २७; ४–१५; ५–१२, २६ =९। (१२) **विरोधाभास**—१–४३; ३–१३, ३४, ३९; ६–३५; ७–१ =६। (१३) **विशेषोक्ति**—१–६; २–२९; ३–३१, ३२; ६–३३, ४० =६। (१४) **दृष्टान्त**—१–१३, १४; ३–२९; ५–२०=४। (१५) **समुच्चय**—१–२०; २–१; ५–२; ६–४=४। (१६) **अप्रस्तुतप्रशंसा**—

२–२, ४, ७, १९=४। (१७) स्मरण––५–४; ६–२६, ३४, ३७=४। (१८) दीपक––१–३५; ४–२६; ५–३०=३। (१९) विभावना––१––६; ३–२२; ६–३७=३। (२०) अनुमान––१–२९; ५–१३, ३५==३। (२१) सन्देह––१–३५; ३–११; ५–१६=३। (२२) यथासंख्य––२–४; ३–२५, ४२=३। (२३) परिणाम––३–३०; ५–१०; ६–३०=३। (२४) परिसंख्या––४–२१; ५–३२; ६–३२=३। (२५) व्यतिरेक––१–१०; ३–४४=२। (२६) श्लेष––२–५; ३–४०=२। (२७) भाविक––२–६, १७=२। (२८) आक्षेप––३–२६; ५–३४=२। (२९) पर्याय––५–१५; ६–३५=२। (३०) प्रतिवस्तूपमा––१–१३=१। (३१) उल्लेख–१–३८=१। (३२) विशेष––२–२२=१। (३३) तद्गुण––२–३०=१। (३४) सहोक्ति––३–६=१। (३५) अपह्नुति––३–३४=१। (३६) पर्यायोक्त––४–१=१। (३७) असंगति––४–१४=१। (३८) समाहित––६–७=१।

(क) भवभूति की उपमाएँ––भवभूति ने उपमाओं के प्रयोग में नवीन दिशा प्रस्तुत की है। कतिपय मौलिक एवं नवीन उपमाएँ दी हैं। जैसे––बहते हुए आँसू की उपमा टूटी हुई मोती की माला से। (अयं तावद्बाष्प० १–२९)। सस्वेद बाहु की उपमा चन्द्र-कौमुदी से परिस्रुत चन्द्रकान्त मणि से। (बाहुरैन्दव० १–३४)। यह सजीव की निर्जीव से उपमा है। सीता के लोकापवाद की उपमा पागल कुत्ते के विष से। (आलर्कं विषमिव, १–४०)। गुरु के विद्यादान की उपमा पवित्र मणि और मृत्पिंड से। (वितरति गुरुः० २–४)। यह अमूर्त की मूर्त से उपमा है। राम के करुण रस की उपमा पुटपाक से। (पुटपाकप्रतीकाशो० ३–१)। यह मूर्त की उपमा अमूर्त पदार्थ से है। अरुन्धती की उपमा उषा से। (देवी उषसमिव० ४–१०)। यह द्रव्य की उपमा गुण से है। सीता की उपमा कारुण्य से। (करुणस्य मूर्तिः० ३–४)। यह मूर्त की उपमा अमूर्त या भावों से है। सीता की उपमा विरहव्यथा से। (विरहव्यथेव० ३–४)।

(ख) अर्थान्तरन्यास के प्रयोग––भवभूति ने अर्थान्तरन्यासों का भी सुन्दर प्रयोग किया है। कुछ अर्थान्तरन्यास इतने भावपूर्ण, अर्थगांभीर्य एवं शब्दसौष्ठव से युक्त हैं कि वे अत्यन्त प्रचलित सुभाषित हो गए हैं। कतिपय उदाहरण

प्रस्तुत किए जा रहे हैं। विस्तार के लिए देखो--परिशिष्ट ४ में सुभाषित वाक्य और सुभाषित श्लोकों का संग्रह।

(१) वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि। लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति (२-७)। (२) गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः (४-११)। (३) लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते। ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति। (१-१०)। (४) तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः (१-१३)। (५) सतां सद्भिः संगः कथमपि हि पुण्येन भवति (२-१)। (६) रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते (२-२)। (७) तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः (२-१९)। (८) पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति (४-१२)। (९) प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति (६-३०)। (१०) अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् (१-२८)।

(१३) **छन्दों का प्रयोग**--भवभूति ने उत्तररामचरित में १९ छन्दों का प्रयोग किया है। छन्दों के प्रयोग पर विचार करने से ज्ञात होता है कि उसने छोटे छन्दों का प्रयोग अधिक किया है और बड़े छन्दों का प्रयोग कम। निम्नलिखित छन्दों का उत्तररामचरित में इतनी बार प्रयोग हुआ है। श्लोकों की संख्या की दृष्टि से इनका क्रम यहाँ पर दिया गया है। (१) अनुष्टुप् या श्लोक --८४, (२) शिखरिणी--३०, (३) वसन्ततिलका--२६, (४) शार्दूलविक्रीडित--२५, (५) मालिनी--१६, (६) मन्दाक्रान्ता--१३, (७) प्रहर्षिणी--१२, (८) हरिणी--९, (९) इन्द्रवज्रा--७, (१०) उपजाति --७, (११) शालिनी--५, (१२) पुष्पिताग्रा--५, (१३) मञ्जुभाषिणी --५, (१४) रथोद्धता--३, (१५) पृथ्वी--३, (१६) द्रुतविलम्बित--२, (१७) आर्या--२, (१८) औपच्छन्दसिक--१, (१९) वंशस्थ--१। इन छन्दों के लक्षण आदि तथा विवरण परिशिष्ट ३ में दिए गए हैं।

भवभूति के अन्य नाटकों को देखने से ज्ञात होता है कि उसे श्लोक छन्द सबसे अधिक प्रिय है और उसके बाद शिखरिणी छन्द। मालतीमाधव में २३८ श्लोक हैं तथा महावीरचरित में ३९० श्लोक। महावीरचरित में छन्दों की संख्या सबसे अधिक है। इसमें २० छन्द हैं और अनुष्टुप् श्लोकों की संख्या १३१

है, अर्थात् एक-तिहाई श्लोक अनुष्टुप् छन्द में हैं। उत्तररामचरित में २५६ श्लोक हैं, जिनमें ८४ अनुष्टुप् छन्द हैं, अर्थात् एक-तिहाई अनुष्टुप् छन्द है। अनुष्टुप् के बाद भवभूति का प्रिय छन्द शिखरिणी है। उसकी शिखरिणी की क्षेमेन्द्र ने सुवृत्ततिलक में बहुत प्रशंसा की है।

भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी।
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति। (सुवृत्ततिलक ३–३३)

इस श्लोक में शिखरिणी, तरङ्गिणी और घनसन्दर्भे पदों में श्लेष है। भवभूति शिखरिणी छन्द का अत्यन्त सिद्धहस्त कवि है। उसके शिखरिणी छन्द का पाठ मोरनी के नृत्य के तुल्य आनन्दप्रद है। उसे वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित और मालिनी छन्द भी अत्यन्त प्रिय हैं। भवभूति ने मालतीमाधव में चामुण्डा की स्तुति में एक पाद में ५४ वर्णों वाले एक दण्डकवृत्त का भी प्रयोग किया है। प्रचलितकरिकृत्ति० (मालती० ५–२३)। उसने बड़े परिश्रम से विभिन्न वृत्तों में पद्यरचना का अभ्यास किया था। विभिन्न वृत्तों में श्लोक उसकी जिह्वा पर नाचते हुए प्रतीत होते हैं। छन्दों के प्रयोग में वह अत्यन्त प्रवीण है। वह कभी कोमल वर्णों के प्रयोग से, कभी कठोर वर्णों के प्रयोग से और कभी नादात्मक गति से भावों की अभिव्यक्ति करता है। जैसे—एते ते कुहरेषु० (२–३०), गुञ्जत्कुञ्जकुटीर० (२–२९), हा हा देवि स्फुटति० (३–३८)। उसने करुण रस के वर्णनों के लिए प्रायः शिखरिणी और वसन्ततिलका को अपनाया है तथा प्रकृति-वर्णन और गंभीर विचारों की अभिव्यक्ति के लिए शार्दूलविक्रीडित और शृंगार रस के लिए मालिनी छन्द का आश्रय लिया है।

(१४) **प्राकृत भाषाओं का प्रयोग**—भवभूति ने उत्तररामचरित में केवल शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग किया है। उत्तररामचरित में अंक २, ५ और ६ (विष्कंभक को छोड़कर) में प्राकृत का सर्वथा अभाव है। अंक ७ में केवल सीता प्राकृत बोलती है। अंक १, ३ और ४ में प्राकृत के छोटे वाक्य हैं और सीता, कौसल्या तथा मुनि बालक सौधातकि एवं गुप्तचर दुर्मुख ही प्राकृत बोलते हैं। अंक ६ के विष्कम्भक में विद्याधरी प्राकृत बोलती है। भवभूति ने उत्तररामचरित में कोई प्राकृत का श्लोक नहीं दिया है। मालतीमाधव (६–१०,

११) में दो प्राकृत के श्लोक दिए हैं, परन्तु वे संस्कृत और प्राकृत में समान ही हैं। मालतीमाधव में लंबे समास-युक्त प्राकृत-वाक्य हैं।

(१५) **विविध विशेषताएँ**--भवभूति की अन्य विशेषताएँ संक्षेप में निम्न-लिखित हैं :—

(क) **मानवीकरण**—भवभूति ने प्राकृतिक तत्त्वों पृथिवी, वनदेवता, नदियों आदि को मानव का रूप देकर नाटक में प्रस्तुत किया है। पृथ्वी, वासन्ती (वनदेवता), गंगा, तमसा, मुरला, गोदावरी (नदियाँ), ऐसे ही पात्र हैं।

(ख) **संवादात्मक श्लोक**--भवभूति ने कई श्लोकों को संवादात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। श्लोक का एक अंश एक व्यक्ति बोलता है, दूसरा अंश दूसरा व्यक्ति। जैसे—सोऽयं शैलः० (१-३३) के वक्ता राम और लक्ष्मण हैं। एक ही श्लोक अनेक पात्र बोलते हैं। **जैसे**--तमसा और वासन्ती—अवनिर-मरसिन्धुः० (३-४८)। गंगा और पृथिवी—कृशाश्वः० (७-९)। लव और चन्द्रकेतु--यदृच्छा० (५-१६), एतस्मिन्० (५-१८), किं चाक्रान्त० (५-१९)।

(ग) **श्लोकों की आवृत्ति**—भवभूति अपने सुन्दर श्लोकों को बारबार दुहराता है। भवभूति ने ४३ श्लोक या श्लोकांश अपने तीनों नाटकों में दुहराए हैं। विस्तृत विवरण के लिए देखो परिशिष्ट ५।

(घ) **व्यंग्य-प्रयोग**--भवभूति ने कतिपय सुन्दर व्यंग्यों का प्रयोग किया है। जैसे--राम के लिए 'नूतनो राजा' (१ वा० १३७), प्रजापालकस्य मातुः (४ वा० ३६)। राम नए राजा और प्रजापालक हैं, प्रियापालक नहीं। वसिष्ठ को व्याघ्र, व्याघ्र इवैष० (४ वा० ८)। लव का राम की वीरता पर व्यंग्य-वृद्धास्ते न० (५-३४)।

(ङ) **अप्रचलित शब्दावली का प्रयोग**--भवभूति ने अनेक अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे---आरकूट (५-१४), कन्दल (३-११), प्रतिसूर्यक (२-१६), अम्बूकृतानि (२-२१), मौकुलि (२-२९), प्रचलाकिन् (२-२९), रोहिण (२-२९), कुम्भीनस (२-२९)। कई स्थानों पर वैदिक और दार्शनिक शब्दावली जैसी की तैसी रख दी है। (४ वा० २४ ख, ३५)।

(च) परम्परागत प्रणाली का त्याग—भवभूति ने परम्परागत प्रणाली का परित्याग करके नवीन प्रणाली को जन्म दिया है। उसने कोयल की ध्वनि, आम्रमंजरी, चन्द्रज्योत्स्ना, अशोक आदि वृक्षों के परंपरागत वर्णन का परित्याग किया है।

(१६) भवभूति की न्यूनताएँ—उत्तररामचरित में कतिपय न्यूनताएँ भी दिखाई पड़ती हैं। परन्तु उसके विशाल साहित्य में ये न्यूनताएँ विशेष महत्त्व नहीं रखती हैं। इनका केवल संकेतमात्र नीचे दिया जा रहा है।

(क) विदूषक का अभाव—तीनों नाटकों में विदूषक का सर्वथा अभाव है। उत्तर० में करुण रस के कारण उसकी अनुपस्थिति क्षम्य होने पर भी मालती० आदि में विदूषक का न होना अवश्य खटकता है।

(ख) अन्वितित्रय का अभाव—काल, स्थान और क्रिया (कार्य) की अन्विति का न होना। भारतीय विद्वान् अन्वितित्रय की उपयोगिता को आवश्यक नहीं समझते हैं, अतः संस्कृत के नाटकों में अन्वितित्रय उपेक्षित रहा है।

(ग) भाषा की दुरूहता—भवभूति ने पांडित्य और वैदग्ध्य की धाक जमाने के लिए क्लिष्ट और दुरूह शब्दावली का प्रयोग किया है और लंबे समस्त पद दिए हैं। यथा—प्रवृत्त एवायम्० (६ वा० ३ ख), यत्प्रलयवातोत्क्षोभ० (६ वा० ६)। यह शैली नाटकोपयोगी नहीं है।

(घ) संवादों में विस्तार—कुछ स्थानों पर संवाद बहुत विस्तृत हो गए हैं। वे खटकते हैं। जैसे—अंक ३ में राम-वासन्ती-संवाद, अंक ५ में लव और चन्द्रकेतु के विवाद का वर्णन।

(ङ) नायक पर लांछन—लव ने वृद्धास्ते न० (५–३४) में राम की वीरता पर तीन लांछन लगाए हैं। साहित्यदर्पण (६–५०) तथा क्षेमेन्द्रकृत औचित्यविचारचर्चा (स्ववचसा कविना विनाशः कृतः) में इसकी तीव्र भर्त्सना है। नायक पर दोषारोपण नाटक में त्याज्य है।

(च) अनुचित प्रसंग—भवभूति ने अंक ४ में समांस या अमांस मधुपर्क का अत्यन्त अनुचित प्रसंग उभारा है। भवभूति ने इसके द्वारा अपनी कुप्रवृत्ति का संकेत दिया है। वसिष्ठ और वाल्मीकि को गोभक्षक एवं गोघातक बनाने की चेष्टा करना भवभूति के लिए सर्वथा निन्द्य है।

(छ) **पात्रों के वैविध्य का अभाव**—भवभूति ने सभी आदर्शवादी पात्र प्रस्तुत किए हैं। उसमें मृच्छकटिक आदि के तुल्य पात्रों का वैविध्य, वैषम्य और अनेकरूपता नहीं है।

(ज) **नायक आदि की अधीरता**—राम, सीता, जनक, कौसल्या, वासन्ती आदि का बार-बार रोना, बार-बार मूर्च्छित होना और पुनः होश में आना, यह बहुत भद्दा लगता है। नायक का बार-बार अधीर होना, मूर्च्छित होना, सर्वथा निन्द्य है।

(झ) **श्लोकों की पुनरावृत्ति**—अपने श्लोकों को बार-बार दुहराना, यह अनुचित प्रतीत होता है। भवभूति ने ४३ श्लोक या श्लोकांश तीनों नाटकों में दुहराए हैं। विशेष विवरण के लिए देखो परिशिष्ट ५।

(ञ) **भरत की अनुपस्थिति**—राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न के होने पर भी केवल भरत को वाल्मीकि के आश्रम में अनुपस्थित रखना खटकता है।

(ट) **वस्तु-विन्यास में शिथिलता**—वस्तु-विन्यास में कुछ शिथिलता रह गई है। अतः आलोचकों का मत है कि उत्तर० से अंक ५ को निकाल देने पर भी कथा के प्रवाह में कोई कमी नहीं आती है।

(ठ) **अपाणिनीय प्रयोग**—कुछ अपाणिनीय प्रयोग भी मिलते हैं। यथा—दूषणखरत्रिमूर्धानः० (२–१५) में द्वित्रिभ्यां० (५–४–११५) से समासान्त ष (अ) प्रत्यय करने पर त्रिमूर्धाः रूप बनेगा। समासान्तविधि को अनित्य मानने पर यह रूप बन सकता है। ऋतंभराणि प्रज्ञानानि (७ वा० ८) में ऋतंभर शब्द संज्ञावाचक होने पर ही संज्ञायां भृतृ० (३–२–४६) से बनता है। यहाँ संज्ञावाचक नहीं है। इसको योगदर्शन के पारिभाषिक शब्द ऋतंभरा प्रज्ञा का अनुकरण ही मानना चाहिए।

(१५) प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण

(क) राम

राम इस नाटक के नायक हैं, उनको मुख्यतया राम या रामभद्र नाम से संबोधित किया गया है। इस नाटक में राम को एक लोकप्रिय महाराज के रूप में चित्रित किया गया है। उनको कहीं भी भगवान् नहीं कहा गया है। वह एक

मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं। वे आदर्श राजा, आदर्श पति, आदर्श पिता और आदर्श भाई हैं। उनका चरित्र लोकोत्तर है। भवभूति ने राम को आदर्श पति की अपेक्षा आदर्श राजा के रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने लोकानुरंजन के लिए सीता का परित्याग किया है। राम का कथन है कि वे प्रजानुरंजन के लिए सर्वस्व अर्पण कर सकते हैं। स्नेहं दयां च.........आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा। (उ० १–१२)। उनके लिए राजा का यश सर्वस्व है। तस्माद्यशो यत् परमं धनं वः (उ० १–११)। उनकी कुल-परंपरा रही है कि वे प्रजापालक रहे हैं। महाराज दशरथ ने भी लोकाराधन के लिए राम को और अपने प्राणों को छोड़ा था। सतां केनापि० (उ० १–४१)।

राम ने इस नाटक में एक आदर्श उपस्थित किया है कि राजा के लिए जन-हित और प्रजानुरंजन सर्वोत्तम कार्य है। प्रजानुरंजन के लिए उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की भी वलि दी जा सकती है। स्वयं न चाहते हुए भी उन्होंने जनता के सन्तोष के लिए सीता का परित्याग किया और उसके कारण बारह वर्ष असह्य वियोग-दुःख सहा। अन्त में प्रजा और ऋषि-मुनियों की स्वीकृति से ही सीता को स्वीकार करते हैं। एक आदर्श पति के रूप में उनका जीवन अनुकरणीय रहा है। उन्होंने सोने की सीता की मूर्ति बनाकर अश्वमेध यज्ञ किया (उ० २ वाक्य ४६), अतएव वासन्ती का कथन है कि महापुरुषों के हृदय वज्र से भी अधिक कठोर होते हैं और फूल से भी अधिक कोमल। (वज्रादपि कठोराणि०, २–७)। आदर्श राजा के रूप में उनकी कोई त्रुटि दृष्टिगोचर नहीं होती, परन्तु आदर्श पति के रूप में अवश्य उन पर आपत्ति की गई है। वासन्ती राम को आड़े हाथ लेती है और कहती है कि तुमने अपने यश के लिए इतना बड़ा पाप किया है। क्या तुम्हें विदित है कि स्त्री-परित्याग का कितना बड़ा अपयश होता है? (अयि कठोर यशः किल ते प्रियं० ३–२७)। वन में सीता का क्या हुआ? इसका उत्तर राम न दे सके। वे कहते हैं कि सीता को अवश्य ही जंगली जानवरों ने खा लिया होगा। (उ० ३–२८)। राम को बारह वर्ष यही अनुमान रहा कि न सीता जीवित है और न सीता की कोई सन्तान ही शेष है। राम बारह वर्ष अत्यन्त दयनीय अवस्था में शोकाकुल रहे। वे यह मानते हैं कि सीता निरपराध थी और उसका पातिव्रत्य धर्म सर्वथा निर्मल था, किन्तु सीता के विषय में फैला

हुआ लोकापवाद उनको विवश करता है कि सीता परित्याग करें। इसके लिए उन्होंने दु:ख के अवसरों पर जनता को दोषी बताया है (न किल भवतां० ३-३२)।

राम सीता के वियोग के कारण साक्षात् करुणा की मूर्ति हो गए हैं। उनका जीवन करुण रस का साक्षात् उदाहरण हो गया है (पुटपाकप्रतीकाशो० ३-१)। उनका कथन है कि दु:ख भोगने के लिए ही मेरे जीवन में चेतना शेष है। (उ० १-४७)। शम्बूक-वध के बाद जब पंचवटी और जनस्थान में जाते हैं तब पग-पग पर पुरानी स्मृति आती है। वे भाव-विह्वल, शोकाकुल और असहाय हो जाते हैं। वे बार-बार रोते हैं, मूर्छित होते हैं और तमसा के कहने पर सीता अपने हस्तस्पर्श से राम को होश में लाती है (उ० ३-३९) सीता के प्रति राम के हृदय में अगाध स्नेह है। वे निरन्तर सीता का स्मरण करते रहते थे। प्रजा के पुण्यों से और राम के अलौकिक धैर्य से उनका जीवन बच सका था। (लोकोत्तरेण सत्त्वेन० उ० ७-७)।

राम सभी सद्गुणों के प्रतिमूर्ति हैं और कर्तव्यपालन में वे अत्यन्त कठोर हैं, किन्तु अन्य स्थानों पर वे उतने ही मृदु हैं। कुश और लव को देखकर आनन्द से विह्वल हो जाते हैं, वे दोनों की वीरता की प्रशंसा करते हैं, दोनों को हृदय से लगाते ही उनमें वात्सल्य रस का अपूर्व प्रवाह बहने लगता है। उन्होंने कर्तव्यपालन के लिए ही शम्बूक का वध किया है और लवणासुर को मारने के लिए शत्रुघ्न को भेजा था। संक्षेप में हम राम को एक आदर्श महापुरुष के रूप में पाते हैं।

(ख) सीता

सीता इस नाटक की नायिका है। वह एक आदर्श सती-साध्वी नारी है। शील, सदाचार और गुणों में वह अत्यन्त उच्च है। उसके पातिव्रत्य के सन्मुख अग्नि भी तुच्छ है (उ० ४ वा० ३९)। अरुन्धती भी उसको संसार की पूजनीय बताती है (शिशुर्वा० ४-११)। उसमें अलौकिक धैर्य है। उसने इस धैर्य के द्वारा ही अपने जीवन को बचाया। यद्यपि वह निरपराध है, किन्तु जनापवाद के कारण उसको अपमानित, तिरस्कृत और निर्वासित किया गया है। वह परि-

त्याग के बाद विधुरा का जीवन व्यतीत करती है। यह जानते हुए कि राम ने अकारण उसका परित्याग किया है। वह केवल अपनी मर्यादा के पालनार्थ राम को दोष नहीं देती। वह लव और कुश को दूध छोड़ने के बाद वाल्मीकि के पास छोड़कर पाताल में रहती है। उसका जीवन अत्यन्त करुणापूर्ण है। तृतीय अंक में तमसा उसको करुणा की मूर्ति और शरीरधारी विरहव्यथा बताती है (करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी० ३–४)। वह अदृश्य रूप में रहते हुए मूर्छित राम को होश में लाती है। उसे यह जानकर प्रसन्नता है कि परित्याग के बाद राम ने विवाह नहीं किया है और अश्वमेध यज्ञ में उसकी सुवर्णप्रतिमा से कार्य चलाया है (उ० ३ बा० १८६)। राम के प्रति उसका स्नेह अपार है (उ० ६–३२)। वह सदा राम की शुभचिन्तक रही है। अपने पुण्यों के फलस्वरूप नाटक के अन्त में उसका अपने पति से पुर्नमिलन होता है। मनुष्य और देवगण उसके चरित्र की प्रशंसा करते हैं और सभी उसको निर्दोष बताते हैं। वह एक आदर्श नारी है।

(ग) लव और कुश

(क) **लव**—लव सीता का पुत्र है। वह युगल पुत्र है और कुश का छोटा भाई है। माँ का दूध छोड़ने के बाद उसका पालन-पोषण तथा क्षत्रियोचित संस्कार महर्षि वाल्मीकि ने किया है। उसने धनुर्विद्या का असाधारण अभ्यास किया है। जृम्भक अस्त्र उसे जन्मसिद्ध हैं। वह अत्यन्त धीर-वीर और पराक्रमी है। उसमें स्वाभिमान उच्चकोटि का है। वह अपने समान किसी को वीर नहीं समझता। राम की वीरता को भी वह अपन से घटिया समझता है और उन्हें वृद्ध समझकर उनकी निन्दा से बचता है। ताड़कावध, बालिवध और खर-युद्ध में उनकी कमजोरी का संकेत करता है। (वृद्धास्ते० ५–३४)। क्षत्रियवंश-नाशक परशुराम को वह एक साधारण वीर ब्राह्मण समझता है। वह अश्वमेध के अश्व को पकड़ लेता है और वीरता से पूरी सेना के साथ युद्ध करता है। चन्द्रकेतु से उसका प्रबल युद्ध होता है। जिसमें आग्नेय, वायव्य, वारुण और जृम्भक अस्त्रों का प्रयोग होता है। राम के आगमन से युद्ध रुक जाता है। राम लव और कुश को उनकी आकृति से अपना पुत्र होने का अनुमान करते हैं। लव अपने आप को वाल्मीकि का पुत्र बताता है और कहता है कि पिता-माता

का नाम अज्ञात है। वह विनीत है। राम को सादर प्रणाम करता है। मर्यादा-पालक है। उसने वेद, शास्त्र, धनुर्वेद, रामायण आदि अच्छे प्रकार से पढ़ा है। वह बाल्यसुलभ चांचल्य, वीरता, विनीतता आदि गुणों से सब के मन को हर लेता है।

(ख) **कुश**—वह लव का बड़ा भाई है। महर्षि वाल्मीकि ने ही उसकी शिक्षा-दीक्षा तथा संस्कार आदि किए हैं। वह भी लव के तुल्य महापराक्रमी है। जृम्भक अस्त्र उसको भी जन्मसिद्ध हैं। वह लव और चन्द्रकेतु के युद्ध को सुन कर इतना उत्तेजित हो जाता है कि संसार से राजाशब्द का नाम ही मिटा देना चाहता है। (अद्यास्तमेतु० ६–१६)। राम उसे वीर रस की प्रतिमूर्ति कहते हैं। (दृष्टिस्तृणीकृत० ६–१९)। लव के कहने पर वह शान्त हो जाता है और राम को प्रणाम करता है। उसमें शौर्य, वीरता, पराक्रम और विनय गुणों का समन्वय है।

(घ) चन्द्रकेतु

चन्द्रकेतु लक्ष्मण का पुत्र है। वह अश्वमेधीय अश्व की रक्षा के लिए सेना के साथ निकला था। वह वीर, धीर, पराक्रमी और गुणग्राही है। जब लव ने अश्वमेधीय अश्व को पकड़ लिया और सैनिकों को संत्रस्त कर दिया तो चन्द्रकेतु उनकी रक्षा के लिए पहुँचता है। वह लव के सौन्दर्य पर मन्त्रमुग्ध और उसे रघुवंशी बालक समझता है। जब लव ने सैनिकों को हरा दिया तो वह लव से युद्ध के लिये उद्यत हो गया। लव और चन्द्रकेतु एक दूसरे को मित्र कहते हैं और प्रेम-भाव प्रकट करते हैं। राम के प्रति लव के निन्दा-वचनों को सहन नहीं कर सकता है, अतः सुमन्त्र की स्वीकृति माँगकर युद्ध के लिये रथ से उतर जाता है। उसे शास्त्रीय मर्यादा का पूर्ण ध्यान है कि पैदल के साथ पैदल का ही युद्ध होता है। वह शिष्ट और विनीत है। राम के आते ही वह युद्ध बन्द कर देता है और उन्हें प्रणाम करता है। लव को अपना मित्र बताकर राम से उसका परिचय कराता है। चन्द्रकेतु गंभीर, वीर और पराक्रमी होने के साथ ही अत्यन्त शिष्ट और विनीत है।

(ङ) जनक

जनक मिथिला के महाराज और सीता के पिता हैं। उन्होंने महर्षि याज्ञ-वल्क्य से ब्रह्मविद्या सीखी थी। (उ० ४–६)। वे महाराज दशरथ के घनिष्ठ

मित्र थे। वे दशरथ और कौसल्या के घरेलू झगड़ों को भी निपटाया करते थे (उ० ४–१४)। दशरथ उन्हें सदा पूजनीय समझते थे। वे राम के द्वारा सीता के परित्याग के कारण दिन-रात दुःखी रहते थे (उ० ४–२)। उन्होंने अनेक व्रत और उपवास किए थे। वे सीता को अग्नि से भी अधिक पवित्र मानते हैं (उ० ४ वाक्य ३८)। वे राम और प्रजा को शाप देना चाहते हैं, परन्तु अरुन्धती की प्रार्थना पर वे अपने क्रोध को रोक लेते हैं (४–२४,२५)। वे लव में सीता के सभी गुणों को देखते हैं और आकृष्ट हो जाते हैं। वे पवित्रता की मूर्ति हैं।

(च) लक्ष्मण

लक्ष्मण राम के छोटे भाई और उनके सेवक हैं। प्रथम अंक में वह राम और सीता के विनोदार्थ चित्रवीथि के चित्र दिखाते हैं। वे राम के यह पूछने पर ये चित्र कहाँ तक बने हैं? उन्होंने अग्निशुद्धि तक बताकर राम और सीता की मनोव्यथा को उद्बुद्ध किया है। वे राम की प्राचीन घटनाओं का उल्लेख करते हैं और जब राम खिन्न होते हैं तब उन्हें धैर्य बँधाते हैं। राम के आदेशानुसार वे ही सीता को वन में छोड़ने जाते हैं। सप्तम अंक में वाल्मीकि के आश्रम में जब राम मूर्छित होते हैं तो वे ही राम को धैर्य बँधाते हैं। लक्ष्मण ही अन्त में निवेदन करते हैं कि सारा संसार सीता को निर्दोष मानता है और प्रणाम करता है। लक्ष्मण एक आदर्श भाई हैं। वे वीर, पराक्रमी और विनम्रता आदि गुणों से विभूषित हैं।

(छ) कौसल्या

कौसल्या राम की माता हैं। राम ने उनकी अनुपस्थिति में सीता का परित्याग किया है, अतः ऋष्यशृंग के यज्ञ से लौटने पर वे क्रुद्ध होकर अयोध्या न जाकर महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में जाती हैं। वहीं पर उनकी राजर्षि जनक से भेंट होती है। वे जनक के सामने जाने में झिझकती हैं। वे सीता-परित्याग की घटना से अत्यन्त दुःखित हैं। वे लव को देखकर उसे सीता का पुत्र होने का अनुमान करती हैं। वे सती साध्वी पतिव्रता स्त्री हैं।

(ज) वासन्ती

वासन्ती दण्डकारण्य की वनदेवता है और सीता तथा राम की पुरानी सखी

है। वह दण्डक-वन में राम से वार्तालाप करती है और सीता का विवरण पूछती है। सीता-परित्याग के समाचार से उसे अत्यन्त दुःख है। वह राम को कठोर उलाहना देती है कि तुम्हें यश प्रिय है, परन्तु मृगनयनी सीता प्रिय नहीं है। उसका क्या हुआ? (अपि कठोर यशः० ३–२७)। वह राम को निरुत्तर कर देती है। वह वार्तालाप में अत्यन्त निपुण है। वह राम को दण्डकारण्य के विभिन्न दृश्यों को दिखाती है। वह दुःखित राम को धैर्य बँधाती है। वह व्यवहार-कुशल है। राम को विलम्ब न हो, अतः उन्हें लौटने को कहती है। (गमनं प्रति० ३ वा० १९१)। वह सुन्दर, व्युत्पन्न, व्यवहार-कुशल और सहानुभूतिपूर्ण नारी है।

(झ) तमसा

तमसा एक नदी है। उसकी अधिष्ठात्री देवी के रूप में वह रंगमंच पर आती है। अदृश्य सीता के साथ वह प्रारम्भ से अन्त तक रहती है। वही सीता से वार्तालाप करती है और उसका मनोविनोद करती है। वह सीता को करुण रस की मूर्ति और शरीरधारी विरहव्यथा कहती है। (करुणस्य मूर्ति० ३–४)। वह मूर्च्छित सीता को होश में लाती है। वह वाक्पटु है। उसके कथन पर ही सीता मूर्च्छित राम को हस्तस्पर्श से होश में लाती है। उसे मनोभावों का सूक्ष्मतम ज्ञान है। उसने राम-दर्शन से उत्पन्न सीता के मनोभावों का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है। (तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं०, ३–१३)। भवभूति ने अपना सैद्धान्तिक श्लोक (एको रसः करुण एव० ३–४७) उसके मुख से ही कहवाया है। वह सीता की हितैषिणी, वाक्पटु, विदुषी स्त्री है।

(ञ) अरुन्धती

अरुन्धती महर्षि वसिष्ठ की पत्नी है। वह शील, सदाचार, तपस्या एवं गुणों की प्रतिमूर्ति है। छोटे से लेकर बड़े से बड़े तक उसका आदर करते हैं। वह चतुर्थ अंक में कौसल्या के साथ राजर्षि जनक के पास जाती है। जनक ने उषा-देवी से उसकी उपमा दी है और जगद्वन्द्या कहा है। (यया पूतंमन्यो० ४–१०)। वही सीता की पवित्रता और पूज्यता को घोषित करती है। (शिशुर्वा शिष्या वा० ४–११)। उसमें स्त्रीजनोचित सुकुमारता है। वह नारी के गौरव को समझती है। (गुणाः पूजास्थानं० ४–१२)। उसने ही कौसल्या

आदि को संकेत किया है कि नाटक का अन्त सुखद होगा। (कल्याणोदर्कं भविष्यतीति, ४ वा० ५१)। उसके कथन पर ही जनक राम को शाप देने से रुकते हैं। (राजन्नपत्यं० ४–२४)। वह एक आदर्श ब्रह्मवादिनी है।

(ट) वाल्मीकि

महर्षि वाल्मीकि आदिकवि एवं रामायण के रचयिता हैं। उन्होंने ही माँ का दूध छोड़ने के बाद से कुश और लव का पालन-पोषण किया है। उनमें पितृ-तुल्य हित-बुद्धि और मातृतुल्य स्नेह है। उन्होंने कुश-लव का यज्ञोपवीत संस्कार किया है और उन्हें वेद, शास्त्र, धनुर्वेद आदि की उच्चकोटि की शिक्षा दी है। वे बहुश्रुत, बहुविद्यापारंगत एवं अत्यन्त प्रतिभाशाली कवि हैं। उनका मा निषाद प्रतिष्ठां० (२–५) श्लोक आदर्श वाक्य हो गया है। उनके प्रताप से ही यह नाटक सुखान्त हो सका है। वे नाटक के अन्त में रंगमंच पर आते हैं और केवल तीन वाक्य बोलते हैं। राम नाटक के सुखान्त होने के लिए उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। वे सिद्ध, सन्त, ब्रह्मविद् और परमतेजस्वी महर्षि हैं।

(१९) भवभूति और कालिदास

संस्कृत-साहित्य में कालिदास के समान ही गौरवास्पद एवं सफल नाटककार होने का श्रेय यदि किसी को प्राप्त हुआ है तो महाकवि भवभूति को। संस्कृत के आलोचकों में यह एक विवादास्पद विषय रहा है कि दोनों महाकवियों में कौन सा महाकवि श्रेष्ठ है। कालिदास के समर्थक कालिदास को श्रेष्ठ मानते हैं और भवभूति के समर्थक भवभूति को। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो निःसंकोच कहा जा सकता है कि जहाँ तक सुकुमार भावयुक्त कवित्व और काव्य का सम्बन्ध है, वहाँ तक कालिदास सर्वोपरि है। किन्तु नाटककार के रूप में और ओजगुणयुक्त एवं करुणरसप्रधान कवि के रूप में भवभूति कालिदास से बढ़कर है। उत्तररामचरित में उसकी नाट्यकला और उनके कवित्व का परिपाक है। अतः कहा गया है कि उत्तररामचरित में भवभूति कालिदास से बढ़कर है। 'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते'।

कालिदास और भवभूति के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि भवभूति की कृतियों पर कालिदास का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। नाटकों के कथानक

के आयोजन में भी उसने कालिदास से प्रेरणा प्राप्त की है। उत्तररामचरित का चित्रदर्शन का दृश्य सम्भवतः रघुवंश (१४–२५) के चित्रदर्शन से लिया गया है। कालिदास ने वर्णन किया है कि चित्रशाला में बैठे हुए राम और सीता दण्डकारण्य की दुःखद घटनाओं के चित्रों को देखकर अब सुख का अनुभव करते हैं।

तयोर्यथाप्रार्थितमिन्द्रियार्थानासेदुषोः सद्मसु चित्रवत्सु ।
प्राप्तानि दुःखान्यपि दण्डकेषु संचिन्त्यमानानि सुखान्यभूवन् ।।

इसी प्रकार उत्तररामचरित में अदृश्य रूप में रहती हुई सीता का राम को विरह-विकल-रूप में देखने का संकेत शाकुन्तल के षष्ठ अंक से सम्भवतः प्राप्त हुआ है, जहाँ पर भानुमती नामक अप्सरा अदृश्यरूप में रहती हुई विरह-विकल दुष्यन्त की अवस्था को देखती है। मालतीमाधव में विरही माधव का अपनी विरहिणी प्रिया मालती के पास मेघ द्वारा सन्देश भेजना भावभाषा आदि सभी दृष्टि से मेघदूत के प्रभाव को स्पष्ट करता है। यहाँ पर यह स्मरण रखना उचित है कि भवभूति ने अपने पूर्ववर्ती महाकवियों से भाव आदि लिए हैं, परन्तु उसने उन भावों और विचारों पर अपनी प्रतिभा से ऐसी अनुपम छाप लगाई है कि उसको एक नवीन और चमत्कृत रूप दे दिया है। अधिकांश स्थलों पर वह उन भावों के वर्णन में पूर्व कवियों से आगे बढ़ गया है।

कालिदास और भवभूति में कतिपय समानताएँ हैं और कुछ विभिन्नताएँ। दोनों की समानताओं पर विचार करने से ज्ञात होता है कि—(१) दोनों संस्कृत-साहित्य के उच्चकोटि के सफल नाटककार हैं। (२) दोनों सफल महाकवि हैं। (३) दोनों का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। (४) दोनों अपने अभीष्ट रस के वर्णन में अनुपम हैं। (५) दोनों में असाधारण प्रतिभा और मौलिकता है। (६) दोनों के वर्णन में यह शक्ति है कि वह पाठकों और दर्शकों को मन्त्रमुग्ध कर लेती है।

दोनों कवियों की विभिन्नताओं पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि उनमें बहुत अन्तर भी है। (१) कालिदास की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। वह सफल नाटककार, सफल महाकाव्य-रचयिता और सफल गीति-काव्य-प्रणेता भी है।

भवभूति केवल सफल नाटककार है। उसकी प्रतिभा नाटकों में ही प्रकट हो पाई है। (२) कालिदास की कृतियों में प्रसाद और माधुर्य गुण अधिक हैं। वह इन गुणों के द्वारा पाठक को बलात् आकृष्ट कर लेता है। उसकी रचनाओं में लम्बे समासों, दुरूह प्रयोगों, क्लिष्ट-कल्पनाओं और पाण्डित्य-प्रदर्शन का दोष नहीं है। इसके विपरीत भवभूति की रचनाओं में ओजगुण बहुत अधिक है। वह लम्बे समासों, दुरूह प्रयोगों, क्लिष्ट कल्पनाओं और पाण्डित्य-प्रदर्शन में संकोच नहीं करता। यथा—(क) प्रवृत्त एवायमुच्चण्डवज्रखण्डावस्फोटपटुरटत्स्फुलिंगगुरुरुत्तालतुमुललेलिहानोज्ज्वलज्वालासंभारभैरवो भगवानुषर्बुधः। (उत्तर० अंक ६ वाक्य ३ ख), (ख) यत्प्रलयवातोत्क्षोभगम्भीरगुलगुलायमानमेघमेदुरितान्धकारनीरन्ध्रनद्धमिव एकवारविश्वग्रसनविकटविकरालकालमुखकन्दरविवर्तमानमिव······भूतं विपद्यते। (उत्तर० अंक ६ वा० ६)। (ग) कण्डूलद्विपगण्डपिण्ड० (उत्तर० २–६), (घ) गुञ्जत्कुञ्जकुटीर० (उत्तर० २–२६), (ङ) पातालोदरकुञ्ज० (उत्तर० ५–१४)। (३) कालिदास शृंगाररस का सर्वोत्तम कवि है। उसने शृंगार के दोनों पक्षों सम्भोग और विप्रलम्भ का सर्वोत्तम वर्णन किया है। भवभूति करुण रस का सर्वोत्तम कवि है। वह वीर रस के वर्णन में भी कालिदास से बढ़कर है। भवभूति का मन्तव्य है कि करुण रस ही एक मात्र मुख्य रस है। अन्य रस करुण के ही रूपान्तर हैं।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ॥ (उत्तर० ३–४७)

(४) कालिदास की कृतियों में लक्षणा और व्यञ्जना वृत्तियों की प्रधानता है। वह लक्ष्य और व्यङ्ग्य अर्थों के द्वारा अपने अभीष्ट रस को अभिव्यक्त करता है। इसके विपरीत भवभूति की कृतियों में अभिधा वृत्ति की प्रधानता है। वह वाच्य अर्थ के द्वारा रस की अभिव्यक्ति करता है। कालिदास थोड़े से शब्दों के द्वारा अधिक से अधिक अर्थ को व्यञ्जना के द्वारा अभिव्यक्त करता है। वह थोड़ी बात कह कर अधिकांश पाठक की कल्पना पर छोड़ देता है। भवभूति उस भाव को प्रबल एवं विस्तृत वाग्विन्यास के द्वारा प्रकट करता है। जितनी जो कुछ बात उस विषय में कहनी है, वह पूरी बात स्वयं कह देता है। पाठक की कल्पना के लिये बहुत कम छोड़ता है। जैसे—शाकुन्तल में दुष्यन्त शकुन्तला

को देखकर केवल इतना ही कहता है—अये लब्धं नेत्रनिर्वाणम् (शाकु० ३ श्लोक ५ के बाद) (ओह, मेरी आँखों का आनन्द मिल गया)। किन्तु मालतीमाधव में माधव मालती को देखकर कहता है—

अविरलमिव दाम्ना पौण्डरीकेण नद्धः
स्नपित इव च दुग्धस्रोतसा निर्भरेण।
कवलित इव कृत्स्नश्चक्षुषा स्फारितेन
प्रसभममृतमेघेनेव सान्द्रेण सिक्तः ॥ (मालती० ३-१६)

कालिदास जहाँ संक्षेप में या संकेत रूप में वर्णन करता है, वहाँ भवभूति उनका विस्तृत वर्णन करता है।

(५) कालिदास की कृतियों में कल्पना की ऊँची उड़ान है तो भवभूति की कृतियों में भावों का गाम्भीर्य। कालिदास में सरलता और सरसता है, तो भवभूति में ओज और प्रौढ़ता। कालिदास में कोमलता और प्राञ्जलता है, तो भवभूति में प्रगल्भता और उदात्तता। कालिदास में नैसर्गिकता है तो भवभूति में आदर्शरूपता। कालिदास में सजीवता है, तो भवभूति में गम्भीरता।

(६) कालिदास और भवभूति के उपमा-प्रयोगों में भी अन्तर है। कालिदास उपमाओं के प्रयोग में सर्वोत्तम है। वह प्रायः मूर्त वस्तु की उपमा मूर्त वस्तु से देता है। वल्कलधारिणी शकुन्तला की उपमा शैवाल से लिपटे हुए कमल से देता है। सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्० (शाकु० १-२०)। किन्तु भवभूति मूर्त वस्तु की उपमा अमूर्त से भी देता है। वह विरहिणी सीता की उपमा मूर्तिमती करुणा या विरह-व्यथा से देता है।

करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी
विरहव्यथेव वनमेति जानकी ॥ (उत्तर० ३-४)

(७) दोनों ने प्रकृति का वर्णन किया है। कालिदास ने प्रकृति के कोमल और ललित अंश को ही मुख्यतः अपनाया है। भवभूति ने प्रकृति के घोर और प्रचण्ड अंश को अपनाया है। वह भयंकर वनों, ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न की तीव्र धूप आदि का वर्णन करता है। यथा—कण्डूलद्विपगण्ड० (उत्तर० २-९), स्निग्धश्यामाः क्वचिदपरतो० (उत्तर० २-१४), निष्कूजस्तिमिताः० (उत्तर०

२–१६), दधति कुहरभाजाम्० (उत्तर० २–२१), गुञ्जत्कुञ्जकुटीर० (उत्तर० २–२६)।

(८) कालिदास ने नारी के बाह्य सौन्दर्य का मनोहर वर्णन किया है, किन्तु भवभूति ने उसके अन्तःसौन्दर्य को प्रकट किया है। यथा—अधरः किसलयरागः० (शाकु० १–२१), स्रस्तांसौ० (शाकु० १–३०)। कालिदास के लिए स्त्री 'श्रोणीभारादलसगमना' 'पक्वबिम्बाधरोष्ठी' है। भवभूति के लिए वह गृहलक्ष्मी और आँखों के लिए अमृतशलाका है। इयं गेहे लक्ष्मी० (उत्तर० १–३८)।

(९) कालिदास ने अपने नाटकों में विदूषक को स्थान दिया है और हास्य-रस का भी संमिश्रण किया है। भवभूति ने विदूषक का परित्याग करके हास्य-रस को बहुत कम स्थान दिया है।

(१०) कालिदास के नाटकों में तत्कालीन समाज का वास्तविक चित्रण पूर्णरूप से प्राप्त नहीं होता है। भवभूति के नाटकों में तत्कालीन समाज का वास्तविक चित्रण विस्तृत रूप से प्राप्त होता है।

स्वर्गीय द्विजेन्द्र लाल राय ने उत्तररामचरित और शाकुन्तल की तुलना करते हुए लिखा है :—"विश्वास की महिमा में, प्रेम की पवित्रता में, भाव की तरंग-क्रीडा में, भाषा के गाम्भीर्य में और हृदय के माहात्म्य में 'उत्तररामचरित' श्रेष्ठ है और घटनाओं की विचित्रता में, कल्पना की कोमलता में मानव-चरित्र के सूक्ष्म विश्लेषण में, भाषा की सरलता और लालित्य में 'अभिज्ञानशाकुन्तल' श्रेष्ठ है। संस्कृत साहित्य में ये दोनों नाटक अद्वितीय हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल शरद् ऋतु की पूर्ण चाँदनी है, उत्तररामचरित नक्षत्रखचित नील आकाश है। एक व्यञ्जन है, दूसरा हविष्य अन्न है; एक वसन्त है, दूसरा वर्षा है; एक नृत्य है, दूसरा अश्रु है; एक उपभोग है, दूसरा पूजन है।"

———

नाटकीय-पात्र

क्रम संख्या	नाम	परिचय
पुरुष-पात्र		
१	सूत्रधार	नाटक का प्रारम्भकर्ता, रंगमंच का अध्यक्ष।
२	नट	सूत्रधार का सहयोगी।
३	राम (रामभद्र)	अयोध्या के सूर्यवंशी राजा। नाटक का नायक।
४	लक्ष्मण	राम के छोटे भाई, सुमित्रा के पुत्र।
५	जनक	मिथिला के राजा और राम के श्वशुर।
६	अष्टावक्र	विकृत अंगों वाले एक महामुनि।
७	वाल्मीकि	रामायण के रचयिता। कुश-लव के संरक्षक।
८	सौधातकि	वाल्मीकि का शिष्य।
९	दण्डायन	,, ,, ,,
१०	कुश	राम और सीता का पुत्र। लव का बड़ा भाई।
११	लव	राम और सीता का पुत्र। कुश का छोटा भाई।
१२	चन्द्रकेतु	लक्ष्मण का पुत्र। अश्वमेधीय अश्व का संचालक।
१३	सुमन्त्र	चन्द्रकेतु का वृद्ध सारथि।
१४	विद्याधर	एक देव-विशेष।
१५	कञ्चुकी	अन्तःपुर में रहने वाला वृद्ध ब्राह्मण।
१६	दुर्मुख	राम का गुप्तचर।
१७	शम्बूक	शूद्र तपस्वी।
१८	वटवः	वाल्मीकि के आश्रम के मुनिकुमार।
१९	पुरुष	अश्वमेधीय अश्व का रक्षक सैनिक।

क्रम संख्या	नाम	परिचय
स्त्री-पात्र		
२०	सीता	राजा जनक की पुत्री। राम की पत्नी।
२१	वासन्ती (वनदेवता)	वनदेवता। सीता की सखी।
२२	आत्रेयी (तापसी)	एक तपस्विनी ब्रह्मचारिणी।
२३	तमसा	एक नदी की अधिष्ठात्री देवी।
२४	मुरला	,, ,, ,, ,,
२५	भागीरथी	गंगा की अधिष्ठात्री देवी।
२६	पृथिवी	पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी। सीता की माता।
२७	कौसल्या	राम की माता।
२८	अरुन्धती	महर्षि वसिष्ठ की पत्नी।
२९	विद्याधरी	विद्याधर की पत्नी।
३०	प्रतीहारी	अन्तःपुर की द्वारपालिका।
अन्यपात्र	**(जिनका केवल उल्लेख-मात्र है)**	
१	वसिष्ठ	एक महर्षि। रघुकुल के कुलगुरु।
२	शत्रुघ्न	लक्ष्मण के छोटे भाई। सुमित्रा के पुत्र।
३	ऋष्यश्रृंग	शान्ता के पति। राम के जीजा।
४	लवण	एक राक्षस। मथुरा का राजा।
५	शान्ता	राम की बहिन।
६	गोदावरी	गोदावरी नदी की अधिष्ठात्री देवी।

———

ओम्

महाकविश्रीभवभूतिप्रणीतम्

उत्तररामचरितम्

प्रथमोऽङ्कः

१. इदं कविभ्यः पूर्वेभ्यो नमोवाकं प्रशास्महे ।
विन्देम देवतां वाचममृतामात्मनः कलाम् ॥१॥

अन्वय—पूर्वेभ्यः कविभ्यः नमोवाकम् 'आत्मनः कलाम् अमृतां वाचं देवतां विन्देम' इदं प्रशास्महे ।

हिन्दी अर्थ—हम अपने पूर्ववर्ती कवियों (वाल्मीकि आदि) को नमस्कार करके 'परमात्मा की कलास्वरूप अमर वाणी-देवता (वाग्देवता) को प्राप्त करें' यह प्रार्थना करते हैं ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या

पूर्वेभ्यः—पूर्वजेभ्यः, कविभ्यः—काव्यनिर्मातृभ्यः वाल्मीकिप्रभृतिभ्यः, नमोवाकम्—नमस्कारकथनपूर्वकम्, आत्मनः—परमात्मनः, कलाम्—अंशरूपाम्, अमृताम्—अविनाशिनीम्, वाचं—वाणीम्, देवतां—देवीम्, विन्देम—प्राप्नुयाम, इदम्—एतत्, प्रशास्महे—प्रार्थयामहे । अत्रानुष्टुप् छन्दः ।

टिप्पणी

(१) **उत्तररामचरितम्**—रामस्य चरितं रामचरितम् (षष्ठी तत्पुरुष), उत्तरं च तत् रामचरितम् उत्तररामचरितम् (कर्मधारय) । उत्तररामचरितम् अधिकृत्य कृतं नाटकम् इति उत्तररामचरितम् । यहाँ पर 'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' (४-३-८७) से अण् प्रत्यय होगा, उत्तररामचरित+अण् (अ) और उसका

पाठभेद—१. नि० वन्देमहि च तां वाणीम् (उस वाग्देवता को नमस्कार करते हैं ।)

'लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्' (वार्तिक) से लोप हो जाएगा। उत्तररामचरित का अर्थ है—जिसमें राम के जीवन के उत्तरार्ध की घटनाओं का वर्णन है, ऐसा नाटक। उत्तर से अभिप्राय है—राम के लंका से लौटने के बाद की घटनाओं का जिसमें वर्णन है। कवि ने रामचरित का पूर्वभाग महावीरचरितम् में वर्णन किया है। उत्तररामचरित नाम इस प्रकार भी बन सकता है—उत्तरं रामचरितं यस्मिन् तत् (बहुव्रीहि), जिसमें उत्तरकालीन रामचरित का वर्णन है, ऐसा नाटक। लक्षणा से यह शब्द ग्रन्थ का वाचक हो जाता है। (२) **चरितम्**—संस्कृत में चरित और चरित्र दो शब्द हैं। छात्रों को इन दोनों शब्दों का अन्तर स्मरण रखना चाहिए। चरित का अर्थ है—जीवनी या जीवन-चरित अर्थात् उसकी जीवनी या जीवन में घटित घटनाएँ। चरित्र का अर्थ है—आचरण, शील। अतः चरित में जीवनवृत्त, इतिवृत्त और जीवन का संग्रह होता है। इस नाटक में राम के लंका से लौटने के बाद के जीवन-वृत्त का वर्णन है। (३) **अङ्क**—अङ्क का लक्षण है—यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः। किंचिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवगन्तव्यः॥ (नाट्यशास्त्र २०—१९)। जहाँ पर एक अर्थ की समाप्ति होती है और बीज का उपसंहार होता है तथा अंशतः बिन्दु का संबन्ध बना रहता है, उसे अंक कहते हैं। अंक की समाप्ति पर सभी पात्र रंगमंच से चले जाते हैं। अङ्कनिष्क्रान्तनिखिलपात्रोऽङ्क इति कीर्तितः। (साहित्यदर्पण ६—१९)। (४) **नान्दी**—इसका विशेष विवरण आगे वक्तव्य संख्या २ की टिप्पणी में दिया गया है। मंगलाचरण के रूप में जो स्तुतिपाठ किया जाता है, उसे नान्दी कहते हैं। इस पहले श्लोक में नमस्काररूपी मंगलाचरण का पाठ किया गया है। मंगलाचरण के विषय में पतंजलि ने महाभाष्य के प्रथम आह्निक में कहा है कि मंगलाचरण ग्रन्थ की प्रसिद्धि और पाठकों की सफलता के लिए होता है। 'मंगलादीनि हि शास्त्राणि प्रथन्ते वीरपुरुषकाणि च भवन्त्यायुष्मत्पुरुषकाणि चाध्येतारश्च सिद्धार्था यथा स्युरिति' (महाभाष्य)। अतः शिष्ट-परम्परा है कि 'ग्रन्थादौ ग्रन्थमध्ये ग्रन्थान्ते च मङ्गलम् आचरेत्'। (५) **इदम्**—यह। यह प्रशास्महे का कर्म है। हम यह प्रार्थना करते हैं। यहाँ पर 'सामान्ये नपुंसकम्' से नपुं० है। (६) **कविभ्यः पूर्वेभ्यः**—प्राचीन वाल्मीकि व्यास आदि कवियों को। यहाँ पर नमोवाकम् के नमः शब्द के कारण कविभ्यः में चतुर्थी समझनी

चाहिए । अथवा 'कवीन् उद्दिश्य प्रशास्महे' यह भाव मानकर 'क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि संप्रदानम्' (वा०) नियम से चतुर्थी । कवियों को लक्ष्य करके यह प्रार्थना करते हैं । कुछ विद्वानों ने कविभ्यः का अर्थ केवल वाल्मीकि कवि लिया है और इसको आदरार्थक बहुवचन माना है । (७) **नमोवाकम्**--नमस्कार कह कर । वचनं वाकः । वच्+घञ् (अ)=वाकः, व के अ को वृद्धि और च् को क् । नमः इत्यस्य वाकः--नमोवाकः (तत्पुरुष), नमोवाकः अस्ति अस्मिन् इति मत्वर्थक अच् (अ) प्रत्यय । नमोवाक+अ=नमोवाकम्, तत् यथा स्यात् तथा । यह क्रियाविशेषण है । वच् धातु से णमुल् (अम्) प्रत्यय करने पर वाचम् रूप बनेगा, अतः नमः उक्त्वा इति नमोवाकम् रूप नहीं बनाना चाहिए । (८) **प्रशास्महे**--चाहते हैं, प्रार्थना करते हैं । सामान्यतया आ+शास् धातु इच्छा अर्थ में आत्मनेपदी है । आ+शास् ही आत्मनेपदी है, यह नियम प्रायिक है, अतः प्र+शास् भी इच्छा अर्थ में आत्मनेपदी है । अतएव सिद्धान्तकौमुदी में कहा है--'आङः शासु इच्छायाम् । आङ्पूर्वत्वं प्रायिकम् । तेन "नमोवाकं प्रशास्महे' इति सिद्धम् । (सि० कौ०) । प्र+शास्, लट् उत्तमपुरुष बहुवचन । 'अस्मदो द्वयोश्च' (१-२-५९) से अहम् के स्थान पर वयम् का प्रयोग है । आदरार्थ में एक० के स्थान पर बहु० का प्रयोग होता है । । (९) **विन्देम**--प्राप्त करें । तुदादिगणी विद् का विधिलिङ उ० पु० बहु० । विद् धातु भिन्न-भिन्न अर्थों में चार गणों में आती है । अतः सिद्धान्तकौमुदी में कहा है--सत्तायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे । विन्दते विन्दति प्राप्तौ श्यन्लुक्श्नम्शेष्विदं क्रमात् । (१०) **देवतां वाचम्**--वाणीरूपी देवता को, वाग्देवी को । वाणी को देवता माना गया है । इसको ही शब्दब्रह्म भी कहते हैं । भर्तृहरि ने वाक्यपदीय ग्रन्थ में इस शब्दब्रह्म का बहुत विस्तार के साथ वर्णन किया है । देव शब्द पुंलिंग है, परन्तु देवता शब्द स्त्रीलिंग है । देव शब्द से स्वार्थ में तल् (त) प्रत्यय और टाप् (आ) । देव एव देवता, देव+त+आ । क्वचित् स्वार्थिकाः प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्तन्ते । स्वार्थ वाले प्रत्ययों के लगने पर भी कभी-कभी लिंग-भेद आदि हो जाता है । (११) **अमृताम्**--अमर, अविनाशी । वाणी के चार भेद माने गए हैं--परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी । परा को सूक्ष्मा वाक् भी कहते हैं । यह अविनाशी और अमर मानी गई है । वैखरी शब्दनिष्पत्तिर्मध्यमा श्रुतिगोचरा । द्योतितार्था च पश्यन्ती सूक्ष्मा वागनपायिनी ।। (१२) **आत्मनः**

कलाम्—जो परमात्मा की कला-स्वरूप है। वाक्तत्त्व या वाग्देवी शब्दब्रह्म की कला या अंश है। विष्णुपुराण के अनुसार वाणी और समस्त वाङ्मय विष्णु का ही शरीर या अंश है। काव्यालापाश्च ये केचिद् गीतकान्यखिलानि च। शब्दमूर्तिधरस्यैतद् वपुर्विष्णोर्महात्मनः ॥ (वि० पु० १-२२-८४)। (१३) इस श्लोक में अनुष्टुप् छन्द है।

(नान्द्यन्ते)

२. सूत्रधारः—अलमतिविस्तरेण। अद्य खलु भगवतः कालप्रियानाथस्य यात्रायामार्यमिश्रान् विज्ञापयामि—एवमत्रभवन्तो विदांकुर्वन्तु। अस्ति खलु तत्रभवान् काश्यपः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञो भवभूतिर्नाम जतुकर्णीपुत्रः।

यं ब्रह्माणमियं देवी वाग्वश्येवानुवर्तते।
उत्तरं रामचरितं तत्प्रणीतं प्रयोक्ष्यते ॥२॥

एषोऽस्मि कार्यवशादायोध्यकस्तदानीन्तनश्च संवृत्तः। (समन्तादवलोक्य) भो भोः, यदा तावदत्रभवतः पौलस्त्यकुलधूमकेतोर्महाराजरामस्यायं पट्टाभिषेकसमयो रात्रिन्दिवमसंहृतनान्दीकः, तत् किमिदानीं विश्रान्तचारणानि चत्वरस्थानानि।

अन्वय—इयं देवी वाक् वश्या इव यं ब्रह्माणम् अनुवर्तते। तत्प्रणीतम् उत्तरं रामचरितं प्रयोक्ष्यते।

(नान्दी-पाठ के बाद)

सूत्रधार—अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं है। आज भगवान् कालप्रियानाथ (शिव) के वार्षिकोत्सव के अवसर पर मैं आप महानुभावों को

पाठभेद—२. का० जातुकर्णीपुत्रः (जातुकर्णी का पुत्र)। नि० वाग्वश्यैवान्ववर्तत (वाग्देवी वशीभूत होकर उसका अनुसरण करती थी)।

सूचित करता हूँ कि—आप लोगों को ज्ञात हो कि कश्यपगोत्रोत्पन्न, श्रीकण्ठ उपाधिधारी, व्याकरण मीमांसा और न्यायशास्त्र के ज्ञाता, जतुकर्णी के पुत्र, माननीय भवभूति नाम के (एक महान्) विद्वान् हैं।

यह देवी सरस्वती वशवर्तिनी (अनुचरी) के तुल्य जिस ब्रह्म (भवभूति) का अनुसरण करती है, उसके द्वारा बनाए हुए उत्तररामचरित (नाटक) का हम अभिनय करेंगे ।।२।।

यह मैं (इस समय) कार्यवश अयोध्यावासी और उस समय (राम के समय) का रहने वाला हो गया हूँ। (चारों ओर देखकर) हे नट, जब रावण-वंश के लिए अग्नि-स्वरूप माननीय महाराज राम के राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में दिन-रात मांगलिक वाद्यों के बजने का अवसर है, तब क्या कारण है कि इस समय राजगृह के प्रांगण भाट लोगों से रहित दिखाई दे रहे हैं ?

संस्कृत-व्याख्या

इयम्—एषा, देवी वाक्—वाग्देवी सरस्वती, वश्या इव—वशवर्तिनी इव, यं ब्रह्माणम्—यं ब्रह्मस्वरूपं भवभूतिम्, अनुवर्तते—अनुगच्छति, तत्प्रणीतं—तेन ब्रह्मणा भवभूतिना विरचितम्, उत्तरम्—राज्याभिषेकोत्तरकालभवम्, रामचरितम्—रामस्य चरितम् उत्तररामचरितं नाम नाटकमित्यर्थः, प्रयोक्ष्यते—अस्माभिः अभिनेष्यते । उपमोत्प्रेक्षा चालंकारौ । अनुष्टुप् वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **नान्द्यन्ते**—नान्द्याः अन्ते । षष्ठी तत्पुरुष । नान्दीपाठ के बाद । (२) **नान्दी**—(क) नन्द्+घञ् (अ)+ङीप् (ई) । पृषोदरादीनि यथोपदिष्टानि (६-३-१०९) से धातु के अ को आ । नन्दन्ति देवा अत्र इति नान्दी । जहाँ पर देवता आनन्दित होते हैं, वह नान्दी है । (ख) नन्दयतीति नन्दः, पचाद्यच् । नन्द्+अच् (अ) । नन्द एव नान्दः । प्रज्ञादिभ्यश्च (५-४-३८) से अण् (अ)। नन्द+अण् (अ)+ङीप् (ई)। आनन्दित करने वाला । नाटक की निर्विघ्न समाप्ति के लिए नान्दी अथवा मंगलाचरण का पाठ होता है । (३) **नान्दी का लक्षण**—(क) आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मा-

नान्दीति संज्ञिता ।। (साहित्यदर्पण ६–२४) । देवता, ब्राह्मणों और राजा आदि की आशीर्वाद से युक्त स्तुति इसके द्वारा प्रस्तुत की जाती है, अतः इसे नान्दी कहते हैं । (ख) आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोकः काव्यार्थसूचकः । नान्दीति कथ्यते । (आदिभरत) । आशीर्वाद और नमस्कार से युक्त श्लोक नान्दी कहलाता है । (ग) देवद्विजनृपादीनामाशीर्वचनपूर्विका । नन्दन्ति देवता यस्यां तस्मान्नान्दीति कीर्तिता । (घ) नन्दन्ति काव्यानि कवीन्द्रवर्गाः कुशीलवाः पारिषदाश्च सन्तः । यस्मादलं सज्जनसिन्धुहंसी, तस्मादियं सा कथितेह नान्दी ।। (नाट्यप्रदीप) । (ङ) नान्दी के विस्तार और स्वरूप के विषय में कहा गया है कि—अष्टाभिर्दशभिर्वापि नान्दी द्वादशभिः पदैः । आशीर्नमस्क्रियावस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम् ।। नान्दी में ८,१० या १२ पद होने चाहिएँ । नान्दी तीन प्रकार की होती है—आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक और वस्तुनिर्देशात्मक । इस श्लोक में वर्णित पद शब्द की व्याख्या अनेक प्रकार से की गई है । इसके ये दो अर्थ किए गए हैं—१. पद अर्थात् सुबन्त या तिङन्त पद, २. पद अर्थात् चरण, श्लोक का चतुर्थ अंश । प्रथम श्लोक इदं कविभ्यः० में सुबन्त आदि पदों की गणना करने से ११ पद होते हैं । कुछ लोगों ने नमोवाकम् को नमस्+वाकम् दो शब्द मानकर १२ पद माने हैं और कुछ ने प्र+शास्महे में उपसर्ग और धातु को अलग कर दो पद माने हैं । इस प्रकार यह १२ पदों वाली नान्दी मानी गई है । नान्दीपाठ सामान्यतया सूत्रधार ही करता है । वही नान्दी-पाठ के बाद नाटक के संचालक के रूप में नाटक का प्रारम्भ करता है । अतएव नाटक में नान्दीपाठ के बाद 'सूत्रधारः प्रविशति' (सूत्रधार का प्रवेश) का उल्लेख नहीं मिलता है । भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में स्पष्ट उल्लेख किया है कि सूत्रधार ही नान्दी-पाठ करे । इसमें आठ या बारह पद होने चाहिएँ । सूत्रधारः पठेत् तत्र मध्यमं स्वरमाश्रितः । नान्दी पदैर्द्वादशभिरष्टभिर्वाप्यलंकृताम् ।। (नाट्य० ५–९८) ।

(४) **सूत्रधारः**—सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयतीति । सूत्र+धृ+णिच्+अण् । कर्मण्यण् (३-२-१) से अण् प्रत्यय । सूत्रधार उसको कहते हैं जो 'सूत्र' अर्थात् रंगमंच पर घटित होने वाली घटनाओं को 'धारयति' नियमित रूप से चलाता है । वह रंगमंच का अधिष्ठाता और नाटक का संचालक होता है । वह प्रस्तावना में मुख्य रूप से उपस्थित होकर नाटक का प्रारम्भ करता है और नाटकीय पात्रों को आवश्यक निर्देश देता है । (५) **सूत्रधार का लक्षण**—(क)

नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत् सूत्रं स्यात् सबीजकम् । रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार इति स्मृतः ।। बीज के सहित नाट्य के अनुष्ठान को 'सूत्र' कहते हैं । उसको धारण करने वाले तथा रंगमंच के देवता की पूजा करने वाले को सूत्रधार कहते हैं । (ख) संगीतसर्वस्व के लेखक ने सूत्रधार का लक्षण दिया है---वर्तनीयतया सूत्रं प्रथमं येन सूच्यते । रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते ।। नाटक में होने वाली घटना को सर्वप्रथम रंगमंच पर आकर जो सूचित करता है, उसे सूत्रधार कहते हैं । (ग) नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते । सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ।। नाटक के उपकरणों आदि को सूत्र कहते हैं । उसको धारण करने वाला सूत्रधार होता है । (६) **अलम्०**---अलम् निषेधार्थक के साथ तृतीया होती है, अतः अतिविस्तरेण में तृतीया है । (७) **अतिविस्तरेण**---विस्तर---वि+स्तृ+अप् (अ) (भाव अर्थ में) । प्रथने वावशब्दे (३-३-३३) से घञ् (अ) प्रत्यय होने पर विस्तार शब्द बनता है । (८) **कालप्रियानाथस्य**------कालप्रियायाः नाथस्य (तत्पुरुष) । कालप्रिया पार्वती का नाम है । उसके नाथ अर्थात् शिव के । कालप्रियानाथ महादेव का मन्दिर कहाँ था, इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है । कुछ के मतानुसार उज्जैन में वर्तमान महाकालेश्वर का मन्दिर ही कालप्रियानाथ का मन्दिर है । कुछ के मतानुसार भवभूति के निवासस्थान पद्मपुर में कालप्रियानाथ नामक शिव का मन्दिर था । भवभूति ने अपने तीनों नाटकों में कालप्रियानाथ का उल्लेख किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में उत्सवों आदि के अवसर पर नाटकों का अभिनय होता था । (९) **यात्रायाम्**---वार्षिक उत्सव पर । अथवा देव-यात्रा के समारोह के अवसर पर । (१०) **आर्यमिश्रान्**---आप लोगों को, आदरणीय सज्जनों को । मिश्र शब्द आदर-सूचक है । यह शब्द के अन्त में लगता है और बहुवचन होता है । आर्याः च ते मिश्राः---आर्यमिश्राः । प्रशंसावचनैश्च (२--१--६६) से मिश्र शब्द का परनिपात । आर्य का लक्षण है---कुलं शीलं दया दानं धर्मः सत्यं कृतज्ञता । अद्रोह इति येष्वेतत् तानार्यान् संप्रचक्षते ।। (नाट्यशास्त्र) । कर्तव्यमाचरन् कार्यमकर्तव्यमनाचरन् । तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य इति स्मृतः ।। (११) **अत्रभवन्तः**---पूजनीय । भवत् शब्द से पहले अत्र और तत्र शब्द जोड़ देने से आदर का अर्थ व्यक्त होता है । अत्रभवत् उपस्थित के लिए प्रयुक्त होता है और तत्रभवत् अनुपस्थित के लिए । 'पूज्ये तत्रभवानत्रभवांश्च भगवानपि' । (१२)

विदांकुर्वन्तु—जानिए। विद्+लोट् प्र० पु० बहु०। विदांकुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् (३-१-४१) सूत्र से निपातन से यह रूप बनता है। (१३) **काश्यपः**—कश्यप गोत्र में उत्पन्न। (१४) **श्रीकण्ठ०**—श्रीः कण्ठे यस्य स श्रीकण्ठः, श्रीकण्ठः इति पदं लाञ्छनं यस्य सः, बहु०। श्रीकण्ठ यह पद जिसकी उपाधि है। श्री अर्थात् सरस्वती जिसके कण्ठ में निवास करती है। यह श्रीकण्ठ उपाधि भवभूति को उसकी कवित्व-सम्बन्धी योग्यता के कारण प्राप्त हुई थी, ऐसा प्रतीत होता है। (१५) **पदवाक्यप्रमाणज्ञः**—व्याकरण, न्याय और मीमांसा को जानने वाले। पदं वाक्यं प्रमाणं च—पदवाक्यप्रमाणानि, द्वन्द्व समास। तानि जानाति इति पदवाक्य०। यहाँ पर ज्ञा धातु से आतोऽनुपसर्गे कः (३–२–३) से क (अ) प्रत्यय होकर ज्ञः रूप बनेगा। ज्ञा+क (अ)=ज्ञः। पद का अर्थ व्याकरण है, क्योंकि इसमें सुबन्त और तिङन्त पदों का विचार होता है। वाक्य शब्द न्याय के लिए है, क्योंकि इसमें वाक्यों में होने वाले गुण-दोषों का विवेचन होता है। प्रमाण शब्द मीमांसा के लिए है, क्योंकि इसमें शब्द आदि प्रमाणों का विवेचन होता है। (१६) **भवभूतिः**—जिसका नाम भवभूति है। मूलग्रन्थ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भवभूति नाटककार का नाम है। अतएव इसके साथ नाम शब्द का प्रयोग है। श्रीकण्ठ इसकी उपाधि थी। टीकाकार श्री वीरराघव ने यह मत उपस्थित किया है कि नाटककार का नाम श्रीकण्ठ था और भवभूति उसकी उपाधि थी। उनका कथन है कि 'साम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः' इस श्लोक से प्रसन्न होकर एक राजा ने उसे भवभूति उपाधि प्रदान की थी। इस विषय में दूसरा मत यह भी है कि—तपस्वी कां गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव। गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भवभूतिसिताननौ॥ इस श्लोक में भवभूति के प्रयोग को सुनकर विद्वानों ने उसे भवभूति की उपाधि दी। इसी प्रकार विभिन्न श्लोकों में प्रयोग के कारण कालिदास को 'दीपशिखा', भारवि को 'आतपत्र' और माघ को 'घण्टा' उपाधियाँ मिली हैं। मूलग्रन्थ के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'भवभूति' यह उसका नाम है और 'श्रीकण्ठ' उपाधि। अतः सम्भव होते हुए भी भवभूति नाम को उपाधि मानना उपेक्षणीय ही है। (१७) **जतुकर्णीपुत्रः**—जतुकर्णी का पुत्र। इससे ज्ञात होता है कि भवभूति की माता का नाम जतुकर्णी था। कुछ विद्वानों ने 'जातूकर्णीपुत्रः' पाठ माना है। तब इसका अर्थ होगा—जातूकर्ण्य गोत्र में उत्पन्न स्त्री का पुत्र।

(१८) **ब्राह्मणम्**---ब्रह्मा को, ब्राह्मण को। यहाँ श्लेष के द्वारा यह अभिप्राय है कि जैसे सरस्वती ब्रह्मा की स्त्री है और वह उसकी आज्ञा का पालन करती है, इसी प्रकार सरस्वती मुझ ब्रह्मारूपी ब्राह्मण के वश में है। (१९) **देवी वाक्**—वाग्देवी या सरस्वती। (२०) **वश्या**—आज्ञाकारिणी। वशे भवा वश्या, वश+य+टाप्। (२१) **उत्तरं रामचरितम्**—इससे ज्ञात होता है कि इस नाटक का नाम उत्तररामचरित है। यहाँ पर उत्तर का अर्थ उत्तरार्ध है। रामचरित के राज्याभिषेक तक का अंश महावीरचरित में वर्णन किया गया है। इसमें उससे आगे की कथा वर्णित है। (२२) **कार्यवशात्**—अभिनय कार्य के कारण। (२३) **आयोध्यकः**---अयोध्यावासी। अयोध्यायां भवः---आयोध्यकः। धन्वयोपधाद्वुञ् (४–२–१२१) से वुञ् प्रत्यय। अयोध्या+वुञ्, वुञ् को अक होकर आयोध्यक रूप बनेगा। (२४) **तदानीन्तनः**—उस समय का। तदानीं भवः—तदानीन्तनः। यहाँ पर सायंचिरं० (४–३–२३) से तदानीम् के बाद तन लगता है। तदानीम्+ट्यु (अन), बीच में त् का आगम होने से तन हो हो जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि सूत्रधार अपने आप को अभिनय के लए राम का समकालीन और अयोध्यावासी बताता है। (२५) **पौलस्त्य०**--रावण के कुल के लिए धूमकेतु के तुल्य। पुलस्त्यस्य गोत्रापत्यं पौलस्त्यः, पौलस्त्यस्य कुलं, तस्य धूमकेतुः, तस्य। तत्पुरुष। पुलस्त्य ६ प्रजापतियों में से था। उसका पुत्र विश्रवस् था। विश्रवस् का पुत्र रावण था। पुलस्त्य का वंशज होने से रावण को पौलस्त्य कहा जाता है। विशेष विवरण के लिए देखो वा० रामायण सुन्दर० २३.६–८। धूमकेतु पुच्छल तारे को कहते हैं और यह विनाश का सूचक माना जाता है। धूमकेतु का अर्थ अग्नि भी है। धूमः केतुः यस्य सः, बहु०। राम रावण के कुल के लिए विनाशक अग्नि या पुच्छल तारे के तुल्य हैं। (२६) **पट्टाभिषेक०**---राज्याभिषेक का समय। (२७) **रात्रिन्दिवम्**---दिन-रात। रात्रौ च दिवा च—रात्रिन्दिवम्। द्वन्द्वसमास। अचतुरविचतुर० (५-४-७७) सूत्र से निपातन से यह रूप बनता है। (२८) **असंहत०**—मांगलिक वाद्यों के बजने का समय। असंहता नान्दी यस्मिन् सः, बहु०। यहाँ पर नद्यृतश्च (५-४-१५३) से समासान्त क प्रत्यय। नान्दी का अर्थ मंगलगान होता है और इसका दूसरा अर्थ मांगलिक १२ मृदंगों (ढोल) का बजाना है। एकदा द्वादशमृदङ्गघोषो नान्दी। (२९) **विश्रान्त०**— जहाँ

चारण या भाट विश्राम कर रहे हैं। विश्रान्ताः चारणाः येषु तानि, बहु०। चारण भाटों को कहते हैं। चारयति कीर्तिम्--चारणः। (३०) चत्वर०--राजगृह के आँगन या चौराहे। चत्वर शब्द के दोनों अर्थ हैं--आँगन और चौराहा।

(प्रविश्य)

३. नटः--भाव, प्रेषिता हि स्वगृहान् महाराजेन लङ्कासमरसुहृदो महात्मानः प्लवङ्गमराक्षसाः सभाजनोपस्थायिनश्च नानादिगन्तपावना ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च, यत्समाराधनायैतावतो दिवसान् प्रमोद आसीत्।

(प्रविष्ट होकर)

नट--मान्यवर, महाराज ने लंकायुद्ध के मित्रों महात्मा (सुग्रीव आदि) वानरों और (विभीषण आदि) राक्षसों को तथा अभिनन्दन के लिए आए हुए अनेक दिशाओं को पवित्र करने वाले ब्रह्मर्षियों और राजर्षियों को, जिनके स्वागतार्थ इतने दिनों तक आमोद-प्रमोद हो रहा था, अपने घरों के लिए विदा कर दिया है।

४. सूत्रधारः--आः, अस्त्येतन्निमित्तम्।

सूत्रधार--अच्छा, यह कारण है।

५. नटः--अन्यच्च--

वसिष्ठाधिष्ठिता देव्यो गता रामस्य मातरः।
अरुन्धतीं पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुराश्रमम्॥३॥

अन्वय--वसिष्ठाधिष्ठिताः देव्यः रामस्य मातरः अरुन्धतीं पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुः आश्रमं गताः।

नट--और भी (कारण है)--

वसिष्ठ के संरक्षण में राम की माताएँ (कौशल्या आदि) देवियाँ अरुन्धती

पाठभेद--५. का०, कांले--राघवमातरः (राम आदि की माताएँ)।

को आगे करके यज्ञ में (संमिलित होने के लिए) जामाता (ऋष्यशृंग) के आश्रम में गई हैं ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या

वसिष्ठा०––वसिष्ठेन कुलगुरुणा अधिष्ठिताः संरक्षिताः, देव्यः––दशरथस्य महिष्यः, रामस्य––रामचन्द्रस्य, मातरः––कौशल्याप्रभृतयः, अरुन्धतीम्––वसिष्ठपत्नीम्, पुरस्कृत्य––अग्रतो विधाय, यज्ञे––यज्ञार्थम्, जामातुः––ऋष्यशृङ्गस्य, आश्रमं गताः––आश्रमं याताः सन्ति । अनुष्टुप् छन्दः ।

टिप्पणी

(१) **नटः**––अभिनेता । नट–नट्+अच् (अ) । (२) **भाव**––भाव के अर्थ विद्वान् और माननीय दोनों हैं । भावो विद्वान्, इत्यमरः । मान्यो भावेति वक्तव्यः, जगद्धर द्वारा उद्धृत । यह सूत्रधार के लिए कहा गया है । साहित्यदर्पण के अनुसार नट सूत्रधार को भाव कहे । सूत्रधारं वदेद्भाव इति पारिपार्श्विकः (सा०द०) । (३) **प्रेषिताः**––भेज दिया है, विदा कर दिया है । प्रेषित––प्र+इष्+णिच्+क्त । गतिबुद्धि० (१-४-५२) सूत्र से यहाँ पर दो कर्म हैं । (४) **स्वगृहान्**––अपने घरों को । गृह शब्द सामान्यतया नपुंसकलिंग है, परन्तु इसका घर अर्थ में पुं० बहु० में भी प्रयोग होता है । (५) **महाराजेन**––राम ने । (६) **लङ्का०**––लंका के युद्ध में सहायता देने वाले । लङ्कायां समरम्, तस्मिन् सुहृदः, (तत्पुरुष) । यहाँ पर सुहृद् का अर्थ मित्र अथवा सहायक है । (७) **प्लवङ्गम०**––बन्दर और राक्षस । प्लवङ्गम––बन्दर, प्लवेन गच्छन्ति इति प्लवङ्गमाः ।। प्लव+गम्+खच् (अ) । यहाँ पर गमश्च (३-२-४७) से खच् प्रत्यय और अरुर्द्विषद० (६-३-६७) से प्लव के बाद म् का आगम । राक्षस––रक्षस्+अण् (अ), स्वार्थ में अण् । रक्षांसि एव राक्षसाः । प्लवङ्गमाश्च राक्षसाश्च, (द्वन्द्व) । (८) **सभाजनो०**––अभिनन्दन के लिए उपस्थित । सभाजनाय उपतिष्ठन्ति ते । सभाजन+उप+स्था+णिनि (इन्) । यहाँ पर राम के अभिनन्दन के लिए आये हुए व्यक्तियों से अभिप्राय है । (९) **नानादिगन्त०**––अनेक दिशाओं को पवित्र करने वाले । नाना दिगन्तान् पावयन्ति इति । पावनाः––पू+णिच्+ल्युट् (अन) । बहु० । (१०) **ब्रह्मर्षय०**––यहाँ पर ब्रह्मर्षि

वसिष्ठ, गौतम आदि के लिए है और राजर्षि जनक आदि के लिए है। (११) **समाराधनाय**—स्वागत के लिए। आराधन—आ+राध्+णिच्+ल्युट् (अन)। (१२) **एतावतः०**—इतने दिनों तक। यहाँ पर कालाध्वनो० (२-३-५) से द्वितीया। (१३) **आः**—आः यह स्मरणार्थक निपात है। इसी अर्थ में आ निपात भी आता है। इसकी प्रगृह्य संज्ञा होने से इसके साथ सन्धि नहीं हो सकती है। (१४) **वसिष्ठा०**—वसिष्ठ से अधिष्ठित, अर्थात् वसिष्ठ के संरक्षण में। वसिष्ठ सूर्यवंशी राजाओं के कुलगुरु थे। वसिष्ठेन अधिष्ठिताः, तत्पुरुष। (१५) **देव्यः**—महारानियाँ। देवी शब्द महारानियों के लिए आता है, जिनका अभिषेक होता है। (१६) **रामस्य०**—राम की माताएँ। यहाँ पर कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी से अभिप्राय है। (१७) **अरुन्धतीम्**—वसिष्ठ की पत्नी का नाम अरुन्धती है। (१८) **पुरस्कृत्य**—आगे करके। पुरस्+कृ+ल्यप् (य)। यहाँ पर पुरस् के साथ कृ धातु का गति समास है, अतः क्त्वा को ल्यप् हुआ है। नमस्पुरसोर्गत्योः (८-३-४०) से पुरः के विसर्ग को स्। (१९) **यज्ञे**—यज्ञ के लिए। यहाँ पर निमित्त अर्थ में निमित्तात् कर्मयोगे (वा०) से सप्तमी।

६. सूत्रधारः—वैदेशिकोऽस्मीति पृच्छामि। कः पुनर्जामाता?

सूत्रधार—मैं परदेशी हूँ, अतः पूछ रहा हूँ। जामाता (दामाद) कौन हैं?

७. नटः—

कन्यां दशरथो राजा शान्तां नाम व्यजीजनत्।
अपत्यकृतिकां राज्ञे रोमपादाय यां ददौ॥४॥

विभाण्डकसुतस्तामृष्यशृङ्ग उपयेमे। तेन च साम्प्रतं द्वादशवार्षिकं सत्रमारब्धम्। तदनुरोधात् कठोरगर्भामपि जानकीं विमुच्य गुरुजनस्तत्र यातः।

अन्वय—राजा दशरथः शान्तां नाम कन्यां व्यजीजनत्। याम् अपत्यकृतिकां राज्ञे रोमपादाय ददौ।

पाठभेद—७. नि० ताम् (उसको)।

नट---राजा दशरथ ने शान्ता नामक पुत्री को जन्म दिया, जिसको दत्तक पुत्री के रूप में उन्होंने राजा रोमपाद को दे दिया ।।४।।

विभाण्डक ऋषि के पुत्र ऋष्यश्रृंग ने उस (शान्ता) से विवाह किया। उन्होंने (ऋष्यश्रृंग ने) इस समय १२ वर्ष में पूरा होने वाला यज्ञ प्रारम्भ किया है। उनके अनुरोध से पूर्ण गर्भवाली भी सीता को छोड़कर (कौशल्या आदि) गुरुजन वहाँ गए हुए हैं।

संस्कृत-व्याख्या

राजा दशरथः---नृपो दशरथः, शान्तां नाम, कन्यां---पुत्रीम्, व्यजीजनत्---उत्पादयामास । यां---शान्ताम्, अपत्यकृतिकां---कृत्रिमकन्यारूपेण, राज्ञे---नृपाय, रोमपादाय, ददौ---अददात् । अनुष्टुप् छन्द : ।

टिप्पणी

(१) **वैदेशिकः**---विदेशी । विदेशे भवः---विदेश+ठञ् (इक) । (२) **व्यजीजनत्**---जन्म दिया । वि+जन्+णिच्+लुङ्+प्र० पु० एक० । (३) **अपत्यकृतिकाम्**---गोद ली हुई पुत्री को । कृता एव कृतिका, कृत+क +टाप् । स्वार्थ में कन् (क) प्रत्यय । अपत्यं च तत् कृतिका च, कर्मधारय । कृत्रिम पुत्री अर्थात् गोद ली हुई पुत्री । यह शब्द इस प्रकार भी बन सकता है---(क) अपत्यं कृतकम् अपत्यकृतकम्, स्त्रीलिंग में टाप् । (ख) अपत्यस्य कृतिः व्यापारः यस्याः सा, बहु० । अपत्य+कृति+कप् (क) +टाप् । बहुव्रीहि समास करके शेषाद् विभाषा (५-४-१५४) से कप् (क) प्रत्यय । (४) **रोमपादाय**---रोमपाद अंग-देश का राजा था । विष्णुपुराण के अनुसार शान्ता दशरथ की पुत्री थी और उसने सन्तानहीन रोमपाद को अपनी पुत्री दत्तक रूप में दी । यस्मादजपुत्रो दशरथः शान्तां नाम कन्यामनपत्याय दुहितृत्वे युयोज । (विष्णु० ४-१८) । (५) **उपयेमे**---विवाह किया । उप+यम्+ लिट्+प्र० पु० एक० । उपाद्यमः स्वकरणे (१-३-५६) से विवाह अर्थ में यम् आत्मनेपदी है । (६) **द्वादशवार्षिकम्**---बारह वर्ष तक चलने वाला । द्वादशवर्षाणि भविष्यति इति, द्वादशवर्ष+ठञ् (इक) । अनुशतिकादीनां च (७-३-२०) से दोनों पदों को वृद्धि । (७) **सत्रम्**---यज्ञ । (८) **कठोरगर्भाम्**---पूर्ण गर्भ वाली । कठोरः गर्भः यस्याः सा ताम्, बहु० ।

८. सूत्रधारः—तत् किमनेन? एहि । राजद्वारमेव स्वजातिसमयेनोपतिष्ठावः ।

सूत्रधार—तो हमें इससे क्या? आओ, अपनी जाति (नट-जाति) के आचार के अनुसार राजद्वार में ही हम दोनों उपस्थित हों ।

९ नटः—तेन हि निरूपयतु राज्ञः सुपरिशुद्धामुपस्थानस्तोत्रपद्धतिं भावः ।

नट—अतएव आप राजा का अत्यन्त निर्दोष और प्रशंसात्मक स्तुति-पाठ सोचकर रखिए ।

१०. सूत्रधारः—मारिष,

सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता ।
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ॥५॥

अन्वय—सर्वथा व्यवहर्तव्यम्, अवचनीयता कुतो हि । जनः यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनः ।

सूत्रधार—आर्य,

सभी प्रकार से (अर्थात् अवसरोचित) व्यवहार करना चाहिए । सर्वथा निर्दोषता कैसे (संभव) हो सकती है । मनुष्य जिस प्रकार स्त्रियों के पातिव्रत्य के संबन्ध में छिद्रान्वेषी होते हैं, उसी प्रकार वाणी (पद्य आदि) की निर्दोषता के विषय में भी छिद्रान्वेषी होते हैं ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या

सर्वथा—सर्वप्रकारेण यथा स्यात्तथेत्यर्थः, व्यवहर्तव्यम्—व्यवहारः करणीयः, अवचनीयता—निर्दोषता, कुतो हि—कथं नु संभवति । जनः—लोकः, यथा—येन प्रकारेण, स्त्रीणां—नारीणाम्, साधुत्वे—पातिव्रत्ये, दुर्जनः—दोषदर्शी भवति, तथा—तेनैव प्रकारेण, वाचाम्—वाणीनां श्लोकादीनामित्यर्थः, साधुत्वे—निर्दोषत्वे, दुर्जनः—दोषदर्शी भवति । यथा लोकः स्त्रीणां पातिव्रत्यविषये छिद्रान्वेषी भवति, तथैव पद्यादीनामपि निर्दोषत्वे छिद्रान्वेषी भवतीत्याशयः । अत्र काव्यलिङ्गमुपमा चालंकारौ । अनुष्टुप् छन्दः ।

टिप्पणी

(१) **स्वजाति०**––अपनी जाति अर्थात् नट जाति के आचार के अनुसार। स्वस्य जातेः समयेन, तत्पुरुष। समय का अर्थ आचार है। नट जाति का कार्य है कि वह राजद्वार में स्तुतिपाठ करे। (२) **उपतिष्ठावः**––उपस्थित हों। उप+स्था जब देवपूजा आदि अर्थों में होता है, तब इसमें आत्मनेपद होता है। (उपान्मन्त्रकरणे, १–३–२५ सूत्र पर उपाद्देवपूजा० आदि वार्तिक)। यहाँ पर देवपूजा आदि अर्थ न होने से परस्मैपद है। (३) **निरूपयतु**––विचारिए, सोचिए। नि+रूप्+णिच्+लोट् प्र० पु० एक०। (४) **सुपरिशुद्धाम्**––अत्यन्त निर्दोष। जिसमें राजा के किसी प्रकार के दोष का उल्लेख न हो। (५) **उपस्थान०**––राजा की प्रशंसात्मक स्तुति-पदावली। उपस्थानस्य स्तोत्रपद्धतिः, तत्पुरुष। उपस्थान का अर्थ सेवा है। अतः प्रशंसात्मक अर्थ है। स्तोत्रपद्धति स्तुतिपाठ के लिए है। पद्धति––पादाभ्यां हन्यते इति, पाद+हन्+क्तिन् (ति)। हिमकाषिहतिषु च (६–३–५४) से पाद को पद्। पद्धति का अर्थ मार्ग है, उसी से शैली और प्रकार अर्थ होते हैं। (६) **मारिष**––आर्य या पूजनीय। आर्यस्तु मारिषः, इत्यमरः। यह नट के लिए सम्बोधन है। (७) **सर्वथा०**––जैसे भी हो अपना काम चलाना चाहिए। सूत्रधार का अभिप्राय यह है कि निन्दा आदि की चिन्ता नही करनी चाहिए। (८) **अवचनीयता**––निर्दोषता। वचनीय का अर्थ निन्दा है। वचनीय––वच्+अनीयर् (अनीय)। (९) **यथा स्त्रीणाम्०**––जिस प्रकार मनुष्य पतिव्रता स्त्रियों के भी दोष निकालते हैं, उसी प्रकार निर्दोष काव्य में भी छिद्रान्वेषण करते हैं और दोष निकालते हैं। भवभूति ने यह वाक्य सार्थक ढंग से प्रयुक्त किया है। इससे ज्ञात होता है कि उसके महावीरचरित की लोगों ने कटु आलोचना की थी, अतः उन पर यह व्यंग्य है। भाव यह है कि लोग निर्दोष में भी दोष निकालते हैं। अतः सर्वथा निर्दोषता असंभव है। (१०) यहाँ पर कुतो ह्यवचनीयता के प्रति उत्तरार्ध कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है। यथा स्त्रीणां तथा वाचाम् में उपमा अलंकार है।

११ नटः––अतिदुर्जन इति वक्तव्यम्।

देव्यामपि हि वैदेह्यां सापवादो यतो जनः।
रक्षोगृहस्थितिर्मूलमग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः ॥६॥

पाठभेद––११. नि० देव्या अपि हि वैदेह्याः (देवी सीता का भी)।

अन्वय—यतो हि जन : देव्यां वैदेह्याम् अपि सापवादः। रक्षोगृहस्थितिः मूलम्, अग्निशुद्धौ तु अनिश्चयः।

नट—(छिद्रान्वेषी व्यक्ति) अत्यन्त दुर्जन होता है, यह कहना चाहिए। क्योंकि लोग सती-साध्वी सीता पर भी लांछन लगाते हैं। राक्षस (रावण) के घर में रहना (इस लांछन का) मूल कारण है। अग्नि-परीक्षा के द्वारा (सीता की) निर्दोषता के विषय में तो (लोगों में कुछ) अविश्वास है ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या

यतो हि—यस्मात् कारणात्, जनः—लोकः, देव्यां—पतिव्रतायाम्, वैदेह्यां—सीतायाम्, अपि, सापवादः—निन्दापरः अस्ति। रक्षोगृह०—रक्षसः राक्षसस्य रावणस्य गृहे भवने स्थितिः निवासः, मूलम्—अस्य अपवादस्य कारणमस्ति। अग्निशुद्धौ—अग्नौ अग्निपरीक्षायां शुद्धौ निर्दोषताविषये, तु—तर्हि, अनिश्चयः—अनिर्णयः, अविश्वास एवास्तीत्याशयः। अत्र काव्यलिङ्गं विभावना विशेषोक्तिश्चालंकाराः। अनुष्टुप् छन्दः।

टिप्पणी

(१) **अतिदुर्जनः**—छिद्रान्वेषी व्यक्ति अत्यन्त दुर्जन होते हैं, वे पवित्र आत्माओं में भी दोष निकालते रहते हैं। अत्यन्तं दुर्जनः—अतिदुर्जनः। (२) **देव्याम्०**—महारानी सीता पर भी लोगों ने लांछन लगाया है। यहाँ पर वैदेह्याम् शब्द सार्थक है। महाराज जनक जैसे पवित्रात्मा की पुत्री पर लोगों ने लांछन लगाया है। रावण के घर में रहना इस अफवाह का मुख्य कारण है। सीता को जो अग्निपरीक्षा हुई थी, उस पर लोगों को विश्वास नहीं है। सीता की अग्नि-शुद्धि के विस्तृत वर्णन के लिए देखो रामायण युद्धकाण्ड सर्ग ११५ से ११८। रावण की पराजय और उसकी मृत्यु के पश्चात् परगृहवास के कारण राम ने सीता को स्वीकार करने से मना किया, फलस्वरूप सीता ने अग्निपरीक्षा के द्वारा अपनी शुद्धि का निश्चय किया। वह अग्निचिता में प्रविष्ट हुई। अग्नि ने मूर्तरूप धारण करके राम को सीता अर्पित की और कहा कि इसमें कोई दोष नहीं है। अब्रवीत्तु तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः। एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते ॥ (युद्ध० ११८—५)। (३) अतिदुर्जनः इस वाक्य के प्रति श्लोक का पूर्वार्ध कारण है, अतः काव्यलिङ्ग अलंकार है। निर्दोष सीता

में भी दोषारोपण है, अतः पूर्वार्ध में बिना कारण के कार्य होने से विभावना है। अग्निशुद्धौ त्वनिश्चयः में अग्निशुद्धि कारण के होते हुए भी अविश्वास होने से कारण होने पर भी फलाभाव होने से विशेषोक्ति है।

१२. सूत्रधारः—यदि पुनरियं किंवदन्ती महाराजं प्रति स्यन्देत, ततः कष्टं स्यात्।

सूत्रधार—यदि यह किंवदन्ती (अफवाह) महाराज तक पहुँच जाएगी तो अनर्थ हो जायगा।

१३. नटः—सर्वथा ऋषयो देवाश्च श्रेयो विधास्यन्ति। (परिक्रम्य) भो भोः, क्वेदानीं महाराजः? (आकर्ण्य) एवं जनाः कथयन्ति।

स्नेहात् सभाजयितुमेत्य दिनान्यमूनि
नीत्वोत्सवेन जनकोऽद्य गतो विदेहान्।
देव्यास्ततो विमनसः परिसान्त्वनाय
धर्मासनाद् विशति वासगृहं नरेन्द्रः ॥७॥

(इति निष्क्रान्तौ)

इति प्रस्तावना।

अन्वय—स्नेहात् सभाजयितुम् एत्य अमूनि दिनानि उत्सवेन नीत्वा जनकः अद्य विदेहान् गतः। ततः विमनसः देव्याः परिसान्त्वनाय नरेन्द्रः धर्मासनात् वासगृहं विशति।

नट—ऋषिलोग और देवगण सभी प्रकार से शुभ करेंगे। (घूमकर) हे महानुभावो, महाराज इस समय कहाँ हैं? (सुनकर) लोग ऐसा कहते हैं—

स्नेह के कारण (महाराज राम का) अभिनन्दन करने के लिए आए हुए (महाराज) जनक इतने दिन आमोद-प्रमोद से बिताकर आज मिथिला चले गए हैं। इसलिए खिन्न-चित्त देवी (सीता) को सान्त्वना देने के लिए महाराज (राम) न्यायालय से उठकर निवास-गृह में गए हैं ॥७॥

(दोनों का प्रस्थान)

प्रस्तावना समाप्त।

संस्कृत-व्याख्या

स्नेहात्——प्रीत्या, सभाजयितुम्——महाराजं रामम् अभिनन्दितुम्, एत्य——अयोध्यां प्राप्य, अमूनि——एतानि, दिनानि——दिवसानि, उत्सवेन——प्रमोदेन, नीत्वा——यापयित्वा, जनकः——विदेहाधिपतिः, अद्य——अस्मिन् दिवसे, विदेहान्—मिथिलाम्, गतः——यातः। ततः——तस्माद् हेतोः, विमनसः——खिन्नचित्तायाः, देव्याः——सीतायाः, परिसान्त्वनाय——आश्वासनार्थम्, नरेन्द्रः——महाराजो रामः, धर्मासनात्——न्यायालयात्, वासगृहं——शयनगृहम्, विशति—प्रविशति। अत्र वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **किंवदन्ती**——अपवाद, जनश्रुति, अफवाह। स्यन्देत——पहुँच गई तो। कष्टम्——बड़े अनर्थ की बात होगी। (२) **ऋषयो देवाश्च**——वाल्मीकि आदि ऋषि और पृथिवी तथा गंगा आदि देवता। इन्होंने सीता और उसके पुत्रों की रक्षा की है। इसका वर्णन आगे सातवें अंक में प्राप्त होता है। (३) **श्रेयः०**—कल्याण करेंगे अर्थात् ऋषि और देवगण सीता और राम की रक्षा करेंगे। श्रेयः——अतिशयेन प्रशस्यः, प्रशस्य+ईयसुन् (ईयस्)। प्रशस्य को श्र हो जाता है। (४) **परिक्रम्य**——रंगमंच पर थोड़ा घूमकर। नट रंगमंच पर घूमकर बाहर की जनता से प्रश्न करता है कि महाराज राम कहाँ हैं? (५) **आकर्ण्य**——सुनकर। नट अभिनय के द्वारा प्रदर्शित करता है कि वह जनता का उत्तर सुन रहा है कि राम शयनगृह में गये हैं। इस प्रकार के प्रश्नोत्तर को आकाशभाषित कहा जाता है। (६) **सभाजयितुम्**——अभिनन्दन करने को। यहाँ पर राम के राज्याभिषेक के अवसर पर जनक का राम के अभिनन्दन के लिए आना अर्थ है। सभाज्+णिच्+तुमुन्। एत्य—आकर। आ+इ+ल्यप् (य)। (७) **दिनानि०**——इतने दिन आमोद-प्रमोद से विताकर। (८) **विदेहान्**——मिथिला को। विदेह यह मगध के उत्तर-पूर्व का भाग कहा जाता था। इसमें वर्तमान तिरहुत का उत्तरी भाग सम्मिलित था। देशवाची शब्दों का प्रयोग बहुवचन में होता है। अतः यहाँ बहु० है। विदेहानां निवासो जनपदः——विदेहाः। विदेह+अण्, इस अण् का जनपदे लुप् (४-२-८१) से लोप। लुपि युक्तवद् ० (१-२-५१) से बहुवचन। (९) **विमनसः**——खिन्न मन।

विगतं मनः यस्याः तस्याः, बहु० । (१०) **परिसान्त्वनाय**--धैर्य बँधाने के लिए । तुमर्थाच्च भाववचनात् (२-३-१५) से चतुर्थी । (११) **धर्मासनात्**--न्यायासन या न्यायालय से । धर्मासनं परित्यज्य, यहाँ पर ल्यप् का अर्थ होने से ल्यब्लोपे० (वा०) से पञ्चमी । (१२) यहाँ पर वसन्ततिलका छन्द है । उसका लक्षण है--उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः । (१३) **प्रस्तावना**--जहाँ पर नट आदि सूत्रधार से बात करते हैं और प्रस्तुत विषय की सूचना देते हैं, उसको प्रस्तावना कहते हैं । प्रस्तावना को ही आमुख और स्थापना भी कहते हैं । इसका लक्षण है--(क) नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा । सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ।। चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः । आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ।। (सा० दर्पण ६--३१, ३२) । (ख) सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्षं वाऽथ विदूषकम् । स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम् ।। (दशरूपक ३--७,८) । प्रस्तावना के पाँच भेद हैं, उनमें से यह प्रयोगातिशय नाम की प्रस्तावना है । यहाँ पर सीता के अपवाद का प्रसंग छोड़कर राम के शयनगृह में जाने का प्रसंग उपस्थित किया गया है और राम-सीता का रंगमंच पर प्रवेश दिखाया गया है । प्रयोगातिशय का लक्षण है--यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते । तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ।। (सा० दर्पण ६-३६) ।

(ततः प्रविशत्युपविष्टो रामः सीता च)

१४. रामः--देवि वैदेहि, विश्वसिहि । ते हि गुरवो न शक्नुवन्ति विहातुमस्मान् ।

किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति ।
संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता ।।८।।

अन्वय--किन्तु अनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यम् अपकर्षति । हि आहिताग्नीनां गृहस्थता प्रत्यवायैः संकटा ।

(तदनन्तर बैठे हुए राम और सीता का प्रवेश)

राम--हे देवी सीता, विश्वास रक्खो । वे गुरुजन (जनक आदि) हम लोगों को (बहुत समय तक) नहीं छोड़ सकते हैं ।

किन्तु अनुष्ठान (यज्ञ आदि कार्यों) की अनिवार्यता (गृहस्थ लोगों की) स्वतन्त्रता को छीन लेती है, क्योंकि अग्निहोत्रियों का गृहस्थ-जीवन विघ्नों के कारण संकटमय होता है ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या

किन्तु--परन्तु, अनुष्ठान०--अनुष्ठानानां यज्ञादिकर्मणां नित्यत्वम् अनिवार्यत्वम्, स्वातन्त्र्यं--स्वाधीनताम्, अपकर्षति--निवारयति । हि--यतो हि, आहिताग्नीनाम्--अग्निहोत्रिणाम्, गृहस्थता--गृहस्थजीवनम्, प्रत्यवायैः—विघ्नैः, संकटा--संकटपूर्णा भवति । **अनुष्टुप् छन्दः ।**

टिप्पणी

(१) **विश्वसिहि**--विश्वास रखो । वि+श्वस्+लोट् म० पु० एक० । (२) **गुरवः**--पूजनीय व्यक्ति । गुरु शब्द आदरणीय और पूजनीय व्यक्तियों के लिए आता है । यहाँ पर मुख्य रूप से जनक का अभिप्राय है । गुरु शब्द इनके लिए आता है :--आचार्यश्च पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव महीपतिः । मातुलः श्वशुरस्त्राता मातामहपितामहौ । वर्णज्येष्ठः पितृव्यश्च पुंस्येते गुरवो मताः ॥ (३) **अनुष्ठान०**--यज्ञ आदि कार्यों की अनिवार्यता । अनुष्ठानां नित्यत्वम्, तत्पुरुष । अग्निहोत्रादि कार्यों को नियत समय पर करना अनिवार्य है । कर्तव्य कर्म तीन प्रकार के हैं--१. नित्य, जिन्हें प्रतिदिन करना चाहिए । जैसे--सन्ध्या, हवन आदि । २. नैमित्तिक, विशेष अवसरों पर किए जाने वाले कार्य । जैसे--यज्ञोपवीत, विवाह आदि । ३. काम्य, किसी विशेष उद्देश्य से किए जाने वाले कार्य । जैसे--पुत्रेष्टि आदि । नैत्यिक कार्यों को न करने से पाप चढ़ता है, अतः उसकी स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है । (४) **स्वातन्त्र्यम्**--स्वाधीनता । स्वम् आत्मा तन्त्रं यस्य सः--स्वतन्त्रः । स्वतन्त्रस्य भावः स्वातन्त्र्यम् । स्वतन्त्र+ष्यञ् (य) । गुणवचन० (५-१-१२४) से ष्यञ् । (५) **अपकर्षति**--नष्ट करती है । (६) **आहिताग्नीनाम्**--अग्निहोत्रियों की । आहिताः अग्नयः यैः तेषाम्, बहु० । जिन्होंने अग्नियों का आधान किया है । अग्नियाँ तीन हैं--दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य अग्नि, आहवनीय अग्नि । (७) **प्रत्यवायैः**--विघ्नों से । प्रत्यवाय--प्रति+अव+इ+अच् (अ) ।

१५. सीता--जानामि आर्यपुत्र, जानामि । किन्तु सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति । [जाणामि अज्जउत्त, जाणामि, किंदु संदावआरिणो बंधुजणविप्पओआ होंति ।]

सीता--जानती हूँ, आर्यपुत्र ! जानती हूँ । किन्तु बन्धुजनों का वियोग दुःखदायी होता है ।

१६. रामः--एवमेतत् । एते हि हृदयमर्मच्छिदः संसारभावाः । येभ्यो बीभत्समानाः संत्यज्य सर्वान् कामानरण्ये विश्राम्यन्ति मनीषिणः ।

राम--यह सत्य है । ये सांसारिक (संयोग-वियोग आदि) भाव (भावनाएँ) हृदय के मर्मस्थल को भेदन करने वाली हैं । जिनसे घृणा करते हुए मनीषी पुरुष समस्त कामनाओं को छोड़कर वन में विश्राम करते हैं ।

(प्रविश्य)

१७. कञ्चुकी--रामभद्र, (इत्यर्धोक्ते साशङ्कम् ।) महाराज !

(प्रविष्ट होकर)

कंचुकी--हे रामभद्र, (इतना आधा ही कहकर आशंका के साथ) हे महाराज,

१८. रामः--(सस्मितम्) आर्य, ननु रामभद्र इत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य । तद् यथाभ्यस्तमभिधीयताम् ।

राम--(मुस्कराहट के साथ) आर्य, पिता जी के सेवकों का मेरे लिए 'रामभद्र' इस शब्द से व्यवहार करना ही शोभा देता है । इसलिए पूर्व अभ्यास के अनुसार ही कहिए ।

१९. कञ्चुकी--देव, ऋष्यशृङ्गाश्रमादष्टावक्रः संप्राप्तः ।

कंचुकी--महाराज, ऋष्यश्रृंग के आश्रम से अष्टावक्र (ऋषि) आए हैं ।

२०. सीता—आर्य, ततः किं विलम्ब्यते ? (अज्ज, तदो किं विलंबीअदि ?)

सीता—आर्य, तो आप क्यों विलम्ब कर रहे हैं ?

२१. रामः—त्वरितं प्रवेशय ।

(कञ्चुकी निष्क्रान्तः ।)

राम—उन्हें शीघ्र अन्दर लाइए ।

(कंचुकी का प्रस्थान)

टिप्पणी

(१) आर्यपुत्र—यह पति के लिए सम्बोधन है । स्त्री पति को आर्य-पुत्र कहती है । आर्य अर्थात् श्वसुर का पुत्र । (२) सन्ताप०—दुःखदायी । सन्तापं कुर्वन्ति इति ते—सन्तापकारिणः । सन्ताप + कृ + णिनि (इन्) + प्र० बहु० । (३) बन्धु०—सम्बन्धियों का वियोग । विप्रयोग का अर्थ वियोग है, वि + प्र + युज् + घञ् (अ) । बन्धुजनानां विप्रयोगाः, तत्पुरुष । (४) हृदय०—हृदय के मर्मस्थल का भेदन करने वाले । हृदयस्य मर्म—हृदय-मर्म, तत् छिन्दन्ति इति । हृदयमर्म + छिद् + क्विप् + प्र० बहु० । (५) संसार०—सांसारिक भावनाएँ । भाव का अर्थ भावनाएँ और स्वभाव हैं । (६) बीभत्समानाः—घृणा करते हुए । बन्ध् + स्वार्थ में सन् = बीभत्स + लट्—शानच् (आन) + प्र० बहु० । यहाँ पर जुगुप्साविराम० (वा०) से येभ्यः में पञ्चमी है । (७) मनीषिणः—विद्वान् । मनीषा अस्ति येषां ते, मनीषा + इन्—मनीषिन् । यहाँ पर मतुप् के अर्थ में इ है । (८) कञ्चुकी—यह अन्तःपुर की रानियों के अंगरक्षक का कार्य करता था । यह सात्त्विक और वृद्ध ब्राह्मण होता था । कञ्चुकी नाम सम्भवतः इसलिए पड़ा है कि वह कञ्चुक (चोगा) पहनता था । कंचुकी का लक्षण है—अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुण-गणान्वितः । सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते । (नाट्यशास्त्र) । ये नित्यं सत्यसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः । ज्ञानविज्ञानकुशलाः कञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः ॥ (मातृगुप्त) । (९) रामभद्र—रामचन्द्र का यह परिवार में प्रचलित

प्रेम का नाम था । कंचुकी उसी नाम से राम को पुकारता है । राम अब महाराज हैं, अतः वह शंकित होकर महाराज कहता है। राम उसे प्राचीन नाम से ही सम्बोधन करने का आदेश देते हैं। (१०) उपचारः—व्यवहार या कहने का ढंग । (११) यथाभ्यस्तम्—प्राचीन अभ्यास के अनुसार। अभ्यस्तम् अनतिक्रम्य, अव्ययीभाव समास। (१२) अभिधीयताम्—कहो। अभि+धा+लोट् प्र० पु० एक०। कर्मवाच्य का रूप है। (१३) अष्टावक्रः—यह ऋषि का नाम है । अष्टौ वक्राणि यस्य सः, बहु० । अष्टनः संज्ञायाम् (६-३-१२५) से अष्ट के अ को आ । इनके शरीर के आठ अंग टेढ़े थे, अतः अष्टावक्र नाम था। शारीरिक दृष्टि से कुरूप होते हुए भी ये बहुत बड़े शास्त्रज्ञ और तत्त्वज्ञानी ऋषि थे ।

(प्रविश्य)

२२. अष्टावक्रः—स्वस्ति वाम् ।

(प्रविष्ट होकर)

अष्टावक्र—आप दोनों का कल्याण हो।

२३. रामः—भगवन्, अभिवादये । इत आस्यताम् ।

राम—भगवन्, मैं (आपको) प्रणाम करता हूँ। यहाँ विराजिए ।

२४. सीता—भगवन्, नमस्ते । अपि कुशलं सजामातृकस्य गुरुजनस्यार्यायाः शान्तायाश्च ? [भअवं, णमो दे । अवि कुशलं सजामातुअस्स गुरुअणस्स अज्जाए संताए अ ?]

सीता—भगवन्, आपको नमस्कार है। जामाता के सहित गुरुजन (कौशल्या आदि) और पूजनीया शान्ता सकुशल तो हैं ?

२५. रामः—निर्विघ्नः सोमपीथी आवुत्तो मे भगवानृष्यशृङ्गः, आर्या च शान्ता ?

राम--सोमपान करने वाले मेरे जीजा भगवान् ऋष्यशृंग और पूजनीया (बहिन) शान्ता सकुशल तो हैं ?

२६. सीता---अस्मानपि स्मरति ? [अम्हे वि सुमिरेदि ?]

सीता--क्या वे हम लोगों को भी याद करते हैं ?

२७. अष्टावक्रः---(उपविश्य) अथ किम् ? देवि, कुलगुरुर्भगवान् वसिष्ठस्त्वामिदमाह--

विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत
राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते ।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि ! पार्थिवानां
येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च ॥६॥

तत्किमन्यदाशास्महे ? केवलं वीरप्रसवा भूयाः ।

अन्वय--नन्दिनि, भगवती विश्वम्भरा भवतीम् असूत । प्रजापतिसमः राजा जनकः ते पिता । त्वं तेषां पार्थिवानां वधूः असि, येषां कुलेषु सविता च गुरुः, वयं च (गुरवः) ।

अष्टावक्र--(बैठकर) और क्या ? हे देवी, कुलगुरु भगवान् वसिष्ठ ने आपसे यह कहा है--

हे सौभाग्यवती, भगवती पृथिवी ने आपको जन्म दिया है । प्रजापति के सदृश महाराज जनक आपके पिता हैं । आप उन राजाओं की वधू हो, जिनके कुल में सूर्य गुरु (वंशप्रवर्तक) हैं और हम शिक्षक हैं ॥६॥

इसलिए हम और क्या आशीर्वाद दें ? केवल (यही आशीर्वाद है कि) आप वीर-सन्तानवाली हों ।

संस्कृत-व्याख्या

नन्दिनि---हे आनन्ददायिनि, भगवती---ऐश्वर्यसम्पन्ना, विश्वम्भरा---पृथिवी, भवतीं---त्वां सीताम्, असूत---अजनयत् । प्रजापतिसमः---ब्रह्मणा

सदृशः, राजा---महाराजः, जनकः---मिथिलाधिपतिः, ते---तव, पिता---जनकः अस्ति। त्वं---जानकी, तेषां पार्थिवानां---नृपतीनाम्, वधूः---स्नुषा, असि---वर्तसे, येषां---पार्थिवानाम्, कुलेषु---वंशेषु, सविता च---भगवान् सूर्यश्च, गुरुः---वंशप्रवर्तकः, वयं च---अहं वसिष्ठश्च, गुरवः---उपदेष्टारश्च सन्ति। अत्रोपमा तुल्ययोगिता चालंकारौ। वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **वाम्**---तुम दोनों को। यह युवाभ्याम् के स्थान पर है। नमः-स्वस्ति० (२-३-१६) से चतुर्थी। (२) **सजामातृकस्य**---जामाता के सहित। जामात्रा सहितः, बहु०। नद्यृतश्च (५-४-१५३) से समासान्त कप् (क)। (३) **निर्विघ्नः**---विघ्नरहित। निर्गताः विघ्नाः यस्मात् सः, बहु०। (४) **सोमपीथी**---सोमपान करने वाला। सोमस्य पीथः पानम् अस्य अस्ति इति---सोमपीथिन्। सोमपीथ +इन्। अत इनिठनौ (५-२-११५) से मत्वर्थ में इनि (इन्) प्रत्यय। (५) **आवुत्तः**---जीजा, बहनोई। भगिनीपतिरावुत्तः, इत्यमरः। (६) **अथ किम्**---और क्या अर्थात् हाँ। (७) **विश्वम्भरा**---पृथिवी। विश्वं बिभर्ति इति, संसार को धारण करती है। विश्व+भृ+खच् (अ) +टाप्। संज्ञायां भृतॄ० (३-२-४६) से खच्। ख् हटने के कारण यहाँ पर अरुर्द्विषद० (६-३-६७) से विश्व के बाद मुम् (म्) का आगम। (८) **असूत**---जन्म दिया। सू धातु का लङ् प्र० पु० एक० का रूप है। (९) **प्रजापति०**---ब्रह्मा के तुल्य। ब्रह्मवेत्ता होने के कारण जनक ब्रह्मा के तुल्य माने जाते थे। प्रजापतिना समः, तत्पुरुष। (१०) **नन्दिनि**---आनन्द देने वाली। नन्द्+णिच्+णिनि (इन्)+ङीप् (ई), संबोधन। (११) **कुलेषु**---वंश में। (१२) **सविता**---राम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य इस वंश का प्रवर्तक है। सूर्य के पुत्र मनु से यह वंश चला है। यहाँ पर गुरु का अर्थ जन्मदाता या प्रवर्तक है। (१३) **वयम्**---यह वसिष्ठ के लिए है। **अस्मदो द्वयोश्च (१-२-५९)** से **अहम्** के स्थान पर वयम् है। वसिष्ठ रघुकुल के कुलगुरु और उपदेष्टा हैं। (१४) इस श्लोक में प्रजापतिसमः में उपमा अलंकार है। चतुर्थ चरण में सविता और वयम् का गुरुः इस पद के साथ सम्बन्ध होने से तुल्य-योगिता अलंकार है। (१५) **आशास्महे**---आशीर्वाद दें। आ+शास्+लट्

उ० पु० बहु० । इच्छा अर्थ में यह आत्मनेपदी है । (१६) वीरप्रसवा—वीर पुत्र वाली । वीरः प्रसवः यस्याः सा, बहु० । (१७) भूयाः—हो । भू+आशीर्लिङ+म० पु० एक० ।

२८. रामः—अनुगृहीताः स्मः ।
लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते ।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ॥१०॥

अन्वय—लौकिकानां साधूनां वाक् हि अर्थम् अनुवर्तते । पुनः आद्यानाम् ऋषीणां वाचम् अर्थः अनुधावति ।

राम—हम आपके अनुगृहीत हैं ।

लौकिक सज्जनों की वाणी तो अर्थ का अनुसरण करती है, परन्तु प्राचीन महर्षियों की वाणी के पीछे अर्थ (स्वयं) चलता है ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या

लौकिकानां—सामान्यानाम्, साधूनां—सज्जनानाम्, वाक् हि—वाणी तु, अर्थं—पदार्थम्, अनुवर्तते—अनुगच्छति । पुनः—किन्तु, आद्यानां—प्राचीनानाम्, ऋषीणां—महामुनीनाम्, वाचं—वाणीम्, अर्थः—पदार्थः, अनुधावति—अनुसरति । अत्र व्यतिरेकोऽलंकारः । अनुष्टुप् छन्दः ।

टिप्पणी

(१) **लौकिकानाम्०**—लौकिक सज्जनों की वाणी वास्तविक तथ्यों के अनुसार चलती है, परन्तु प्राचीन वसिष्ठ आदि ऋषियों की वाणी के पीछे तथ्य चलते हैं । लोके विदिताः लौकिकाः, तेषाम् । लोक+ठञ् (इक) । (२) **अर्थम्**—अर्थ, पदार्थ या वस्तु । (३) **अनुवर्तते**—अनुसरण करती है । (४) **आद्यानाम्**—प्राचीन । आदौ भवाः आद्याः, तेषाम् । आद्य—आदि+यत् (य) । वसिष्ठ ब्रह्मा के पुत्र हैं, अतः आदि-ऋषि हैं । (५) यहाँ पर सामान्य सज्जनों से वसिष्ठ आदि का उत्कर्ष बताया गया है, अतः व्यतिरेक अलंकार है ।

पाठभेद—२८. नि० अनुवर्तते (पीछे चलता है) ।

२९. अष्टावक्रः—इदं च भगवत्याऽरुन्धत्या देवीभिः शान्तया च भूयो भूयः सन्दिष्टम्—'यः कश्चिद् गर्भ-दोहदो भवत्यस्याः सोऽवश्यमचिरान्मानयितव्यः' इति ।

अष्टावक्र—भगवती अरुन्धती ने, (कौशल्या आदि) महारानियों ने और शान्ता ने बार-बार यह सन्देश भेजा है कि गर्भिणी अवस्था में सीता की जो कोई भी अभिलाषा हो, वह शीघ्र ही अवश्य पूरी करनी चाहिए ।

३०. रामः—क्रियते यद्येषा कथयति ।

राम—यदि ये बताती हैं तो (अवश्य पूरा) करता हूँ ।

३१. अष्टावक्रः—ननान्दुः पत्या च देव्याः संदिष्टम्—'वत्से, कठोरगर्भेति नानीतासि । वत्सोऽपि रामभद्रस्त्वद्-विनोदार्थमेव स्थापितः । तत्पुत्रपूर्णोत्सङ्गामायुष्मतीं द्रक्ष्यामः' इति ।

अष्टावक्र—ननद के पति (ननदोई ऋष्यशृंग) ने भी महारानी (सीता) के लिए सन्देश भेजा है कि—हे वत्से, पूर्णगर्भवती होने के कारण तुम्हें यहाँ नहीं लाया गया था । प्रिय रामचन्द्र को भी तुम्हारे मनोरंजन के लिए ही वहाँ छोड़ा है । अतः पुत्र से भरी गोद वाली आयुष्मती तुमको हम लोग देखेंगे ।

३२. रामः—(सहर्षलज्जास्मितम्) तथास्तु । भगवता वसिष्ठेन न किंचिदादिष्टोऽस्मि ?

राम—(हर्ष, लज्जा और मुस्कराहट के साथ) ऐसा ही हो । भगवान् वसिष्ठ ने मुझे कोई आदेश नहीं दिया है ?

३३. अष्टावक्रः—श्रूयताम्—

जामातृयज्ञेन वयं निरुद्धा-
स्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम् ।
युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्या-
स्तस्माद्यशो यत् परमं धनं वः ॥११॥

अन्वय--वयं जामातृयज्ञेन निरुद्धाः । त्वं बालः एव असि, नवं च राज्यम् । प्रजानाम् अनुरञ्जने युक्तः स्याः । तस्माद् यशः, यत् वः परमं धनम् ॥

अष्टावक्र--(वसिष्ठ का आदेश) सुनिए--

जामाता (ऋष्यशृंग) के यज्ञके कारण हम रुके हुए हैं । तुम अभी बालक हो और नया राज्य है । इसलिए तुम प्रजा को प्रसन्न करने में तत्पर होना । उससे ही यश होगा, जो कि तुम लोगों के लिए परम धन है ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या

वयं--वसिष्ठादयः, जामातृयज्ञेन--जामातुः ऋष्यशृङ्गस्य यज्ञेन मखेन, निरुद्धाः--उपरुद्धाः स्मः । त्वं--रामः, बालः एवासि--बालक एव वर्तसे । नवं च--नवीनं च, राज्यं--राज्यप्राप्तिरस्ति । प्रजानां--प्रकृतीनाम्, अनुरञ्जने--प्रसादने, युक्तः--तत्परः, स्याः--भव । तस्मात्--प्रजारञ्जनात्, यशः--कीर्तिः भविष्यति, यत्--यशः, वः--युष्माकम्, परमं--श्रेष्ठम्, धनं--द्रविणम् अस्ति । काव्यलिङ्गमलंकारः । इन्द्रवज्रा वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **अरुन्धती**--यह वसिष्ठ की पत्नी का नाम है । (२) **देवीभिः**--महारानियों ने । यह राम की माताओं के लिए है । (३) **संदिष्टम्**--संदेश दिया है, कहा है । सम्+दिश्+क्त+प्र० एक० । (४) **गर्भदोहदः**--गर्भिणी की अभिलाषा । गर्भस्य दोहदः, तत्पुरुष । दोहद का अर्थ इच्छा है । दोहद शब्द अमरकोश के अनुसार नपुंसक लिंग है और अन्य कोशकारों के अनुसार पुंलिंग भी है । दोहद शब्द विशेष रूप से गर्भिणी स्त्रियों की इच्छा के लिए प्रयुक्त होता है । गर्भिणी स्त्रियों की इच्छा पूर्ण करने से उनका गर्भ पुष्ट होता है, अतएव अरुन्धती आदि ने अपने संदेश में इस बात पर विशेष बल दिया है । (५) **माननयितव्यः**--पूरी करनी चाहिए । मन्+णिच् +तव्य+प्र० एक० । (६) **यद्येषा०**--यदि सीता कहती है तो उसकी वह इच्छा पूरी कर दी जाती है । इससे प्रतीत होता है कि सीता लज्जाशील होने के कारण अपनी इच्छाओं को बहुत कम प्रकट करती थी । (७) **ननान्दुः पत्या**--ननद शान्ता के पति ऋष्यशृङ्ग ने । (८) **देव्याः**--सीता के लिए । यहाँ पर चतुर्थी के अर्थ में षष्ठी विभक्ति है । (९) **कठोरगर्भा**--पूर्ण गर्भ वाली । कठोरः गर्भः यस्याः

सा, बहु० । (१०) **त्वद्विनोदार्थम्**––तुम्हारे मनोरंजन के लिए । तव विनोदः त्वद्विनोदः, तस्मै इदम्, तत्पुरुष । (११) **पुत्रपूर्णोत्सङ्गाम्**––पुत्र से भरी गोद वाली । पुत्रेण पूर्णः उत्सङ्गः यस्याः सा ताम्, बहु० ।(१२) **जामातृयज्ञेन**––जामाता ऋष्यश्रृङ्ग के यज्ञ के कारण । जामातुः यज्ञेन, तत्पुरुष ।(१३) **निरुद्धाः**––रोक लिए गए हैं । नि+रुध्+क्त+प्र० बहु० । (१४) **युक्तः**––लगा हुआ । युज्+क्त । (१५) **स्याः**––होओ । अस् +विधिलिङ्+म०पु० एक० । (१६) **परमं धनम्**––यश ही तुम लोगों का परम धन है । रघुवंशी यश को ही अपना परम धन मानते थे । अतः कालिदास ने भी कहा है––अपि स्वदेहात् किमुतेन्द्रियार्थाद् यशोधनानां हि यशो गरीयः । (रघु० १४-३५) । (१७) तृतीय चरण के प्रति प्रथम और द्वितीय चरण हेतु हैं, अतः काव्यलिंग अलंकार है ।

३४ रामः––यथा समादिशति भगवान् मैत्रावरुणिः ।
स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ।।१२।।

अन्वय––लोकस्य आराधनाय स्नेहं दयां च सौख्यं च, यदि वा जानकीम् अपि मुञ्चतः मे व्यथा न अस्ति ।

राम––भगवान् वसिष्ठ जैसी आज्ञा देते हैं, (वैसा करूँगा) ।

प्रजा के अनुरंजन के लिए प्रेम, दया, सुख, अथवा जानकी को भी छोड़ते हुए मुझे कष्ट नहीं होगा ।।१२।।

संस्कृत-व्याख्या

लोकस्य––प्रजानाम्, आराधनाय––अनुरञ्जनाय, स्नेहं––प्रेम, दयां च––करुणां च, सौख्यं च––सुखं च, यदि वा––अथवा, जानकीमपि––सीतामपि, मुञ्चतः––त्यजतः, मे––मम, व्यथा––पीडा, नास्ति––न वर्तते । अर्थापत्तिस्तुल्ययोगिता चालंकारौ । श्लोको वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **मैत्रावरुणिः**––वसिष्ठ । वसिष्ठ मित्र और वरुण के पुत्र माने गए हैं । मित्रश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ, द्वन्द्व समास । देवताद्वन्द्वे च (६-३-२६)

पाठभेद––३४ का० काले––लोकानाम् (लोगों के, प्रजा के) ।

से आनङ् होकर मित्र को मित्रा। मित्रावरुणयोः अपत्यं पुमान् मैत्रावरुणिः। अत इञ् (४-१-९५) से पुत्र अर्थ में इञ् (इ) प्रत्यय होने पर प्रथम स्वर को तद्धितेष्वचामादेः (७-२-११७) से वृद्धि होकर मैत्रावरुणिः बनता है। वसिष्ठ मित्र और वरुण के पुत्र थे, इस कथानक के विवरण के लिए देखो रामायण उत्तरकाण्ड सर्ग ५७ श्लोक ६-७। (२) **स्नेहं०**--राम प्रजा के कल्याण के लिए अपने प्रेम, दया और सुख सब कुछ छोड़ने को उद्यत थे। सौख्यम्--सुखम् एव सौख्यम्। सुख शब्द से स्वार्थ में ष्यञ् (य)। (३) **जानकीमपि**--राम प्रजा के कल्याणार्थ सीता को भी छोड़ सकते हैं। राम का यह कथन कथानक की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। अतएव राम ने जनापवाद के कारण सीता का परित्याग किया और अपने वचन का पालन किया। इससे राम के वास्तविक चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है। (४) जानकीमपि में अन्य वस्तुओं का तो कहना ही क्या जानकी को भी छोड़ सकता हूँ, इस अर्थ का बोध होने के कारण अर्थापत्ति अलंकार है। स्नेह, दया आदि प्रस्तुत पदार्थों का मुञ्चतः (छोड़ना) इस एक धर्म के साथ सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है।

३५. सीता--अत एव राघवकुलधुरन्धर आर्यपुत्रः।
[अदो जेव्व राहवकुलधुरंधरो अज्जउत्तो।]

सीता--इसीलिए आर्यपुत्र (आप) रघुवंशियों में अग्रगण्य हैं।

३६. रामः--कः कोऽत्र भोः ? विश्राम्यतामष्टावक्रः।

राम--अरे, यहाँ कौन है? (भगवान्) अष्टावक्र को विश्राम कराओ।

३७. अष्टावक्रः--(उत्थाय परिक्रम्य च) अये, कुमारलक्ष्मणः प्राप्तः।

(इति निष्क्रान्तः।)

अष्टावक्र--(उठकर और घूमकर) अरे, कुमार लक्ष्मण आ गए हैं।

(प्रस्थान)

(प्रविश्य)

३८. लक्ष्मणः---जयति जयत्यार्यः । आर्य, अर्जुनेन चित्रकरेणास्मदुपदिष्टमार्यस्य चरितमस्यां वीथ्यामभिलिखितम् । तत् पश्यत्वार्यः ।

(प्रविष्ट होकर)

लक्ष्मण---जय हो, आर्य की जय हो । आर्य, चित्रकार अर्जुन ने हमारे कथनानुसार आपका जीवन-चरित इस चित्रभित्ति पर चित्रित किया है । आप उसे देखिए ।

३९. रामः---जानासि वत्स, दुर्मनायमानां देवीं विनोदयितुम् । तत् कियन्तमवधिं यावत् ?

राम---वत्स, तुम खिन्नचित्त देवी (सीता) का मनोविनोद करना जानते हो । वह चित्र कहाँ तक लिखा गया है ?

४०. लक्ष्मणः---यावदार्याया हुताशनविशुद्धिः ।

लक्ष्मण---आर्या (सीता) की अग्नि-शुद्धि तक ।

४१ (क). रामः---शान्तं पापम् । (ससान्त्ववचनम्)

उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः ।
तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः ॥१३॥

अन्वय---उत्पत्तिपरिपूतायाः अस्याः पावनान्तरैः किम् ? तीर्थोदकं च वह्निः च अन्यतः शुद्धिं न अर्हतः ।

राम---ऐसा मत कहो । (सान्त्वना के शब्दों के साथ)

जन्म से ही पवित्र इस (सीता) की शुद्धि के लिए अन्य पवित्रताकारी पदार्थों की क्या आवश्यकता ? तीर्थ-जल और अग्नि, ये अन्य पदार्थ से शुद्धि के योग्य नहीं हैं ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या

उत्पत्ति०---उत्पत्त्या जन्मना एव परिपूतायाः विशुद्धायाः, अस्याः---सीतायाः, पावनान्तरैः---अन्यैः शोधकपदार्थैः, किं---किं प्रयोजनम्, न किमपि प्रयोजन-

मित्यर्थः। तीर्थोदकं च--तीर्थानां जलं च, वह्निः च--अग्निश्च, अन्यतः--अन्यस्मात् शोधकपदार्थात्, शुद्धि--पवित्रताम्, न अर्हतः--न क्षमेते। अत्र प्रतिवस्तूपमा दृष्टान्तश्चालंकारौ। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **राघवकुलधुरंधरः**--रघुवंशियों में अग्रगण्य। राघवाणां कुलं, तस्य धुरंधरः, तत्पुरुष। धुरंधरः--धुरं धरति इति, धुर+धृ+खच् (अ)। ख् हटने के कारण पूर्वपद को मुम् (म्)। इससे ज्ञात होता है कि सीता भी राम के इस वक्तव्य की पुष्टि करती है और वह सर्वस्व अर्पण करके भी प्रजा के कल्याण को सर्वोत्तम कार्य समझती है। (२) **विश्राम्यताम्**--विश्राम कराओ। वि+श्रम् +णिच्+लोट् प्र० पु० एक०, कर्मवाच्य। (३) **अर्जुनेन**--अर्जुन ने। यह चित्रकार का नाम है। (४) **चित्रकरेण**--चित्रकार या पेन्टर ने। चित्रकर--चित्रं करोति इति, चित्र+कृ+ट (अ)। ताच्छील्य अर्थ में ट प्रत्यय। (५) **अस्मदुपदिष्टम्**--हमारे आदेशानुसार। अस्माभिः उपदिष्टम्, तत्पुरुष। (६) **वीथ्याम्**--चित्रभित्ति पर। वीथि शब्द यहाँ पर दीवार या चित्र-गली (आर्ट-गेलरी) के अर्थ में है। (७) **दुर्मनायमानाम्**--खिन्नचित्त वाली को। दुर्मनस् शब्द से क्यङ (य) प्रत्यय करके दुर्मनायते नामधातु रूप बनता है। भृशादिभ्यो० (३-१-१२) से क्यङ और स् का लोप। लट् के स्थान पर शानच्। (८) **विनोदयितुम्**--प्रसन्न करने को। (९) **शान्तम्०**--ऐसा मत कहो। (१०) **उत्पत्ति०**--जन्म से ही पवित्र। उत्पत्त्या परिपूतायाः, तत्पुरुष। (११) **पावनान्तरैः**--अन्य शोधक पदार्थों से क्या लाभ? अन्यानि पावनानि पावनान्तराणि तैः, मयूरव्यंसकादयश्च (२-१-७२) से तत्पुरुष समास। (१२) **तीर्थोदकं०**--तीर्थ-स्थानों का जल और अग्नि ये स्वयं पवित्र होते हैं, इनके लिए और शोधक वस्तुओं की आवश्यकता नहीं होती है। (१३) पूर्वार्ध में पावनान्तरैः किम् से कहा गया अर्थ ही उत्तरार्ध में नान्यतः आदि के द्वारा कहा गया है, अतः प्रतिवस्तूपमा अलंकार है। पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्त अलंकार है।

४१ (ख). देवि देवयजनसंभवे, प्रसीद। एष ते जीवितावधिः प्रवादः।

कष्टं जनः कुलधनैरनुरञ्जनीय-
स्तन्नो यदुक्तमशिवं न हि तत्क्षमं ते ।
नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा
मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि ।।१४।।

अन्वय---कष्टम्, कुलधनैः जनः अनुरञ्जनीयः । तत् नः यत् अशिवम् उक्तम्, तत् ते नहि क्षमम् । सुरभिणः कुसुमस्य मूर्ध्नि स्थितिः नैसर्गिकी सिद्धा, न चरणैः अवताडनानि ।

राम---यज्ञभूमि से उत्पन्न हे देवी, तुम प्रसन्न हो । यह प्रवाद तुम्हारे जीवनपर्यन्त रहेगा ।

खेद की बात है कि कुल की प्रतिष्ठा को धन मानने वालों को प्रजा को प्रसन्न रखना पड़ता है । इसलिए हमारे विषय में जो अभद्र बात कही गई है, वह तुम्हारे विषय में कहा जाना उचित नहीं है । सुगन्धित फूल का सिर पर रखा जाना स्वभावसिद्ध है, न कि पैरों से (उसका) कुचला जाना ।।१४।।

संस्कृत-व्याख्या

कष्टम्---खेदस्य विषयोऽयम्, कुलधनैः---कुलं वंशप्रतिष्ठा धनं द्रविणं येषां तैः, वंशप्रतिष्ठारक्षणपरैः, जनः---प्रजाजनः, अनुरञ्जनीयः---प्रसादनीयः । तत्--तस्मात् कारणात्, नः---अस्माकम्, यत् अशिवम्---अमङ्गलम्, उक्तम्---कथितम्, तत्---तद् दुर्वचनम्, ते---तव विषये, नहि क्षमम्---न युक्तमस्ति । सुरभिणः---सुगन्धिनः, कुसुमस्य---पुष्पस्य, मूर्ध्नि---शिरसि, स्थितिः---स्थानम्, नैसर्गिकी सिद्धा---स्वभावतः सिद्धा । न--न तु, चरणैः---पादैः, अवताडनानि---विमर्दनानि स्वभावसिद्धानि सन्ति । अत्र दृष्टान्तोऽलंकारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

पाठभेद---४१ ख. नि० क्लिष्टो (दुःखित), का० कष्टो (कष्टदायी), नि० किल जनै० (अवश्य लोगों के द्वारा) । नि० अशुभं च न (जो अमंगल वाक्य कहा गया है, वह नहीं) ।

टिप्पणी

(१) **देवयजन०**—यज्ञभूमि से उत्पन्न। देवाः इज्यन्ते अस्मिन् इति देवयजनम्, तस्मात् सम्भवः यस्याः सा, तत्संबुद्धिः, बहु०। देवयजन का अर्थ है यज्ञभूमि, जहाँ पर देवताओं के लिए यज्ञ किया जाता है। सीता का जन्म यज्ञभूमि से हुआ था। महावीरचरित (१-२०) में भी इसका उल्लेख है। लाङ्गलोल्लिख्यमानाया यज्ञभूमेः समुद्गता। सीतेयमूर्मिला चेयं द्वितीया जनकात्मजा। (२) **प्रसीद**—प्रसन्न हो, क्षमा करो। प्र+सद्+लोट्, म० पु० एक०। (३) **जीवितावधिः**—जीवनपर्यन्त रहने वाला। जीवितम् अवधिः-यस्य सः, बहु०। (४) **प्रवादः**—निन्दा, अपवाद। प्र+वद्+घञ् (अ)। (५) **कष्टम्**—खेद की बात है। कष्+क्त, भाव अर्थ में। (६) **जनः**—जन साधारण या जनता। (७) **कुलधनैः**—कुल की प्रतिष्ठा ही जिनका धन है। जो कुल की प्रतिष्ठा को अपना सर्वस्व समझते हैं। कुलं धनं येषां तैः, बहु०। रघुवंशी प्रजाहित को अपना कुलधन समझते थे। यही बात आगे अंक ७ श्लोक ६ में कही गई है। (८) **अनुरञ्जनीयः**—प्रसन्न करना चाहिए। अनु+रञ्ज्+अनीय। (९) **नः**—हम लोगों के विषय में। अस्मद् षष्ठी बहु० अस्माकम् के स्थान पर नः है। यहाँ पर भाव यह है कि लोगों ने हम दोनों के विषय में जो अनुचित और अभद्र बातें कही हैं, वह तुम्हारे विषय में कहना उचित नहीं है। (१०) **नैसर्गिकी०**—सुगन्धित फूल को सिर पर रखना स्वभावसिद्ध है, न कि उसका पैरों से कुचला जाना। सीता की निन्दा करना ऐसा ही कार्य है जैसे फूल को पैर से कुचलना। निसर्ग—नि+सृज्+घञ् (अ)। निसर्गात् आगता—नैसर्गिकी, निसर्ग+ठक् (इक)+ङीप् (ई)। नैसर्गिकी—स्वाभाविक। सुरभि—सुगन्धित। सिद्धा—सिध्+क्त+टाप्। (११) यहाँ पर पूर्वार्ध और उत्तरार्ध का बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव संबन्ध है, अतः दृष्टान्त अलंकार है। (१२) मालतीमाधव (९-५१) में भी यह सुभाषित कुछ पाठभेद से आया है। नैसर्गिकी— — — —मुसलैर्बत कुट्टनानि॥

४२. सीता—भवत्वार्यपुत्र, भवतु। एहि प्रेक्षामहे तावत्ते चरितम्। [होदु अज्जउत्त, होदु। एहि। पेक्खम्ह दाव दे चरिदं।]

(इत्युत्थाय परिक्रामति।)

सीता--हे आर्यपुत्र, होने दीजिए, (यह अपवाद) होने दीजिए। आइए। आपका जीवनचरित देखें।

(यह कहकर उठकर घूमती है)

४३. लक्ष्मणः--इदं तदालेख्यम्।

लक्ष्मण--यह वह चित्र है।

४४. सीता--(निर्वर्ण्य) क एते उपरिनिरन्तरस्थिता उपस्तुवन्तीवार्यपुत्रम्? [के एदे उवरिणिरन्तरट्ठिदा उपत्थुवंदि विअ अज्जउत्तं?]

सीता--(देखकर) ये कौन हैं, जो ऊपर सटकर खड़े हुए आर्यपुत्र की स्तुति सी कर रहे हैं?

४५. लक्ष्मणः--देवि, एतानि तानि सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि, यानि भगवतः कृशाश्वात् कौशिकमृषिमुपसंक्रान्तानि। तेन च ताटकावधे प्रसादीकृतान्यार्यस्य।

लक्ष्मण--हे देवी, ये वे रहस्यपूर्ण जृम्भक अस्त्र हैं, जो भगवान् कृशाश्व से विश्वामित्र ऋषि को प्राप्त हुए थे और उन्होंने ताड़का-वध के समय इन्हें आर्य (रामचन्द्र) को अनुग्रहपूर्वक प्रदान किया था।

४६. रामः--वन्दस्व देवि, दिव्यास्त्राणि।

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा,
परःसहस्रं शरदस्तपांसि।
एतान्यपश्यन् गुरवः पुराणाः,
स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि॥१५॥

पाठभेद--४६. का०, काले--परःसहस्राः (हजारों), नि० शरदां तपांसि (वर्षों तक तपों को), नि० अदर्शन् (देखा)।

अन्वय—ब्रह्मादयः पुराणाः गुरवः ब्रह्महिताय परःसहस्रं शरदः तपांसि तप्त्वा स्वानि एव तपोमयानि तेजांसि एतानि अपश्यन् ।

राम—हे देवी, दिव्य अस्त्रों की वन्दना करो ।

ब्रह्मा आदि प्राचीन आचार्यों ने वेदों की रक्षा के लिए हजारों वर्षों तक तप करके अपने ही तपोमय तेजस्वरूप इन (अस्त्रों) को देखा था ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या

ब्रह्मादयः—ब्रह्मप्रभृतयः, पुराणाः—प्राचीनाः, गुरवः—आचार्याः, ब्रह्महिताय—वेदरक्षणार्थम्, परःसहस्रं—सहस्रादधिकम्, शरदः—वर्षाणि, तपांसि तप्त्वा—तपश्चर्यां विधाय, स्वानि एव—आत्मीयानि एव, तपोमयानि—तपोरूपाणि, तेजांसि—वर्चांसि, एतानि—दिव्यास्त्राणि, अपश्यन्—अवालोकयन् । उपजातिर्वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **आलेख्यम्**—चित्र । आ+लिख्+ण्यत् (य) । (२) **निर्वर्ण्य**—देखकर । (३) **निरन्तरस्थिताः**—सटकर खड़े हुए । निर्गतम् अन्तरं यस्मिन् तत् निरन्तरम्, निरन्तरं स्थिताः—निरन्तरस्थिताः, सुप्सुपा से समास । (४) **उपस्तुवन्ति**—स्तुति कर रहे हैं । उप+स्तु+लट्, प्र० पु० बहु० । (५) **सरहस्यानि**—रहस्य अर्थात् प्रयोग और संहार के मन्त्रों से युक्त । रहस्येन सहितानि—सरहस्यानि, बहु० । सह को स आदेश । (६) **जृम्भकास्त्राणि**—जृम्भक अस्त्र । इस अस्त्र के प्रयोग से लोग जंभाई लेने लगते थे और निश्चेष्ट हो जात थे । (७) **कृशाश्वात्**—कृशाश्व नामक ऋषि से । ये जृम्भक अस्त्र के जन्मदाता या आविष्कारक थे । (८) **कौशिकम्**—विश्वामित्र को । कुशिकस्य अपत्यं कौशिकः तम् । कुशिक+अण् (अ) । (९) **उपसंक्रान्तानि**—प्राप्त हुए । उप+सम्+क्रम्+क्त+प्र० बहु० ।(१०) **प्रसादीकृतानि**—कृपापूर्वक दिए । प्रसाद+कृ । यहाँ पर च्वि प्रत्यय है, अतः द के अ को ई हो गया है । अप्रसादं प्रसादं कृतानि । (११) **ब्रह्महिताय**—वेदों की रक्षा के लिए या ब्राह्मणों के हित के लिए । ब्रह्मणः हिताय, तत्पुरुष । (१२) **तप्त्वा**—तप करके । तप्+क्त्वा । (१३) **परःसहस्रम्**—हजार से अधिक । सहस्रात्

परम्—परःसहस्रम्, पंचमी तत्पुरुष या सुप्सुपा समास । राजदन्तादिषु परम् (२-२-३१) से पर शब्द का पूर्व प्रयोग और पारस्करप्रभृतीनि च० (६-१-१५७) से पर के बाद स् । (१४) पुराणाः—प्राचीन । पुरा भवाः पुराणाः । पुरा+ट्यु (अन), निपातन से ।

४७. **सीता—नम एतेभ्यः ।** [णमो एदाणं ।]

सीता—इन्हें नमस्कार है ।

४८. **रामः—सर्वथेदानीं त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्ति ।**

राम—अब ये अस्त्र पूर्णतया तुम्हारी सन्तान को प्राप्त होंगे ।

४९. **सीता—अनुगृहीतास्मि ।** [अणुग्गहीदम्हि ।]

सीता—मैं अनुगृहीत हूँ ।

५०. **लक्ष्मणः—एष मिथिलावृत्तान्तः ।**

लक्ष्मण—यह मिथिला की घटना है ।

५१. **सीता—अहो, दलन्नवनीलोत्पलश्यामलस्निग्धमसृणशोभमानमांसलेन देहसौभाग्येन विस्मयस्तिमिततातदृश्यमानसौम्यसुन्दरश्रीरनादरखण्डितशंकरशरासनः शिखण्डमुग्धमुखमण्डल आर्यपुत्र आलिखितः ।** [अम्हहे, दलंतणवणीलुप्पलसामलसिणिद्धमसिणसोहमाणमंसलेण देहसोहग्गेण विम्हअत्थिमिदतादादीसंतसोम्मसुन्दरसिरी अणादरखंडिदसंकरसरासणो सिहंडमुद्धमुहमंडलो अज्जउत्तो आलिहिदो ।]

सीता—अहो, खिले हुए नवीन नीलकमल के तुल्य श्यामवर्ण, कोमल, चिकने, सुन्दर और पुष्ट शरीर के सौन्दर्य के कारण आश्चर्य से निश्चल पिता जी के द्वारा जिसकी सुभग और मनोरम शोभा देखी गई है, जिसने अनायास ही शंकर के धनुष को तोड़ दिया है और जिसका मुखमण्डल काकपक्ष (सिर के बाल) से मनोहर है, ऐसे आर्यपुत्र चित्रित किए गए हैं ।

५२. **लक्ष्मणः—आर्ये, पश्य पश्य—**

सम्बन्धिनो वसिष्ठादीनेष तातस्तवार्चति ।
गौतमश्च शतानन्दो जनकानां पुरोहितः ॥१६॥

अन्वय--एष तव तातः जनकानां पुरोहितः गौतमः शतानन्दः च सम्बन्धिनः वसिष्ठादीन् अर्चति।

लक्ष्मण--आर्ये, देखिए देखिए--

ये आपके पिता जी और जनककुल के पुरोहित गौतम-पुत्र शतानन्द (वरपक्षीय) सम्बन्धी वसिष्ठ आदि की पूजा कर रहे हैं ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या

एषः--अयम्, तव--सीतायाः, तातः--पिता जनकः, जनकानां--जनकवंशोत्पन्नानां राज्ञाम्, पुरोहितः--पुरोधाः, गौतमः--गौतमपुत्रः, शतानन्दः च--शतानन्दनामको मुनिश्च, संबन्धिनः--वरपक्षीयत्वात् संबन्धयुक्तान्, वसिष्ठादीन्--वसिष्ठप्रभृतीन् ऋषीन्, अर्चति--पूजयति। अत्र तुल्ययोगिताऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **त्वत्प्रसूतिम्**--तेरी सन्तान को। तव प्रसूतिम्, तत्पुरुष। प्रसूति--प्र+सू+क्तिन् (ति)। (२) **उपस्थास्यन्ति**--प्राप्त होंगे। उप+स्था+लृट्, प्र० बहु०। (३) **अनुगृहीता**--अनुगृहीत। अनु+ग्रह्+क्त+टाप्। (४) **अम्महे**--विस्मयसूचक अव्यय है। ।(५) **दलन्नव०**--दलत् यत् नवनीलोत्पलम् (कर्मधारय), तद्वत् श्यामलं, स्निग्धं, मसृणं, शोभमानं मांसलं च, तेन। उपमानपूर्वपद कर्मधारय। दलत्--खिला हुआ, नवनीलोत्पल--नवीन नीलकमल, श्यामल--साँवला, स्निग्ध--कोमल, मसृण--चिकना, मांसल--बलिष्ठ। दलत्--दल्+शतृ। स्निग्ध--स्निह्+क्त। मांसल--मांस शब्द से मत्वर्थ में लच् (ल)। (६) **देहसौभाग्येन**--शरीर की सुन्दरता से। देहस्य सौभाग्यम्, तेन, तत्पुरुष। सौभाग्य--सुभग+ष्यञ् (य)। (७) **विस्मय०**--विस्मयेन स्तिमितः (तत्पुरुष), स चासौ तातः (कर्मधा०), तेन दृश्यमाना सौम्या सुन्दरश्रीः यस्य सः, बहु०। विस्मय--आश्चर्य, वि+स्मि+अच् (अ)। स्तिमित--निश्चेष्ट, स्तिम्+क्त। दृश्यमान--देखी जाती हुई, दृश्+कर्मवाच्य में य+लट्--शानच्। सौम्य--मनोहर। (८) **अनादर०**--अनादरेण खण्डितं शंकरशरासनं येन सः, बहु०। अनादर--

अनायास। शरासनम्——धनुष। शराः अस्यन्ते येन तत्, शर+अस्+ल्युट् (अन)। (९) शिखण्ड०——शिखण्डेन मुग्धं मुखमण्डलं यस्य सः, बहु०। शिखण्ड——काकपक्ष, बच्चों के लटवाले बाल जो कनपटियों पर लटकते हैं। मुग्ध——सुन्दर, मुह्+क्त। (१०) संबन्धिनः—— संबन्धियों को। वर पक्ष के होने के कारण वसिष्ठ आदि भी जनक के संबन्धी हैं। सम्बन्धः अस्ति येषां ते। सम्बन्ध+इनि (इन्), मत्वर्थ में। (११) गौतमः——गौतम का पुत्र। गौतमस्य अपत्यं पुमान्, गौतम+अण् (अ)। शतानन्द गौतम ऋषि के पुत्र थे और इनकी माता अहल्या थी। (१२) जनकानाम्——जनकवंशी राजाओं का। जनक शब्द लक्षणा के द्वारा जनकवंशियों के लिए है। सीता के पिता का वास्तविक नाम सीरध्वज है। 'जनक' यह उनका वंश का नाम है। (१३) इस श्लोक में जनक और शतानन्द दोनों का अर्चनरूपी एक क्रिया के साथ सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है।

५३. रामः——सुश्लिष्टमेतत्।
जनकानां रघूणां च सम्बन्धः कस्य न प्रियः।
यत्र दाता ग्रहीता च स्वयं कुशिकनन्दनः॥१७॥

अन्वय——जनकानां रघूणां च सम्बन्धः कस्य प्रियः न। यत्र स्वयं कुशिकनन्दनः दाता ग्रहीता च (अस्ति)।

राम——यह चित्र सुसम्बद्ध है।

जनकवंशियों और रघुवंशियों का संबन्ध किसको प्रिय नहीं है, जहाँ पर स्वयं ऋषि विश्वामित्र दाता (कन्यादान-कर्ता) और ग्रहणकर्ता (कन्यादान लेने वाले) हैं॥१७॥

संस्कृत-व्याख्या

जनकानां——जनकवंशोत्पन्नानाम्, रघूणां च——रघुवंशोत्पन्नानां च, संबन्धः——वैवाहिकः संबन्धः, कस्य——कस्य जनस्य, प्रियः न——न रुचिकरोऽस्ति। यत्र——यस्मिन् संबन्धे, स्वयं कुशिकनन्दनः——कुशिकपुत्रो विश्वामित्रः, दाता——कन्यादानार्थं जनकस्य प्रेरकत्वात् कन्यादानकर्ता, ग्रहीता——धनुर्भङ्गार्थं रामस्य प्रेरकत्वात् कन्यादानस्य स्वीकर्ता च अस्ति। अत्रार्थापत्तिरलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **सुश्लिष्टम्**—सुसंबद्ध । सु+श्लिष्+क्त । जनक और रघु इन दोनों कुलों का सम्बन्ध अत्यन्त उचित है। (२) **जनकानाम्**—जनकवंशियों का। (३) **रघूणाम्**—रघुवंशियों का। जनक और रघु शब्द लक्षणा के द्वारा जनकवंशियों और रघुवंशियों का बोध कराते हैं। (४) **दाता ग्रहीता च**—विश्वामित्र कन्यादान करने वाले हैं और कन्यादान लेने वाले भी वे ही हैं। उन्होंने ही यह सम्बन्ध तय करवाया था। राम को धनुष तोड़ने के लिए प्रेरित किया, अतः वरपक्षीय होने से विश्वामित्र कन्यादान लेने वाले हैं। जनक को इस विवाह के लिए तैयार करने के कारण वे कन्यादान करने वाले हैं। दोनों पक्षों से संबद्ध होने के कारण विश्वामित्र बराती और घराती (कन्यापक्षीय) दोनों थे। (५) **कुशिकनन्दनः**—विश्वामित्र। [कुशिक के पुत्र। (६) **कस्य न** प्रियः से भावार्थ निकलता है कि सबको प्रिय है, अतः यहाँ पर अर्थापत्ति अलंकार है।]

५४. सीता—एते खलु तत्कालकृतगोदानमङ्गलाश्चत्वारो भ्रातरो विवाहदीक्षिता यूयम्। अहो जानामि, तस्मिन्नेव प्रदेशे तस्मिन्नेव काले वर्ते। [एदे खु तक्कालकिदगोदाणमंगला चत्तारो भादरो विआहदिक्खिदा तुम्हे। अहो जाणामि, तस्सि जेव्व पदेशे तस्सिं जेव्व काले वत्तामि।]

सीता—उस समय क्षौर-कर्मरूपी मंगलकार्य किए हुए विवाह के लिए दीक्षित ये आप चारों भाई हैं। ओह, मुझे ऐसा लगता है कि उसी स्थान पर और उसी समय में हूँ।

५५. रामः—

समयः स वर्तत इवैष यत्र मां
समनन्दयत्सुमुखि! गौतमार्पितः।
अयमागृहीतकमनीयकङ्कण-
स्तव मूर्तिमानिव महोत्सवः करः ॥१८॥

अन्वय—हे सुमुखि, एष स समयः वर्तते इव, यत्र गौतमार्पितः आगृहीत-कमनीयकङ्कणः अयं तव करः मूर्तिमान् महोत्सवः इव मां समनन्दयत् ।

राम—हे सुमुखि, ऐसा प्रतीत होता है कि यह वही समय है जब गौतम शतानन्द के द्वारा समर्पित मनोहर कंकण (कंगन) से युक्त इस तुम्हारे हाथ ने शरीरधारी महोत्सव के तुल्य मुझे आनन्दित किया था ।।१८।।

संस्कृत-व्याख्या

हे सुमुखि—हे सुवदने, एषः—अयम्, सः समय—स कालः, वर्तते इव—विद्यते इव, यत्र–यस्मिन् काले, गौतमार्पितः—शतानन्देन समर्पितः, आगृहीत०—आगृहीतं धृतं कमनीयं **मनोज्ञं** कङ्कणं हस्ताभरणं येन सः, अयम्—एषः, तव—जानक्याः, करः—हस्तः, मूर्तिमान्—देहधारी, महोत्सवः इव—महानुत्सवः इव, मां—रामचन्द्रम्, समनन्दयत्—अप्रीणयत् । अत्रोत्प्रेक्षाऽलंकार । मञ्जुभाषिणीवृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **तत्कालकृत०**—उस समय किया गया है क्षौरकर्मरूपी मंगलकार्य जिनका । तस्मिन् काले कृतं गोदानम् एव मङ्गलं येषां ते, बहु० । गोदान शब्द के दो अर्थ हैं—१. क्षौरकर्म, २. गाय का दान । विवाह-संस्कार से पूर्व क्षौरकर्म होता था, जिस प्रकार उपनयन से पूर्व होता है । गावः केशाः दीयन्ते खण्डयन्ते इति गोदानम् । गो+दा+ल्युट् (अन) । दो अवखण्डने धातु से करणाधिकरणयोश्च (३.३.११७) से अधिकरण में ल्युट् । गो शब्द का अर्थ केश भी है । अतः गोदान का अर्थ है केशान्त या क्षौरकर्म । याज्ञवल्क्य का कथन है कि केशान्तश्चैव षोडशे (१—३६) । इस पर मिताक्षरा का कथन है कि केशान्त या क्षौरकर्म को ही गोदान कहते हैं । केशान्तः पुनः गोदानाख्यं कर्म । मनुस्मृति (२-६५) का कथन है—केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते । राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः । गोदान का दूसरा अर्थ है गाय का दान । विवाहविधि के प्रारम्भ में कन्यापक्ष की ओर से वर को गोदान दिया जाता है । अतः अर्थ होगा—जिनके लिए गोदानरूपी मंगलकार्य किया गया है । (२) **विवाहदीक्षिताः**—विवाह के लिए दीक्षा लिए हुए ।

विवाहाय दीक्षिता:, तत्पु० । दीक्षित—दीक्ष्+क्त । (३) **समय:०**—वह समय अब विद्यमान सा है । (४) **गौतमार्पित:**—गौतम शतानन्द के द्वारा अर्पित । गौतमेन अर्पित:, तत्पु० । (५) **आगृहीत०**—जिसने सुन्दर कंगन धारण किया हुआ है । आगृहीतं कमनीयं कङ्कणं येन स:, बहु० । कङ्कण शब्द के दो अर्थ हैं, यहाँ पर दोनों अर्थ लिए जा सकते हैं—१. मांगलिकसूत्र कंगन, २. सुवर्ण का कंकण (कंगन) । (६) यहाँ पर वर्तते इव में क्रिया की उत्प्रेक्षा है और मूर्तिमान् महोत्सव इव कर: में गुण की उत्प्रेक्षा है । इस प्रकार यहाँ दो उत्प्रेक्षा अलंकार हैं ।

५६. लक्ष्मण:—इयमार्या । इयमप्यार्या माण्डवी । इयमपि वधू: श्रुतकीर्ति: ।

लक्ष्मण—यह आप हैं । यह आर्या माण्डवी (भरत की पत्नी) है और यह वधू श्रुतकीर्ति (शत्रुघ्न की पत्नी) हैं ।

५७. सीता—वत्स, इयमप्यपरा का ? [वच्छ, इअं वि अवरा का ?]

सीता—वत्स, और यह दूसरी कौन हैं ?

५८. लक्ष्मण:—(सलज्जास्मितम् । अपवार्य) अये, ऊर्मिलां पृच्छत्यार्या । भवतु, अन्यत: संचारयामि । (प्रकाशम्) आर्ये, दृश्यतां द्रष्टव्यमेतत् । अयं च भगवान् भार्गव: ।

लक्ष्मण—(लज्जा और मुस्कराहट के साथ, एक ओर मुँह करके) अरे, आर्या (सीता) ऊर्मिला के विषय में पूछ रही हैं । अच्छा इनका ध्यान दूसरी ओर ले जाता हूँ । (प्रकट) आर्ये, इस देखने योग्य दृश्य को देखिए । ये भगवान् परशुराम हैं ।

५९. सीता—(ससंभ्रमम्) कम्पितास्मि । [कंपिदम्हि ।]

सीता—(घबड़ाहट के साथ) मैं काँप गई हूँ ।

६०. राम:—ऋषे, नमस्ते ।

राम—हे ऋष, आपको नमस्कार है ।

६१. लक्ष्मणः---आर्ये, पश्य, अयमार्येण-(इत्यर्धोक्ते)

लक्ष्मण--आर्ये, देखिए। यह आर्य ने ...(इस प्रकार आधी बात कहने पर)

६२. रामः---(साक्षेपम्) अयि, बहुतरं द्रष्टव्यम्। अन्यतो दर्शय।

राम--(बात काटकर) अरे, अभी और बहुत कुछ देखने योग्य है। दूसरी ओर दिखाओ।

६३. सीता---(सस्नेहबहुमानं निर्वर्ण्य) सुष्ठु शोभसे आर्यपुत्र, एतेन विनयमाहात्म्येन। [सुष्ठु सोहसि अज्जउत्त, एदिणा विणअमाहप्पेण।]

सीता--(स्नेह और बहुत आदर के साथ देखकर) आर्यपुत्र, इस विनय के आधिक्य से आप बहुत शोभित हो रहे हैं।

६४. लक्ष्मणः---एते वयमयोध्यां प्राप्ताः।

लक्ष्मण--ये हम सब अयोध्या पहुँच गए हैं।

६५ (क). रामः---(सास्रम्) स्मरामि, हन्त स्मरामि।
जीवत्सु तातपादेषु नूतने दारसंग्रहे।
मातृभिश्चिन्त्यमानानां ते हि नो दिवसा गताः ॥१६॥

अन्वय--तातपादेषु जीवत्सु, नूतने दारसंग्रहे, मातृभिः चिन्त्यमानानां नः ते हि दिवसाः गताः।

राम--(आँसू भरकर) हाय, स्मरण है, मुझे स्मरण है।

जब पिता जी जीवित थे, नया विवाह हुआ था और माताएँ हमारे सुख की चिन्ता करती थीं, हमारे वे दिन बीत गए ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या

तातपादेषु--पितृवर्येषु, जीवत्सु--प्राणधारणं कुर्वत्सु, नूतने--नवीने, दारसंग्रहे--परिणये सति, मातृभिः--कौशल्यादिभिः जननीभिः, चिन्त्यमानानां---

पाठभेद---६५ (क)--का०, काले--नवे दारपरिग्रहे (नवीन विवाह होने पर), नि० भ्रातृभिः (भाइयों के द्वारा)।

सुखार्थं स्मर्यमाणानाम्, नः—अस्माकं रामादीनाम्, ते हि—ते खलु पूर्वानुभूताः, दिवसाः—वासराः, गताः—व्यतीताः । श्लोको वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **इयमार्या**—यह आर्या सीता हैं । आर्या पूज्य अर्थ में है । (२) **आर्या माण्डवी**—माण्डवी भरत की पत्नी का नाम है । भरत लक्ष्मण से बड़े हैं, अतः उनकी पत्नी को आर्या कहा है । (३) **श्रुतकीर्तिः**—यह शत्रुघ्न की पत्नी का नाम है । शत्रुघ्न सबसे छोटे हैं, अतः उनकी स्त्री को वधू कहा है । (४) **अपरा का**—सीता ने ऊर्मिला के विषय में यह प्रश्न पूछा है । लक्ष्मण ने संकोच के कारण अपनी पत्नी का उल्लेख नहीं किया था । (५) **अपवार्य**—एक ओर मुँह करके । अपवारित का लक्षण है—रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम् । यहाँ पर नाटकीय संकेत स्वगतम् (मन ही मन) होना चाहिए । (६) **ऊर्मिला**—लक्ष्मण की पत्नी । सीता और ऊर्मिला ये दोनों जनक (सीरध्वज) की और माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति जनक के छोटे भाई कुशध्वज की पुत्रियाँ थीं । (७) **अन्यतः०**—दूसरी ओर इनका ध्यान ले जाता हूँ । संचारयामि—सम्+चर्+णिच्+लट्, उ० पु० एक० । (८) **प्रकाशम्**—प्रकट रूप में । इसका लक्षण है—सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात् । (सा० द० ६–१३८) । (९) **भार्गवः**—परशुराम । भृगु+अण् (अ) । गोत्रापत्य अर्थ में अण् । ये भृगु के वंशज थे । (१०) **ससंभ्रमम्**—घबड़ाहट के साथ । संभ्रमेण सह, अव्ययी० । (११) **कम्पितास्मि**—काँप गई हूँ । सीता धनुर्भङ्ग के अवसर पर क्रुद्ध परशुराम के आगमन को स्मरण करके काँप गई । कम्पिता—कम्प्+क्त+टाप् । (१२) **अयमार्येण**—लक्ष्मण कहना चाहते थे कि आपने परशुराम को पराजित किया । परन्तु राम अपनी प्रशंसा नहीं सुनना चाहते थे, अतः उन्होंने लक्ष्मण की बात काटकर कहा कि दूसरी चीज दिखाओ । (१३) **साक्षेपम्**—बात काटकर । आक्षेपेण सहितम्, अव्ययी० । (१४) **अन्यतः**—दूसरी ओर । अन्यस्मिन् इति, सप्तमी के अर्थ में तसिल् (तः) प्रत्यय है । (१५) **निर्वर्ण्य**—देखकर । निर्+वर्ण्+णिच्+क्त्वा–ल्यप् । (१६) **विनय-माहात्म्येन**—विनय के महत्त्व से । विनयस्य माहात्म्येन, तत्पु० । माहात्म्य—महात्मन्+ष्यञ् (य), भाव अर्थ में ष्यञ् । (१७) **सास्रम्**—आँसू भरकर ।

अस्त्रैः सह, अव्ययी०। (१८) तातपादेषु०--पिता जी के जीवित रहने पर। पाद शब्द पूज्य अर्थ का सूचक है। यह शब्द के अन्त में लगता है और बहुवचन में प्रयुक्त होता है। (१९) दार०--विवाह होने पर। दाराणां संग्रहे, तत्पु०। (२०) मातृभिः०--कौशल्या आदि माताएँ हमारे सुख की चिन्ता करती थीं। (२१) चिन्त्यमानानाम्--चिन्ता किए जाते हुए। चिन्त्यमान--चिन्त्+णिच् (चुरादि०) +कर्मवाच्य में लट् लकार के स्थान पर शानच् (आन)।

६५ (ख) इयमपि तदा जानकी,
प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलै-
र्दशनमुकुलैर्मुग्धालोकं शिशुर्दधती मुखम्।
ललितललितैर्ज्योत्स्नाप्रायैरकृत्रिमविभ्रमै-
रकृत मधुरैरम्बानां मे कुतूहलमङ्गकैः ॥२०॥

अन्वय--प्रतनुविरलैः प्रान्तोन्मीलन्मनोहरकुन्तलैः दशनमुकुलैः मुग्धालोकं मुखं दधती शिशुः ललितललितैः ज्योत्स्नाप्रायैः अकृत्रिमविभ्रमैः मधुरैः अङ्गकैः मे अम्बानां कुतूहलम् अकृत।

राम--उस समय यह जानकी भी--

पतले, कम घने और कपोलों पर शोभित होने वाले मनोहर बालों से तथा दाँतरूपी अंकुरों से भोले भाले मुख को धारण करने वाली यह बाला अत्यन्त मनोरम, चाँदनी के समान (कमनीय) और स्वाभाविक विलासों से युक्त अपने मनोज्ञ अंगों से मेरी माताओं के (मन में) कौतूहल उत्पन्न करती थी ॥२०॥

संस्कृत-व्याख्या

प्रतनुविरलैः--प्रतनुभिः सूक्ष्मैः विरलैः अनतिघनैश्च, प्रान्तो०--प्रान्तयोः कपोलप्रदेशयोः उन्मीलद्भिः विलसद्भिः मनोहरैः मनोज्ञैः कुन्तलैः केशैः, दशनमुकुलैः--दन्तकुड्मलैः, मुग्धालोकं--मनोहरदर्शनम्, मुखं--वदनम्, दधती--

---

पाठभेद--६५ (ख)--का०, नि० पतनविरलैः (गिरने के कारण न्यून), नि० कुड्मलः (कली के सदृश), नि० कुसुमैः (दांतरूपी फूलों से), नि० ऽङ्गानाम् (अंगों की)।

धारयन्ती, शिशुः--बाला जानकी, ललितललितैः--अतीव लावण्यमयैः, ज्योत्स्नाप्रायैः--चन्द्रिकासदृशैः, अकृत्रिमविभ्रमैः--नैसर्गिकविलासैः, मधुरैः--मनोज्ञैः, अङ्गकैः--शरीरावयवैः, मे--मम रामस्य, अम्बानां--मातॄणाम्, कुतूहलं--कौतुकम्, अकृत--व्यदधात्। अत्र लुप्तोपमा समुच्चयश्चालंकारौ। हरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **प्रतनु०**--पतले और कम घने बालों वाले। प्रतनूनि च तानि विरलानि तैः, कर्मधा०। (२) **प्रान्तो०**--प्रान्तयोः उन्मीलन्तः (तत्पु०), मनोहराः कुन्तलाः तैः, कर्मधा०। प्रान्त--कपोल प्रदेश, उन्मीलत्--शोभित होते हुए, कुन्तल--केश। (३) **दशनमुकुलैः**--दाँतरूपी कली से। दशनाः मुकुलाः इव, उपमान तत्पुरुष समास। (४) **मुग्धालोकम्**--मनोहर दर्शन वाले, भोले-भाले। मुग्धः आलोकः यस्य तत्, बहु०। (५) **दधती**--धारण करती हुई। धा+शतृ+ङीप् (ई)। (६) **ललित०**--अतिमनोहर। ललितेभ्यः ललितानि तैः, तत्पु०। (७) **ज्योत्स्ना०**--चाँदनी के सदृश। ज्योत्स्नाभिः प्रायाणि तैः, सुप्सुपा से समास। (८) **अकृत्रिम०**--स्वाभाविक विलासों वाले। अकृत्रिमाः विभ्रमाः येषां तैः, बहु०। कृत्रिम--कृ+त्रि+मप् (म)। कृ धातु से क्त्रि (त्रि) प्रत्यय होने पर अन्त में मप् (म) लग जाता है। न कृत्रिमाः, अकृत्रिमाः। कृत्रिम--बनावटी, अकृत्रिम--स्वाभाविक। (९) **अकृत**--किया। कृ+लुङ (आत्मनेपद)+प्र० पु० एक०। (१०) **अम्बानाम्**--कौशल्या आदि माताओं के। (११) **अङ्गकैः**--कोमल अंगों से। अङ्ग+कन् (क), अनुकम्पा अर्थ में अनुकम्पायाम् (५-३-६७) से कन्। (१२) दशनमुकुलैः और ज्योत्स्नाप्रायैः में लुप्तोपमा अलंकार है। कुतूहलतारूपी कार्य के प्रति अनेक कारणों के उल्लेख से समुच्चय अलंकार है।

६६. लक्ष्मणः--एष मन्थरावृत्तान्तः।

लक्ष्मण--यह मन्थरा का वृत्तान्त है।

६७. रामः--(सत्वरमन्यतो दर्शयन्) देवि, वैदेहि,
इङ्गुदीपादपः सोऽयं शृङ्गवेरपुरे पुरा।
निषादपतिना यत्र स्निग्धेनासीत्समागमः॥२१॥

पाठभेद--६७. का० शृङ्गिवेरपुरे (शृंगिवेरपुर में)।

अन्वय—शृङ्गवेरपुरे अयं स इङ्गुदीपादपः, यत्र पुरा स्निग्धेन निषादपतिना समागमः आसीत् ।

राम—(शीघ्रता से दूसरी ओर दिखाते हुए) हे देवि सीते,

शृंगवेरपुर में यह वह इंगुदी (हिंगोट) का पेड़ है, जहाँ पहले प्रिय निषादराज (गुह) से (हमारी) भेंट हुई थी ॥२१॥

संस्कृत-व्याख्या

शृङ्गवरपुरे—शृङ्गवेरनामके नगरे, अयम्—एषः, सः—दृष्टपूर्वः, इङ्गुदीपादपः—तापसवृक्षः, यत्र—यस्मिन् स्थाने, पुरा—पूर्वम्, स्निग्धेन—स्नेहसमन्वितेन, निषादपतिना—निषादराजेन गुहेन, समागमः—संमेलनम्, आसीत्—अभूत् । श्लोको वत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **सत्वरम्**—शीघ्रता से । त्वरया सहितम्, अव्ययी० । (२) **अन्यतो दर्शयन्**—दूसरी ओर दिखाते हुए । अन्यतः—अन्य+तसिल् (तः) । सप्तमी के अर्थ में तः । दर्शयन्—दृश्+णिच्+शतृ+प्र० एक० । (३) **इंगुदीपादपः**—इंगुदी या हिंगोट का वृक्ष । पादपः—पाद+पा+क (अ) । वृक्ष अपने पैर अर्थात् जड़ों से जल को पीते हैं । (४) **शृंगवेर०**—शृंगवेरपुर में । रामायण में नगर का नाम शृंगवेरपुर दिया गया है । आससाद महाबाहुः शृंगवेरपुरं प्रति । (अयोध्याकाण्ड ५०–२६) । यह नगर वर्तमान मिर्जापुर के समीप गंगा के तट पर था । (५) **निषादपतिना**—निषादों के राजा से । निषादों के राजा का नाम गुह था और वह राम का परम मित्र था । (देखो रामायण २–५०–३३) । समास होने पर पति शब्द के रूप हरि के तुल्य चलते हैं । पतिः समास एव (१–४–८) । (६) **स्निग्धेन**–प्रिय । स्निग्ध—स्निह्+क्त । (७) **समागमः**—मेल, भेंट । सम्+आ+गम्+घञ् (अ) ।

६८. लक्ष्मणः—(विहस्य, स्वगतम्) अये, मध्यमाम्बावृत्तान्तोऽन्तरित आर्येण ।

लक्ष्मण—(हँसकर, मन में) अरे, आर्य ने मझली माता (कैकेयी) का वृत्तान्त छोड़ दिया ।

६९. सीता—अहो, एष जटासंयमनवृत्तान्तः । [अम्हो, एसो जडासंजमणवुत्तंतो ।]

सीता—ओह, यह जटा बाँधने का वृत्तान्त है ।

७०. लक्ष्मणः—

पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैर्यद्वृद्धेक्ष्वाकुभिर्धृतम् ।
धृतं बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यकव्रतम् ॥२२॥

अन्वय—पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैः वृद्धेक्ष्वाकुभिः यत् धृतम्, तत् पुण्यम् आरण्यकव्रतम् आर्येण बाल्ये धृतम् ।

लक्ष्मण—पुत्रों को राजलक्ष्मी सौंप कर वृद्ध इक्ष्वाकुवंशी राजा जिस (व्रत) को धारण करते थे, उस पवित्र वानप्रस्थ व्रत को आर्य ने बाल्यावस्था में ही धारण कर लिया ॥२२॥

संस्कृत-व्याख्या

पुत्रसंक्रान्तलक्ष्मीकैः—पुत्रेषु सुतेषु संक्रान्ता समर्पिता लक्ष्मीः राजलक्ष्मीः यैः तैः, सुतसमर्पितराजलक्ष्मीकैः, वृद्धेक्ष्वाकुभिः—वृद्धैः इक्ष्वाकुवंशजैः नृपैः, यत्—यद् व्रतम्, धृतं—गृहीतम्, तत्, पुण्यं—पवित्रम्, आरण्यकव्रतं—वानप्रस्थव्रतम्, आर्येण—पूज्येन भवता, बाल्ये—शैशवे एव, धृतं—गृहीतम् । श्लोको वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) विहस्य—हँसकर । वि+हस्+ल्यप् । (२) मध्यमाम्बा०—कैकेयी के वृत्त को । (३) अन्तरितः—छिपाया, छोड़ दिया । अन्तर+णिच्+क्त । अन्तर शब्द से णिच् लगाकर यह नामधातु है । (४) जटा०—जटा बाँधने का वृत्तान्त । जटानां संयमनस्य वृत्तान्तः, तत्पु० । (५) पुत्र०—जिन्होंने पुत्रों को लक्ष्मी सौंप दी है । पुत्रेषु संक्रान्ता लक्ष्मीः यैः तैः, बहु० । उरः प्रभृतिभ्यः कप् (५-४-१५०) से समासान्त कप् (क) । संक्रान्त—सम्+क्रम्+क्त । अनुनासिकस्य० (६-४-१५) से क्रम् के अ को दीर्घ । (६) वृद्धे०—वृद्ध इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के द्वारा । वृद्धाश्च ते इक्ष्वाकवः तैः, कर्मधा० ।

इक्ष्वाकु शब्द से राजा अर्थ में जो अञ् प्रत्यय होता है, उसका बहुवचन में लोप हो जाता है। इक्ष्वाकूणां राजा ऐक्ष्वाकः। जनपदशब्दात्० (५-१-१६८) से अञ्। बहुवचन में इक्ष्वाकवः। तद्राजस्य० (२-४-६२) से अञ् का लोप। (७) बाल्ये—बाल्यावस्था में। बाल्य—बालस्य भावः, बाल+ष्यञ् (य)। (८) आरण्यक०—वानप्रस्थ का व्रत। आरण्यकानां व्रतम्, तत्पु०। आरण्यक—अरण्य भवाः आरण्यकाः। अरण्य+वुञ् (अक), अरण्यान्मनुष्ये (४-२-१२९) से वुञ्। मनुस्मृति का कथन है कि कि वृद्धावस्था में पौत्र के दर्शन होने पर वानप्रस्थ ले। गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मनः। अपत्यस्यैव चापत्यं तदाऽरण्यं समाश्रयेत्॥

७१. सीता—एषा प्रसन्नपुण्यसलिला भगवती भागीरथी। [एसा पसण्णपुण्णसलिला भअवदी भाईरही।]

सीता—यह स्वच्छ और पवित्र जल वाली भगवती भागीरथी (गंगा) हैं।

७२. रामः—रघुकुलदेवते, नमस्ते।

तुरगविचयव्यग्रानुर्वीभिदः सगराध्वरे
कपिलमहसा रोषात्प्लुष्टान्पितुश्च पितामहान्।
अगणिततनूतापस्तप्त्वा तपांसि भगीरथो
भगवति! तव स्पृष्टानद्भिश्चिरादुदतीतरत्॥२३॥

सा त्वमम्ब, स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्याना भव।

अन्वय—हे भगवति, भगीरथः अगणिततनूतापः तपांसि तप्त्वा सगराध्वरे तुरगविचयव्यग्रान् उर्वीभिदः रोषात् कपिलमहसा प्लुष्टान् च पितुः पितामहान् तव अद्भिः स्पृष्टान् चिरात् उदतीतरत्।

राम—हे रघुकुल की देवता, आपको नमस्कार है।

हे भगवती, भगीरथ ने शारीरिक कष्टों की चिन्ता न कर तपस्या करके सगर के (अश्वमेध) यज्ञ में (इन्द्र द्वारा अपहृत) घोड़े के अन्वेषण में तत्पर, पृथ्वी

पाठभेद—७२. का०, काले—अमर्षात् (क्रोध के कारण), काले—पुरा प्रपितामहान् (पूर्वकाल में प्रपितामहों को), का०, काले—०तनूतापम् (शारीरिक कष्टों की चिन्ता न करके), काले—उददीधरत् (उद्धार किया)।

का भेदन करने वाले और क्रोध के कारण कपिल मुनि के तेज से दग्ध, पिता (दिलीप) के पितामहों (सगरपुत्रों) का तेरे जल के स्पर्श से चिरकाल पश्चात् उद्धार किया था ।।२३।।

हे माता, वह तू अरुन्धती के तुल्य पुत्रवधू सीता की शुभचिन्तक रहना ।

संस्कृत-व्याख्या

हे भगवति—हे ऐश्वर्यशालिनि, भगीरथः—अस्मत्पूर्वज एको भूपतिः, अगणित०—उपेक्षितकायक्लेशः, तपांसि—तपस्याः, तप्त्वा—संतप्य, सगराध्वरे—सगरनृपतेः अश्वमेधयज्ञे, तुरग०—तुरगस्य अश्वमेधीयाश्वस्य विचये अन्वेषणे व्यग्रान् तत्परान्, उर्वीभिदः—भूतलविदारकान्, रोषात्—क्रोधात्, कपिलमहसा—कपिलमुनेः तेजसा, प्लुष्टान्—दग्धान्, पितुः—जनकस्य दिलीपस्य, पितामहान्—सगरपुत्रान्, तव—भवत्याः, अद्भिः—सलिलैः, स्पृष्टान्—स्पर्शं प्राप्तान्, चिरात्—चिरकालानन्तरम्, उदतीतरत्—उद्धृतवान् । हरिणी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **प्रसन्न०**—स्वच्छ और पवित्र जल वाली । प्रसन्नं पुण्यं च सलिलं यस्याः सा, बहु० । प्रसन्न—प्र+सद्+क्त । (२) **भागीरथी**—गंगा । राजा भगीरथ के द्वारा लाए जाने के कारण गंगा का नाम भागीरथी हुआ । (३) **तुरग०**—घोड़े के अन्वेषण में तत्पर । तुरगस्य विचये व्यग्रान्, तत्पु० । तुरग—तुर+गम्+ड (अ), वेग से चलने वाला । विचय—वि+चि+अच् (अ) । (४) **उर्वीभिदः**—पृथ्वी को खोदने वाले । उर्वीं भिन्दन्ति इति उर्वीभिदः । उर्वी+भिद्+क्विप् (०) + द्वि० बहु० । (५) **सगराध्वरे**—राजा सगर के अश्वमेध यज्ञ में । सगरस्य अध्वरे, तत्पु० । (६) **कपिल०**—कपिल मुनि के तेज से । कपिलस्य महसा, तत्पु० । (७) **रोषात्**—क्रोध के कारण । हेत्वर्थ में पंचमी । रोष—रुष्+घञ् । (८) **प्लुष्टान्**—दग्ध, जले हुए । प्लुष्ट—प्लुष्+क्त । (९) **पितुश्च०**—पिता दिलीप के पितामहों (सगरपुत्रों) को । (१०) **अगणित०**—अपने शरीर के संताप की चिन्ता न करके । तन्वाः तापः तनूतापः (तत्पुरुष), अगणितः तनूतापः येन सः, बहु० । (११) **तप्त्वा**—तप करके । तप्+क्त्वा । (१२) **स्पृष्टान्**—स्पर्श होने पर । स्पृष्ट—स्पृश्

+क्त। (१३) अद्भिः--जल से। अप् शब्द नित्य बहुवचनान्त है। अप्+तृ० बहु०। (१४) उदतीतरत्--उद्धार किया। उद्+तॄ+णिच्+लुङ+प्र० पु० एक०। (१५) स्नुषायाम्--पुत्रवधू पर। (१६) शिवानुध्याना--कल्याण की चिन्ता करने वाली। (१७) इस श्लोक में राम के पूर्वज सगर के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है। इसका विस्तृत वर्णन रामायण बालकाण्ड ३८ से ४४ सर्ग, विष्णुपुराण अंश ४ अध्याय ४ श्लोक १ से ३५, भागवतपुराण ९-८९ में प्राप्त होता है। संक्षेप में कथा यह है--राम के पूर्वज सूर्यवंशी राजा सगर की दो पत्नियाँ थीं:--सुमति और केशिनी। भृगु ऋषि के आशीर्वाद से केशिनी का एक पुत्र असमंजस हुआ और उसका पुत्र अंशुमान् हुआ। सुमति के ६० हजार पुत्र हुए। राजा सगर ने १०० अश्वमेध यज्ञ करने प्रारम्भ किए। ९९ यज्ञ पूरे होने पर १००वें अश्वमेध के समय इन्द्र ने अपनी गद्दी छिन जाने के भय से सगर का अश्वमेध का घोड़ा पाताल में कपिल मुनि के आश्रम में ले जाकर बाँध दिया। घोड़े को ढूँढ़ते हुए ६० हजार सगर के पुत्र कपिल मुनि के आश्रम में पहुँचे और कपिल मुनि को घोड़े का अपहर्ता समझकर उसे अपशब्द कहने लगे। क्रुद्ध कपिलमुनि के शाप से वे ६० हजार सगरपुत्र वहीं भस्म हो गए। बाद में असमंजस का पुत्र अंशुमान् घोड़ा लाने के लिए पाताल गया। कपिल मुनि ने उसे आशीर्वाद दिया कि तेरा पौत्र स्वर्ग से गंगा को पृथ्वी पर लाएगा और इनकी अस्थियों से जल-स्पर्श होने पर ये सभी स्वर्ग को जाएँगे। अंशुमान् के द्वारा अश्व लाने पर सगर का अश्वमेध यज्ञ पूरा हुआ। अंशुमान् का पुत्र दिलीप और उसका पुत्र भगीरथ हुआ। भगीरथ गंगा को पृथ्वी पर लाया।

७३. लक्ष्मणः--एष भरद्वाजावेदितश्चित्रकूटयायिनि वर्त्मनि वनस्पतिः कालिन्दीतटे वटः श्यामो नाम।

(रामः सस्पृहमवलोकयति।)

लक्ष्मण--चित्रकूट को जाने वाले मार्ग में यमुना के किनारे पर विद्यमान, भरद्वाज ऋषि के द्वारा बताया गया, यह श्याम नामक वट-वृक्ष है।

(राम उत्सुकता के साथ देखते हैं)

७४. सीता--स्मरति वा तं प्रदेशमार्यपुत्रः?

[सुमिरेदि वा तं पदेसं अज्जउत्तो?]

सीता--क्या आर्यपुत्र को उस स्थान की याद है ?

७५. रामः--अयि, कथं विस्मर्यते ?

अलसललितमुग्धान्यध्वसंपातखेदा-
दशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि ।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता ॥२४॥

अन्वय--यत्र त्वम् अध्वसंपातखेदात् अलसललितमुग्धानि, अशिथिल-परिरम्भैः दत्तसंवाहनानि परिमृदितमृणाणीदुर्बलानि अङ्गकानि मम उरसि कृत्वा निद्राम् अवाप्ता ।

राम--हे प्रिये, कैसे भूल सकता हूँ ?

जहाँ पर तुम मार्ग में चलने की थकान से आलस्ययुक्त, कोमल और मनोहर, गाढ़ आलिंगनों के द्वारा दबाए गए, मर्दित कमलनाल के तुल्य दुर्बल अंगों को मेरी छाती पर रखकर सो गई थीं ॥२४॥

संस्कृत-व्याख्या

यत्र--यस्मिन् प्रदेशे, त्वम्--जानकी, अध्व०--अध्वनि मार्गे सम्पातेन गमनेन खेदात् श्रमात्, मार्गगमनश्रमात्, अलस०--अलसानि आलस्ययुक्तानि ललितानि कोमलानि मुग्धानि मनोहराणि, अशिथिल०--गाढालिङ्गनैः, दत्त-संवाहनानि--दत्तं वितीर्णं संवाहनं मर्दनं येभ्यस्तानि, परिमृदित०--परिमृदिताः मर्दिताः या मृणाल्यः विसकिसलयानि तद्वत् दुर्बलानि कृशानि, अङ्गकानि--शरीरावयवान्, मम--रामस्य, उरसि--वक्षःस्थले, कृत्वा--निधाय, निद्रां--स्वापम्, अवाप्ता--प्राप्ता । उपमाऽलंकारः । मालिनी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **भरद्वाजा०**--भरद्वाज के द्वारा बताया गया । भरद्वाज मुनि का आश्रम प्रयाग में था । इन्होंने ही राम को चित्रकूट का मार्ग बताया था । भरद्वाजेन आवदितः, तत्पु० । आवेदित--आ+विद्+णिच्+क्त । (२) **चित्रकूट०**--चित्रकूट को जाने वाले । चित्रकूटं याति इति तस्मिन्, चित्रकूट

+या+णिनि (इन्) +सु० एक० । आतो युक्० (७-३-३३) से बीच में य् । (३) वनस्पतिः--वृक्ष । वनस्य पतिः,तत्पु० । पारस्करप्रभृतीनि० (६-१-१५७) से बीच में स् । (४) सस्पृहम्--उत्सुकता के साथ । स्पृहया सहितम्, अव्ययी० । (५) विस्मर्यते--भुलाया जा सकता है । वि+स्मृ+कर्मवाच्य में य+लट् । (६) अलस०--आलस्ययुक्त, कोमल और मनोहर । अलसानि च तानि ललितानि (कर्मधा०), तानि च मुग्धानि, कर्मधा० । मुग्ध--मुह्+क्त । (७) अध्व०--मार्ग में चलने की थकान से । अध्वनि संपातेन खेदः, तस्मात्, तत्पु० । संपात--चलना, सम्+पत्+ घञ् । खेद--दुःख, थकान, खिद्+ घञ् । हेतु अर्थ में पंचमी । (८) अशिथिल०--गाढ आलिंगनों से । अशिथिलाः च ते परिरम्भाः तैः, कर्मधा० । करण में तृतीया । परिरम्भ--परि+रभ् +घञ् । रभेरशब्लिटोः (७-१-६३) से बीच में न् । (९) दत्त०--जिनको दबाया गया है । दत्तं संवाहनं येभ्यः तै, बहु० । दत्त--दा+क्त । संवाहन--अंगों को दबाना, अंगमर्दन । सम्+वह्+णिच्+ल्युट् । (१०) परिमृदित०--मर्दित कमलनाल के तुल्य दुर्बल । परिमृदिता मृणाली (कर्मधा०), सा इव दुर्बलानि, उपमान कर्मधा० । (११) अङ्गकानि--अंगों को । ह्रस्वानि अङ्गानि अङ्गकानि । ह्रस्व या छोटे अर्थ में कन् (क) प्रत्यय । (१२) अवाप्ता--प्राप्त हुई । अवाप्ता--अव+आप्+क्त+टाप् । (१३) यहाँ पर परिमृदित० में उपमा का अर्थ विद्यमान है, इसलिए लुप्तोपमा अलंकार है ।

७६. लक्ष्मणः--एष विन्ध्याटवीमुखे विराधसंवादः ।

लक्ष्मण--यह विन्ध्य-वन के प्रवेश-द्वार पर विराध (राक्षस) वाली घटना है ।

७७. सीता--अलं तावदेतेन । पश्यामि तावदार्यपुत्रस्वहस्तधृततालवृन्तातपत्रमात्मनो दक्षिणारण्यप्रवेशारम्भम् । [अलं दाव एदिणा । पेक्खामि दाव अज्जउत्तसहत्तधरिदतालवुन्तादवत्तं अत्तणो दक्खिणारण्णप्पवेसारम्भम् ।]

सीता--इसे देखने की आवश्यकता नहीं है । जहाँ पर आर्यपुत्र ने अपने

हाथ से पंखे को छाते के रूप में धारण किया था, ऐसे दक्षिण के वन में अपने प्रवेश के आरम्भ को देख रही हूँ।

७८. रामः—

एतानि तानि गिरिनिर्झरिणीतटेषु
वैखानसाश्रिततरूणि तपोवनानि।
येष्वातिथेयपरमा यमिनो भजन्ते
नीवारमुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि ॥२५॥

अन्वय—गिरिनिर्झरिणीतटेषु वैखानसाश्रिततरूणि एतानि तानि तपोवनानि, येषु आतिथेयपरमाः नीवारमुष्टिपचनाः यमिनः गृहिणः गृहाणि भजन्ते।

राम—पहाड़ी नदियों के किनारे वानप्रस्थों से आश्रित वृक्षों वाले ये वे तपोवन हैं, जहाँ पर अतिथि-सत्कार में तत्पर मुट्ठी भर नीवार धान पकाने वाले तथा (अहिंसा आदि) यमों के पालक गृहस्थी लोग अपने-अपने घरों में निवास करते हैं ॥२५॥

संस्कृत-व्याख्या

गिरि०—गिरिनिर्झरिणीनां पर्वतनदीनां तटेषु तीरेषु, वैखानसा०—वैखानसैः वानप्रस्थैः आश्रिताः सेविताः तरवः वृक्षाः येषु तानि, एतानि—इमानि, तानि—पूर्वोक्तानि, तपोवनानि—तपस्यायाः काननानि, सन्ति इति शेषः, येषु—तपोवनेषु, आतिथेयपरमाः—आतिथेयम् अतिथिसत्कारः परमं प्रधानं येषां ते, अतिथिसत्कारप्रधानाः, नीवार०—नीवारमुष्टेः मुष्टिपरिमितमुन्यन्नस्य पचनं पाकः येषां ते, मुष्टिमात्रमुन्यन्नपाचकाः, यमिनः—अहिंसादियमपालकाः, गृहिणः—गृहस्थाः, गृहाणि—स्वसदनानि, भजन्ते—सेवन्ते। वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) विराध०—विराध राक्षस वाली घटना। विराधस्य संवादः, तत्पु०। संवाद—घटना या वृत्तान्त। सम् + वद्+घञ्। विराध राक्षस नरभक्षी था। राम का भी उसने विरोध किया था। विराध की कथा के लिए

पाठभेद—७८. काले—शमिनो (शान्त)।

देखो, रामायण अरण्य० सर्ग २--४। (२) **अलम्**०--इसको रहने दो, इसको देखने की आवश्यकता नहीं। अलम् के कारण एतेन में तृतीया। (३) **आर्यपुत्र**०--जहाँ आपने अपने हाथ से पंखे को छाते के रूप में धारण किया था। आर्यपुत्रेण स्वहस्ते धृतं तालवृन्तम् एव आतपत्रं यस्मिन् तम्, बहु०। आतपत्र--छाता। आतपात् त्रायते इति, आतप+त्रा+क (अ)। आतोऽनुपसर्गे कः (३-२-३) से क। (४) **दक्षिणा**०--दक्षिण के वन में प्रवेश के आरम्भ को। दक्षिणारण्ये प्रवेशस्य आरम्भः तम्, तत्पु०। (५) **गिरि**०--पहाड़ की नदियों के तटों पर। गिरिनिर्झरिणीनां तटेषु, तत्पु०। निर्झरिणी--नदी। निर्झर+इनि (इन्)+ङीप्। मत्वर्थ में इनि। (६) **वैखानसा**०--वानप्रस्थों से आश्रित वृक्षों वाले। वैखानसैः आश्रिताः तरवः येषु तानि, बहु०। वैखानस--वानप्रस्थ। विखनसा प्रोक्तेन मार्गेण वर्तते इति, विखनस्+अण्। विखनस् मुनि के द्वारा प्रतिपादित मार्ग से चलने वाले। देखो--गौतमधर्मसूत्र ३-२ पर हरदत्त की व्याख्या। सर्वप्रथम विखनस् मुनि ने वानप्रस्थों के कर्तव्यों का उल्लेख किया था, अतः उनके नाम पर ही यह वैखानस नाम पड़ा। (७) **आतिथेय**०--अतिथि-सत्कार को परम कर्तव्य मानने वाले। आतिथेय--अतिथि-सत्कार। अतिथि+ढञ् (एय), पथ्यतिथि० (४-४-१०४) से साधु अर्थ में ढञ् (एय) प्रत्यय। (८) **यमिनः**--यमों का पालन करने वाले। यम ये हैं--अहिंसा--सत्य--अस्तेय--ब्रह्मचर्य--अपरिग्रहाः यमाः (योगसूत्र २--३०)। (९) **नीवार**०--मुट्ठीभर नीवार को पकाने वाले। नीवारमुष्टेः पचनं येषां ते, बहु०। नीवार--जंगली चावल, नि+वृ+घञ्। नौ वृ धान्ये (३-३-४८) से घञ् और उपसर्गस्य० (६-३-१२२) से नि को दीर्घ। (१०) **गृहिणः**--गृहस्थ। गृहाणि सन्ति येषाम् इति, गृह+इनि (इन्)--गृहिन्। मत्वर्थ में इनि।

७९. **लक्ष्मणः--अयमविरलानोकहनिवहनिरन्तरस्निग्धनीलपरिसरारण्यपरिणद्धगोदावरीमुखरकन्दरः संततमभिष्यन्दमानमेघमेदुरितनीलिमा जनस्थानमध्यगो गिरिः प्रस्रवणो नाम।**

लक्ष्मण--यह जनस्थान के मध्य में विद्यमान प्रस्रवण नामक पर्वत है, जो सघन वृक्ष-समूह से पूर्णतया हरे भरे और श्यामल पर्यन्त-प्रदेश वाले वन से घिरी

हुई गोदावरी नदी (के जल) से शब्दायमान गुफाओं से युक्त है तथा जहाँ पर निरन्तर बरसने वाले मेघों से स्निग्ध श्यामलता है।

८० (क) राम:—

स्मरसि सुतनु तस्मिन्पर्वते लक्ष्मणेन
प्रतिविहितसपर्यासुस्थयोस्तान्यहानि।
स्मरसि सरसनीरां तत्र गोदावरीं वा
स्मरसि च तदुपान्तेष्वावयोर्वर्तनानि ।।२६।।

अन्वय—हे सुतनु, तस्मिन् पर्वते लक्ष्मणेन प्रतिविहितसपर्यासुस्थयो: तानि अहानि स्मरसि ? तत्र सरसनीरां गोदावरीं वा स्मरसि ? तदुपान्तेषु आवयो: वर्तनानि च स्मरसि ?

राम—हे सुन्दरी, क्या तुम उस पर्वत पर लक्ष्मण के द्वारा बार-बार की गई सेवा से प्रसन्नचित्त हम दोनों के उन दिनों को याद करती हो ? अथवा वहाँ (बहती हुई) स्वादिष्ट जल वाली गोदावरी को याद करती हो ? और क्या उसके किनारे हम दोनों के भ्रमण को याद करती हो ? ।।२६।।

संस्कृत-व्याख्या

हे सुतनु—हे सुन्दरि, तस्मिन् पर्वते—प्रस्रवणनामके गिरौ, लक्ष्मणेन—सौमित्रिणा, प्रतिविहित०—प्रतिविहिता पुन: पुन: कृता या सपर्या परिचर्या तया सुस्थयो: प्रसन्नचित्तयो: आवयो:, तानि—व्यतीतानि, अहानि—दिनानि, स्मरसि—स्मृतिं प्रापयसि किम् ? तत्र—तस्मिन् गिरौ, सरसनीरां—स्वादिष्ट-जलयुक्ताम्, गोदावरीं वा—गोदावरीं नदीं वा, स्मरसि—स्मरसि किम् ? तदुपान्तेषु—तस्या: गोदावर्या: उपान्तेषु समीपस्थप्रदेशेषु, आवयो:—सीता-रामयो:, वर्तनानि च—भ्रमणानि च, स्मरसि—स्मरसि किम् ? मालिनी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अविरला०**—अविरला: अनोकहा: (कर्मधा०) तेषां निवह: (तत्पु०) तेन निरन्तरं स्निग्धं नीलं च यत् परिसरारण्यम् (तत्पु० गर्भित कर्मधा०) तेन परिणद्धा या गोदावरी (तत्पु० गर्भित कर्मधा०) तया मुखराणि कन्दराणि यस्य स:, बहु०। अविरल—घने। अनोकह—वृक्ष,

अनस् (गाड़ी) के अक (मार्ग) को ह (नष्ट करने वाला या रोकने वाला) । अनस्+अक+हन्+ड (अ) । निवह—समूह । स्निग्ध—चिकना, हराभरा, स्निह्+क्त । नील—श्यामवर्ण । परिसरारण्य—समीपस्थ वन । नगर आदि के समीप की भूमि को परिसर कहते हैं । परि+सृ+घ (अ)—परिसर । परिणद्ध—घिरा हुआ, परि+नह+क्त । मुखर—शब्द युक्त, मुख+र । मत्वर्थ में रप्रकरणे खमुखकुञ्जेभ्य० (वा०) से र प्रत्यय । (२) अभिष्यन्दमान०—बरसने वाले बादलों से स्निग्ध श्यामलता वाला । अभिष्यन्दमानाः मेघाः (कर्मधा०), तैः मेदुरितः नीलिमा यस्य सः, बहु० । अभिष्यन्दमान—बरसते हुए, अभि+स्यन्द्+शानच् । मेदुरित—स्निग्ध, मेदुर शब्द से णिच् करके क्त प्रत्यय । नीलिमा—श्यामलता, नील+इमनिच् (इमन्) । पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा (५-१-१२२) से भाव अर्थ में इमनिच् । (३) जन-स्थान०—जनस्थान के मध्य में विद्यमान । जनस्थानस्य मध्यं गच्छति इति, जनस्थानमध्य+गम्+ड (अ) । अन्यत्रापि दृश्यते० (वा०) से ड । जनस्थान—यह दण्डकारण्य का एक भाग था । उस भाग में ही यह प्रस्रवण पर्वत था । कुछ के मतानुसार जनस्थान वर्तमान नासिक के समीप का भाग है और कुछ के मतानुसार गोदावरी के मुहाने के पास का स्थान है । (४) सुतनु—हे सुन्दर शरीर वाली । शोभना तनूः यस्याः सा सुतनूः, बहु० । इसका सम्बोधन है । (५) प्रतिविहित०—की गई शुश्रूषा से प्रसन्नचित्त । प्रतिविहिता या सपर्या (कर्मधा०), तया सुस्थयोः, तत्पु० । प्रतिविहित—बार-बार की गई, प्रति+वि+धा+क्त । सपर्या—पूजा, यहाँ पर सेवा या शुश्रूषा अर्थ है । सुस्थ—स्वस्थ, प्रसन्नचित्त, सु+स्था+क (अ) । (६) सरस०—सरस जलवाली । सरसं नीरं यस्यां सा ताम्, बहु० । (७) तदुपान्तेषु—उसके किनारों पर । उपान्त—समीपस्थ भाग । तस्याः उपान्तेषु, तत्पु० (८) वर्तनानि—वर्तन के दो अर्थ हैं—भ्रमण या रहना । यहाँ पर भ्रमण अर्थ अधिक उपयुक्त है । वर्तन—वृत्+ल्युट् ।

८० (ख) किं च—

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासक्तियोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।

अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥२७॥

अन्वय—आसक्तियोगात् अविरलितकपोलं मन्दं मन्दं किमपि अक्रमेण जल्पतोः अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णोः अविदितगतयामा रात्रिः एव व्यरंसीत् ॥

और भी—

प्रेमभाव के कारण कपोलों को मिलाकर धीरे-धीरे कुछ भी असंबद्ध वार्तालाप करते हुए तथा गाढ़ आलिंगन में व्यस्त एक-एक बाहु वाले हम दोनों की रात्रि, विगत प्रहरों के ज्ञान के बिना ही, बीत गई ॥२७॥

संस्कृत-व्याख्या

आसक्तियोगात्—प्रेमभावसंबन्धात्, अविरलित०—अविरलितौ संयुक्तौ कपोलौ गण्डभागौ यस्मिन् तत्, मन्दं मन्दं—शनैः शनैः, किमपि किमपि—यत्-किंचित्, अक्रमेण—क्रमाभावेन, जल्पतोः—वदतोः, अशिथिल०—अशिथिलः गाढः यः परिरम्भः आलिङ्गनं तस्मिन् व्यापृतः व्यस्तः एकैकः दोः बाहुः ययोः तयोः, गाढालिङ्गनव्यस्तैकैकभुजयोः, अविदित०—अविदिताः अज्ञाताः गताः व्यतीताः यामाः प्रहराः यस्याः सा, अज्ञातातीतप्रहरा, रात्रिः एव—निशा एव, व्यरंसीत्—व्यतीता । स्वभावोक्तिरलंकारः । मालिनी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **किमपि०**—कुछ भी बात । (२) **आसक्त०**—प्रेमभाव के कारण । आसक्तेः योगात्, तत्पु० । आसक्ति—प्रेम, अनुराग । आ+सञ्ज्+क्तिन् । योग—सम्बन्ध । युज् +घञ् । (३) **अविरलित०**—कपोलों को मिलाकर । अविरलितौ कपोलौ यथा स्यातां तथा, अव्ययी० । अविरलित—मिले हुए । विरल+णिच्+क्त—विरलित से नञ् समास ।(४) **जल्पतोः**—बात करते हुए । जल्प्+शतृ+षष्ठी द्विवचन । (५) **अशिथिल०**—अशिथिलः परिरम्भः (कर्मधा०), तस्मिन् व्यापृतः एकैकः दोः ययोः तयोः, बहु० । अशिथिल—गाढ़ । परिरम्भ—आलिंगन । व्यापृत—व्यस्त, लगे हुए, वि+आ+पृ+क्त । एकैक—एक-एक । यहाँ पर कर्मव्यतिहार अर्थ में

द्विरुक्ति है। दोस्--भुजा। यहाँ पर पद्दन्नो० (६-१-६३) से दोस् को दोषन् हो जाता है। दोष्णोः षष्ठी द्विव० का रूप है। (६) अविदित०--जिसके बीते हुए पहर पता नहीं चले। अविदिताः गताः यामाः यस्याः सा, बहु०। अविदित--अज्ञात, नञ्+विद्+क्त। (७) व्यरंसीत्--बीत गई। वि+रम् का लुङ प्र० पु० एक० का रूप है। यहाँ पर व्याङ्परिभ्यो रमः (१-३-८३) से वि+रम् धातु परस्मैपदी है। यमरमनमातां सक् च (७-२-७३) से बीच में स् हुआ है। (८) इस श्लोक में प्रेमालाप का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वाभावोक्ति अलंकार है। (९) इस श्लोक के विषय में किंवदन्ती है कि भवभूति ने अन्तिम पाद में रात्रिरेवं पाठ रखा था, परन्तु कालिदास के सुझाव पर उसने रात्रिरेव पाठ को अपनाया। (१०) दशरूपक ४-६९ में इस श्लोक को संभोग श्रृंगार का उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसमें रस संभोग-श्रृंगार है और स्थायिभाव रति है।

८१. लक्ष्मणः--एष पञ्चवट्यां शूर्पणखाविवादः।

लक्ष्मण--यह पंचवटी में शूर्पणखा के साथ विवाद (का दृश्य) है।

८२. सीता--हा आर्यपुत्र, एतावत्ते दर्शनम्।

[हा अज्जउत्त, एत्तिअं दे दंसणं।]

सीता--हा आर्यपुत्र, यहीं तक आपका दर्शन हुआ था।

८३. रामः--अयि वियोगत्रस्ते, चित्रमेतत्।

राम--हे विरह से भयभीत सीता, यह चित्र है।

८४. सीता--यथा तथा भवतु। दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति। [जहा तहा होदु। दुज्जणो असुहं उप्पादेइ।]

सीता--जो कुछ भी हो। दुर्जन दुःख उत्पन्न करता है।

८५. रामः--हन्त, वर्तमान इव मे जनस्थानवृत्तान्तः प्रतिभाति।

राम--हाय, जनस्थान का वृत्तान्त मुझे वर्तमान-सा प्रतीत हो रहा है।

८६. लक्ष्मणः—

अथेदं रक्षोभिः कनकहरिणच्छद्मविधिना
तथा वृत्तं पापैर्व्यथयति यथा क्षालितमपि ।
जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितै-
रपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम् ।।२८।।

अन्वय—अथ पापैः रक्षोभिः कनकहरिणछद्मविधिना इदं तथा वृत्तम्, यथा क्षालितम् अपि व्यथयति । शून्ये जनस्थाने विकलकरणैः आर्यचरितैः ग्रावा अपि रोदिति, वज्रस्य अपि हृदयं दलति ।

लक्ष्मण—तत्पश्चात् पापी राक्षसों के द्वारा सुवर्ण-मृग के छल से यह ऐसी घटना हुई, जो कि प्रतीकार किए जाने पर भी दुःख देती है । निर्जन जनस्थान (दण्डकारण्य) में खिन्न-चित्त आपके चरितों से पत्थर भी रो पड़ा था और वज्र का भी हृदय फट गया था ।।२८।।

संस्कृत-व्याख्या

अथ—तत्पश्चात्, पापैः—दुर्वृत्तैः, रक्षोभिः—राक्षसैः, कनक०—कनकहरिणस्य सुवर्णमृगस्य छद्मविधिना कपटानुष्ठानेन, इदम्—एतत्, तथा—तादृशम्, वृत्तं—घटितम्, यथा—यादृशम्, क्षालितमपि—प्रतीकारेण परिशोधितमपि, व्यथयति—सन्तापयति । शून्ये—निर्जने, जनस्थाने—दण्डकारण्ये, विकलकरणैः—विकलानि खिन्नानि करणानि इन्द्रियाणि अन्तःकरणानि वा येषु तैः, खिन्नचित्तैः खिन्नेन्द्रियैः वा, आर्यचरितैः—आर्यस्य रामस्य चरितैः व्यापारैः, ग्रावा अपि—पाषाणः अपि, रोदिति—विलपति, वज्रस्य अपि—पवेः अपि, हृदयं—मनः, दलति—विदीर्यते । अतिशयोक्तिरलंकारः । शिखरिणी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **पञ्चवट्याम्**—पञ्चवटी में । पञ्चानां वटानां समाहारः पञ्चवटी, तस्याम्, द्विगु० । पाँच वट ये माने जाते हैं—अश्वत्थ, बिल्व, वट, धात्री अर्थात् आँवला और अशोक । पञ्चवटी यह स्थान दण्डकारण्य का एक भाग था । यह गोदावरी के उद्गम के समीप था और अगस्त्य के आश्रम से

दो योजन (१६ मील) दूर था। देखो—रामा० अरण्य० सर्ग १४। नासिक के समीप वर्तमान पञ्चवटी स्थान को ही कुछ लोग प्राचीन पञ्चवटी मानते हैं। यहाँ राम बहुत समय तक रुके थे और यहीं सीता-हरण हुआ था। (२) **शूर्पणखा०**—शूर्पणखा के साथ विवाद। शूर्पणखा रावण की बहन थी और और अपने भाई खरदूषण के साथ दण्डकारण्य में रहती थी। शूर्पणखा के अभद्र प्रस्ताव पर क्रुद्ध होकर लक्ष्मण ने इसकी नाक काटी थी। विस्तृत कथा के लिए देखो—रा० अरण्य० सर्ग १७–१८। शूर्पा इव नखाः यस्याः सा, बहु०। नखमुखात् संज्ञायाम् (४–१–५८) से निषेध के कारण ङीष् न होकर टाप् हुआ। पूर्वपदात् संज्ञायामगः (८–४–३) से न को ण। (३) **एतावत्०**—यहीं तक राम का दर्शन हुआ था। इसके बाद सीताहरण हुआ था। (४) **वियोगत्रस्ते**—वियोग से भयभीत। त्रस्त—त्रस्+क्त। (५) **अथ**—तत्पश्चात्। (६) **कनक०**—सुवर्णमृग के छल के द्वारा। कनकहरिणस्य छद्मविधिना, तत्पु०। विधि—ढंग, वि+धा+कि (इ)। (७) **वृत्तम्**—घटना घटी। वृत्+क्त। (८) **पापैः**—पापियों ने। पापम् अस्ति येषां तैः, पाप+अच् (अ)। अर्श-आदिभ्योऽच् (५–२–१२७) से मत्वर्थ में अच्। (९) **व्यथयति**—दुःख देता है। व्यथ्+णिच्+लट्। (१०) **क्षालितमपि**—धोने पर भी अर्थात् बदला लेने पर भी। क्षल्+णिच्+क्त। (११) **शून्ये**—निर्जन, एकान्त। (१२) **विकल०**—खिन्न इन्द्रियों वाले। विकलानि करणानि येषु तैः, बहु०। करण—इन्द्रियाँ। मन आदि को अन्तरिन्द्रिय होने से अन्तःकरण कहा जाता है। (१३) **आर्यचरितैः**—आपके कार्यों से। आर्यस्य चरितैः, तत्पु०। चरित—कार्य, व्यवहार। (१४) पत्थर का रोना और वज्र के हृदय का फटना यह असंबन्ध में सम्बन्ध के वर्णन से अतिशयोक्ति अलंकार है। (१५) भवभूति ने करुण रस के वर्णन में जो सफलता प्राप्त की है, उसकी ओर इस श्लोक में संकेत है। उसके करुण रस के वर्णन को सुनकर पत्थर भी रो पड़ते हैं और वज्र का भी हृदय फट जाता है। इस श्लोक के अन्तिम चरण पर मुग्ध होकर गोवर्धनाचार्य ने आर्यासप्तशती में भवभूति के विषय में कहा है—

भवभूतेः सम्बन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा॥

८७. सीता--(सास्रमात्मगतम्) अहो, दिनकर-कुलानन्दन एवमपि मम कारणात्क्लान्त आसीत्। [अम्हो, दिणअरकुलाणंदणो एवं वि मह कालणादो किलंतो आसि।

सीता--(अश्रुपूर्ण नेत्रों से, मन में) ओह, सूर्यवंश के आनन्ददाता (राम) भी मेरे कारण से इस प्रकार दुःखित हुए थे।

८८. लक्ष्मणः-(रामं निर्वर्ण्य साकूतम्) आर्य, किमेतत्?

अयं तावद्बाष्पस्त्रुटित इव मुक्तामणिसरो
विसर्पन्धाराभिर्लुठति धरणीं जर्जरकणः।
निरुद्धोऽप्यावेगः स्फुरदधरनासापुटतया
परेषामुन्नेयो भवति चिरमाध्मातहृदयः ॥२९॥

अन्वय–तावत् धाराभिः विसर्पन् जर्जरकणः अयं बाष्पः त्रुटितः मुक्ता-मणिसरः इव धरणीं लुठति। चिरम् आध्मातहृदयः आवेगः निरुद्धः अपि स्फुरदधरनासापुटतया परेषाम् उन्नेयः भवति।

लक्ष्मण--(राम को देखकर साभिप्राय) आर्य, यह क्या?

धारारूप में बहता हुआ चूर-चूर यह आँसू टूटी हुई मोती की माला की तरह पृथ्वी पर गिर रहा है। चिरकाल तक हृदय में व्याप्त यह आवेग रोके जाने पर भी ओष्ठ और नासिका के कम्पन से दूसरों के द्वारा अनुमेय हो जाता है ॥२९॥

संस्कृत-व्याख्या

तावत्--तर्हि, धाराभिः--प्रवाहैः, विसर्पन्--प्रसरन्, जर्जरकणः--चूर्णबिन्दुः, अयम्--एषः, बाष्पः--अश्रु, त्रुटितः--छिन्नः, मुक्तामणिसरः इव--मुक्ताहार इव, धरणीं--भूमिम्, लुठति--निपतति। चिरं--चिरकालं यावत्, आध्मात०--पूरितहृदयः, आवेगः--दुःखोद्वेगः, निरुद्धः अपि--नियन्त्रितोऽपि, स्फुरद०--स्फुरन् स्पन्दमानः अधरः निम्नोष्ठः नासापुटं नासिकाछिद्रद्वयं च यस्य तस्य भावः तया, कम्पमानाधरनासिकत्वेन, परेषाम्--अन्येषाम्, उन्नेयः--अनुमेयः, भवति। अत्रोपमाऽनुमानं चालंकारौ। शिखरिणी वृत्तम्।

पाठभेद--८८. काले--ते बाष्पौघः (तेरा अश्रु-समह), का०, काले--च भराध्मातहृदयः (और भार के कारण हृदय को पूर्ण करने वाला)

टिप्पणी

(१) क्लान्तः--खिन्न । क्लम्+क्त । (२) **निर्वर्ण्य**--ध्यान से देख कर । निर्+वर्ण्+णिच्+ ल्यप् । (३) **साकूतम्**--विशेष अभिप्राय के साथ । आकूतेन सहितम्, अव्ययी० । (४) **त्रुटितः**--खण्डित । त्रुट्+क्त । (५) **मुक्ता०**--मोती को माला । मुक्ताः एव मणयः (कर्मधा०), तेषां सरः, तत्पु० । आँखों से गिरते हुए आँसू टूटी हुई मोती की माला के तुल्य प्रतीत होते थे । (६) **विसर्पन्**--फैलता हुआ । वि+सृप्+शतृ+प्र० एक० । (७) **धरणीम्०**--पृथ्वी पर पड़ रहा है । लुठ् धातु अकर्मक है । अतः अकर्मकधातुभिर्योगे देशः० (वा०) से धरणीम् में द्वितीया है । (८) **जर्जरकणः**--जिसके कण चूर हो गए हैं । जर्जराः कणाः यस्य सः, बहु० । (९) **निरुद्धः**--रुका हुआ । नि+रुध्+क्त । (१०) **स्फुरद०**--ओष्ठ और नासिका के कम्पन से । स्फुरन् अधरः नासापुटं च यस्य सः (बहु०), तस्य भावः तया । स्फुरत्--स्फुर्+शतृ । (११) **परेषाम्**--दूसरों के लिए । यहाँ पर कृत्यानां कर्तरि वा (२-३-७१) से उन्नेय के कारण विकल्प से षष्ठी है । परैः भी प्रयोग होगा । (१२) **उन्नेयः**--जानने योग्य, अनुमेय । उत्+नी+यत् (य) । (१३) **आध्मात०**--जिसने हृदय को व्याप्त किया है । आध्मातं हृदयं येन सः, बहु० । आध्मात--आ+ध्मा+क्त । (१४) यहाँ पर त्रुटित इव के द्वारा उपमा अलंकार है और उत्तरार्ध में अधर आदि के कम्पन से दुःखातिशय का अनुमान होने से अनुमान अलंकार है ।

८९. रामः--वत्स,

तत्कालं प्रियजनविप्रयोगजन्मा
तीव्रोऽपि प्रतिकृतिवाञ्छया विसोढः ।
दुःखाग्निर्मनसि पुनर्विपच्यमानो
हृन्मर्मव्रण इव वेदनां तनोति ॥३०॥

अन्वय--प्रियजनविप्रयोगजन्मा तीव्रः अपि दुःखाग्निः प्रतिकृतिवाञ्छया तत्कालं विसोढः, पुनः मनसि विपच्यमानः हृन्मर्मव्रण इव वेदनां तनोति ।

पाठभेद--८९. नि० तत्कालप्रिय० (उस समय प्रियजन के०) । का०, काले--करोति (करता है) ।

राम—प्रिय,

प्रियजन (सीता) के विरह से उत्पन्न तीव्र भी दुःखरूपी अग्नि को प्रतिकार की इच्छा से उस समय मैंने सहन कर लिया था, (वह अब) फिर मन में परिपक्व होकर हृदय के मर्मस्थल के घाव के तुल्य दुःख दे रहा है । ॥३०॥

संस्कृत-व्याख्या

प्रियजन०—प्रियजनस्य स्निग्धजनस्य सीतायाः विप्रयोगात् विरहात् जन्म उत्पत्तिः यस्य सः, जानकीवियोगोत्पन्नः, तीव्रः अपि—तीक्ष्णः अपि, दुःखाग्निः—शोकानलः, प्रतिकृति०—प्रतिकृतेः प्रतीकारस्य वाञ्छया इच्छया, तत्कालं—तस्मिन् काले, विसोढः—सह्यतां प्रापितः, पुनः—भूयः, मनसि—चित्ते, विपच्यमानः—परिपाकं प्राप्तः, हृन्मर्मव्रण इव—हृन्मर्मणि हृदयस्य मर्मस्थाने व्रणः स्फोटक इव, वेदनां—पीडाम्, तनोति—विस्तारयति । उपमाऽलंकारः । प्रहर्षिणी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **तत्कालम्**—उस समय । स चासौ कालः तत्कालः तम्, कालाध्वनो० (२-३-५) से द्वितीया । (२) **प्रियजन०**—प्रिय सीता के वियोग से उत्पन्न होने वाला । प्रियजनस्य विप्रयोगः (तत्पु०), तस्मात् जन्म यस्य सः, बहु० । विप्रयोग—वियोग, वि+प्र+युज्+घञ् । (३) **प्रतिकृति०**—प्रतीकार की इच्छा से । प्रतिकृतेः वाञ्छया, तत्पु० । (४) **विसोढः**—सहा । वि+सह्+क्त । क्त प्रत्यय करने पर सह् का सोढ रूप बनता है । सोढः (८-३-११५) से सोढः के स को ष नहीं हुआ । (५) **दुःखाग्निः**—दुःखरूपी अग्नि । दुःखम् अग्निः इव, उपमान कर्मधा० । (६) **विपच्यमानः**—परिपक्व होता हुआ । वि+पच्+कर्मकर्ता में यक्+शानच् । (७) **हृन्मर्म०**—हृदय के मर्मस्थल के घाव के तुल्य । हृदः मर्मव्रणः, तत्पु० । (८) **तनोति**—फैला रहा है, कर रहा है । तन्+लट्—प्र० पु० एक० । (९) यहाँ पर हृन्मर्मव्रण इव में उपमा अलंकार है ।

९०. सीता—हा धिक् हा धिक्, अहमप्यतिभूमिं गतेन रणरणकेनार्यपुत्रशून्यमिवात्मानं पश्यामि । [हद्धि हद्धि, अहं वि अधिभूमिं गदेण रणरणएण अज्जउत्तसुण्णं विअ अत्ताणं पेक्खामि ।]

सीता--हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है, मैं भी पराकाष्ठा को प्राप्त हुई उत्कण्ठा के कारण अपने आपको आर्यपुत्र से रहित सी देख रही हूँ ।

६१. लक्ष्मणः--(स्वगतम्) भवतु, अन्यतः क्षिपामि । (चित्रं विलोक्य, प्रकाशम्) अथैतन्मन्वन्तरपुराणस्य गृध्रराजस्य तत्रभवतस्तातजटायुषश्चरित्रविक्रमोदाहरणम् ।

लक्ष्मण--(मन में) अच्छा, इनका ध्यान दूसरी ओर ले जाता हूँ । (चित्र को देखकर, प्रकट) यह मन्वन्तर से भी प्राचीन गृध्रराज पूजनीय पितृ-तुल्य जटायु के चरित्र और पराक्रम का उदाहरण है ।

६२. सीता--हा तात, निर्व्यूढस्तेऽपत्यस्नेहः । [हा ताद, णिव्वढो दे अवच्चसिणेहो ।]

सीता--हा तात, आपका सन्तान के प्रति प्रेम पूर्ण हुआ ।

६३. रामः--हा तात काश्यप शकुन्तराज, क्व नु खलु पुनस्त्वादृशस्य महतस्तीर्थभूतस्य साधोः संभवः ।

राम--हा तात कश्यपगोत्रोत्पन्न पक्षिराज, आप जैसे महान् और सद्‌गुणों के पात्रस्वरूप सज्जन की उत्पत्ति कहाँ संभव है ?

६४. लक्ष्मणः--अयमसौ जनस्थानस्य पश्चिमतः कुञ्जवान्नाम पर्वतो दनुकबन्धाधिष्ठितो दण्डकारण्यभागः । तदिदममुष्य परिसरे मतङ्गस्याश्रमपदम् । तत्र श्रमणा नाम सिद्धा शबरतापसी । तदेतत्पम्पाभिधानं पद्मसरः ।

लक्ष्मण--जनस्थान के पश्चिम की ओर दनुकबन्ध नामक राक्षस से अधिष्ठित दण्डकारण्य का एक भाग यह कुंजवान् नाम का पर्वत है । इसके समीप ही यह मतंग ऋषि का आश्रम है । वहीं पर श्रमणा नाम की सिद्ध शबर-तपस्विनी रहती है और यह पम्पा नामक कमलों से युक्त तालाब है ।

६५. सीता--यत्र किलार्यपुत्रेण विच्छिन्नामर्षधीरत्वं प्रमुक्तकण्ठं प्ररुदितमासीत् । [जत्थ किल अज्जउत्तेण विच्छिण्णामरिसधीरत्तणं पमुक्ककंठं परुण्णं आसि ।]

सीता--जहाँ पर आर्यपुत्र (अपने) क्रोध और धैर्य को छोड़कर मुक्तकण्ठ से रोए थे।

टिप्पणी

(१) **अतिभूमिम्०**--पराकाष्ठा को प्राप्त। अतिशयिता भूमिः अतिभूमिः तम्, प्रादितत्पु०। (२) **रणरणकेन**--उत्कंठा या उत्सुकता से। (३) **अन्यतः०**--इनका ध्यान दूसरी ओर ले जाता हूँ। (४) **मन्वन्तर०**--मन्वन्तर से भी प्राचीन। अन्यः मनुः मन्वन्तरम् (मयूरव्यंसकादि होने से कर्मधा० समास), मन्वन्तरेण पुराणः तस्य, तत्पु०। १४ मनु हैं और १४ मन्वन्तर हैं। एक-एक मनु एक-एक मन्वन्तर का राजा होता है। इस समय सातवाँ अर्थात् वैवस्वत मन्वन्तर है। चारों युगों का एक चतुर्युग होता है और ऐसे ७१ चतुर्युगों का एक मन्वन्तर होता है। एक मन्वन्तर तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष का होता है। (५) **तातजटायुषः**--पितृतुल्य जटायु का। जटायु ने एक बार राजा दशरथ की जान बचाई थी, अतः दोनों की मित्रता हो गई थी। लक्ष्मण न अतएव उसे पितृतुल्य कहा है। (६) **चरित्रविक्रमो०**--चरित्र और पराक्रम का उदाहरण। चरित्रं च विक्रमश्च (द्वन्द्व), तयोः उदाहरणम्, तत्पु०। (७) **निर्व्यूढः**—सम्पन्न हुआ, पूर्ण हुआ। निर्+वि+वह्+क्त। (८) **त्वादृशस्य**--तुझ जैसे। त्वादृश--त्वत्+दृश्+कञ् (अ)। त्यदादिषु दृशो० (३-२-६०) से कञ् प्रत्यय और आ सर्वनाम्नः (६-३-९१) से त्वत् के त् को आ। (९) **तीर्थभूतस्य**—सत्पात्रस्वरूप। तीर्थ का अर्थ है गुरु या आदरणीय व्यक्ति। विद्या आदि गुणों के पात्र को भी तीर्थ कहते हैं। (१०) **पश्चिमतः**—पश्चिम की ओर। सप्तमी के अर्थ में तसिल् (तः) प्रत्यय है। (११) **दनुकबन्धा०**--दनुकबन्ध नामक राक्षस से युक्त। दनुकबन्धेन अधिष्ठितः, तत्पु०। अधिष्ठित--अधि+स्था+क्त। दनुकबन्ध के विषय में पौराणिक कथा है कि वह विश्वावसु नाम का गन्धर्व था। स्थूलशिरा नाम के ऋषि के शाप से वह राक्षस हो गया था। युद्ध में इन्द्र के वज्र के प्रहार से उसका शिर पेट में चला गया था, अतः उसे दनुकबन्ध कहते हैं। दनुकबन्ध का अर्थ है--शिररहित राक्षस। राम के दर्शन से उसकी मुक्ति हुई। (१२) **परिसरे**--समीपस्थ स्थान में। (१३) **मतङ्गस्य०**--मतंग ऋषि का आश्रम। यह

पम्पासर के पश्चिम की ओर था। (१४) श्रमणा--यह एक शबर जाति की सिद्ध तपस्विनी थी। यह मतंग ऋषि के शिष्यों की सेवा करती थी और वहीं तपस्या करती थी। राम की सेवा से उसकी मुक्ति हुई। (१५) पम्पा०--दक्षिण भारत में यह एक प्रसिद्ध तालाब था। यह कमलों के लिए प्रसिद्ध था। दक्षिण भारत में बिलारी के समीप वर्तमान हम्पी स्थान पम्पा माना जाता है। (१६) विच्छिन्ना०--अपने क्रोध और धैर्य को छोड़कर। अमर्षः धीरत्वं च अमर्षधीरत्वे (द्वन्द्व), विच्छिन्ने अमर्षधीरत्वे यस्मिन् तत्, बहु०, क्रियाविशेषण। विच्छिन्न--वि+छिद्+क्त। (१७) प्रमुक्त०--मुक्तकंठ से, गला फाड़कर। प्रमुक्तः कण्ठः यस्मिन् तत्, बहु०। प्रमुक्त--प्र+मुच्+क्त। (१८) प्ररुदितम्--रोए। प्र+रुद्+क्त।

९६. रामः--देवि, परं रमणीयमेतत्सरः।

एतस्मिन्मदकलमल्लिकाक्षपक्ष-
व्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः।
बाष्पाम्भःपरिपतनोद्गमान्तराले
संदृष्टाः कुवलयिनो मया विभागाः ॥३१॥

अन्वय--एतस्मिन् मदकलमल्लिकाक्षपक्षव्याधूतस्फुरदुरुदण्डपुण्डरीकाः कुवलयिनः विभागाः मया बाष्पाम्भःपरिपतनोद्गमान्तराले संदृष्टाः।

राम--हे देवी, यह (पम्पा) सरोवर अत्यन्त मनोहर है।

इस (पम्पा सरोवर) में मद से मधुर ध्वनि करने वाले मल्लिकाक्षों (हंस-विशेषों) के पंखों से कम्पित और मनोहर बड़े नाल वाले श्वेतकमलों से युक्त तथा नील-कमलों वाले प्रदेशों को मैंने आँसू के गिरने और निकलने के मध्यकाल में देखा था ॥३१॥

संस्कृत-व्याख्या

एतस्मिन्--पम्पासरोवरे, मदकल०--मदेन प्रमोदेन कलाः मधुरध्वनि-युक्ताः ये मल्लिकाक्षाः मलिनचञ्चुचरणैर्युक्ताः हंसविशेषाः तेषां पक्षैः पत्रैः व्याधूतानि कम्पितानि स्फुरन्ति मनोहराणि उरुदण्डानि बृहन्नालानि पुण्डरीकाणि

पाठभेद--९६. क्व० ... काले ... भवो (पृथ्वी के)।

श्वेतपद्मानि येषु ते, कुवलयिनः—नीलोत्पलयुक्ताः, विभागाः—प्रदेशाः, मया—रामेण, बाष्पा०—बाष्पाम्भसाम् अश्रूणां परिपतनं स्रवणम् उद्गमः निर्गमश्च तयोरन्तराले मध्ये, संदृष्टाः—प्रेक्षिताः। प्रहर्षिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **मदकल०**—मदेन कलाः मदकलाः (तत्पु०), ते च मल्लिकाक्षाः मदकलमल्लिकाक्षाः (कर्मधा०), तेषां पक्षैः व्याधूतानि स्फुरन्ति उरुदण्डानि पुण्डरीकाणि येषु ते, बहु०। मदकल—मद से मधुर ध्वनि करने वाले। मल्लिकाक्ष—हंसविशेष, जिनका शरीर श्वेत होता है और चोंच तथा पैर मटमैले होते हैं। व्याधूत—कम्पित, वि+आ+धू+क्त। स्फुरत्—शोभित, मनोहर, स्फुर्+शतृ। उरुदण्ड—बड़ी नाल वाले। पुण्डरीक—श्वेतकमल। (२) **बाष्पाम्भः०**—आँसुओं के गिरने और निकलने के मध्यकाल में। बाष्पाम्भसां परिपतनम् उद्गमश्च तयोः अन्तराले, तत्पु०। (३) **संदृष्टाः**—देखे। संदृष्ट—सम्+दृश्+क्त। (४) **कुवलयिनः**—नीलकमलों से युक्त। (५) इस श्लोक की कई प्रकार से व्याख्या की गई है। कुछ लोगों ने अर्थ लिया है कि श्वेतकमल से युक्त पम्पासर अश्रुदोष के कारण राम को नीलकमल से युक्त प्रतीत होता था, परन्तु यहाँ पर श्लोक का सामान्य अर्थ लेना अधिक उचित प्रतीत होता है। पम्पा सरोवर में श्वेत और नील दोनों प्रकार के कमल थे। राम निरन्तर रोने के कारण तालाब की सुन्दरता को पूर्णतया नहीं देख पाते थे। आँसुओं के निकलने और गिरने के बीच में जितना समय मिलता था, उतने ही समय में वे तालाब का सौन्दर्य देख पाते थे।

९७. लक्ष्मणः—अयमार्यो हनूमान्।

लक्ष्मण—यह आर्य हनुमान् हैं।

९८. सीता—एष स चिरनिर्व्यूढजीवलोकप्रत्युद्धरणगुरुकोपकारी महानुभावो मारुतिः। [एसो सो चिरणिव्वूढजीवलोअपच्चुद्धरणगुरुओवआरी महानुभावो मारुदी।]

सीता—यह वह चिरकाल से किए गए जीवलोक के उद्धार से गौरवान्वित और उपकारी तथा महाप्रभावशाली वायु-पुत्र हनुमान् हैं।

९९. रामः—

दिष्ट्या सोऽयं महाबाहुरञ्जनानन्दवर्धनः ।
यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च ॥३२॥

अन्वय—दिष्टया अयं सः महाबाहुः अञ्जनानन्दवर्धनः, यस्य वीर्येण भुवनानि च वयं च कृतिनः ।

राम—सौभाग्य से यह वही अञ्जना के आनन्द को बढ़ाने वाले विशाल-बाहु (हनुमान्) हैं, जिनके पराक्रम से सारे लोक और हम सब कृत-कृत्य हुए हैं ॥३२॥

संस्कृत-व्याख्या

दिष्टया—सौभाग्येन, अयं सः—एषोऽयम्, महाबाहुः—विशालभुजः, आजानुबाहुरित्यर्थः, अञ्जना०—अञ्जनायाः अञ्जनाख्यस्वमातुः आनन्दस्य हर्षस्य वर्धनः वृद्धिकर्ता, हनूमान् अस्ति । यस्य—हनूमतः, वीर्येण—पराक्रमेण, भुवनानि च—लोकाश्च, वयं च—रामादयश्च, कृतिनः—कृतार्थाः स्मः । श्लोको वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **हनूमान्**—हनुमान् । ठोडी या हनु की दृढ़ता के कारण इनका यह नाम पड़ा था । (२) **चिर०**—चिरात् निर्व्यूढं जीवलोकस्य प्रत्युद्धरणम् (तत्पु०), तेन गुरुकः चासौ उपकारी च, कर्मधा० । निर्व्यूढ—सम्पादित किया है । जीवलोक०—मनुष्यों के उद्धार से गौरवशाली और उपकारी । (३) **महानुभावः**—महाप्रभावशाली । महान् अनुभावः यस्य सः, बहु० । (४) **मारुतिः**—वायु के पुत्र । मरुतः अपत्यम्, मरुत्+इञ् (इ) । बाह्वादिभ्यश्च (४-१-९६) से इञ् । (५) **दिष्ट्या**—भाग्य से । यह अव्यय है । (६) **महाबाहुः**—विशाल भुजा वाले । महान्तौ बाहू यस्य सः, बहु० । (७) **अञ्जना०**—अञ्जना के आनन्द को बढ़ाने वाले । अञ्जना हनुमान् की माता का नाम था । अञ्जनायाः आनन्दस्य वर्धनः, तत्पु० । वर्धनः—वृध्+ल्यु (अन) । नन्दिग्रहि० (३-१-१३४) से ल्यु । (८) **वीर्येण**—पराक्रम से । वीर्य—वीरस्य भावः, वीर+यत् (य) । (९) **कृतिनः**—कृतमत्य, सफल । कृतिन्—कृतम् अस्य अस्ति इति, कृत+इनि (इन्) । मत्वर्थ में इनि ।

१००. सीता—वत्स, एष स कुसुमितकदम्बतरुताण्डवितबर्हिणः किंनामधेयो गिरिः ? यत्रानुभावसौभाग्यमात्रपरिशेषसुन्दरश्रीर्मूर्च्छंस्त्वया प्ररुदितेनावलम्बितस्तरुतल आर्यपुत्र आलिखितः । [वच्छ, एसो सो कुसुमिदकदम्बतरुतांडविअबंहिणो किंणामहेओ गिरी ? जत्थ अणुभावसोहग्गमेत्तपरिसेससुन्दरसिरी मुच्छंदो तुए परुण्णेण ओलंबिओ तरुअले अज्जउत्तो आलिहिदो ।]

सीता—वत्स, पुष्पित कदम्ब-वृक्षों पर ताण्डव नृत्य करते हुए मोरों से युक्त इस पर्वत का क्या नाम है ? जहाँ पर तेज के सौन्दर्यमात्र से अवशिष्ट सुन्दर शोभा वाले, मूर्छित होते हुए तथा रोते हुए तुम्हारे द्वारा संभाले गए आर्यपुत्र वृक्ष के नीचे (बैठे हुए) चित्रित किए गए हैं ।

१०१. लक्ष्मणः—

सोऽयं शैलः ककुभसुरभिर्माल्यवान्नाम यस्मि-
न्नीलः स्निग्धः श्रयति शिखरं नूतनस्तोयवाहः ।
आर्येणास्मिन्....

१०२. रामः—

....विरम विरमातः परं न क्षमोऽस्मि
प्रत्यावृत्तः पुनरिव स मे जानकीविप्रयोगः ॥३३॥

अन्वय—अयं सः ककुभसुरभिः माल्यवान् नाम शैलः, यस्मिन् नीलः स्निग्धः नूतनः तोयवाहः शिखरं श्रयति । आर्येण अस्मिन्....। विरम विरम । अतः परं क्षमः न अस्मि । मे स जानकीविप्रयोगः पुनः प्रत्यावृत्तः इव ।

लक्ष्मण—अर्जुनवृक्ष के फूलों से सुगन्धित यह वही माल्यवान् नाम का पर्वत है, जिसकी चोटी पर नीला, चिकना और नया मेघ आश्रय लेता है । आर्य ने यहाँ पर........।

पाठभेद—१०१, १०२. काले—रामः—वत्सैतस्माद् विरम० (राम—हे वत्स, इस कथन से रुको), नि० स पुनरिव (वह मानों फिर) ।

राम--रुको, रुको। इससे आगे (और कुछ सुनने में) में समर्थ नहीं हूँ। मुझे वह सीता का वियोग फिर मानों लौट आया है ॥३३॥

संस्कृत-व्याख्या

अयं सः--एष सः, ककुभसुरभिः--ककुभैः अर्जुनपुष्पैः सुरभिः सुगन्धिः, माल्यवान् नाम--माल्यवान् नामकः, शैलः--पर्वतोऽस्ति, यस्मिन्--यस्मिन् पर्वते, नीलः--श्यामवर्णः, स्निग्धः--चिक्कणः, नूतनः--नवीनः, तोयवाहः--मेघः, शिखरं--शृङ्गम्, श्रयति--आश्रयते। आर्येण--पूज्येन भवता, अस्मिन्--एतस्मिन् पर्वते,......। विरम विरम--विरामं कुरु, विरामं कुरु, नातः परं वक्तव्यमित्यर्थः, अतः परम्--एतस्माद् अनन्तरं किञ्चिदपि श्रोतुम्, क्षमः--समर्थः, न अस्मि--न भवामि। मे--मम रामस्य, सः--प्रागनुभूतः, जानकीविप्रयोगः--सीताविरहः, पुनः--भूयः, प्रत्यावृत्तः इव--पुनरुपस्थित इति मन्ये। अत्रोत्प्रेक्षाऽलंकारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **कुसुमित०**--जहाँ पर खिले हुए कदम्ब-वृक्षों पर मोर ताण्डव-नृत्य कर रहे हैं। कुसुमिताः कदम्बतरवः (कर्मधा०), तेषु ताण्डविताः बर्हिणाः यस्मिन् सः, बहु०। कुसुमित--पुष्पित, कुसुमानि संजातानि येषां ते कुसुमिताः, कुसुम+इतच् (इत), तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच् (५-२-३६) से इतच्। ताण्डवित--ताण्डवनृत्ययुक्त, ताण्डवं संजातम् अस्य, ताण्डव+इतच्, तदस्य संजातं ० (५-२-३६) से इतच्। बर्हिणः--मोर। बर्ह--मोरपंख। बर्हम् अस्य अस्ति इति, बर्ह+इनच् (इन), फलबर्हाभ्यामिनच् (वा०) से इनच्। (२) **किंनाम०**--किस नाम वाला। किं नामधेयं यस्य सः, बहु०। (३) **अनुभाव०**--प्रभाव के सौन्दर्यमात्र से जिसकी सुन्दर शोभा शेष है। अनुभावस्य सौभाग्यम् (तत्पु०), तन्मात्रेण परिशेषा सुन्दरी श्रीः यस्य सः, बहु०। (४) **मूर्च्छन्**--मूर्च्छित होते हुए। मूर्च्छ्+शतृ+प्र० एक०। (५) **प्ररुदितेन**--रोते हुए। प्ररुदित--प्र+रुद्+क्त। यहाँ पर आदिकर्म में क्त प्रत्यय है। (६) **आलिखितः**--चित्रित हैं। आ+लिख्+क्त। (७) **शैलः**--पर्वत। शिलानाम् अयम्, शिला+अण्। (८) **ककुभ०**--अर्जुनवृक्ष के फूलों से सुगन्धित। ककुभैः सुरभिः, तत्पु०। ककुभ--अर्जुन वृक्ष के फूल। ककुभानां पुष्पाणि ककुभानि, ककुभ+अण और अण का लोप। पुष्पमूलेषु

बहुलम् (वा०) से अण् का लोप। (९) **माल्यवान्**--यह पर्वत का नाम है। यह संभवतः किष्किन्धा के निकट था और प्रस्रवण पर्वतमाला की एक चोटी थी। (देखो रामायण किष्किन्धा० २७-३१, ३२)। (१०) **तोयवाहः**--बादल। तोयं वहति इति, तोय+वह्+अण्, कर्मण्यण् (३-२-१) से अण्। (११) **विरम०**--रुको रुको। वि+रम्+लोट्+म० पु० एक०। वि+रम् परस्मैपदी हो जाती है, व्याङ्परिभ्यो रमः (१-३-८३) से। यहाँ संभ्रम अर्थ में द्विरुक्ति है। (१२) **प्रत्यावृत्तः**--लौट आया है। प्रति+आ+ वृत्+क्त। (१३) **जानकी०**--सीता से वियोग। जानक्याः विप्रयोगः, तत्पु०। विप्रयोग--वि+प्र+युज्+घञ्। (१४) प्रत्यावृत्त इव में क्रिया की उत्प्रेक्षा होने से उत्प्रेक्षा अलंकार है।

१०३. लक्ष्मणः--अतः परमार्यस्य तत्रभवतां कपिराक्षसानां चापरिसंख्यान्युत्तरोत्तराणि कर्माश्चर्याणि। परिश्रान्ता चेयमार्या। तद् विज्ञापयामि विश्राम्यतामिति।

लक्ष्मण--इसके बाद आर्य के और वानरगण तथा राक्षसों के असंख्य अत्युत्कृष्ट आश्चर्यजनक कार्य हैं। यह आर्या (सीता) भी थक गई हैं। इसलिए मेरा निवेदन है कि आप विश्राम करें।

१०४. सीता--आर्यपुत्र, एतेन चित्रदर्शनेन प्रत्युपन्नदोहदाया मम विज्ञापनीयमस्ति। [अज्जउत्त, एदिणा चित्तदंसणेण पच्चुप्पण्णदोहलाए मए विण्णावणिज्जं अत्थि।]

सीता--आर्यपुत्र, इस चित्र-दर्शन से मुझे अभिलाषा उत्पन्न हो गई है, अतः मैं कुछ निवेदन करना चाहती हूँ।

१०५. रामः--नन्वाज्ञापय।

राम--अच्छा, आज्ञा दीजिए।

१०६. सीता--जाने पुनरपि प्रसन्नगम्भीरासु वनराजिषु विहृत्य पवित्रनिर्मलशिशिरसलिलां भगवतीं

भागीरथीमवगाहिष्ये इति । [जाणे पुणो वि पसण्णगंभीरासु वणराईसु विहरिअ पवित्तणिम्मलसिसिरसलिलं भअवदिं भाईरहिं ओगाहिस्सं ति ।]

सीता--मैं विचार करती हूँ कि फिर मनोहर और गंभीर वन-पंक्तियों में विहार करके पवित्र, निर्मल और शीतल जलवाली भगवती गंगा में स्नान करूँ ।

१०७. रामः--वत्स लक्ष्मण !

राम--वत्स लक्ष्मण !

१०८. लक्ष्मणः--एषोऽस्मि ।

लक्ष्मण--मैं यह उपस्थित हूँ ।

१०९. रामः--वत्स, अचिरादेव संपादनीयोऽस्या दोहद इति संप्रत्येव गुरुभिः संदिष्टम् । तदस्खलितसंपातं रथमुपस्थापय ।

राम--वत्स, अभी गुरुओं ने सन्देश दिया है कि--'इस (गर्भिणी सीता) की इच्छा शीघ्र ही पूरी करनी चाहिए ।' अतः अबाध-गति से चलने वाले रथ को उपस्थित करो ।

११०. सीता--आर्यपुत्र, युष्माभिरप्यागन्तव्यम् ।
[अज्जउत्त, तुम्हेहिं वि आअंदव्वं ।]

सीता--आर्यपुत्र, आप भी चलिएगा ।

१११. रामः--अतिकठिनहृदये, एतदपि वक्तव्यम् ?

राम--हे अत्यन्त कठोर हृदय वाली, क्या यह भी कहने की बात है ?

११२. सीता--तेन हि प्रियं मे । [तेण हि पिअं मे ।]

सीता--तो यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है ।

११३. लक्ष्मणः--यदाज्ञापयत्यार्यः ।

(इति निष्क्रान्तः ।)

लक्ष्मण—जो आपकी आज्ञा।

(प्रस्थान)

टिप्पणी

(१) **अपरिसंख्यानि**—असंख्य। अविद्यमाना परिसंख्या येषां तानि, बहु०। (२) **उत्तरोत्तराणि**—अत्युत्कृष्ट। उत्तरेभ्यः उत्तराणि, तत्पु०। (३) **कर्माश्चर्याणि**—कार्यों से आश्चर्यजनक। कर्मभिः आश्चर्याणि, तत्पु०। आश्चर्य–आ+चर्+यत्। आश्चर्यमनित्ये (६–१–१४७) से आ के बाद स्। (४) **परिश्रान्ता**—थकी हुई। परि + श्रम् + क्त + टाप्। (५) **विश्राम्यताम्**—विश्राम कीजिए। (६) **प्रत्युत्पन्न०**—उत्पन्न हो गई है इच्छा जिसको। प्रत्युत्पन्नः दोहदः यस्याः तस्याः, बहु०। दोहद—गर्भिणी स्त्री की इच्छा को कहते हैं। प्रत्युत्पन्न—प्रति+उद्+पद्+क्त। (७) **विज्ञापनीयम्**—निवेदन करना है। वि+ज्ञा+णिच्+अनीय। (८) **जाने**—मैं समझती हूँ। ज्ञा+लट् उ०पु० एक०, आत्मनेपदी का यह रूप है। (९) **प्रसन्न०**—सुन्दर और गम्भीर। प्रसन्नाश्च ताः गम्भीराः तासु, कर्मधा०। प्रसन्न—स्वच्छ, भयरहित, अतएव मनोहर। प्र+सद्+क्त। (१०) **विहृत्य**—विहार करके। वि+हृ+ल्यप्। (११) **पवित्र०**—पवित्र, निर्मल और शीतल जल वाली। पवित्रं निर्मलं शिशिरं सलिलं यस्याः ताम्, बहु०। (१२) **अवगाहिष्ये**—स्नान करूँगी। अव+गाह्+लृट्+उ०पु० एक०। (१३) **संपादनीयः**—पूरा करना चाहिए। सम्+पद्+णिच्+अनीय। (१४) **गुरुभिः**—गुरुजनों ने। वाक्य संख्या २९ में वर्णन है कि सीता की इच्छा तुरन्त पूरी की जानी चाहिए। उसका ही यहाँ पर उल्लेख है। (१५) **संदिष्टम्**—सन्देश दिया है। सम्+दिश्+क्त। (१६) **अस्खलित०**—अबाधगति से चलने वाले। अस्खलितः संपातः यस्य तम्, बहु०। (१७) **उपस्थापय**—उपस्थित करो, लाओ। उप+स्था+णिच्+लोट्+म० पु० एक०। (१८) **अतिकठिन०**—अति कठोर चित्त वाली। अति कठिनं हृदयं यस्याः सा, तत्संबुद्धौ, बहु०। (१९) **वक्तव्यम्**—कहना चाहिए। वच्+तव्यं। (२०) **प्रियं मे**—यह मेरे लिए प्रिय बात है।

११४. रामः—प्रिये, वातायनोपकण्ठे संविष्टा भव।

राम--प्रिये, खिड़की के पास लेट जाओ।

११५. सीता--एवं भवतु । अपहृतास्मि खलु परिश्रमनिद्रया । [एवं होदु । ओहरिदम्हि खु परिस्सणमणिद्दाए ।]

सीता--ऐसा ही हो। मैं परिश्रम-जन्य निद्रा के वश में हो गई हूँ।

११६ (क). रामः--तेन हि निरन्तरमवलम्बस्व मामत्र शयनाय ।

जीवयन्निव ससाध्वसश्रमस्वेदबिन्दुरधिकण्ठमर्प्यताम् ।
बाहुरैन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रमः ॥३४॥

अन्वय--ससाध्वसश्रमस्वेदविन्दुः ऐन्दवमयूखचुम्बितस्यन्दिचन्द्रमणिहारविभ्रमः जीवयन् इव बाहुः अधिकण्ठम् अर्प्यताम् ।

राम--अतः यहाँ सोने के लिए गाढ़ रूप से मेरा सहारा ले लो।

भय और परिश्रम के कारण पसीने की बूँदों से युक्त, चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से पिघलने वाले चन्द्रकान्त मणि के हार के तुल्य विलास वाली और मानों मुझे जीवन प्रदान करने वाली (अपनी) भुजा को (मेरे) गले में डाल दो ॥३४॥

संस्कृत-व्याख्या

ससाध्वस०--साध्वसं भयं श्रमः प्रयासः ताभ्यां ये स्वेदबिन्दवः घर्मबिन्दवः तैः सहितः युक्तः, ऐन्दव०--ऐन्दवाः चन्द्रसंबन्धिनः ये मयूखाः किरणाः तैः चुम्बितः स्पृष्टः अतएव स्यन्दी नीरस्रावसमन्वितः यः चन्द्रमणिहारः चन्द्रकान्तमणिनिर्मितहारः इव विभ्रमो विलासो यस्य सः, जीवयन् इव--जीवनप्रदानं कुर्वन् इव, बाहुः--भुजः, अधिकण्ठम्--मम कण्ठे, अर्प्यताम्--निधीयताम् । अत्र लुप्तोपमोत्प्रेक्षा चालंकारौ । रथोद्धता वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) वातायनो०--खिड़की के समीप। वातायनस्य उपकण्ठे, तत्पु०। वातायन--खिड़की, वातस्य अयनं प्रवेशः यस्मात् तत्, वात+अय्+ल्युट्।

(२) **संविष्टा**––लेटी हुई । सम्+विश्+क्त+टाप् । (३) **अपहृता**–हर ली गई हूँ, वश में हो गई हूँ । अप+हृ+क्त+टाप् । (४) **परिश्रम०**––थकान से उत्पन्न नींद के कारण । परिश्रमस्य निद्रया, तत्पु० । (५) **अवलम्बस्व**––सहारा लो । अव+लम्ब्+लोट्+म० पु० एक० । (६) **शयनाय**––सोने के लिए । शयन––शी+ल्युट् । क्रियार्थोपपदस्य च० (२–३–१४) से चतुर्थी । (७) **जीवयन्**––जीवन का संचार करता हुआ । जीव्+णिच्+शतृ+प्र० एक० । (८) **ससाध्वस०**––भय और परिश्रम से उत्पन्न पसीने की बूदों से युक्त । साध्वसं च श्रमः च साध्वसश्रमौ (द्वन्द्व), साध्वस-श्रमाभ्यां स्वेदविन्दवः (तत्पु०), तैः सहितः, बहु० । (९) **अधिकण्ठम्**––गले में । कण्ठे इति अधिकण्ठम्, अव्ययी० ।(१०) **अर्प्यताम्**––डालो । ऋ+णिच्+कर्मवाच्य लोट्+ प्र० पु० एक० । (११) **ऐन्दव०**––ऐन्दवाः मयूखाः (कर्मधा०), तैः चुम्बितः (तत्पु०), तेन स्यन्दी यः चन्द्रमणिहारः तद्वत् विभ्रमः यस्य सः, बहु० । ऐन्दव––चन्द्रमा-सम्बन्धी । इन्दोः इमे ऐन्दवाः, इन्दु+अण् । मयूख––किरण । चुम्बित––स्पर्श किया गया । चुम्ब्+क्त । स्यन्दी––पिघलने वाला । स्यन्द्+णिनि (इन्), नन्दिग्रहि० (३-१-१३४) से णिनि । चन्द्रमणिहार––चन्द्रकान्त मणि की माला । चन्द्रमा की किरण के स्पर्श से चन्द्रकान्त मणि से बूँदें टपकने लगती हैं । विभ्रम––विलास ।(१२) यहाँ पर मणिहारविभ्रमः में लुप्तोपमा अलंकार है और जीवयन्निव में इव के द्वारा क्रिया की उत्प्रेक्षा होने से उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

११६ (ख) (तथा कारयन् सानन्दम्) प्रिये, किमेतत् ?
विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः ।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च संमीलयति च ।।३५।।

अन्वय––सुखम् इति वा, दुःखम् इति वा, प्रमोहः निद्रा वा, किमु विष-विसर्पः, किमु मदः, (इति) विनिश्चेतुं न शक्यः । हि तव स्पर्शे स्पर्शे परिमूढे-न्द्रियगणः विकारः मम चैतन्यं भ्रमयति च संमीलयति च ।

(वैसा करते हुए आनन्द के साथ) प्रिये, यह क्या बात है ?

यह (विकार) सुख है या दुःख, मूर्च्छा है या निद्रा, विष का प्रसार है या उन्माद ? यह निश्चय नहीं किया जा सकता है। क्योंकि तुम्हारे प्रत्येक स्पर्श में इन्द्रियसमूह को निश्चेष्ट बना देने वाला विकार मेरी चेतना को कभी भ्रान्त बना देता है और कभी नष्टप्राय कर देता है ॥३५॥

संस्कृत-व्याख्या

सुखमिति वा—सुखरूपेण वा, दुःखमिति वा—दुःखरूपेण वा, प्रमोहः—मूर्च्छा, निद्रा वा—सुप्तावस्था वा, किमु—किमिति, विषविसर्पः—गरलप्रसारः, किमु—किमिति, मदः—उन्मादः, इति विनिश्चेतुं—निर्णेतुम्, न शक्यः—न संभाव्यते। हि—यतो हि, तव—सीतायाः, स्पर्शे स्पर्शे—प्रतिस्पर्शम्, परिमूढे०—परिमूढः निश्चेष्टतां प्राप्तः इन्द्रियगणः इन्द्रियसमूहः यस्मिन् सः, विकारः—चेतोविकारः, मम—रामस्य, चैतन्यं—चेतनाम्, भ्रमयति च—भ्रान्तं करोति, संमीलयति च—लोपयति च। अत्र सन्देहो दीपकं चालंकारौ। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **कारयन्**—कराते हुए। कृ+णिच्+शतृ। (२) **किमेतत्**—यह क्या बात है ? अर्थात् मैं अवर्णनीय स्थिति का अनुभव कर रहा हूँ। (३) **विनिश्चेतुम्**—निश्चय करने को। वि+निस्+चि+तुमुन्। (४) **शक्यः**—संभव है। यह विकारः का विशेषण है। (५) **सुखमिति०**—यह विकार सुखरूप है या दुःखरूप, यह निश्चय करना संभव नहीं है। सुख दुःख परस्पर विरोधी हैं। (६) प्रमोहः—मोहावस्था। प्र+मुह्+घञ् (अ)। (७) विषविसर्पः—विष का प्रसार। विषस्य विसर्पः, तत्पु०। विसर्पः—वि+सृप्+घञ् (अ)। (८) **मदः**—उन्माद। मद का लक्षण है—संमोहानन्दसंभेदो मदो मद्योपयोगजः (सा० दर्पण ३–१४६)। (९) **स्पर्शे स्पर्शे**—प्रत्येक स्पर्श में। वीप्सा (पुनः पुनः कहना) अर्थ में द्विरुक्ति। (१०) **परिमूढे०**—इन्द्रिय-समूह को निश्चेष्ट करने वाला। परिमूढः इन्द्रियगणः यस्मिन् सः, बहु०। परिमूढः—परि+मुह्+क्त। (११) **विकारः**—चित्त का विकार। वि+कृ+घञ्। (१२) **चैतन्यम्**—चेतना को। चेतना एव चैतन्यम्, चेतना+ष्यञ् (य)।

स्वार्थ में ष्यञ् प्रत्यय। (१३) भ्रमयति—भ्रान्त बना रहा है। भ्रम्+णिच्+लट्। (१४) संमीलयति—नष्टप्राय कर रहा है। सम्+मील्+णिच्+लट्। (१५) इस श्लोक की प्रथम दो पंक्तियों में शुद्ध सन्देह अलंकार है। विकारः कर्ता और चैतन्यम् कर्म का दो क्रियाओं के साथ सम्बन्ध होने से दीपक अलंकार है। (१६) इस श्लोक में भवभूति ने अपने मनोवैज्ञानिक विवेचन का सुन्दर परिचय दिया है।

११७. सीता—स्थिरप्रसादा यूयम्, इत इदानीं किमपरम्। [त्थिरप्पसादा तुम्हे इदो दाणिं किमवरम्।]

सीता—आप (मुझपर) अचल अनुग्रह वाले हैं, अब इससे अधिक (मुझे) और क्या (चाहिए) ?

११८. रामः—

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
सन्तर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि।
एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि!
कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि ॥३६॥

अन्वय—सरोरुहाक्षि, ते एतानि सुवचनानि म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि, सन्तर्पणानि, सकलेन्द्रियमोहनानि, कर्णामृतानि, मनसः च रसायनानि (सन्ति)।

राम—हे कमललोचने, तुम्हारे ये मधुर वचन मुरझाए हुए जीवनरूपी पुष्प को विकसित करने वाले, सर्वथा तृप्त करने वाले, समस्त इन्द्रियों के मोहक, कानों के लिए अमृतस्वरूप और मन के लिए रसायन के समान हैं ॥३६॥

संस्कृत-व्याख्या

हे सरोरुहाक्षि—हे कमललोचने, ते—तव सीतायाः, एतानि—पूर्वोक्तानि, सुवचनानि—मधुरवचनानि, म्लानस्य—शुष्कप्रायस्य, जीवकुसुमस्य—जीवन-पुष्पस्य, विकासनानि—विकासकारणानि, सन्तर्पणानि—सर्वथा तृप्तिजनकानि, सकले०—सर्वेन्द्रियमोहकानि, कर्णामृतानि—श्रोत्रयोः सुधास्वरूपाणि, मनसः

च—चित्तस्य च, रसायनानि—रसायनवत् बलवर्धकानि सन्ति। अत्र रूपकमलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) स्थिरप्रसादाः—अचल अनुग्रह वाले। स्थिरः प्रसादः येषां ते, बहु०। प्रसाद—प्र+सद्+घञ्। (२) इत०—मुझे इससे अधिक और क्या चाहिए? (३) म्लानस्य—मुरझाए हुए। म्लान—म्लै (म्ला)+क्त। त को न। (४) जीवकुसुमस्य—जीवनरूपी फूल के। जीवः एव कुसुमं तस्य, कर्मधा०। (५) विकासनानि—विकसित करने वाले। विकासयति इति विकासनम्। वि+कस्+णिच्+ल्युट् (अन)। कर्ता अर्थ में ल्युट्। (६) सन्तर्पणानि—पूर्णतया तृप्त करने वाले। सन्तर्पयति इति सन्तर्पणम्। सम्+तृप्+णिच्+ल्युट् (अन)। कर्ता अर्थ में ल्युट्। (७) सकले०—समस्त इन्द्रियों को मुग्ध करने वाले। सकलेन्द्रियाणां मोहनानि, तत्पु०। मोहयति इति मोहनम्। मुह्+णिच्+ल्युट् (अन)। कर्ता अर्थ में ल्युट्। (८) सरोरुहाक्षि—कमल के तुल्य नेत्रों वाली। सरोरुहाक्षी—सरोरुहे इव अक्षिणी यस्याः सा, बहु०। समास होने पर बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः० (५-४-११३) से समासान्त षच् (अ) प्रत्यय। सरोरुहाक्षि+अ। इ का लोप। स्त्रीलिंग म षित् होने से षिद्गौरादिभ्यश्च (४-१-४१) से ङीष् (ई)। (९) कर्णामृतानि—कानों के लिए अमृत। कर्णयोः अमृतानि, तत्पु०। (१०) रसायनानि—रसायन के सदृश। जगद्धर ने मालतीमाधव (६-८) में रसायन की व्याख्या की है कि—आय्यते आनीयतेऽनेनेत्यायनम्। रसस्यायनं रसायनम्। रस का अर्थ पारद (पारा) है। रस जिसके द्वारा पहुँचाया जाता है। पारे को बलवर्धक और दीर्घायुकारक माना गया है। जिस ओषधि से वृद्धावस्था और रोगों को नष्ट कर सकते हैं, उसे रसायन कहते हैं। यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद् रसायनम्। चरक। (११) सीता के वचनों पर रसायन का आरोप करने से रूपक अलंकार है।

११९. सीता—प्रियंवद, एहि, संविशावः। [पिअंवद, एहि, संविसम्ह।]

(इति शयनाय समन्ततो निरूपयति ।)

सीता—हे प्रियवादिन्, आइए, लेटें ।

(यह कहकर सोने के लिए चारों ओर स्थान देखती है ।)

१२०. रामः—अयि, किमन्वेष्टव्यम् ?

आ विवाहसमयाद् गृहे वने
शैशवे तदनु यौवने पुनः ।
स्वापहेतुरनुपाश्रितोऽन्यया
रामबाहुरुपधानमेष ते ॥३७॥

अन्वय—आ विवाहसमयात् शैशवे गृहे तदनुं पुनः यौवने वने स्वापहेतुः अन्यया अनुपाश्रितः एष रामबाहुः ते उपधानम् (अस्ति) ।

राम—हे प्रिये, क्या ढूँढ़ रही हो ?

विवाह के समय से लेकर बाल्यकाल में, घर में, तत्पश्चात् फिर युवावस्था में और वन में शयन का साधन तथा अन्य स्त्री के द्वारा अनुपयुक्त यह राम की भुजा तुम्हारे लिए तकिए के रूप में उपस्थित है ॥३७॥

संस्कृत-व्याख्या

आ विवाहसमयात्—विवाहकालाद् आरभ्य, शैशवे—बाल्यकाले, गृहे—स्वभवने, तदनु—तत्पश्चात्, पुनः—भूयः, यौवने—युवावस्थायाम्, वने—कानने, स्वापहेतुः—शयनस्योपकरणम्, अन्यया—त्वद्भिन्नया स्त्रिया, अनुपाश्रितः—असेवितः, एषः—अयम्, रामबाहुः—रामस्य भुजः, ते—तव सीतायाः, उपधानम्—उपबर्हः, अस्ति । रथोद्धता वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **प्रियंवद**—प्रिय बोलने वाले । प्रियं वदति इति प्रियंवदः । प्रिय+वद्+खच् (अ) । प्रियवशे वदः खच् (३-२-३८) से खच् (अ) प्रत्यय और अरुर्द्विषद० (६-३-६७) से प्रिय के बाद मुम् (म्) । (२) **संविशावः**—हम दोनों लेटते हैं । सम्+विश्+लट्+उ० पु० द्विव० । (३) **शयनाय**—सोने के

लिए । तुमर्थाच्च भाववचनात् (२-३-१५) से चतुर्थी । (४) **निरूपयति**—देखती है । नि+रूप्+णिच्+लट्, प्र० एक० । (५) **किमन्वेष्टव्यम्**—क्या ढूँढ़ रही हो ? अन्वेष्टव्यम्—अनु+इष्+तव्य । (६) **आ विवाह०**—विवाह के समय से लेकर । आङ् मर्यादा० (१-४-८९) से कर्मप्रवचनीय संज्ञा और पञ्चम्यपाङ्परिभिः (२-३-१०) से पंचमी । (७) **गृहे वने**—घर अर्थात् अयोध्या में तथा वनवास के समय वन में । (८) **शैशवे**—बाल्यावस्था में । शैशवम्—शिशोः भावः, शिशु+अण् (अ) । भाव अर्थ में इगन्ताच्च लघुपूर्वात् (५-१-१३१) से अण् । (९) **तदनु**—उसके बाद । यहाँ पर अनुर्लक्षणे (१-४-८४) से अनु कर्मप्रवचनीय है । कर्मप्रवचनीय० (२-३-८) से तत् में द्वितीया । (१०) **यौवने**—युवावस्था में । यौवनम्—यूनः भावः, युवन्+अण् (अ) । हायनान्तयुवादिभ्योऽण् (५-१-१३०) से अण् । (११) **स्वापहेतुः**—शयन का साधन । स्वापस्य हेतुः, तत्पु० । स्वापः—स्वप्+घञ् । (१२) **अनुपाश्रितः**—न सेवन किया गया । न उपाश्रितः, नञ् तत्पु० । उपाश्रितः—उप+आ+श्रि+क्त । (१३) **रामबाहुः**—राम की भुजा । रामस्य बाहुः, तत्पु० । (१४) **उपधानम्**—तकिया । उपधीयते अस्मिन् शिरः इति, उप+धा+ल्युट् (अन) ।

१२१. सीता—(निद्रां नाटयन्ती) अस्त्येतत्, आर्यपुत्र, अस्त्येतत् । [अत्थि एदं, अज्जउत्त, अत्थि एदं ।]

(इति स्वपिति ।)

सीता—(निद्रा का अभिनय करती हुई) ऐसा ही है, आर्यपुत्र, ऐसा ही है ।

(यह कहकर सो जाती है)

१२२. रामः—कथं प्रियवचना मे वक्षसि प्रसुप्तैव ?

(निर्वर्ण्य, सस्नेहम्)—

इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो-
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः ।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ॥३८॥

अन्वय—इमं गेहे लक्ष्मीः, इयं नयनयोः अमृतवर्तिः, असौ अस्याः स्पर्शः वपुषि बहुलः चन्दनरसः। अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणः मौक्तिकसरः, अस्याः किं न प्रेयः, यदि तु विरहः, परम् असह्यः।

राम--क्या बात है कि यह प्रियवादिनी मेरे वक्षःस्थल पर सो गई है? (देखकर, स्नेहपूर्वक)

यह (सीता) घर में लक्ष्मी (के समान) है, यह नेत्रों के लिए अमृत की शलाका (सींक के समान) है, यह इसका स्पर्श शरीर पर घने चन्दन-रस (के समान) हैं। यह (इसकी) भुजा (मेरे) गले में शीतल और कोमल मोती के हार (के तुल्य) है। इसकी कौन-सी वस्तु प्रियतर नहीं है? परन्तु यदि (इसका) विरह होगा तो वह अत्यन्त असह्य होगा ॥३८॥

संस्कृत-व्याख्या

इयम्—एषा सीता, गृहे—अस्माकं भवने, लक्ष्मीः—श्रीरूपा अस्ति, इयं—सीता, नयनयोः—नेत्रयोः, अमृतवर्तिः—सुधामयी शलाकासदृशा अस्ति, असौ—एषः, अस्याः—सीतायाः, स्पर्शः—गात्रसंसर्गः, वपुषि—शरीरे, बहुलः—घनः, चन्दनरसः—श्रीखण्डद्रवतुल्यः अस्ति। अयम्—एषः, बाहुः—अस्या भुजः, कण्ठे—मम गलप्रदेशे, शिशिर०—शीतलकोमलः, मौक्तिकसरः—मुक्ताहाररूपः अस्ति। अस्याः—सीतायाः, किं—किं वस्तु, न प्रेयः—न प्रियतरम् अस्ति। यदि तु—यदि तर्हि, विरहः—वियोगः, परम्—अत्यधिकम्, असह्यः—सोढुम् अशक्यः। अत्रोल्लेखो रूपकं चालंकारौ। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **नाटयन्ती**—अभिनय करती हुई। नट्+णिच्+शतृ+ङीप् (ई)। बीच में नुम् (न्)। (२) **कथम्**—क्या बात है, आश्चर्य की बात है। कथम् आश्चर्यसूचक है। (३) **प्रियवचना**—प्रिय बोलनेवाली। प्रियं वचनं यस्याः सा, बहु०। (४) **प्रसुप्तैव**—सो ही गई। एव राम के विस्मय को प्रकट करता है। प्रसुप्ता—प्र+स्वप्+क्त+टाप्। वचिस्वपि० (६-१-१५) से संप्रसारण। (५) **निर्वर्ण्य**—देखकर। निर्+वर्ण्+णिच्+ल्यप्। (६) गेहे०—यह मेरे घर में लक्ष्मी के तुल्य है। (७) **अमृत०**—मेरे नेत्रों के लिए अमृत की सींक के तुल्य है। अमृतस्य वर्तिः, तत्पु०। वर्तिः—शलाका, सींक।

(८) **नयनयोः**––नेत्रों के लिए। विषय अर्थ में सप्तमी। (९) **स्पर्शः**–– स्पर्श। स्पृश्+घञ् (अ)। (१०) **बहुलः**––घना। (११) **चन्दनरसः**––चन्दन का रस या लेप। चन्दनस्य रसः, तत्पु०। (१२) **शिशिरमसृणः**––शीतल और कोमल। शिशिरः चासौ मसृणश्च, कर्मधा०। (१३) **मौक्तिकसरः**––मोती की माला। मौक्तिकस्य सरः, तत्पु०। मुक्ता एव मौक्तिकम्, मुक्ता+ठक् (इक)। स्वार्थ में ठक् (इक)। 'क्वचित् स्वार्थिकाः प्रकृतितो लिङ्गवचनान्यतिवर्तन्ते' नियम से मौक्तिक नपुं० है। (१४) **प्रेयः**––प्रियतर। अतिशयेन प्रियं प्रेयः, प्रिय+ईयसुन् (ईयस्)। प्रिय को प्रियस्थिर० (६–४–१५७) से प्र। प्रेयस् का नपुं० का रूप है। (१५) **यदि०**––यदि सीता से कभी विरह हुआ तो वह सर्वथा असह्य होगा। यदि––पक्षान्तर का सूचक है। परम्––अत्यधिक। (१६) **असह्यः**––असहनीय। न सह्यः, सह्+यत् (य)––सह्यः, नञ् तत्पु०। शकिसहोश्च (३-१-९९) से योग्य अर्थ में यत्। (१७) प्रथम चरण में सीता का अनेक प्रकार से उल्लेख होने से उल्लेख अलंकार है। द्वितीय और तृतीय चरण में स्पर्श और बाहु पर चन्दनरस और मौक्तिकसर का आरोप होने से रूपक अलंकार है। वामन ने काव्यालंकारसूत्रवृत्ति (४-३-६) में इस श्लोक को रूपक का उदाहरण प्रस्तुत किया है। (१८) यह श्लोक सीता के प्रति राम के अतिशय अनुराग की व्यंजना करता है।

(प्रविश्य)

१२३. प्रतिहारी––देव, उपस्थितः। [देव, उवट्ठिदो।]

(प्रविष्ट होकर)

प्रतीहारी––महाराज, उपस्थित है।

१२४. रामः––अयि, कः ?

राम––अरे, कौन ?

१२५. प्रतीहारी––आसन्नपरिचारको देवस्य दुर्मुखः।
[आसण्णपरिआरओ देवस्स दुम्मुहो।]

प्रतीहारी––महाराज का समीपवर्ती सेवक दुर्मुख।

१२६. रामः—(स्वगतम्) शुद्धान्तचारी दुर्मुखः। स मया पौरजानपदेष्वपसर्पः प्रहितः। (प्रकाशम्) आगच्छतु।

(प्रतीहारी निष्क्रान्ता।)

राम—(मन में) दुर्मुख अन्तःपुर में भी आता जाता है। उसको मैंने नागरिक और ग्रामीण जनता में गुप्तचर के रूप में भेजा था। (प्रकट) आने दो।

(प्रतीहारी का प्रस्थान)

टिप्पणी

(१) **प्रतीहारी**—द्वारपालिका स्त्री। भरत ने नाट्यशास्त्र (२४-४४) में प्रतीहारी का लक्षण दिया है—सन्धिविग्रहसंबद्धनानाकार्यसमुत्थितम्। निवेदयन्ति कार्यं याः प्रतीहार्यस्तु ताः स्मृताः॥ प्रति+हृ+घञ् (अ)+ङीष् (ई)। घञ् होने पर उपसर्गस्य० (३-२-१२२) से प्रति के इ को दीर्घ। (२) **उपस्थितः**—उपस्थित है। यहाँ पर उपस्थितः का संबन्ध पूर्वश्लोक के अन्त में कथित विरहः के साथ भी हो सकता है, अर्थात् सीता का विरह उपस्थित है और प्रस्तुत दुर्मुखः उपस्थितः के साथ भी है। इसलिए यहाँ पर 'पताकास्थानक' है। साहित्यदर्पण (६–४५) में पताकास्थानक का लक्षण दिया है—यत्रार्थे चिन्तितेऽन्यस्मिंस्तल्लिङ्गोऽन्यः प्रयुज्यते। आगन्तुकेन भावेन पताकास्थानकं तु तत्॥ उपस्थितः से संकेत मिलता है कि सीता का विरह शीघ्र ही उपस्थित होने वाला है। (३) **आसन्न०**—समीपवर्ती सेवक। आसन्नः चासौ परिचारकः, कमधा०। आसन्न—आ+सद्+क्त। परिचारकः—परि+चर्+ण्वुल् (अक)। (४) **दुर्मुखः**—सेवक का नाम है। दुर्मुख (अशुभ मुँह वाला) का प्रवेश भावी अशुभ की सूचना देता है। (५) **शुद्धान्त०**—अन्तःपुर में विचरण करने वाला। शुद्धान्त—अन्तःपुर। शुद्धान्ते चरति इति, शुद्धान्त+चर्+णिनि (इन्)। (६) **पौर०**—नगरवासी और ग्रामीण जनता में। पौर—पुरे भवाः पौराः, पुर+अण्। जानपद—जनपदे भवाः जानपदाः, जनपद+अण्। पौराः च जानपदाः च तेषु, द्वन्द्व। (७) **अपसर्पः**—गुप्तचर, दूत। अप+सृप्+घञ् (अ)। (८) **प्रहितः**—भेजा। प्र+हि+क्त।

(प्रविश्य)

१२७. दुर्मुखः--(स्वगतम्) हा, कथमिदानीं देवीमन्तरेणेदृशमचिन्तनीयं जनापवादं देवस्य कथयिष्यामि ? अथवा नियोगः खलु मम मन्दभागधेयस्यैषः। [हा, कहं दाणिं देवीं अंतरेण ईरिसं अचिंतणिज्जं जणाववादं देवस्स कहइस्सं ? अहवा णिओओ खु मह मंदभाअहेअस्स एसो ।]

(प्रविष्ट होकर)

दुर्मुख--(मन में) हाय, मैं कैसे इस समय महारानी (सीता) के विषय में इस प्रकार के अचिन्तनीय लोकापवाद को महाराज (राम) के सामने कहूँ ? अथवा मुझ अभागे का यही कर्तव्य है ।

१२८. सीता--(उत्स्वप्नायते) आर्यपुत्र, कुत्रासि ? [अज्जउत्त, कहिं सि ?]

सीता--(स्वप्न में बड़बड़ाती है) आर्यपुत्र, कहाँ हो ?

१२९. रामः--सेयमेव रणरणकदायिनी चित्रदर्शनाद्विरहभावना देव्याः स्वप्नोद्वेगं करोति।

(सस्नेहमङ्गमस्याः परामृशन्)

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु य-
द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्रार्थ्यते ।।३९।।

पाठभेद—१२९. काले—अनुगुणम् (अनुकूल), नि० प्रेमसारे (प्रेमरूपी सारभाग में), काले—प्राप्यते (पाया जाता है)।

अन्वय—यत् सुखदुःखयोः अद्वैतम्, सर्वासु अवस्थासु अनुगतम्, यत्र हृदयस्य विश्रामः, यस्मिन् रसः जरसा अहार्यः, यत् कालेन आवरणात्ययात् परिणते स्नेहसारे स्थितम्, तस्य सुमानुषस्य तत् एकं भद्रं कथमपि हि प्रार्थ्यते ।

राम—चित्र के देखने से उत्पन्न यह वही उत्सुकता को करने वाली विरह की भावना है, जो देवी (सीता) को स्वप्न में भी व्याकुल कर रही है ।

(प्रेमपूर्वक सीता के शरीर का स्पर्श करते हुए)

जो (दाम्पत्य भाव) सुख और दुःख में एकरूप रहता है, जो (जीवन की) सभी अवस्थाओं में व्याप्त रहता है, जिसमें हृदय को विश्राम मिलता है, जिसके रस को वृद्धावस्था भी नहीं हर सकती है, जो समयानुसार विवाह से मृत्युपर्यन्त परिपक्व प्रेम के सारभाग में स्थित है, उस दाम्पत्य का वह अनिर्वचनीय और विलक्षण आनन्द सर्वथा अभीष्ट है ।।३९।।

संस्कृत-व्याख्या

यत्—दाम्पत्यम्, सुखदुःखयोः—सुखे दुःखे च, अद्वैतम्—एकरूपेण वर्तते, सर्वासु—निखिलासु, अवस्थासु—दशासु, अनुगतम्—व्याप्तं वर्तते, यत्र—यस्मिन् दाम्पत्ये, हृदयस्य—चेतसः, विश्रामः—विश्रान्तिः वर्तते, यस्मिन्—दाम्पत्ये, रसः—अनुरागः, जरसा—वृद्धावस्थया, अहार्यः—न हर्तुं शक्यः, यत्—दाम्पत्यम्, कालेन—समयेन, आवरणा०—विवाहादारभ्य मृत्युपर्यन्तम्, परिणते—परिपक्वे, स्नेहसारे—स्नेहस्य सारभागे, स्थितम्—अवस्थितम्, तस्य—पूर्वोक्तस्य, सुमानुषस्य—दाम्पत्यस्य, तत्—अनिर्वचनीयम्, एकं—विलक्षणम्, भद्रं—कल्याणम्, कथमपि—सर्वथा, प्रार्थ्यते—इष्यते । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **देवीमन्तरेण**—देवी के विषय में । अन्तरेण अव्यय के दो अर्थ हैं—बिना, विषय में । अन्तरान्तरेण युक्ते (२-३-४) से द्वितीया । (२) **ईदृशम्**—ऐसे । ईदृश् और ईदृश, दो शब्द हैं । दोनों से यह रूप बन सकता है । ईदृश्—इदम्+दृश्+क्विन् (०) । इदम् को ई । ईदृश—इदम्+दृश्+कञ् (अ) । इदम् को ई । त्यदादिषु० (३-२-६०) से कञ् और क्विन् ।

(३) **जनापवादम्**—अफवाह को । जनानाम् अपवादः तम्, तत्पु० । अपवाद—अप+वद्+घञ् । (४) **देवस्य०**—महाराज से कहूँगा । कथ् धातु के साथ चतुर्थी होनी चाहिए । संवन्धमात्र की विवक्षा में षष्ठी शेषे (२-३-५०) से षष्ठी । (५) **नियोगः**—कर्तव्य । नि+युज्+घञ् । (६) **मन्दभाग्यस्य**—मुझ अभागे का । मन्दं भाग्यं यस्य सः तस्य, बहु० । (७) **उत्स्वप्नायते**—स्वप्न में बड़-बड़ाती है । उत्स्वप्न इव आचरति, उत्स्वप्न+क्यङ (य)+लट् प्र० एक० । कर्तुः क्यङ सलोपश्च (३-१-११) से क्यङ प्रत्यय । उत्स्वप्न यह नामधातु है । (८) **रणरणक०**—उत्कण्ठा को करने वाली । रणरणक—उत्कण्ठा । रणरणकं ददाति इति—रणरणक+दा+णिनि+ङीप् (ई) । ताच्छील्य अर्थ में णिनि । (९) **विरहभावना**—विरह की भावना । विरहस्य भावना, तत्पु० । (१०) **स्वप्नोद्वेगम्**—स्वप्न में व्याकुलता को । स्वप्ने उद्वेगः, तम्, तत्पु० । उद्वेगः—उद्+विज्+घञ् (अ) । (११) **परामृशन्**—छूते हुए । परा+मृश्+शतृ । (१२) **अद्वैतम्**—एकरूप, अभिन्न । अद्वैतम्—द्वयोः भावः द्विता (द्वि+तल्), द्विता एव द्वैतम् (द्विता+अण्, स्वार्थ में), न द्वैतम् अस्मिन्—अद्वैतम् । नञ् बहु० । (१३) **अनुगतम्**—व्याप्त है । अनु+गम्+क्त । (१४) **विश्रामः**—विश्राम । वि+श्रम्+घञ्—विश्रामः । पाणिनीय व्याकरण के अनुसार 'नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः, (७ ३-३४) से वृद्धि का निषेध होने से विश्रम शब्द ही शुद्ध है । विश्राम शब्द इस प्रकार बनाया जा सकता है—श्रम्+घञ्—श्रमः, श्रमः एव श्रामः, श्रम+अण् । प्रज्ञादिभ्यश्च (५-४-३८) से स्वार्थ में अण् । वि+श्रामः—विश्रामः । (१५) **अहार्यः**—न नष्ट करने योग्य । हृ+ण्यत् (य)—हार्यः, न हार्यः, नञ् तत्पु० । (१६) **रसः**—आनन्द, आह्लाद । (१७) **कालेन**—समयानुसार । (१८) **आवरणात्ययात्**—विवाह से लेकर मृत्युपर्यन्त । वरण—विवाह, अत्यय—मृत्यु । वरणं च अत्ययश्च तयोः समाहारः—वरणात्ययम्, (समाहार द्वन्द्व) तद् आरभ्य आवरणात्ययम्, तस्मात् । (१९) **परिणते**—परिपक्व । परिणत—परि+नम्+क्त । (२०) **स्नेहसारे**—प्रेम के सार भाग में । स्नेहस्य सारः तस्मिन्, तत्पु० । (२१) **सुमानुषस्य**—दाम्पत्य का । सुमानुष शब्द का दाम्पत्य अर्थ है । 'सुमानुषं तु दाम्पत्यम्' इति कोशः । शोभनं मानुषं यस्मिन् यत्, बहु० । समास होने पर दाम्पत्य अर्थ में रूढ है । कुछ विद्वानों ने सुमानुष का सौजन्य अर्थ किया है । (२२)

एकम्--विलक्षण, अपूर्व। (२३) प्रार्थ्यते--चाहा जाता है। प्र+अर्थ्+णिच्+कर्मवाच्य लट्, प्र० एक०।

१३०. दुर्मुखः--(उपसृत्य) जयतु देवः। [जेदु देवो।]

दुर्मुख--(पास जाकर) महाराज की जय हो।

१३१. रामः--ब्रूहि यदुपलब्धम्।

राम--जो कुछ ज्ञात किया है, वह बताओ।

१३२. दुर्मुखः--उपस्तुवन्ति देवं पौरजानपदा यथा--विस्मारिता वयं महाराजं दशरथं रामदेवेनेति। [उवट्टुवंति देवं पौरजाणपदा जहा--विसुमराविदा अम्हे महाराअं दसरहं रामदेवेणेत्ति।]

दुर्मुख--नागरिक और ग्रामीण जन महाराज की प्रशंसा करते हैं कि--राजा राम ने हम लोगों से महाराज दशरथ को भी भुलवा दिया है।

१३३. रामः--अर्थवाद एवैषः। दोषं तु मे कथंचित्कथय, येन स प्रतिविधीयते।

राम--यह तो प्रशंसा ही है। मेरा कोई दोष भी बताओ, जिससे उसका प्रतीकार किया जाय।

१३४. दुर्मुखः--(सास्रम्) शृणोतु महाराजः। (कर्णे) एवमिव। [सुणादु महाराओ। (कर्णे) एव्वं विअ।]

दुर्मुख--(आँखों में आँसू भर कर) महाराज, सुनिए। (कान में) इस प्रकार है।

१३५. रामः--अहह, अतितीव्रोऽयं वाग्वज्रः।

(इति मूर्च्छति।)

राम--ओह, यह वाणीरूपी वज्र अत्यन्त तीक्ष्ण है।

(ऐसा कहकर मूर्छित हो जाते हैं।)

१३६ दुर्मुखः––आश्वसितु देवः। [आस्ससदु देवो।]

दुर्मुख—महाराज, धैर्य धारण कीजिए।

टिप्पणी

(१) **उपसृत्य**––पास जाकर। उप+सृ+ल्यप् (य)। (२) **उपलब्धम्**––पाया, ज्ञात किया। उप+लभ्+क्त। (३) **उपस्तुवन्ति**—स्तुति करते हैं, प्रशसा करते हैं। उप+स्तु+लट् प्र० पु० बहु०। (४) **पौरजानपदाः**—नागरिक और ग्रामीण जन। पौराश्च जानपदाश्च, द्वन्द्व०। (५) **विस्मारिताः**—भुलवा दिया है। वि+स्मृ+णिच्+क्त+ पुं०प्र० बहु०। कर्मवाच्य में क्त। राम ने अपने उत्तम कार्यों के द्वारा महाराज दशरथ की स्मृति नष्टप्राय कर दी है। (६) **अर्थवादः**––यह तो प्रशंसा ही है। अर्थवाद यह पूर्वमीमांसा का पारिभाषिक शब्द है। मीमांसादर्शन में विधि और अर्थवाद शब्द परस्पर संबद्ध शब्द हैं। अज्ञात अर्थ के बोधक और आदेशात्मक वैदिक वाक्य को विधि कहते हैं। जैसे––स्वर्गकामो ज्योतिष्टोमेन यजेत। अर्थवाद उस विधि के गुण या दोष का वर्णन करना है। जैसे यज्ञ करने से यह लाभ होगा और यज्ञ न करने से यह हानि। अर्थसंग्रह में विधि और अर्थवाद का लक्षण दिया है—अज्ञातार्थज्ञापको वेदभागो विधिः। प्राशस्त्यनिन्दान्यतरं वाक्यमर्थवादः। अर्थवाद के दो भेद हैं—स्तुति-अर्थवाद, निन्दा-अर्थवाद। यहाँ पर स्तुति-अर्थवाद है। (७) **प्रतिविधीयते**––प्रतीकार किया जाय, निराकरण किया जाय। प्रति+वि+धा+कर्मवाच्य लट् प्र० पु० एक०। (८) **अतितीव्रः**—अत्यन्त तीक्ष्ण। (९) **वाग्वज्रः**––वाणीरूपी वज्र। यह वाणीरूपी वज्र अर्थात् सीता-विषयक निन्दा अत्यन्त असह्य हैं। (१०) **आश्वसितु**––धैर्य-धारण कीजिए। आ+श्वस्+लोट् प्र० पु० एक०। रुदादिभ्यः सार्वधातुके (७-२-७६) से इट् (इ)।

१३७. (क) रामः––(आश्वस्य)

हा हा धिक्परगृहवासदूषणं य-
द्वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः।
एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्विपाका-
दालर्कं विषमिव सर्वतः प्रसृप्तम्॥४०॥

पाठभेद—१३७ (क). मि० असरम् (कस मयण)।

तत्किमत्र मन्दभाग्यः करोमि? (विमृश्य, सकरुणम्) अथवा किमन्यत्।

सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम्।
यत्पूरितं हि तातेन मां च प्राणांश्च मुञ्चता ॥४१॥

अन्वय—हा हा धिक्, वैदेह्याः यत् परगृहवासदूषणम् अद्भुतैः उपायैः प्रशमितम्। दैवदुर्विपाकात् तत् एतत् पुनरपि आलर्कं विषम् इव सर्वतः प्रसृप्तम् ॥४०॥

अन्वय—केनापि कार्येण लोकस्य आराधनं सतां व्रतम्। यत् हि तातेन मां च प्राणान् च मुञ्चता पूरितम्। ॥४१॥

राम—(धैर्य धारण करके)

हाय हाय, धिक्कार है! सीता के दूसरे के घर में निवास से उत्पन्न जिस दोष को अद्भुत (अग्निपरीक्षा आदि) उपायों से शान्त किया था, दुर्भाग्य से वही फिर पागल कुत्ते के विष के तुल्य सर्वत्र फैल गया है ॥४०॥

तो मैं अभागा इस विषय में क्या करूँ? (सोचकर, करुणापूर्वक) अथवा और क्या—

चाहे जो कुछ भी हो, जनता को प्रसन्न रखना सज्जनों का कर्तव्य है, जिसको पिता जी ने मुझे तथा अपने प्राणों को छोड़कर पूरा किया है ॥४१॥

संस्कृत-व्याख्या

हा हा धिक्—विषादस्य विषयोऽयम्, वैदेह्याः—सीतायाः, यत्, परगृह०—परस्य रावणस्य गृहे भवने वासाद् निवासाद् दूषणं दोषः, अद्भुतैः—आश्चर्यजनकैः, उपायैः—अग्निपरीक्षादिभिः साधनैः, प्रशमितं—निराकृतम्, दैवदुर्विपाकात्—भाग्यस्य दुष्परिणामात्, तत्—प्रागनुभूतम्, एतत्—परगृहवासदूषणम्, पुनरपि—भूयोऽपि, आलर्कं—विक्षिप्तकुक्कुरसंवन्धि, विषम् इव—गरलम् इव, सर्वतः—सर्वेषु अङ्गेषु, प्रसृप्तं—व्याप्तम्। उपमाऽलंकारः। प्रहर्षिणी वृत्तम्।

पाठभेद—१३७ (क). नि० परम् (उत्कृष्ट कार्य), नि० तत्प्रतीतम् (उसको प्रसिद्ध किया)।

केनापि—अपूर्वेणापि, कार्येण—कर्मणा, लोकस्य—प्रजानाम्, आराधनम्—अनुरञ्जनम्, सतां—सज्जनानाम्, व्रतं—कर्तव्यम्। यत्—यद् व्रतम्, हि—निश्चयेन, तातेन—पित्रा दशरथेन, मां च—रामं च, प्राणान् च—असून् च, मुञ्चता—त्यजता, पूरितं—संपादितम्। अर्थान्तरन्यासस्तुल्ययोगिता चालंकारौ। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **आश्वस्य**—धैर्य धारण करके। आ+श्वस्—ल्यप् (य)। (२) **हा हा**—यह खेदसूचक अव्यय है। वीप्सा अर्थ में द्विरुक्ति है। (३) **धिक्**—धिक्कार है हमारे भाग्य को। (४) **परगृह०**—दूसरे के घर में निवास से उत्पन्न दोष। परस्य गृहे वासात् दूषणम्, तत्पुरुष। वासः—निवास, वस्+घञ्। दूषणम्—दोष, दुष्+णिच्+ल्युट् (अन)। दोषो णौ (६–४–९०) से उ को दीर्घ। (५) **प्रशमितम्**—शान्त किया था, दूर किया था। प्र+शम्+णिच्+क्त। नोदात्तोपदेशस्य० (७–३–३४) से वृद्धि का अभाव। (६) **अद्भुतैः**—अद्भुत उपायों से। अग्निपरीक्षा आदि उपायों से। (देखो रामायण युद्धकाण्ड सर्ग ११५–११८)। (७) **दैव०**—भाग्य के दुष्परिणाम से। दैवस्य दुर्विपाकात्, तत्पुरुष। दुर्विपाक—दुर्+वि+पच्+घञ्। (८) **आलर्कम्**—पागल कुत्ता-संबन्धी। अलर्क—पागल कुत्ता। अलर्कस्य इदम्—अलर्क+अण् = आलर्कम्। पागल कुत्ते का विष जिस प्रकार सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है, उसी प्रकार सीता-विषयक प्रवाद सर्वत्र फैल गया है। (९) **प्रसृप्तम्**—फैल गया है। प्र+सृप्+क्त। (१०) इस श्लोक में उपमा अलंकार है। सीता-विषयक प्रवाद पागल कुत्ते के विष के तुल्य फैल गया है। (११) **विमृश्य**—विचार कर। वि+मृश्+ल्यप्। (१२) **सतां०**—सज्जनों का व्रत है। (१३) **केनापि०**—चाहे जो कुछ भी हो, जैसे भी हो सके वैसे। केनापि के द्वारा संकेत है कि चाहे जो भी कष्ट उठाने पड़ें। (१४) **लोकस्य**—प्रजा का। (१५) **आराधनम्**—प्रसन्न करना। आ+राध्+ल्युट्। (१६) **पूरितम्**—पूरा किया। पूर्+णिच्+क्त। (१७) **प्राणान्**—प्राणों को। प्राण शब्द का नित्य बहुवचनान्त प्रयोग होता है। (१८) **मुञ्चता**—छोड़ते हुए। मुच्+शतृ+तृतीया एक०। लक्षणहेत्वोः० (३-२-१२६) से हेतु अर्थ में शतृ।

(१६) इस श्लोक में उत्तरार्ध विशेष के द्वारा पूर्वार्ध सामान्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। माम् और प्राणान् इन दोनों प्रस्तुतों का मुञ्चता इस एक क्रिया के साथ संबन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है।

१३७ (ख) संप्रत्येव च भगवता वसिष्ठेन संदिष्टम्। अपि च,

यत्सावित्रैर्दीपितं भूमिपालै-
लोकश्रेष्ठैः साधु शुद्धं चरित्रम्।
मत्सम्बन्धात्कश्मला किंवदन्ती
स्याच्चेदस्मिन्हन्त धिङ्मामधन्यम् ॥४२॥

हा देवि देवयजनसम्भवे, हा स्वजन्मानुग्रहपवित्रितवसुन्धरे, हा मुनिजनकनन्दिनि, हा पावकवसिष्ठारुन्धतीप्रशस्तशील-शालिनि, हा राममयजीविते, हा महारण्यवासप्रियसखि, हा तातप्रिये, हा स्तोकवादिनि, कथमेवंविधायास्तवाय-मीदृशः परिणामः?

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे ॥४३॥

(दुर्मुखं प्रति) दुर्मुख, ब्रूहि लक्ष्मणम्। एष नूतनो राजा रामः समाज्ञापयति। (कर्णे) एवमेवम् इति।

अन्वय—लोकश्रेष्ठैः सावित्रैः भूमिपालैः यत् साधु शुद्धं चरित्रं दीपितम्। चेत् अस्मिन् मत्संबन्धात् कश्मला किंवदन्ती स्यात्, हन्त, अधन्यं मां धिक् ॥४२॥

अन्वय—त्वया जगन्ति पुण्यानि, त्वयि जनोक्तयः अपुण्याः। त्वया लोकाः नाथवन्तः, त्वम् अनाथा विपत्स्यसे ॥४३॥

पाठभेद—१३७ (ख). नि० चित्रम् (विचित्र)।

राम—अभी भगवान् वसिष्ठ ने सन्देश भेजा है। और भी—

संसार में श्रेष्ठ सूर्यवंशी राजाओं ने जिस उत्तम और निर्मल चरित्र को प्रकाशित किया है, यदि इस (चरित्र) के विषय में मेरे कारण दूषित किंवदन्ती (अफवाह) फैलती है तो हाय, मुझ अभागे को धिक्कार है ।।४३।।

हा देवि, यज्ञभूमि से उत्पन्न, हा अपने जन्मरूपी अनुग्रह से पृथ्वी को पवित्र करने वाली, हा मुनि जनक को आनन्द देने वाली, हा अग्नि वसिष्ठ और अरुन्धती से प्रशंसित शील वाली, हा राममय जीवन वाली, हा महावन में निवास के समय की प्रिय सखी, हा पिता जी को प्रिय लगनेवाली, हा मितभाषिणी, क्या कारण है कि इन गुणों से युक्त तुम्हारा इस प्रकार का यह (लोकापवादरूपी) परिणाम हुआ है।

(हे देवि,) तुमसे संसार पवित्र है, परन्तु तुम्हारे विषय में लोगों की उक्तियाँ अपवित्र हैं। तुमसे संसार सनाथ है, परन्तु तुम अनाथ होकर विपत्ति झेलोगी ।।४३।।

(दुर्मुख से) दुर्मुख, लक्ष्मण से कहो—यह नवीन राजा राम आज्ञा देते हैं। (कान में) ऐसा, ऐसा—।

संस्कृत-व्याख्या

लोकश्रेष्ठैः—जगदुत्कृष्टैः, सावित्रैः—सूर्यवंशोद्भवैः, भूमिपालैः—नृपैः, यत्, साधु—उत्तमम्, शुद्धं—निर्मलम्, चरित्रं—वृत्तम्, दीपितं—प्रकाशितम्, चेत्—यदि, अस्मिन्—ईदृशे चरित्रे, मत्संबन्धात्—मम कारणात्, कश्मला—दूषिता, किंवदन्ती—जनापवादः, स्यात्—भवेत् तर्हि, हन्त—खेदास्पदम् इदं यत्, अधन्यं—भाग्यहीनम्, मां—रामम्, धिक्—धिक्कारोऽस्ति। शालिनी वृत्तम्।

त्वया—जानक्या, जगन्ति—भुवनानि, पुण्यानि—पवित्राणि, (सन्ति, परन्तु) त्वयि—तव विषये, जनोक्तयः—लोकानां वचनानि, अपुण्याः—अपवित्राः सन्ति। त्वया—जानक्या, लोकाः—भुवनानि, नाथवन्तः—सनाथाः सन्ति, (परन्तु) त्वं—सीता, अनाथा—पतिरहिता सती, विपत्स्यसे—विपन्ना भविष्यसि। अत्र विरोधाभासोऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **सन्दिष्टम्**—सन्देश दिया है। सम्+दिश्+क्त। (२) **सावित्रैः**—सूर्यवंशी। सवितुः अपत्यानि पुमांसः—सावित्राः, तैः। सवितृ+

अण्, अपत्य अर्थ में। (३) **दीपितम्**—प्रकाशित किया है। दीप्+णिच्+क्त। (४) **भूमिपालैः**—राजाओं ने। भूमिपालः—भूमिं पालयति इति, भूमि+पाल्+णिच्+अण्। कर्मण्यण् (३-२-१) से अण्। (५) **लोकश्रेष्ठैः**—संसार में श्रेष्ठ। लोकेषु श्रेष्ठैः, तत्पु०। (६) **शुद्धम्**—पवित्र। शुध्+क्त। (७) **मत्संबन्धात्**—मेरे कारण से, मेरी वजह से। मम संबन्धात्, तत्पु०। (८) **कश्मला**—मलिन, कलुषित। कश्मलं मलिनं त्रिषु, इति हेमचन्द्रः। (९) **किंवदन्ती**—अपवाद, अफवाह। किं कुत्सितं वदन्ति जनाः इति। किम्+वद्+झच् (अन्त्)+ङीप् (ई)। (१०) **अधन्यम्**—अभागे को। धन्यः—धने साधुः, धन+यत् (य)। न धन्यः, अधन्यः। (११) रामायण (उत्तरकाण्ड ४५, १२–१४) में कीर्ति के महत्त्व पर राम का कथन है कि—अकीर्तिर्यस्य गीयेत लोके भूतस्य कस्यचित्। पतत्येवाधमान् लोकान् यावच्छब्दः प्रकीर्त्यते॥ अकीर्तिर्निन्द्यते देवैः कीर्तिर्लोकेषु पूज्यते। कीर्त्यर्थं तु समारम्भः सर्वेषां सुमहात्मनाम्॥ (१२) **देव०**—यज्ञभूमि से उत्पन्न। देवा इज्यन्ते अत्र इति देवयजनम्, देवयजनात् संभवः यस्याः सा, तत्संबुद्धिः, बहु०। देवयजनम्—देव+यज्+ल्युट् (अन)। अधिकरण अर्थ में ल्युट्। (१३) **स्वजन्मा०**—अपने जन्मरूपी अनुग्रह से पृथिवी को पवित्र करने वाली। स्वजन्मानुग्रहेण पवित्रिता वसुन्धरा यया सा, तत्संबुद्धिः, बहु०, (१४) **मुनि०**—मुनि जनक को आनन्दित करने वाली। मुनिः जनकः (कर्म०), तस्य नन्दिनी, संबो०, तत्पु०। (१५) **पावक०**—अग्नि, वसिष्ठ और अरुन्धती ने जिसके शील की प्रशंसा की है। पावकश्च वसिष्ठश्च अरुन्धती च (द्वन्द्व), ताभिः प्रशस्तं यत् शीलम् (तत्पु०), तेन शालते इति, संबो०, उपपद समास। पावक...प्रशस्तशील+शाल्+णिनि (इन्)+ङीप्। ताच्छील्य अर्थ में णिनि। (१६) **राममय०**—राममय जीवन वाली। राम एव राममयम्, स्वार्थ में मयट् (मय), राममयं जीवितं यस्याः सा, संबो०, बहु०। (१७) **महारण्य०**–महावन में निवास के समय की प्रिय सखी। महारण्ये वासः, तत्र प्रियसखि, तत्पु०। (१८) **स्तोक०**—कम बोलने वाली। स्तोकं वदति इति, स्तोक+वद्+णिनि+ङीप्, संबो०, ताच्छील्य अर्थ में णिनि। (१९) **परिणामः**—परिणाम, फल। परि+नम्+घञ् (अ)। (२०) **अपुण्याः**—अपवित्र, दूषित। न पुण्याः, नञ् तत्पु०। (२१) **जनोक्तयः**—लोगों के वचन। जनानाम् उक्तयः, तत्पु०। उक्ति—वच्+क्तिन्, संप्रसारण। (२२)

नाथवन्तः—सनाथ, स्वामियुक्त। नाथः अस्ति येषां ते, नाथ+मतुप्+प्र० बहु०। (२३) अनाथा—अनाथ, असहाय। अविद्यमानः नाथः यस्याः सा, बहु०। (२४) विपत्स्यसे—विपत्ति-ग्रस्त होगी। वि+पद्+लृट्, म० एक०। (२५) इस श्लोक में विरोधाभास अलंकार है। सीता से लोक सनाथ हैं, पर वह स्वय अनाथ हो रही है। (२६) नूतनः०—नए राजा राम। नूतनः शब्द से अभिप्राय है कि राम में नया उत्साह है। वह प्रजा को प्रसन्न करने के लिए कोई भी त्याग कर सकते हैं। (२७) समाज्ञापयति—आज्ञा देते हैं। सम्+आ+ज्ञा+णिच्+लट्। (२८) एवमेवम्—ऐसा ऐसा। अर्थात् सीता का परित्याग करना है।

१३८. दुर्मुखः—हा, कथमग्निपरिशुद्धाया गर्भस्थितपवित्र-सन्तानाया देव्या दुर्जनवचनादिदं व्यवसितं देवेन?
[हा, कहं अग्गिपरिसुद्धाए गब्भट्ठिदपवित्तसंताणाए देवीए दुज्जणवअणादो एदं ववसिदं देवेण?]

दुर्मुख—हाय, अग्नि-परीक्षा से विशुद्ध तथा जिसके गर्भ में पवित्र सन्तान विद्यमान है ऐसी महारानी (सीता) के विषय में (किसी) दुर्जन के कथनमात्र से महाराज ने यह (परित्याग का) कैसे निश्चय कर लिया है?

१३९. रामः—शान्तं पापम्, शान्तं पापम्। दुर्जना नाम पौरजानपदाः।

इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः प्रजानां
जातं च दैवाद् वचनीयबीजम्।
यच्चाद्भुतं कर्म विशुद्धिकाले
प्रत्येतु कस्तद्यदि दूरवृत्तम्॥४४॥

तद् गच्छ।

१४०. दुर्मुखः—हा देवि।
(इति निष्क्रान्तः।)

पाठभेद—१३९. काले—कस्तद् ह्यतिदूर० (अतिदूर घटित उस पार कौन)।

अन्वय—इक्ष्वाकुवंशः प्रजानाम् अभिमतः, दैवात् वचनीयबीजं च जातम् । विशुद्धिकाले यच्च अद्भुतं कर्म, तत् यदि दूरवृत्तं, कः प्रत्येतु ।

राम—पाप शान्त हो, पाप शान्त हो । क्या नागरिक और ग्रामीण लोग दुर्जन हैं ?

इक्ष्वाकुवंश प्रजाओं को अभीष्ट है, परन्तु दुर्भाग्य से उसमें निन्दा का कारण उत्पन्न हो गया है । (सीता की अग्नि-परीक्षा के द्वारा) विशुद्धि के समय में जो अद्भुत घटना घटी थी, वह सुदूर स्थान में घटित हुई थी, अतः उस पर कौन विश्वास करता है ? ।।४४।।

इसलिए जाओ ।

दुर्मुख—हा देवि,

(प्रस्थान)

संस्कृत-व्याख्या

इक्ष्वाकुवंशः—इक्ष्वाकुकुलम्, प्रजानां—प्रकृतीनाम्, अभिमतः—अभीष्टः । दैवात्—दुर्भाग्यात्, वचनीयबीजं च—वचनीयस्य निन्दायाः बीजं कारणं च, जातं—समभवत् । विशुद्धिकाले—सीतायाः अग्निपरीक्षया संशुद्धिसमये, यच्च—यत्तु, अद्भुतं—विस्मयजनकम्, कर्म—कार्यमभूत्, अग्नौ प्रविष्टायाः तस्याः केशाग्रमपि न दग्धमित्यर्थः तत् यदि—तत् कर्म तर्हि, दूरवृत्त—दूरदेशे घटितम्, कः—को नरः, प्रत्येतु—विश्वसितु । न कोऽपि विश्वसितीत्यर्थः । अत्र काव्य-लिङ्गमलङ्कारः । इन्द्रवज्रा वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **अग्नि०**—अग्नि-परीक्षा से शुद्ध । अग्नौ परिशुद्धायाः, तत्पु० । (२) **गर्भ०**—जिसके गर्भ में पवित्र सन्तान विद्यमान है । गर्भे स्थितः पवित्रः सन्तानः यस्याः तस्याः, बहु० ।(३) **दुर्जन०**—दुर्जनों के कथन से दुर्जनानां वचनात्, तत्पु० । (४) **इदम्**—यह सीता का परित्यागरूपी कार्य । (५) **व्यवसितम्**—निश्चय किया है । वि+अव+सो (सा)+क्त । सा के आ को इ, द्यतिस्यति० (७-४-४०) से । (६) **शान्तं०**—पाप शान्त हो, अर्थात् ऐसी बात न कहो । (७) **इक्ष्वाकु०**—इक्ष्वाकु—राजाओं का वंश ।

इक्ष्वाकूणां वंशः, तत्पु० । (८) अभिमतः०—प्रजाओं का अभीष्ट है। अभिमतः—अभि+मन्+क्त । यहाँ पर 'मतिबुद्धि०' (३-२-१८८) से पूजार्थ में वर्तमान अर्थ में क्त । क्तस्य च वर्तमाने (२-३-६७) से वर्तमानार्थक क्त प्रत्यय होने से प्रजानाम् में षष्ठी । (९) दैवात्—दुर्भाग्य के कारण । हेत्वर्थ में पंचमी । (१०) वचनीय०—निन्दा का कारण । वचनीयस्य बीजम्, तत्पु० । (११) अद्भुतं०—अद्भुत घटना, अर्थात् सीता का अग्निपरीक्षा में सर्वथा निर्दोष होकर निकलना । (१२) विशुद्धि०—विशुद्धि के समय, अर्थात् अग्नि-परीक्षा के समय । विशुद्धेः काले, तत्पु० । (१३) प्रत्येतु—विश्वास करे । प्रति+ इ+लोट् प्र० एक० । (१४) दूरवृत्तम्—दूर स्थान में घटित घटना । सीता की अग्निपरीक्षा सुदूर स्थान लंका में हुई थी । दूर स्थान पर घटित घटना होने के कारण लोग उस पर विश्वास नहीं कर रहे हैं । दूरे वृत्तम्, तत्पु० । (१५) यहाँ पर 'विश्वास नहीं कर रहे हैं' के प्रति दूरवृत्त होना कारण होने से काव्यलिंग अलंकार है ।

१४१ (क) रामः—हा कष्टम्, अतिबीभत्सकर्मा नृशंसोऽस्मि संवृत्तः ।

शैशवात्प्रभृति पोषितां प्रियां
सौहृदादपृथगाश्रयामिमाम् ।
छद्मना परिददामि मृत्यवे
सौनिके गृहशकुन्तिकामिव ॥४५॥

अन्वय—शैशवात् प्रभृति पोषिताम् सौहृदात् अपृथगाश्रयाम् इमां प्रियां सौनिके गृहशकुन्तिकाम् इव छद्मना मृत्यवे परिददामि ।

राम—हाय, खेद की बात है । मैं अत्यन्त घृणित कार्य करनेवाला घातक (कसाई) हो गया हूँ ।

बाल्यकाल से पाली हुई तथा प्रेम के कारण कभी भी पृथक् न रहने वाली इस प्रिया (सीता) को मैं छल से इसी प्रकार मृत्यु को दे रहा हूँ, जिस प्रकार कोई

पाठभेद—१४१ (क). का० प्रियैः (प्रिय व्यक्तियों के द्वारा), का०, काले—सौनिको (कसाई) ।

बचपन से घर में पाली हुई तथा कभी पृथक् न रहने वाली चिड़िया को कसाई को सौंप देता है। ॥४५॥

संस्कृत-व्याख्या

शैशवात् प्रभृति—बाल्यकालाद् आरम्य, पोषितां—पालिताम्, सौहृदात्—स्नेहात्, अपृथगाश्रयाम्—सदा सहवासिनीम्, इमाम्—एताम्, प्रियां—स्निग्धां सीताम्, सौनिके—प्राणिहिंसाजीविने, गृह०—निजभवनपालितां चटकाम्, इव—यथा, छद्मना—छलेन, मृत्यवे—यमाय, परिददामि—प्रयच्छामि। अत्र पूर्णोपमाऽलङ्कारः। रथोद्धता वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अतिबीभत्स०**—अत्यन्त घृणित कार्य करने वाला, अर्थात् सीता-परित्याग रूपी घृणित काम करने वाला। अतिबीभत्सं कर्म यस्य सः, बहु०। बीभत्स—बध्+सन्+घञ्, करण में। यहाँ पर मान्बधदान्शान्भ्यो० (३-१-६) और बधेश्चित्तविकारे (वा०) से चित्तविकार अर्थ में सन्। (२) **नृशंसः**—हत्यारा, घातक, क्रूरकर्मा। नॄन् शंसति इति, नृ+शंस्+अण्। (३) **शैशवात्०**—बचपन से लेकर। प्रभृति के कारण शैशवात् में पंचमी। (४) **सौहृदात्**—प्रेम के कारण। शोभनं हृदयं यस्य सः—सुहृदयः, सुहृदयस्य भावः—सौहृदम्। सुहृदय+अण्। हायनान्तयुवादिभ्योऽण् (५-१-१३०) से अण्, हृदयस्य हृल्लेख० (६-३-५०) से हृदय को हृद् और तद्धितेष्वचामादेः (७-२-११७) से प्रथम स्वर उ को औ। सुहृद् शब्द से अण् होने पर हृद्भगसिन्ध्वन्ते० (७-३-१९) से दोनों पदों को वृद्धि होने पर सौहार्द रूप बनता है। संस्कृत में सौहृद और सौहार्द दोनों शब्द प्रचलित हैं। (५) **अपृथगा०**—पृथक् न रहने वाली। अपृथक् आश्रयः यस्याः ताम्, बहु०। (६) **छद्मना**—छल से। सीता को स्पष्ट रूप से न बता कर। (७) **सौनिके**—कसाई को। सूना वधस्थानं, तेन दीव्यति व्यवहरति इति सौनिकः। सूना—ठक् (इक)। तेन दीव्यति० (४-४-२) से ठक्। यहाँ पर परिददामि क्रिया के कारण 'सौनिकाय' चतुर्थी होनी चाहिए। इसको व्याकरण-संबन्धी त्रुटि समझनी चाहिए। यहाँ पर चतुर्थी के अर्थ में सप्तमी है। (८) **गृह०**—घर में पाली हुई चिड़िया के तुल्य। गृहपालिता शकुन्तिका—गृहशकुन्तिका। शाकपार्थिवादि होने से

मध्यमपदलोपी समास । शकुन्तिका--बेचारी चिड़िया । शकुन्त एव शकुन्तिका, शकुन्त+क+टाप् । अनुकम्पायाम् (५-३-७६) से अनुकम्पा अर्थ में कन् (क) । (६) यहाँ पर सीता की गृह-शकुन्तिका से उपमा होने से उपमा अलंकार है । उपमान आदि चारों अंग होने से पूर्णोपमा है ।

१४१ (ख) तत्किमस्पृश्यः पातकी देवीं दूषयामि । (इति सीतायाः शिरः समुन्नमय्य बाहुमाकृष्य)

अपूर्वकर्मचण्डालमयि मुग्धे ! विमुञ्च माम् ।
श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम् ।।४६।।

(उत्थाय) हन्त हन्त, सम्प्रति विपर्यस्तो जीवलोकः । अद्यावसितं जीवितप्रयोजनं रामस्य । शून्यमधुना जीर्णारण्यं जगत् । असारः संसारः । काष्ठप्रायं शरीरम् । अशरणोऽस्मि । किं करोमि ? का गतिः ? अथवा---

दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमाहितम् ।
मर्मोपघातिभिः प्राणैर्वज्रकीलायितं हृदि ।।४७।।

अन्वय---अयि मुग्धे, अपूर्वकर्मचण्डालं मां विमुञ्च । चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमं श्रिता असि ।।४६।।

दुःखसंवेदनाय एव रामे चैतन्यम् आहितम् । मर्मोपघातिभिः प्राणैः हृदि वज्रकीलायितम् ।।४७।।

(ख) राम---तो अस्पृश्य पापी मैं देवी को (अपने स्पर्श से) क्यों दूषित करूँ । (यह कहकर सीता के सिर को उठाकर अपना हाथ खींच कर)

हे भोली सीता, तुम असाधारण कार्य के कारण चाण्डाल मुझको छोड़ दो । तुमने चन्दन के भ्रम से दुःखदायी विष के वृक्ष का आश्रय लिया है ।।४६।।

पाठभेद---१४१ (ख). नि० आगतम् (आया है) ।

(उठकर) हाय! अब यह संसार उलट-पलट हो गया है। आज राम के जीवन की आवश्यकता समाप्त हो गई है। अब संसार जीर्ण वन के तुल्य सूना हो गया है। संसार असार हो गया है। शरीर काष्ठवत् हो गया है। मैं (अब) असहाय हूँ। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? अथवा—

दुःख भोगने के लिए ही राम में चेतनता रक्खी गई है। मर्म-स्थलों पर प्रहार करने वाले प्राणों ने हृदय में वज्र की कील के तुल्य कार्य किया है।।४७।।

संस्कृत-व्याख्या

अयि मुग्धे—हे सरलस्वभावे, अपूर्वं०—अपूर्वेण सीतापरित्यागरूपविलक्षणेण कर्मणा कार्येण चाण्डालं महापतितम्, मां—रामम्, विमुञ्च—परित्यज। चन्दन-भ्रान्त्या—श्रीखण्डवृक्षस्य भ्रमेण, दुर्विपाकं—दुष्परिणामम्, विषद्रुमं—विषस्य वृक्षम्, श्रिता असि—गृहीतवती वर्तसे। अत्र निदर्शना काव्यलिङ्गं चालंकारौ श्लोको वृत्तम्।

दुःखसंवेदनाय एव—कष्टभोगार्थम् एव, रामे—मयि दाशरथौ, चैतन्यं—चेतनता, आहितम्—अर्पितं वर्तते। मर्मोप०—हृदयादिमर्मस्थल-प्रहारकैः, प्राणैः—असुभिः, हृदि—हृदये, वज्रकीलायितं—वज्रनिर्मितशङ्कुवत् आचरितम्। अत्रोपमाऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) अस्पृश्यः—न छूने योग्य। न स्पृश्यः, नञ् तत्पुरुष। स्पृश्यः—स्पृश्+क्यप् (य), ऋदुपधाच्चा० (३-१-११०) से क्यप्। (२) पातकी—पापी। पातकम् अस्य अस्ति इति, पातक+इन्, मत्वर्थ में इनि। (३) दूषयामि—दूषित करूँ। दुष्+णिच्+लट्। उ को ऊ। (४) समुन्नमय्य—उठाकर। उत्+नम्+णिच्+ल्यप्। मितां ह्रस्वः (६-४-९२) से ह्रस्व। (५) अपूर्वं०—असाधारण कार्य के कारण चाण्डाल। अपूर्वकर्मणा चाण्डालः, तत्पु०। राम जन्म से चाण्डाल नहीं हैं, परन्तु घृणित कार्य के कारण चाण्डाल हैं। वे जन्म-चाण्डाल न होकर कर्म-चाण्डाल हैं। उन्होंने सीता के साथ विश्वास-घात किया है। (६) विमुञ्च—छोड़ दो। वि+मुच्+लोट् म० एक०। (७) चन्दन०—चन्दन के भ्रम से। चन्दनस्य भ्रान्त्या, तत्पु०। भ्रान्ति—भ्रम्+क्तिन्। (८)

दुर्विपाकम्––दुःखदायी, दुःखद परिणाम वाले। दुष्टः विपाकः यस्य तम्, बहु०। विपाक––वि+पच्+घञ्। (९) **विषद्रुमम्**––विष के वृक्ष को। राम का अभिप्राय है कि मैं विष का वृक्ष हूँ। तुमने मुझे भ्रम से चन्दन समझकर अपनाया है। अतः तुम्हें यह दुःख मिल रहा है। (१०) चन्दन के भ्रम से विषद्रुम का आश्रय लेना असंभव है, अतः यहाँ पर असंभवद्वस्तुसंबन्धरूपी निदर्शना है। विमुञ्च के प्रति उत्तरार्द्ध कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है। (११) **विपर्यस्तः**––उलट गया है। सीता के विषय में लोकापवाद के कारण अब राम के लिए संसार सुखमय न होकर दुःखमय हो गया है। वि+परि+अस्+क्त। (१२) **जीवलोकः**––संसार। जीवानां लोकः, तत्पु०। (१३) **अवसितम्**––समाप्त हो गया है। अव+सो (सा)+क्त। आ को इ। (१४) **जीवित०**––जीवन की उपयोगिता। जीवितस्य प्रयोजनम्, तत्पु०। (१५) **जीर्णा०**––पुराने वन के तुल्य। जीर्णं च तत् अरण्यम्, कर्मधा०। (१६) **असारः संसारः**––संसार निःसार हो गया है। असारः––अविद्यमानः सारः यस्मिन् सः, बहु०। संसारः––संसरति इति, संसरन्ति अस्मिन् इति वा, सम्+सृ+घञ्। (१७) **काष्ठ०**––काष्ठ के तुल्य। काष्ठेन प्रायं तुल्यम् तत्पु०। (१८) **अशरणः**––असहाय। अविद्यमानं शरणं यस्य सः, बहु०। (१९) **दुःख०**––दुःख का अनुभव करने के लिए ही। दुःखस्य संवेदनाय, तत्पु०। संवेदनम्––सम्+विद्+ल्युट्। (२०) **चैतन्यम्**––चेतनता। चेतनस्य भावः, चेतन+ष्यञ्। (२१) **आहितम्**––रक्खी है। आ+धा+क्त। धा को हि। (२२) **मर्मो०**––मर्मस्थलों को चोट पहुँचाने वाले। मर्माणि उपघ्नन्ति इति मर्मोपघातिनः, तैः, उपपद समास। उपघातिन्––उप+हन्+णिनि, ताच्छील्य अर्थ में णिनि। (२३) **वज्र०**––वज्र की कील के तुल्य आचरण किया है। वज्रकीलवद् आचरितम्, वज्रकील+क्यङ (य)+क्त। यहाँ पर कर्तुः क्यङ० (३-१-११) से क्यङ प्रत्यय करके वज्रकीलाय नामधातु बन जाता है, उससे क्त। (२४) वज्रकीलायितम् के द्वारा उपमा अलंकार है। इस श्लोक में राम के हार्दिक दुःख की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

१४१ (ग). हा अम्ब अरुन्धति, भगवन्तौ वसिष्ठ-विश्वामित्रौ, भगवन् पावक, हा देवि भूतधात्रि, हा तात जनक,

हा मातः, हा प्रियसख महाराज सुग्रीव, सौम्य हनूमन्, महोपकारिन् लङ्काधिपते विभीषण, हा सखि त्रिजटे, परिमुषिताः स्थ परिभूताः स्थ रामहतकेन । अथवा को नाम तेषामहमिदानीमाह्वाने ?

ते हि मन्ये महात्मानः कृतघ्नेन दुरात्मना ।
मया गृहीतनामानः स्पृश्यन्त इव पाप्मना ॥४८॥

अन्वय—हि कृतघ्नेन दुरात्मना मया गृहीतनामानः ते महात्मानः पाप्मना स्पृश्यन्ते इव, (इति) मन्ये ।

(ग) राम—हा माता अरुन्धती ! हा भगवान् वसिष्ठ और विश्वामित्र ! हा अग्निदेव ! हा देवी पृथिवी ! हा तात जनक ! हा माता ! हा प्रियमित्र सुग्रीव ! हा सोम्य हनुमान् ! हा महापरोपकारी लंका-पति विभीषण ! हा सखी त्रिजटा ! आप सब लोग पापी राम के द्वारा वंचित और तिरस्कृत किए गए हैं । अथवा अब उनको बुलाने का मुझे क्या अधिकार है ?

क्योंकि कृतघ्न और पापी मेरे द्वारा नाम लिए जाने पर वे पवित्रात्मा पाप से छू से जाते हैं, ऐसा मैं मानता हूँ ॥४८॥

संस्कृत-व्याख्या

हि—यतोहि, कृतघ्नेन—अकृतज्ञेन, दुरात्मना—पापिना, मया—रामेण, गृहीतनामानः—उच्चारितनामधेयाः, ते—पूर्वोक्ताः, महात्मानः—पवित्रात्मानः, पाप्मना—पापेन, स्पृश्यन्ते इव—स्पृष्टा इव भवन्ति, इति—एवम्, मन्ये—अहम् उत्प्रेक्षे । अत्रोत्प्रेक्षाऽलंकारः । श्लोको वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) अरुन्धति—हे अरुन्धती । राम ने यहाँ पर अपने सभी शुभचिन्तकों का स्मरण किया है और कहा है कि उसने सीता-परित्याग के द्वारा सभी शुभ-चिन्तकों का विश्वासघात किया है । वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती ने सीता के सतीत्व का समर्थन किया था । (२) वसिष्ठ०—वसिष्ठ और विश्वामित्र । दोनों राम के कुल-गुरु हैं । वसिष्ठश्च विश्वामित्रश्च, द्वन्द्व । (३) पावक—अग्नि । अग्नि में अग्नि-परीक्षा हुई थी । (४) भूतधात्रि—पृथिवी । प्राणियों को धारण करने वाली । भूतधात्री—भूत+धा+तृ+ङीप् । सीता पृथ्वी की पुत्री

है। (५) **प्रियसख**—प्रिय मित्र। प्रियः चासौ सखा—प्रियसखः, कर्मधा०। प्रिय+सखि+टच् (अ)। राजाहः० (५-४-९१) से समासान्त टच् प्रत्यय। (६) **महाराज**—महाराज। महान् चासौ राजा—महाराजः, कर्मधा०। महत्+राजन्+टच् (अ)। राजाहः० (५-४-९१) से समासान्त टच् प्रत्यय। (७) **महोपकारिन्**—महान् उपकार करने वाले। महत्+उप+कृ+णिनि, ताच्छील्य अर्थ में णिनि। (८) **त्रिजटे**—सखी त्रिजटा। रावण ने सीता को अशोक वाटिका में रखा था। त्रिजटा राक्षसी उसकी सेवा के लिए रक्खी गई थी। वह सात्त्विक प्रकृति की और दयाशील थी। उसने सीता का बहुत उपकार किया था। विशेष विवरण के लिए देखो—रामायण अरण्यकांड सर्ग २७। (९) **परिमुषिताः०**—तुम वंचित किए गए हो। राम ने तुम्हें धोखा दिया है। परिमुषित—परि+मुष्+क्त। (१०) **परिभूताः**—तिरस्कृत। राम ने तुम्हारा तिरस्कार किया है। परिभूत—परि+भू+क्त। (११) **रामहतकेन**—पापी राम के द्वारा। रामश्चासौ हतकः रामहतकः तेन, कर्मधा०। (१२) **को नाम०**—उन्हें पुकारने वाला मैं कौन हूँ, अर्थात् उन्हें पुकारने के योग्य मैं नहीं रह गया हूँ। (१३) **कृतघ्नेन**—कृतघ्न के द्वारा। कृतघ्नः—कृतं हन्ति इति। कृत+हन्+क (अ)। कृतघ्नता का कोई प्रायश्चित नहीं है। ब्रह्मघ्ने च सुरापे च, चौरे च गुरुतल्पगे। निष्कृतिर्विहिता सद्भिः, कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः। (१४) **दुरात्मना**—दुष्टात्मा के द्वारा। दुष्टः आत्मा यस्य तेन, बहु०। (१५) **गृहीत०**—नाम लिए जाने पर। गृहीतानि नामानि येषां ते, बहु०। गृहीत—ग्रह्+क्त। (१६) **स्पृश्यन्ते०**—मानों छूए जाते हैं। स्पृश्+लट्, कर्मवाच्य प्रयोग। (१७) यहाँ पर मन्ये के द्वारा उत्प्रेक्षा अलंकार है।

१४१ (घ). योऽहम्—

विस्रम्भादुरसि निपत्य जातनिद्रा-
मुन्मुच्य प्रियगृहिणीं गृहस्य लक्ष्मीम्।
आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भगुर्वीं
क्रव्याद्भ्यो बलिमिव दारुणः क्षिपामि ॥४९॥

पाठभेद—१४१ (घ). का०, काले—लब्धनिद्राम् (जिसको नींद आ गई है), का०, काले—शोभाम् (शोभास्वरूप), का०, काले—निर्घृणः (निर्दयी)।

(सीतायाः पादौ शिरसि कृत्वा) अयं पश्चिमस्ते रामशिरसा पादपङ्कजस्पर्शः ।

(इति रोदिति ।)

अन्वय—विस्रम्भात् उरसि निपत्य जातनिद्राम्, आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भ-गुर्वीम्, गृहस्य लक्ष्मीं प्रियगृहिणीम् उन्मुच्य दारुणः क्रव्याद्भ्यः बलिम् इव क्षिपामि ।

राम—जो मैं—

विश्वास के कारण मेरे वक्षःस्थल पर लेट कर सोई हुई, उद्वेग के कारण कम्पित पूर्णगर्भ के भार से युक्त, गृह की लक्ष्मी, प्रियगृहिणी सीता का परित्याग करके निर्दय में उसे राक्षसों को बलि के तुल्य दे रहा हूँ ।।४६।।

(सीता के चरणों को सिर पर रखकर) राम के सिर के साथ यह तुम्हारे चरण-कमलों का अन्तिम स्पर्श है ।

(यह कहकर रोते हैं ।)

संस्कृत-व्याख्या

विस्रम्भात्—विश्वासात्, उरसि—मम वक्षःस्थले, निपत्य—पतित्वा, जातनिद्रां—निद्रया वशीभूताम्, आतङ्क०—आतङ्केन उद्वेगेन स्फुरितः प्रकम्पितः कठोरः पूर्णः गर्भः भ्रूणः तेन गुर्वीं भारवतीम्, गृहस्य—मम गेहस्य, लक्ष्मीं—श्रियम्, प्रियगृहिणीं—प्रियां पत्नीम्, उन्मुच्य—परित्यज्य, दारुणः—निर्दयोऽहम्, क्रव्याद्भ्यः—राक्षसेभ्यः, बलिमिव—भोज्यवस्तुवत्, क्षिपामि—प्रयच्छामि । अत्रोपमाऽलङ्कारः । प्रहर्षिणी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) विस्रम्भात्—विश्वास के कारण । हेतु अर्थ में पंचमी । विस्रम्भ—वि+स्रम्भ्+घञ् । (२) निपत्य—लेटकर । नि+पत्+ल्यप् । (३) जातनिद्राम्—जिसको नींद आ गई है । जाता निद्रा यस्याः ताम्, बहु० । (४) उन्मुच्य—छोड़ कर, परित्याग करके । उत्+मुच्+ल्यप् । (५) गृहस्य०—

गृह-लक्ष्मी। सीता घर की लक्ष्मी है। (६) आतङ्क०—आशंका से फड़कते हुए पूर्ण गर्भ के भारवाली। आतङ्केन स्फुरितः (तत्पु०) कठोरः यः गर्भः (कर्मधा०), तेन गुर्वीम्, तत्पु०। आतङ्क—आ+तङ्क+घञ्। गुर्वी—गुरु+ङीप्। वोतो गुण० (४-१-४४) से ङीप्। (७) क्रव्याद्भ्यः—राक्षसों को। क्रव्यात्—कच्चा मांस खाने वाला। क्रव्यम् अत्ति इति, क्रव्य+अद्+विट् (०)। क्रव्ये च (३-२-६९) से विट् प्रत्यय। विट् प्रत्यय का कुछ भी शेष नहीं रहता है। (८) क्रव्याद्भ्यः बलिमिव के द्वारा उपमा अलंकार है। (९) शिरसि०—सिर पर रखकर। यह मुहावरा है। (१०) **पश्चिमः**—अन्तिम। पश्चाद् भवः, पश्चाद्+ डिमच् (इम)। आद् का लोप। अग्रादि-पश्चाद् डिमच् (वा०) से डिमच्। (११) **राम०**—राम के सिर से। रामस्य शिरसा, तत्पु०। सीता के प्रति किए गए अनुचित कार्य की क्षमा माँगने के लिए राम ने सीता के पैरों को शिरोधार्य किया है। (१२) **पाद०**—चरणकमलों के साथ स्पर्श। पादपङ्कजयोः स्पर्शः, तत्पु०। उभयप्राप्तौ कर्मणि (२-३-६६) से रामशिरसा में तृतीया है।

(नेपथ्ये)

१४२. अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम्।

(नेपथ्य में)

ब्राह्मणों के लिए अनर्थ है! ब्राह्मणों के लिए अनर्थ है!

१४३. रामः—ज्ञायतां भोः, किमेतत्?

राम—अरे, पता लगाओ, यह क्या बात है?

(पुनर्नेपथ्ये)

१४४. ऋषीणामुग्रतपसां यमुनातीरवासिनाम्।
लवणत्रासितः स्तोमस्त्रातारं त्वामुपस्थितः ॥५०॥

अन्वय—यमुनातीरवासिनाम् उग्रतपसाम् ऋषीणां स्तोमः लवणत्रासितः (सन्) त्रातारं त्वाम् उपस्थितः।

पाठभेद—१४४. क० क्वचित्—शरण्यं (शरणागत—पालक)।

(फिर नेपथ्य में)

यमुना के तट पर रहने वाले, उग्र तपस्या करने वाले ऋषियों का समूह, लवणनामक राक्षस से भयभीत होकर, रक्षा करने वाले आपके पास आया है ।।५०।।

संस्कृत-व्याख्या

यमुना०—कालिन्दीतटनिवासिनाम्, उग्रतपसां—घोरतपश्चारिणाम्, ऋषीणां—मुनीनाम्, स्तोमः—समूहः, लवण०—लवणासुरेण भयं प्रापितः सन्, त्रातारं—रक्षकम्, त्वां—भवन्तं रामम्, उपस्थितः—संप्राप्तोऽस्ति । श्लोको वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **अब्रह्मण्यम्०**—ब्राह्मणों के लिए अनर्थकारी घटना हो गई है। न ब्रह्मण्यम्, नञ् तत्पु० । ब्रह्मण्यम्—ब्रह्मणे हितम्, ब्रह्मन्+ यत् (य) । इससे ज्ञात होता है कि उस समय ब्राह्मणों का विशेष आदर था और उनके हितों का विशेष ध्यान रक्खा जाता था । (२) **नेपथ्ये**—नेपथ्य में । प्रसाधन-गृह को नेपथ्य कहते हैं । यह नेपथ्य से कही हुई बात है । (३) **उग्र०**—उग्र तपस्या करने वाले । उग्रं तपः येषां तेषाम्, बहु० । (४) **यमुना०**—यमुना के किनारे रहने वाले । यमुनायाः तीरे वसन्ति इति, तेषाम् । यमुनातीर+वस्+णिनि । ताच्छील्य अर्थ में णिनि । (५) **लवण०**—लवण राक्षस से डराया हुआ । लवणेन त्रासितः, तत्पु० । त्रासितः—त्रस्+णिच्+क्त । (६) **स्तोमः**—समूह । (७) **त्रातारम्**—रक्षक तुम्हारे पास । त्राता—त्रै (त्रा)+तृच् । (८) **उपस्थितः**—आया है । उप+स्था+क्त । उप+स्था सकर्मक है ।

१४५. रामः—कथमद्यापि राक्षसत्रासः? तद्यावदस्य दुरात्मनो माधुरस्य कुम्भीनसीकुमारस्योन्मूलनाय शत्रुघ्नं प्रेषयामि । (परिक्रम्य पुनर्निवृत्य) हा देवि, कथमेवंविधा गमिष्यसि ? भगवति वसुन्धरे, सुश्लाघ्यां दुहितरमवेक्षस्व जानकीम् ।

जनकानां रघूणां च यत्कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम् ।
यां देवयजने पुण्ये पुण्यशीलामजीजनः ।।५१।।

(इति रुदन्निष्क्रान्तः ।)

अन्वय——यत् जनकानां रघूणां च कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम्, पुण्यशीलां यां पुण्ये देवयजने (त्वम्) अजीजनः।

राम——क्या आज भी राक्षसों का भय है? अच्छा, कुम्भीनसी के पुत्र इस दुरात्मा मधुरा (मथुरा)-पति लवण को नष्ट करने के लिए शत्रुघ्न को भेजता हूँ। (घूम कर और फिर लौटकर) हाय देवी, ऐसी अवस्था में तुम कैसे जाओगी? भगवती पृथिवी, तुम अपनी प्रशंसनीय पुत्री जानकी की देखभाल करना।

जो (जानकी) जनकवंशियों और रघुवंशियों के लिए समस्त वंश की मंगल-स्वरूप है और पवित्र स्वभाव वाली जिस (सीता) को शुभ यज्ञभूमि में (तुमने) जन्म दिया है (उसकी रक्षा करना) ॥५१॥

(यह कह कर रोते हुए प्रस्थान)

संस्कृत-व्याख्या

यत्——यत् जानकीरूपं वस्तु, जनकानां——जनकवंशजानाम्, रघूणां च——रघुवंशजानां च, कृत्स्न——समग्रम्, गोत्र०——गोत्रयोः वंशयोः मङ्गलं कल्याण-स्वरूपम्। पुण्यशीलां——पवित्रस्वभावाम्, यां——जानकीम्, पुण्ये——शुभे, देवयजने——यज्ञभूमौ, त्वम्, अजीजनः——उत्पादितवती, तां जानकीम् अवेक्षस्व। अत्र रूपकमलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **राक्षस०**——राक्षसों का भय। राक्षसेभ्यः त्रासः, तत्पु०। त्रासः——त्रस्+घञ्। (२) **माधुरस्य**——मथुरा के स्वामी। मधुरा निवासः अस्य माधुरः। मधुरा+अण्, सोऽस्य निवासः (४-३-८९) से अण्। लवण राक्षस मधुरा (मथुरा) का राजा था। इसकी माता का नाम कुम्भीनसी था और पिता का नाम मधु। इसके पिता के नाम पर ही मधुरा (मथुरा) और मधुवन नाम मथुरा का पड़ा था। कुम्भीनसी रावण की बहिन थी। लवण राक्षस की राजधानी मथुरा थी। शत्रुघ्न ने इस लवण राक्षस को मारकर यमुना के किनारे अपना राज्य स्थापित किया था। विशेष विवरण के लिए देखो——रामायण उत्तरकाण्ड सर्ग ६१ से ७०। (३) **कुम्भीनसी०**——कुम्भीनसी के पुत्र। कुम्भीनस्याः कुमारस्य, तत्पु०। (४) **उन्मूलनाय**——नष्ट करने के लिए। तुमर्थाच्च०

(२-३-१५) से तुमुन् के अर्थ में चतुर्थी। (५) **प्रेषयामि**—अभी भेजता हूँ। यहाँ पर यावत्पुरा० (३-३-४) से यावत् के कारण लट् लकार। प्र+इष्+णिच्+लट् उ० एक०। (६) **सुश्लाघ्याम्**—प्रशंसनीय। सुश्लाघाम् अर्हति इति, सुश्लाघा+यत् (य)+टाप् द्वि०। (७) **अवेक्षस्व**—देखभाल करना। अव+ईक्ष्+लोट् म० एक०। (८) **जनकानाम्**—जनकवंशियों का। (९) **रघूणाम्**—रघुवंशियों का। (१०) **गोत्र०**—कुल के लिए कल्याणस्वरूप। गोत्रस्य मङ्गलम्, तत्पु०। जो दोनों कुलों का कल्याण करने वाली है। (११) **देवयजने**—यज्ञभूमि में। देवाः इज्यन्ते यत्र तस्मिन्, देव+यज्+ल्युट्। अधिकरण अर्थ में ल्युट्। (१२) **अजीजनः**—उत्पन्न किया। जन्+णिच्+लुङ म० एक०। (१३) सीता पर गोत्रमङ्गल होने का आरोप होने से रूपक अलंकार है।

१४६. सीता—हा सौम्य आर्यपुत्र, कुत्रासि? (इति सहसोत्थाय) हा धिक्, हा धिक्, दुःस्वप्नरणरणकविप्रलब्धा आर्यपुत्रशून्यमिवात्मानं पश्यामि। (विलोक्य) हा धिक् हा धिक्, एकाकिनीं प्रसुप्तां मामुज्झित्वा कुत्र गतो नाथः? भवतु, तस्मै कोपिष्यामि यदि तं प्रेक्षमाणा आत्मनः प्रभविष्यामि। कोऽत्र परिजनः? [हा सोम्ह अज्जउत्त, कहिं सि? (इति सहसोत्थाय) हद्धी हद्धी, दुस्सिविणरणरणअविप्पलद्धा अज्जउत्तसुण्णं विव अत्ताणं पेक्खामि। (विलोक्य) हद्धी हद्धी, एआइणिं पसुत्तं मं उज्झिअ कहिं गदो णाहो? होदु, से कुपिस्सं जइ तं पेक्खंती अत्तणो पहविस्सं, को एत्थ परिअणो?]

सीता—हा सौम्य आर्यपुत्र, आप कहाँ हैं? (यह कहती हुई सहसा उठकर) हा धिक्कार है, हा धिक्कार है, दुःस्वप्न में (विरह-जन्य) उत्कण्ठा से वंचित होकर मैं अपने आपको आर्यपुत्र से वियुक्त सी अनुभव कर रही हूँ। (देखकर) हा धिक्कार है, हा धिक्कार है, मुझे अकेली सोती हुई छोड़कर स्वामी कहाँ चले

गए ? अच्छा, यदि उन्हें देखकर अपने आपको वश में रख सकी तो उन पर क्रोध करूँगी । यहाँ पर कौन सेवक है ?

(प्रविश्य)

१४७. दुर्मुखः--देवि, कुमारलक्ष्मणो विज्ञापयति--'सज्जो रथः । तदारोहतु देवी' इति । [देवि, कुमारलक्खणो विण्णवेदि--'सज्जो रहो । तं आरुहदु देवी' त्ति ।]

(प्रविष्ट होकर)

दुर्मुख—देवी, कुमार लक्ष्मण निवेदन करते हैं कि—रथ तैयार है । आप उस पर चढ़िए ।

१४८. सीता--इयमारूढास्मि । (उत्थाय परिक्रम्य) स्फुरति मे गर्भभारः । शनैर्गच्छामः । [इअं आरूढम्हि । (उत्थाय परिक्रम्य) फुरइ मे गब्भभारो । सणिअं गच्छम्ह ।]

सीता—मैं अभी चढ़ती हूँ । (उठकर और थोड़ा घूमकर) मेरा गर्भ का भार (गर्भस्थ शिशु) फड़क रहा है । धीरे-धीरे चलते हैं ।

१४९. दुर्मुखः--इत इतो देवी । [इदो इदो देवी।]

दुर्मुख—आप इधर से चलिए, इधर से ।

१५०. सीता--नमो रघुकुलदेवताभ्यः । [णमो रहुउल-देवदाणं] ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते चित्रदर्शनो नाम प्रथमोऽङ्कः ।।१।।

सीता—रघुकुल के देवताओं को नमस्कार है ।

(सबका प्रस्थान)

महाकवि श्री भवभूति-विरचित उत्तररामचरित में चित्रदर्शन नामक प्रथम अंक समाप्त हुआ ।।१।।

टिप्पणी

(१) **दुःस्वप्न०**—दुःस्वप्न में वियोग-जन्य उत्कण्ठा से वंचित होकर। दुःस्वप्ने रणरणकः (तत्पु०), तेन विप्रलब्धा, तत्पु०। रणरणक—उत्कण्ठा। विप्रलब्धा—ठगी गई। वि+प्र+लभ्+क्त+टाप्। (२) **आर्यपुत्र०**—राम सें रहित। आर्यपुत्रेण शून्यम्, तत्पु०। (३) **एकाकिनीम्**—अकेली, असहाय। एकाकिन्+ङीप्। (४) **प्रसुप्ताम्**—सोई हुई। प्रसुप्ता—प्र+स्वप्+क्त+टाप्। (५) **उज्झित्वा**—छोड़कर। उज्झ्+क्त्वा। (६) **तस्मै०**—उन पर क्रोध करूँगी। क्रुधद्रुहेर्ष्या० (१-४-३७) से चतुर्थी। (७) **प्रेक्षमाणा**—देखती हुई, अर्थात् देखकर। प्र+ईक्ष्+शानच्+टाप्। (८) **आत्मनः**—यदि अपने आपको संभाल सकी तो। यहाँ पर अधीगर्थदयेशां० (२-३-५२) से षष्ठी। (९) **विज्ञापयति**—निवेदन करते हैं। वि+ज्ञा+णिच्+लट्। णिच् होने पर बीच में प् का आगम। (१०) **आरूढा०**—अभी चढ़ती हूँ। आरूढा—आ+रुह्+क्त+टाप्। (११) **उत्थाय**—उठकर। उद्+स्था+ल्यप्। (१२) **परिक्रम्य**—चारों ओर घूमकर। परि+क्रम्+ल्यप्। (१३) **स्फुरति**—फड़क रहा है। (१४) **गर्भभारः**—गर्भ का भार। गर्भस्य भारः, तत्पु०। (१५) **रघुकुल०**—रघुकुल के देवताओं को नमस्कार है। नमः के कारण चतुर्थी, नमःस्वस्ति० (२-३-१६) से। (१६) **निष्क्रान्ताः**—सबका प्रस्थान। निष्क्रान्त—निस्+क्रम्+क्त। (१७) **चित्रदर्शनः**—इस अंक में चित्रवीथि का दर्शन मुख्य घटना है और उस पर ही इस अंक की कथा अवलम्बित है, अतः इस अंक का नाम 'चित्रदर्शन' है। (१८) **अङ्क**—अंक का लक्षण है—(क) प्रत्यक्षनेतृचरितो रसभावसमुज्ज्वलः। नानाविधानसंयुक्तो नातिप्रचुरपद्यवान्॥ अन्तनिष्क्रान्तनिखिलपात्रोऽङ्क इति कीर्तितः॥ (सा० दर्पण ६-१२,१४, १९)। (ख) एकाहाचरितैकार्थमित्थमासन्ननायकम्॥ पात्रैस्त्रिचतुरैरङ्कं तेषामन्तेऽस्य निर्गमः॥ (दशरूपक ३-३६,३७)। (ग) यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः। किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवगन्तव्यः। (नाटचशास्त्र)।

इत्युत्तररामचरितस्याचार्यकपिलदेवद्विवेदिकृतायां 'भारती' व्याख्यायां प्रथमोऽङ्कः समाप्तः॥

प्रथम अङ्क समाप्त।

(नेपथ्ये)

स्वागतं तपोधनायाः ।

(नेपथ्य में)

तपस्विनी का स्वागत है ।

(ततः प्रविशत्यध्वगवेषा तापसी)

२. तापसी—अये, वनदेवता फलकुसुमगर्भेण पल्लवार्घ्येण दूरान्मामुपतिष्ठते ।

(तदनन्तर पथिक के वेष में तपस्विनी का प्रवेश)

तापसी—अरे, वनदेवता फल, फूल और पल्लव-युक्त अर्घ्य से दूर से ही मेरा स्वागत कर रही है ।

(प्रविश्य)

३. वनदेवता—(अर्घ्यं विकीर्य)

यथेच्छाभोग्यं वो वनमिदमयं मे सुदिवसः

सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति ।

तरुच्छाया तोयं यदपि तपसां योग्यमशनं

फलं वा मूलं वा तदपि न पराधीनमिह वः ॥१॥

अन्वय—इदं वनं वः यथेच्छाभोग्यम्, अयं मे सुदिवसः, हि सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि पुण्येन भवति । तरुच्छाया, तोयं, यदपि तपसां योग्यम् अशनं, फलं वा मूलं वा, तदपि इह वः पराधीनं न ।

(प्रविष्ट होकर)

वनदेवता—(अर्घ्य देकर)

यह वन आपके लिए इच्छानुसार उपभोग के योग्य है । आज का दिन मेरे लिए शुभ दिन है, क्योंकि सज्जनों का सज्जनों से मिलन बड़े पुण्य से होता है ।

पाठभेद ३—का०, काले—यथेच्छं भोग्यं (इच्छानुकूल भोजन), का०, काले—तपसो (तपस्या के लिए) ।

वृक्ष की छाया, जल तथा जो भी तपस्या के योग्य भोजन--फल या मूल (कन्द) है, वह यहाँ पर आपके लिए पराधीन नहीं है। (आप सब चीजों का स्वतन्त्रता से उपभोग कर सकती हैं) ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या

इदम्—एतत् पुरो दृश्यमानम्, वनं—काननम्, वः—युष्माकम्, यथेच्छा०—इच्छानुकूलं भोगार्हम्। अयम्—एष दिवसः, मे—मम, सुदिवसः—शोभनः दिवसः अस्ति, हि—यतो हि, सतां—सज्जनानाम्, सद्भिः—सज्जनैः, सङ्गः—सङ्गमः, कथमपि—महता कष्टेन, पुण्येन—सुकृतेन, भवति। तरुच्छाया—वृक्षस्य छाया, तोयं—जलम्, यदपि—यत् किञ्चिदपि, तपसां—तपस्यानाम्, योग्यम्—अनुकूलम्, अशनं—भोजनम्, फलं वा—वृक्षप्रसवो वा, मूलं वा—कन्दं वा, तदपि—तत् सर्वमपि, इह—अस्मिन् वने, वः—युष्माकम्, पराधीनं—परतन्त्रम्, न—नास्ति। अपि तु सर्वमपि फलादिकं स्वातन्त्र्येण उपभोक्तुं शक्यते। अत्रार्थान्तरन्यासोऽलंकारः। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **तपोधनायाः०**—तपस्विनी का स्वागत है। तपः एव धनं यस्याः तस्याः, तपोधनायाः, बहु०। नेपथ्य से वनदेवता का तापसी के लिए यह कथन है। इससे तापसी का प्रवेश सूचित होता है। इसको 'चूलिका' नामक अर्थोपक्षेपक कहते हैं। चूलिका का लक्षण है—अन्तर्जवनिकासंस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका। (सा० दर्पण ६-५८)। (२) **अध्वग०**—पथिक के वेष वाली। अध्वग इव वेषः यस्याः सा, बहु०। अध्वगः—अध्वानं गच्छति इति, अध्वन्+गम्+ड (अ)। टि अम् का लोप। (३) **तापसी**—तपस्विनी। तपः अस्यास्ति इति, तपस्+अण्+ङीप्। अण् च (५-२-१०३) से मत्वर्थ में अण्। (४) **वनदेवता**—वन की देवता, वन की अधिष्ठात्री देवी। वनस्य देवता, तत्पु०। (५) **फल०**—फल और फूल से युक्त। फलानि च कुसुमानि च गर्भे यस्य तेन, बहु०। (६) **पल्लवा०**—पत्ते से युक्त अर्घ्यं को। पल्लवयुक्तम् अर्घ्यम्, शाकपार्थिवादि तत्पु०। अर्घ्यम्—अर्घाय इदम्, अर्घ+यत् (य)। पादार्घाभ्यां च (५-४-२५) से तादर्थ्य में यत्। (७) **उपतिष्ठते**—स्वागत कर रही है। उप+स्था+लट्। उपाद् देवपूजा० (वा०) से देवपूजा अर्थ में स्था धातु आत्मनेपदी है। (८) **अर्घ्यम्**—अर्घ्य, पूजा के लिए उपयुक्त द्रव्य। अर्घाय इदम्, अर्घ+यत्।

(९) विकीर्य—डालकर, देकर। वि+कॄ+ल्यप्। (१०) यथेच्छा०—इच्छानुसार उपभोग के योग्य। इच्छाम् अनतिक्रम्य यथेच्छम्, अव्ययी०। यथेच्छम् आभोग्यम्, सुप्सुपा समास। भोग्यम्—भोक्तुं योग्यम्, भुज्+ण्यत् (य)। चजोः कु० (७-३-५२) से ज् को ग्। इसका भक्ष्य अर्थ में भोज्य रूप बनता है। (११) तरुच्छाया—वृक्ष की छाया। तरोः छाया, तत्पु०। तरूणां छाया विग्रह करने पर तरुच्छायम् रूप बनेगा। छाया बाहुल्ये (२-४-२२) से नपुं० होगा। (१२) अशनम्—भोजन। अश्+ल्युट् (अन)। (१३) पराधीनम्—परतन्त्र। परस्मिन् अधि, तत्पु०। पर+अधि+ख (ईन)। अषडक्षा० (५-४-७) से ख प्रत्यय। अधीन शब्द का संस्कृत में स्वतन्त्र भी प्रयोग मिलता है। तब विग्रह होगा—परेषाम् अधीनम्, तत्पु०। (१४) इस श्लोक में सतां सद्भिः० सामान्य के द्वारा विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। (१५) शिशुपालवध में इससे मिलता हुआ सुभाषित है—गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः। (शिशु० १-१४)

४. तापसी—किमत्रोच्यते ?

प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः।
पुरो वा पश्चाद् वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥२॥

(उपविशतः)

अन्वय—प्रियप्राया वृत्तिः, 'विनयमधुरः वाचि नियमः, प्रकृत्या कल्याणी मतिः, अनवगीतः परिचयः। तत् इदं पुरः वा पश्चाद् वा अविपर्यासितरसम्, अनुपधि विशुद्धं साधूनां रहस्यं विजयते।

तापसी—इस विषय में क्या कह सकते हैं ?

प्रेमपूर्ण व्यवहार, नम्रता के कारण मधुर वाणी का संयम, स्वभाव से ही मंगलकारी बुद्धि, पवित्र परिचय, ऐसा यह मिलन से पहले और बाद में एक सा

प्रेम वाला, निश्छल और विशुद्ध सज्जनों का चरित (सदा) विजय को प्राप्त होता है ।।२।।

(दोनों बैठती हैं)

संस्कृत-व्याख्या

प्रियप्राया—प्रेमपूर्णा, वृत्तिः—व्यवहारः, विनयमधुरः—नम्रतया मनोज्ञः, वाचि—वाण्याम्, नियमः—संयमः, प्रकृत्या—स्वभावेन, कल्याणी—मङ्गलकारिणी, मतिः—बुद्धिः, अनवगीतः—निर्दोषः, परिचयः—संस्तवः, तत् इदम्—ईदृशगुणोपेतम् एतत्, पुरः वा—संगमात् प्राग् वा, पश्चात् वा—अनन्तरं वा, अविपर्यासित०—अपरिवर्तितानुरागम्, अनुपधि—निश्छलम्, विशुद्धं—पवित्रम्, साधूनां—सज्जनानाम्, रहस्यं—चरितम्, विजयते—सर्वत्र विजयं लभते । अत्राप्रस्तुतप्रशंसा समुच्चयश्चालंकारौ । शिखरिणी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **प्रियप्राया**—अधिक प्रेमयुक्त । प्रायेण प्रिया, सुप्सुपा समास । एकविभक्ति० (१-२-४४) से प्राय का पर-प्रयोग । (२) **वृत्तिः**—व्यवहार । वृत्+क्तिन् । (३) **विनय०**—विनय के कारण मधुर । विनयेन मधुरः, तत्पु० । (४) **वाचि**—वाणी के विषय में । विषय अर्थ में सप्तमी । (५) **नियमः**—संयम । नि+यम्+अप् (अ) । (६) **प्रकृत्या**—स्वभाव से । प्रकृत्यादिभ्य० (वा०) से तृतीया । (७) **मतिः**—बुद्धि । मन्+क्तिन् । (८) **अनवगीतः**—अनिन्दित, पवित्र । न अवगीतः, नञ् तत्पु० । अवगीतः—निन्दित, अव+गै (गा)+क्त । (९) **परिचयः**—परिचय । परि+चि+अच् (अ)। (१०) **अविपर्यासित०**—जिसके रस अर्थात् प्रेम में अन्तर नहीं पड़ता है । अविपर्यासितः रसः यस्य तत्, बहु० । न विपर्यासितः, नञ् तत्पु० । विपर्यासितम्—वि+परि+अस्+णिच्+क्त । (११) **रहस्यम्**—चरित । रहसि भवम्, रहस्+यत् । (१२) **अनुपधि**—निश्छल । अविद्यमानः उपधिः यस्मिन् तत्, बहु० । उपधि—छल, कपट । वारि के तुल्य रूप चलेगा । (१३) **विजयते**—विजय को प्राप्त होता है । वि+जि+लट् । विपराभ्यां जेः (१-३-१९) से वि+जि आत्मनेपदी होती है । (१४) यहाँ पर अप्रस्तुत सामान्य सज्जन-चरित के द्वारा प्रस्तुत विशेष वनदेवता के चरित का बोध होने से अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार

है। सज्जन-चरित के प्रति प्रियप्राया वृत्तिः आदि अनेक कारणों के उल्लेख से समुच्चय अलंकार है।

५. वनदेवता--कां पुनरत्रभवतीमवगच्छामि ?

वनदेवता--मैं आपको कौन (किस नाम वाली) समझूँ ?

६. तापसी--आत्रेय्यस्मि।

तापसी--मैं आत्रेयी हूँ।

७. वनदेवता--आर्ये आत्रेयि, कुतः पुनरिहागम्यते ? किंप्रयोजनो दण्डकारण्योपवनप्रचारः ?

वनदेवता--आर्या आत्रेयी, आप यहाँ कहाँ से आ रही हैं ? इस दण्डकारण्य के उपवन में घूमने का आपका क्या प्रयोजन है ?

८. आत्रेयी--

अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे
भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति।
तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां
वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि ॥३॥

अन्वय--अस्मिन् प्रदेशे अगस्त्यप्रमुखाः भूयांसः उद्गीथविदः वसन्ति। तेभ्यः निगमान्तविद्याम् अधिगन्तुं वाल्मीकिपार्श्वात् इह पर्यटामि।

आत्रेयी--इस प्रदेश में अगस्त्य आदि अनेक ब्रह्मवेत्ता ऋषि रहते हैं। उनसे वेदान्त-विद्या का अध्ययन करने के लिए वाल्मीकि ऋषि के पास से यहाँ आ रही हूँ ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या

अस्मिन्--एतस्मिन्, प्रदेशे--दण्डकारण्यभागे, अगस्त्य०--अगस्त्यप्रभृतयः, भूयांसः--बहवः, उद्गीथ०--ब्रह्मवेत्तारः, वसन्ति--निवसन्ति। तेभ्यः--अगस्त्यादिमहर्षिभ्यः, निगमान्तविद्यां--वेदान्तविद्याम्, अधिगन्तुम्--अध्येतुम्, वाल्मीकि०--वाल्मीकिमहर्षेः समीपात्, इह--अत्र, पर्यटामि--भ्रमामि। इन्द्रवज्रा वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **कां पुनः०**—आपको किस नाम वाली स्त्री समझूँ । काम्—कौन सी स्त्री । अत्रभवती—पूजनीय स्त्री । अवगच्छामि—समझूँ । अव+गम्+लट् उ० एक० । अव+गम् का अर्थ है जानना । (२) **आत्रेयी**—आत्रेयी नामक । अत्रेः अपत्यं स्त्री—आत्रेयी । अत्रि+ढक् (एय)+ङीप् । इतश्चानिञः (४-१-१२२) से ढक् । (३) **आगम्यते**—आ रही हैं । आ+गम्+लट्, भाववाच्य में । (४) **किंप्रयोजनः**—किस उद्देश्य से । किं प्रयोजनं यस्य सः, बहु० । (५) **दण्डका०**—दण्डक-वन के उपवन में घूमना । दण्डकारण्यस्य उपवने प्रचारः, तत्पु० । प्रचारः—प्र+चर्+घञ् । (६) **अगस्त्य०**—अगस्त्य ऋषि आदि । अगस्त्यः प्रमुखः येषां ते, बहु० । (७) **भूयांसः**—अनेक । भूयांसः—बहु+ईयसुन् (ईयस्)+प्र०बहु० । अतिशयेन बहवः । यहाँ पर ईयस् प्रत्यय करने पर बहु को भू हो जाता है और ईयस् के ई का लोप होकर भूयस् शब्द बनता है । बहोर्लोपो० (६–४–१५८) से बहु को भू और ई का लोप । (८) **उद्गीथ०**—ब्रह्म को जाननेवाले । उद्गीथं विदन्ति इति, उद्गीथ+विद्+क्विप् (०)+प्र० बहु० । उद्गीथ का अर्थ ओम्, प्रणव या ब्रह्म है । 'ओम्' ब्रह्म का प्रतीक है । उसका ही साधक ऋषि मुनि आदि ध्यान करते हैं । मुण्डक उपनिषद् (२-२-४) का वचन है—प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।। छान्दोग्य उप० (१-१-१) का वचन है—ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत । कठ उपनिषद् (१-२-१५,१६) में भी ब्रह्म को ही वेदादि का सार बताया गया है । सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति, तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ।। एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म, एतदेवाक्षरं परम् । एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा, यो यदिच्छति तस्य तत् । उद्गीथ—उच्चैः गीयते इति, उद्+गै (गा)+थक् (थ), कर्म० या भाववाच्य में । (९) **तेभ्यः०**—उनसे अध्ययन करने को । तेभ्यः में आख्यातोपयोगे (१-४-२९) से पंचमी । अधिगन्तुम्—जानने को, पढ़ने को । अधि+गम्+तुमुन् (तुम्) । (१०) **निगमान्तविद्याम्**—वेदान्तविद्या को, ब्रह्मविद्या को । निगम का अर्थ वेद है । निगच्छन्ति अनेन इति निगमः, जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है । निगमानाम्

अन्ताः निगमान्ताः, निगमान्ता विद्या निगमान्तविद्या, कर्मधा० । वेदों का अन्तिम व्याख्यान भाग उपनिषद् हैं । उपनिषदों में ब्रह्म या आत्मा का विशेष रूप से वर्णन है । (११) वाल्मीकि०—वाल्मीकि ऋषि के पास से । वाल्मीकेः पार्श्वात्, तत्पु० । (१२) पर्यटामि—घूमती हुई आ रही हूँ । परि+अट्+लट् उ० एक० । (१३) इस श्लोक से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में स्त्रियाँ भी वेदों और उपनिषदों का अध्ययन करती थीं । स्त्रियाँ दो प्रकार की होती थीं—ब्रह्मवादिनी और गृधमेधिनी । ब्रह्मवादिनी स्त्रियों का यज्ञोपवीत संस्कार होता था और उन्हें वेदपाठ का पूर्ण अधिकार था ।गृहिणी स्त्रियाँ वेदाध्ययन नहीं करती थीं । पुरा कल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते । अध्यापनं च वेदानां सावित्री-वचनं तथा ।। (यमस्मृति) । हारीत का कथन है कि—द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्म-वादिन्यः सद्योवध्वश्च । तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भैक्ष्यचर्या ।।

९. वनदेवता—यदा तावदन्येऽपि मुनयस्तमेव हि पुराणब्रह्मवादिनं प्राचेतसमृषिं ब्रह्मपारायणायोपासते, तत् कोऽयमार्यायाः प्रवासः ?

वनदेवता—जबकि और भी मुनिलोग उसी प्राचीन ब्रह्मवेत्ता वाल्मीकि ऋषि के पास वेदाध्ययन के लिए जाते हैं, तो फिर आपके इस प्रवास का क्या कारण है ?

१०. आत्रेयी—तस्मिन् हि महानध्ययनप्रत्यूह इत्येष दीर्घप्रवासोऽङ्गीकृतः ।

आत्रेयी—वहाँ पर पढ़ाई में बड़ा विघ्न उपस्थित हो गया था, अतः मैंने यह लम्बा प्रवास स्वीकार किया है ।

११. वनदेवता—कीदृशः ?

वनदेवता—कैसा (विघ्न) ?

१२. आत्रेयी—तस्य भगवतः केनापि देवताविशेषेण सर्वप्रकाराद्भुतं स्तन्यत्यागमात्रके वयसि वर्तमानं दारकद्वय-

मुपनीतम्। तत्खलु न केवलं तस्य, अपितु तिरश्चामप्यन्तःकरणानि तत्त्वान्युपस्नेहयति।

आत्रेयी—उस भगवान् वाल्मीकि के पास किसी देवता-विशेष ने सभी प्रकार से अद्भुत तथा माता का दूध छोड़ने की आयु में वर्तमान दो बालक लाकर दिए हैं। वे शिशु केवल उनके ही नहीं, अपितु पशु-पक्षियों के भी हृदयरूपी तत्त्व को प्रेम-विभोर करते हैं।

१३. वनदेवता—अपि तयोर्नामसंज्ञानमस्ति?

वनदेवता—क्या आप उन दोनों के नाम जानती हैं?

१४. आत्रेयी—तयैव किल देवतया तयोः कुशलवाविति नामनी प्रभावश्चाख्यातः।

आत्रेयी—उसी देवता ने उन दोनों के कुश और लव नाम बताए हैं और उनका प्रभाव भी बताया है।

१५. वनदेवता—कीदृशः प्रभावः?

वनदेवता—कैसा प्रभाव?

१६. आत्रेयी—तयोः किल सरहस्यानि जृम्भकास्त्राणि जन्मसिद्धानीति।

आत्रेयी—उन दोनों को रहस्य (मन्त्र) के सहित जृम्भक अस्त्र जन्म-सिद्ध हैं।

१७. वनदेवता—अहो नु भोश्चित्रमेतत्।

वनदेवता—ओह, यह बड़े आश्चर्य की बात है।

टिप्पणी

(१) पुराण०—प्राचीन ब्रह्मवेत्ता को। पुराणश्चासौ ब्रह्मवादी च, कर्मधा०। ब्रह्म वदति इति, ब्रह्मन्+वद्+णिनि, ताच्छील्य अर्थ में णिनि। ब्रह्मवादी ब्रह्म की सत्ता, जगत् की उत्पत्ति आदि के विषय में विचार करते थे। जैसा कि श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है—ब्रह्मवादिनो वदन्ति। किं कारणं ब्रह्म, कुतः स्म जाताः, जीवाम केन, क्व च संप्रतिष्ठाः। (२) प्राचेतसम्०—

वाल्मीकि ऋषि को। वाल्मीकि प्रचेतस् (वरुण) के दशम पुत्र माने जाते हैं। प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन। (उत्तरकाण्ड ९६-१८)। (३) **ब्रह्म०**—वेद के पूर्ण अध्ययन के लिए। ब्रह्मणः पारायणाय, तत्पु०। पारायणम्—आद्योपान्त अध्ययन, प्रारम्भ से अन्त तक पढ़ना। पारे अयनम्, तत्पु०। (४) **उपासते**—उपासना करते हैं, समीप आते हैं। उप+आस्+लट् प्र० बहु०। गुरु-सेवा से विद्या प्राप्त होती है। गुरुशुश्रूषया विद्या, पुष्कलेन धनेन वा। अथवा विद्यया विद्या, चतुर्थान्नोपलभ्यते। (५) **प्रवासः**—प्रवास, अन्य स्थान पर निवास। प्र+वस्+घञ्। (६) **अध्ययन०**—अध्ययन में विघ्न। अध्ययने प्रत्यूहः, तत्पु०। अध्ययनम्—अधि+इ+ल्युट् (अन)। (७) **अङ्गीकृतः**—स्वीकार किया। अङ्ग+च्वि+कृतः। यहाँ पर अभूततद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय है। च्वि प्रत्यय के कारण अङ्ग के अ को ई। (९) **देवता०**—किसी विशेष देवता ने। देवतानां विशेषः, तत्पु०। विशेषः—वि+शिष्+घञ्। (१०) **दीर्घ०**—लम्बा प्रवास। दीर्घः चासौ प्रवासः, कर्मधा०। (८) ... **सर्व०**—सभी प्रकार से अद्भुत। सर्वप्रकारैः अद्भुतम्, तत्पु०। (११) **स्तन्य०**—माता का दूध छोड़ने की आयु में वर्तमान। स्तन्यस्य त्यागः (तत्पु०), स्तन्यत्यागः मात्रा (कालपरिमाणं) यस्य तस्मिन्, बहु०। स्तन्यम्—माता का दूध। स्तनयोः भवम्, स्तन+यत् (य)। शरीरावयवाद्यत् (५-१-६) से यत्। बहु० होने पर शेषाद् विभाषा (५-४-१५४) से कप्। जिन्होंने अभी माता का दूध छोड़ा है। (१२) **वर्तमानम्**—विद्यमान। वृत्+शानच्। (१३) **दारक०**—दो बच्चे। दारकयोः द्वयम्, तत्पु०। **उपनीतम्**—लाकर दिया। उप+नी+क्त। (१४) **तिरश्चाम्०**—पशु-पक्षियों का भी। पशु-पक्षियों आदि को तिर्यग्योनि कहा जाता है। (१५) **अन्तःकरणानि०**—अन्तःकरणरूपी तत्त्वों को। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, इन चारों को अन्तःकरण कहते हैं। (१६) **उपस्नेहयति**—प्रेमयुक्त करते हैं। उप+स्नेह+णिच्+लट्। स्नेहवत् शब्द से तत्करोति तदाचष्टे (गणसूत्र) से णिच्, मतुप् का लोप। उपस्नेहि नामधातु से लट्। (१७) **नाम०**—नामों का ज्ञान। नाम्नोः संज्ञानम्, तत्पु०। संज्ञानम्—सम्+ज्ञा+ल्युट् (अन)। (१८) **प्रभावः**—प्रभाव। दोनों का महत्त्व। प्र+भू+घञ्। (१९) **आख्यातः**—कहा, बताया। आ+चक्ष्+क्त। चक्ष् को ख्या आदेश। (२०) **सरहस्यानि**—मन्त्र के सहित। रहस्येन सह सरहस्यम्

तानि, बहु० । (२१) जन्मसिद्धानि—जन्म से ही सिद्ध हैं । जन्मना सिद्धानि, तत्पु० । जृम्भक अस्त्र को चलाने और उसके संहार की पूरी विधि इन दोनों को जन्म से ही ज्ञात थी ।

१८. आत्रेयी—तौ च भगवता वाल्मीकिना धात्रीकर्मतः परिगृह्य पोषितौ रक्षितौ च । निर्वृत्तचौलकर्मणोस्तयोस्त्रयीवर्जमितरास्तिस्रो विद्याः सावधानेन परिनिष्ठापिताः । तदनन्तरं भगवतैकादशे वर्षे क्षात्रेण कल्पेनोपनीय त्रयीविद्यामध्यापितौ । न त्वेताभ्यामतिदीप्तप्रज्ञाभ्यामस्मदादेः सहाध्ययनयोगोऽस्ति । यतः—

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा ।
भवति हि पुनर्भूयान्भेदः फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः ॥४॥

अन्वय—गुरुः यथा प्राज्ञे तथा एव जडे विद्यां वितरति । तयोः ज्ञाने न तु शक्ति करोति, न वा अपहन्ति खलु । फलं प्रति पुनः भूयान् भेदः भवति हि, तद् यथा शुचिः मणिः बिम्बग्राहे प्रभवति, मृदादयः न ।

आत्रेयी—उन दोनों को भगवान् वाल्मीकि न धात्री (दाई) के काम के लिए स्वीकार करके उनका पोषण और संरक्षण किया है । चूडाकर्म संस्कार हो जाने के बाद उन्होंने उन दोनों को वेद-त्रयी को छोड़कर अन्य तीनों (आन्वीक्षिकी, वार्ता और दण्डनीति) विद्याएँ सावधानी के साथ पढ़ाई हैं । तत्पश्चात् भगवान् (वाल्मीकि) ने ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रियोचित विधि से उनका उपनयन

पाठभेद—१८. का०, काले—च (और), का०—च तयोः (और उन दोनों में), काले—च पुनः (और फिर), काले—मृदां चयः (मिट्टी का समूह) ।

संस्कार करके उन्हें वेद-विद्या पढ़ाई है। अति-व्युत्पन्न बुद्धि वाले इन दोनों के
साथ हम लोगों का पढ़ सकना संभव नहीं है। क्योंकि—

गुरु जिस प्रकार व्युत्पन्न शिष्य को उसी प्रकार मन्द-बुद्धि शिष्य को भी
विद्या देता है। वह उन दोनों (शिष्यों) के ज्ञान में न तो सामर्थ्य की वृद्धि
करता है और न सामर्थ्य को नष्ट ही करता है। परन्तु (विद्या के) फल में बहुत
अधिक अन्तर होता है, जैसे स्वच्छ मणि प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने में समर्थ होती
है, मिट्टी आदि पदार्थ नहीं ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या

गुरुः—उपाध्यायः, यथा—येन प्रकारेण, प्राज्ञे—व्युत्पन्ने शिष्ये, तथैव—
तेनैव प्रकारेण, जडे—मन्दबुद्धौ छात्रे, विद्यां—ज्ञानम्, वितरति—ददाति।
तयोः—प्राज्ञजडयोः, ज्ञाने—बोधविषये, न तु—न तर्हि, शक्तिं करोति—
सामर्थ्यं वर्धयति, न वा—नापि, अपहन्ति—सामर्थ्यं विनाशयति, खलु—
निश्चयेन। फलं प्रति—विद्यायाः परिणामं प्रति, पुनः—परन्तु, भूयान्—
बहुतरः, भेदः—वैषम्यम्, भवति हि—संजायते। तद्—वैषम्यम्, यथा—येन
प्रकारेण, शुचिः—स्वच्छः, मणिः—मौक्तिकादिः, बिम्बग्राहे—प्रतिबिम्ब-
ग्रहणे, प्रभवति—समर्थोऽस्ति, मृदादयः—मृत्तिकाप्रभृतयः पदार्थाः, न—नहि
प्रभवन्ति। अत्राप्रस्तुतप्रशंसा, यथासंख्यमुपमा चालंकाराः। हरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) धात्री०—दाई के कार्य के लिए। धात्र्याः कर्मणे, तत्पु०।
यहाँ पर चतुर्थी के अर्थ में सार्वविभक्तिक तसिल् (तस्) प्रत्यय है। धात्री—
धा+तृच्+ङीप्। महर्षि वाल्मीकि ने कुश-लव का धात्री के तुल्य पालन-पोषण
किया। (२) परिगृह्य—स्वीकार करके। परि+ग्रह्+ल्यप्। (३)
पोषितौ—पोषण किया। पुष्+णिच्+क्त+ प्र० द्विवचन। (४) निर्वृत्त०—
चूडाकर्म संस्कार हो जाने पर। निर्वृत्तं चौलकर्म ययोः तयोः, बहु०। निर्वृत्त—
निर्+वृत्+क्त। चौलकर्म—चूडाकर्म या मुण्डन संस्कार। मुण्डन संस्कार
बालक के पहले या तीसरे वर्ष में होता है। चूडाकर्म द्विजातीनां, सर्वेषामेव
धर्मतः। प्रथमेऽब्दे तृतीये वा, कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्॥ (मनु० २-३५)।

तृतीये वर्षे चौलं यथाकुलधर्मं वा । (आश्वलायन गृह्यसूत्र) । (५) **त्रयी-वर्जम्**—वेदत्रयी को छोड़कर । ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद को छोड़कर । त्रयीं वर्जयित्वा इति, त्रयी+वर्जि+णमुल् (अम्) । क्त्वा के अर्थ में द्वितीयायां च (३-४-५३) से णमुल् । (६) **तिस्रः विद्याः**—अन्य तीन विद्याएँ । कौटिल्य अर्थशास्त्र और कामन्दकीयनीतिसार में चार विद्याएँ ये बताई हैं—१. आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र या अध्यात्मविद्या), २. त्रयी (तीन वेद), ३. वार्ता (अर्थशास्त्र, कृषि, वाणिज्य आदि), ४. दण्डनीति (राजनीतिशास्त्र) । आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता, दण्डनीतिश्च शाश्वती । विद्याश्चतस्र एवैता योगक्षेमाय देहिनाम् ।। (कामन्दकीय नीति० २–२) । वेदत्रयी का अध्ययन उपनयन के बाद होता है, अतः वाल्मीकि ने उपनयन से पूर्व आन्वीक्षिकी, वार्ता और दण्डनीति, ये तीन विद्याएँ पढ़ाईं । (७) **सावधानेन**—सावधानी से । अवधानेन सह सावधानम्, तेन, बहु० । (८) **परिनिष्ठापिताः**—ठीक ढंग से प्रतिष्ठित कीं, सिखाईं । परि+नि+स्था+णिच्+क्त+टाप्+प्र० बहु० । (९) **एकादशे०**—ग्यारहवें वर्ष में उपनयन करके । क्षत्रिय का ११वें वर्ष में उपनयन होता था । गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत, ब्राह्मणस्योपनायनम् । गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः।। (मनु० २-३६) । एकादशः—एकादशानां पूरणः, एकादशन्+डट् (अ) । अन् का लोप । (१०) **क्षात्रेण०**—क्षत्रियोचित विधि से यज्ञोपवीत संस्कार करके । क्षात्रः—क्षत्राणाम् अयम्, क्षत्र+अण् । उपनीय—उप+नी+ल्यप् । (११) **त्रयीविद्याम्०**—त्रयीविद्या को । (१२) **अध्यापितौ**—पढ़ाया । अधि+इ+णिच्+क्त+प्र०द्विव० । अधि+इ का अर्थ पढ़ना है । इसका प्रेरणार्थक अध्यापयति बनता है, पढ़ाता है । (१३) **अति०**—अत्यन्त व्युत्पन्न बुद्धि वालों के साथ । अतिदीप्ता प्रज्ञा ययोः ताभ्याम्, बहु० । (१४) **वितरति**—देता है । वि+तॄ+लट् प्र० एक० । (१५) **प्राज्ञे**—विद्वान् या व्युत्पन्न को । यहाँ पर दान अर्थ वाली वि+तॄ धातु के साथ चतुर्थी होनी चाहिए । चतुर्थी के अर्थ में विषय अर्थ मानकर सप्तमी है । (१६) **जडे**—मन्दबुद्धि को । यहाँ पर भी विषय अर्थ मानकर सप्तमी है । (१७) **अपहन्ति**—नष्ट करता है । अप+हन्+लट् । (१८) **भूयान्०**—बहुत अधिक अन्तर । भूयान्—बहु+ईयसुन् (ईयस्) +प्र० एक० । बहु को भू हो जाता है और ई का लोप, बहोर्लोपो० (६–४–१५८) से । भेदः—अन्तर । भिद्+घञ् । (१९) **फलं प्रति**—फल के बारे में । अभितःपरितः० (वा०)

से द्वितीया। (२०) प्रभवति—समर्थ होती है। प्र+भू+लट्। (२१) बिम्बग्राहे—प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने में। बिम्बस्य ग्राहे, तत्पु०। ग्राहः—ग्रह्+घञ्। (२२) मृदादयः—मिट्टी आदि। मृद् आदिः येषां ते, बहु०। (२३) शिक्षक समान भाव से सब छात्रों को विद्या पढ़ाता है। छात्र अपनी प्रतिभा के अनुसार अधिक या कम ग्रहण करते हैं। इसी भाव के अन्य श्लोक ये हैं—१. क्रिया हि वस्तूपहिता प्रसीदति। (रघुवंश ३-२९)। २. पात्रविशेषे न्यस्तं, गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः। पय इव समुद्रशुक्तौ, मुक्ताफलतां पयोदस्य॥ (मालविकाग्नि० १-६)। ३. चीयते बालिशस्यापि, सत्क्षेत्रपतिता कृषिः। न शालेः स्तम्बकरिता, वप्तुर्गुणमपेक्षते। (मुद्राराक्षस १-३)। ४. शशंस यः पात्रगुणाद् गुणानां, संक्रान्तिमाक्रान्तगुणातिरेकाम्॥ (शिशुपाल० ४-१६)। (२४) यहाँ पर अध्ययन नहीं चल सकता है, यह विशेष प्रस्तुत होने पर सामान्य विद्याध्ययन के तारतम्य के वर्णन से अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। प्राज्ञ और जड का क्रमशः शक्ति-करण और शक्ति-हानि से संबन्ध होने से यथासंख्य अलंकार है। प्राज्ञ और जड की मणि और मृत्तिका से उपमा होने से उपमा अलंकार है।

१९. वनदेवता—अयमध्ययनप्रत्यूहः ?

वनदेवता—यही अध्ययन में विघ्न है?

२०. आत्रेयी—अन्यश्च।

आत्रेयी—और भी है।

२१. वनदेवता—अथापरः कः ?

वनदेवता—और क्या?

२२. आत्रेयी—अथ स ब्रह्मर्षिरेकदा माध्यन्दिनसवनाय नदीं तमसामनुप्रपन्नः। तत्र युग्मचारिणोः क्रौञ्चयोरेकं व्याधेन वध्यमानं ददर्श। आकस्मिकप्रत्यवभासां देवीं वाचमानुष्टुभेन छन्दसा परिणतामभ्युदैरयत्।

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥५॥

अन्वय—निषाद, त्वं शाश्वतीः समाः प्रतिष्ठां मा अगमः, यत् क्रौञ्चमिथुनात् काममोहितम् एकम् अवधीः ।

आत्रेयी—तत्पश्चात् एक दिन वे ब्रह्मर्षि (वाल्मीकि) मध्याह्न-कालीन स्नान के लिए तमसा नदी पर गए। वहाँ उन्होंने साथ साथ विचरण करते हुए दो क्रौंच (नर और मादा) पक्षियों में से एक (नर क्रौंच) को व्याध के द्वारा मारा जाता हुआ देखा। तब उन्होंने अकस्मात् प्रतिभासित और अनुष्टुप् छन्द में परिणत दिव्य वाणी का उच्चारण किया।

हे निषाद, तू अनन्त काल तक प्रतिष्ठा (सुख-शान्ति) को प्राप्त नहीं करेगा, क्योंकि तूने क्रौंच-पक्षियों के जोड़े में से काम-पीड़ित एक (नर क्रौंच) को मारा है ।।५।।

संस्कृत-व्याख्या

निषाद—हे व्याध !, त्वं—निषादः, शाश्वतीः—प्रभूताः, समाः—वर्षाणि, प्रतिष्ठां—स्थितिम्, सुखशान्तिमित्यर्थः, मा अगमः—न प्राप्स्यसि, यत्—यतो हि, क्रौञ्च०—क्रौञ्चपक्षिणोः द्वन्द्वात्, काम०—कामभावेन पीडितम्, एकं—पुमांसं क्रौञ्चम्, अवधीः—हतवानसि । अत्र श्लेषोऽलंकारः । श्लोको वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) अध्ययन०—पढ़ाई में विघ्न । अध्ययने प्रत्यूहः, तत्पु० । (२) ब्रह्मर्षिः—ब्रह्मर्षि । ब्रह्मा चासौ ऋषिः, कर्मधा० । (३) माध्यन्दिन०—मध्याह्न स्नान के लिए । सवन के दो अर्थ हैं —स्नान और धार्मिक कृत्य । यहाँ पर स्नान अर्थ अभीष्ट है । माध्यन्दिनं सवनं, तस्मै, कर्मधा० । मध्यं दिनस्य मध्यन्दिनम्, तत्पु० । निपातन से अम् का अलुक् । मध्यन्दिने भवम्, मध्यन्दिन+अण् । सवनम्—सु+ल्युट् । तीन सवन होते हैं—प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन, तृतीय सवन या सायन्तन सवन । छान्दोग्य उपनिषद् (२-२४-१) का कथन है—ब्रह्मवादिनो वदन्ति यद् वसूनां प्रातःसवनं रुद्राणां माध्यन्दिनं सवनमादित्यानां च विश्वेषां देवानां च तृतीयसवनम् ।। वाल्मीकिरामायण बालकाण्ड (१४–५ से ७) में भी तीनों सवनों का वर्णन है । (४) तमसाम्—तमसा नदी पर । वाल्मीकि रामायण के अनुसार तमसा नदी गंगा के समीप ही थी । स मुहूर्तं गते तस्मिन्, देवलोकं मुनिस्तदा । जगाम तमसातीरं जाह्नव्यास्त्वविदूरतः ।।

स्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा । क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः। (ध्वन्यालोक) ।

२३. वनदेवता--चित्रम्, आम्नायादन्यत्र नूतनश्छन्दसामवतारः ।

वनदेवता—आश्चर्य की बात है, वेद से अन्यत्र छन्दों का नवीन आविर्भाव हो गया है ।

२४. आत्रेयी--तेन हि पुनः समयेन तं भगवन्तमाविर्भूतशब्दप्रकाशमृषिमुपसंगम्य भगवान्भूतभावनः पद्मयोनिरवोचत्--'ऋषे, प्रबुद्धोऽसि वागात्मनि ब्रह्मणि । तद्ब्रूहि रामचरितम् । अव्याहतज्योतिरार्षं ते चक्षुः प्रतिभातु । आद्यः कविरसि' इत्युक्त्वाऽन्तर्हितः । अथ स भगवान्प्राचेतसः प्रथमं मनुष्येषु शब्दब्रह्मणस्तादृशं विवर्तमितिहासं रामायणं प्रणिनाय ।

आत्रेयी--फिर उस समय संसार के कर्ता भगवान् ब्रह्मा ने भगवान् वाल्मीकि के समीप, जिन्हें शब्दब्रह्म का साक्षात्कार हो गया है, आकर कहा—'हे ऋषि, तुम शब्द-ब्रह्म के विषय में ज्ञानवान् हो गए हो। अतः राम के चरित का वर्णन करो। तुम्हें निरन्तर प्रकाशवाली आर्ष (ऋषि-संबन्धी) दृष्टि प्रकट हो। तुम आदिकवि हो।' यह कहकर वे अन्तर्धान हो गए। तत्पश्चात् भगवान् वाल्मीकि ने मनुष्यों में सर्वप्रथम शब्दब्रह्म के अपूर्व रूपान्तर रामायण-नामक इतिहास को बनाया।

२५. वनदेवता--हन्त, पण्डितः संसारः ।

वनदेवता—ओह, तब तो सारा संसार पण्डित हो जाएगा ।

२६. आत्रेयी--तस्मादेव हि ब्रवीमि 'तत्र महानध्ययनप्रत्यूह' इति ।

आत्रेयी—अतएव मैं कह रही हूँ कि वहाँ पर पढ़ाई में महान् विघ्न उपस्थित हो गया है।

२७. **वनदेवता——युज्यते ।**

वनदेवता——ठीक है ।

२८. **आत्रेयी——विश्रान्तास्मि । भद्रे, सम्प्रत्यगस्त्याश्रमस्य पन्थानं ब्रूहि ।**

आत्रेयी——मैं विश्राम कर चुकी हूँ । आर्ये, अब मुझे अगस्त्य ऋषि के आश्रम का मार्ग बताओ ।

२९. **वनदेवता——इतः पञ्चवटीमनुप्रविश्य गम्यतामनेन गोदावरीतीरेण ।**

वनदेवता——यहाँ से पंचवटी में प्रवेश करके गोदावरी के इस किनारे-किनारे जाइए ।

३०. **आत्रेयी——(सास्रम्) अप्येतत्तपोवनम् ? अप्येषा पञ्चवटी ? अपि सरिदियं गोदावरी ? अप्ययं गिरिः प्रस्रवणः ? अपि जनस्थानवनदेवता त्वं वासन्ती ?**

आत्रेयी——(आँसू भरकर) क्या यह तपोवन है ? क्या यह पंचवटी है ? क्या यह गोदावरी नदी है ? क्या यह प्रस्रवण पर्वत है ? क्या आप जनस्थान की वनदेवता वासन्ती हैं ?

३१. **वनदेवता——तथैव तत्सर्वम् ।**

वनदेवता——हाँ, यह सब (कथन) ठीक है ।

टिप्पणी

(१) **आम्नायाद्०**——वेद से अन्यत्र । आम्नाय——वेद । आ+म्ना+घञ् (अ) । बीच में युक् (य्) । (२) **नूतनः०**——छन्दों का नया आविर्भाव । नूतन के द्वारा संकेत है कि वैदिक छन्दों से भिन्न लौकिक छन्दों का प्रयोग प्रारम्भ हो गया है । (३) **आविर्भूत०**——जिसको शब्दब्रह्म का साक्षात्कार हो गया है । आविर्भूतः शब्दस्य प्रकाशः यस्य तम्, बहु० । आविर्भूत——आविस्+भू+क्त । शब्द का अर्थ शब्दब्रह्म है । वाक्यपदीय (१-१) में शब्दब्रह्म का वर्णन है——अनादिनिधनं ब्रह्म, शब्दतत्त्वं यदक्षरम् । विवर्ततेऽर्थभावेन, प्रक्रिया जगतो यतः ।। (४) **उपसंगम्य**——समीप जाकर । उप+सम्+गम्+ल्यप् । (५)

भूत०—संसार के कर्ता । भूतानि भावयति इति, उपपद समास । भूत+भू+णिच्+ल्युट् । (६) **पद्मयोनिः**—पद्म से उत्पन्न होने वाले । पद्मं योनिः यस्य सः, बहु० । (७) **अवोचत्**—कहा । ब्रू+लुङ्+प्र० एक० । ब्रू को वच् आदेश । (८) **वागात्मनि०**—वाणीरूपी ब्रह्म के विषय में । वाक् आत्मा यस्य तस्मिन्, बहु० । (९) **अव्याहत०**—निरन्तर ज्योति वाली । अव्याहतं ज्योतिः यस्य तत्, बहु० । वि+आ+हन्+क्त—व्याहतम्, न व्याहतम् अव्याहतम् ।(१०) **आर्षम्**—ऋषिजनोचित । ऋषेः इदम्, ऋषि+अण् । (११) **प्रतिभातु**—प्रकट हो, प्रकाशित हो । (१२) **आद्यः कविः**—तुम आदि-कवि हो । वाल्मीकि को आदिकवि इसलिए कहा गया है, क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम लौकिक काव्य रामायण की रचना की है । (१३) **अन्तर्हितः**—लुप्त हो गए, तिरोहित हो गए । अन्तर्+धा+क्त । धा को हि । (१४) **विवर्तम्**—शब्दब्रह्म के परिणामस्वरूप । विवर्त यह वेदान्त का एक पारिभाषिक शब्द है । वस्तु के अतात्त्विक रूपान्तर को विवर्त कहते हैं । जैसे—रस्सी में सर्पबुद्धि । तात्त्विक रूपान्तर को परिणाम या विकार कहते हैं । जैसे—दूध से दही का होना । अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त इत्युदीरितः । स तत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदीर्यते ।। (वेदान्तसार) । यहाँ पर विकार या परिणाम के अर्थ में विवर्त का प्रयोग है । भवभूति ने अंक ६ श्लोक ६ में विवर्त का पारिभाषिक अर्थ में भी प्रयोग किया है । (१५) **इतिहासम्**—इतिहास । इतिह आस्ते अस्मिन् इति इतिहासः । इतिह+आस्+घञ् । ऐसी घटना घटित हुई ।(१६) **रामायणम्**—रामायण को । रामस्य अयनं चरितं यस्मिन् तत्, बहु० । (१७) **प्रणिनाय**—बनाया, रचना की । प्र+नी+लिट्+प्र० एक० । (१८) **पण्डितः०**—अब सारा संसार ही पण्डित हो जाएगा । पण्डितः—पण्डा+इतच् (इत) । (१९) **युज्यते**—यह ठीक है । (२०) **विश्रान्ता०**—विश्राम कर लिया है । वि+श्रम्+क्त+टाप् । (२१) **अनुप्रविश्य**—प्रवेश करके । अनु+प्र+विश्+ल्यप् । (२२) **गोदावरी०**—गोदावरी के किनारे-किनारे । गोदावर्याः तीरेण, तत्पु० । (२३) **सास्रम्**—आँसू भरकर । अस्रैः सहितम्, बहु० । (२४) **पञ्चवटी**—पञ्चवटी स्थान । पञ्चानां वटानां समाहारः, समाहार द्विगु, स्त्रीलिंग में प्रयोग । पञ्चवट+ङीप् । (२५) **जनस्थान०**—जनस्थान की वनदेवता । जनस्थानस्य वनदेवता, तत्पु० ।

३२. आत्रेयी—हा वत्से जानकि,
स एष ते वल्लभबन्धुवर्गः
प्रासङ्गिकीनां विषयः कथानाम् ।
त्वां नामशेषामपि दृश्यमानः
प्रत्यक्षदृष्टामिव नः करोति ॥६॥

अन्वय—प्रासङ्गिकीनां कथानां विषयः दृश्यमानः स एष ते वल्लभबन्धुवर्गः नामशेषाम् अपि त्वां नः प्रत्यक्षदृष्टाम् इव करोति ।

आत्रेयी—हा वत्स जानकी,

प्रासंगिक कथाओं का विषय, पुरोवर्ती, यह तुम्हारा प्रिय बन्धुवर्ग नाममात्र से शेष भी तुमको हमें प्रत्यक्षदृष्ट (सामने दिखाई देने वाला) सा कर रहा है ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या

प्रासङ्गिकीनां—प्रसङ्गप्राप्तानाम्, कथानां—वार्तानाम्, विषयः—वर्णनविषयः, दृश्यमानः—पुरोवर्ती, सः—प्राचीनः, एषः—पुरो वर्तमानः, ते—तव जानक्याः, वल्लभ०—प्रियबन्धुवृन्दः, नामशेषाम् अपि—नाममात्रेण अवशिष्टामपि, त्वां—जानकीम्, नः—अस्माकम्, प्रत्यक्षदृष्टाम् इव—साक्षाद् दर्शनविषयाम् इव, करोति—विदधाति । अत्र क्रियोत्प्रेक्षा भाविकश्चालंकारौ । उपजातिर्वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **वल्लभ०**—प्रिय बन्धुवर्ग । बन्धूनां वर्गः (तत्पु०), वल्लभः चासौ बन्धुवर्गः, कर्मधा० । सीता के प्रिय बन्धुवर्ग में उसके प्रिय व्यक्तियों के अतिरिक्त वृक्ष, पशु-पक्षी, पंचवटी, गोदावरी, तपोवन आदि भी संगृहीत हैं । यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे० (उत्तर० ३-८) । तावत् पूर्वसुहृदो भूमिभागान् पश्यामि । (उत्तर० २—वाक्यसंख्या ६६ ङ) । (२) **प्रासङ्गिकीनाम्**—प्रासंगिक । प्रसङ्गाद् आगताः प्रासङ्गिक्यः, तासाम् । प्रसङ्ग+ठक् (इक)+ङीप् । प्रसङ्ग—

पाठभेद—३२. का०, नि० शाखिवर्गः (प्रिय वृक्ष-समूह) । काले०—दृश्यामिव (प्रत्यक्ष दृश्य सी) ।

प्र+सञ्ज्+घञ्। (३) नामशेषाम्—नाममात्र से शेष। नाम शेषः यस्याः ताम्, बहु०। इससे संकेत मिलता है कि आत्रेयी सीता के परित्याग के बाद उसे मृत समझती है। अतः वह अब नाममात्र से ही शेष है। (४) दृश्यमानः—दिखाई देता हुआ। दृश्+कर्मवाच्य लट्+शानच्। (५) प्रत्यक्ष०—साक्षात् दिखाई देने वाली। प्रत्यक्षं दृष्टा, ताम्, सुप्सुपा समास। (६) यहाँ पर दर्शन क्रिया की उत्प्रेक्षा से क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है। भूत सीता का प्रत्यक्ष रूप में वर्णन होने से भाविक अलंकार है।

३३. वासन्ती—(सभयम्, स्वगतम्) कथं नामशेषेत्याह। (प्रकाशम्) आर्ये, किमत्याहितं सीतादेव्याः?

वासन्ती—(भय के साथ, मन ही मन) 'नाममात्र से शेष' ऐसा क्यों कह रही है। (प्रकट) आर्या, सीता देवी के विषय में क्या अनर्थ हो गया है?

३४. आत्रेयी—न केवलमत्याहितम्, सापवादमपि। (कर्णे) एवमिति।

आत्रेयी—अनर्थ ही नहीं, साथ ही लोकापवाद भी है। (कान में) ऐसी बात है।

३५. वासन्ती—हा, दारुणो दैवनिर्घातः।

(इति मूर्च्छति।)

वासन्ती—हाय, दुर्भाग्य का कठोर प्रहार हुआ है।

(यह कहकर मूर्छित हो जाती है)

३६. आत्रेयी—भद्रे, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

आत्रेयी—आर्या, धैर्य रखिए, धैर्य रखिए।

३७. वासन्ती—हा, प्रियसखि, ईदृशस्ते निर्माणभागः। हा रामभद्र, अथवा अलं त्वया। आर्ये आत्रेयि, अथ तस्मादरण्यात् परित्यज्य निवृत्ते लक्ष्मणे सीतायाः किं वृत्तमिति काचिदासीत्प्रवृत्तिः?

वासन्ती--हा प्रियसखी, तुम्हारे जीवन का ऐसा अन्त हुआ ! हा रामभद्र, अथवा तुम्हें कुछ कहना व्यर्थ है । आर्या आत्रेयी, सीता को छोड़ कर उस वन से लक्ष्मण के लौट आने पर सीता का क्या हाल हुआ, इस विषय में कुछ समाचार ज्ञात हुआ है ?

३८. आत्रेयी--नहि नहि ।

आत्रेयी--कुछ नहीं ।

३९. वासन्ती--कष्टम् । आर्यारुन्धतीवसिष्ठाधिष्ठितेषु नः कुलेषु जीवन्तीषु वृद्धासु राज्ञीषु कथमिदं जातम् ?

वासन्ती--बड़े खेद की बात है । (किन्तु) आर्या अरुन्धती और महर्षि वसिष्ठ से अधिष्ठित हमारे कुल (रघुकुल) में वृद्ध (कौसल्या आदि) महारानियों के जीवित रहते हुए यह अनर्थ कैसे हुआ ?

४०. आत्रेयी--ऋष्यशृङ्गसत्रे गुरुजनस्तदासीत् । सम्प्रति परिसमाप्तं तद् द्वादशवार्षिकं सत्रम् । ऋष्यशृङ्गेण च सम्पूज्य विसर्जिता गुरवः । ततो भगवत्यरुन्धती नाहं वधूविरहितामयोध्यां गच्छामीत्याह । तदेव राममातृभिरनुमोदितम् । तदनुरोधाद् भगवतो वसिष्ठस्यापि श्रद्धा 'वाल्मीकितपोवनं गत्वा वत्स्याम' इति ।

आत्रेयी--उस समय गुरुजन (अरुन्धती, वसिष्ठ आदि) ऋष्यशृंग के यज्ञ में गए हुए थे । अब बारह वर्ष चलने वाला वह यज्ञ समाप्त हो गया है और ऋष्यशृंग ने सत्कारपूर्वक गुरुजनों को विदा कर दिया है । तब भगवती अरुन्धती ने कहा--वधू सीता से रहित अयोध्या में मैं प्रवेश नहीं करूँगी । राम की माताओं ने भी इसका समर्थन किया । उनके अनुरोध से भगवान् वसिष्ठ की भी इच्छा हुई कि हम लोग वाल्मीकि के तपोवन में जाकर रहेंगे ।

टिप्पणी

(१) **किम् अत्याहितं०**—सीता के विषय में क्या अनर्थ हो गया ? नाम-शेषाम् शब्द को सुनकर वासन्ती को भय हुआ, तब उसने यह प्रश्न किया है। अत्या-हितम्—अनर्थ । अतिशयेन आधीयते मनसि इति । अति+आ+धा+क्त । धा को हि। इसका मन पर बहुत प्रभाव पड़ता है । अत्याहितं महाभीतिः कर्म जीवाऽनपेक्षि च, इत्यमरः । (२) **सापवादम्**—लोकापवाद के सहित । अपवादेन सहितम्, बहु० । (३) **एवमिति**—ऐसी बात है, अर्थात् राम ने लोकापवाद के कारण सीता का परित्याग कर दिया है । यह बात आत्रेयी ने वासन्ती के कान में कही । (४) **दैवनिर्घातः**—भाग्य का कठोर प्रहार हुआ है । दैवस्य निर्घातः, तत्पु० । निर्घातः—चोट, प्रहार, निःशेषेण घातः, निर्+हन्+घञ् । (५) **निर्माण०**—जीवन का परिणाम या अन्त । निर्माणस्य भागः, तत्पु० । भागः—भज्+घञ् । (६) **अलं०**—तुमसे क्या कहना । अलम् के कारण त्वया में तृतीया । (७) **परित्यज्य**—छोड़कर । परि+त्यज्+ल्यप् । (८) **निवृत्ते**—लौटने पर । निवृत्त—नि+वृत्+क्त । यस्य च भावेन० (२-३-३७) से सप्तमी । (९) **वृत्तम्**—हुआ । वृत्+क्त । (१०) **प्रवृत्तिः**—समाचार । प्र+वृत्+क्तिन् । वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः, इत्यमरः । (११) **आर्यारुन्धती०**—आर्या अरुन्धती और वसिष्ठ से अधिष्ठित । आर्या-रुन्धती च वसिष्ठश्च (द्वन्द्व०), ताभ्याम् अधिष्ठितेषु, तत्पु० ।(१२) **जीवन्तीषु**—जीवित रहती हुई । जीव्+शतृ+ङीप्+स० बहु० । यस्य च भावेन० (२-३-३७) से सप्तमी । (१३) **जातम्**—हुआ । जन्+क्त । न् को आ । (१४) **ऋष्यशृङ्ग०**—ऋष्यशृंग के यज्ञ में । ऋष्यशृङ्गस्य सत्रे, तत्पु० । सत्र—यज्ञ । (१५) **परिसमाप्तम्**—समाप्त हुआ है । परि+सम्+आप्+क्त । (१६) **द्वादशवार्षिकम्**—बारह वर्ष चलने वाला । द्वादश वर्षाणि भविष्यति इति, द्वादशवर्ष+ठञ् (इक) । तमधीष्टो० (५-१-८०) से ठञ् और अनुशति-कादीनां च (७-३-२०) से दोनों पदों को वृद्धि । (१७) **संपूज्य**—पूजा करके, सत्कार करके । सम्+पूज्+णिच्+ल्यप् । (१८) **विसर्जिताः**—विदा किए गए । वि+सृज्+णिच्+क्त+प्र० बहु० । (१९) **वधू०**—बहू सीता से रहित । वध्वा विरहिताम्, तत्पु० । (२०) **राम०**—राम की माताओं ने । रामस्य मातृभिः, तत्पु० । (२१) **अनुमोदितम्**—समर्थन किया । अनु+

मुद्+णिच्+क्त । (२२) तदनुरोधात्--उन राम की माताओं के अनुरोध से । तासाम् अनुरोधात्, तत्पु० । अनुरोध--अनु+रुध्+घञ् । (२३) वाल्मीकि०--वाल्मीकि के तपोवन में जाकर । वाल्मीकेः तपोवनम्, तत्पु० । (२४) वत्स्यामः--रहेंगे । वस्+लृट्+उ० पु० बहु० ।

४१. वासन्ती--अथ स रामभद्रः किमाचारः ?

वासन्ती--अब वे रामभद्र क्या रहे हैं ?

४२. आत्रेयी--तेन राज्ञा राजक्रतुरश्वमेधः प्रक्रान्तः ।

आत्रेयी--महाराज राम ने राजकीय यज्ञ अश्वमेध प्रारम्भ किया है ।

४३. वासन्ती--अहह धिक्, परिणीतमपि ?

वासन्ती--ओह, धिक्कार है ! क्या विवाह भी कर लिया ?

४४. आत्रेयी--शान्तम्, नहि नहि ।

आत्रेयी--अनर्थ शान्त हो । नहीं, नहीं ।

४५. वासन्ती--का तर्हि यज्ञे सहधर्मचारिणी ?

वासन्ती--तो यज्ञ में उनकी सहधर्मचारिणी (पत्नी) कौन है ?

४६. आत्रेयी--हिरण्मयी सीताप्रतिकृतिर्गृहिणीकृता ।

आत्रेयी--सीता की स्वर्ण-मूर्ति को उन्होंने गृहिणी बनाया है ।

४७. वासन्ती--हन्त भोः,

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ।।७।।

अन्वय--वज्राद् अपि कठोराणि, कुसुमाद् अपि मृदूनि, लोकोत्तराणां चेतांसि, कः विज्ञातुम् अर्हति हि ।

वासन्ती--ओह,
वज्र से भी कठोर और फूल से भी कोमल महापुरुषों के चित्त को कौन जान सकता है ।।७।।

पाठभेद--४७. कालें--नु (अवश्य) ।

संस्कृत-व्याख्या

वज्रादपि—पवेः अपि, कठोराणि—कठिनतराणि, कुसुमाद् अपि—पुष्पाद् अपि, मृदूनि—कोमलतराणि, लोकोत्तराणां—महापुरुषाणाम्, चेतांसि—चित्तानि, कः—को जनः, विज्ञातुम्—अवगन्तुम्, अर्हति हि—समर्थोऽस्ति । अत्र विषमोऽप्रस्तुतप्रशंसाऽर्थापत्तिश्चालंकाराः । श्लोको वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **किमाचारः**—क्या कर रहे हैं ? कः आचारः यस्य सः, बहु० । (२) **राजक्रतुः**—राजकीय यज्ञ । राजाओं के द्वारा यह यज्ञ किया जाताथा । राज्ञां क्रतुः, तत्पु० । अथवा क्रतूनां राजा, तत्पु० । राजदन्तादिषु० (२-२-३१) से क्रतु का वाद में प्रयोग । यज्ञों में श्रेष्ठ यज्ञ, यज्ञों का राजा । (३) **अश्वमेधः**—अश्वमेध नामक यज्ञ । अश्वः मेध्यते अत्र इति अश्वमेधः । प्राचीन समय में यह यज्ञ राजाओं के द्वारा सन्तानोत्पत्ति के लिए किया जाता था । परन्तु बाद में सार्वभौम आधिपत्य के सूचनार्थ यह यज्ञ किया जाने लगा । इसकी पद्धति यह थी कि इस यज्ञ के अवसर पर एक घोड़ा सैनिकों के सुरक्षण में एक वर्ष के लिए छोड़ा जाता था । जिस राज्य में यह घोड़ा जाता था, वहाँ के राजा का कर्तव्य होता था कि वह या तो सैनिकों से लड़े या आत्मसमर्पण कर दे । साल भर बाद जब यह घोड़ा लौटकर आता था, तब विशेष समारोह से यज्ञ सम्पन्न होता था । रामायण वालकाण्ड सर्ग १२ से १४ में दशरथ के अश्वमेध का विस्तृत वर्णन है । (४) **प्रक्रान्तः**—प्रारम्भ किया । प्र+क्रम्+क्त । अनुनासिकस्य० (६-४-१५) से अ को आ । (५) **परिणीतमपि**—क्या राम ने दूसरा विवाह भी कर लिया है ? परिणीतम्—परि+नी+क्त । परि+नी का अर्थ परिणय या विवाह करना होता है । शास्त्रीय परम्परा यह है कि अश्वमेध आदि यज्ञ पत्नी के सहित ही किये जाते हैं । राम अश्वमेध कर रहे हैं । इससे वासन्ती को सन्देह हुआ कि उन्होंने दूसरा विवाह कर लिया है और उस स्त्री के सहित वे अश्वमेध कर रहे हैं । अतः प्रश्न किया है । (६) **शान्तम्०**—ऐसी बात नहीं है । अनर्थ शान्त हो । शान्तम्—शम्+क्त । अनुनासिकस्य० (६-४-१५) से अ को आ । (७) **सहधर्म०**—पत्नी, सहधर्मिणी । सह (पत्या सह) धर्मं चरति इति, सह+धर्म+ चर्+णिनि+ङीप् । ताच्छील्य अर्थ में णिनि, सुप्यजातौ० (३-२-७८) से ।

(८) **हिरण्मयी**—सुवर्ण की बनी हुई । हिरण्यस्य विकारः स्त्री, हिरण्मयी । हिरण्य+मय+ङीप् । विकार अर्थ में मयट् (मय) प्रत्यय, दाण्डिनायन० (६-४-१७४) से निपातन से य का लोप । (९) **सीता०**—सीता की प्रतिमा । सीतायाः प्रतिकृतिः, तत्पु० । प्रतिकृतिः—प्रति+कृ+क्तिन् । (१०) **गृहिणी०**—गृहिणी या स्त्री बनाया । अगृहिणी गृहिणी कृता—गृहिणीकृता । यहाँ पर अभूततद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय है । (११) **वज्रादपि०**—वज्र से भी कठोर और फूल से भी कोमल । (१२) **लोकोत्तराणाम्०**—असाधारण पुरुषों के चित्त को कौन ठीक-ठीक जान सकता है ? लोकोत्तराणाम्—लोकेभ्यः उत्तराणाम्, तत्पु० । विज्ञातुम्—वि+ज्ञा+तुमुन् । (१३) इससे मिलता हुआ भर्तृहरि का श्लोक है—संपत्सु महतां चित्तं, भवत्युत्पलकोमलम् । आपत्सु च महाशैल-शिलासंघातकर्कशम् ।। (नीतिशतक ६६) । (१४) इस श्लोक में कठोर और मृदु दो विरोधी गुणों की एकत्र स्थिति के वर्णन के कारण विषम अलंकार है । अप्रस्तुत लोकोत्तर-रूपी सामान्य से प्रस्तुत रामरूपी विशेष की प्रतीति होने से अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है । को हि विज्ञातुमर्हति में अर्थापत्ति अलंकार है । कौन जान सकता है ? अर्थात् कोई नहीं जान सकता है ।

४८. आत्रेयी—विसृष्टश्च वामदेवानुमन्त्रितो मेध्याश्वः । प्रक्लृप्ताश्च तस्य यथाशास्त्रं रक्षितारः । तेषामधिष्ठाता लक्ष्मणात्मजश्चन्द्रकेतुर्दत्तदिव्यास्त्रसंप्रदायश्चतुरङ्गसाधनान्वि-तोऽनुप्रहितः ।

आत्रेयी—वामदेव ऋषि के द्वारा मन्त्र-संस्कार-युक्त अश्वमेध-यज्ञ का घोड़ा छोड़ दिया गया है । उसके शास्त्रानुसार रक्षक भी नियुक्त किए गए हैं । लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु को उनका अध्यक्ष बनाकर दिव्य अस्त्र-समूह तथा चतुरंगिणी सेना से सुसज्जित करके घोड़े के पीछे भेजा है ।

४९. वासन्ती—(सहर्षकौतुकास्रम्) कुमारलक्ष्मण-स्यापि पुत्र इति मातः ! जीवामि ।

वासन्ती—(हर्ष और कुतूहलता के साथ आँसू भरकर) हे माता, कुमार लक्ष्मण का भी पुत्र है, यह जानकर मैं जीवित हो गई हूँ ।

५०. आत्रेयी--अत्रान्तरे ब्राह्मणेन मृतं पुत्रमुत्क्षिप्य राजद्वारे सोरस्ताडनमब्रह्मण्यमुद्घोषितम्। ततो न राजापचारमन्तरेण प्रजानामकालमृत्युः संचरतीत्यात्मदोषं निरूपयति करुणामये रामभद्रे सहसैवाशरीरिणी वागुदचरत्--

शम्बूको नाम वृषलः पृथिव्यां तप्यते तपः।
शीर्षच्छेद्यः स ते राम! तं हत्वा जीवय द्विजम् ।।८।।

इत्युपश्रुत्यैवाकृष्टकृपाणपाणिः पुष्पकमधिरुह्य सर्वा दिशो विदिशश्च शूद्रतापसान्वेषणाय जगत्पतिः संचारं समारब्धवान्।

अन्वय--शम्बूकः नाम वृषलः पृथिव्यां तपः तप्यते। राम! स ते शीर्षच्छेद्यः, तं हत्वा द्विजं जीवय।

आत्रेयी--इसी बीच में एक ब्राह्मण ने अपने मृत पुत्र को राजद्वार पर फेंककर छाती पीटते हुए यह चिल्लाना प्रारम्भ किया कि--ब्राह्मणों के लिए अनर्थ उपस्थित हो गया है। तब 'राजा के दोष के बिना प्रजा की अकाल-मृत्यु नहीं हो सकती है, इस प्रकार दयालु रामभद्र जब अपने दोष का निरीक्षण कर रहे थे, उस समय सहसा आकाशवाणी हुई--

शम्बूक नाम का एक शूद्र पृथिवी पर तप कर रहा है। हे राम, तुम उसका सिर काट डालो और उसे मारकर ब्राह्मण बालक को जीवित करो ।।८।।

यह सुनते ही नंगी तलवार हाथ में लेकर पुष्पक विमान पर चढ़कर उस शूद्र तपस्वी को ढूँढ़ने के लिए जगत्पति राम ने सारी दिशाओं और उपदिशाओं में घूमना प्रारम्भ किया।

संस्कृत-व्याख्या

शम्बूकः नाम--शम्बूकनामकः, वृषलः--शूद्रः, पृथिव्यां--भुवि, तपः--तपस्याम्, तप्यते--चरति। राम--हे रामभद्र, सः--वृषलः, ते--तव रामस्य, शीर्षच्छेद्यः--शिरश्छेदनयोग्यः, तं--वृषलम्, हत्वा--मारयित्वा, द्विजं--ब्राह्मणबालकम्, जीवय--जीवितं कुरु। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **विसृष्टः**—छोड़ा गया है। वि+सृज्+क्त। (२) **वामदेवा०**— वामदेव ऋषि के द्वारा मन्त्रों से संस्कृत। वामदेवेन अनुमन्त्रितः, तत्पु०। वसिष्ठ ऋषि कौसल्या आदि माताओं के साथ वाल्मीकि के तपोवन में चले गए थे, अतः उनकी अनुपस्थिति में वामदेव ऋषि ने पुरोहित का काम किया। (३) **मेध्याश्वः**—यज्ञ का घोड़ा। मेधाय हितः मेध्यः। मेध+यत् (य)। मेध्यः अश्वः, कर्मधा०। (४) **प्रक्लृताः**—किए गए। प्र+क्लृप्+क्त। (५) **यथाशास्त्रम्**—शास्त्रोचित विधि से। शास्त्रम् अनतिक्रम्य, अव्ययी०। (६) **रक्षितारः**—रक्षक। रक्ष्+तृच्+प्र० बहु०। (७) **अधिष्ठाता**—अध्यक्ष। अधि+स्था+तृच्+प्र० एक०। (८) **लक्ष्मणा०**—लक्ष्मण का पुत्र। लक्ष्मणस्य आत्मजः, तत्पु०। (९) **दत्त०**—जिसको दिव्य अस्त्र-समूह दिया गया है। दत्तः दिव्यास्त्राणां संप्रदायः यस्मै सः, बहु०। (१०) **चतुरङ्ग०**—चतुरंगिणी सेना-युक्त। चतुर्णाम् अङ्गानां समाहारः चतुरङ्गम् (समाहार द्विगु), चतुरङ्गं च तत् साधनम् (कर्मधा०), तेन अन्वितः, तत्पु०। चतुरङ्ग—सेना के चार अंग माने जाते हैं—१. हाथी, २. अश्व, ३. रथ, ४. पदाति, पैदल सेना। साधन का अर्थ सेना भी है। साधनं मृतसंस्कारे सैन्ये सिद्धौषधे गतौ, इति मेदिनी। चन्द्रकेतु चतुरंगिणी सेना से युक्त होकर चला। शतपथ ब्राह्मण (१३-४-२-५) और तैत्तिरीय ब्राह्मण (३-८-९-४) में अश्वमेध के घोड़े के साथ रक्षकों और सेना के भेजने का आदेश है। तस्यैते पुरस्ताद् रक्षितार उपयुक्ता भवन्ति। राजपुत्राः कवचिनः शतं राजन्या निषङ्गिणः ० (शत० १३–४–२–५)। (११) **अनुप्रहितः**—घोड़े के पीछे भेजा गया है। अनु+प्र+हि+क्त। प्र+हि का अर्थ भेजना (१२) **सहर्ष०**—हर्ष, कुतूहलता के साथ आँसू भर कर। हर्षश्च कौतुकं च अस्राणि च—हर्षकौतुकास्राणि, (द्वन्द्व), तैः सह, बहु०। (१३) **मातःजीवामि**— हे माता, यह समाचार सुनकर मैं जीवित हो गई हूँ, मुझमें जान आ गई है। घनश्याम ने अपनी टीका में उल्लेख किया है कि द्राविड़ स्त्रियाँ 'मातर्जीवामि' यह बोलती हैं। इससे भवभूति का द्राविड (द्रविड-देशोत्पन्न) होना ज्ञात होता है। (१४) **उत्क्षिप्य**—डालकर, पटककर। उत्+क्षिप्+ल्यप्। (१५) **सोरस्ताडम्**—छाती पीट कर। उरसः ताडः—उरस्ताडः, तत्पु०। तेन सहितम्, बहु०। ताडः—पीटना। (१६) **अब्रह्मण्यम्**—ब्राह्मणों के लिए

अनर्थ । ब्रह्मणे हितम्—ब्रह्मण्यम्, न ब्रह्मण्यम्, नञ् तत्पु० । (१७) उद्घोषितम्—घोषित किया, चिल्लाया । उद्+घुष्+णिच्+क्त । (१८) राजापचारम्०—राजा के दोष के बिना । राज्ञः अपचारः, तम् तत्पु० । यहाँ पर अन्तरान्तरेण० (२-३-४) से द्वितीया । (१९) अकाल०—असमय में मृत्यु । अकाले मृत्युः तत्पु० । राम ने रामायण में स्वीकार किया है कि राजा के दोष के कारण ही असमय में बाल-मृत्यु होती है । रामस्य दुष्कृतं किंचिद्, महदस्ति न संशयः । यथा हि विषमस्थानां बालानां मृत्युरागतः ।। (उत्तरकांड ७३-१०) । (२०) आत्मदोषम्—अपने दोष को । आत्मनः दोषः, तम्, तत्पु० । (२१) निरूपयति—विचार करते समय । नि+रूप्+णिच्+शतृ+ स० एक० । भाव में सप्तमी । (२२) अशरीरिणी०—दिव्य वाणी, आकाशवाणी । शरीरम् अस्ति अस्या इति शरीरिणी, न शरीरिणी, नञ् तत्पु० । शरीरिणी—शरीर+ +इनि+ङीप् । (२३) उदचरत्—प्रकट हुई । उद्+चर्+लङ प्र० एक० । (२४) वृषलः—शूद्र । वृषं धर्मं लुनाति नाशयति इति, वृष+लू+ड (अ) । मनु के अनुसार विप्र-सेवा शूद्र का कर्तव्य था । उसे तपस्या करने का अधिकार नहीं था । विप्रसेवैव शूद्रस्य, विशिष्टं कर्म कीर्त्यते । यदतोऽन्यद् हि कुरुते, तद् । भवत्यस्य निष्फलम् ।। (मनु० १०-१२३) । (२५) तप्यते०—तप करता है । यहाँ पर तपस्तपःकर्मकस्यैव (३-१-८८) से कर्मवाच्य में प्रत्यय । तपः तप्यते—तपस्या को अर्जित करता है । (२६) शीर्ष०—सिर काटने योग्य । शीर्षच्छेदम् अर्हति इति, शीर्षच्छेद+यत् (य) । शीर्षच्छेदाद्यच्च (५-१-६५) से यत् । (२७) जीवय—जीवित करो । जीव्+णिच्+लोट्+म० एक० । (२८) उपश्रुत्य—सुनकर । उप+श्रु+ल्यप् । (२९) आकृष्ट०—नंगी तलवार हाथ में लेकर । आकृष्टः कृपाणः पाणौ यस्य सः, बहु० । (३०) अधिरुह्य—चढ़कर । अधि+रुह्+ल्यप् । (३१) शूद्र०—शूद्र तपस्वी के ढूँढ़ने के लिए । शूद्रः चासौ तापसः (कर्मधा०), तस्य अन्वेषणाय, तत्पु० । (३२) समारब्धवान्—प्रारम्भ किया । सम्+आ+रभ्+क्तवतु+प्र०एक० ।

५१. वासन्ती—शम्बूको नामाधोमुखो धूमपः शूद्रोऽस्मिन्नेव जनस्थाने तपश्चरति । अपि नाम रामभद्रः पुनरिदं वनमलंकुर्यात् ।

वासन्ती--शम्बूक नाम का नीचे की ओर मुँह करके धूम-पान करने वाला शूद्र इसी जनस्थान में तपस्या कर रहा है। क्या रामभद्र फिर इन वन को सुशोभित करेंगे?

५२. आत्रेयी--भद्रे, गम्यतेऽधुना।

आत्रेयी--आर्या, मैं अब जा रही हूँ।

५३. वासन्ती--आर्ये आत्रेयि, एवमस्तु। कठोरश्च दिवसः।

कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणाकम्पेन संपातिभि-
र्घर्मस्रंसितबन्धनैश्च कुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम्।
छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः
कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमाः॥९॥

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ते।)

इति शुद्धविष्कम्भः।

अन्वय--कूले छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्टकीटत्वचः कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कुलायद्रुमाः कण्डूलद्विपगण्डपिण्डकषणाकम्पेन संपातिभिः घर्मस्रंसितबन्धनैः च कुसुमैः गोदावरीम् अर्चन्ति।

वासन्ती--आर्या आत्रेयी, अच्छी बात है। दिन कठोर (कड़ी धूप वाला) हो गया है।

(गोदावरी के) किनारे छाया में (भूमि को) कुरेदने वाले पक्षियों की चोंच से जिनके कीड़े निकाले गए हैं ऐसी छाल वाले, कलरव करते हुए तथा थके हुए कबूतर और मुर्गों के समूह से युक्त, पक्षियों के घोंसले वाले वृक्ष, हाथियों के खुजलाहट वाले कपोल-भाग की रगड़ से हिलने के कारण गिरने वाले तथा धूप से शिथिल वृन्तों वाले फूलों से गोदावरी की पूजा कर रहे हैं॥९॥

(घूम कर दोनों का प्रस्थान)

शुद्ध-विष्कम्भक समाप्त।

पाठभेद--५३. काले-० कषणोत्कम्पेन (रगड़ के तीव्र कम्पन से), का०-बन्धनैः स्वकुसुमै० (बन्धन वाले अपने फूलों से)।

संस्कृत-व्याख्या

कूले–गोदावर्याः तटे, छाया०–छायायाम् आतपरहिते प्रदेशे अपस्किरमाणाः भोजनार्थं चञ्च्वा भूमिं विलिखन्तः ये विष्किराः खगाः तेषां मुखैः चञ्चुभिः व्याकृष्टाः निःसारिताः कीटाः कृमयः याभ्यः तथाविधाः त्वचः वल्कलानि येषां ते, कूजत्०––कूजन्तः कलरवं कुर्वन्तः क्लान्ताः आतपपरिश्रान्ताः कपोताः पारावताः कुक्कुटाश्च तेषां कुलानि समूहाः येषु ते, कुलाय०––नीड-सहिताः वृक्षाः, कण्डूल०–कण्डूलाः कण्डूयुक्ताः द्विपाः हस्तिनः तेषां गण्डपिण्डानां कपोलभागानाम् कषणेन घर्षणेन यः आकम्पः अत्यधिकः कम्पः तेन, संपातिभिः–संपतद्भिः, घर्म०––घर्मेण आतपेन स्रंसितानि शिथिलानि बन्धनानि वृत्तानि येषां तैः, कुसुमैः––पुष्पैः, गोदावरीं––गोदावरीं नदीम्, अर्चन्ति—पूजयन्ति । अत्रोत्प्रेक्षा स्वभावोक्तिश्चालंकारौ । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **अधोमुखः**—नीचे की ओर मुँह करके । अधः मुखं यस्य सः, बहु० । (२) **धूमपः**—धूएँ का पान करने वाला । धूमं पिबति इति, धूम+पा+क (अ) । आतोऽनुपसर्गे० (३-२-३) से क । आ का लोप । इस तपस्या में व्यक्ति किसी पेड़ पर नीचे की ओर मुंह लटका कर लेट जाता है और नीचे धूनि सुलगाता है । धूनि से उठने वाले धूएँ को पीता हुआ अपनी तपस्या करता है । (३) **कण्डूल०**–कण्डूल—खुजलाहट वाले, द्विप—हाथी के, गण्डपिण्ड—कपोलभाग के , कषण–रगड़ से, आकम्प—अधिक हिलने से । कण्डूलाः द्विपगण्डपिण्डाः (कर्मधा०), तेषां कषणेन आकम्पः, तेन, तत्पु० । कण्डूलः—कण्डूः विद्यते अस्य इति, कण्डू+लच् (ल) । सिध्मादिभ्यश्च (५-२-९७) से लच् । द्विपः—द्वि+पा+ क (अ) । कषणम्—कष्+ल्युट् । आकम्पः—आ+कम्प्+घञ् । (४) **संपातिभिः**—गिरने वाले । संपतन्ति इति, सम्+पत्+णिनि+तृ०बहु० । (५) **घर्म०**—घर्म—धूप से, स्रंसित—ढीले, बन्धन—बन्धन वाले । घर्मेण स्रंसितानि बन्धानि येषां तैः, बहु० । स्रंसित—स्रंस्+णिच्+क्त । (६) **छाया०**–छाया में, अपस्किरमाण—चोंच से भूमि को कुरेदते हुए, विष्किर—पक्षियों के, मुख—चोंच से, व्याकृष्ट—निकाले गए हैं, कीटत्वचः—कीड़े जिसमें से ऐसी त्वचा वाले । छायायाम् अपस्किरमाणाः (तत्पु०), तादृशाः विष्किराः (कर्मधा०),

तेषां मुखैः व्याकृष्टाः कीटाः याभ्यः ताः (बहु०), तादृशाः त्वचः येषां ते, बहु० । अपस्किरमाण—अप+कृ धातु को हर्ष के कारण भूमि को कुरेदना अर्थ में आत्मनेपद होता है और धातु से पहले स् लग जाता है । किरतेर्हर्ष० (वा०) से आत्मनेपद और अपाच्चतुष्पा० (६-१-१४२) से स् । इसका अपस्किरते रूप बनता है। लट् को शानच् करने पर अपस्किरमाण रूप होगा । विष्किर—पक्षी । वि+किर को पक्षी अर्थ में स् होने से विष्किर रूप होता है । विष्किरः शकुनि० (६-१-१५०) से स् । व्याकृष्ट—वि+आ+कृष्+क्त । (७) कूजत्०—शब्द करते हुए, क्लान्त—थके हुए, कपोत—कबूतर, कुक्कुटकुलाः— मुर्गों के झुंड । कूजन्तः क्लान्ताः ये कपोताः कुक्कुटाः च (कर्मधा०), तेषां कुलानि येषु ते, बहु० । कूजत्—कूज्+शतृ । क्लान्त—क्लम्+ क्त । (८) कुलाय०—घोंसलों वाले वृक्ष । कुलायसहिताः द्रुमाः कुलायद्रुमाः, शाकपार्थिवादि तत्पु० । (९) **शुद्धविष्कम्भकः**—अंक के प्रारम्भ में भूत और भावी घटनाओं की सूचना देने के लिए विष्कम्भक का प्रयोग होता है । यदि एक या दो मध्यम कोटि के पात्र होंगे तो वह शुद्ध विष्कम्भक होगा । नीच और मध्यम कोटि के पात्र होंगे तो वह मिश्रविष्कम्भक होगा । यहाँ पर मध्यम कोटि के पात्रों के कारण शुद्ध विष्कम्भक है । विष्कम्भ का लक्षण है—वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः । संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ।। मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः । शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ।। (सा० दर्पण ६-५५, ५६) ।

(ततः प्रविशति सदयोद्यतखड्गो रामभद्रः)

५४. रामः—

हे हस्त दक्षिण ! मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम् ।
रामस्य बाहुरसि निर्भरगर्भखिन्न-
सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते ।।१०।।

पाठभेद—५४. काले—रे (अरे), का०—गात्रमसि निर्भर० (शरीर हो, जो पूर्ण०), काले—गात्रमसि दुर्वह० (शरीर हो, जो कठिनाई से ढोने योग्य गर्भभार०) ।

(कथंचित्प्रहृत्य) कृतं रामसदृशं कर्म । अपि जीवेत्स ब्राह्मण-पुत्रः ।

अन्वय—हे दक्षिण हस्त ! द्विजस्य मृतस्य शिशोः जीवातवे शूद्रमुनौ कृपाणं विसृज । निर्भरगर्भखिन्नसीताविवासनपटोः रामस्य बाहुः असि । ते करुणा कुतः ।

(तदनन्तर दयापूर्वक खड्ग उठाए हुए रामभद्र का प्रवेश)

राम—हे दक्षिण हाथ ! ब्राह्मण के मृत बालक को जीवित करने के लिए शूद्र तपस्वी पर कृपाण चला । तू पूर्ण गर्भ के भार से खिन्न सीता के निर्वासन में चतुर राम की भुजा है । तुझमें दया कहाँ ? ।।१०।।

(किसी प्रकार प्रहार करके) यह राम के योग्य काम किया है । क्या वह ब्राह्मण का बालक जीवित हो गया होगा ?

संस्कृत-व्याख्या

हे दक्षिण हस्त—हे वामेतर कर, द्विजस्य—ब्राह्मणस्य, मृतस्य—निधनं प्राप्तस्य, शिशोः—बालकस्य, जीवातवे—संजीवनाय, शूद्रमुनौ—शूद्रतपस्विनि, कृपाणं—खड्गम्, विसृज—त्यज । निर्भर०—निर्भरः पूर्णः यो गर्भः तेन खिन्ना व्याकुला या सीता जानकी तस्याः विवासनं निर्वासनं तस्मिन् पटोः दक्षस्य, रामस्य—दाशरथेः, बाहुः—भुजः, असि—वर्तसे । ते—तव, करुणा—दया, कुतः—कस्माद् हेतोः । न कुतोऽपि संभवतीत्यर्थः । काव्यलिङ्गमलंकारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **सदयो०**—दयापूर्वक उठाया है खड्ग जिसने । दयया सहितं सदयम् (बहु०), सदयम् उद्यतः खड्गः येन सः, बहु० । उद्यतः—उद्+यम्+क्त । म् का लोप । सदय का अभिप्राय है कि राम हृदय से किसी को कष्ट नहीं देना चाहते थे । ब्राह्मण-बालक के रक्षार्थं उन्हें शम्बूक का वध करना पड़ा है । (२) **दक्षिण**—दाहिना हाथ । दक्षिण का अर्थं योग्य, उचित, चतुर भी है । अतः दक्षिण पर व्यंग्य है कि तू शम्बूक पर अनुचित कार्य कर रहा है । (३) **जीवातवे**—जीवित करने के लिए । जीव्+आतु (उणादि०)=जीवातु+च० एक० ।

(४) **विसृज**—छोड़ो, डालो, चलाओ। वि+सृज्+लोट् म० एक०। (५) **शूद्रमुनौ**—शूद्र मुनि शम्बूक पर। शूद्रः चासौ मुनिः, तस्मिन्, कर्मधा०। (६) **निर्भर०**—पूर्ण गर्भ के भार के कारण खिन्न सीता को निर्वासित करने में चतुर। निर्भरः चासौ गर्भः–निर्भरगर्भः (कर्मधा०), तेन खिन्ना-निर्भर० (तत्पु०), सा चासौ सीता (कर्मधा०), तस्याः विवासने पटुः, तस्य (तत्पु०)। निर्भर–पूर्ण। गर्भ—गर्भ के भार से। खिन्न—दुःखित, व्याकुल। खिद्+क्त। रदाभ्यां० (८-२-४२) से द् को न् और त को न। विवासन—निर्वासित करना। वि+वस्+णिच्+ल्युट्। (७) **करुणा०**—तुझे दया कहाँ? इसी हाथ ने सीता का परित्याग किया है, इसमें दया नाममात्र को नहीं है। (८) करुणा के अभाव के प्रति सीताविवासन-पटुता कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है। (९) **प्रहृत्य**—प्रहार करके। प्र+हृ+ल्यप्। बीच में त्। (१०) **राम०**–राम के तुल्य। रामेण सदृशम्, (तत्पु०)। राम अपने आपको कोसते हैं। (११) **अपि जीवेत्**—संभव है कि जीवित हो जाए। यहाँ पर संभावना अर्थ में संभावनेऽलमिति० (३-३-१५४) से विधिलिङ। राम को अभी सन्देह है कि ब्राह्मण-बालक जीवित हो जाएगा कि नहीं। (१२) भवभूति ने यहाँ पर प्राचीन नाट्याचार्यों के नियम का उल्लंघन किया है। नाटकीय नियमानुसार रंगमंच पर वध का दृश्य उपस्थित करना निषिद्ध है। रंगमंच पर निषिद्ध कार्य ये हैं—दूराह्वानं वधो युद्धं, राज्यदेशादिविप्लवः। विवाहो भोजनं शापोत्सर्गौ मृत्यू रतं तथा॥ दन्तच्छेद्यं नखच्छेद्यमन्यद् व्रीडाकरं च यत्। शयनाधरपानादि नगराद्यवरोधनम्॥ स्नानानुलेपने चैभिर्वर्जितो नातिविस्तरः। (सा० दर्पण ६. १६-१८)।

(प्रविश्य)

५५. दिव्यपुरुषः—जयतु देवः।

दत्ताभये त्वयि यमादपि दण्डधारे
संजीवितः शिशुरसौ मम चेयमृद्धिः।
शम्बूक एष शिरसा चरणौ नतस्ते
सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति ॥११॥

अन्वय—यमाद् अपि दत्ताभये त्वयि दण्डधारे (सति) असौ शिशुः संजीवितः, मम च इयम् ऋद्धिः। एष शम्बूकः शिरसा ते चरणौ नतः। सत्सङ्गजानि निधनानि अपि तारयन्ति।

(प्रविष्ट होकर)

दिव्यपुरुष—महाराज की जय हो।

यम से भी अभय-दान देने वाले आपके दण्ड धारण करने पर वह ब्राह्मण-बालक जीवित हो उठा और मेरी यह श्री-वृद्धि (दिव्यरूप-प्राप्ति) हुई। यह शम्बूक सिर झुकाकर आपके चरणों में नमस्कार करता है। सज्जनों की संगति से उत्पन्न मृत्यु भी मनुष्यों का उद्धार करती है ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या

यमाद् अपि—अन्तकादपि, दत्ताभये—अभयप्रदे, त्वयि—रामे, दण्डधारे—दण्डधारके सति, असौ—दूरस्थः, शिशुः—ब्राह्मणबालकः, संजीवितः—जीवनं प्राप्तः। मम च—मम शम्बूकस्य च, इयम्—एषा, ऋद्धिः—श्रीवृद्धिः, दिव्य-रूपत्वप्राप्तिरभूदित्यर्थः। एषः—अयम्, शम्बूकः—शम्बूकनामकशूद्रमुनिः, शिरसा—मूर्ध्ना, ते —भवतः, चरणौ—पादौ, नतः—प्रणतः, अस्मीति शेषः। सत्सङ्गजानि—सज्जनसम्पर्कसमुत्पन्नानि, निधनानि अपि—मरणानि अपि, तारयन्ति—उद्धारकारणानि भवन्ति। अत्र विषमोऽर्थान्तरन्यासश्चालंकारौ। वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **दिव्यपुरुषः**—राम के द्वारा मारे जाने पर शम्बूक तुरन्त दिव्य पुरुष हो जाता है और अब वह दिव्य पुरुष होकर बात कर रहा है। दिव्यः चासौ पुरुषः, कर्मधा०। दिवि भवः—दिव्यः, दिव्+यत् (य)। (२) **दत्ताभये**—जिसने अभयदान दिया है। दत्तम् अभयं येन सः, तस्मिन्, बहु०। दत्त—दा+क्त। (३) **यमादपि**—यम से भी। भीत्रार्थानां भयहेतुः (१-४-२५) से रक्षा अर्थ में पंचमी। (४) **दण्डधारे**—दण्ड के धारक होने पर। यस्य च भावेन० (२-३-३७) से भाव अर्थ में सप्तमी। दण्डधारः—दण्डं धारयति इति, दण्ड+धृ+णिच्+अण्। कर्मण्यण् (३-२-१) से अण्। (५) **संजीवितः**—जीवित हो गया। सम्+जीव्+क्त। (६) **ऋद्धि**—समृद्धि,

श्रीवृद्धि। अर्थात् अब मेरी श्रीवृद्धि हो गई है और मैं दिव्य पुरुष हो गया हूँ। ऋध्+क्तिन् (ति)। (७) नतः—आपके चरणों में सिर झुकाता हूँ। नतः—नम्+क्त। म् का लोप। (८) सत्सङ्गजानि—सज्जनों की संगति से उत्पन्न। सत्सङ्गाद् जायन्ते इति, उपपद समास। सत्सङ्ग+जन्+ड (अ)। अन् का लोप। (९) निधनानि—मृत्यु। नि+धा + क्यु (अन) (उणादि०)। आ का लोप होकर निधन बनता है। (१०) तारयन्ति—तार देती हैं, उद्धार कर देती हैं। तृ+णिच्+ लट् प्र० पु० बहु०। (११) यहाँ पर कारण दण्ड से कार्य समृद्धिरूपी विरुद्ध फल उत्पन्न होने से विषम अलंकार है। सामान्य अर्थ सत्संगज मृत्यु से उद्धार के द्वारा विशेष अर्थ शम्बूक की श्रीवृद्धि का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

५६. रामः—द्वयमपि प्रियं नः। तदनुभूयतामुग्रस्य तपसः परिपाकः।

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च यत्र पुण्याश्च सम्पदः।
वैराजा नाम ते लोकास्तैजसाः सन्तु ते शिवाः ॥१२॥

अन्वय—यत्र आनन्दाः च मोदाः च, यत्र पुण्याः सम्पदः च। ते वैराजाः नाम तैजसाः लोकाः, ते शिवाः सन्तु।

राम—दोनों ही बातें हमारे लिए प्रिय हैं, इसलिए अब तुम उग्र तपस्या का फल भोगो।

जहाँ पर आनन्द और आमोद तथा पवित्र सम्पदाएँ हैं, वे वैराज नामक तेजोमय लोक तुम्हारे लिए कल्याणकारी हों ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या

यत्र—येषु लोकेषु, आनन्दाः च—आत्मानुभवजन्या हर्षाः, मोदाः च—दिव्यविषयानुभवजन्याः प्रमोदाः च, यत्र—येषु लोकेषु, पुण्याः—शुभाः, सम्पदः च—विभूतयश्च सन्ति। ते—तादृशाः, वैराजाः नाम—वैराजनामकाः, तैजसाः—तेजोमयाः, लोकाः—भुवनानि, ते—तव शम्बूकस्य, शिवाः सन्तु—कल्याणकारिणः सन्तु। श्लोकोः वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **द्वयमपि**—दोनों बातें ही हमारे लिए प्रिय हैं, अर्थात् ब्राह्मण-बालक का पुनर्जीवित होना और तुम्हारी श्रीवृद्धि। द्वयम्—द्वौ अवयवौ यस्य। द्वि+अयच् (अय)। इ का लोप। अवयव अर्थ में तय प्रत्यय को द्वित्रिभ्यां० (५-२-४३) से अयच्। (२) **अनुभूयताम्**—अनुभव करो। अनु+भू+लोट् प्र० पु० एक०, कर्मवाच्य प्रयोग। (३) **परिपाकः**—परिणाम, फल। परि+पच्+घञ् (अ)। च् को क्। (४) **आनन्दाः च**—वैराज नामक लोकों में आनन्द ही है। आनन्द का अर्थ है—आत्मसाक्षात्कार से होने वाला सुख। (५) **मोदाः च**—विषयों के अनुभव से होने वाला हर्ष। (६) **वैराजाः**—वैराजनामक लोक। इनको ब्रह्मलोक और सत्यलोक भी कहते हैं। विराट् अर्थात् ब्रह्म से संबद्ध ये लोक हैं। विराजः इमे, विराज्+अण्=वैराजाः। विराज्—वि+राज्+क्विप् (०)। पुराणों के अनुसार कुल १४ लोक हैं। ७ ऊपर और ७ नीचे। ऊपर वाले सात लोक हैं—भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्। इनमें से **प्रथम तीन** कृतक या अनित्य हैं। महः नित्य और अनित्य दोनों है। अन्त के तीन नित्य हैं। इनका विनाश नहीं होता है। इनमें अन्तिम सत्य ब्रह्मलोक है। उसको ही वैराज लोक भी कहते हैं। उसको प्राप्त होने वाले व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता है। (७) **तैजसाः**—तेजोमय। तेजसः इमे, तेजस्+अण्। ये सदा प्रकाशमय हैं। (८) **शिवाः**—ये लोक तुम्हें प्राप्त हों और तुम्हारे लिए कल्याणकारी हों।

५७. शम्बूकः—स्वामिन्, युष्मत्प्रसादादेवैष महिमा। किमत्र तपसा? अथवा महदुपकृतं तपसा—

अन्वेष्टव्यो यदसि भुवने भूतनाथः शरण्यो
मामन्विष्यन्निह वृषलकं योजनानां शतानि।
क्रान्त्वा प्राप्तः स इह तपसां संप्रसादोऽन्यथा तु
क्वायोध्यायाः पुनरुपगमो दण्डकायां वने वः ॥१३॥

अन्वय—भुवने अन्वेष्टव्यः भूतनाथः शरण्यः (त्वम्) यत् मां वृषलकम् अन्विष्यन् योजनानां शतानि क्रान्त्वा इह प्राप्तः असि। इह स तपसां संप्रसादः, अन्यथा तु वः अयोध्यायाः दण्डकायां वने पुनः उपगमः क्व?

पाठभेद—५७ का०, काले—चेत् (यदि)।

शम्बूक—हे स्वामिन्, आपकी कृपा से ही मुझे यह महत्त्व प्राप्त हुआ है। इसमें तप ने क्या किया? अथवा तप ने मेरा बड़ा उपकार किया है–

संसार में ढूँढ़ने योग्य, प्राणियों के स्वामी और शरणागत-पालक आप जो मुझ तुच्छ शूद्र को ढूँढ़ते हुए सैकड़ों योजन (मार्ग) पार करके यहाँ आए हैं, यह तपस्या का ही अनुग्रह है। अन्यथा आपका अयोध्या से दण्डक-वन में फिर आना कैसे संभव था? ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या

भुवने—लोके, अन्वेष्टव्यः—गवेषणीयः, भूतनाथः—जीवानां पतिः, शरण्यः—शरणागतपालकः, त्वं यत्, मां—शम्बूकम्, वृषलकं—तुच्छशूद्रम्, अन्विष्यन्—मार्गयमाणः, योजनानां शतानि—चतुःक्रोशानां शतकानि, क्रान्त्वा—अतिक्रम्य, इह—दण्डकवने, प्राप्तः असि—समुपागतोऽसि, इह—अस्मिन् विषये, सः—भवदागमः, तपसां—मद्विहितानां तपस्यानाम्, संप्रसादः—अनुग्रहः। अन्यथा तु—एतदभावे तु, वः—युष्माकम्, अयोध्यायाः—अयोध्यानगर्याः, दण्डकायां वने—दण्डकारण्ये, पुनः—भूयः, उपगमः—आगमनम्, क्व—कुतः संभवति? अत्र विषमः काव्यलिङ्गं चालंकारौ। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **युष्मत्०**—आपकी कृपा से ही। युष्माकं प्रसादात्, तत्पु०। प्रसाद—प्र+सद्+घञ्। (२) **महिमा**—महत्त्व। महत्+इमनिच् (इमन्)। टि अत् का लोप। भाव अर्थ में इमन्। (३) **किमत्र०**—इसमें तपस्या ने क्या किया? किम् के कारण तृतीया। (४) **उपकृतम्**—उपकार किया। उप+कृ+क्त। अथवा तपस्या ने मेरे ऊपर बहुत उपकार किया है। उसका ही आगे वर्णन है। (५) **अन्वेष्टव्यः**—ढूँढ़ने के योग्य। अनु+इष्+तव्य। यहाँ पर राम को ब्रह्म का अवतार माना है। योगी उसको ही ढूंढ़ते हैं। य आत्मा अपहतपाप्मा......सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः (छान्दोग्य उप० ८–७–१)। (६) **भूतनाथः**—जीवों के स्वामी। भूतानां नाथः, तत्पु०। (७) **शरण्यः**—शरणागतों के रक्षक। शरणे साधुः। शरण+यत् (य)। तत्र साधुः (४-४-९८) से यत्। (८) **अन्विष्यन्**—ढूँढ़ते हुए। अनु+इष्+शतृ। (९) **वृषलकम्**—

तुच्छ शूद्र को। कुत्सितः वृषलः वृषलकः, तम्। कुत्सित अर्थ में कुत्सिते (५-३-७४) से कन् (क) प्रत्यय। मनु ने वृषल का अर्थ किया है—वृष+ल, जो वृष (धर्म) का लोप करता है। वृषो हि भगवान् धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम्। वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद् धर्मं न लोपयेत्॥ (मनु०)। (१०) योजनानां०—सैकड़ों योजन। एक योजन ४ कोस अर्थात् ८ मील के लगभग होता है। शतानि में बहुत्व अर्थ में बहुवचन है। (११) क्रान्त्वा—पार करके, लाँघ करके। क्रम्+क्त्वा। क्रमश्च क्त्वि (६-४-१८) से विकल्प से अ को आ। इसके क्रन्त्वा और क्रमित्वा रूप भी बनते हैं। (१२) प्राप्तः—आए हैं। प्र+आप्+क्त। (१३) संप्रसादः—कृपा, अनुग्रह। सम्+प्र+सद्+घञ्। (१४) उपगमः—आगमन। उप+गम्+अप् (अ)। ग्रहवृदृ० (३-३-५८) से अप्। (१५) यहाँ पर अन्वेषणीय राम को ही अन्वेषक बनाने से विरुद्ध गुणों के संघटन के कारण विषम अलंकार है। राम के आगमन के प्रति तपस्या कारण होने से काव्यलिंग अलंकार है।

५८. रामः—किं नाम दण्डकेयम्? (सर्वतोऽवलोक्य)

हा, कथम्—

स्निग्धश्यामाः क्वचिदपरतो भीषणाभोगरूक्षाः
स्थाने स्थाने मुखरककुभो झाङ्कृतैर्निर्झराणाम्।
एते तीर्थाश्रमगिरिसरिद्गर्तकान्तारमिश्राः
संदृश्यन्ते परिचितभुवो दण्डकारण्यभागाः॥१४॥

अन्वय—क्वचित् स्निग्धश्यामाः, अपरतः भीषणाभोगरूक्षाः, स्थाने स्थाने निर्झराणां झाङ्कृतैः मुखरककुभः, तीर्थाश्रमगिरिसरिद्गर्तकान्तारमिश्राः परिचितभुवः एते दण्डकारण्यभागाः संदृश्यन्ते।

राम—क्या यह दण्डक-वन है? (चारों ओर देखकर) हा, कैसे—

कहीं मनोहर और हरे-भरे, दूसरी ओर भयंकर विस्तार के कारण रूखे, स्थान-स्थान पर झरनों की झंकार से झंकृत दिशाओं से युक्त, तीर्थ आश्रम पर्वत नदी गड्ढे और दुर्गम मार्गों से मिश्रित तथा परिचित भूमि वाले ये दण्डक-वन के प्रदेश दिखाई दे रहे हैं॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या

क्वचित्—कस्मिंश्चिद् भागे, स्निग्धश्यामाः—स्निग्धाः मनोहराः श्यामाः श्यामलवर्णाः, अपरतः—अन्यस्मिन् भागे, भीषणा०—भीषणेन भयावहेन आभोगेन विस्तारेण रूक्षाः विक्षोभकराः, स्थाने स्थाने—यत्र तत्र, निर्झराणां—जलप्रवाहानाम्, झाङ्कृतैः—झङ्कारैः, मुखर०—मुखराः शब्दायमानाः ककुभः दिशः येषु ते, तीर्था०—तीर्थैः पुण्याभिषेकस्थलैः आश्रमैः तपोवनैः गिरिभिः पर्वतैः सरिद्भिः नदीभिः गर्तैः अवटैः कान्तारैः दुर्गममार्गैः च मिश्राः युक्ताः, परिचित०—परिचिताः ज्ञातपूर्वाः भुवः प्रदेशाः येषां ते, एते—पुरोवर्तमानाः, दण्डका०—दण्डकवनस्य प्रदेशाः, सन्दृश्यन्ते—मया विलोक्यन्ते । स्वभावोक्ति-रलंकारः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **किं नाम०**—क्या यह दण्डक वन है ? राम को अभी तक ध्यान नहीं था कि वे दण्डक-वन में हैं । दण्डक और दण्डका ये दोनों नाम दण्डकारण्य के हैं । (२) **स्निग्ध०**—मनोहर और हरे-भरे । स्निग्धाः च ते श्यामाः, कर्मधा० । स्निग्ध—चिकने, मनोहर । स्निह्+क्त । श्याम—वृक्ष वनस्पतियों से भरे हरे होने के कारण हरियाली वाले । (३) **भीषणा०**—भीषण—भयंकर, आभोग—विस्तार से, रूक्षाः—रूखे या चित्त को क्षुब्ध करने वाले । भीषणः यः आभोगः (कर्मधा०), तेन रूक्षाः, तत्पु० । आभोग—आ+भुज्+घञ् । (४) **अपरतः**—दूसरी ओर । सप्तमी के अर्थ में तसिल् (तस्) प्रत्यय । (५) **स्थाने-स्थाने**—बीच-बीच में, जहाँ तहाँ । (६) **मुखर०**—मुखर—शब्दयुक्त, ककुभः—दिशाओं वाले । मुखराः ककुभः येषु ते, बहु० । मुखर—मुख+र । रप्रकरणे खमुख० (वा०) से र । (७) **झाङ्कृतैः**—झंकार से । झाङ् अनुकरणात्मक शब्द है । (८) **तीर्था०**—तीर्थ, आश्रम, पहाड़, नदी, गड्ढे और दुर्गम मार्गों से युक्त । गर्त—गड्ढा । कान्तार—दुर्गम मार्ग । कान्तार का अर्थ वन भी है । तीर्थानि च आश्रमाः च गिरयः च सरितः च गर्ताः च कान्ताराः च (द्वन्द्व), तैः मिश्राः, तत्पु० । (९) **संदृश्यन्ते**—दिखाई पड़ रहे हैं । सम्+दृश्+कर्मवाच्य लट्+ +प्र० बहु० । (१०) **परिचित०**—परिचित भूमि वाले । परिचिताः भुवः येषां ते, बहु० । (११) **दण्डका०**—दण्डक-वन के प्रदेश । दण्डकारण्यस्य

भागाः, तत्पु० । (१२) भवभूति ने इस श्लोक में दण्डकवन का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। स्वाभाविक वर्णन के कारण स्वभावोक्ति अलंकार है।

५६. शम्बूकः--दण्डकैवैषा। अत्र किल पूर्वं निवसता देवेन--

चतुर्दश सहस्राणि चतुर्दश च राक्षसाः।
त्रयश्च दूषणखरत्रिमूर्धानो रणे हताः ।।१५।।

येन सिद्धक्षेत्रेऽस्मिन् मादृशामपि जानपदानामकुतोभयः संचारः संवृत्तः।

अन्वय—चतुर्दश सहस्राणि चतुर्दश च राक्षसाः, त्रयः दूषणखरत्रिमूर्धानः च रणे हताः ।।

शम्बूक—यह दण्डक-वन ही है। आपने पहले यहाँ रहते हुए--

चौदह हजार चौदह राक्षसों को तथा दूषण, खर और त्रिमूर्धा—इन तीनों को युद्ध में मारा था।।१५।।

जिससे इस सिद्धों के क्षेत्र में मुझ जैसे (साधारण) नागरिकों का भी निर्भयतापूर्वक संचार हुआ है।

संस्कृत-व्याख्या

चतुर्दश०—चतुर्दशाधिकचतुर्दशसहस्रसंख्यकाः, राक्षसाः—दानवाः, त्रयः—त्रिसंख्यकाः, दूषण०—दूषणः खरः त्रिमूर्धा च राक्षसाः, रणे—युद्धे, हताः—व्यापादिताः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **निवसता**—रहते हुए। नि+वस्+शतृ+तृ० एक०। (२) **चतुर्दश०**—आपने यहाँ पर चौदह हजार चौदह राक्षस मारे थे। (३) **राक्षसाः**—राक्षस। रक्षांसि एव राक्षसाः, रक्षस्+अण्। स्वार्थ में अण्। (४) **दूषण०**—खर, दूषण और त्रिमूर्धा या त्रिशिरा राक्षस। ये तीनों राक्षसों के नेता थे। भवभूति ने यहाँ पर व्याकरण-सम्बन्धी एक भूल की है। समास करने पर त्रिमूर्धन्

पाठभेद—५६. काले—रक्षसां भीमकर्मणाम् (भयंकर काम करने वाले राक्षसों के)

शब्द से ष (अ) प्रत्यय होने पर त्रिमूर्ध अकारान्त शब्द हो जाता है। त्रयः मूर्धानो यस्य सः, त्रिमूर्धः, बहु०। द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः (५-४-११५) से समासान्त ष प्रत्यय। अतः दूषणखरत्रिमूर्धाः प्रयोग होना चाहिए। समासान्तविधि को अनित्य मानने पर यह रूप बन सकता है। कुछ संस्करणों ने इस भूल के सुधार के लिए दूषणखरत्रिमूर्धा नो० यह पाठ मानकर अर्थ किया है कि दूषण, खर, त्रिमूर्धा को नहीं मारा है? अर्थात् मारा है। समासान्तविधि को अनित्य मानकर ही यह प्रयोग उचित समझना चाहिये। नो को अलग करने में क्लिष्ट कल्पना है। (५) हताः—मारे। हन्+क्त+प्र० बहु०। (६) सिद्धक्षेत्रे—सिद्धों के क्षेत्र में, सिद्धों के प्रदेश में। सिद्धानां क्षेत्रे, तत्पु०। (७) मादृशाम्०—मुझ जैसे का। मादृश् शब्द है। मत्+दृश्=मादृश्। (८) जानपदानाम्—नगरवासियों का। जनपद का अर्थ है नगर और ग्राम। जनपदे भवाः जानपदाः, तेषाम्। जनपद+अण्। (९) अकुतोभयः—निर्भीकता के साथ। न कुतः भयं यस्मिन् सः, बहु०। जहाँ किसी प्रकार का भय नहीं है। (१०) संचारः—विचरण, आना-जाना। सम्+चर्+घञ्। (११) संवृत्तः—हुआ है। सम्+वृत्+क्त।

६०. रामः—न केवलं दण्डकैव, जनस्थानमपि?

राम—यह केवल दण्डकारण्य ही नहीं, अपितु जनस्थान भी है?

६१. शम्बूकः—बाढम्। एतानि खलु सर्वभूतरोमहर्षणान्युन्मत्तचण्डश्वापदकुलसङ्कुलगिरिगह्वराणि जनस्थानपर्यन्तदीर्घारण्यानि दक्षिणां दिशमभिवर्तन्ते। तथा हि—

निष्कूजस्तिमिताः क्वचित्क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्वस्वनाः
स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः।
सीमानः प्रदरोदरेषु विरलस्वल्पाम्भसो यास्वयं
तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैरजगरस्वेदद्रवः पीयते ॥१६॥

पाठभेद—६१. काले—घोर० (भयंकर)। का० विरलस्वच्छाम्भसो (न्यून और स्वच्छ जल वाले), काले—विलसत्स्वल्पाम्भसो (जहाँ पर थोड़ा जल सुशोभित हो रहा है)।

अन्वय—सीमानः क्वचित् निष्कूजस्तिमिताः, क्वचिदपि प्रोच्चण्डसत्त्व-स्वनाः, स्वेच्छासुप्तगभीरभोगभुजगश्वासप्रदीप्ताग्नयः, प्रदरोदरेषु विरलस्वल्पाम्भसः (सन्ति), यासु तृष्यद्भिः प्रतिसूर्यकैः अयम् अजगरस्वेदद्रवः पीयते ॥

शम्बूक—जी हाँ। ये सारे प्राणियों के लिए रोमांचकारी, उन्मत्त और भयंकर हिंसक जीवों के समूह से व्याप्त पर्वत-कन्दरा वाले, जनस्थान की सीमा पर विद्यमान विशाल वन दक्षिण दिशा की ओर फैले हुए हैं। जैसा कि—

ये सीमा-प्रदेश कहीं पर नीरव और निश्चेष्ट हैं, कहीं पर भयंकर जन्तुओं के शब्द से युक्त हैं, (कहीं पर) इच्छानुसार सोए हुए विशालकाय सर्पों के श्वास से प्रज्वलित अग्नि वाले हैं और गड्ढों में अतिन्यून जल से युक्त हैं। जहाँ पर प्यासे गिरगिट अजगरों के पसीने की बूँदें पी रहे हैं ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या

सीमानः—पर्यन्तप्रदेशाः, क्वचित्—कस्मिंश्चित् स्थाने, निष्कूज०—निष्कूजाः नीरवाः स्तिमिताः निश्चेष्टाश्च, क्वचिदपि—कस्मिंश्चित् स्थाने च, प्रोच्चण्ड०—प्रोच्चण्डानां भयावहानां सत्त्वानां जन्तूनां स्वनाः शब्दाः यासु ताः, स्वेच्छा०—स्वेच्छया इच्छानुसारं सुप्ताः निद्रिताः गभीरभोगाः विशालकायाः ये भुजगाः सर्पाः तेषां श्वासैः निःश्वासवायुभिः प्रदीप्ताः प्रज्वलिताः अग्नयः वह्नयः यासु ताः, प्रदरो०—प्रदराणां गर्तानाम् उदरेषु मध्यभागेषु, विरल०—विरलस्वल्पम् अतिन्यूनम् अम्भः जलं यासु तादृशाः सन्ति। यासु—सीमसु, तृष्यद्भिः—पिपासितैः, प्रतिसूर्यकैः—कृकलासैः, अजगर०—अजगराणां महासर्पाणां स्वेदद्रवः घर्मबिन्दुः, पीयते—आचम्यते। स्वभावोक्तिरलंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **बाढम्**—जी हाँ, ठीक है। यह स्वीकृति-सूचक अव्यय है। (२) **सर्वभूत०**—सारे प्राणियों के लिए रोमांचकारी। सर्वाणि भूतानि—सर्वभूतानि (कर्मधा०), तेषां रोमहर्षणानि, तत्पु०। रोमाणि हर्षयन्तीति रोमहर्षणानि। रोंगटों को खड़ा कर देने वाले। हर्षण—हृष्+णिच्+ल्युट्। (३) **उन्मत्त०**—उन्मत्त—मदयुक्त, चण्ड—भयंकर, श्वापद—हिंसक जीवों के, कुल—समूह से, संकुल—व्याप्त, गिरिगह्वर—पर्वतों की कन्दरा से युक्त। उन्मत्ताः चण्डाः

च ते श्वापदाः (कर्मधा०), तेषां कुलैः संकुलानि गिरिगह्वराणि येषु तानि, (बहु०) । उन्मत्त—उत्+मद्+क्त । श्वापद—शुनः पदानि इव पदानि येषां ते श्वापदाः । शुनो दन्तदंष्ट्रा० (वा०)से श्व के अ को दीर्घ । (४) **जनस्थान०**—जनस्थान की सीमा पर विद्यमान विशाल वन । पर्यन्त—सीमा । जनस्थानस्य पर्यन्ते स्थितानि दीर्घारण्यानि, शाकपार्थिवादि होने से मध्यमपद-लोपी तत्पु० । (५) **दक्षिणां०**—दक्षिण दिशा की ओर फैले हुए हैं। अभिवर्तन्ते—अभि+वृत्+लट् प्र० बहु० । (६) **निष्कूज०**—निष्कूज—नीरव, पक्षियों आदि का शब्द न होने से शब्द-रहित । स्तिमित—शान्त, निश्चेष्ट, जहाँ पत्ता तक नहीं हिल रहा है । निष्कूजाः च ताः स्तिमिताः, कर्मधा० । (७) **प्रोच्चण्ड०**—प्रोच्चण्ड—भयंकर, सत्त्व—प्राणियों के, स्वन—शब्दों से युक्त । प्रोच्चण्डानां सत्त्वानां स्वनाः यासु ताः, बहु० । (८) **स्वेच्छा०**—स्वेच्छा—इच्छानुसार, सुप्त—सोए हुए, गभीरभोग—विशालकाय, भुजग—साँपों के, श्वास—श्वास से, प्रदीप्ताग्नयः—जहाँ पर आग प्रज्वलित हो रही है । स्वेच्छया सुप्ताः स्वेच्छासुप्ताः (तत्पु०), ये गभीरभोगाः भुजगाः (कर्मधा०), तेषां श्वासैः प्रदीप्ताः अग्नयः यासु ताः, बहु० । सुप्त—स्वप्+क्त । भुजग—भुज+गम्+ड । प्रदीप्त—प्र+दीप्+क्त । (९) **प्रदरो०**—प्रदर—गड्ढे के, उदर—बीच में । प्रदराणाम् उदरेषु, तत्पु० । (१०) **विरल०**—अतिन्यून जल वाले । विरलस्वल्पम् अम्भः यासु ताः, बहु० । (११) **तृष्यद्भिः**—प्यासे । तृष्यत्—तृष्+शतृ । (१२) **प्रतिसूर्यकैः**—गिरगिटों के द्वारा । 'सरटः कृकलासः स्यात् प्रतिसूर्यशयानकौ' इति हलायुधः । (१३) **अजगर०**—अजगर के पसीने की बूंदें । अजगराणां स्वेदस्य द्रवः, तत्पु० । अजं गिरति भक्षयति इति अजगरः । अज+गॄ+अच् । अजगर विशालकाय सर्प होता है । यह बकरे तक को निगल जाता है, अतः अजगर नाम पड़ा । (१४) **पीयते**—पिया जाता है । पा+कर्मवाच्य लट् प्र० एक० । (१५) इस श्लोक में भयानक और बीभत्स रस है । भवभूति ने इस श्लोक में प्रकृति के घोर और भयावह रूप का सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण किया है । अतः इसमें स्वाभावोक्ति अलंकार है ।

६२. रामः—

पश्यामि च जनस्थानं भूतपूर्वखरालयम् ।
प्रत्यक्षानिव वृत्तान्तान् पूर्वाननुभवामि च ॥१७॥

(सर्वतोऽवलोक्य) प्रियारामा हि वैदेह्यासीत् । एतानि नाम कान्ताराणि । किमतः परं भयानकं स्यात् । (सास्रम्)

त्वया सह निवत्स्यामि वनेषु मधुगन्धिषु ।
इतीवारमतेहासौ स्नेहस्तस्याः स तादृशः ।।१८।।

न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति ।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ।।१९।।

अन्वय—भूतपूर्वखरालयं जनस्थानं पश्यामि च । पूर्वान् वृत्तान्तान् प्रत्यक्षान् इव अनुभवामि च ।।१७।।

त्वया सह मधुगन्धिषु वनेषु निवत्स्यामि, इति इव असौ इह अरमत । तादृशः तस्याः स स्नेहः (आसीत्) ।।१८।।

यो हि जनः यस्य प्रियः, (स) किञ्चित् न कुर्वाणः अपि सौख्यैः दुःखानि अपोहति । तत् तस्य किमपि द्रव्यम् (अस्ति) ।।१९।।

राम—मैं खर राक्षस के प्राचीन निवास-स्थान जनस्थान को देख रहा हूँ और पुरानी घटनाओं को प्रत्यक्ष के तुल्य अनुभव कर रहा हूँ ।।७।।

(चारों ओर देखकर) सीता को वन प्रिय थे । ये ही वन हैं । इससे अधिक भयानक और क्या होगा ? (आँखों में आँसू भर कर)

'मैं आपके साथ फूलों के मधु की गन्ध से युक्त वनों में रहूँगी' इस प्रकार वह यहाँ पर आनन्दानुभव करती थी । ऐसा उसका वह प्रेम था ।।१८।।

जो व्यक्ति जिसका प्रिय होता है, वह कुछ न करता हुआ भी (साथ रहने मात्र के) सुख से उसके दुःखों को नष्ट कर देता है । वह उसका अनुपम धन होता है ।।१९।।

संस्कृत-व्याख्या

भूतपूर्व०—भूतपूर्वं पुरातनं खरालयं खरराक्षसनिवासस्थानम्, जनस्थानं—

पाठभेद—६२. नि० इतीवारमते हासौ (इस प्रकार वह आनन्दानुभव करती है), का०, काले—इतीहारमतैवासौ (इस प्रकार उसने यहाँ आनन्दानुभव किया) । काले—अकिञ्चिदपि (कुछ भी नहीं) ।

दण्डकारण्यस्य एकदेशम्, पश्यामि च—प्रेक्षे च। पूर्वान्—पुरा घटितान्, वृत्तान्तान्—उदन्तान्, प्रत्यक्षान् इव—पुरोघटितान् इव, अनुभवामि च—अनुभवं करोमि च। भाविकमलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

त्वया—रामेण, सह—सार्धम्, मधु०—मकरन्दगन्धयुक्तेषु, वनेषु—अरण्येषु, निवत्स्यामि—निवासं करिष्यामि, इतीव—एवं प्रकारेण, असौ—सीता, इह—वने, अरमत—सानन्दं व्यचरत्। तादृशः—तथाविधः, तस्याः—सीतायाः, सः—पूर्वानुभूतः, स्नेहः—अनुरागः आसीत्। श्लोको वृत्तम्।

यो हि—यः कश्चित्, जनः—मनुष्यः, यस्य—यस्य जनस्य, प्रियः—प्रेमपात्रं भवति, सः—स जनः, किञ्चित्—किमपि, न कुर्वाणः अपि—न कुर्वन् अपि, सौख्यैः—सहवासजन्यसुखैः, दुःखानि—कष्टानि, अपोहति—विनाशयति। तत्—प्रेमपात्रम्, तस्य—प्रियस्य, किमपि—अनिर्वचनीयम्, द्रव्यं—धनम् अस्ति। अप्रस्तुतप्रशंसाऽर्थान्तरन्यासश्चालंकारौ। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **भूतपूर्व०**—प्राचीन खरराक्षस के निवास-स्थान। पूर्वं भूतः भूतपूर्वः, सुप्सुपा समास। भूतपूर्वे चरट् (५-३-५३) से भूत का पूर्व प्रयोग। भूतपूर्वः खरालयः तम्, कर्मधा०। जनस्थान को खर राक्षस ने अपना अड्डा बनाया हुआ था। (२) **वृत्तान्तान्**—पुरानी घटनाओं को। 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः' इत्यमरः। (३) **अनुभवामि**—अनुभव कर रहा हूँ। पुरानी घटनाएँ मुझे प्रत्यक्ष सी अनुभव हो रही हैं। अनु+भू+लट् उ० एक०। (४) इस श्लोक में प्राचीन घटना का प्रत्यक्ष रूप में अनुभव होने से भाविक अलंकार है। (५) **अवलोक्य**—देखकर। अव+लोक्+णिच्+ल्यप्। (६) **प्रियारामा**—जिसको उपवन (वन) प्रिय हैं। आराम शब्द का अर्थ उपवन, उद्यान है। यहाँ पर वन के अर्थ में लाक्षणिक प्रयोग है। प्रियः आरामः यस्याः सा, बहु०। (७) **कान्ताराणि**—वन। ये वे वन हैं, जो सीता को प्रिय थे। (८) **निवत्स्यामि**—निवास करूँगी। नि+वस्+लृट् उ० एक०। (९) **मधु०**—फूलों के मधु की गन्ध से युक्त। मधुनः गन्धः मधुगन्धः (तत्पु०), सः अस्ति येषु तेषु। मधुगन्ध+इनि (इन्)+स० बहु०। मत्वर्थ में इनि। (१०) **इतीवा०**—इस प्रकार वह यहाँ पर रमण (आनन्द से विचरण) करती थी। इस अंश के कई पाठभेद हैं। परन्तु यह पाठ ही सर्वोत्तम है।

अरमत—रम्+लुङ्, प्र० एक० । (११) स्नेहः०—सीता का राम के प्रति ऐसा उत्कट प्रेम था कि वह भयंकर वन को भी उपवन समझती थी । स्नेहः—स्निह्+घञ् । (१२) कुर्वाणः—करता हुआ । कृ+शानच्+प्र० एक० । (१३) सौख्यैः—सुखों से, समीप रहने के सुखों से । सुखम् एव सौख्यम्, तैः । सुख+ष्यञ्, स्वार्थ में ष्यञ् । (१४) अपोहति—दूर करता है, नष्ट करता है । अप+ऊह्+लट् । उपसर्गा० (वा०) से ऊह् यहाँ पर परस्मैपदी है । (१५) द्रव्यम्—वस्तु, पदार्थ, धन । प्रिय व्यक्ति मनुष्य की सम्पत्ति होती है । (१६) इस श्लोक में अप्रस्तुत प्रियजन के द्वारा सीता का वर्णन होने से अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है । इस श्लोक में पूर्वोक्त विशेष सीता का सामान्य अर्थ के द्वारा समर्थन के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

६३. (क) शम्बूकः—तदलमेभिर्दुरासदैः । अथैतानि मदकलमयूरकण्ठकोमलच्छविभिरवकीर्णानि पर्यन्तैरविरलनिविष्टनीलबहुलच्छायातरुषण्डमण्डितान्यसंभ्रान्तविविध-मृगयूथानि पश्यतु महाभागः प्रशान्तगम्भीराणि श्वापद-कुलशरण्यानि महारण्यानि ।

इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरमुक्त-
प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति ।
फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्ज-
स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः ॥२०॥

अन्वय—इह समदशकुन्ताक्रान्तवानीरमुक्तप्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोयाः फलभरपरिणामश्यामजम्बूनिकुञ्जस्खलनमुखरभूरिस्रोतसः निर्झरिण्यः वहन्ति ।

शम्बूक—इन दुर्गम वनों को रहने दीजिए । महोदय, आप हिंसक जन्तुओं के आश्रय-स्थान इन शान्त और गम्भीर वनों को देखिए, जो मद से मधुर ध्वनि करने वाले मोरों के कण्ठ के तुल्य मनोहर कान्ति से युक्त समीपस्थ प्रदेशों से

पाठभेद—६३ (क). का०, काले—वीरुत् (लता) ।

व्याप्त हैं, जो घने फैले हुए हरे-भरे अनेक छायादार वृक्षों से सुशोभित हैं और जहाँ पर विविध मृग-समूह निर्भयता के साथ घूम रहे हैं।

यहाँ पर नदियाँ बह रही हैं, जिनका शीतल और स्वच्छ जल मद-मत्त पक्षियों से युक्त वेतस-लताओं से गिरे हुए फूलों से सुगन्धित है तथा जिसके अनेक प्रवाह फल-समूह के पकने से काले जामुन के कुञ्जों में टकराने से शब्दायमान हो रहे हैं ॥२०॥

संस्कृत-व्याख्या

इह—एतेषु महावनेषु, समद०—समदैः मदयुक्तैः शकुन्तैः पक्षिभिः आक्रान्ताः अधिष्ठिताः ये वानीराः वेतसाः तेभ्यः मुक्ताः पतिताः ये प्रसवाः कुसुमानि तैः सुरभीणि सुगन्धितानि शीतानि शीतलानि स्वच्छानि निर्मलानि तोयानि जलानि यासां ताः, फल०—फलभरस्य फलसमूहस्य परिणामेन परिपाकेन श्यामाः कृष्णवर्णाः ये जम्बूनिकुञ्जाः जम्बूवृक्षकुञ्जाः तेषु स्खलनेन प्रतिघातेन मुखराणि शब्दयुक्तानि भूरीणि बहूनि स्रोतांसि प्रवाहाः यासां ताः, निर्झरिण्यः—सरितः, वहन्ति—प्रस्रवन्ति। स्वभावोक्तिरलंकारः। मालिनी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **दुरासदैः**—दुर्गम वनों को रहने दीजिये। अलम् के कारण तृतीया। दुरासद—दुर्गम। दुर्+आ+सद्+खल् (अ)। ईषद्दुःसुषु० (३-३-१२६) से खल्। (२) **मद०**—मदकल—मद से मधुर ध्वनि करने वाले, मयूरकण्ठ—मोर के कण्ठ के तुल्य, कोमलच्छवि—मनोहर कान्तियुक्त। मदेन कलानां मयूराणां कण्ठानाम् इव कोमला छविः येषां तैः, बहु०। (३) **अवकीर्णानि**—व्याप्त। अव+कॄ+क्त+प्र० बहु०। (४) **पर्यन्तैः**—समीपस्थ प्रदेश या भू-भागों से व्याप्त। (५) **अविरल०**—अविरल—घने, निविष्ट—फैले हुए, विद्यमान, नील—हरे-भरे, श्यामवर्ण के, बहुल—अनेक, छायातरुषण्ड—छाया वाले वृक्षों के समूह से, मण्डित—सुशोभित। अविरलं निविष्टाः (तत्पु०), ये नीलाः बहुलाः छायातरवः (कर्मधा०), तेषां षण्डैः मण्डितानि, तत्पु०। निविष्ट—नि+विश्+क्त। मण्डित—मण्ड्+क्त। (६) **असंभ्रान्त०**—जहाँ पर विविध मृग-समूह निर्भय हैं। असंभ्रान्त—भयरहित, नञ्+सम्+भ्रम्+क्त। असंभ्रान्तानि विविधानां मृगाणां यूथानि येषु

तानि, बहु० । (७) **प्रशान्त०**—शान्त और गंभीर । प्रशान्तानि गम्भीराणि, कर्मधा० । प्रशान्त—प्र+शम्+क्त । (८) **श्वापद०**—हिंसक जीवों के समूह के लिए आश्रय-स्थान । श्वापदकुलानां शरण्यानि, तत्पु० । शरण्य—शरण देने वाला । शरणे साधुः शरण्यः, शरण+यत् । साधु अर्थ में तत्र साधुः (४-४-९८) से यत् । (९) **महारण्यानि**—महावन, बड़े जंगल । महान्ति अरण्यानि, कर्मधा० । (१०) **समद०**—समद—मदयुक्त, शकुन्त—पक्षियों से, आक्रान्त—व्याप्त, वानीर—बेंत की लता से, मुक्त—गिरे हुए, प्रसव—फूलों से, सुरभि—सुगन्धित, शीतल०—शीतल और निर्मल जल वाली । समदाः शकुन्ताः (कर्मधा०), तैः आक्रान्ताः (तत्पु०) ये वानीराः (कर्मधा०) तेभ्यः मुक्ताः (तत्पु०) ये प्रसवाः (कर्मधा०) तैः सुरभीणि शीतानि स्वच्छानि तोयानि यासां ताः, बहु० । आक्रान्त—आ+क्रम्+क्त । मुक्त—मुच्+क्त । (११) **वहन्ति**—बह रही हैं । वह्+लट्, प्र० बहु० ।(१२) **फलभर०**—फलभर—फलसमूह के, परिणाम—पकने से, श्याम—काले, जम्बू०—जामुन के कुंजों में, स्खलन—गिरने या टकराने से, मुखर—शब्दयुक्त, भूरि—अनेक, स्रोतस्—प्रवाहों वाली । फलभरस्य परिणामेन श्यामाः (तत्पु०) ये जम्बूनिकुञ्जाः (कर्मधा०) तेषु स्खलनेन मुखराणि भूरीणि स्रोतांसि यासां ताः, बहु० । परिणाम—परि+नम्+घञ् । स्खलन—स्खल्+ल्युट् । मुखर—मुख+र । (१३) **निर्झरिण्यः**—नदियाँ । निर्झरिणी—निर्झराः सन्ति अस्य, निर्झर+इनि+ङीप् । जो पहाड़ी सोतों से बनती है । (१४) इस श्लोक में नदियों का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार है । (१५) यह श्लोक महावीरचरित (५-४०) और मालतीमाधव (९-२४) में भी कुछ पाठभेद से आया है ।

६३. (ख) अपि च—

दधति कुहरभाजामत्र भल्लूकयूना-
मनुरसितगुरूणि स्त्यानमम्बूकृतानि ।
शिशिरकटुकषायः स्त्यायते सल्लकीना-
मिभदलितविकीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगन्धः ॥२१॥

अन्वय—अत्र कुहरभाजां भल्लूकयूनां अनुरसितगुरूणि अम्बूकृतानि स्त्यानं दधति । सल्लकीनां शिशिरकटुकषायः इभदलितविकीर्णग्रन्थि-निष्यन्दगन्धः स्त्यायते ।

शम्बूक—और भी—

यहाँ पर गुफाओं में रहने वाले तरुण भालुओं के, प्रतिध्वनि से बढ़े हुए, थू-थू शब्द विस्तार को प्राप्त हो रहे हैं और हाथियों से मर्दित तथा बखेरी हुई सल्लकी-लताओं के गाँठ के रस की शीतल, तीखी और कसैली गन्ध फैल रही है ।।२१।।

संस्कृत-व्याख्या

अत्र—महावने, कुहरभाजां—गिरिगुहावासिनाम्, भल्लूक०—तरुण-ऋक्षाणाम्, अनुरसित०—अनुरसितेन प्रतिध्वनिना गुरूणि महान्ति, अम्बू-कृतानि—थुत्कारशब्दाः, स्त्यानं—विस्तारम्, दधति—प्राप्नुवन्ति । सल्ल-कीनां—गजभक्ष्यालतानाम्, शिशिर०—शिशिरः शीतलः कटुः तीक्ष्णः कषायः कषायरसमिश्रितः, इभ०—इभैः हस्तिभिः दलिताः मर्दिताः अतएव विकीर्णाः विक्षिप्ताः ग्रन्थयः पर्वाणि तेषां निष्यन्दस्य रसस्य गन्धः आमोदः, स्त्यायते—प्रसरति । अत्र काव्यलिङ्गमलंकारः । मालिनी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **दधति**—धारण करते हैं, प्राप्त हो रहे हैं । धा+लट्, प्र० बहु० । (२) **कुहर०**—गुफाओं में रहने वाले । कुहरं भजन्ति इति तेषाम्, उपपद समास । कुहर+भज्+ ण्वि—कुहरभाज् । भजो ण्विः (३-२-६२) से ण्वि । इसका कुछ भी शेष नहीं रहता है । भ के अ को वृद्धि आ । (३) **भल्लूक०**—जवान भालुओं के । भल्लूकाः च ते युवानः, तेषाम्, कर्मधा० । (४) **अनुरसित०**—अनुरसित—प्रतिध्वनि से, गुरु—बढ़े हुए । अनुरसितेन गुरूणि, तत्पु० । अनुरसित—अनु+रस्+क्त । (५) **स्त्यानम्**—वृद्धि को, विस्तार को । स्त्यै (स्त्या) + ल्युट् (अन) । स्त्यै धातु का अर्थ है—शब्द करना, ढेर बनाना, फैलाना । (६) **अम्बूकृतानि**—भालू के थूकने या थू-थू करने को अम्बूकृत कहते हैं । 'अम्बूकृतं सनिष्ठीवनम्' इत्यमरः । अनम्बु अम्बु कृतम् इति अम्बूकृतम् । यहाँ पर च्वि प्रत्यय है । अम्बु+च्वि+कृतम् । च्वौ च (७-४-२६) से उ को दीर्घ । (७) **शिशिर०**—शिशिर—शीतल,

कटु—कड़वा, उग्र या तीक्ष्ण, कषाय—कसैली गन्ध वाला। शिशिरः कटुः कषायः, कर्मधा०। (८) स्त्यायते—फैल रही है, बढ़ रही है। यह स्त्यै शब्दसंघातयोः (१ पर०) का रूप है। यह धातु परस्मैपदी है, परन्तु इसका यहाँ पर आत्मनेपदी प्रयोग है। इसको अपाणिनीय प्रयोग ही समझना चाहिए। (९) सल्लकीनाम्—सल्लकी-लताओं का। इस लता को हाथी बहुत पसन्द करता है। इसको गजभक्ष्या भी कहते हैं। (१०) इभ०—इभ—हाथियों से, दलित—कुचले हुए, विकीर्ण—फेंके हुए, बखेरे हुए, ग्रन्थि—गाँठ के, निष्यन्द—रस की, गन्ध—गन्ध। इभैः दलिताः (तत्पु०) विकीर्णाः ये ग्रन्थयः (कर्मधा०), तेषां निष्यन्दस्य गन्धः, तत्पु०। दलित—दल्+क्त। विकीर्ण—वि+कॄ+क्त। निष्यन्द—नि+स्यन्द्+घञ्। (११) यहाँ अम्बूकृत की वृद्धि के प्रति अनुरसितगुरुत्व कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है। (१२) यह श्लोक महावीरचरित (५-४१) और मालतीमाधव (९-६) में भी आया है।

६४. रामः—(सबाष्पस्तम्भम्) भद्र, शिवास्ते पन्थानो देवयानाः। प्रलीयस्व पुण्येभ्यो लोकेभ्यः।

राम—(आँसू रोककर) भद्र, तुम्हारे लिए देवयान-नामक मार्ग कल्याणकारी हों। पुण्यलोकों को प्राप्त करने के लिए विलीन हो जाओ।

६५. शम्बूकः—यावत्पुराणब्रह्मर्षिमगस्त्यमभिवाद्य शाश्वतं पदमनुप्रविशामि।

(इति निष्क्रान्तः)

शम्बूक—तो मैं प्राचीन ब्रह्मर्षि अगस्त्य को प्रणाम करके शाश्वत लोक में प्रवेश करता हूँ।

(शम्बूक का प्रस्थान)

६६. (क) रामः—

एतत्पुनर्वनमहो कथमद्य दृष्टं
यस्मिन्नभूम चिरमेव पुरा वसन्तः।
आरण्यकाश्च गृहिणश्च रताः स्वधर्मे
सांसारिकेषु च सुखेषु वयं रसज्ञाः ॥२२॥

अन्वय—अहो, अद्य एतत् वनं पुनः कथं दृष्टम् । यस्मिन् पुरा चिरम् एव वसन्तः आरण्यकाः च गृहिणः च वयं स्वधर्मे रताः, सांसारिकेषु सुखेषु रसज्ञाः च अभूम ।

राम—ओह, आज इस वन को मैंने फिर कैसे देखा ? जहाँ पहले चिरकाल तक रहते हुए वानप्रस्थ और गृहस्थ दोनों रूप में अपने धर्म का पालन करते हुए हमने सांसारिक सुखों के रस का अनुभव किया था ।।२२।।

संस्कृत-व्याख्या

अहो—आश्चर्यमेतत्, अद्य—अस्मिन् दिवसे, एतत्—पुरोविद्यमानम्, वनं—काननम्, पुनः—भूयः, कथ—केन प्रकारेण, दृष्टं—विलोकितम् । यस्मिन्—यस्मिन् वने, पुरा—पूर्वम्, चिरमेव—बहुकालं यावत्, वसन्तः—निवासं कुर्वन्तः, आरण्यकाः च—वानप्रस्थाः च, गृहिणः च—गृहस्थाः च, वयं—रामादयः, स्वधर्मे—वानप्रस्थगृहस्थधर्मयोः पालने, रताः—संलग्नाः, सांसारिकेषु—भौतिकेषु, सुखेषु—आनन्देषु, रसज्ञाः च—रसास्वादकारिणः च, अभूम—संजाताः । अत्र तुल्ययोगिता विशेषश्चालंकारौ । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **सबाष्प०**—आँसुओं को रोककर । बाष्पाणां स्तम्भः, तेन सह, बहु० । (२) **देवयानाः०**—देवयान मार्ग मंगलमय हों । मृत्यु के पश्चात् सत्कर्म करने वालों के लिए दो मार्ग बताए गए हैं :—देवयान, पितृयान । निष्काम कर्म करने वाले आत्मज्ञानी लोग देवयान से होते हुए ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं । उनका पुनर्जन्म नहीं होता है । सकामभाव से कर्म करने वाले पितृयान से होते हुए चन्द्रलोक को प्राप्त होते हैं । पुण्य समाप्त होने पर इनका पुनर्जन्म होता है। देवयान को शुक्लगति और पितृयान को कृष्णगति भी कहते हैं । छान्दोग्य उपनिषद् (५-१०) और गीता (८.२३-२६) में इसका विस्तृत वर्णन है । तत्पुरुषोऽमानवः स एतान् ब्रह्म गमयत्येष देवयानः पन्थाः । (छा० उ० ५-१०)। स एतान् ब्रह्म गमयति एष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नावर्तन्ते । (छा० उ० ४-१५-६) । शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते । एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः । (गीता ८-२६) । (३) **प्रलीयस्व**—विलीन हो जाओ, भौतिक शरीर को छोड़ दो । प्र+ली+लोट् म० एक० । (४) **पुण्येभ्यो०**—पवित्र लोकों के लिए । भूः भुवः स्वः महः, जनः, तपः, सत्यम् ये सात लोक हैं और उत्तरोत्तर उत्कृष्ट हैं । यहाँ पर सत्यलोक से अभिप्राय

है। वहाँ से पुनरावर्तन नहीं होता है। पुण्यान् लोकान् प्राप्तुम्, क्रियार्थोपपदस्य० (२-३-१४) से तुमुन् के अर्थ में लोकेभ्यः में चतुर्थी। (५) **पुराण०**—प्राचीन ब्रह्मर्षि अगस्त्य को। पुराणः ब्रह्मर्षिः, तम्, कर्मधा०। (६) **अभिवाद्य**—प्रणाम करके। अभि+वद्+णिच्+ल्यप्। अनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि (शाकु० अंक ७) के अनुसार अगस्त्य को प्रणाम करना अनिवार्य है। (७) **शाश्वतम्०**—नित्य। शश्वद् भवम्, शश्वत्+अण्। ब्रह्मलोक नित्य माना गया है। सत्यस्तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्भववासिनाम्। ब्रह्मलोकः समाख्यातो ह्यप्रतीघातलक्षणम्॥ (देवीपुराण)। (८) **अनुप्रविशामि**—प्रवेश करता हूँ। अनु+प्र+विश्+लट् उ० एक०। (९) **अहो**—आश्चर्यसूचक अव्यय है। (१०) **दृष्टम्**—देखा। दृश्+क्त। (११) **अभूम**—थे। भू+लुङ्, उ० बहु०। (१२) **वसन्तः**—रहते हुए। वस्+शतृ+प्र० बहु०। (१३) **आरण्यकाः**—वानप्रस्थ। अरण्ये वसन्ति इति, अरण्य+वुञ् (अक)। अरण्यान्मनुष्ये (४-२-१२९) से वुञ्। (१४) **गृहिणः**—गृहस्थ। गृहाणि सन्ति येषां ते, गृह+इनि (इन्)। मत्वर्थ में इनि। (१५) **रताः०**—गृहस्थ और वानप्रस्थ दोनों धर्मों के पालन में लगे हुए। रत—रम्+क्त। म् का लोप। (१६) **सांसारिकेषु०**—भौतिक सुखों में। संसारे भवानि सांसारिकाणि, तेषु। संसार+ठञ् (इक)। अध्यात्मादि होने से ठञ्। (१७) **रसज्ञाः**—रस का अनुभव करने वाले। रसं जानन्ति इति, रस+ज्ञा+क (अ)—रसज्ञ। आतोऽनुपसर्गे कः (३-२-३) से क। (१८) आरण्यकाः और गृहिणः इन दो प्रस्तुतों का स्वधर्मे रताः इस एक धर्म के साथ संबन्ध होने से तुल्ययोगिता है। वनवास के साथ ही दैवात् गृहस्थ धर्म का भी पालन हो जाने से विशेष अलंकार है।

६६. (ख)

एते त एव गिरयो विरुवन्मयूरा-
स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि।
आमञ्जुवञ्जुललतानि च तान्यमूनि
नीरन्ध्रनीपनिचुलानि सरित्तटानि॥२३॥

पाठभेद—६६. (ख) नि० रुतानि (शब्दयुक्त), का० नीर० (जल में), काले—नील० (श्यामवर्ण के)।

मेघमालेव यश्चायमारादिव विभाव्यते।
गिरिः प्रस्रवणः सोऽयं यत्र गोदावरी नदी ॥२४॥

अन्वय--विरुवन्मयूराः एते ते एव गिरयः (सन्ति)। मत्तहरिणानि तानि एव वनस्थलानि (सन्ति)। आमञ्जुवञ्जुलतानि नीरन्ध्रनीपनिचुलानि च अमूनि तानि सरित्तटानि (सन्ति)।

मेघमाला इव यः च अयम् आरात् इव विभाव्यते, सः अयं प्रस्रवणः गिरिः (अस्ति)। अत्र गोदावरी नदी (अस्ति)।

राम--शब्द करते हुए मोरों से युक्त ये वही पर्वत हैं। मत्त मृगों से युक्त वही वन-प्रदेश हैं। अत्यन्त सुन्दर अशोकवृक्ष तथा लताओं से युक्त और घने कदम्ब-वृक्ष एवं हिज्जल-वृक्षों से शोभित ये वही नदियों के तट हैं ॥२३॥

मेघमाला के तुल्य यह जो समीपवर्ती सा प्रतीत हो रहा है, यह वही प्रस्रवण पर्वत है। यहीं पर गोदावरी नदी (बहती) है ॥२४॥

संस्कृत-व्याख्या

विरुवन्०--विरुवन्तः विशेषेण कूजन्तः मयूराः केकिनः येषु ते, एते--समीपस्थाः, ते एव--पूर्वपरिचिताः, गिरयः--पर्वताः सन्ति। मत्त०--मत्ताः मदयुक्ताः हरिणाः मृगाः येषु तानि, तानि एव--पूर्वदृष्टानि एव, वनस्थलानि--अरण्यप्रदेशाः सन्ति। आमञ्जु०--आमञ्जवः अतिमनोहराः वञ्जुलाः अशोक-वृक्षाः लताः वीरुधः च येषु तानि, नीरन्ध्र०--नीरन्ध्राः सघनाः नीपाः कदम्ब-वृक्षाः निचुलाः हिज्जलवृक्षाः च येषु तानि, अमूनि--एतानि, तानि--पूर्व-परिचितानि, सरित्तटानि--नदीतीराणि सन्ति। अत्र तुल्ययोगिताऽलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

मेघमाला इव--घनपङ्क्तिरिव, यः चायं--पुरो दृश्यमानः, आरात् इव--समीपवर्ती इव, विभाव्यते--प्रतीयते। सः अयम्--स एषः, प्रस्रवणः--प्रस्रवण-नामकः, गिरिः--पर्वतः अस्ति। अत्र--अस्मिन् गिरौ, गोदावरी--गोदावरी-नाम्नी, नदी--सरिद् अस्ति। अत्रोत्प्रेक्षोपमा चालंकारौ। श्लोको वृत्तम्।

पाठभेद--६६. (ख) काले०--०दपि (दूर से भी)।

टिप्पणी

(१) एतेo—ये वही पूर्वपरिचित वस्तुएँ हैं । (२) **विरुवन्o**—जहाँ पर मोर शब्द कर रहे हैं । विरुवन्तः मयूराः येषु ते, बहु० । विरुवत्—वि+रु+शतृ । (३) **मत्तo**—मत्त हरिणों से युक्त । मत्ताः हरिणाः येषु तानि, बहु० । मत्त—मद्+क्त । (४) **वनस्थलानि**—वन के प्रदेश । वनस्य स्थलानि, तत्पु० ।(५) **आमञ्जु०**—अत्यन्त मनोहर अशोकवृक्ष और लताओं से युक्त । आमञ्जु—अत्यन्त मनोहर । वञ्जुल—अशोक वृक्ष । वञ्जुल का अर्थ बेंत भी है । तब अर्थ होगा—अति मनोहर वेतस-लताओं से युक्त । वञ्जुलः पुंसि तिनिशे वेतसाऽशोकयोरपि, इति मेदिनी । आमञ्जवः वञ्जुलाः लताः च येषु तानि, बहु० ।(६) **अमूनि**—ये । अदस् नपुं० प्र० बहु० का रूप है । (७) **नीरन्ध्र०**—नीरन्ध्र—घने, नीप—कदम्ब के वृक्ष, निचुल—हिज्जल के वृक्ष या स्थल पर उगने वाली वेतस-लता । निचुल के दोनों अर्थ हैं—हिज्जल वृक्ष और स्थल-वेतस । निचुलो हिज्जिलोऽम्बुजः, इत्यमरः । वाणीरे कविभेदे स्यान्निचुलः स्थलवेतसे, इति शब्दार्णवः । नीरन्ध्राः नीपाः निचुलाः च येषु तानि, बहु० । नीरन्ध्र—निर्+रन्ध्र । र् का लोप होने से नि को नी दीर्घ । (८) **सरित्तटानि**—नदियों के किनारे । सरितां तटानि, तत्पु० । (९) यहाँ पर प्रस्तुत आमञ्जु० और नीरन्ध्र० का सरित्तटानि के साथ संबन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है। (१०) **मेघमाला०**—बादलों की पंक्ति के तुल्य । मेघानां माला, तत्पु० । (११) **आरादिव**—समीप विद्यमान के तुल्य । आरात् के दो अर्थ हैं—समीप और दूर । आराद् दूरसमीपयोः, इत्यमरः । (१२) **विभाव्यते**—प्रतीत होता है । वि+भू+णिच्+कर्मवाच्य में लट् । (१३) यहाँ पर मेघमाला इव में उपमा है और आरादिव में इव के द्वारा उत्प्रेक्षा है ।

६६ (ग)

अस्यैवासीन्महति शिखरे गृध्रराजस्य वास-
स्तस्याधस्ताद् वयमपि रतास्तेषु पर्णोटजेषु ।
गोदावर्याः पयसि विततानोकहश्यामलश्री-
रन्तःकूजन्मुखरशकुनो यत्र रम्यो वनान्तः ॥२५॥

पाठभेद—६६. (ग) का० काले—विततश्यामलानोकहश्री० (फैले हुए हरे-भरे वृक्षों की शोभा से युक्त) ।

अन्वय—अस्य एव महति शिखरे गृध्रराजस्य वासः आसीत् । तस्य अधस्तात् वयम् अपि तेषु पर्णोटजेषु रताः । यत्र गोदावर्याः पयसि विततानोकहश्यामश्रीः अन्तःकूजन्मुखरशकुनः रम्यः वनान्तः (अस्ति) ।

राम—इस (प्रस्रवण पर्वत) की ही ऊँची चोटी पर गृध्रराज (जटायु) का निवास-स्थान था । उसके नीचे हम भी उन पर्णशालाओं में आराम से रहते थे, जहाँ पर गोदावरी के जल में फैले हुए वृक्षों से नीली कान्ति है और जहाँ कलरव करने वाले पक्षी (वन के) अन्दर शब्द कर रहे हैं, ऐसा यह सुन्दर वनप्रान्त है ॥२५॥

संस्कृत-व्याख्या

अस्य एव—प्रस्रवणगिरेरेव, महति—उत्तुङ्गे, शिखरे—सानौ, गृध्रराजस्य—जटायोः, वासः—निवासस्थानम्, आसीत्—अभवत् । तस्य—शिखरस्य, अधस्तात्—नीचैः, वयमपि—रामादयोऽपि, तेषु—पूर्वानुभूतेषु, पर्णोटजेषु—पर्णशालासु, रताः—सानन्दम् उषिताः । यत्र—यस्मिन् स्थाने, गोदावर्याः—गोदावरीनद्याः, पयसि—सलिले, वितता०—विततैः विस्तृतैः अनोकहैः वृक्षैः श्यामला नीला श्रीः शोभा यस्य सः, अन्तःकूजन्०—अन्तः वनान्तरे कूजन्तः शब्दायमानाः मुखराः कलरवपराः शकुनाः पक्षिणः यस्मिन् सः, रम्यः—मनोहरः, वनान्तः—वनप्रदेशः अस्ति । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **गृध्रराजस्य**—गृध्रराज जटायु का । गृध्राणां राजा गृध्रराजः तस्य, तत्पु० । गृध्रराजन्+टच् (अ) । राजाहःसखिभ्यष्टच् (५-४-९१) से समासान्त टच् प्रत्यय । (२) **वासः**—निवासस्थान । उष्यते अत्र इति, वस्+घञ् । अधिकरण में घञ् । (३) **अधस्तात्**—नीचे । अधरस्मिन् इति । अधर+अस्तात् । यहाँ पर दिक्शब्देभ्यः ० (५-३-२७) से अस्तात् प्रत्यय और अस्ताति च (५-३-४०) से अधर को अध् आदेश । (४) **रताः**—आराम करते थे, रमण करते थे । रताः का भाव है- मौज से रहते थे । रत—रम्+क्त । म् का लोप । (५) **पर्णोटजेषु**—पत्तों की कुटियों में । पर्ण—पत्ता, उटज—कुटी । पर्णानाम् उटजेषु, तत्पु० । (६) **वितता०**—वितत—फैले हुए, अनोकह—वृक्षों से, श्यामल—नीली, श्री—कान्तियुक्त ।

वितताः अनोकहाः (कर्मधा०), तैः श्यामला श्रीः यस्य सः, बहु० । वितत—वि+तन्+क्त । न् का लोप । अनोकह—वृक्ष, अनस्+अक+हन्+ड (अ) । अनसः शकटस्य अकं गतिं हन्ति इति । बैलगाड़ी के मार्ग में विघ्न डालता है, अतः वृक्ष को अनोकह कहते हैं । पेड़ से बचाकर बैलगाड़ी को निकालना पड़ता है । श्री—शोभा । श्रि+क्विप् (०) । क्विब्वचि (वा०) से क्विप् और दीर्घ । (७) **अन्तः०**—अन्तःकूजत्—वन के अन्दर कूजते हुए, मुखर—कलरव करने वाले, शकुनः—पक्षियों से युक्त । अन्तः कूजन्तः मुखराः शकुनाः यस्मिन् सः, बहु० । कूजत्—कूज्+शतृ । मुखर—मुख+र । मत्वर्थ में र । (८) **रम्यः**—मनोहर, सुन्दर । रम्+यत् (य) । पोरदुपधात् (३-१-९८) से यत् ।

९६. (घ) अत्रैव सा पञ्चवटी यत्र चिरनिवासेन विविधविस्रम्भातिप्रसङ्गसाक्षिणः प्रदेशाः, प्रियायाः प्रियसखी च वासन्ती नाम वनदेवता । किमिदमापतितमद्य रामस्य ? संप्रति हि—

चिराद्वेगारम्भी प्रसृत इव तीव्रो विषरसः
कुतश्चित्संवेगात्प्रचल इव शल्यस्य शकलः ।
व्रणो रूढग्रन्थिः स्फुटित इव हृन्मर्मणि पुनः
पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इव ।।२६।।

अन्वय—चिरात् वेगारम्भी प्रसृतः तीव्रः विषरसः इव, कुतश्चित् संवेगात् प्रचलः शल्यस्य शकलः इव, हृन्मर्मणि रूढव्रणः स्फुटितः व्रणः इव, पुराभूतः शोकः नूतनः इव पुनः मां विकलयति ।

राम—यहीं पर वह पंचवटी है, जहाँ के प्रदेश वहाँ पर चिरकाल तक निवास के कारण अनेक विश्वसनीय विलास-चेष्टाओं के अति-विस्तार के साक्षी हैं । यहीं पर प्रिय सीता की प्रियसखी वासन्ती नाम की वनदेवता थी । आज राम को क्या हो गया है ? इस समय—

पाठभेद—९६. (घ) का० काले—घनीभूतः (घना बना हुआ), काले—मूर्च्छयति च (और मूर्च्छित करता है) ।

बहुत समय के पश्चात् (वेदना के) वेग को उत्पन्न करने वाले और चारों ओर फैले हुए तीक्ष्ण विषरस के तुल्य, किसी स्थान से वेग से चले हुए बाण के अग्रभाग के तुल्य, हृदय के मर्मस्थल में उपव्रणों से युक्त और फूटे हुए फोड़े के तुल्य पुराना शोक नए के तुल्य होकर फिर मुझको व्याकुल कर रहा है ॥२६॥

संस्कृत-व्याख्या

चिरात्—बहुकालानन्तरम्, वेगारम्भी—वेगं वेदनायाः शीघ्रत्वम् आरभते उत्पादयति इति, प्रसृतः—सर्वतो विस्तृतः, तीव्रः—तीक्ष्णः विषरस इव—गरलद्रव इव, कुतश्चित्—कस्मादपि स्थानात्, संवेगात्—प्रबलवेगात्, प्रचलः—चलितः, शल्यस्य—बाणाग्रस्य, शकलः इव—खण्ड इव, हृन्मर्मणि—हृदयस्य मर्मस्थले, रूढव्रणः—संजातोपव्रणः, स्फुटितः—विदीर्णः, व्रणः इव—स्फोटक इव, पुराभूतः—प्राचीनः, शोकः—प्रियाविरहसन्तापः, नूतनः इव—नवीन इव, पुनः—भूयः, मां—रामम्, विकलयति—व्याकुलं करोति। अत्रोत्प्रेक्षाऽलंकारः। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **चिर०**—चिरकाल तक रहने के कारण। चिरं निवासः, तेन, तत्पु०। निवास—नि+वस्+घञ्। (२) **विविध०**—विविध—अनेक, विस्रम्भ—विश्वस्त कार्य, गुप्त वार्तालाप आदि, विलास—चेष्टाएँ आदि के, अतिप्रसङ्ग—अति विस्तार के, साक्षी—साक्षी। विविधाः विस्रम्भाः (कर्मधा०), तेषाम् अतिप्रसङ्गस्य साक्षिणः, तत्पु०। विस्रम्भ—वि+स्रम्भ्+घञ्। इसको विश्रम्भ भी लिखा जाता है। अतिप्रसङ्ग—अति+प्र+सञ्ज्+घञ्। ज् को ग्। साक्षिन्—साक्षात्+इनि। साक्षाद् द्रष्टरि० (५-२-९१) से निपातन से यह रूप बनता है। (३) **आपतितम्**—आ पड़ा, हो गया। आ+पत्+क्त। (४) **चिरात्**-बहुत समय के बाद यह दुःख फिर उभरा है। (५) **वेगारम्भी**—दुःख के वेग को उत्पन्न करने वाला। वेगम् आरभते इति, उपपद समास। वेग+आ+रभ्+णिनि। ताच्छील्य अर्थ में णिनि। (६) **प्रसृतः**—चारों ओर फैला हुआ। प्र+सृ+क्त। (७) **विषरसः**—विष का रस। विषस्य रसः, तत्पु०। (८) **कुतश्चित्**—किसी स्थान से। संवेगात्—वेग से, झटके से। प्रचलः—चला हुआ। (९) **शल्यस्य०**—बाण के अग्रभाग का टुकड़ा। शल्य का अर्थ

है—बाण की नोक। (१०) रूढग्रन्थिः—जिसमें गाँठ पड़ गई हैं। जिसमें उपव्रण या छोटे घाव उत्पन्न हो गए हैं। रूढाः ग्रन्थयः यस्मात् सः, बहु०। रूढ—रुह्+क्त। (११) स्फुटित इव—मानों फोड़ा फूट गया है। स्फुटित—स्फुट्+क्त। (१२) हृन्मर्मणि—हृदय के मर्मस्थल में। हृदः मर्मणि, तत्पु०। (१३) पुराभूतः—जो पहले हुआ था, प्राचीन। (१४) शोकः—शोक, दुःख। शुच्+घञ्। (१५) विकलयति—व्याकुल कर रहा है, दुःख दे रहा है। विकलं करोति—विकल+णिच्+लट्। विकल शब्द से तत्करोति तदाचष्ट (गणसूत्र) से णिच्। (१६) यहाँ पर चार इव के द्वारा चार क्रियाओं की उत्प्रेक्षा होने से चार क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार हैं।

६६. (ङ) तथाविधानपि तावत्पूर्वसुहृदो भूमिभागान् पश्यामि। (निरूप्य) अहो, अनवस्थितो भूतसंनिवेशः। तथा हि—

पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां
विपर्यासं यातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम्।
बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदं
निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति ॥२७॥

अन्वय—यत्र पुरा सरितां स्रोतः, तत्र अधुना पुलिनम्। क्षितिरुहां घनविरलभावः विपर्यासं यातः। बहोः कालात् दृष्टम् इदं वनम् अपरम् इव मन्ये। शैलानां निवेशः इदं तत् इति बुद्धिं द्रढयति।

राम—वैसे (शोककारक) होते हुए भी प्राचीन मित्रतुल्य (इन) भू-खंडों को देखता हूँ। (देखकर) ओह, पदार्थों की स्थिति परिवर्तनशील है। क्योंकि—

जहाँ पहले नदियों का प्रवाह था, वहाँ अब रेतीला किनारा है। वृक्षों की सघनता और विरलता में भी परिवर्तन हो गया है। बहुत समय के बाद देखा गया यह वन दूसरा-सा प्रतीत होता है। (परन्तु) पर्वतों की स्थिति इस विचार को दृढ़ बना रही है कि यह वही वन है ॥२७॥

संस्कृत-व्याख्या

यत्र—यस्मिन् स्थाने, पुरा—पूर्वम्, सरितां—नदीनाम्, स्रोतः—प्रवाहः, आसीत्, तत्र—तस्मिन् स्थाने, अधुना—सम्प्रति, पुलिनं—सैकतं तटम् अस्ति। क्षितिरुहां—वृक्षाणाम्, घनविरलभावः—सघनता विरलता च, विपर्यासं—वैपरीत्यम्, यातः—प्राप्तः। बहोः कालात्—बहुसमयानन्तरम्, दृष्टं—निरीक्षितम्, इदम्—एतत्, वनं—काननम्, अपरम् इव—अन्यद् वनमिव, मन्ये—उत्प्रेक्षे, शैलानां—पर्वतानाम्, निवशः—स्थितिः, इदं तत् इति—इदं तदेव वनमिति, बुद्धिं—विचारम्, द्रढयति—दृढां करोति। अत्र काव्यलिङ्ग-मुत्प्रेक्षा चालंकारौ। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **तथाविधान्**—उस प्रकार के अर्थात् शोक के कारण भी। (२) **पूर्वसुहृदः**—पुराने मित्र। राम वृक्षों को अपने मित्र-तुल्य समझते हैं। पूर्वे सुहृदः, तान्, कर्मधा०। शोभनं हृदयं यस्य सः, सुहृद्। सुहृद्-दुर्हृदौ० (५-४-१५०) सूत्र से मित्र अर्थ में सुहृदय को सुहृद् हो जाता है। (३) **भूमि०**—भूमि के खण्डों को। भूमेः भागान्, तत्पु०। भाग—भज्+घञ्। (४) **निरूप्य**—देखकर। नि+रूप्+णिच्+ल्यप्। (५) **अनवस्थितः**—अनिश्चित, अस्थिर, परिवर्तनशील। नञ्+अव+स्था+क्त। आ को इ। (६) **भूत०**—पदार्थों की स्थिति। भूत—तत्त्व, पदार्थ, वस्तु। संनिवेश—स्थिति। संनिवेशः—सम्+नि+विश्+घञ्। (७) **पुलिनम्**—रेतीला किनारा। नदी के रेतीले भाग को पुलिन कहते हैं। (८) **विपर्यासं०**—परिवर्तन हो गया है, उलट-पुलट हो गया है, अर्थात् जहाँ पर वृक्ष घने थे, वहाँ पर कम हो गए हैं और जहाँ कम थे, वहाँ पर घने हो गए हैं। विपर्यासः—वि+परि+अस्+घञ्। यातः—या+क्त। (९) **घन०**—घनापन और विरलता। घनः च विरलश्च घनविरलौ (द्वन्द्व), तयोः भावः, तत्पु०। घन—हन्+अप् (अ)। मूर्तौ घनः (३-३-७७) से हन् को घन् आदेश। (१०) **क्षितिरुहाम्**—वृक्षों का। क्षितौ रोहन्ति इति क्षितिरुह। क्षिति+रुह्+क्विप्। (११) **दृष्टम्**—देखा गया। दृश्+क्त। (१२) **बुद्धिम्**—ज्ञान को, विचार को। बुद्धि—बुध्+क्तिन्। (१३) **द्रढयति**—

दृढ बना रहा है। दृढां करोति इति, दृढ+णिच्+लट्। दृढ शब्द से तत्करोति तदाचष्टे (गणसूत्र) से णिच्। णिच् होने पर दृढ के ऋ को र् हो जाता है। (१४) अपरमिव वनम् के प्रति प्रथम दो वाक्य कारण हैं, अतः काव्यलिंग अलंकार है। अपरमिव मन्ये में मन्ये के द्वारा उत्प्रेक्षा अलंकार है।

६६. (च) हन्त हन्त, परिहरन्तमपि मां पञ्चवटी स्नेहाद् बलादाकर्षतीव। (सकरुणम्)

यस्यां ते दिवसास्तया सह मया नीता यथा स्वे गृहे
यत्संबन्धिकथाभिरेव सततं दीर्घाभिरास्थीयत।
एकः संप्रति नाशितप्रियतमस्तामेव रामः कथं
पापः पञ्चवटीं विलोकयतु वा गच्छत्वसंभाव्य वा ॥२८॥

अन्वय—यस्यां मया तया सह ते दिवसाः स्वे गृहे यथा नीताः, दीर्घाभिः यत्संबन्धिकथाभिः एव सततम् आस्थीयत। सम्प्रति नाशितप्रियतमः एकः पापः रामः तामेव पञ्चवटीं कथं विलोकयतु, वा असंभाव्य गच्छतु।

राम—हाय, हाय, परित्याग करते हुए भी मुझको पंचवटी प्रेम से मानों बलात् अपनी ओर खींच रही है। (करुणाभाव के साथ)

जिस (पंचवटी) में मैंने उस (सीता) के साथ अपने घर के तुल्य वे दिन बिताए थे और जिससे संबद्ध लम्बी कथाओं में हम लोग निरन्तर व्यस्त रहते थे, आज अपनी प्रियतमा (सीता) को नष्ट करने वाला अकेला पापी राम उसी पंचवटी को कैसे देखे? अथवा उसका बिना सत्कार किए कैसे जाए? ॥२८॥

संस्कृत-व्याख्या

यस्यां—पञ्चवट्याम्, मया—रामेण, तया—सीतया, सह—सार्धम्, ते—पूर्वानुभूताः, दिवसाः—दिनानि, स्वे गृहे—निजे सदने, यथा—यद्वत् तद्वत्, नीताः—यापिताः। दीर्घाभिः—विस्तृताभिः, यत्संबन्धि०—यस्याः पञ्चवट्याः

पाठभेद—६६. (च) नि० यत्संबन्ध० (जिससे सम्बन्ध रखने वाली), का०, काले—तामद्य (उसको आज)।

संबन्धिन्यः विषयकाः कथाः वार्ताः ताभिः एव, सततं—निरन्तरम्,आस्थीयत—स्थितम् । सम्प्रति—अधुना, नाशित०—नाशिता नाशं प्रापिता प्रियतमा सीता येन सः, एकः—एकाकी, पापः—दुरात्मा, रामः—दाशरथिः, तामेव—तादृशीमेव, पञ्चवटीं—पञ्चवटीभूमिम्, कथं—केन प्रकारेण, विलोकयतु—पश्यतु, वा—अथवा, असंभाव्य—सत्कारम् अविधाय, गच्छतु—कथं यातु । अत्रोपमा काव्यलिङ्गं चालंकारौ । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **हन्त०**—हाय, हाय । यहाँ पर वीप्सा अर्थ में नित्यवीप्सयोः (८-१-४) से द्वित्व । अत्यन्त दुःख प्रकट करना अभिप्राय है । (२) **परिहरन्तम्०**—छोड़ते हुए को भी अर्थात् मैं पंचवटी को छोड़कर जाना चाहता हूँ, पर पंचवटी मुझे नहीं छोड़ती । परि+हृ+शतृ+द्वि० एक० । (३) **स्नेहात्**—स्नेह के कारण । स्नेहः—स्निह्+घञ् । (४) **आकर्षति०**—मानों अपनी ओर खींच रही है । आ+कृष्+लट् । (५) **नीताः**—बिताए । नी+क्त—नीत । (६) **स्वे गृहे**—अपने घर के तुल्य । पंचवटी में मुझे अपने घर जैसा सुख मिला । (७) **यत्संबन्धि०**—जिससे संबद्ध कथाओं के द्वारा । यस्याः संबन्धिन्यः कथाः, ताभिः, तत्पु० । संबन्धिनी—संबन्ध+इनि+ङीप् । मत्वर्थ में इनि । (८) **आस्थीयत**—रहते थे, संलग्न रहते थे । आ+स्था+लङ् प्र० पु० एक० । भाववाच्य में लकार है । (९) **नाशित०**—प्रियतमा सीता को नष्ट करनेवाला । नाशिता प्रियतमा येन सः, बहु० । नाशित—नश्+णिच्+क्त । (१०) **पापः**—पापी । पापम् अस्य अस्ति इति, पाप+अच् (अ) । यहाँ पर अर्शआदिभ्योऽच् (५-२-१२७) से मत्वर्थ में अच् । (११) **विलोकयतु**—देखे । वि+लोक्+णिच्+लोट् । (१२) **असंभाव्य**—बिना सत्कार किए । नञ्+सम्+भू+णिच्+ल्यप् । संभावि का अर्थ सत्कार करना है । (१३) यथा स्वे गृहे में उपमा अलंकार है । राम के पापी होने में नाशितप्रियतमः कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है ।

(प्रविश्य)

६७. शम्बूकः—जयतु देवः । देव, भगवानगस्त्यो मत्तः श्रुतसंनिधानस्त्वामाह—परिकल्पितावरणमङ्गला प्रती-

क्षते वत्सला लोपामुद्रा, सर्वे च महर्षयः। तदेहि, सम्भावयास्मान्। अथ प्रजविना पुष्पकेण स्वदेशमुपगत्याश्वमेधाय सज्जो भव' इति।

(प्रविष्ट होकर)

शम्बूक--महाराज की जय हो। महाराज, भगवान् अगस्त्य ने मुझसे आपके समीपवर्ती होने का समाचार सुनकर आपसे कहा है--"प्रेममयी लोपामुद्रा आरती आदि मंगलाचार की तैयारी करके (आपकी) प्रतीक्षा कर रही है और सारे महर्षि भी (प्रतीक्षा कर रहे हैं)। अतः आइए और हमें अनुगृहीत कीजिए। तत्पश्चात् अतितीव्र गति वाले पुष्पक विमान से अयोध्या पहुँचकर अश्वमेध यज्ञ के लिए उद्यत हो जाइए"।

६८. रामः--यथाज्ञापयति भगवान्।

राम--जैसी भगवान् (अगस्त्य) की आज्ञा।

६९. शम्बूकः--इत इतो देवः।

शम्बूक--महाराज इधर से आइए, इधर से।

७०. रामः--(पुष्पकं प्रवर्तयन्) भगवति पञ्चवटि, गुरुजनादेशोपरोधात्क्षणं क्षम्यतामतिक्रमो रामस्य।

राम--(पुष्पक विमान को चलाते हुए) भगवती पंचवटी, गुरुजनों की आज्ञा के अनुरोध से क्षण भर के लिए राम के इस अतिक्रमण (उपेक्षा करके जाने) को क्षमा करना।

टिप्पणी

(१) मत्तः--मुझसे। अस्मद्+तसिल्। पञ्चमी के अर्थ में तसिल्।

(२) श्रुत०--मेरे समीपवर्ती होने का जिन्होंने समाचार सुना है। श्रुतं संनिधानं येन सः, बहु०। श्रुत--श्रु+क्त। संनिधानम्--सम्+नि+धा+ल्युट्

(३) परिकल्पिता०--जिसने आरती की तैयारी कर रक्खी है। परिकल्पितम् आवरणमङ्गलं यया सा, बहु०। परिकल्पित--परि+ क्लृप्+णिच्+क्त आवरणमङ्गल स्वागतार्थ आरती उतारने आदि को कहते हैं। दक्षिण

अतिथि-स्वागतार्थ आरती उतारने की पुरानी प्रथा है। इस अवतरण-मंगल शब्द के द्वारा विद्वानों ने भवभूति के दाक्षिणात्य होने का अनुमान किया है। (४) **प्रतीक्षते**–प्रतीक्षा करती है। प्रति+ईक्ष्+लट् प्र० एक०। (५) **वत्सला**–प्रेममयी। वत्स+लच् (ल)+टाप्। वत्सांसाभ्यां० (५-२-९८) से प्रेम अर्थ में मत्वर्थक लच् प्रत्यय। (६) **लोपामुद्रा**—अगस्त्य की धर्मपत्नी का नाम है। (७) **सर्वे०**—सारे महर्षि भी प्रतीक्षा कर रहे हैं। (८) **एहि**—आइए। आ+इ+लोट् म० एक०। (९) **संभावय०**—हमें अनुगृहीत कीजिए। सम्+भू+णिच्+लोट् म० एक०। (१०) **प्रजविना**—वेग वाले। प्रकृष्टः जवः प्रजवः, सः अस्य अस्ति इति, तेन। प्रजव+इन्। मत्वर्थ में इनि। (११) **उपगत्य**—जाकर, पहुँच कर। उप+गम्+ल्यप्। (१२) **प्रवर्तयन्**—चलाते हुए। प्र+वृत्+णिच्+शतृ। (१३) **गुरुजना०**—गुरुजनों की आज्ञा के अनुरोध से। गुरुजनानाम् आदेशस्य उपरोधात्, तत्पु०। आदेश—आ+दिश्+घञ्। उपरोध—रोकना, उप+रुध्+घञ्। (१४) **अतिक्रमः**—उल्लंघन, उपेक्षा-भाव। अति+क्रम्+ घञ्।

७१. (क) शम्बूकः—देव, पश्य—

गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कारवत्कीचक-
स्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौञ्चाभिधोऽयं गिरिः।
एतस्मिन्प्रचलाकिनां प्रचलतामुद्वेजिताः कूजितै-
रुद्वेल्लन्ति पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु कुम्भीनसाः ॥२९॥

अन्वय—गुञ्जत्कुञ्जकुटीरकौशिकघटाघूत्कारवत्कीचकस्तम्बाडम्बरमूकमौकुलिकुलः क्रौञ्चाभिधः अयं गिरिः। एतस्मिन् प्रचलतां प्रचलाकिनां कूजितैः उद्वेजिताः कुम्भीनसाः पुराणरोहिणतरुस्कन्धेषु उद्वेल्लन्ति।

शम्बूक—महाराज, देखिए—

यह क्रौंच-नामक पर्वत है, जहाँ पर गूँजते हुए कुञ्जरूपी कुटीरों में उल्लुओं के घू-घू शब्द से युक्त बाँसों की तीव्र ध्वनि से काक-समूह चुप पड़ गया है। इस

पाठभेद—७१ (क) काले—कूजत० (शब्द करते हुए)। नि० घुक्कारवत्० (घू घू ध्वनि वाले), का०, काले—क्रौञ्चावतोऽयं (यह क्रौञ्चावत नाम का)।

(पर्वत) पर भ्रमण करते हुए मोरों के शब्द से घबड़ाए हुए सर्प पुराने चन्दन-वृक्षों के तनों पर इधर-उधर सरक रहे हैं ॥२६॥

संस्कृत-व्याख्या

गुञ्जत्०——गुञ्जन्तः अस्पष्टध्वनियुक्ताः ये कुञ्जकुटीराः कुञ्जरूपाः कुटयः तेषु कौशिकघटानाम् उलूकसमूहानां घूत्कारवन्तः घू-घू-ध्वनियुक्ताः ये कीचकस्तम्बाः वंशविशेषसमूहाः तेषाम् आडम्बरेण उग्रशब्देन मूकानि निःशब्दानि मौकुलिकुलानि वायसवृन्दाः यस्मिन् सः, क्रौञ्चाभिधः——क्रौञ्चनामकः, गिरिः—पर्वतः अस्ति । एतस्मिन्—अस्मिन् पर्वते, प्रचलतां—इतस्ततो विचरताम्, प्रचलाकिनां—मयूराणाम्, कूजितैः——शब्दैः, उद्वेजिताः——भीताः, कुम्भीनसाः——सर्पाः, पुराण०—पुराणानां प्राचीनानां रोहिणतरूणां चन्दन-वृक्षाणां स्कन्धेषु प्रकाण्डेषु, उद्वेल्लन्ति——इतस्ततोऽपयान्ति । अत्र स्वभावोक्तिः रूपकं विशेषोक्तिश्चालंकाराः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) गुञ्जत्०—गुञ्जत्—गूँजते हुए, कुञ्जकुटीर—कुंजरूपी कुटियों में, कौशिक—उल्लुओं के, घटा—समूह के, घूत्कारवत्—घू घू ध्वनि से युक्त, कीचक—विशेष प्रकार के बाँस जो वायु के प्रवेश से शब्द करते हैं, उनके, स्तम्ब——समूह के, आडम्बर—तीव्र शब्द से, मूक—मौन, मौकुलिकुल—काकसमूह से युक्त । गुञ्जन्तः ये कुञ्जकुटीराः (कर्मधा०), तेषु कौशिकघटानां घूत्कारः (तत्पु०), तद्वन्तः ये कीचकाः (कर्मधा०), तेषां स्तम्बानाम् आडम्बरः (तत्पु०), तेन मूकानि मौकुलिकुलानि यस्मिन् सः, बहु०। गुञ्जत्—गुञ्ज्+शतृ । कुटीर—छोटी कुटिया, ह्रस्वा कुटी कुटीरः । कुटी+र, कुटीशमी० (५-३-८८) से र प्रत्यय । कौशिक—उल्लू । कौशिक के अर्थ इन्द्र, विश्वामित्र आदि भी हैं । 'कौशिको मुनिभेदे च नकुले शक्रघूकयोः' । घटा—हाथियों के झुण्ड के लिए घटा शब्द आता है । यहाँ पर केवल समूह अर्थ है । कीचक—हवा के झोंके से बजने वाले बाँस । वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः, इत्यमरः । स्तम्ब—झाड़ी या गुच्छा । स्तम्बो गुच्छस्तृणादिनः, इत्यमरः । आडम्बर—इसका मुख्य अर्थ भेरी का शब्द और हाथियों का गर्जन है । यहाँ पर जोर का शब्द अर्थ है । (२) क्रौञ्चा०—क्रौंचनामक । क्रौञ्चः अभिधा यस्य सः, बहु० ।

इसको ही क्रौंचावत पर्वत भी कहते हैं। (३) प्रचलाकिनाम्—मोरों का। प्रचलाकः बर्हः अस्य अस्ति इति प्रचलाकिन्। प्रचलाक+इनि (इन्)। मत्वर्थ में इनि। (४) प्रचलताम्—चलते हुए। प्र+चल्+शतृ+ष० बहु०। (५) उद्वेजिताः—व्याकुल, घबड़ाए हुए। उद्वेजित—उद्+विज्+णिच्+क्त। (६) कूजितैः—शब्दों से। कूजितम्—कूज्+क्त। (७) उद्वेल्लन्ति—इधर-उधर सरक रहे हैं। सर्प मोरों से भयभीत होने पर भी इधर-उधर हट ही रहे हैं, चन्दन के वृक्ष को सर्वथा छोड़ नहीं रहे हैं। वे मृत्यु के भय के संमुख भी चन्दन से लिपटे हुए हैं। मोर साँपों को खा जाते हैं, ऐसी लोकोक्ति है। उत्+वेल्ल्+लट्, प्र० बहु०। (८) पुराण०—पुराण—पुराने, रोहिणतरु—चन्दन के वृक्षों के, स्कन्धेषु—तनों पर। पुराणाः रोहिणतरवः (कर्मधा०), तेषां स्कन्धेषु, तत्पु०। नए चन्दन के वृक्षों से पुराने चन्दन के वृक्षों में सुगन्ध बहुत अधिक होती है। (९) कुम्भीनसाः—सर्प। कुम्भी इव नासिका येषां ते, बहु०। बहुव्रीहि समास होने पर अञ्नासिकायाः० (५-४-११८) से नासिका को नस् और समासान्त अच् प्रत्यय होकर कुम्भीनस होता है। (१०) इस श्लोक में क्रौंच पर्वत का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार है। कुञ्जकुटीर में रूपक अलंकार है। मोरों के भयरूपी कारण के होने पर भी साँपों के न भागनेरूपी कार्य का वर्णन होने से विशेषोक्ति अलंकार है। इस श्लोक में अनुप्रास की छटा भी दर्शनीय है।

७१. (ख) अपि च—

एते ते कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयो
मेघालम्बितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दाक्षिणाः।
अन्योन्यप्रतिघातसंकुलचलत्कल्लोलकोलाहलै-
रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्सङ्गमाः ॥३०॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते पञ्चवटीप्रवेशो नाम द्वितीयोऽङ्कः।

पाठभेद—७१ (ख) दाक्षिणाः — दक्षिणाः (दक्षिण दिशा के)।

अन्वय—कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयः मेघालम्बितमौलिनील-शिखराः ते एते दाक्षिणाः क्षोणीभृतः । अन्योन्यप्रतिघातसंकुलचलत्कल्लोलकोलाहलैः उत्तालाः ते इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्सङ्गमाः ।।

शम्बूक—और भी—

ये वही दक्षिण दिशा के पर्वत हैं, जिनकी गुफाओं में गोदावरी का जल गद्गद शब्द कर रहा है और जिनकी चोटियाँ अग्रभाग में लगे हुए बादलों से नील-वर्ण की दिखाई दे रही हैं। ये गहरे जल वाले एवं पवित्र नदियों के संगम हैं, जो परस्पर टकराने से घनी चलती हुई महातरंगों के कोलाहल से भयानक दिखाई दे रहे हैं ।।३०।।

(सबका प्रस्थान)

महाकवि भवभूतिविरचित उत्तररामचरित में पंचवटी-प्रवेश नामक द्वितीय अंक समाप्त हुआ ।

संस्कृत-व्याख्या

कुहरेषु—गह्वरेषु, गद्गद०—गद्गदम् अव्यक्तं नदन्ति शब्दायमानानि गोदावर्याः गोदावरीनद्याः वारीणि सलिलानि येषु ते, मेघा०—मेघैः जलदैः आलम्बिताः आश्रिताः मौलयः अग्रभागाः तैः नीलानि श्यामवर्णानि शिखराणि शृङ्गाणि येषां ते, ते—पूर्वदृष्टाः, एते—पुरोवर्तमानाः, दाक्षिणाः—दक्षिणदिग्वर्तिनः, क्षोणीभृतः—पर्वताः सन्ति । अन्योन्य०—अन्योन्यस्य परस्परस्य प्रतिघातेन संघट्टनेन संकुलाः घनाः चलन्तः प्रवहन्तः ये कल्लोलाः महातरङ्गाः तेषां कोलाहलैः महारवैः, उत्तालाः—उत्कटाः, भयावहाः वेगवन्तो वा, ते—प्रसिद्धाः, इमे—पुरोवर्तिनः, गभीरपयसः—गम्भीरसलिलाः, पुण्याः—पावनाः, सरित्संगमाः—नदीसङ्गमाः सन्ति । अत्र तद्गुणोऽलंकारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **कुहरेषु**—गुफाओं में । (२) **गद्गद०**—जिनकी गुफाओं में गोदावरी का जल गद्गद शब्द कर रहा है । गद्गदं नदन्ति गोदावरीवारीणि येषु ते, बहु० । कुहरेषु का गद्गदनदत् के साथ संबन्ध है, अतः यह एकदेशी अन्वय का उदाहरण समझना चाहिए । नदत्—नद्+शतृ । (३) **मेघा०**—मेघालम्बित—बादलों से युक्त, मौलि—चोटियों वाले, नीलशिखराः—अतः

नीले शिखर वाले । मेघैः आलम्बिताः मौलयः येषां ते (बहु०), (अतएव) नीलानि शिखराणि येषां ते, बहु० । वीरराघव ने मौलि और शिखर का यह अन्तर दिया है—शिखराग्रं मौलिः, पर्वताग्रं शिखरमिति इह भेदः । पहाड़ की छोटी छोटी चोटियों को शिखर कहते हैं और सबसे ऊँची चोटी को मौलि कहते हैं । (४) **क्षोणीभृतः**—पर्वत । क्षोणीं बिभ्रति इति, पृथ्वी को धारण करने वाले । क्षोणी +भृ+ क्विप् (०) । ह्रस्वस्य पिति० (६-१-७१) से तुक् (त्) होने पर क्षोणी-भृत् बनता है । (५) **दाक्षिणाः**—दक्षिण दिशा के । दक्षिणस्यां भवाः, दक्षिण+अण् । (६) **अन्योन्य०**—अन्योन्य—परस्पर, प्रतिघात—रगड़ से, संकुल—घनी, चलत्–चलती हुई, कल्लोल—बड़ी तरंगों के, कोलाहलैः—हल्ले से । अन्योन्यस्य प्रतिघातेन सङ्कुलाः चलन्तः ये कल्लोलाः, तेषां कोलाहलैः, तत्पु० । अन्योन्यः—अन्यः च अन्यः च । कर्मव्यतिहारे० (वा०) से द्वित्व और असमासवद्भावे० (वा०) से अन्य शब्द के बाद स् । सन्धि होकर अन्योन्य हुआ । प्रतिघात—टक्कर, रगड़ । प्रति+हन्+घञ् । ह् को घ् और न् को त् । चलत्—चल्+शतृ । (७) **उत्तालाः**—उत्कट, भयंकर । उत्ताल—उद्गतः तालात्, प्रादितत्पु० । (८) **गभीर०**—गहरे जल वाले । गभीराणि पयांसि येषां ते, बहु० । (९) **सरित्०** —नदियों के संगम । सरितां संगमाः, तत्पु० । संगम—सम्+गम्+घञ् । (१०) शिखरों का अपने रूप को छोड़कर मेघों के नील वर्ण को धारण करने से तद्गुण अलंकार है ।

इत्युत्तररामचरितस्याचार्यकपिलदेवद्विवेदिकृतायां 'भारती'-व्याख्यायां द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः ।

———

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति नदीद्वयम्)

१. एका--सखि मुरले, किमसि संभ्रान्तेव ?

(तदनन्तर तमसा और मुरला नामक दो नदियों का प्रवेश)

एक नदी--सखी मुरला, तुम घबड़ाई हुई सी क्यों हो ?

२ (क). मुरला--सखि तमसे, प्रेषितास्मि भगवतोऽगस्त्यस्य पत्न्या लोपामुद्रया सरिद्वरां गोदावरीमभिधातुम् । जानास्येव यथा वधूपरित्यागात्प्रभृति--

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढघनव्यथः ।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः ॥१॥

अन्वय--गभीरत्वात् अनिर्भिन्नः अन्तर्गूढघनव्यथः रामस्य करुणः रसः पुटपाकप्रतीकाशः (अस्ति) ।

मुरला--सखी तमसा, भगवान् अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा ने श्रेष्ठ नदी गोदावरी से यह कहने के लिए भेजा है कि--तुम जानती ही हो कि पत्नी (सीता) के परित्याग के बाद से--

गंभीरता के कारण अप्रकट अन्दर छिपी हुई घोर वेदना से युक्त राम का करुण रस (शोक) पुटपाक के तुल्य है ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या

गभीरत्वात्--गम्भीरताहेतोः (पक्षे--अन्तर्भारवत्त्वात्), अनिर्भिन्नः--अव्यक्तः (पक्षे--अविदीर्णः), अन्तर्गूढ०--अन्तः हृदये गूढा गुप्ता घना गुरुः व्यथा पीडा यस्य सः, (पक्षे--अन्तर्विद्यमानगुरुतापः), रामस्य--दाशरथेः, करुणः रसः--जानकीवियोगजन्यः शोकः, पुट०--पुटे मृदादिपात्रे पाकः पचनं तद्वत्, अस्तीति शेषः । अत्र पूर्णोपमाऽलंकारः । श्लोको वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **नदीद्वयम्**—दो नदियाँ, तमसा और मुरला। यहाँ पर दोनों नदियों की अधिष्ठात्री देवताओं से अभिप्राय है। नदीनां द्वयम्, तत्पु०। (२) **संभ्रान्तेव**—घबड़ाई हुई सी। राम की संभावित मूर्च्छा आदि के कारण वह घबड़ाई हुई है। संभ्रान्ता—सम्+भ्रम्+क्त+टाप्। अनुनासिकस्य० (६-४-१५) से भ्रम् के अ को आ। (३) **प्रेषिता०**—भेजी गई हूँ। प्र+इष्+णिच्+क्त+टाप्। (४) **सरिद्वराम्०**—श्रेष्ठ नदी गोदावरी को। सरित्सु वराम्, तत्पु०। (५) **अभिधातुम्**—कहने को। अभि+धा+तुम्। (६) **वधू०**—सीता के परित्याग के बाद से। वध्वाः परित्यागः तस्मात्, तत्पु०। परित्याग—परि+त्यज्+घञ्। प्रभृति शब्द के कारण पंचमी। (७) **अनिर्भिन्नः**—अप्रकट, अव्यक्त। पुटपाक के पक्ष में न फटा हुआ अर्थ होगा। न निर्भिन्नः, नञ् तत्पु०। निर्भिन्न—निर्+भिद्+क्त। (८) **गभीरत्वात्**—गंभीरता के कारण। पुटपाक के पक्ष में अन्दर भारी होने के कारण अर्थ होगा। (९) **अन्तर्गूढ०**—अन्तर्गूढ—अन्दर छिपी हुई है, घनव्यथः—घनी व्यथा जिसके। पुटपाक के पक्ष में अर्थ होगा—जिसके अन्दर घना ताप छिपा हुआ है। अन्तः गूढा घना व्यथा यस्य सः, बहु०। गूढ—गुह्+क्त। (१०) **पुटपाक०**—पुटपाक के तुल्य। पुटे पाकः पुटपाकः, तेन प्रतीकाशः, तत्पु०। पाक—पच्+घञ्। प्रतीकाश—तुल्य, सदृश। प्रति+काश्+घञ्। उपसर्गस्य० (६-३-१२२) से प्रति की इ को ई। पुटपाक यह आयुर्वेद का पारिभाषिक शब्द है। रसायनों और भस्मों के निर्माण में इस विधि का उपयोग किया जाता है। इसकी विधि है—दो मिट्टी के सकोरों के बीच में धातु को रखकर दोनों सकोरों को एक दूसरे के ऊपर रखकर कपड़े और मिट्टी से मजबूती से बाँध दिया जाता है और उसको उपलों की आग में पकाया जाता है। अन्दर ही अन्दर वह धातु जलकर भस्म या रसायन के रूप में अत्यन्त गुणकारी ओषधि हो जाती है। इस विधि को पुटपाक कहते हैं। (११) **करुणो रसः**—करुण रस। यहाँ पर शोक या वेदना अर्थ है। (१२) इस श्लोक में राम की व्यथा की पुटपाक से उपमा दी गई है। उपमा के चारों अंगों के वर्णन से पूर्णोपमा अलंकार है।

२ (ख) तेन च तथाविधेष्टजनकष्टविनिपात-जन्मना प्रकृष्टतरं सतेन दीर्घशोकसंतानेन संप्रत्यतितरां

परिक्षीणो रामभद्रः। तमवलोक्य कम्पितमिव कुसुमसम्बन्धनं मे हृदयम्। अधुना च प्रतिनिवर्तमानेन रामभद्रेण नियतमेव पञ्चवटीवने वधूसहनिवासविस्रम्भसाक्षिणः प्रदेशा द्रष्टव्याः। तत्र च निसर्गधीरस्याप्येवंविधायामवस्थायामतिगम्भीराभोगशोकक्षोभसंवेगात्पदे पदे महाप्रमादानि शोकस्थानानि शङ्कनीयानि रामभद्रस्य। तद् भगवति गोदावरि, त्वया तत्रभवत्या सावधानया भवितव्यम्।

वीचीवातैः शीकरक्षोदशीतै-
राकर्षद्भिः पद्मकिञ्जल्कगन्धान्।
मोहे मोहे रामभद्रस्य जीवं
स्वैरं स्वैरं प्रेरितैस्तर्पयेति ॥२॥

अन्वय—शीकरक्षोदशीतैः पद्मकिञ्जल्कगन्धान् आकर्षद्भिः स्वैरं स्वैरं प्रेरितैः वीचीवातैः रामभद्रस्य मोहे मोहे जीवं तर्पय इति।

मुरला—और वैसे इष्ट व्यक्ति (सीता) पर आए हुए दुःख से उत्पन्न तथा पराकाष्ठा को प्राप्त उस लम्बी शोक-परम्परा से रामभद्र इस समय बहुत अधिक कृश हो गए हैं। उन्हें देखकर फूल के तुल्य (कोमल) बन्धन वाला मेरा हृदय काँप-सा गया है। अब (अयोध्या को) लौटते हुए रामभद्र पंचवटी के वन में सीता के सहवास के समय विलास-क्रीडाओं के साक्षी प्रदेशों को अवश्य ही देखेंगे। और वहाँ पर स्वभाव से ही धीर राम के लिए ऐसी (वियोग की) अवस्था में अतिगम्भीररूप से विस्तृत शोक-जन्य क्षोभ के आवेग के कारण पग-पग पर महाप्रमाद-युक्त शोक-स्थानों (मूर्च्छा आदि) की आशंका करनी चाहिए। अतः हे भगवती गोदावरी, पूजनीय आपको सावधान रहना चाहिए।

जल-कणों से शीतल, पद्म-पराग की सुगन्ध को लाने वाली, धीरे-धीरे चलने वाली, तरङ्ग-वायुओं से रामचन्द्र की प्रत्येक मूर्च्छा के समय चेतना प्रदान करना ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या

शीकर०——शीकराणां जलकणानां क्षोदैः चूर्णैः शीतैः शीतलैः, पद्म०——पद्मानां सरोजानां किञ्जल्कानां केसराणां गन्धान् सौरभाणि, आकर्षद्भिः—आहरद्भिः, स्वैरं स्वैरं——मन्दं मन्दम्, प्रेरितैः——संचारितैः, वीचीवातैः——तरङ्गवायुभिः, रामभद्रस्य——रामचन्द्रस्य, मोहे मोहे——प्रतिमूर्च्छावस्थायाम्, जीवं——जीवनम्, तर्पय इति——संचारय इति। अत्र समुच्चयोऽलंकारः। शालिनी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **तथाविधेष्ट०**——तथाविध——वैसे अर्थात् सीता जैसे, इष्टजन——प्रिय व्यक्ति पर, कष्टविनिपात——विपत्ति के आ पड़ने से, जन्मना——उत्पन्न होने वाले। तथाविधे इष्टजने कष्टस्य विनिपातः (तत्पु०), तस्मात् जन्म यस्य सः, तेन, बहु०। तथाविधः——तथा विधा यस्य सः, बहु०। इष्ट——इष्+क्त। विनिपात——वि+नि+पत्+घञ्। (२) **प्रकृष्टतां०**——अधिकता या पराकाष्ठा को प्राप्त। (३) **दीर्घ०**——लम्बे शोक की परम्परा से। दीर्घः शोकः (कर्मधा०), तस्य सन्तानेन, तत्पु०। सन्तानः——सम्+तन्+घञ्। (४) **अतितराम्**——बहुत अधिक। अति+तरप् (तर)+आम्। द्विवचन० (५-३-५७) से तरप् और किमेत्तिङ ० (५-४-११) से आम्। (५) **परिक्षीणः**——दुर्बल, कृश। परि+क्षि+क्त। निष्ठायाम० (६-४-६०) से इ को दीर्घ और क्षियो दीर्घात् (८-२-४६) से त को न। (६) **अवलोक्य**——देखकर। अव+लोक्+णिच्+ल्यप्। (७) **कुसुम०**——फूल के तुल्य बन्धन वाला। कुसुमसमं बन्धनं यस्य तत्, बहु०। (८) **प्रतिनिवर्तमानेन**——लौटते हुए। प्रति+नि+वृत्+शानच्+तृ० एक०। (९) **वधू०**——वधू——सीता के, सहनिवास——साथ रहने के समय, विस्रम्भ——विश्वस्त कार्य, विलास——क्रीड़ाओं के, साक्षिणः—— साक्षी। वध्वा सहनिवासे विस्रम्भाः (तत्पु०), तेषां साक्षिणः, तत्पु०। (१०) **द्रष्टव्याः**——देखने योग्य हैं। द्रष्टव्य——दृश्+तव्य। (११) **निसर्ग०**——स्वभाव से धीर। निसर्गेण धीरः, तस्य, तत्पु०। (१२) **अतिगम्भीरा०**——अतिगम्भीर——बहुत गंभीर, आभोग——विस्तार वाले, शोकक्षोभ——शोकजन्य विक्षोभ को, संवेगात्——वेग से। अतिगम्भीरः आभोगः

यस्य सः (बहु०), तादृशः यः शोकः (कर्मधा०), तस्मात् यः क्षोभः (तत्पु०), तस्य संवेगात्, तत्पु० । (१३) **महा०**—बड़े प्रमादों से युक्त । महान्तः प्रमादाः येषु तानि, बहु० । (१४) **शोक०**—शोक के स्थान । शोकस्य स्थानानि, तत्पु० । (१५) **सावधानया**—सावधान । अवधानेन सहिता, तया, बहु० । (१६) **भवितव्यम्**—होना चाहिए । भू+तव्य । (१७) **वीचीवातैः**—तरंगों से मिली हुई वायुओं से । वीचीसंगताः वाताः, तैः, मध्यमपदलोपी समास । (१८) **शीकर०**—शीकर—जलकणों के, क्षोद—चूर्ण से, शीतैः—शीतल । शीकराणां क्षोदैः शीतः, तत्पु० । (१९) **आकर्षद्भिः**—लाते हुए । आ+कृष्+शतृ+तृ० बहु० । (२०) **पद्म०**—पद्म—कमलों के, किञ्जल्क—केसर या पराग के, गन्धान्—गन्धों को । पद्मानां किञ्जल्कानां गन्धान्, तत्पु० । (२१) **मोहे०**—प्रत्येक मूर्च्छा के समय । वीप्सा अर्थ में द्विरुक्ति, नित्यवीप्सयोः (८-१-४) से । (२२) **जीवम्**—जीवन को । जीव—जीव्+घञ् । (२३) **स्वैरम्**—मन्द मन्द गति से, धीरे-धीरे । स्वः ईरः प्रेरणा यस्मिन् तत्, बहु० । स्व+ईर, स्वादीरेरिणोः (वा०) से वृद्धि होकर स्वैर रूप बनता है । प्रकारे गुणवचनस्य (८-१-१२) से द्विरुक्ति । (२४) **प्रेरितैः**—प्रेरणा दी गई । प्रेरित—प्र+ईर्+णिच्+क्त । (२५) **तर्पय**—सन्तुष्ट करना । तृप्+णिच्+लोट् म० एक० । (२६) इस श्लोक में वायु के तीनों गुणों शीतल, मन्द, सुगन्ध का संग्रह होने से समुच्चय अलंकार है । शीकर० से शीतल, स्वैरम्० से मन्द और पद्म० से सुगन्ध का उल्लेख है ।

३. तमसा—उचितमेव दाक्षिण्यं स्नेहस्य । संजीवनोपायस्तु मौलिक एव रामभद्रस्याद्य संनिहितः ।

तमसा—स्नेह की यह उदारता उचित ही है । किन्तु रामचन्द्र को होश में लाने का मौलिक उपाय आज समीप ही विद्यमान है ।

४. मुरला—कथमिव ?

मुरला—कैसे ?

५. तमसा—तत्सर्वं श्रूयताम्—पुरा किल वाल्मीकितपोवनोपकण्ठात्परित्यज्य निवृत्ते सति लक्ष्मणे सीता

देवी प्राप्तप्रसववेदनमतिदुःखसंवेगादात्मानं गङ्गाप्रवाहे निक्षिप्तवती। तदैव तत्र दारकद्वयं च प्रसूता। भगवतीभ्यां पृथ्वीभागीरथीभ्यामभ्युपपन्ना रसातलं च नीता। स्तन्य-त्यागात्परेण दारकद्वयं च तस्य प्राचेतसस्य महर्षेर्गङ्गादेव्या समर्पितं स्वयम्।

तमसा—तो सारी बात सुनो। पहले जब लक्ष्मण सीता को वाल्मीकि के तपोवन के समीप छोड़कर लौट गए, तब देवी सीता ने प्रसव-वेदना से पीडित होकर घोर दुःख के आवेग के कारण अपने आप को गंगा के प्रवाह में फेंक दिया। उसी समय वहाँ उनके दो बालक उत्पन्न हुए। भगवती पृथ्वी और गंगा अनुग्रह करके उन्हें पाताल में ले गईं। माता का दूध छूटने के बाद उन दोनों बालकों को गंगा जी ने महर्षि वाल्मीकि को सौंप दिया।

६. मुरला—(सविस्मयम्)

ईदृशानां विपाकोऽपि जायते परमाद्भुतः।
यत्रोपकरणीभावमायात्येवंविधो जनः ॥३॥

अन्वय—ईदृशानां विपाकः अपि परमाद्भुतः जायते, यत्र एवंविधः जनः उपकरणीभावम् आयाति।

मुरला—(आश्चर्य के साथ)

ऐसे व्यक्तियों की दुरवस्था भी अत्यन्त आश्चर्यजनक होती है, जिसमें ऐसे (पृथ्वी और गंगा जैसे) लोग सहायक होते हैं ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या

ईदृशानां—सीतारामसदृशानाम्, विपाकः अपि—दुरवस्था अपि, दुष्परि-णामोऽपि, परमा०—अत्याश्चर्यजनकः, जायते—भवति। यत्र—यस्यां दुरवस्थायाम्, एवंविधः—पृथ्वीगङ्गादिसदृशः, जनः—लोकः, उपकरणीभावम्—सहायत्वम्, आयाति—प्राप्नोति। अत्र काव्यलिङ्गमलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) दाक्षिण्यम्—उदारता। दक्षिणे सरलोदारौ, इत्यमरः। दक्षिणस्य भावः, दक्षिण+ष्यञ्। गुणवचन (५.१.१२४) से ष्यञ्। राम के प्रति

प्रेम के कारण लोपामुद्रा का गोदावरी को यह उदारतापूर्ण सन्देश भेजना उचित ही है। (२) **संजीवनो०**--जीवित करने का उपाय। संजीवनस्य उपायः, तत्पु०। (३) **मौलिकः**--मौलिक। मूलात् आगतः मौलिकः। मूल+ठञ् (इक)। तत आगतः (४-३-७४) से ठञ्। मूल अर्थात् सीता से प्राप्त होने वाला। (४) **संनिहितः**--समीप में है। सम्+नि+धा+क्त। धा को हि। (५) **वाल्मीकि०**--वाल्मीकि के तपोवन के समीप से। वाल्मीकेः तपोवनस्य उपकण्ठात्, तत्पु०। उपकण्ठ--समीप। (६) **परित्यज्य**--छोड़कर। परि+त्यज्+ल्यप्। (७) **निवृत्ते०**--लक्ष्मण के लौटने पर। यस्य च भावेन० (२-३-३७) से भावलक्षण में सप्तमी। निवृत्त--नि+वृत्+क्त। (८) **प्राप्त०**--प्राप्त हुई है प्रसव की वेदना जिसको। प्राप्ता प्रसववेदना येन तम्, बहु०। (९) **अति०**--घोर दुःख के वेग के कारण। अतिदुःखस्य संवेगात्, तत्पु०। (१०) **आत्मानम्**--अपने आप को, अपने शरीर को। (११) **गङ्गाप्रवाहे**--गंगा के प्रवाह में। गङ्गायाः प्रवाहे, तत्पु०। (१२) **निक्षिप्तवती**--डाल दिया, फेंक दिया। नि+क्षिप्+क्तवतु+ङीप्। (१३) **दारकद्वयम्**--दो बच्चों को। दारकयोः द्वयम्, तत्पु०। द्वय--द्वि+अयच्। (१४) **प्रसूता**--जन्म दिया। प्र+सू+क्त+टाप्। आदिकर्मणि क्तः० (३-४-७१) से कर्तृवाच्य में क्त। (१५) **पृथ्वी०**--पृथ्वी और गंगा के द्वारा। पृथ्वी च भागीरथी च, ताभ्याम्, द्वन्द्व०। (१६) **अभ्युपपन्ना**--अनुगृहीत, अनुग्रह की गई। अभि+उप+पद्+क्त+टाप्। (१७) **रसातलम्**--पाताल को। (१८) **स्तन्य०**--स्तन्य--माता के दूध के, त्यागात्०--छूटने के बाद। स्तन्यस्य त्यागात्, तत्पु०। स्तन्यम्--दूध, स्तने भवम्। स्तन+यत्। अन्यारादितरर्ते० (२-३-२९) से परेण के कारण पंचमी। अपवर्गे तृतीया (२-३-६) से परेण में तृतीया। यदि परेण को एनप् प्रत्ययान्त माना जाएगा तो एनपा द्वितीया (२-३-३१) से स्तन्यत्यागात् में द्वितीया या षष्ठी ही होनी चाहिए, पंचमी नहीं। तब इसको अशुद्ध प्रयोग माना जाएगा। (१९) **परेण**--बाद में। (२०) **प्राचेतसस्य०**--महर्षि वाल्मीकि को। यहाँ पर समर्पितम् के कारण चतुर्थी होनी चाहिए थी, परन्तु संबन्धमात्र की विवक्षा के कारण षष्ठी है। (२१) **ईदृशानाम्**--सीता जैसे व्यक्ति का। (२२) **विपाकः**--परिणाम। यहाँ पर दुरवस्था भाव है। विपाकः--वि+पच्+घञ्। (२३) **परमा०**--अत्यन्त आश्चर्यजनक। परमः

चासौ अद्भुतः, कर्मधा० । (२४) उपकरणी०—साधनरूपता को, सहायता को । अनुपकरणम् उपकरणं संपद्यते उपकरणीभवति, तस्य भावः तम् । यहाँ पर अभूततद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय है, अतः अ को ई । सीता के उद्धार में पृथ्वी और गंगा सहायक हुई हैं । (२५) आयाति—प्राप्त होता है । (२६) परमाद्भुतः जायते के प्रति उत्तरार्ध कारण है । अतः काव्यलिंग अलंकार है ।

७ तमसा—इदानीं तु शम्बूकवृत्तान्तेनानेन संभावितजनस्थानागमनं रामभद्रं सरयूमुखादुपश्रुत्य भगवती भागीरथी यदेव भगवत्या लोपामुद्रया स्नेहादाशङ्कितं तदेवाभिशङ्क्य सीतासमेता केनचिदिव गृहाचारव्यपदेशेन गोदावरीमुपागता ।

तमसा—अभी 'इस शम्बूक के वृत्तान्त से रामभद्र जनस्थान में आएँगे,' यह समाचार सरयू के मुंह से सुनकर भगवती भागीरथी (गंगा), लोपामुद्रा ने स्नेहवश जिस बात की आशंका की थी, उसी की आशंका करके सीता के सहित कुछ घरेलू काम के बहाने गोदावरी के पास आई हैं ।

८ मुरला—सुष्ठु चिन्तितं भगवत्या भागीरथ्या । राजधानीस्थितस्यास्य खलु तैश्च तैश्च जगतामाभ्युदयिकैः कार्यैर्व्यापृतस्य रामभद्रस्य नियताश्चित्तविक्षेपाः । अव्यग्रस्य पुनरस्य शोकमात्रद्वितीयस्य पञ्चवटीप्रवेशो महाननर्थ इति । तत्कथं सीतया रामभद्रोऽयमाश्वासनीयः स्यात् ?

मुरला—भगवती गंगा ने ठीक सोचा है । राजधानी में रहते हुए तथा लोकों के अभ्युदयकारी विविध कार्यों में संलग्न रामभद्र के चित्त की चंचलता नियन्त्रित रहती थी । इस समय कार्यों में अव्यस्त और केवल शोकरूपी साथी से युक्त राम का पंचवटी में प्रवेश बहुत अनिष्टकारी है । तो सीता रामभद्र को कैसे आश्वासन दे सकेंगी ?

९. तमसा—उक्तमत्र भगवत्या भागीरथ्या 'वत्से देवयजनसंभवे सीते, अद्य खल्वायुष्मतोः कुशलवयोर्द्वादशस्य जन्मवत्सरस्य संख्यामङ्गलग्रन्थिरभिवर्तते। तदात्मनः पुराणश्वशुरमेतावतो मानवस्य राजर्षिवंशस्य प्रसवितारं सवितारमपहतपाप्मानं देवं स्वहस्तावचितैः पुष्पैरुपतिष्ठस्व। न त्वामवनिपृष्ठवर्तिनीमस्मत्प्रभावाद् वनदेवता अपि द्रक्ष्यन्ति किमुत मर्त्याः?' इति। अहमप्याज्ञापिता 'तमसे, त्वयि प्रकृष्टप्रेमैव वधूर्जानकी। अतस्त्वमेवास्याः प्रत्यनन्तरीभव' इति। साहमधुना यथादिष्टमनुतिष्ठामि।

तमसा—इस विषय में भगवती भागीरथी ने कहा—'हे यज्ञभूमि से उत्पन्न पुत्री सीता, आज चिरंजीवी कुश और लव की बारहवीं मंगलमयी वर्षगाँठ है। इसलिए अपने पुराने श्वसुर और वैवस्वत मनु से संबद्ध इतने विशाल राजर्षिवंश के प्रवर्तक, पापनाशक सूर्य देवता की अपने हाथ से चुने हुए फूलों से उपासना करो। भूतल पर विद्यमान तुमको मेरे प्रभाव से वनदेवता भी नहीं देख सकेंगे, साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या है?' मुझे भी उन्होंने आज्ञा दी है कि—'तमसा, वधू जानकी तुमसे बहुत अधिक प्रेम करती है। अतः तुम ही उसके साथ रहना।' इसलिए मैं अब उनके आदेशानुसार काम कर रही हूँ।

टिप्पणी

(१) **शम्बूक०**—शम्बूक के वृत्तान्त से। शम्बूकस्य वृत्तान्तेन, तत्पु०। (२) **संभावित०**—जिसकी जनस्थान में आने की संभावना है। संभावितं जनस्थाने आगमनं यस्य तम्, बहु०। (३) **उपश्रुत्य**—सुन कर। उप+श्रु+ल्यप्। (४) **आशङ्कितम्**—आशंका की थी। आ+शङ्क्+क्त। (५) **अभिशङ्क्य**—आशंका करके। अभि+शङ्क्+ल्यप्। (६) **सीता-समेता**—सीता के साथ। सीतया समेता, तत्पु०। (७) **गृहाचार०**—गृहाचार—घरेलू काम के, व्यपदेशेन—बहाने से। गृहाचारस्य व्यपदेशेन। (८) **उपागता**—पास गई। उप+आ+गम+क्त+टाप्। (९) **चिन्तितम्**—

सोचा। चिन्त्+णिच्+क्त। (१०) **राजधानी०**—राजधानी में रहते हुए। राजधान्यां स्थितस्य, तत्पु०। (११) **आभ्युदयिकैः**—उन्नतिकारी। अभ्युदयः प्रयोजनं येषां तैः, अभ्युदय+ठञ् (इक)। (१२) **व्यापृतस्य**—लगे हुए। व्यापृत—वि+आ+पृ+क्त। (१३) **नियताः**—नियन्त्रित थे। नियत—नि+यम्+क्त। (१४) **चित्त०**—चित्त की चंचलता। चित्तस्य विक्षेपाः, तत्पु०। (१५) **अव्यग्रस्य**—जो व्यस्त नहीं है। न व्यग्रः तस्य, नञ् तत्पु०। (१६) **शोक०**—केवल शोक ही जिसका साथी है। शोकः एव शोकमात्रम् (मयूरव्यंसकादि तत्पु०), शोकमात्रं द्वितीयं यस्य तस्य, बहु०। (१७) **पञ्चवटी०**—पंचवटी में प्रवेश। पञ्चवट्यां प्रवेशः, तत्पु०। (१८) **आश्वासनीयः**—आश्वासन दे सकेंगी। आ+श्वस्+णिच्+अनीय। (१९) **देवयजन०**—यज्ञभूमि से उत्पन्न। देवयजनात् संभवः यस्याः सा, तत्संबुद्धिः, बहु०। (२०) **आयुष्मतोः**—चिरंजीवी, आयुष्मानों का। (२१) **कुश०**—कुश और लव का। कुशश्च लवश्च, तयोः, द्वन्द्व। (२२) **द्वादशस्य**—बारहवें। द्वादशः—द्वौ च दश च द्वादश, द्वादशानां पूरणः द्वादशः। द्वादशन्+डट् (अ)। डित् होने से अन् का लोप। तस्य पूरणे डट् (५-२-४८) से पूरण अर्थ में डट्। (२३) **जन्म०**—जन्म के वर्ष की। जन्मनः वत्सरस्य, तत्पु०। (२४) **संख्या०**—मंगलमय वर्षगाँठ। इस अवसर पर स्त्रियाँ बालक की कलाई में धागा बाँधती हैं और वह जितने वर्ष का होता है उतनी ही गाँठ उस धागे में लगाती हैं। मङ्गलाय ग्रन्थिः (तत्पु०), संख्याबोधकः मङ्गलग्रन्थिः, मध्यमपदलोपी तत्पु०। (२५) **पुराण०**—पुराने श्वशुर अर्थात् सूर्य को। पुराणः श्वशुरः, तम्, कर्मधा०। (२६) **मानवस्य**—मनुवंशी। मनोः अयं मानवः, तस्य। मनु+अण्। (२७) **राजर्षि०**—राजर्षियों के वंश के। राजर्षीणां वंशस्य, तत्पु०। (२८) **प्रसवितारम्**—उत्पादक, जन्म देने वाले। प्र+सू+तृच्+द्वि० एक०। (२९) **अपहत०**—पापों के नाशक। अपहतः पाप्मा येन तम्, बहु०। (३०) **स्वहस्ता०**—अपने हाथों से चुने हुए। स्वहस्ताभ्याम् अवचितैः, तत्पु०। अवचित—अव+चि+क्त। (३१) **उपतिष्ठस्व**—उपासना करो, पूजा करो। उप+स्था+लोट् म० एक०। उप+स्था पूजा अर्थ में उपाद् देवपूजा० (वा०) से आत्मनेपदी है। (३२) **अवनि०**—अवनिपृष्ठे वर्तते इति ताम्, अवनिपृष्ठ+वत्+णिनि+ङीप्+द्वि० एक०। (३३) **प्रकृष्ट०**—अधिक प्रेम करने वाली।

प्रकृष्टं प्रेम यस्याः सा, बहु० ।(३४)**प्रत्यनन्तरीभव**—साथ रहना, समीप रहना। अप्रत्यनन्तरः प्रत्यनन्तरः भव। यहाँ पर च्वि प्रत्यय है, अतः अ को ई। (३५) **यथादिष्टम्**—आदेशानुसार। आदिष्टम् अनतिक्रम्य, अव्ययी०।

१०. मुरला—अहमप्येतं वृत्तान्तं भगवत्यै लोपामुद्रायै निवेदयामि। रामभद्रोऽप्यागत एवेति तर्कयामि।

मुरला—मैं भी यह समाचार भगवती लोपामुद्रा को बताती हूँ। रामभद्र भी आ ही गए हैं, ऐसा मेरा अनुमान है।

११. तमसा—तदियं गोदावरीह्रदान्निर्गत्य—

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं
दधती विलोलकबरीकमाननम्।
करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी
विरहव्यथेव वनमेति जानकी॥४॥

अन्वय—परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं विलोलकबरीकम् आननं दधती जानकी करुणस्य मूर्तिः अथवा शरीरिणी विरहव्यथा इव वनम् एति।

तमसा—तो यह (सीता) गोदावरी के अगाध सरोवर से निकल कर—

अत्यन्त पीले और कृश कपोलों से मनोहर तथा चंचल केश-पाशयुक्त मुख को धारण करती हुई सीता करुण रस की (साक्षात्) मूर्ति अथवा शरीरधारिणी वियोग-व्यथा के तुल्य वन (पंचवटी) में आ रही है॥४॥

संस्कृत-व्याख्या

परिपाण्डु०—परिपाण्डू अतिशयेन पीतवर्णौ दुर्बलौ कृशौ कपोलौ गण्डौ ताभ्यां सुन्दरं मनोहरम्, विलोल०—विलोला चञ्चला कबरी केशपाशः यस्मिन् तत्, आननं—मुखम्, दधती—धारयन्ती, जानकी—सीता, करुणस्य—करुणरसस्य, मूर्तिः—साक्षात् स्वरूपमिव, अथवा—उत, शरीरिणी—मूर्तिमती, विरहव्यथा इव—वियोगवेदना इव, वनम्—पञ्चवटीवनम्, एति—आगच्छति। अत्र विषम उत्प्रेक्षा चालंकारौ। मञ्जुभाषिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) भगवत्यै०—भगवती लोपामुद्रा से निवेदन करती हूँ। निवेदयामि के कारण चतुर्थी। (२) निवेदयामि—बताती हूँ। नि+विद्+णिच्+लट्, उ० एक०। (३) तर्कयामि—अनुमान करती हूँ। तर्क्+णिच्+लट्, उ० एक०। (४) गोदावरी०—गोदावरी के बड़े तालाब से। गोदावर्याः ह्रदात्, तत्पु०। (५) निर्गत्य—निकलकर। निर्+गम्+ ल्यप्। निर्गम्य भी रूप बनता है। (६) परिपाण्डु०—परिपाण्डु–अत्यन्त पीले, दुर्बल–निर्बल, कपोल०—गालों से सुन्दर। परितः पाण्डू परिपाण्डू (गतिसमास), परिपाण्डू दुर्बलौ कपोलौ (कर्मधा०), ताभ्यां सुन्दरम्, तत्पु०। पीले और कृश कपोलों में भी सौन्दर्य विद्यमान है। (७) दधती—धारण करती हुई। धा+शतृ+ङीप्। धा धातु से शतृ होने पर स्त्रीलिंग में न् नहीं लगता है। (८) विलोल०—विलोल—चंचल, कवरीकम्—केशपाश या केशसमूह से युक्त। विलोला कबरी यस्मिन् तत्, बहु०। बहुव्रीहि समास होने पर नद्यृतश्च (५-४-१५३) से कप् (क)। (९) करुणस्य०—सीता शोक की साक्षात् मूर्ति है। (१०) शरीरिणी—शरीरधारी। शरीरम् अस्ति अस्याः सा, शरीर+इनि+ङीप्। मत्वर्थ में इनि। (११) विरह०—वियोग की पीड़ा के सदृश। विरहस्य व्यथा, तत्पु०। (१२) यहाँ पर दुर्बल कपोल से सुन्दरता का अभाव होना चाहिए, परन्तु सुन्दरता का वर्णन होने से विषम अलंकार है। करुणस्य मूर्तिः में इव के अभाव से प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा है और विरहव्यथेव में इव के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है।

१२. मुरला—इयं हि सा—

किसलयमिव मुग्धं बन्धनाद् विप्रलूनं
हृदयकमलशोषी दारुणो दीर्घशोकः।
ग्लपयति परिपाण्डु क्षाममस्याः शरीरं
शरदिज इव घर्मः केतकीगर्भपत्रम् ॥५॥

(इति परिक्रम्य निष्क्रान्ते)

इति शुद्धविष्कम्भः।

पाठभेद—१२. का०, काले—कुसुम० (हृदयरूपी फूल को)

अन्वय—हृदयकमलशोषी दारुणः दीर्घशोकः बन्धनात् विप्रलूनं मुग्धं किसलयम् इव परिपाण्डु क्षामम् अस्याः शरीरं शरदिजः घर्मः केतकीगर्भपत्रम् इव ग्लपयति।

मुरला—यह सीता—

हृदयरूपी कमल को सुखाने वाला, कठोर और चिरस्थायी शोक डंठल से टूटे हुए मनोहर नवपल्लव के तुल्य अत्यन्त पीतवर्ण तथा कृश इस (सीता) के शरीर को उसी प्रकार मलिन बना रहा है, जैसे शरत्कालीन धूप केतकी के फूल के अन्दर के पत्ते को ।।५।।

(इसके बाद दोनों का घूमकर प्रस्थान)

शुद्ध विष्कम्भक समाप्त।

संस्कृत-व्याख्या

हृदय०—मानसपद्मशोषकः, दारुणः—कठोरः, दीर्घशोकः—चिरस्थायी सन्तापः, बन्धनात्—वृन्तात्, विप्रलूनं—विच्छिन्नम्, मुग्धं—मनोज्ञम्, किसलयमिव—नवपल्लवमिव, परिपाण्डु—अतिशयेन पीतवर्णम्, क्षामं—कृशम्, अस्याः—सीतायाः, शरीरं—गात्रम्, शरदिजः—शरत्कालोद्भवः, घर्मः—आतपः, केतकी०—केतक्याः केतकीपुष्पस्य गर्भपत्रम् अन्तःस्थितदलमिव, ग्लपयति—म्लानिं प्रापयति। अत्रोपमा रूपकं चालंकारौ। मालिनी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **मुग्धम्**—सुन्दर। मुह्+क्त। (२) **विप्रलूनम्**—टूटा हुआ। वि+प्र+लू+क्त। ल्वादिभ्यः (८-२-४४) से त को न। (३) **हृदय०**—हृदयरूपी कमल को सुखाने वाला। हृदयं कमलम् इव हृदयकमलम् (उपमित कर्मधा०), तत् शोषयति इति, उपपद समास। हृदयकमल+शुष्+णिच्+णिनि। (४) **दीर्घशोकः**—चिरकाल से होने वाला शोक। दीर्घः चासौ शोकः, कर्मधा०। (५) **ग्लयपति**—क्षीण या मलिन बनाता है। ग्लै (ग्ला)+णिच्+लट्। णिच् होने पर बीच में प् होगा और आ को अ। ग्लास्नावनुवमां च (गणसूत्र) से उपसर्ग पहले न होने पर विकल्प से मित् होने पर मितां ह्रस्वः (६-४-९२) से विकल्प से ह्रस्व होकर ग्लपयति और ग्लापयति दोनों रूप बनते हैं। (६) **क्षामम्**—कृश, दुर्बल। क्षै (क्षा)+क्त। क्षायो मः (८-२-५३) से त को म। (७) **शरदिजः**—शरत्काल में होने वाला।

शरदि + जन् + ड (अ) । सप्तम्य
शरदि जायते इति शरदिजः, उपपद समास । शरदि + जन् + ड (अ) । सप्तम्यां जनेर्डः (३-२-९७) से ड प्रत्यय, डित् होने से अन् का लोप और प्रावृट्शरत्० (६-३-१५) से सप्तमी का अलुक् । (८) घर्मः—धूप । (९) केतकी०—केतकी के फूल के अन्दर के पत्ते को । गर्भे पत्रं गर्भपत्रम्, केतक्याः गर्भपत्रम्, तत्पु० । (१०) किसलयमिव और शरदिज इव घर्मः में उपमा अलंकार है । हृदयकमल० में रूपक अलंकार है । (११) शुद्धविष्कम्भक—यहाँ पर 'प्रेषिता-स्मि' आदि वाक्यों के द्वारा बीती हुई घटना का संकेत है और 'यथादिष्टम् अनु-तिष्ठामि' के द्वारा भावी घटना का संकेत है । इसमें तमसा और मुरला दोनों मध्यम कोटि के पात्र हैं, अतः शुद्ध विष्कम्भक है । इसका लक्षण है—वृत्तवर्ति-ष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः । संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ।। मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः । शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः ।। (सा० दर्पण ६-५५, ५६) ।

(नेपथ्ये)

१३. जात जात !

(नेपथ्य में)

हे पुत्र ! हे पुत्र !

(ततः प्रविशति पुष्पावचयव्यग्रा सकरुणौत्सुक्यमाकर्ण-यन्ती सीता)

१४. सीता—अहो, जानामि प्रियसखी वासन्ती व्याहर-व्याहरतीति । [अम्महे,जाणामि पिअसही वासंदी व्याहर-दित्ति]।

(तदनन्तर फूल चुनने में व्यस्त करुणा और उत्सुकता के साथ सुनती हुई सीता का प्रवेश)

सीता—ओह, मैं समझती हूँ कि मेरी प्रियसखी वासन्ती बोल रही है ।

(पुनर्नेपथ्ये)

१५.

सीतादेव्या स्वकरकलितैः सल्लकीपल्लवाग्रै-रग्रे लोलः करिकलभको यः पुरा वर्धितोऽभूत् ।

१६. **सीता—किं तस्य ?** [किं तस्स]

१७. **(पुनर्नेपथ्ये)**

वध्वा सार्धं पयसि विहरन्सोऽयमन्येन दर्पा-

दुद्दामेन द्विरदपतिना संनिपत्याभियुक्तः ॥६॥

अन्वय—पुरा अग्रे लोलः यः करिकलभकः सीतादेव्या स्वकरकलितैः सल्लकी-पल्लवाग्रैः वर्धितः अभूत्। सः अयं वध्वा सार्धं पयसि विहरन् अन्येन उद्दामेन द्विरदपतिना दर्पात् संनिपत्य अभियुक्तः।

(फिर नेपथ्य में)

पहले सामने उपस्थित, चंचल, जिस हाथी के बच्चे को सीता देवी अपने हाथ से दिए गए सल्लकीलता के अग्रभाग से पालती-पोसती थीं,..................

सीता—उसका क्या हुआ ?

(फिर नेपथ्य में)

वह गज-शावक अपनी पत्नी (हथिनी) के साथ जल में विहार कर रहा था कि दूसरे मतवाले बड़े हाथी ने गर्व से वेगपूर्वक उसके समीप आकर उस पर आक्रमण कर दिया ॥ ६॥

संस्कृत-व्याख्या

पुरा—पूर्वं वनवाससमये, अग्रे—पुरतो वर्तमानः, लोलः—चपलः, यः करिकलभकः—यो गजशावकः, सीतादेव्या—देव्या जानक्या, स्वकर०—स्वहस्तप्रदत्तैः, सल्लकी०—सल्लकीनां गजभक्ष्यालतानां पल्लवाग्रैः किसलयाग्रैः, वर्धितः—पोषितः, अभूत्—आसीत्। सोऽयं—स एष करिशावकः, वध्वा—पत्न्या, करेणुकयत्यर्थः, सार्धं—सह, पयसि—जले, विहरन्—जलक्रीडां कुर्वन्, अन्येन—अपरेण, उद्दामेन—मदोन्मत्तेन, द्विरद०—गजेन्द्रेण, दर्पात्—गर्वात्, संनिपत्य—वेगात् समीपं प्राप्य, अभियुक्तः—आक्रान्तः। अत्र सहोक्तिरलंकारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **पुष्पा०**—फूलों के चुनने में लगी हुई। पुष्पाणाम् अवचये व्यग्रा, तत्पु०। अवचय—अव+चि+अच्! एरच् (३-३-५६) से अच्। यहाँ पर

पाठभेद—१७. नि० सोऽहम् (वह मैं)।

हाथ से फूल चुनना अर्थ है, अतः हस्तादाने चेरस्तेये (३-३-४०) से घञ् होकर अवचायः प्रयोग होना चाहिए। इसको अशुद्ध प्रयोग ही समझना चाहिए। (२) सकरुणौ०--करुणा और उत्सुकता के साथ। करुणा च औत्सुक्यं च करुणौत्सुक्ये (द्वन्द्व), ताभ्यां सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (३) आकर्णयन्ती--सुनती हुई। आ+कर्ण्+णिच्+शतृ+ङीप्। (४) प्रियसखी--प्रिय सहेली। प्रिया चासौ सखी, कर्मधा०। (५) व्याहरति--बोल रही है। वि+आ+हृ+लट् प्र० एक०। (६) स्वकर०--स्वकर--अपने हाथ से, कलित--दिए गए। स्वकराभ्यां कलितैः, तत्पु०। (७) सल्लकी०--सल्लकी लता के पत्तों के अग्रभाग से। सल्लकीनां पल्लवाग्रैः, तत्पु०। (८) अग्रे--आगे, सामने। सीता के सामने खड़ा हुआ। (९) लोलः--चंचल, चपल। (१०) करि०--हाथी का बच्चा। कलभः करिशावकः, इत्यमरः के अनुसार कलभ शब्द का भी अर्थ हाथी का बच्चा है, परन्तु यहाँ पर भाव-स्पष्टता के लिए करिकलभकः कहा है। अनुकम्पा अर्थ में कन् (क) प्रत्यय है। (११) वर्धितः०--बढ़ाया गया था। वृध्+णिच्+क्त। (१२) विहरन्--विहार करता हुआ, विचरण करता हुआ। वि+हृ+शतृ+प्र० एक०। (१३) उद्दामेन--उद्दण्ड, उन्मत्त। उद्गतं दाम यस्य सः, तेन, बहु०। (१४) द्विरदपतिना--गजेन्द्र या बड़े हाथी ने। द्विरदानां पतिः, तेन, तत्पु०। समास होने पर पति शब्द के रूप हरि के तुल्य चलते हैं। पतिः समास एव (१-४-८)। (१५) संनिपत्य--वेग से पास आकर। सम्+नि+पत्+ल्यप्। (१६) अभियुक्तः--आक्रमण किया। अभि+युज्+क्त। (१७) यहाँ पर वध्वा सार्धम् के कारण विहरन् का दो के साथ संबन्ध होने से सहोक्ति अलंकार है।

१८. सीता--(ससंभ्रमं कतिचित्पदानि गत्वा) आर्यपुत्र, परित्रायस्व परित्रायस्व मम तं पुत्रकम्। (विचिन्त्य) हा धिक् हा धिक्, तान्येव चिरपरिचितान्यक्षराणि पञ्चवटीदर्शनेन मां मन्दभागिनीमनुबध्नन्ति। हा आर्यपुत्र !

(अज्जउत्त, परित्ताहि परित्ताहि मह तं पुत्तअं। (विचिन्त्य) हद्धी हद्धी, ताइं एव्व चिरपरिइदाइं अक्खराइं पंचवटीदंसणेण मं मंदभाइणिं अणुबंधंति। हा अज्जउत्त!)

(इति मूर्च्छति।)

सीता—(शीघ्रता से कुछ पैर आगे चलकर) आर्यपुत्र, बचाइए, मेरे बेचारे पुत्र को बचाइए। (सोच कर) हाय, धिक्कार है, धिक्कार है! पंचवटी के दर्शन से वे ही चिर-परिचित अक्षर मुझ अभागिनी के मुँह से निकल रहे हैं। हा आर्यपुत्र!

(यह कहकर वह मूर्च्छित हो जाती है)

(प्रविश्य)

१६. तमसा—समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

(प्रविष्ट होकर)

तमसा—धैर्य रक्खो, धैर्य रक्खो।

२०. (नेपथ्ये)

विमानराज, अत्रैव स्थीयताम्।

(नेपथ्य में)

विमानराज, यहीं रुको।

२१. सीता—(समाश्वस्य, ससाध्वसोल्लासम्) अहो, जलभरभरितमेघमन्थरस्तनितगम्भीरमांसलः कुतो न्वेष भारतीनिर्घोषो भ्रियमाणकर्णविवरां मामपि मन्दभागिनीं झटित्युत्सुकयति।

(अम्महे, जलभरभरिअमेहमंथरत्थणिअगंभीरमंसलो कुदो णु एसो भारईणिग्घोसो भरंतकण्णविवरं मं वि मंदभाइणिं झत्ति उस्सुआवेइ।)

सीता—(होश में आकर, भय और आनन्द के साथ) अहो, जल के भार से पूर्ण मेघ के मन्द गर्जन के तुल्य गंभीर और पुष्ट यह वाणी का घोष कहाँ से

आकर मेरे कान के छिद्रों को भरता हुआ मुझ अभागिनी को भी उत्कंठित कर रहा है।

टिप्पणी

(१) **परित्रायस्व**—बचाओ। परि+त्रै+लोट् म० एक०। (२) **पुत्रकम्**—बेचारे पुत्र को। अनुकम्पा अर्थ में कन् प्रत्यय है। (३) **चिर०**—चिरकाल से परिचित। चिरात् परिचितानि, तत्पु०। (४) **पञ्चवटी०**—पंचवटी के देखने से। पञ्चवट्याः दर्शनेन, तत्पु०। (५) **अनुबध्नन्ति**—अनुसरण कर रहे हैं, अनायास निकल रहे हैं। अनु+बन्ध्+लट् प्र० बहु०। (६) **समाश्वसिहि**—धैर्य रक्खो। सम्+आ+श्वस्+लोट् म० एक०। (७) **ससाध्वसो०**—भय और आनन्द के साथ। साध्वसं च उल्लासश्च साध्वसोल्लासौ (द्वन्द्व), ताभ्यां सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (८) **जलभर०**—जलभरभरित—जल के भार से पूर्ण, मेघ—बादल के, मन्थर—मन्द, स्तनित—गर्जन के तुल्य, गंभीरमांसलः—गंभीर और पुष्ट। जलस्य भरेण भरितः (तत्पु०), स चासौ मेघः (कर्मधा०), तस्य मन्थरं स्तनितम् (तत्पु०), तद्वत् गम्भीरः (उपमान तत्पु०), स चासौ मांसलः (कर्मधा०)। (९) **भारती०**—भारती—वाणी की, निर्घोष—ध्वनि। भारत्याः निर्घोषः, तत्पु०। (१०) **भ्रियमाण०**—भ्रियमाण—भरे जा रहे हैं, कर्णविवर—कान के छेद जिसके। भ्रियमाणे कर्णविवरे यस्याः ताम्, बहु०। भ्रियमाण—भृ+कर्मवाच्य लट्+शानच्। (११) **उत्सुकयति**—उत्सुक बना रहा है। उत्सुकां करोति, उत्सुक+णिच्+लट्। तत्करोति तदाचष्टे (गणसूत्र) से उत्सुक शब्द से णिच्।

२२. तमसा—(सस्मितास्रम्) अयि वत्से,

अपरिस्फुटनिक्वाणे कुतस्त्येऽपि त्वमीदृशी।

स्तनयित्नोर्मयूरीव चकितोत्कण्ठितं स्थिता ॥७॥

अन्वय—स्तनयित्नोः अपरिस्फुटनिक्वाणे मयूरी इव त्वं कुतस्त्ये अपि (अपरिस्फुटनिक्वाणे) ईदृशी चकितोत्कण्ठितं स्थिता।

पाठभेद—२२. का० निस्वाने (शब्द वाले)।

तमसा--(मुस्कराहट और अश्रुपातसहित) हे पुत्री,

मेघ की अस्पष्ट ध्वनि पर मोरनी के तुल्य तुम कहीं से आए हुए अस्पष्ट शब्द को सुनकर इस प्रकार आश्चर्ययुक्त और उत्कंठित हो गई हो ।।७।।

संस्कृत-व्याख्या

स्तनयित्नोः—मेघस्य, अपरिस्फुट०--अस्पष्टशब्दे, मयूरी इव--शिखिनी इव, त्वं—सीता, कुतस्त्येऽपि--कस्माच्चिदपि स्थानादागते अस्पष्टशब्दे, ईदृशी--एतादृशी, चकितो०--चकिता आश्चर्ययुक्ता उत्कठिता उत्सुका च, स्थिता--वर्तमानाऽसि । अत्रोपमाऽलंकारः । श्लोको वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **सस्मिता०**--मुस्कराहट और अश्रुपात-सहित । स्मितं च अस्राणि च स्मितास्राणि, तैः सह यथा स्यात् तथा, अव्ययी० । (२) **अपरिस्फुट०**—अपरिस्फुट--अस्पष्ट, अव्यक्त, निक्वाणे--शब्द वाले । अपरिस्फुटः निक्वाणः, तस्मिन्, कर्मधा० । निक्वाणः-नि+क्वण्+घञ् । (३) **कुतस्त्ये०**--कहीं भी होने वाले । कुतो भवः कुतस्त्यः, कुतः+त्यप् (त्य) । अव्ययात्त्यप् (४-२-१०४) से त्यप् । (४) **स्तनयित्नोः**—बादल के । (५) **चकितो०**—आश्चर्ययुक्त और उत्कण्ठित । चकिता च उत्कण्ठिता च तयोः समाहारः, समाहार द्वन्द्व । राम के शब्दों को सुनकर सीता इसी प्रकार चकित और उत्सुक हैं, जैसे बादल की ध्वनि को सुनकर मोरनी । (६) यहाँ पर मयूरी इव में इव के द्वारा उपमा अलंकार है ।

२३. सीता--भगवति, किं भणस्यपरिस्फुटेति ? स्वर-संयोगेन प्रत्यभिजानामि नन्वार्यपुत्रेणैवैतद् व्याहृतम् ।

(भअवदि, किं भणासि अपरिप्फुडेत्ति ? सरसंजोएण पच्चहिजाणामि णं अज्जउत्तेण एव्व एदं वाहरिदं ।)

सीता--हे भगवती, क्या कह रही हो--'अस्पष्ट शब्द' ? स्वर के संयोग से मैं पहचान रही हूँ कि आर्यपुत्र ने ही यह (शब्द) कहा है ।

२४. तमसा--श्रूयते तपस्यतः किल शूद्रस्य दण्ड-धारणार्थमैक्ष्वाको राजा दण्डकारण्यमागत इति ।

तमसा--सुनते हैं कि तपस्या करते हुए शूद्र को दण्ड देने के लिए इक्ष्वाकुवंशी राजा (राम) दण्डकारण्य में आए हैं ।

२५. सीता—दिष्ट्या अपरिहीनधर्मः खलु स राजा।
(दिट्ठिआ अपरिहीणधम्मो खु सो राआ।)
सीता—सौभाग्य से वे राजा धर्म-हीन नहीं हुए हैं।

२६. (नेपथ्ये)

यत्र द्रुमा अपि मृगा अपि बन्धवो मे
यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम्।
एतानि तानि बहुकन्दरनिर्झराणि
गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि ॥८॥

अन्वय—यत्र द्रुमाः अपि मृगाः अपि मे बन्धवः, यानि प्रियासहचरः चिरम् अध्यवात्सम्। तानि एतानि बहुकन्दरनिर्झराणि गोदावरीपरिसरस्य गिरेः तटानि (सन्ति)।

(नेपथ्य में)

जहाँ पर वृक्ष और मृग भी मेरे बन्धु थे, जहाँ पर प्रिया (सीता) के साथ मैं बहुत समय तक रहा था, वे ही ये अनेक गुफाओं और झरनों से युक्त गोदावरी के समीपस्थ पर्वत के स्थान हैं ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या

यत्र—येषु तटेषु, द्रुमाः अपि—वृक्षा अपि, मृगाः अपि—हरिणा अपि, मे—मम रामस्य, बन्धवः—सखायः, आसन् इति शेषः। यानि—तटानि, प्रियासहचरः—जानकीसहितः, चिरं—बहुकालं यावत्, अध्यवात्सं—न्यवसम्। तानि—पूर्वानुभूतानि, एतानि—इमानि समीपस्थानि, बहु०—बहवः अनेके कन्दराः गुहाः निर्झराः जलप्रवाहाः येषु तानि, गोदावरी०—गोदावर्याः तन्नाम्न्या नद्याः परिसरस्य पर्यन्तभुवः, गिरेः—पर्वतस्य, तटानि—स्थानानि, सन्तीति शेषः। अत्र स्वभावोक्तिरर्थापत्तिश्चालंकारौ। वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **स्वर०**—स्वर के संयोग से, अर्थात् राम के शब्दों का मेरे कान के साथ संबन्ध होने से। स्वरस्य संयोगेन, तत्पु०। (२) **प्रत्यभिजानामि**—पहचानती

पाठभेद—२६. का०, काले—बहुनिर्झरकन्दराणि (बहुत से झरने और गुफाओं से युक्त)।

हूँ। प्रति+अभि+ज्ञा+लट् उ० एक०। प्रत्यभिज्ञा दार्शनिक शब्द है। इसका अर्थ है किसी पूर्व अनुभूत पदार्थ का संस्कारों के द्वारा पुनः अनुभव करना। (३) **व्याहृतम्**—कहा। वि+आ+हृ+क्त। (४) **तपस्यतः**—तपस्या करते हुए। कर्मणो रोमन्थ० (३-१-१५) से तपः चरति अर्थ में तपस् शब्द से क्यङ (य) प्रत्यय और तपसः परस्मैपदं च (वा०) से परस्मैपद। तपस्+क्यङ+शतृ+ष० एक०। (५) **दण्ड०**—दण्ड देने के लिए। दण्डस्य धारणार्थम्, तत्पु०। (६) **ऐक्ष्वाकः**—इक्ष्वाकुवंशी राजा, राम। इक्ष्वाकूणां गोत्रापत्यं पुमान्, इक्ष्वाकु+अञ्। जनपद० (५-१-१६८) से अञ्। दाण्डिनायन० (६-४-१७४) से निपातन से उ का लोप होकर यह रूप बनता है। (७) **दिष्ट्या**—भाग्य से।(८) **अपरिहीन०**—जिसका धर्म नष्ट नहीं हुआ है। न परिहीनः अपरिहीनः, अपरिहीनः धर्मः यस्य सः, बहु०। परिहीन—परि+हा+क्त। त को न, ओदितश्च (८-२-४५) से। यहाँ पर दो शब्द पहले होने के कारण धर्मादनिच् केवलात् (५-४-१२४) से समासान्त अनिच् होकर अपरिहीनधर्मा रूप नहीं बना। (९) **बन्धवः०**—जहाँ पर हिरन और वृक्ष मेरे बन्धुतुल्य थे। इससे ज्ञात होता है कि वनवास के समय राम वृक्षों और मृगों से तादात्म्य अनुभव करते थे और उन्हें अपने बन्धु के तुल्य प्रिय मानते थे। मृग का अर्थ पशुमात्र भी है। तब अर्थ होगा कि राम वन के सभी पशुओं को अपना बन्धु मानते थे। (१०) **यानि**—उपान्वध्याङ्वसः (१-४-४८) से अध्यवात्सम् में अधि+वस् धातु होने से कर्मसंज्ञा होकर यानि में द्वितीया है।(११) **प्रियासहचरः**—प्रिया जानकी के साथ। प्रिया सहचरः यस्य सः, बहु०। (१२) **अध्यवात्सम्**—रहा। अधि+वस्+लुङ उ० एक०।(१३) **बहुकन्दर०**—बहुत सी गुफाओं और झरनों से युक्त। बहवः कन्दराः निर्झराः च येषु तानि, बहु०। (१४) **गोदावरी०**—गोदावरी के समीपस्थ। परिसर—समीप की भूमि। परिसर—परि+सृ+घ (अ)। पुंसि संज्ञायां घः० (३-३-११८) से घ प्रत्यय। इसका यह अर्थ भी हो सकता है—गोदावरी परिसरे यस्य तस्य, बहु०। गोदावरी नदी है समीप में जिसके ऐसे प्रस्रवण पर्वत के। (१५) यहाँ पर पर्वत के स्थानों का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वाभावोक्ति अलंकार है। उस पर्वत पर वृक्ष मृग आदि भी राम के बन्धुवत् थे, ऋषि-मुनियों आदि का तो कहना ही क्या, अर्थ होने से अर्थापत्ति अलंकार है।

२७. सीता--(दृष्ट्वा) दिष्ट्या कथं प्रभातचन्द्र-मण्डलापाण्डुरपरिक्षामदुर्बलेनाकारेण निजसौम्यगम्भीरा-नुभावमात्रप्रत्यभिज्ञेय एवार्यपुत्रो भवति। भगवति तमसे, धारय माम् । (दिट्ठिआ कहं पहादचंदमडलापंडुरपरिक्खाम-दुब्बलेन आआरेण णिअसोम्हगंभीराणुभावमेत्तपच्चहिजेज्जो एव्व अज्जउत्तो होदि । भअवदि तमसे, धारेहि मं।)

(इति तमसामाश्लिष्य मूर्च्छति ।)

सीता--(देखकर) सौभाग्य से क्या यह आर्यपुत्र ही हैं, जो प्रातःकालीन चन्द्रमण्डल के तुल्य कुछ श्वेत, कृश और दुर्बल आकार के कारण अपने शान्त और गंभीर प्रभाव के द्वारा ही पहचाने जा रहे हैं। हे भगवती तमसा, मुझे संभालो ।

(यह कह कर तमसा से लिपट कर मूर्च्छित हो जाती है)

२८. तमसा--वत्से, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

तमसा--हे पुत्री, धैर्य रक्खो, धैर्य रक्खो ।

(नेपथ्ये)

२९. अनेन पञ्चवटीदर्शनेन-

अन्तर्लीनस्य दुःखाग्नेरद्योद्दामं ज्वलिष्यतः ।
उत्पीड इव धूमस्य मोहः प्रागावृणोति माम् ।।९।।

हा प्रिये जानकि !

अन्वय--अन्तर्लीनस्य अद्य उद्दामं ज्वलिष्यतः दुःखाग्नेः धूमस्य उत्पीडः इव मोहः मां प्राक् आवृणोति ।

(नपथ्य में)

इस पंचवटी के दर्शन से--

अन्तःकरण में छिपी हुई और आज भयंकर रूप में जलने वाली दुःखरूपी अग्नि के धूम-राशि के तुल्य मूर्च्छा मुझे पहले (दुःख फैलने से पहले) ढक रही है ।।९।।

हाय प्यारी जानकी !

संस्कृत-व्याख्या

अन्तर्लीनस्य—अन्तःकरणे गुप्तरूपेण स्थितस्य, अद्य–अस्मिन् दिवसे, उद्दामं–प्रचण्डम्, ज्वलिष्यतः—ज्वलनोन्मुखस्य, दुःखाग्नेः—शोकानलस्य, धूमस्य, उत्पीडः इव—समूह इव, मोहः—मूर्च्छा, मां—रामम्, प्राक्—दुःखव्याप्तेः पूर्वम्, आवृणोति—आच्छादयति। अत्रोपमाऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **प्रभात०**—प्रभात—प्रातःकालीन, चन्द्रमण्डल—चन्द्रमा के घेरे के तुल्य, आपाण्डुर—कुछ श्वेत, परिक्षाम—कृश, दुर्बलेन—दुर्बल। प्रभाते चन्द्रमण्डलम् (तत्पु०), तद् इव आपाण्डुरः परिक्षामः दुर्बलः, तेन, उपमित कर्मधा०। परिक्षाम—परि+क्षै (क्षा)+क्त। क्षायो मः (८-२-५३) से त को म। (२) **आकारेण**—आकृति के द्वारा। इत्थंभूतलक्षणे (२-३-२१) से उपलक्षण अर्थ में तृतीया। (३) **निज०**—अपने सौम्य और गंभीर प्रभाव मात्र के द्वारा ही पहचानने योग्य। निजः सौम्यः गम्भीरः यः अनुभावः (कर्मधा०), तन्मात्रेण प्रत्यभिज्ञेयः (तत्पु०)। प्रत्यभिज्ञेय—प्रति+अभि+ज्ञा+यत् (य)। (४) **धारय**—संभालो। धृ+णिच्+लोट् म० एक०। (५) **आश्लिष्य**—चिपटकर, गले लगकर, लिपटकर। आ+श्लिष्+ल्यप्। (६) **अन्तर्लीनस्य**—अन्दर गुप्त रूप से विद्यमान या अन्दर छिपे हुए। लीन—ली+क्त। (७) **दुःखाग्नेः**—दुःखरूपी अग्नि के। दुःखम् अग्निः इव, तस्य, उपमित कर्मधा०। (८) **उद्दामम्**–प्रचण्ड रूप से, अनियन्त्रित ढंग से। (९) **ज्वलिष्यतः**–जलते हुए, जो शीघ्र ही जलेगा। ज्वल्+लृट् शतृ+ष० एक०। ज्वल् धातु से लृट् के स्थान पर शतृ होने से बीच में इष्य भी लगा है। लृटः सद् वा (३-३-१४) से लृट् को शतृ। (१०) **उत्पीड०**—धूएँ के समूह के तुल्य। उत्पीड—समूह, राशि। (११) **अवृणोति०**—मुझको ढक रहा है। आ+वृ+लट् प्र० एक०। जिस प्रकार अग्नि के प्रदीप्त होने से पहले धूआँ जोर से उठता है, उसी प्रकार राम की दुःखाग्नि के धधकने से पहले मूर्च्छा सारे शरीर में व्याप्त हो रही है। (१२) दुःखाग्नेः में लुप्तोपमा अलंकार है, दुःखम् अग्निरिव। उत्पीड इव में भी उपमा है। इस प्रकार इस श्लोक में दो उपमाएँ हैं, एक लुप्तोपमा और दूसरी साधारण उपमा।

३०. तमसा---(स्वगतम्) इदं तावदाशङ्कितं गुरुजनेन ।

तमसा--(मन में) गुरुजनों ने इसी बात की आशंका की थी ।

३१. सीता---(समाश्वस्य) हा कथमेतत् ? (हा, कहं एदं ?)

सीता--(होश में आकर) हाय, यह कैसे हुआ ?

(पुनर्नेपथ्ये)

३२. हा देवि दण्डकारण्यवासप्रियसखि विदेहराजपुत्रि !

(इति मूर्च्छति ।)

(नेपथ्य में)

हा देवी, दण्डकारण्य में निवास के समय प्रियसखी, जनकपुत्री !

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाते हैं)

३३. सीता---हा धिक् हा धिक्, मां मन्दभागिनीं व्याहृत्यामीलितनेत्रनीलोत्पलो मूर्च्छित एव । हा, कथं धरणीपृष्ठे निरुद्धनिःश्वासनिःसहं विपर्यस्तः ? भगवति तमसे, परित्रायस्व परित्रायस्व, जीवयार्यपुत्रम् ।

(हद्धी हद्धी, मं मंदभाइणिं वाहरिअ आमीलिदणेत्तणीलुप्पलो मुच्छिदो एव्व । हा, कहं धरणीपिट्ठे णिरुद्धणिस्सासणीसहं विपल्हत्थो ? भअवदि तमसे, परित्ताएहि परित्ताएहि । जीवावेहि अज्जउत्तं ।)

(इति पादयोः पतति ।)

सीता---हाय, धिक्कार है, धिक्कार है ! मुझ अभागिनी को पुकार कर नीलकमल-सदृश नेत्रों को बन्द करके (आर्यपुत्र) मूर्च्छित ही हो गए हैं ।

हाय, सांस रुके हुए और असहाय वे भूतल पर कैसे अस्त-व्यस्त पड़े हुए हैं? भगवती तमसा! बचाइए। बचाइए। आर्यपुत्र को जीवित कीजिए।

(यह कहकर उसके पैरों में गिर पड़ती है)

टिप्पणी

(१) **आशङ्कितम्**—आशंका की थी। आ+शङ्क्+क्त। (२) **समाश्वस्य**—होश में आकर। सम्+आ+श्वस्+ल्यप्। (३) **दण्डका०**—दण्डकवन में निवास के समय प्रियसखी। दण्डकारण्ये वासः (तत्पु०), तस्मिन् प्रियसखी, तत्संबुद्धिः, तत्पु०। (४) **मन्दभागिनीम्**—अभागिनी को, मन्द भाग्यवाली को। मन्दः भागः मन्दभागः, सः अस्याः अस्ति इति। मन्दभाग+इनि+ङीप्+द्वि० एक०। (५) **व्याहृत्य**—कहकर, पुकार कर। वि+आ+हृ+ल्यप्। (६) **आमीलित०**—आमीलित—बन्द किया है, नेत्र०—नेत्र-रूपी नीलकमल को जिसने। आमीलिते नेत्रे एव नीलोत्पले येन सः, बहु०। (७) **धरणी०**—भूतल पर। धरण्याः पृष्ठे, तत्पु०। (८) **निरुद्ध०**—निरुद्ध—रुका हुआ है, निःश्वास—साँस जिसका, निःसहम्—तथा असहाय या विवश। निरुद्धः निःश्वासः यस्मिन् कर्मणि तत् निरुद्धनिःश्वासम् (बहु०), तच्च निःसहं च यथा स्यात् तथा, सुप्सुपा समास। निरुद्ध—नि+रुध्+क्त। निःश्वास—निर्+श्वस्+घञ्। निःसह—निर्+सह्+अच्। (९) **विपर्यस्तः**—उलटे पड़े हैं, अस्त-व्यस्त पड़े हैं। वि+परि+अस्+क्त। (१०) **परित्रायस्व**—बचाओ। परि+त्रै+लोट् म० एक०। (११) **जीवय**—जीवित करो। जीव्+णिच्+लोट् म० एक०।

३४. तमसा—

त्वमेव ननु कल्याणि! संजीवय जगत्पतिम्।
प्रियस्पर्शो हि पाणिस्ते तत्रैष निरतो जनः ॥१०॥

अन्वय—कल्याणि त्वम् एव ननु जगत्पतिं संजीवय। हि ते पाणिः प्रियस्पर्शः, तत्र एषः जनः निरतः।

तमसा—हे मंगलमयी, तुम ही अवश्य जगत् के स्वामी राम को होश में लाओ, क्योंकि तुम्हारे हाथ का स्पर्श (उन्हें) प्रिय है और यह राम उसमें अनुरक्त हैं ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या

कल्याणि—हे मङ्गलमयि, त्वमेव—त्वं जानकी एव, ननु—निश्चयेन, जगत्पतिं—लोकनाथं रामम्, संजीवय—जीवितं कुरु। हि—यतो हि, ते—तव सीतायाः, पाणिः—करः, प्रियस्पर्शः—प्रियः सुखकरः स्पर्शः आमर्शनं यस्य सः, तत्र—तव करस्पर्शे, एषः—समीपस्थः, जनः—रामः, निरतः—अनुरक्तो वर्तते। अत्रार्थान्तरन्यासोऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) ननु—अवश्य, निश्चित रूप से। इसको यहाँ पर आज्ञासूचक अव्यय भी माना जा सकता है। (२) संजीवय—जीवित करो। सम्+जीव्+णिच्+लोट् म० एक०। (३) जगत्पतिम्—संसार के स्वामी राम को। जगतः पतिम्, तत्पु०। (४) प्रियस्पर्शः—प्रिय है स्पर्श जिसका। प्रियः स्पर्शः यस्य सः, बहु०। (५) निरतः—लगा हुआ, अनुरक्त। राम तुम्हारे स्पर्श में अनुरक्त हैं। निरत—नि+रम्+क्त। (६) इस श्लोक में उत्तरार्ध सामान्य के द्वारा पूर्वार्ध विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

३५. सीता—यद् भवतु तद् भवतु। यथा भगवत्याज्ञापयति। (जं होदु तं होदु। जह भअवई आणवेइ।)

(इति ससंभ्रमं निष्क्रान्ता।)

सीता—चाहे जो हो। जैसी आपकी आज्ञा।

(यह कहकर शीघ्रता से प्रस्थान)

(ततः प्रविशति भूम्यां निपतितः सास्रया सीतया स्पृश्यमानः साह्लादोच्छ्वासो रामः)

३६. सीता—(किंचित्सहर्षम्) जाने पुनः प्रत्यागतमिव जीवितं त्रैलोक्यस्य। (जाणे उण पच्चाअदं विअ जीविअं तेल्लोअस्स।)

(तदनन्तर भूमि पर पड़े हुए और अश्रुपूर्ण-सीता के द्वारा छुए जाते हुए, प्रसन्न एवं सचेतन राम का प्रवेश)

सीता—(कुछ हर्ष के साथ) मैं समझती हूँ कि तीनों लोकों का जीवन पुनः लौट आया है।

३७ (क). रामः—हन्त भोः, किमेतत् ?

आश्च्योतनं नु हरिचन्दनपल्लवानां
निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजो नु सेकः।
आतप्तजीवितपुनःपरितर्पणोऽयं
संजीवनौषधिरसो हृदि नु प्रसक्तः ॥११॥

अन्वय—हृदि हरिचन्दनपल्लवानाम् आश्च्योतनं नु ? निष्पीडितेन्दुकरकन्दलजः सेकः नु ? आतप्तजीवितपुनःपरितर्पणः अयं संजीवनौषधिरसः प्रसक्तः नु ?

राम—अहो, यह क्या है ?

क्या मेरे हृदय पर हरिचन्दन के पत्तों का रस टपका है ? अथवा क्या निचोड़े गए चन्द्रकिरणरूपी नए अंकुरों से किया गया सेचन है ? अथवा क्या सन्तप्त जीवन को पुनः तृप्त करने वाला यह संजीवन ओषधि का रस लगाया गया है ? ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या

हृदि—हृदये, हरिचन्दनपल्लवानां—कल्पतरुकिसलयानाम्, आश्च्योतनं—रसक्षरणम्, नु—किम् ? निष्पीडिते०—निष्पीडिताः संपिष्टाः ये इन्दुकरकन्दलाः शशिकिरणनवाङ्कुराः तेभ्यो जातः उत्पन्नः, सेकः—सेचनम्, नु—किम् ? आतप्त०—आतप्तस्य सन्तप्तस्य जीवितस्य जीवनस्य पुनःपरितर्पणः भूयोऽपि तृप्तिकारकः, अयम्—एषः, संजीवनौ०—प्राणदायकभेषजद्रवः, प्रसक्तः—योजितः, नु—किम् ? अत्र सन्देहोऽतिशयोक्तिश्चालंकारौ। वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) यद्भवतु०—चाहे जो कुछ भी हो। अर्थात् इसका परिणाम जो

पाठभेद—३७ (क). नि० आतृप्त० (सन्तुष्ट)।

कुछ भी हो। सीता निर्वासित है, अतः उसे राम को छूने का अधिकार नहीं है। राम सीता की इस अनधिकार चेष्टा से क्रुद्ध हो सकते थे, परन्तु तमसा के आदेशानुसार वह राम को छूती है। (२) **ससंभ्रमम्**—घबड़ाहट के साथ। संभ्रमेण सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (३) **निपतितः**—गिरे हुए, पड़े हुए। नि+पत्+क्त। (४) **सास्रया**—अश्रुपूर्ण नेत्रों वाली। अस्रैः सहिता सास्रा, तया, बहु०। (५) **स्पृश्यमानः**—छुए जाते हुए। स्पृश्+कर्मवाच्य लट्+शानच्। (६) **साह्लादो०**—आनन्द और चेतना से युक्त। आह्लादश्च उच्छ्वासश्च आह्लादोच्छ्वासौ (द्वन्द्व), ताभ्यां सहितः, बहु०। (७) **जाने**—मैं समझती हूँ। ज्ञा+लट् आत्मने० उ० एक०। (८) **प्रत्यागतम्०**—दुबारा आ गया है, लौट आया है। प्रति+आ+गम्+क्त। (९) **त्रैलोक्यस्य**—तीनों लोकों का। राम संसार के प्राणस्वरूप हैं। उनका जीवित होना तीनों लोकों का जीवित होना है। तीन लोक—स्वर्ग, मर्त्य, पाताल। त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी (द्विगु), त्रिलोकी एव त्रैलोक्यम्, तस्य। त्रिलोकी+ ष्यञ्। चतुर्वर्णादीनां स्वार्थ उपसंख्यानम् (वा०) से स्वार्थ में ष्यञ्। (१०) **आश्च्योतनम्**—रस का टपकना या क्षरण। आ+श्च्युत्+ल्युट्। (११) **हरि०**—हरिचन्दन के पत्तों का। हरिचन्दन पांच देवतरुओं में से एक विशेष कल्पवृक्ष को कहते हैं। एक विशेष प्रकार के चन्दन को भी हरिचन्दन कहते हैं। हरिचन्दनस्य पल्लवानाम्, तत्पु०। (१२) **निष्पीडिते०**—निष्पीडित—निचोड़े हुए, इन्दुकर—चन्द्रमा के किरणरूपी, कन्दल—नए अंकुर से, जः—उत्पन्न होने वाला। निष्पीडिताः इन्दुकरकन्दलाः (कर्मधा०), तेभ्यः जातः (उपपद तत्पु०)। निष्पीडिते०+जन्+ड (अ)। अन् का लोप्। निष्पीडित—निस्+पीड्+णिच्+क्त। (१३) **सेकः**—सींचना। सिच्+घञ्। (१४) **आतप्त०**—सन्तप्त जीवन को फिर तृप्त करने वाला। आतप्तस्य जीवितस्य पुनः परितर्पणः, तत्पु०। आतप्त—आ+तप्+क्त। परितर्पणः—परि+तृप्+ल्यु (अन)। (१५) **संजीवनौ०**—संजीवन औषधि का रस। संजीवनी औषधिः (कर्मधा०), तस्याः रसः, तत्पु०। (१६) **प्रसक्तः**—लगाया गया है, डाला गया है। प्र+सञ्ज्+क्त। (१७) इस श्लोक में शुद्ध सन्देहालंकार है। इसमें नु के द्वारा तीन सन्देह उठाए गए हैं और उनका निवारण न होने से तीन शुद्ध सन्देह हैं। चन्द्रकिरणरूपी नवांकुरों का निचोड़ना असंभव है, उसका वर्णन होने से अतिशयोक्ति अलंकार है।

३७ (ख). अपि च--

स्पर्शः पुरा परिचितो नियतं स एव
संजीवनश्च मनसः परितोषणश्च ।
संतापजां सपदि यः परिहृत्य मूर्च्छा-
मानन्दनेन जडतां पुनरातनोति ॥१२॥

अन्वय—पुरा परिचितः संजीवनः च मनसः परितोषणः च नियतं स एव स्पर्शः, यः सन्तापजां मूर्च्छां परिहृत्य सपदि आनन्दनेन पुनः जडताम् आतनोति ।

राम—और भी,

पूर्व-परिचित, (मुझे) जीवन-शक्ति प्रदान करने वाला और मन को सन्तुष्ट करने वाला, यह निश्चय ही वही स्पर्श है, जो वियोग-दुःख-जन्य मूर्च्छा को दूर कर तुरन्त आनन्द-प्रदान करके फिर (हर्षजन्य) जडता (निश्चेष्टता) को फैला रहा है। ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या

पुरा—पूर्वम्, परिचितः—अभिज्ञातः, संजीवनः च—जीवनशक्तिप्रदश्च, मनसः—चित्तस्य, परितोषणः च—सन्तुष्टिकरश्च, नियतम्—अवश्यम्, स एव—पूर्वानुभूत एव, स्पर्शः—आमर्शनम् अस्ति, यः—यः स्पर्शः, सन्तापजां—वियोग-दुःखजन्याम्, मूर्च्छां—निश्चेतनताम्, परिहृत्य—अपनीय, सपदि—तत्क्षणमेव, आनन्दनेन—हर्षोत्पादनेन, पुनः—भूयः, जडतां—हर्षातिरेकजन्यां निश्चेष्टताम्, आतनोति—प्रसारयति । अत्रातिशयोक्तिरलंकारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **पुरा०**—पूर्व-परिचित, जिसका राम को पहले से अनुभव है। परिचित—परि+चि+क्त । (२) **नियतम्**—अवश्य ही । नि+यम्+क्त । (३) **संजीवनः**—जीवन-शक्ति प्रदान करने वाला । सम्+जीव्+णिच्+ल्यु (अन) । संजीवयति इति संजीवनः, नन्दिग्रहि० (३-१-१३४) से ल्यु । (४) **परितोषणः**—सन्तुष्ट करने वाला । परितोषयति इति परितोषणः ।

पाठभेद—३७ (ख). नि० सन्तापजः (सन्ताप से उत्पन्न होने वाला स्पर्श) ।

परि+तुष्+णिच्+ल्यु (अन)। नन्दिग्रहि० (३-१-१३४) से ल्यु। (५) **सन्तापजाम्**—वियोगरूपी दुःख से उत्पन्न होने वाली। सन्तापात् जाताम्, उपपद तत्पु०। सन्ताप+जन्+ड (अ)+टाप्+द्वि० एक०। (६) **सपदि**—तुरन्त, उसी क्षण। सद्यः सपदि तत्क्षणात्, इत्यमरः। (७) **परिहृत्य**—दूर करके। परि+हृ+ल्यप्। (८) **आनन्दनेन**—आनन्द प्रदान करने से। आ+नन्द+णिच्+ल्युट् (अन)। आनन्दयतीति आनन्दनम्। (९) **जडताम्**—अत्यधिक हर्ष से होने वाली अचेतनता को। (१०) **आतनोति**—फैला रहा है। आ+तन्+लट् प्र० एक०। (११) यहाँ पर कारण स्पर्श का होना और हर्षातिरेक से होने वाली अचेतनतारूपी कार्य के युगपत् होने से अतिशयोक्ति अलंकार है।

३८. सीता—(ससाध्वसकरुणमुपसृत्य) एतावदेवेदानीं मम बहुतरम्। [एत्तिअं एव्व दाणिं मह बहुदरं।]

सीता—(भय और करुणा के साथ तमसा के पास जाकर) इस समय इतना ही मेरे लिए बहुत अधिक है।

३९. रामः—(उपविश्य) न खलु वत्सलया देव्याऽभ्युपपन्नोऽस्मि?

राम—(बैठकर) स्नेहमयी देवी सीता ने तो मुझपर अनुग्रह नहीं किया है?

४०. सीता—हा धिक् हा धिक्, किमित्यार्यपुत्रो मां मार्गिष्यते? (हद्धी हद्धी, किं त्ति अज्जउत्तो मं मग्गिस्सदि।)

सीता—हाय, धिक्कार है, धिक्कार है। क्या आर्यपुत्र अब मुझे ढूँढ़ेंगे?

४१. रामः—भवतु, पश्यामि।

राम—अच्छा, मैं देखता हूँ।

४२. सीता—भगवति तमसे, अपसराव तावत्। मां प्रेक्ष्यानभ्यनुज्ञातेन संनिधानेन राजाधिकं कोपिष्यति।

(भअवदि तमसे, ओसरम्ह दाव। मं पेक्खिअ अणब्भणुण्णादेण संणिहाणेण राआ अहिअं कुप्पिस्सदि।)

सीता--भगवती तमसा, हम दोनों (यहाँ से) हट जायँ। मुझे देखकर बिना आज्ञा के समीप आने से राजा (मुझ पर) अधिक क्रोध करेंगे।

४३. तमसा--अयि वत्से, भागीरथीप्रसादाद् वनदेवतानामप्यदृश्यासि संवृत्ता।

तमसा--हे पुत्री, गंगा की कृपा से तुम वनदेवताओं के लिए भी अदृश्य हो गई हो।

४४. सीता--अस्ति खल्वेतत्? (अत्थि खु एदं।)

सीता--क्या यह बात है?

४५. रामः--हा, प्रिये जानकि!

राम--हाय, प्यारी जानकी!

टिप्पणी

(१) **ससाध्वस०**--डर और करुणा के साथ। राम की बिना अनुमति के राम के पास होने से डर और राम की दयनीय अवस्था पर करुणा है। साध्वसं च करुणा च साध्वसकरुण (द्वन्द्व), ताभ्यां सह यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (२) **उपसृत्य**--तमसा के पास जाकर। उप+सृ+ल्यप्। (३) **बहुतरम्**--मेरे लिए बहुत है। राम का दर्शन ही नहीं, अपि तु उनका स्पर्श भी प्राप्त हो गया है। निर्वासन-काल में इससे अधिक और क्या चाहिए? अतिशयेन बहु बहुतरम्, बहु+तरप्। (४) **वत्सलया०**--प्रेममयी देवी सीता के द्वारा। वत्सला--वत्स+लच् (ल) +टाप्। वत्सांसाभ्यां० (५-२-९८) से लच्। (५) **अभ्युपपन्नः**--अनुगृहीत, अनुग्रह किया गया। अभ्युपपत्तिरनुग्रहः, इत्यमरः। अभि+उप+पद्+क्त। (६) **मार्गिष्यते**--ढूंढ़ेंगे। मार्ग्+लृट् प्र० एक०। (७) **अपसराव**--हम दोनों हट जाएँ, सरक जाएँ। अप+सृ+लोट् उ० द्विव०। (८) **प्रेक्ष्य**--देखकर। प्र+ईक्ष्+ल्यप्। (९) **अनभ्यनुज्ञातेन**--बिना अनुमति के, अननुमत। नञ्+अभि+अनु+ज्ञा+क्त+तृ० एक०। न अभ्यनुज्ञातेन, नञ् तत्पु०। (१०) **संनिधानेन**--समीपता के कारण। संनिधानम्--सम्+नि+धा+ल्युट्। (११) **राजा**--सीता ने जानबूझकर राम को राजा कहा है, पतिदेव या आर्यपुत्र नहीं। राजा राम ने उसको निर्वासित किया है,

पतिदेव राम ने नहीं। (१२) **कोपिष्यति**--क्रुद्ध होंगे। कुप्+लृट्+प्र० एक०। (१३) **भागीरथी०**--गंगा की कृपा से। भागीरथ्याः प्रसादात्, तत्पु०। (१४) **वनदेवतानाम्०**--वनदेवताओं के लिए भी। अदृश्या के कारण कृत्यानां कर्तरि वा (२-३-७१) से विकल्प से कर्ता में षष्ठी होने से यहाँ षष्ठी है। तृतीया भी हो सकती है। (१५) **अदृश्या**--न दीखने योग्य, अदृश्य। न दृश्या नञ् तत्पु०। दृश्या--दृश्+क्यप् (य)+टाप्। (१६) संवृत्ता--हो गई हो। सम्+वृत्+क्त+टाप्।

४६. सीता--(ससाध्वसगद्गदम्) आर्यपुत्र, असदृशं खल्वेतदस्य वृत्तान्तस्य। (सास्रम्) भगवति, किमिति वज्रमयी जन्मान्तरेष्वपि पुनरप्यसंभावितदुर्लभ-दर्शनस्य मामेव मन्दभागिनीमुद्दिश्यैवं वत्सलस्यैवंवादिनः आर्यपुत्रस्योपरि निरनुक्रोशा भविष्यामि ? अहमेवैतस्य हृदयं जानामि, ममैषः।

[अज्जउत्त, असरिसं खु एदं इमस्स वुत्तंतस्स। (सास्रम्) भअवदि, किं त्ति वज्जमई जम्मंतरेसु वि पुणो वि असंभाविअदुल्लहदंसणस्स मं एव्व मंदभाइणिं उदिसिअ एव्वं वच्छलस्स एव्वंवादिणो अज्जउत्तस्स उवरि णिरणु-क्कोसा भविस्सं ? अहं एव्व एदस्स हिअअं जाणामि, मह एसो।]

सीता--(भय के कारण अस्पष्ट शब्दों के साथ) हे आर्यपुत्र, आपका यह (हा प्रिये जानकि) कहना इस (परित्यागरूपी) घटना के अनुकूल नहीं है। (आँखों में आँसू भरकर) हे भगवती तमसा, जन्मान्तरों में भी जिनका दर्शन फिर असंभव और दुर्लभ है और जो मुझ अभागिनी को ही लक्ष्य करके इस प्रकार कह रहे हैं, उस प्रेममय आर्यपुत्र के प्रति मैं कैसे वज्र के तुल्य कठोर और निर्दय हो जाऊँगी ? मैं ही इनके हृदय को जानती हूँ और ये मेरे हृदय को।

४७. रामः--(सर्वतोऽवलोक्य सनिर्वेदम्) हा, न किंचिदत्र ।

राम—(चारों ओर देखकर खेद के साथ) हाय, यहाँ कुछ नहीं है।

४८. सीता--भगवति, निष्कारणपरित्यागिनोऽप्येतस्य दर्शनेनैवंविधेन कीदृशी मे हृदयावस्था ।

[भअवदि, णिक्कारणपरिच्चाइणो वि एदस्स एव्वं-विधेण दंसणेण कीलिसी मे हिअआवत्था ।]

सीता--हे भगवती, अकारण परित्याग करने वाले भी इनके इस प्रकार के दर्शन से मेरे हृदय की कैसी अवस्था हो रही है ?

टिप्पणी

(१) **ससाध्वस०**--भय के कारण अस्पष्ट शब्दों से युक्त । साध्वसेन गद्गदः (तत्पु०), तेन सह यथा स्यात् तथा, अव्ययी० । (२) **असदृशम्**—अनुकूल नहीं है । मेरा परित्याग करने के बाद इस प्रकार शोकातुर होना परित्याग की घटना के अनुकूल नहीं है। (३) **वृत्तान्तस्य**—परित्यागरूपी घटना के। (४) **सास्रम्**--आँखों में आँसू भर कर। अस्रैः सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी० । (५) **वज्रमयी**--वज्र के तुल्य कठोर। ऐसे राम के प्रति कठोर कैसे हो सकती हूँ ? (६) **जन्मान्तरेषु०**--अन्य जन्मों में भी । अन्यानि जन्मानि जन्मान्तराणि, तेषु, मयूरव्यंसकादि होने से तत्पु० । (७) **असंभावित०**—असंभव और दुर्लभ है दर्शन जिसका। असंभावितं दुर्लभं च दर्शनं यस्य तस्य, बहु० । असंभावितम्—न संभावितम्, नञ् तत्पु० । संभावित—सम्+भू+णिच्+क्त । दुर्लभ—दुर्+लभ्+खल् (अ) । (८) **उद्दिश्य**—लक्ष्य करके । उत्+दिश्+ल्यप् । (९) **एवंवादिनः**—इस प्रकार कहने वाले । एवं वदतीति तस्य, एवं+वद्+णिनि । ताच्छील्य अर्थ में णिनि । (१०) **निरनुक्रोशा**—निर्दय, कृपा-रहित । अनुक्रोश--कृपा, दया । कृपा दयाऽनुकम्पा स्यादनुक्रोशोऽपि, इत्यमरः । निर्गतः अनुक्रोशः यस्याः सा, बहु० । (११) **सनिर्वेदम्**—खेद के साथ । निर्वेदेन सहितम्, अव्ययी० । निर्वेद—निर्+विद्+घञ् ।

(१२) **निष्कारण०**---बिना कारण के परित्याग करने वाले । निष्कारणं परित्यागिनः, सुप्सुपा समास । (१३) **हृदया०**---हृदय की अवस्था । हृदयस्य अवस्था, तत्पु० । अर्थात् मेरे हृदय की अवस्था अवर्णनीय हो रही है ।

४९. तमसा---जानामि वत्से, जानामि,
तटस्थं नैराश्यादपि च कलुषं विप्रियवशा-
द्वियोगे दीर्घेऽस्मिन्झटिति घटनात्स्तम्भितमिव ।
प्रसन्नं सौजन्याद्दयितकरुणैर्गाढकरुणं
द्रवीभूतं प्रेम्णा तव हृदयमस्मिन्क्षण इव ।।१३।।

अन्वय---अस्मिन् क्षणे तव हृदयं नैराश्यात् तटस्थम् इव, अपि च विप्रियवशात् कलुषम् इव, अस्मिन् दीर्घे वियोगे झटिति घटनात् स्तम्भितम् इव, सौजन्यात् प्रसन्नम् इव, दयितकरुणैः गाढकरुणम्, प्रेम्णा द्रवीभूतम् इव ।

तमसा---हे पुत्री, जानती हूँ, जानती हूँ ।

इस समय तुम्हारा हृदय निराशा के कारण उदासीन-सा और (परित्याग-रूपी) अप्रिय कार्य के कारण खिन्न-सा, इस लम्बे विरह-काल में सहसा मिलन के कारण निश्चेष्ट-सा, (प्रेमपूर्ण संबोधनरूपी) सज्जनता से प्रसन्न-सा, प्रिय की करुणापूर्ण अवस्था से अत्यधिक शोकातुर-सा और प्रेम से द्रवीभूत-सा हो रहा है ।।१३।।

संस्कृत-व्याख्या

अस्मिन् क्षणे---सम्प्रति, तव---सीतायाः, हृदयं---मनः, नैराश्यात्---प्रियसमागमाशाया अभावात्, तटस्थम् इव---उदासीनम् इव, अपि च---अन्यच्च, विप्रियवशात्---परित्यागरूपात् अप्रियकार्यवशात्, कलुषम् इव---मलिनमिव, खिन्नमिव क्रोधयुक्तमिव वेत्यर्थः, अस्मिन्---एतस्मिन्, दीर्घे---चिरकालस्थायिनि, वियोगे---विरहे, झटिति---सहसा, घटनात्---संमेलनात्, स्तम्भितम् इव---विस्मयेन निश्चेष्टमिव, सौजन्यात्---प्रेमपूर्णसंबोधनरूपात् सज्जनत्वात्, प्रसन्नम् इव---आह्लादितमिव, दयितकरुणैः---दयितस्य रामस्य करुणैः शोकपूर्णावस्थाविशेषैः, गाढकरुणं---गाढः घनीभूतः करुणः शोकः यस्मिन् तत्, प्रेम्णा---स्नेहेन, द्रवीभूतम् इव---द्रवावस्थम् इव अस्ति । अत्रोत्प्रेक्षा विरोधश्चालंकारौ । शिखरिणी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **तटस्थम्०**——उदासीन सा । पति के मिलन की आशा न होने से उदासीन सा । तटे तिष्ठति इति, तट+स्था+क (अ) । (२) **नैराश्यात्**——निराशा के कारण । पति-मिलन की आशा न होने से । नैराश्यम्——निर्गता आशा यस्मात् तत् निराशम् (बहु०), तस्य भावः । निराश+ष्यञ् । (३) **कलुषम्०**——मलिन सा, खिन्न सा । इसका क्रोधयुक्त अर्थ भी हो सकता है । (४) **विप्रिय०**——परित्यागरूपी अप्रिय घटना के कारण । विप्रियस्य वशात्, तत्पु० । (५) **घटनात्**——मिलने के कारण । घटनम्——घट्+ल्युट् । (६) **स्तम्भितम्०**——स्तब्ध सा, निश्चेष्ट सा । राम के अकस्मात् मिलन के कारण सीता अवाक् और निश्चेष्ट सी है । (७) **प्रसन्नम्०**——प्रसन्न-सी, आनन्दित सी । प्र+सद्+क्त । (८) **सौजन्यात्**——सज्जनता के कारण, राम के प्रेमपूर्ण संबोधनरूपी सज्जनता से । सुजनस्य भावः सौजन्यम्, तस्मात् । सुजन+ष्यञ् । (९) **दयित०**——दयित——प्रिय राम की, करुणैः——करुणापूर्ण विशेष अवस्थाओं से । दयितस्य करुणैः, तत्पु० । (१०) **गाढकरुणम्**——अत्यधिक शोक-युक्त । गाढः करुणः यस्मिन् तत्, बहु० । (११) **द्रवीभूतम्**——पिघला हुआ । अद्रवं द्रवं भूतम् इति द्रवीभूतम् । यहाँ पर अभूततद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय है । च्वि प्रत्यय के कारण द्रव के अ को ई । (१२) इस श्लोक में इव के द्वारा पाँच उत्प्रेक्षाओं के वर्णन से पाँच उत्प्रेक्षा अलंकार हैं । खिन्न, प्रसन्न आदि विरुद्ध गुणों के एकत्र वर्णन होने के कारण विरोधाभास अलंकार है । भावों की शबलता के कारण कभी खिन्नता का उदय होता है और कभी प्रसन्नता आदि का । अतः वास्तविक विरोध नहीं है । (१३) इस श्लोक से भवभूति के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि का सुन्दर परिचय प्राप्त होता है । इस श्लोक से ज्ञात होता है कि वह मनोवैज्ञानिक विवेचन और वर्णन में अत्यन्त निपुण है ।

५०. रामः——देवि,

प्रसाद इव मूर्तस्ते स्पर्शः स्नेहार्द्रशीतलः ।
अद्याप्यानन्दयति मां त्वं पुनः क्वासि नन्दिनि ! ।।१४।।

अन्वय--स्नेहार्द्रशीतलः ते स्पर्शः मूर्तः प्रसादः इव अद्यापि माम् आनन्दयति, नन्दिनि ! त्वं पुनः क्व असि ? ।

राम--हे देवी,

प्रेम से आर्द्र और शीतल तुम्हारा स्पर्श शरीरधारी अनुग्रह के तुल्य इस समय भी मुझको आनन्दित कर रहा है । हे आनन्ददायिनी, तुम कहाँ हो ?॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या

स्नेहार्द्र०--स्नेहेन प्रेम्णा आर्द्रः सिक्तः शीतलः च शान्तिकरश्च, ते--सीतायाः, स्पर्शः--आमर्शनम्, मूर्तः--शरीरधारी, प्रसादः इव--अनुग्रह इव, अद्यापि--साम्प्रतमपि, मां--रामम्, आनन्दयति--सुखं ददाति । नन्दिनि--हे आनन्ददायिनि, त्वं--सीता, पुनः--भूयः, क्व--कुत्र, असि--वर्तसे । अत्रोत्प्रेक्षा-ऽलंकारः । श्लोको वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **प्रसाद इव०**--शरीरधारी अनुग्रह के तुल्य । सीता का स्पर्श मानों शरीरधारी अनुग्रह है । प्रसादः--प्र+सद्+घञ् । मूर्तः--शरीरधारी, मूर्तिमान् । मूर्च्छ्+क्त । (२) **स्नेहार्द्र०**--प्रेमरूपी रस से गीला और शीतल । स्नेहेन आर्द्रः स्नेहार्द्रः (तत्पु०), स चासौ शीतलश्च, कर्मधा० । (३) **अद्यापि**--आज भी, इस समय भी । तुम्हारे स्पर्श के बाद भी । (४) **आनन्दयति**--आनन्दित कर रहा है । आ+नन्द्+णिच्+लट् प्र० एक० । (५) **क्वासि**--तुम कहाँ हो ? तुम्हारे दर्शन नहीं हो रहे हैं । (६) **नन्दिनि**--हे आनन्दित करने वाली । नन्दयति इति नन्दिनी, तत्संबुद्धिः । नन्द्+णिच्+णिनि+ङीप् । नन्दिग्रहि० (३-१-१३४) से ग्रहादिगण में मानकर णिनि । यहाँ पर प्रसाद इव में उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

५१. सीता--एते खलु तेऽगाधमानसदर्शितस्नेहसंभारा आनन्दनिष्यन्दिनः सुधामया आर्यपुत्रस्योल्लापाः । जाने प्रत्ययेन निष्कारणपरित्यागशल्यितोऽपि बहुमतो मम जन्मलाभः । [एदे खु दे अगाधमाणसदंसिदसिणेहसंभारा

आणंदणिस्संदिणो सुहामआ अज्जउत्तस्स उल्लावा । जाणे पच्चएण णिक्कालणपरिच्चाअसल्लिदो वि बहुमदो मह जम्मलाहो ।]

सीता—आर्यपुत्र के उच्च स्वर से किए गए ये विलाप निश्चय ही अगाध मन से अत्यधिक प्रेम को प्रदर्शित करने वाले, आनन्द को बरसाने वाले तथा अमृतमय हैं। मैं (राम के प्रति) विश्वास के द्वारा जानती हूँ कि अकारण परित्यागरूपी शल्य (काँटा) से विद्ध होते हुए भी मेरा संसार में जन्म लेना मेरे लिए श्लाघनीय है।

५२. रामः—अथवा कुतः प्रियतमा ? नूनं संकल्पाभ्यासपाटवोपादान एष भ्रमो रामभद्रस्य ।

राम—अथवा प्रियतमा सीता यहाँ कहाँ है? अवश्य ही (सीताविषयक) निरन्तर चिन्तन की पटुता से उत्पन्न होने वाला यह राम का भ्रम है।

(नेपथ्ये)

५३. अहो, महान्प्रमादः प्रमादः । ('सीतादेव्या स्वकरकलितैः' इत्यर्धं पठ्यते ।)

(नेपथ्य में)

ओह, बड़ा अनर्थ है, अनर्थ है। 'सीतादेव्या स्वकरकलितैः०' यह श्लोक संख्या ६ का पूर्वार्द्ध पढ़ा जाता है।

५४. रामः—(सकरुणौत्सुक्यम्) किं तस्य ?

राम—(करुणा और उत्सुकता के साथ) उसका क्या हुआ ?

(पुनर्नेपथ्ये)

५५. ('वध्वा सार्धं' इत्युत्तरार्धं पठ्यते ।)

(फिर नेपथ्य में)

('वध्वा सार्धं०' यह श्लोक संख्या ६ का उत्तरार्ध पढ़ा जाता है।)

५६. सीता--क इदानीमभियुज्यते ? [को दाणिं अभिजुज्जइ ?]

सीता--इस समय कौन (उससे) लड़ रहा है ?

५७. रामः--क्वासौ दुरात्मा यः प्रियायाः पुत्रं वधू-द्वितीयमभिभवति ?

(इत्युत्तिष्ठति ।)

राम--वह दुष्ट कहाँ है, जो प्रिया सीता के वधू-युक्त पुत्र पर आक्रमण कर रहा है ?

(यह कहकर उठकर खड़े हो जाते हैं)

टिप्पणी

(१) **अगाध०**--अगाध--अथाह, मानस--मन से, दर्शित--दिखाया है, स्नेहसंभाराः--प्रेमसमूह जिन्होंने । अगाधं यत् मानसम् (कर्मधा०), तेन दर्शितः स्नेहसंभारः यैः ते, बहु० । संभार--सम्+भृ+घञ् । राम के द्वारा किया गया विलाप प्रेमातिशय को प्रदर्शित करता है । (२) **आनन्द०**--आनन्द की वर्षा करने वाले । आनन्दं निष्यन्दयन्ति ते । आनन्द+नि+स्यन्द्+णिच्+णिनि । सुप्यजातौ० (३-२-७८) से ताच्छील्य अर्थ में णिनि । (३) **सुधामयाः**--अमृतस्वरूप । (४) **उल्लापाः**--विलाप । उत्+लप्+ घञ् । (५) **प्रत्ययेन**--विश्वास के कारण । राम के प्रति विश्वास के कारण । (६) **निष्कारण०**--अकारण परित्यागरूपी शल्य से बिंधा हुआ । निष्कारणः परित्यागः (कर्मधा०), स एव शल्यम् (रूपक समास), तत् संजातम् अस्य सः । तदस्य संजातं० (५-२-३६) से इतच् । (७) **बहुमतः**--प्रशंसनीय, श्लाघनीय । बहु+मन्+क्त । वर्तमान अर्थ में मतिबुद्धि० (३-२-१८८) से क्त प्रत्यय । (८) **जन्मलाभः**--जन्म लेना । जन्मनः लाभः, तत्पु० । (९) **संकल्प०**--संकल्प--विचारों की, अभ्यास--पुनरावृत्ति की, पाटव--पटुता, चतुरता या अधिकता, उपादानः--जिसका कारण है । संकल्पस्य अभ्यासः (तत्पु०), तस्य पाटवम् उपादानं यस्य सः, बहु० । राम का कथन है कि सीता की निरन्तर स्मृति के कारण वहाँ न होते हुए भी सीता उन्हें उपस्थित

दीख रही है। यदि सीता वस्तुतः होती तो अवश्य दिखाई देती। अतः वे सीता की सत्ता को भ्रम समझ रहे हैं। पाटवम्--पटोः भावः, पटु+अण्। उपादानम्--उप+आ+दा+ल्युट्। (१०) सकरुणौ०--करुणा और उत्सुकता के साथ। करुणा च औत्सुक्यं च--करुणौत्सुक्ये (द्वन्द्व०), ताभ्यां सह यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (११) अभियुज्यते--लड़ रहा है। उससे कौन लड़ रहा है? अभि+युज्+ लट्, कर्मवाच्य में। (१२) वधू०--वधू-सहित। वधूः द्वितीया यस्य सः तम्, बहु०। (१३) अभिभवति--तिरस्कृत कर रहा है। अभि +भू+लट् प्र० एक०।

(प्रविश्य)

५८. वासन्ती--(संभ्रान्ता) देव, त्वर्यताम्।

वासन्ती--(घबड़ाई हुई) महाराज, शीघ्रता कीजिए।

५९. सीता--हा कथं मे प्रियसखी वासन्ती? [हा कहं मे पिअसही वासंदी?]

सीता--हाय, क्या यह मेरी प्रियसखी वासन्ती है?

६०. रामः--कथं देव्याः प्रियसखी वासन्ती?

राम--क्या यह देवी सीता की प्रियसखी वासन्ती है?

६१. वासन्ती--देव, त्वर्यतां त्वर्यताम्। इतो जटायुशिखरस्य दक्षिणेन सीतातीर्थेन गोदावरीमवतीर्य संभावयतु देव्याः पुत्रकं देवः।

वासन्ती--महाराज, शीघ्रता कीजिए, शीघ्रता कीजिए। यहाँ से (चलकर) जटायु-शिखर के दक्षिण की ओर सीतातीर्थ (सीताघाट) के समीप गोदावरी में उतर कर देवी सीता के पुत्र को आप बचाइए।

६२. सीता--हा तात जटायो, शून्यं त्वया विनेदं जनस्थानम्। [हा ताद जडाओ, सुण्णं तुए विणा इदं जणट्ठाणं।]

सीता--हाय तात जटायु, आपके बिना यह जनस्थान सूना लग रहा है।

६३. रामः--अहह, हृदयमर्मच्छिदः खल्वमी कथोद्घाताः।

राम--ओह, प्राचीन घटनाओं के ये वर्णन हृदय के मर्मस्थल को छेदने वाले हैं।

६४. वासन्ती--इत इतो देवः।

वासन्ती--महाराज, इधर से आइए, इधर से।

६५. सीता--भगवति, सत्यमेव वनदेवतापि मां न पश्यति। [भअवदि, सच्चं वणदेवदा वि मं ण पेक्खदि।]

सीता--हे भगवती तमसा, वस्तुतः वनदेवता भी मुझे नहीं देख रही है।

६६. तमसा--अयि वत्से, सर्वदेवताभ्यः प्रकृष्टतममैश्वर्यं मन्दाकिन्याः। तत्किमिति विशङ्कसे?

तमसा--हे पुत्री, गंगा का प्रभाव सारे देवताओं से बढ़कर है। इसलिए तुम क्यों शंका कर रही हो?

६७. सीता--ततोऽनुसरावः। [तदो अणुसरम्ह।]

(इति परिक्रामति।)

सीता--तो हम दोनों भी इनके पीछे चलती हैं।

(यह कहकर चल देती है)

टिप्पणी

(१) **संभ्रान्ता**--घबड़ाई हुई। सम्+भ्रम्+क्त+टाप्। (२) **त्वर्यताम्**--शीघ्रता कीजिए। त्वर्+लोट् प्र० एक०, भाव में लोट्। (३) **जटायु०**--गृध्रराज जटायु द्वारा आश्रित पहाड़ की चोटी के। इस चोटी पर जटायु रहता था। जटायु और जटायुष् दोनों शब्द जटायु के अर्थ में मिलते हैं। जटायुना अध्युषितं शिखरम्, मध्यमपदलोपी तत्पु०। एनपा द्वितीया (२-३-३१) से एनप्-प्रत्ययान्त के साथ द्वितीया और षष्ठी दोनों होती हैं। यहाँ पर एनप्-प्रत्ययान्त दक्षिणेन के कारण शिखरस्य में षष्ठी है। (४) **दक्षिणेन**--दक्षिण दिशा की ओर। दक्षिणा+एनप्। (५) **सीता०**--सीताघाटि के पास से। तीर्थ

शब्द घाट अर्थ में है। जिस घाट पर सीता स्नान करती थी, उसका नाम सीता-तीर्थ पड़ गया। (६) **अवतीर्य**--उतर कर। अव+तॄ+ल्यप्। (७) **संभावयतु**--रक्षा के द्वारा अनुगृहीत कीजिए। सम्+भू+णिच्+लोट् प्र० एक०। (८) **हृदय०**--हृदय के मर्मस्थल को छेदने वाले। हृदयस्य मर्माणि (तत्पु०), तानि छिन्दन्ति इति ते। हृदयमर्मन्+छिद्+क्विप् (०)। (९) **कथोद्घाताः**--कथाओं के प्रसंग। कथानाम् उद्घाताः, तत्पु०। उद्घात--आरम्भ, वर्णन, प्रसंग। उद्+हन्+घञ्। (१०) **सर्वदेवताभ्यः**--सब देवताओं से। तुलना अर्थ मानकर पञ्चमी विभक्ते (२-३-४२) से पंचमी। (११) **प्रकृष्टतमम्**--उत्कृष्टतम। अतिशयेन प्रकृष्टम्। अतिशय अर्थ में तमप्। यहाँ पर दो की तुलना अर्थ होने से तरप् होकर प्रकृष्टतरम् प्रयोग अधिक उचित है।

६८. रामः--भगवति गोदावरि, नमस्ते।

राम--हे भगवती गोदावरी, आपको प्रणाम है।

६९. वासन्ती--(निरूप्य) देव, मोदस्व विजयिना वधूद्वितीयेन देव्याः पुत्रकेण।

वासन्ती--(अच्छी तरह देखकर) महाराज, विजयी और वधू-युक्त देवी सीता के पुत्र के साथ आप आनन्दित होइए।

७०. रामः--विजयतामायुष्मान्।

राम--चिरंजीवी पुत्र विजयी हो।

७१. सीता--अहो, ईदृशो मे पुत्रकः संवृत्तः।
[अम्महे, ईदिसो मे पुत्तओ संवुत्तो।]

सीता--ओह, मेरा पुत्र ऐसा (शक्तिशाली) हो गया है?

७२. रामः--हा देवि, दिष्ट्या वर्धसे।

येनोद्गच्छद्बिसकिसलयस्निग्धदन्ताङ्कुरेण
व्याकृष्टस्ते सुतनु ! लवलीपल्लवः कर्णमूलात्।
सोऽयं पुत्रस्तव मदमुचां वारणानां विजेता
यत्कल्याणं वयसि तरुणे भाजनं तस्य जातः ॥१५॥

अन्वय—हे सुतनु, उद्गच्छद्बिसकिसलयस्निग्धदन्ताङ्कुरेण येन ते कर्णमूलात् लवलीपल्लवः व्याकृष्टः । सः अयं तव पुत्रः मदमुचां वारणानां विजेता (सन्) तरुणे वयसि यत् कल्याणं तस्य भाजनं जातः ।

राम—हा देवी, भाग्य से तुम बढ़ रही हो (तुम्हें बधाई है) ।

हे सुन्दरी, निकलते हुए मृणाल के अग्रभाग के तुल्य कोमल दन्ताङ्कुरों से जो तुम्हारे कर्ण-मूल (कान की जड़) से लवलीलता के पत्ते को खींचता था, वह यह तुम्हारा पुत्र मदजल बहाने वाले हाथियों का विजेता होकर युवावस्था में जो कल्याणकारी वस्तुएँ हैं, उनका पात्र हो गया है ।।१५।।

संस्कृत-व्याख्या

हे सुतनु—हे सुन्दरि, उद्गच्छद्०—उद्गच्छन्तौ निःसरन्तौ बिसकिसलयवत् मृणालाग्रभागवत् स्निग्धौ कोमलौ दन्ताङ्कुरौ दशनाङ्कुरौ यस्य तेन, येन—करिशावकेन, ते—तव सीतायाः, कर्णमूलात्—श्रवणमूलात्, लवली०—लवलीलतायाः किसलयः, व्याकृष्टः—शुण्डया आकृष्टः, सः—तथाविधः, अयं—पुरोवर्ती, तव—सीतायाः, पुत्रः—गजशावकः, मदमुचां—मदजलस्राविणाम्, वारणानां—गजानाम्, विजेता—विजयी सन्, तरुणे वयसि—युवावस्थायाम्, यत्—यद् वस्तु, कल्याणं—मङ्गलकारि, तस्य—तस्य वस्तुनः, भाजनं—पात्रम्, जातम्—अभूत् । अत्रोपमा काव्यलिङ्गम् चालंकारौ । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **निरूप्य**—अच्छी तरह देखकर । नि+रूप्+णिच्+ल्यप् । (२) **मोदस्व**—प्रसन्न हो । मुद्+लोट् म० एक० । (३) **विजयिना**—विजयी । विजयः अस्यास्तीति विजयिन्, विजय+इनि (इन्) । मत्वर्थ में इनि । (४) **वधू०**—वधू के सहित । वधूः द्वितीया यस्य सः तेन, बहु० । (५) **विजयताम्**—विजयी हो । वि+जि आत्मनेपदी होती है, विपराभ्यां जेः (१-३-१९) से । (६) **आयुष्मान्**—चिरंजीवी । आयुष्+मतुप् । (७) **दिष्ट्या वर्धसे**—भाग्य से बढ़ रही हो । यह मुहावरा है । इसका अर्थ है—तुम्हें बधाई है । (८) **उद्गच्छद्०**—उद्गच्छत्—निकलते हुए, बिसकिसलय—कमलनाल के अग्रभाग के तुल्य, स्निग्ध—कोमल, दन्ताङ्कुरेण—छोटे दाँतों से । उद्-गच्छन्तौ बिसकिसलये इव स्निग्धौ दन्ताङ्कुरौ यस्य तेन, तत्पुरुषगर्भक बहु० ।

उद्गच्छत्—उत्+गम्+शतृ । स्निग्ध—स्निह्+क्त । (९) व्याकृष्टः—खींचा, खींचता था। वि+आ+कृष्+क्त । (१०) सुतनु—हे सुन्दरी। शोभना तनूः यस्याः सा, तत्संबुद्धिः । तनु और तनू दोनों शब्द हैं । यह तनू शब्द का समास होने पर रूप है । तनु शब्द का सुतनो संबोधन में रूप होगा। (११) लवली०—लवली लता का पत्ता । लवल्याः पल्लवः, तत्पु० । (१२) कर्णमूलात्—कान की जड़ से । कर्णस्य मूलात्, तत्पु० । (१३) मदमुचाम्—मद को बहाने वाले । मदं मुञ्चन्ति इति, तेषाम् । मद+मुच्+क्विप् (०)—मदमुच् । (१४) वारणानाम्—हाथियों का । (१५) विजेता—जीतने वाला । वि+जि+तृच् प्र० एक० । (१६) कल्याणम्०—जो मंगलकारी वस्तुएँ हैं, उनका पात्र हो गया है अर्थात् वे सब चीजें उसे प्राप्त हो गई हैं । (१७) जातः—हो गया है । जन्+क्त । (१८) विसकिसलयस्निग्ध० में इव का अर्थ होने से लुप्तोपमा अलंकार है । तृतीय चरण में वर्णित मदस्रावी हाथियों का विजेता होना चतुर्थ चरण के कल्याण-प्राप्ति का कारण होने से काव्यलिंग अलंकार है ।

७३. सीता—अवियुक्त इदानीं दीर्घायुरनया सौम्यदर्शनया भवतु । [अविउत्तो दाणिं दीहाऊ इमाए सोम्हतादंसणाए होदु ।]

सीता—अब यह चिरंजीवी पुत्र इस प्रियदर्शन पत्नी से कभी भी वियुक्त न हो ।

७४. रामः—सखि वासन्ति, पश्य पश्य । कान्तानुवृत्तिचातुर्यमपि शिक्षितं वत्सेन ।

लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु संपादिताः
पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसो गण्डूषसंक्रान्तयः ।
सेकः शीकरिणा करेण विहितः कामं विरामे पुन-
र्यत्स्नेहादनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम् ॥१६॥

अन्वय—यत् स्नेहात् लीलोत्खातमृणालकाण्डकवलच्छेदेषु पुष्यत्पुष्करवासितस्य पयसः गण्डूषसंक्रान्तयः संपादिताः, शीकरिणा करेण कामं सेकः विहितः, पुनः विरामे अनरालनालनलिनीपत्रातपत्रं धृतम् ।

राम--हे सखी वासन्ती, देखो, देखो। इस बच्चे ने अपनी प्रियतमा को प्रसन्न करने की चतुरता भी सीख ली है।

जो प्रेम के कारण (इसने) अनायास उखाड़े हुए कमलदण्ड के ग्रासों के अन्त में खिले हुए कमलों से सुगन्धित जल के कुल्ले प्रियतमा के मुख में छोड़े हैं, जलकणों से पूर्ण अपनी सूँड से उसने अच्छी तरह (उसको) स्नान कराया और फिर अन्त में सीधी नाल वाले कमलपत्ररूपी छाते को (उसके ऊपर) लगाया ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या

यत्--यस्मात् कारणात्, स्नेहात्--प्रणयात्, लीलोत्खात०--लीलया अनायासेन उत्खाताः उत्पाटिताः ये मृणालकाण्डाः बिसदण्डाः तेषां कवलानां ग्रासानां छेदेषु अवसानेषु, पुष्यत्०--पुष्यन्ति विकसन्ति पुष्कराणि पद्मानि तैः वासितस्य सुरभितस्य, पयसः--जलस्य, गण्डूष०--गण्डूषाणां मुखपूरितजलांशानां संक्रान्तयः संचाराः, संपादिताः--विहिताः, शीकरिणा--जलकणसमन्वितेन, करेण--शुण्डया, कामं--यथेष्टम्, सेकः--सेचनम्, विहितः--कृतः, पुनः--भूयः, विरामे--अन्ते, अनराल०--अनरालम् अकुटिलं नालं दण्डः यस्य तादृशं यत् नलिनीपत्रं कमलपत्रं तदेव आतपत्रं छत्रम्, धृतं--करिण्या उपरि आतपवारणार्थं गृहीतम्। अत्र रूपकं स्वभावोक्तिश्चालंकारौ। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अवियुक्तः**--वियोग से रहित। न वियुक्तः, नञ् तत्पु०। वियुक्तः--वि+युज्+क्त। (२) **सौम्य०**--देखने में सुन्दर, प्रियदर्शना। सौम्यं दर्शनं यस्याः सा तया, बहु०। (३) **कान्ता०**--कान्ता--पत्नी को, अनुवृत्ति--प्रसन्न करने की, चातुर्यम्--चतुराई को। कान्तायाः अनुवृत्तौ चातुर्यम्, तत्पु०। अनुवृत्ति--अनु+वृत्+क्तिन्। चातुर्यम्--चतुरस्य भावः, चतुर+ष्यञ्। (४) **लीलोत्खात०**--लीला--क्रीडापूर्वक या अनायास, उत्खात--उखाड़े हुए, मृणालकाण्ड--कमलदण्ड के, कवल--ग्रासों के, छेदेषु--अन्त में। लीलया उत्खाताः (तत्पु०), लीलोत्खाताः मृणालकाण्डाः (कर्मधा०), तेषां कवलानां छेदेषु, तत्पु०। उत्खात--उत्+खन्+क्त। छेद--छिद्+घञ्। (५) **संपादिताः**--किए। संपादित--सम्+पद्+णिच्+क्त।

(६) **पुष्यत्०**——पुष्यत्——खिले हुए, पुष्कर——कमलों से, वासितस्य——सुगन्धित। पुष्यन्ति पुष्कराणि (कर्मधा०), तैः वासितस्य, तत्पु० । पुष्यत्——पुष्+शतृ । वासित——वास्+क्त । (७) **गण्डूष०**——गण्डूष——मुख में रक्खा हुआ जल या कुल्ले का, संक्रान्तयः——संचार या प्रवेश । गण्डूषाणां संक्रान्तयः, तत्पु० । संक्रान्ति——सम्+क्रम्+क्तिन् । (८) **सेकः**——सेचन, जल छिड़कना । सिच्+घञ् । (९) **शीकरिणा**——जलकणों से युक्त । शीकरिन्——शीकर+इनि, मत्वर्थ में इनि । (१०) **विहितः**——किया । वि+धा+क्त । धा को हि । (११) **विरामे**——अन्त में । विराम——वि+रम्+घञ् । (१२) **अनराल०**——अनराल——सीधी, नाल——नाल वाले, नलिनीपत्र——कमलपत्ररूपी, आतपत्रम्——छाते को । अनरालं नालं यस्य तत् (बहु०), तादृशं नलिनीपत्रं (कर्मधा०), तदेव आतपत्रम्, रूपक तत्पु० । अराल——वक्र. टेढ़ा, अनराल——सीधा । आतपत्र——आतप+त्रै (त्रा)+क । (१३) **धृतम्**——धारण किया, पकड़ा, लगाया । धृ+क्त । (१४) नलिनीपत्र पर आतपत्र का आरोप होने से रूपक अलंकार है । हाथी और हथिनी के प्रेम का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार है ।

७५. सीता——भगवति तमसे, अयं तावदीदृशो जातः । तौ पुनर्न जानाम्येतावता कालेन कुशलवौ कीदृशौ संवृत्ताविति ।

[भअवदि तमसे, अअं दाव ईरसो जादो । दे उण ण आणामि एत्तिएण कालेण कुशलवा कीरिसा संवुत्तेत्ति ।]

सीता——भगवती तमसा, यह (करिशावक) तो ऐसा (इतना बड़ा) हो गया है । पता नहीं इतने समय में वे दोनों कुश और लव कैसे (कितने बड़े) हो गए होंगे ?

७६. तमसा——यादृशोऽयं तादृशौ तावपि ।

तमसा——जैसा यह है, वैसे ही वे दोनों भी होंगे ।

७७. सीता——ईदृश्यस्मि मन्दभागिनी यस्या न

केवलमार्यपुत्रविरहः पुत्रविरहोऽपि । [ईरिसम्हि मंदभाइणी जाए ण केवलं अज्जउत्तविरहो पुत्तविरहो वि ।]

सीता--मैं ऐसी अभागिनी हूँ कि जिसका केवल अपने पति से ही वियोग नहीं, अपितु अपने पुत्रों से भी वियोग है ।

७८. तमसा--भवितव्यतेयमीदृशी ।

तमसा--यह ऐसी होनहार ही है ।

७९. सीता--किंवा मया प्रसूतया येनैतादृशं मम पुत्रकयोरीषद्विरलधवलदशनकुड्मलोज्ज्वलमनुबद्धमुग्धकाकलीविहसितं नित्योज्ज्वलं मुखपुण्डरीकयुगलं न परिचुम्बितमार्यपुत्रेण ? [किंवा मए पसूदाए जेण एआरिसं मह पुत्तआणं ईसिविरलधवलदसणकुम्हलुज्जलं अणुबद्धमुद्धकाअलीविहसिदं णिच्चुज्जलं मुहपुंडरीअजुअलं ण परिचुंबिअं अज्जउत्तेण ?]

सीता--अथवा मेरे पुत्र उत्पन्न करने से क्या लाभ, यदि इस प्रकार के मेरे दोनों पुत्रों के कुछ विरल, श्वेत और कलियों के तुल्य सुन्दर दाँतों से उज्ज्वल, निरन्तर मनोहर तोतली बोली और हास्य से युक्त, सदा सुन्दर, मुखकमल के जोड़े को आर्यपुत्र ने चुम्बन नहीं किया ?

८०. तमसा--अस्तु देवताप्रसादात् ।

तमसा--देवताओं की कृपा से ऐसा ही हो ।

टिप्पणी

(१) **ईदृशः**--ऐसा, इतना बड़ा । (२) **एतवता०**--इतने समय में। एतावत्--एतत् परिमाणम् अस्य, एतत्+वतुप् (वत्) । यत्तदेतेभ्यः० (५-२-३९) से परिमाण अर्थ में वतुप् । (३) **संवृत्तौ**--हो गए । संवृत्त--सम्+वृत्+क्त । (४) **आर्यपुत्र०**--पति से वियोग । आर्यपुत्रस्य विरहः, तत्पु० । (५) **पुत्र०**--पुत्रों से वियोग । पुत्रयोः विरहः, तत्पु० । (६) **भवितव्यता**--होनहार । भू+तव्य=भवितव्यम्, भवितव्यस्य भावः भवितव्यता । (७) **प्रसूतया**--मेरे पुत्र उत्पन्न करने से क्या लाभ ? किं के कारण तृतीया । प्रसूता--

प्र+सू+क्त+टाप् । अकर्मकत्व की विवक्षा से सू धातु से कर्ता में क्त । (८) **ईषद्०**——ईषत्——कुछ, विरल——विरल या कम घने, धवल——श्वेत, दशन-कुड्मल——दाँतरूपी कलियों से, उज्ज्वलम्——सुन्दर, प्रकाशमान । दशनाः कुड्मलाः इव दशनकुड्मलाः (उपमित तत्पु०), ईषद् विरलाः धवलाः दशन-कुड्मलाः (कर्मधा०), तैः उज्ज्वलम्, तत्पु० । उज्ज्वल——उत्+ज्वल्+अच् । (९) **अनुबद्ध०**——अनुबद्ध——निरन्तर विद्यमान, मुग्ध——मनोहर, काकली——तोतली बोली और, विहसितम्——हँसी से युक्त । अनुबद्धे मुग्धे काकली-विहसिते यस्मिन् तत्, बहु० । अनुबद्ध——अनु+बन्ध्+क्त । मुग्ध-मुह्+क्त । विहसितम्——वि+हस्+क्त । (१०) **नित्यो०**——सदा मनोहर । नित्यमेव उज्ज्वलम्, सुप्सुपा समास । (११) **मुख०**——मुखकमल के जोड़े को । मुखं पुण्डरीकम् इव मुखपुण्डरीकम् (उपमित तत्पु०), तस्य युगलम्, तत्पु० । (१२) **परिचुम्बितम्**——चूमा । परि+चुम्ब्+ क्त । (१३) **देवता०**——देवताओं की कृपा से ऐसा हो । देवतानां प्रसादात्, तत्पु० । प्रसाद——प्र+सद्+घञ् ।

८१. सीता——भगवति तमसे, एतेनापत्यसंस्मरणेनोच्छ्वसितप्रस्नुतस्तनी इदानीं वत्सयोः पितुः संनिधानेन क्षणमात्रं संसारिणी संवृत्तास्मि । [भअवदि तमसे, एदिणा अवच्चसंसुमरणेण उस्ससिदपण्हुदत्थणी दाणिं वच्चाणं पिदुणो संणिहाणेण खणमेत्तं संसारिणी संवुत्तम्हि ।]

सीता——हे भगवती तमसा, इस पुत्र-स्मृति से मेरे स्तन फड़कने लगे हैं और उनसे दूध बहने लगा है और इस समय बच्चों के पिता (राम) के समीप होने के कारण मैं क्षणभर के लिए गृहस्थिनी हो गई हूँ ।

८२. तमसा——किमत्रोच्यते ? प्रसवः खलु प्रकर्षपर्यन्तः स्नेहस्य । परं चैतदन्योन्यसंश्लेषणं पित्रोः ।

अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात् ।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति पठ्यते ॥१७॥

पाठभेद——८२. का० काले——बध्यते (बाँधा जाता है) ।

अन्वय—दम्पत्योः अन्तःकरणतत्त्वस्य स्नेहसंश्रयात् अयम् एकः आनन्द-ग्रन्थिः अपत्यम् इति पठ्यते।

तमसा—इस (अत्यन्त स्नेह) के विषय में क्या कहा जा सकता है? सन्तान वस्तुतः प्रेम की चरम सीमा होती है और यह माता-पिता के हृदय को परस्पर मिलाने वाली कड़ी है।

पति और पत्नी के हृदयरूपी तत्त्व के प्रेम का आश्रय होने के कारण 'सन्तान' यह अनुपम सुख की गाँठ कही जाती है ।।१७।।

संस्कृत-व्याख्या

दम्पत्योः—पतिपत्न्योः, अन्तःकरण०—हृदयपदार्थस्य, स्नेहसंश्रयात्—प्रेम्णः आश्रयत्वात्, अयम्—एषः, एकः—अनुपमः, आनन्द०—सुखग्रन्थिः, अपत्यम् इति—सन्तानरूपः, पठ्यते—स्मर्यते, मन्यते इत्यर्थः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अपत्य०**—पुत्रों के स्मरण से। अपतययोः संस्मरणेन, तत्पु०। संस्मरणम्—सम्+स्मृ+ल्युट्। (२) **उच्छ्वसित०**—उच्छ्वसित—फड़कते हुए तथा, प्रस्नुत—जिनसे दूध बह रहा है ऐसे, स्तनी—स्तनों वालो। उच्छ्वसितौ प्रस्नुतौ स्तनौ यस्याः सा, बहु०। उच्छ्वसित—उद्+श्वस्+क्त। प्रस्नुत—प्र+स्नु+क्त। (३) **संसारिणी**—गृहस्थ धर्म वाली। संसार+इनि+ङीप्। मत्वर्थ में इनि। (४) **प्रसवः**—सन्तान। प्रसूयते इति प्रसवः, प्र+सू+अप् (अ)। ॠदोरप् (३-३-५७) से अप् प्रत्यय। (५) **प्रकर्ष०**—उत्कर्ष की चरम सीमा। प्रकर्षस्य पर्यन्तः, तत्पु०। (६) **अन्योन्य०**—माता-पिता के हृदय को परस्पर मिलाने वाला। अन्योन्यस्य संश्लेषणम्, तत्पु०। संश्लेषणम्—सम्+श्लिष्+णिच्+ल्युट्। (७) **पित्रोः**—माता-पिता के। माता च पिता च पितरौ, तयोः। पिता मात्रा (१-२-७०) से एकशेष समास होकर दोनों शब्दों के स्थान पर पितृ शब्द शेष रहता है। मातापितरौ भी रूप बनता है। (८) **अन्तःकरण०**—हृदयरूपी तत्त्व का। अन्तःकरणम् एव तत्त्वं तस्य, रूपक तत्पु०। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, इन चारों को दर्शनों में अन्तःकरण कहा जाता है। अन्तःकरण का अर्थ है अन्दर की करण अर्थात् इन्द्रियाँ। यहाँ पर केवल हृदय अर्थ अभिप्रेत है। (९) **दम्पत्योः**—

पति और पत्नी के। जाया च पतिः च दम्पती, द्वन्द्व। जाया शब्द को निपातन से दम् और जम् आदेश विकल्प से हो जाते हैं। अतः दम्पती, जम्पती और जायापती ये तीनों रूप बनते हैं। (१०) **स्नेह०**—प्रेम का आश्रय होने के कारण। स्नेहस्य संश्रयात्, तत्पु०। संश्रय—सम्+श्रि+अच्। हेतु अर्थ में पंचमी। (११) **आनन्द०**—आनन्द की गाँठ। सन्तान माता-पिता के आनन्द की एक गाँठ होती है अर्थात् दोनों के आनन्द को समन्वित करती है। आनन्दस्य ग्रन्थिः, तत्पु०। (१२) **अपत्यम्०**—सन्तान है, ऐसा कहा जाता है। अपत्य की व्याख्या की जाती है कि सन्तान के होने से वंश का नाश नहीं होता है, अतः उसे अपत्य कहते हैं। न पतति वंशः येन जातेन तदपत्यम्। नञ् (अ) +पत्+यत्। (१३) यह श्लोक भवभूति के अत्युत्तम भावप्रधान श्लोकों में है। भवभूति ने चुने हुए थोड़े पदों में सन्तान का महत्त्व और गौरव वर्णन किया है।

८३. वासन्ती—इतोऽपि देवः पश्यतु।

अनुदिवसमवर्धयत्प्रिया ते
यमचिरनिर्गतमुग्धलोलबर्हम्।
मणिमुकुट इवोच्छिखः कदम्बे
नदति स एष वधूसखः शिखण्डी ॥१८॥

अन्वय—अचिरनिर्गतमुग्धलोलबर्हं यं ते प्रिया अनुदिवसम् अवर्धयत्, स एष शिखण्डी वधूसखः (सन्) कदम्बे उच्छिखः मणिमुकुटः इव नदति।

वासन्ती—महाराज, इधर भी देखिए।

नए निकले हुए मनोहर और चंचल पंख वाले जिस (मोर) को आपकी प्रिया सीता ने प्रतिदिन पाला-पोसा था, वही यह मोर अपनी पत्नी (मोरनी) के साथ कदम्ब के वृक्ष पर उन्नत शिखा वाला मणिजटित मुकुट के तुल्य प्रतीत होता हुआ शब्द कर रहा है ॥१८॥

संस्कृत-व्याख्या

अचिर०—अचिरं सद्यः निर्गतम् उद्गतं मुग्धं मनोहरं लोलं चञ्चलं च बर्हं पिच्छं यस्य तम्, यं—मयूरम्, ते—तव रामस्य, प्रिया—कान्ता सीता, अनुदिवसं—प्रतिदिनम्, अवर्धयत्—अपोषयत्, सः—पूर्वपरिचितः, एषः—पुरोवर्ती, शिखण्डी—मयूरः, वधूसखः—पत्नीसहितः सन्, कदम्बे—नीपवृक्षे, उच्छिखः—

उन्नतचूडः, मणिमुकुट इव—रत्नजटितकिरीट इव, नदति—कूजति, केकां करोतीत्यर्थः। उपमाऽलंकारः। पुष्पिताग्रा वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अनुदिवसम्**—प्रतिदिन। दिवसे दिवसे इति अनुदिवसम्, वीप्सा अर्थ में अव्ययीभाव०। (२) **अवर्धयत्**—बढ़ाया। वृध्+णिच्+लुङ प्र० एक०। (३) **अचिर०**—अचिर—शीघ्र ही, निर्गत—निकले हुए, मुग्ध—मनोहर, लोल—चंचल, बर्हम्—पंख वाले। अचिरं निर्गतं मुग्धं लोलं बर्हं यस्य तम्, बहु०। निर्गत—निर्+गम्+क्त। (४) **मणिमुकुटः**—मणियों से जटित मुकुट। मणिजटितः मुकुटः मणिमुकुटः, शाकपार्थिवादि के तुल्य मध्यमपदलोपी तत्पु०। (५) **उच्छिखः**—अपनी शिखा को ऊपर किए हुए। उद्गता शिखा यस्य सः, बहु०। (६) **नदति**—शब्द कर रहा है। नद्+लट् प्र० एक०। (७) **वधूसखः**—अपनी पत्नी के सहित। वध्वाः सखा, तत्पु०। यहाँ पर राजाहःसखिभ्यष्टच् (५-४-९१) से समासान्त टच् (अ) प्रत्यय होने से सखि शब्द का सखः रूप हो गया है। वधूसखि+टच्—वधूसखः। (८) **शिखण्डी**—मोर। शिखण्ड अर्थात् बर्ह या कलंगी से युक्त। शिखण्डः अस्य अस्ति इति, शिखण्ड+इनि। मत्वर्थ में इनि। (९) यहाँ पर मणिमुकुट इव में इव के द्वारा उपमा अलंकार है।

८४. सीता—(सकौतुकस्नेहास्रम्) एष सः। [एसो सो।]

सीता—(उत्सुकता और स्नेह के आँसुओं के साथ) यह वही है।

८५. रामः—मोदस्व वत्स, वयमद्य वर्धामहे।

राम—पुत्र, प्रसन्न रहो। (हम भी) आज बढ़ रहे हैं (प्रसन्न हो रहे हैं)।

८६. सीता—एवं भवतु। [एव्वं होदु]

सीता—ऐसा ही हो।

८७ (क). रामः—

भ्रमिषु कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्तिचक्षुः
प्रचलितचटुलभ्रूताण्डवैर्मण्डयन्त्या।
करकिसलयतालैर्मुग्धया नर्त्यमानं
सुतमिव मनसा त्वां वत्सलेन स्मरामि॥१९॥

अन्वय—भ्रमिषु कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्तिचक्षुः प्रचलितचटुलभ्रूताण्डवैः मण्डयन्त्या मुग्धया करकिसलयतालैः नर्त्यमानं त्वां सुतम् इव वत्सलेन मनसा स्मरामि।

राम—(मोर के नृत्यकालीन) चक्राकार भ्रमणों के समय नेत्रावरणों के अन्दर गोलाई से घूमते हुए नेत्रों (तारों) को अत्यन्त चंचल और सुन्दर भौंहों के ताण्डवनृत्य से सुशोभित करती हुई सुन्दरी सीता के द्वारा पल्लव-सदृश हाथों के तालों से नचाए जाते हुए तुझे पुत्र के समान प्रेमपूर्ण मन से स्मरण करता हूँ ।।१६।।

संस्कृत-व्याख्या

भ्रमिषु—मयूरस्य चक्राकारभ्रमणेषु, कृत०—कृता विहिता पुटान्तः नेत्रावरणाभ्यन्तरे मण्डलावृत्तिः मण्डलाकारेण आवर्तनं येन तादृशं चक्षुः नेत्रम्, प्रचलित०—प्रचलिते अतिचञ्चले चटुले शोभने ये भ्रुवौ तयोः ताण्डवैः नर्तनैः, मण्डयन्त्या—अलंकुर्वन्त्या, मुग्धया—सुन्दर्या सीतया, कर०—करकिसलयोः हस्तपल्लवयोः तालैः कालक्रियामानार्थं दत्ताभिः करतालिकाभिः, नर्त्यमानं—कार्यमाणनर्तनम्, त्वां—मयूरम्, सुतमिव—पुत्रमिव, वत्सलेन—प्रेमपरिपूर्णेन, मनसा—हृदयेन, स्मरामि—चिन्तयामि । अत्रोपमाऽलंकारः । मालिनी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **सकौतुक०**—उत्सुकता और स्नेह के आँसुओं के साथ । कौतुकं च स्नेहास्रं च कौतुकस्नेहास्रे (द्वन्द्व), ताभ्यां सहितम्, बहु० । (२) **वर्धामहे**—बढ़ रहे हैं, प्रसन्नता अनुभव कर रहे हैं । वृध्+लट् उ० बहु० । (३) **भ्रमिषु**—मोर के चक्राकार भ्रमण के समय । मोर चक्राकार नाचता है । (४) **कृत०**—कृत—किया है, पुटान्तः—नेत्रपुट के अन्दर, मण्डलावृत्ति—गोलाकार भ्रमण जिन्होंने ऐसे, चक्षुः—नेत्रों अर्थात् तारों को । कृता पुटान्तः मण्डलावृत्तिः येन तत् कृतपुटान्तर्मण्डलावृत्ति (बहु०), तादृशं चक्षुः, कर्मधा० । (५) **प्रचलित०**—प्रचलित—अतिचंचल, चटुल—सुन्दर, भ्रूताण्डवैः—भौंहों के नर्तन से । प्रचलिते चटुले च ये भ्रुवौ (कर्मधा०), तयोः ताण्डवैः, तत्पु० । यहाँ पर भ्रूताण्डव का भाव है भौंहों को शीघ्रता से नीचे-ऊपर और दाएँ-बाएँ घुमाना । (६) **मण्डयन्त्या**—सुशोभित करती हुई । मण्ड्+स्वार्थ में णिच्+शतृ+ङीप्

तृ० एक० । (७) कर०—करकिसलय—नवपल्लव के तुल्य हाथों के। तालैः—तालों से। ताल शब्द संगीत में काल-क्रिया के मान को बताता है। तालः कालक्रियामानम्, इत्यमरः। करौ किसलये इव (उपमितकर्मधा०), तयोः तालैः, तत्पु०। (८) मुग्धया—सुन्दरी सीता के द्वारा। मुग्धा—मुह्+क्त+टाप्। (६) नर्त्यमानम्—नचाए जाते हुए। नृत्+णिच्+कर्मवाच्य शानच्+द्वि०। (१०) वत्सलेन०—प्रेमयुक्त मन से। (११) इस श्लोक का भाव यह है कि मोर को नचाते समय सीता अपने हाथों से ताली बजाती थी और स्वयं भी चक्कर काटती थी। मोर के नृत्य के साथ ही सीता की आँखों की पुतलियाँ भी गोल चक्कर काटती थीं और वह अपनी भौंहों को भी तीव्रता से नचाती थी। इस प्रकार वह दृश्य अत्यन्त मनोहर हो जाता था। (१२) इस श्लोक में सुतमिव स्मरामि में इव के द्वारा उपमा अलंकार है।

८७ (ख).—हन्त, तिर्यञ्चोऽपि परिचयमनुरुन्धन्ते।

कतिपयकुसुमोद्गमः कदम्बः

प्रियतमया परिवर्धितोऽयमासीत्।

अन्वय—अयं कदम्बः प्रियतमया परिवर्धितः (सन्) कतिपयकुसुमोद्गमः आसीत्।

राम—अहा, पशु-पक्षी भी परिचय को निभाते हैं।

यह कदम्ब का वृक्ष प्रियतमा सीता के द्वारा बढ़ाया हुआ कुछ विकसित फूलों से युक्त था।

८८. सीता—(सास्रम्) सुष्ठु प्रत्यभिज्ञातमार्यपुत्रेण।

[सुट्ठु पच्चहिजाणिदं अज्जउत्तेण।]

सीता—(आँखों में आँसू भर कर) आर्यपुत्र ने ठीक पहचाना है।

८९. रामः—

स्मरति गिरिमयूर एष देव्याः

स्वजन इवात्र यतः प्रमोदमेति ॥२०॥

अन्वय—एष गिरिमयूरः देव्याः स्मरति, यतः अत्र स्वजने इव प्रमोदम् एति।

राम—यह पर्वतीय मोर सीता को स्मरण कर रहा है, क्योंकि इस वृक्ष पर यह आत्मीय व्यक्ति के (सहवास के) तुल्य आनन्द को प्राप्त हो रहा है ।।२०।।

संस्कृत-व्याख्या

अयम्—एषः, कदम्बः—नीपवृक्षः, प्रियतमया—सीतया, परिवर्धितः सन्—वृद्धिं प्रापितः सन्, कतिपय०—कतिपयानां परिमितानां कुसुमानां पुष्पाणाम् उद्गमः उत्पत्तिः यस्मिन् स तादृशः, आसीत्—अभवत् । एषः—अयम्, गिरिमयूरः—पर्वतीयो मयूरः, देव्याः—सीतायाः, स्मरति—स्मरणं करोति, यतः—यस्मात् कारणात्, अत्र—अस्मिन् कदम्बवृक्षे, स्वजने इव—आत्मीयव्यक्तिसम्पर्के इव, प्रमोदम्—आनन्दम्, एति—प्राप्नोति । अत्रोपमा काव्यलिङ्गं चालंकारौ । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **तिर्यञ्चः**—पशु-पक्षी भी । पशु-पक्षी आदि की तिर्यग्योनि में गणना है । तिरस्+अञ्च्=तिर्यञ्च्+प्र० बहु० । (२) **अनुरुन्धन्ते**—अनुसरण करते हैं । यहाँ पर निभाना भाव है । अनु+रुध्+लट् प्र० बहु० । राम के कथन का अभिप्राय है कि पशु-पक्षी आदि तुच्छ जीव भी अपने परिचय को निभाते हैं, परन्तु मुझ राम ने प्रिय सीता से अपने प्रेम को नहीं निभाया और उसका परित्याग किया । (३) **कतिपय०**—कतिपय—कुछ, कुसुम—फूल, उद्गमः—जिसमें खिले हुए हैं । कतिपयानां कुसुमानाम् उद्गमः यस्मिन् सः, बहु० । पोटायुवति० (२-१-६५) से कतिपय का परनिपात प्रायिक है । कुछ विद्वानों ने इसका विग्रह यह किया है—कुसुमानाम् उद्गमाः कुसुमोद्गमाः (तत्पु०), कतिपयाः कुसुमोद्गमाः अस्य सः, बहु० । (४) **परिवर्धितः**—बढ़ाया गया । परि+वृध्+णिच्+क्त । (५) **सास्रम्**—आँसू भर कर । अस्रैः सहितम्, बहु० । (६) **प्रत्यभिज्ञातम्**—पहचाना । प्रति+अभि+ज्ञा+क्त । (७) **गिरि०**—पर्वतीय मोर । गिरेः मयूरः, तत्पु० । इसका गिरिप्रियः मयूरः गिरिमयूरः भी विग्रह हो सकता है । शाकपार्थिवादिवत् मध्यमपदलोपी समास । (८) **देव्याः०**—सीता को स्मरण करता है । अधीगर्थदयेशां कर्मणि (२-३-५२) से स्मरति के कारण देव्याः में षष्ठी । (९) **स्वजन इव०**—जैसे आत्मीय व्यक्ति को पाकर । भाव यह है कि जिस

प्रकार कोई भी व्यक्ति आत्मीय जन को पाकर प्रसन्न होता है, उसी प्रकार मोर कदम्ब को पाकर और उस पर बैठकर प्रसन्न हो रहा है, क्योंकि दोनों को सीता ने पाला-पोसा था, अतः वे दोनों भ्रातृभाव अनुभव करते हैं। (१०) इस श्लोक में स्वजन इव में उपमा है। तृतीय चरण के प्रति चतुर्थ चरण कारण है, मोर के प्रमोद के कारण ज्ञात होता है कि वह देवी सीता को स्मरण कर रहा है, अतः काव्यलिंग है। स्मरति के द्वारा स्मरण अलंकार भी माना जाता है।

९०. वासन्ती—अत्र तावदासनपरिग्रहं करोतु देवः। एतत्तु देवस्याश्रमम्।

(राम उपविशति।)

वासन्ती—महाराज यहाँ आसन ग्रहण कीजिए। यह महाराज का ही आश्रम है।

(राम बैठते हैं)

९१. वासन्ती—

नीरन्ध्रबालकदलीवनमध्यवर्ति
कान्तासखस्य शयनीयशिलातलं ते।
अत्र स्थिता तृणमदाद् वनगोचरेभ्यः
सीता ततो हरिणकैर्न विमुच्यते स्म॥२१॥

अन्वय—कान्तासखस्य ते नीरन्ध्रबालकदलीवनमध्यवर्ति शयनीयशिलातलम् (अस्ति), अत्र स्थिता सीता वनगोचरेभ्यः तृणम् अदात्, ततः हरिणकः न विमुच्यते स्म।

वासन्ती—प्रिया सीता के सहित (निवास करते हुए) आपका यह घने एवं सुकुमार कदली वन के मध्य में विद्यमान शयन करने का शिलातल है। यहाँ बैठकर सीता वन्य मृगों को घास दिया करती थी, अतः मृग (इस स्थान को) नहीं छोड़ते थे॥२१॥

पाठभेद—९१. कलि—एतत्तदेव (यह वही)। का०, काले—बहुशो यदेभ्यः (जो कि अनेक बार इनको)।

संस्कृत-व्याख्या

कान्तासखस्य—सीताप्रियस्य, ते—तव रामस्य, नीरन्ध्र०—नीरन्ध्राः अतिघनाः बालकदल्यः कोमलरम्भाः तासां वनस्य काननस्य मध्ये अन्तरे वर्तमानम्, शयनीय०—शयनोपयोगी प्रस्तरखण्डः अस्ति । अत्र—अस्मिन् शिलातले, स्थिता—उपविष्टा, सीता—जानकी, वनगोचरेभ्यः—वन्यमृगेभ्यः, तृणं—घासम्, अदात्—वितीर्णवती, ततः—तस्मात् कारणात्, हरिणकैः—मृगैः, न—नहि, विमुच्यते स्म—त्यज्यते स्म, एतत् स्थानमिति शेषः । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

(१) **आसन०**—आसन ग्रहण कीजिए, बैठिए । आसनस्य परिग्रहः, तम्, तत्पु० । परिग्रहः—परि+ग्रह्+अच् (अ) । (२) **नीरन्ध्र०**—नीरन्ध्र—घने, बाल—सुकुमार, कदलीवन—केले के वन के, मध्यवर्ति—बीच में स्थित । नीरन्ध्राः बालकदल्यः (कर्मधा०), तासां वनस्य मध्ये वर्तते इति, उपपदसमास । नीरन्ध्र०+वृत्+णिनि (इन्), नपुं० एक० । नीरन्ध्राः—निर्गतं रन्ध्रं छिद्रं याभ्यः ताः, बहु० । निर्+रन्ध्र । (३) **कान्तासखस्य**—सीता के मित्र अर्थात् सीता-सहित राम का । कान्तायाः सखा कान्तासखः, तस्य तत्पु० । कान्तासखि+टच्, राजाहः० (५-४-९१) से समासान्त टच् (अ) प्रत्यय । (४) **शयनीय०**—शयन करने का शिलातल । शेते अस्मिन् इति शयनीयम् । शी+अनीयर्, अधिकरण में अनीयर् । शयनीयं च तत् शिलातलम्, कर्मधा० । (५) **स्थिता**—बैठी हुई । स्था+क्त+टाप् । (६) **अदात्**—देती थी । दा+लुङ्, प्र० एक० । गातिस्था० (२-४-७७) से सिच् का लोप । (७) **वनगोचरेभ्यः**—वन में रहने वाले । वनं गोचरः येषां तेभ्यः, बहु० । (८) **हरिणकैः**—मृगों से । यहाँ पर अनुकम्पा अर्थ में अनुकम्पायाम् (५-३-७६) से कन् (क) प्रत्यय । (९) **न विमुच्यते स्म**—नहीं छोड़ी जाती थी, मृग सीता को नहीं छोड़ते थे । सीता मृगों को तृण देती थी, अतः मृग उसके चारों ओर लगे रहते थे । लट् स्मे (३-२-११८) से स्म के कारण भूत अर्थ में लट् । विमुच्यते—वि+मुच्+कर्मवाच्य में लट्, प्र० एक० ।

९२. रामः—इदं तावदशक्यमेव द्रष्टुम् ।

(इत्यन्यतो रुदन्नुपविशति ।)

राम—यह देखा नहीं जा सकता है।

(यह कहकर रोते हुए दूसरी ओर बैठते हैं)

६३. सीता—सखि वासन्ति, किं त्वया कृतमार्यपुत्रस्य मम चैतद्दर्शयन्त्या ? हा धिक् हा धिक् ! स एवार्यपुत्रः। तदेव पञ्चवटीवनम्। सैव प्रियसखी वासन्ती। त एव विविधविस्रम्भसाक्षिणो गोदावरीकाननोद्देशाः। त एव जातनिर्विशेषा मृगपक्षिणः पादपाश्च। मम पुनर्मन्दभाग्याया दृश्यमानमपि सर्वमेवैतन्नास्ति। ईदृशो जीवलोकस्य परिणामः संवृत्तः।

[सहि वासन्दि, किं तुए किदं अज्जउत्तस्स मह अ एदं दंसअंतीए ? हद्धी हद्धी, सो एव्व अज्जउत्तो। तं एव्व पंचवडीवणं। सा एव्व पिअसही वासंदी। दे एव्व जादणिव्विसेसा मिअपक्खिणो पाअवा अ। मह उण मंदभाइणीए दीसंतं वि सव्वं एव्व एदं णत्थि। ईरिसो जीअलोअस्स परिणामो संवुत्तो।]

सीता—हे सखी वासन्ती, तूने आर्यपुत्र को और मुझे यह (स्थान) दिखाकर क्या किया ? हाय धिक्कार है ! हाय धिक्कार है ! वही आर्यपुत्र हैं, वही पञ्चवटी वन है, वही प्रियसखी वासन्ती है, वही अनेक विश्वस्त कार्यों के साक्षी गोदावरी के वन-प्रदेश हैं, वही पुत्रतुल्य पशु पक्षी और वृक्ष हैं। परन्तु मुझ अभागिनी के लिए दृष्टिगोचर होती हुई भी ये सब वस्तुएँ नहीं (के सदृश) हैं। (मेरे लिए) संसार का यही (दुःखद) परिणाम हुआ है ?

६४. वासन्ती—सखि सीते, कथं न पश्यसि रामभद्रस्यावस्थाम् ?

नवकुवलयस्निग्धैरङ्गैर्ददन्नयनोत्सवं
सततमपि नः स्वेच्छादृश्यो नवो नव एव सः ।
विकलकरणः पाण्डुच्छायः शुचा परिदुर्बलः
कथमपि स इत्युन्नेतव्यस्तथापि दृशोः प्रियः ॥२२॥

अन्वय—नवकुवलयस्निग्धैः अङ्गैः नयनोत्सवं ददत् सततम् अपि नः स्वेच्छादृश्यः सः नवः नवः एव (आसीत्, अधुना तु) शुचा विकलकरणः पाण्डुच्छायः परिदुर्बलः स इति कथमपि दृशोः प्रियः ।

वासन्ती—हे सखी सीता, तुम रामभद्र की अवस्था क्यों नहीं देखती हो ?

नवीन नीलकमल के तुल्य चिकने (अपने) अंगों से (हमारे) नेत्रों को आनन्दित करते हुए सदा ही हमारे लिए सुलभ-दर्शन वह (राम हमें) नए-नए ही लगते थे, (परन्तु अब) शोक के कारण क्षीण इन्द्रियों वाले, पीत वर्ण और अतिकृश होने से 'यह वही राम हैं' इस प्रकार कठिनाई से पहचान जाते हैं, फिर भी नेत्रों को प्रिय लग रहे हैं ॥२२॥

संस्कृत-व्याख्या

नव०—नवकुवलयानि नूतननीलकमलानि इव स्निग्धानि चिक्कणानि तैः, अङ्गैः—अवयवैः, नयनो०—नयनयोः नेत्रयोः उत्सवम् आनन्दम्, ददत्—प्रयच्छन्, सततम् अपि—सदैव, नः—अस्माकम्, स्वेच्छा०—स्वेच्छया इच्छानुसारं दृश्यः दर्शनीयः, सः—रामः, नवः नव एव—सर्वथा नूतन एव, आसीत्, अधुना तु, शुचा—शोकेन, विकलकरणः—क्षीणेन्द्रियः, पाण्डुच्छायः—पीतवर्णः, परिदुर्बलः—अतिकृशः, स इति—स एव रामोऽयम् इति, कथमपि—केनापि प्रकारेण, उन्नेतव्यः—अनुमेयः प्रत्यभिज्ञेयो वा अस्ति । तथापि—तदवस्थोऽपि, दृशोः—नेत्रयोः, प्रियः—मनोहरोऽस्ति । अत्र विभावना लुप्तोपमा चालंकारौ । हरिणी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **अशक्यम्**—संभव नहीं है। न शक्यम्, तत्पु० । शक्यम्—शक्+यत् (य) । शकिसहोश्च (३-१-९९) से यत् । (२) **द्रष्टुम्**—देखने को ।

पाठभेद—९४. काले—कुवलयदल० (नीलकमल के पत्ते के तुल्य) । का०, काले—यः (जो) ।

दृश्+तुमुन् । (३) **रुदन्**--रोते हुए । रुद्+शतृ । (४) **दर्शयन्त्या**--दिखाती हुई ने । दृश्+णिच्+शतृ+ङीप्+तृ० एक० । (५) **पञ्चवटी०**--पंचवटी वन । पञ्चानां वटानां समाहारः पञ्चवटी (द्विगु), तस्याः वनम्, तत्पु० । (६) **विविध०**--अनेक विश्वस्त कार्यों के साक्षी । विविधानां विस्रम्भाणां साक्षिणः, तत्पु० । (७) **गोदावरी०**--गोदावरी के वन-प्रदेश । गोदावर्याः काननम् (तत्पु०), तस्य उद्देशाः, तत्पु० । (८) **जात०**--पुत्रों के सदृश । जातेभ्यः निर्विशेषाः, तत्पु० । जात--जन्+क्त । निर्विशेष--निर्गतः विशेषः येषां ते, बहु० । (९) **मृग०**--पशु-पक्षी । मृगाश्च पक्षिणश्च, द्वन्द्व । (१०) **मन्द०**--अभागिनी के लिए । मन्दं भाग्यं यस्याः, तस्याः, बहु० । (११) **दृश्यमानम्**--दिखाई देता हुआ । दृश्+कर्मवाच्य शानच् प्र० एक० । (१२) **नव०**--नए नील कमल के तुल्य चिकने । नवकुवलयानि इव स्निग्धानि, तैः, उपमानकर्मधा० । उपमानानि० (२-१-५५) से समास । स्निग्ध--स्निह्+क्त । (१३) **ददत्**--देता आ । दा+शतृ प्र० एक० । नाभ्यस्ताच्छतुः (७-१-७८) से नुम् का अभाव । (१४) **नयनो०**--नेत्रों के लिए आनन्द को । नयनयोः उत्सवम्, तत्पु० । (१५) **स्वेच्छा०**--इच्छानुसार देखने योग्य । स्वेच्छया दृश्यः, तत्पु० । (१६) **नवो नवः**--जो सदा नया ही दिखाई देता था । इससे राम की अत्यन्त सुन्दरता का बोध होता है । माघ ने रमणीयता का लक्षण दिया है--क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः (शिशु० ४-१७) । प्रकार (सादृश्य) अर्थ में द्विरुक्ति,प्रकारे गुण० (८-१-१२) से । (१७) **विकल०**--विकल--क्षीण या खिन्न, करणः--इन्द्रियों वाला । विकलानि करणानि यस्य सः, बहु० । (१८) **पाण्डु०**--पीत वर्ण के । पाण्डुः छाया यस्य सः, बहु० । (१९) **शुचा**--शोक से । शुच्--शुच्+क्विप् प्रत्यय । (२०) **परिदुर्बलः**--अत्यन्त निर्बल । (२१) **उन्नेतव्यः**--अनुमान के योग्य, पहचानने योग्य । उत्+नी+तव्य । (२२) इस श्लोक में पीतवर्ण आदि अमनोहरता के कारण होने पर भी राम की मनोहरता का वर्णन होने से विभावना अलंकार है । नवकुवलय० में इव का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा है ।

९५. सीता--सखि, पश्यामि । [सहि, पेक्खामि ।]

सीता--हे सखी, देख रही हूँ ।

९६. तमसा--पश्य प्रियं भूयः।

तमसा--अपने प्रिय को फिर देखो।

९७. सीता--हा दैव, एष मया विना अहमप्येतेन विनेति केन संभावितमासीत्। तन्मुहूर्तमात्रं जन्मान्तरादपि दुर्लभलब्धदर्शनं बाष्पसलिलान्तरेषु पश्यामि तावद् वत्सलमार्यपुत्रम्।

[हा देव्व, एसो मए विणा अहं वि एदेण विणेत्ति केण संभाविदं आसि। ता मुहुत्तमेत्तं जम्मंतरादो वि दुल्लहलद्धदंसणं वाहसलिलंतरेषु पेक्खामि दाव वच्चलं अज्जउत्तं।]

(इति पश्यन्ती स्थिता।)

सीता--हा दैव, 'यह मेरे बिना और मैं इनके बिना रहूँगी' इसकी किसे संभावना थी? मैं क्षण भर के लिए जन्मान्तर में भी कठिनाई से प्राप्य दर्शन वाले प्रेमी आर्यपुत्र को अश्रुजल निकलने के बाद देखती हूँ।

(यह कहकर देखती हुई खड़ी रहती)

टिप्पणी

(१) **संभावितम्**--आशा की थी। सम्+भू+णिच्+क्त। (२) **जन्मा०**--दूसरे जन्म में भी। अन्यत् जन्म जन्मान्तरम्, मयूरव्यंसकादयश्च (२-१-७२) से समास। जन्मान्तरं प्राप्य, ल्यब्लोपे० (वा०) से पंचमी। (३) **दुर्लभ०**--कठिनता से जिसका दर्शन प्राप्त हो सकता है। दुर्लभं यथा स्यात् तथा लब्धं दर्शनं यस्य तम्, बहु०। (४) **बाष्प०**--अश्रुजल के अवकाश के समय, अर्थात् जब पहले वाले आँसू गिर जाते हैं और नए आते हैं, उसके बीके समय में। बाष्पसलिलानाम् अन्तरेषु, तत्पु०।

९८. तमसा--(परिष्वज्य, सास्रम्)

विलुलितमतिपूरैर्बाष्पमानन्दशोक-

प्रभवमवसृजन्ती पक्ष्मलोत्तानदीर्घा।

स्नपयति हृदयेशं स्नेहनिष्यन्दिनी ते
धवलमधुरमुग्धा दुग्धकुल्येव दृष्टिः ॥२३॥

अन्वय--अतिपूरैः विलुलितम् आनन्दशोकप्रभवं बाष्पम् अवसृजन्ती पक्ष्मलोत्तानदीर्घा स्नेहनिष्यन्दिनी धवलमधुरमुग्धा दुग्धकुल्या इव ते दृष्टिः हृदयेशं स्नपयति ।

तमसा--(आलिंगन करके, आँखों में आँसू भर कर)

अनेक प्रवाहों के द्वारा फैले हुए तथा आनन्द और शोक से उत्पन्न आँसू को बहाती हुई, सुन्दर पलकों वाली, विस्तृत और दीर्घ तथा प्रेम की वर्षा करने वाली, श्वेत मधुर एवं मनोहर तुम्हारी दृष्टि दूध की नहर की तरह अपने हृदयेश्वर (राम) को स्नान कराती है ॥२३॥

संस्कृत-व्याख्या

अतिपूरैः--अत्यधिकप्रवाहैः, विलुलितं--विकीर्णम्, आनन्द०--हर्ष-दुःखसमुत्पन्नम्, बाष्पम्--अश्रु, अवसृजन्ती--वर्षन्ती, पक्ष्मलो०--पक्ष्मला मनोहराक्षिलोमसंयुता उत्ताना विस्तृता दीर्घा आयता च, स्नेह०--प्रेमवर्षिणी, धवल०--धवला अञ्जनाप्रयोगात् शुभ्रा मधुरा प्रिया मुग्धा मनोहरा च, दुग्ध-कुल्या इव--क्षीरस्य कृत्रिमा नदी इव, ते--तव सीतायाः, दृष्टिः--दर्शनं नेत्रं वा, हृदयेशं--हृदयस्वामिनं रामम्, स्नपयति--अभिषिञ्चति । अत्रोपमो-त्प्रेक्षा चालंकारौ । मालिनी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **परिष्वज्य**--आलिंगन करके। परि+स्वञ्ज्+ल्यप् । (२) **सास्रम्**--आँसू के साथ, आँखों में आँसू भरकर। अस्रैः सहितम्, अव्ययी० । (३) **विलुलितम्**--बिखरे हुए। वि+लुल्+क्त । (४) **अतिपूरैः**--अत्यधिक प्रवाह के कारण । सीता के आँसू बहुत वेग से बह रहे थे। (५) **आनन्द०**--आनन्द और शोक से उत्पन्न होने वाले। प्राणप्रिय राम के दर्शन के कारण आनन्द और विरह-व्यथा के कारण शोक था। अतः आँसू हर्ष और शोक-मिश्रित थे। आनन्दश्च शोकश्च आनन्दशोकौ (द्वन्द्व), तौ प्रभवः कारण

पाठभेद--६८. काले--बहल० (अत्यन्त) ।

यस्य तम्, बहु० । प्रभवः—प्रभवति अस्मात्, प्र+भू+अप् । ऋदोरप् (३-३-५७) से अप् । (६) **अवसृजन्ती**—छोड़ती हुई, बहाती हुई । अव+सृज्+शतृ+ङीप् । (७) **पक्ष्मलो०**—पक्ष्मल—सुन्दर पलकों वाली, उत्तान—फैली हुई, विस्तृत, दीर्घा—बड़ी, लम्बी । पक्ष्मला चासौ उत्ताना च दीर्घा च, कर्मधा० विशेषण समास । पक्ष्मला—पलक या बरौनी वाली । पक्ष्म+लच् (ल)+टाप् । मतुप् के अर्थ में लच् । उत्तान—फैली हुई । भवभूति का विचार है कि उत्सुकता के समय आँखें फैली हुई और लम्बी हो जाती हैं । व्यक्ति आवश्यकता से अधिक आँखें फाड़कर देखता है । (८) **स्नपयति**—स्नान सी करा रही है । स्ना+णिच्+ लट् । णिच् होने पर बीच में पुक् (प्) । ग्लास्नावनुवमां च (गण-सूत्र) से विकल्प से मित् होने से मितां ह्रस्वः (६-४-९२) से विकल्प मे ह्रस्व होने से स्नपयति स्नापयति दोनों रूप बनते हैं । यहाँ पर वस्तुतः स्नान कराना अर्थ नहीं है, अपितु स्नान सी करा रही है । (९) **स्नेह०**—प्रेम की वर्षा करने वाली । स्नेहं निष्यन्दते इति, नि+स्यन्द्+णिनि (इन्)+ङीप् । साधुकारी अर्थ में साधुकारिण्युप० (वा०) से णिनि । (१०) **धवल०**—श्वेत, मधुर और मनोहर । धवला चासौ मधुरा च मुग्धा च, कर्मधा० विशेषण समास । सीता विरहिणी होने के कारण आँखों में काजल नहीं लगाती थी, अतः उसकी आँखें सफेद थीं । विरहिणी के लिए याज्ञल्क्य स्मृति (१-८४) का विधान है—क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सवदर्शनम् । हास्यं परगृहे यानं त्यजेत् प्रोषित-भर्तृका ।। (११) **दुग्ध०**—दूध की नहर की तरह । सीता की दृष्टि दूध की नहर की तरह राम को प्रेम से सिक्त कर रही थी । कुल्याऽल्पा कृत्रिमा सरित्, इत्यमरः । (१२) इस श्लोक में इव के द्वारा उपमा अलंकार है । स्नपयति में उत्प्रेक्षासूचक इव लुप्त होने से प्रतीयमान उत्प्रेक्षा है ।

९९. वासन्ती—

ददतु तरवः पुष्पैरर्घ्यं फलैश्च मधुश्च्युतः
स्फुटितकमलामोदप्रायाः प्रवान्तु वनानिलाः ।
कलमविरलं रज्यत्कण्ठाः क्वणन्तु शकुन्तयः
पुनरिदमयं देवो रामः स्वयं वनमागतः ।।२४।।

अन्वय—मधुश्च्युतः तरवः पुष्पैः फलैः च अर्घ्यं ददतु । स्फुटितकमलामोदप्रायाः वनानिलाः प्रवान्तु । रज्यत्कण्ठाः शकुन्तयः अविरलं कलं क्वणन्तु । अयं देवः रामः स्वयं पुनः इदं वनम् आगतः ।

वासन्ती—मकरन्द बरसाने वाले वृक्ष फूलों और फलों से अर्घ्य दें, खिले हुए कमलों की विशेष सुगन्ध से युक्त वन की हवाएँ बहें, सुरीले कण्ठ वाले पक्षी निरन्तर मधुर ध्वनि करें, (क्योंकि) ये महाराज राम फिर स्वयं इस वन में आए हैं ।।२४।।

संस्कृत-व्याख्या

मधुश्च्युतः—मकरन्दवर्षिणः, तरवः—वृक्षाः, पुष्पैः—कुसुमैः, फलैः च तरुप्रसवैः च, अर्घ्यं—पूजोपकरणम्, ददतु—प्रयच्छन्तु । स्फुटित०—स्फुटितानि विकसितानि कमलानि सरोजानि तेषाम् आमोदः सौरभं प्रायः आधिक्येन येषु ते, वनानिलाः—अरण्यवायवः, प्रवान्तु—प्रवहन्तु । रज्यत्०—रज्यन्तः रागयुक्ताः कण्ठाः गलाः येषां त, शकुन्तयः—पक्षिणः, अविरलं—निरन्तरम्, कलं—मधुरम्, क्वणन्तु—कूजन्तु । अयम्—एषः, देवः—महाराजः, रामः—रामचन्द्रः, स्वयं—स्वेच्छया, पुनः—भूयः, इदम्—एतत्, वनं—काननम्, आगतः—समायातः, अस्तीति शेषः । अत्र काव्यलिङ्गमलंकारः । हरिणी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **अर्घ्यम्**—पूजा की सामग्री को । अर्घाय हितम् अर्घ्यम्, अर्घ+यत् (य) । (२) **मधुश्च्युतः**—पराग या मकरन्द को बरसाने वाले । मधु श्च्योतन्ति इति ते, उपपदसमास । मधु+श्च्युत्+क्विप् (०) । अन्तर्भावित ण्यर्थ प्रयोग है, अर्थात् णिच् का अर्थ धातु के अर्थ में छिपा हुआ है । मधुश्च्युत् +प्र० बहु० । (३) **स्फुटित०**—स्फुटित—खिले हुए, कमल—कमल की, आमोद—सुगन्ध, प्रायाः—जिनमें अधिक है । स्फुटितानि कमलानि (कर्मधा०), तेषाम् आमोदः प्रायः येषु ते, बहु० । (४) **प्रवान्तु**—बहें । प्र+वा+लोट् प्र० बहु० । (५) **वनानिलाः**—वन की हवाएँ । वनस्य अनिलाः, तत्पु० । (६) **रज्यत्०**—रागयुक्त या सुरीले गले वाले । रज्यन्तः कण्ठाः येषां ते, बहु० । रज्यत्—रञ्ज्+शतृ । (७) **क्वणन्तु**—शब्द करें, कूजें । क्वण्+लोट् प्र० बहु० । (८) चतुर्थ चरण में वर्णित राम का आगमन प्रथम तीन चरणों के कार्यों के प्रति कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है ।

१००. रामः--एहि सखि वासन्ति, नन्वितः स्थीयताम् ।

राम--सखी वासन्ती, आओ, इधर बैठो ।

१०१. वासन्ती--(उपविश्य सास्रम्) महाराज, अपि कुशलं कुमारलक्ष्मणस्य ?

वासन्ती--(बैठकर, आँखों में आँसू भरकर) महाराज, कुमार लक्ष्मण सकुशल तो हैं ?

१०२. रामः--(अनाकर्णनमभिनीय)

करकमलवितीर्णैरम्बुनीवारशष्पै-
स्तरुशकुनिकुरङ्गान्मैथिली यानपुष्यत् ।
भवति मम विकारस्तेषु दृष्टेषु कोऽपि
द्रव इव हृदयस्य प्रस्रवोद्भेदयोग्यः ।।२५।।

अन्वय--मैथिली करकमलवितीर्णैः अम्बुनीवारशष्पैः यान् तरुशकुनिकुरङ्गान् अपुष्यत् । तेषु दृष्टेषु प्रस्रवोद्भेदयोग्यः मम हृदयस्य द्रवः इव कोऽपि विकारः भवति ।

राम--(न सुनने का अभिनय करके)

देवी सीता अपने कर-कमल से दिए हुए जल, नीवार और कोमल घास से जिन वृक्ष, पक्षी और मृगों को पालती थी, उन्हें देखकर मेरे हृदय में स्रोत के प्रवाह के योग्य कोई अनिर्वचनीय तरलता के तुल्य विकार उत्पन्न हो रहा है । ।।२५।।

संस्कृत-व्याख्या

मैथिली--सीता, कर०--हस्तकमलप्रदत्तैः, अम्बु०--अम्बु नीरं नीवारः मुनिधान्यं शष्पं कोमलतृणं तैः, यान्, तरु०--वृक्षपक्षिमृगान्, अपुष्यत्--अवर्धयत् । तेषु--पूर्वोक्तेषु वृक्षादिषु, दृष्टेषु--निरीक्षितेषु सत्सु, प्रस्रवो०--प्रस्रवस्य स्रोतसः उद्भेदे उद्गमे योग्यः समर्थः, मम--रामस्य, हृदयस्य--चेतसः, द्रवः इव--आर्द्रता इव, कोऽपि--अनिर्वचनीयः, विकारः--विकृतिः, भवति--संजायते । अत्र यथासंख्यमुपमा चालंकारौ । मालिनी वृत्तम् ।

पाठभेद--१०२. का०, काले--प्रस्तरोद्भेदयोग्यः (पत्थर को भी फोड़ने में समर्थ) ।

टिप्पणी

(१) एहि--आओ। आ+इ+लोट् म० एक०। (२) स्थीयताम्--बैठो। स्था+भाववाच्य लोट् प्र० एक०। (३) उपविश्य--बैठकर। उप+विश्+ल्यप्। (४) अपि०--क्या लक्ष्मण सकुशल तो हैं? अपि प्रश्न अर्थ में है। (५) अनाकर्णनम्०--न सुनने का अभिनय करके। न आकर्णनम्, नञ् तत्पु०। अभिनीय--अभिनय करके। अभि+नी+ल्यप्। (६) कर०--हाथरूपी कमल से दिए हुए। करौ कमले इव करकमले (उपमित तत्पु०), ताभ्यां वितीर्णैः, तत्पु०। वितीर्ण--वि+तॄ+क्त। (७) अम्बु०--अम्बु-जल, नीवार--मुनिधान्य, जंगली धान, शष्पैः--नई घास से। अम्बु च नीवारः च शष्पं च तैः, द्वन्द्व। नीवार--नि+वृ+घञ्। नौ वृ धान्ये (३-३-४८) से घञ् और उपसर्गस्य० (६-३-१२२) से नि को दीर्घ। (८) तरु०--तरु--वृक्ष, शकुनि--पक्षी, कुरङ्गान्--मृगों को। यहाँ पर अम्बु आदि का क्रमशः अन्वय है। जल से वृक्षों को, नीवार से पक्षियों को और कोमल घास से मृगों को सीता पालती थी। तरवः च शकुनयः च कुरङ्गाः च तान्, द्वन्द्व। (९) मैथिली--सीता। मिथिलायाः राजा मैथिलः, मिथिला+अण्। मैथिलस्य अपत्यं स्त्री, मैथिल+इञ्+ङीष्। अत इञ् (४-१-९५) से इञ् और इतो मनुष्य० (४-१-६५) से ङीष्। (१०) अपुष्यत्--पाला-पोसा। पुष्+लङ् प्र० एक०। (११) विकारः--मेरे हृदय में अवर्णनीय विकार उत्पन्न हो रहा है। वि+कृ+घञ्। (१२) प्रस्रवो०--प्रस्रव--स्रोत या झरने के, उद्भेद--उत्पत्ति में, योग्य--समर्थ। प्रस्रवस्य उद्भेदे योग्यः, तत्पु०। शोक से मेरा हृदय द्रवित हो रहा है और इससे एक झरना निकल सकता है। उद्भेद--उद्+भिद्+घञ्। (१३) इस श्लोक में अम्बु आदि का तरु आदि से क्रमशः संबन्ध होने से यथासंख्य अलंकार है। द्रव इव में उपमा है।

१०३. वासन्ती--महाराज, ननु पृच्छामि अपि कुशलं कुमारलक्ष्मणस्येति।

वासन्ती--महाराज, मैं पूछ रही हूँ कुमार लक्ष्मण सकुशल तो हैं?

१०४. रामः--(आत्मगतम्) अये, महाराजेति निष्प्रणयमामन्त्रणपदम्। सौमित्रिमात्रे बाष्पस्खलि-

ताक्षरः कुशलप्रश्नः। तथा मन्ये विदितसीतावृत्तान्तेयमिति। (प्रकाशम्) आः, कुशलं कुमारलक्ष्मणस्य।

राम--(मन में) अरे, 'महाराज' यह संबोधन पद प्रेम से शून्य है। इसने आँसू के कारण अस्पष्ट अक्षरों में केवल लक्ष्मण के बारे में कुशल पूछा है। इससे मैं समझता हूँ कि इसको सीता का सब समाचार ज्ञात है। (प्रकट) हाँ, कुमार लक्ष्मण सकुशल हैं।

१०५. वासन्ती--(रोदिति) अयि देव, किं परं दारुणः खल्वसि।

वासन्ती--(रोती है) हे महाराज, आप अत्यन्त कठोर क्यों हो गए हैं?

१०६. सीता--सखि वासन्ति, किं त्वमेवंवादिनी भवसि? पूजार्हः सर्वस्यार्यपुत्रो विशेषतो मम प्रियसख्याः।

[सहि वासन्दि, किं तुमं एव्वंवादिणी होसि? पूआरुहो सव्वस्स अज्जउत्तो विसेसदो मह पिअसहीए।]

सीता--सखी वासन्ती, तुम इस प्रकार क्यों कह रही हो? आर्यपुत्र सभी के पूजनीय हैं, विशेषरूप से मेरी सखी (वासन्ती) के।

टिप्पणी

(१) **निष्प्रणयम्**---प्रेम से रहित। निर्गतः प्रणयः यस्मात् तत्, बहु०। (२) **आमन्त्रण०**---संबोधन का पद। आमन्त्रणस्य पदम्, तत्पु०। (३) **सौमित्रि०**---केवल लक्ष्मण के बारे में। सुमित्रायाः अपत्यं सौमित्रिः, सुमित्रा का पुत्र। सुमित्रा+इञ्, बाह्वादिभ्यश्च (४-१-९६) से इञ्। सौमित्रिः एव सौमित्रिमात्रकम्, तस्मिन्। मयूरव्यंसकादयश्च (२-१-७२) से समास। (४) **बाष्प०**---बाष्प---आँसू के कारण, स्खलित---अस्पष्ट उच्चरित, अक्षरः---अक्षरों से युक्त। बाष्पैः स्खलितानि अक्षराणि यस्मिन् सः, बहु०। (५) **विदित०**---जिसको सीता का सारा समाचार ज्ञात है। विदितः सीतायाः वृत्तान्तः यया सा, बहु०। (६) **दारुणः**---कठोर। वासन्ती का संकेत है कि आपने सीता-परित्याग करके बड़ा कठोर काम किया है और अब आप अत्यन्त कठोर

व्यक्ति हो गए हैं। पहले आप सीधे व्यक्ति थे। (७) **एवंवादिनी**--ऐसा कहने वाली। सीता का अभिप्राय है कि तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए। इससे राम को और अधिक चोट पहुँचेगी। एवं वदितुं शीलम् अस्याः सा। एवम्+वद्+णिनि+ङीप्। स्वभाव अर्थ में णिनि। (८) **पूजार्हः**--पूजा के योग्य। पूजाम् अर्हति इति, पूजा+अर्ह्+अण्। कर्मण्यण् (३-२-१) से अण्। राम सभी के लिए पूज्य हैं, उनसे किसी को कोई कठोर बात नहीं कहनी चाहिए।

१०७. वासन्ती--

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमतः परेण ॥२६॥

(इति मुह्यति।)

अन्वय--त्वं जीवितम्, त्वं मे द्वितीयं हृदयम्, त्वं नयनयोः कौमुदी, त्वम् अङ्गे अमृतम् असि, इत्यादिभिः प्रियशतैः मुग्धाम् अनुरुध्य ताम् एव...अथवा शान्तम्, अतः परेण किम्।

वासन्ती--'तुम मेरा जीवन हो, तुम मेरा दूसरा हृदय हो, तुम मेरे नेत्रों के लिए चाँदनी हो, तुम मेरे अंगों के लिए अमृत हो' इत्यादि सैकड़ों प्रिय वचनों से भोली-भाली (सीता) को बहलाकर उसी को...., अथवा बस, इससे आगे कहने से क्या लाभ? ॥२६॥

(यह कहकर मूर्छित हो जाती है)

संस्कृत-व्याख्या

त्वं--सीता, जीवितं--मम जीवनम् असि। त्वं--जानकी, मे--मम रामस्य, द्वितीयम्--अपरम्, हृदयं --चित्तम् असि। त्वं--मैथिली, नयनयोः--मम नेत्रयोः, कौमुदी--चन्द्रिका असि। त्वं--वैदेही, अङ्गे--मम गात्रेषु, अमृतं--पीयूषम्, असि--वर्तसे। इत्यादिभिः--एवमादिभिः, प्रियशतैः--

---

पाठभेद--१०७. का०, काले--किमिहोत्तरेण (इसका उत्तर देने से क्या लाभ?)।

शतशः प्रियवचनैः, मुग्धां—सरलमतिं सीताम्, अनुरुध्य—अनुनीय, तामेव—तथाविधां सीतामेव, कथं परित्यक्तवानसि इति शेषः। अथवा—आहोस्वित्, शान्तम्—अलम् एतेनोपालम्भनेन, अतः—एतस्मात्, परेण—अनन्तरेण, पश्चाद् घटितवृत्तवर्णनेन, किम्—को लाभः। अत्र रूपकमतिशयोक्तिराक्षेपश्चालंकाराः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **जीवितम्**—जीवन हो। तुम मेरे जीवन या प्राण के सदृश हो। जीव्+क्त। नपुंसके भावे क्तः (३-३-११४) से भाव अर्थ में क्त। (२) **हृदयम्**—हृदय, चित्त। तुम मेरे दूसरे हृदय के सदृश हो। (३) **कौमुदी**—चाँदनी। तुम मेरी आँखों के लिए चाँदनी हो, अर्थात् तुम्हें देखकर मेरी आँखें तृप्त हो जाती हैं। 'कौ मोदन्ते जनाः यस्मात् तेनेयं कौमुदी मता।' लोग चाँदनी को देखकर प्रसन्न होते हैं, अतः इसे कौमुदी कहते हैं। (४) **अमृतम्**—अमृत। मेरे शरीर के लिए अमृत के तुल्य हो। (५) **प्रियशतः**—सैकड़ों प्रिय वचनों से। प्रियाणां शतैः, तत्पु०। शत आदि शब्द अनन्त अर्थ के बोधक हैं। 'शतं सहस्रमयुतं सर्वमानन्त्यवाचकम्'। (६) **अनुरुध्य**—अनुनय करके, बहलाकर, पटाकर। सीता को तुमने इस प्रकार फुसलाया था। अनु+रुध्+ल्यप्। (७) **मुग्धाम्**—भोलीभाली। सीता भोली थी, तुम्हारा छल नहीं समझती थी। मुग्धा—मुह्+क्त+टाप्। (८) **तामेव**—उस सीता का ही तुमने परित्याग कर दिया। (९) **शान्तम्**—बस। मैं आगे नहीं कहती हूँ। (१०) **अथवा०**—अथवा इससे आगे कहने से क्या लाभ? आगे कहने से केवल तुम्हारे मन को आघात पहुँचेगा। (११) इस श्लोक में सीता पर जीवन, द्वितीय हृदय आदि का आरोप होने से रूपक अलंकार है। सीता को जीवित, अमृत आदि कथन में अतिशयोक्ति है। यहाँ पर उक्त वस्तु-कथन का अथवा...किम् के द्वारा निषेध सा करने से आक्षेप अलंकार है। वस्तुनो वक्तुमिष्टस्य विशेषप्रतिपत्तये। निषेधाभास आक्षेपो वक्ष्यमाणोक्तगो द्विधा॥ (सा० दर्पण १०,६४-६५)। जहाँ पर विशेष अर्थ का बोध कराने के लिए जिस बात को कहना चाहते हैं, उसका निषेध सा किया जाए, वहाँ आक्षेप अलंकार होता है। यह श्लोक दशरूपक (३-१७) में वाक्केली का उदाहरण दिया गया है।

१०८. तमसा--स्थाने वाक्यनिवृत्तिर्मोहश्च ।

तमसा--वाक्य को रोकना और मूर्छित होना उचित ही है ।

१०९. रामः--सखि, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

राम--सखी, धैर्य रक्खो, धैर्य रक्खो ।

११०. वासन्ती --(समाश्वस्य) तत्किमिदमकार्यमनुष्ठितं देवेन ?

वासन्ती--(होश में आकर) आपने यह अनुचित काम क्यों किया ?

१११. सीता--सखि वासन्ति, विरम विरम ।

[सहि वासंदि, विरम विरम ।]

सीता--सखी वासन्ती, बस करो, बस करो ।

११२. रामः--लोको न मृष्यतीति ।

राम--लोग (सीता के घर में रहने को) सहन नहीं करते हैं ।

११३. वासन्ती--कस्य हेतोः ?

वासन्ती--किस लिए ?

११४. रामः--स एव जानाति किमपि ।

राम--वे ही जानते हैं, क्या कारण है ?

११५. तमसा--चिरादुपालम्भः ।

तमसा--बहुत समय बाद (संसार को यह) उलाहना दिया गया है ।

११६. वासन्ती--

अयि कठोर ! यशः किल ते प्रियं
किमयशो ननु घोरमतः परम् ।
किमभवद् विपिने हरिणीदृशः
कथय नाथ ! कथं बत मन्यसे ? ।।२७।।

अन्वय--अयि कठोर, ते किल यशः प्रियम्, ननु अतः परं घोरम् अयशः किम् ? हरिणीदृशः विपिने किम् अभवत् ? नाथ, कथय, बत कथं मन्यसे ?

वासन्ती—हे निष्ठुर, तुम्हें निश्चय ही यश प्यारा है, परन्तु इससे अधिक घोर अपयश और क्या हो सकता है ? उस मृगनयनी (सीता) का वन में क्या हुआ ? हा नाथ, बताइए, इस विषय में आपका क्या विचार है ? ।।२७।।

संस्कृत-व्याख्या

अयि कठोर—हे निष्ठुर, ते—तव रामस्य, किल—निश्चयेन, यशः—कीर्तिः, प्रियम्—अभीष्टम् । ननु—आक्षेपे, अतः—अस्मात् सीतापरित्यागजनिताद् अयशसः, परम्—अधिकम्, घोरं—भयंकरम्, अयशः—अकीर्तिः, किं—किमस्ति । हरिणीदृशः—मृगनयनायाः सीतायाः, विपिने—अरण्ये, किम् अभवत्—किं वृत्तमिति, हे नाथ—हे स्वामिन्, कथय—ब्रूहि, बत—खेदे, कथं मन्यसे—किं विचारयसि । अत्र विषम उपमा चालंकारौ । द्रुतविलम्बितं वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **स्थाने**—उचित ही है । उचित या युक्त अर्थ में स्थाने अव्यय है । युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने, इत्मरः । (२) **वाक्य०**—वाक्य की समाप्ति । वासन्ती का अपनी बात को रोकना और मूर्छित होना, यह उचित ही हुआ । वासन्ती का सीता से घनिष्ट प्रेम था, अतः वह उसका प्रसंग आते ही शोक के आवेग के कारण मूर्छित हो जाती है । 'स्थाने' शब्द के द्वारा भवभूति ने संकेत किया है कि वह शोक के आवेग में पात्र का अपनी बातचीत के बीच में ही मूर्छित हो जाना उचित समझता है । वाक्यस्य निवृत्तिः, तत्पु० । निवृत्ति—नि+वृत्+क्तिन् । (३) **मोहः**—मूर्च्छा । वासन्ती का मूर्छित होना । मुह्+घञ् । (४) **समाश्वसिहि**—धैर्य रक्खो । सम्+आ+श्वस्+लोट् म० एक० । (५) **समाश्वस्य**—होश में आकर । सम्+आ+श्वस्+ल्यप् । (६) **अकार्यम्**—दुष्कर्म, अनुचित कार्य । न कार्यम्, नञ् तत्पु० । (७) **अनुष्ठितम्**—किया । अनु+स्था+क्त । (८) **विरम**—रुको, बस करो । वि+रम् परस्मैपदी हो जाती है, व्याङ्परिभ्यो रमः (१-३-८३) से । (९) **लोकः**—लोगों को सीता का घर में रहना सहन नहीं हो रहा है । लोकः—लोग, जनता । मृष्यति—सहन करता है । मृष्+लट् प्र० एक० । (१०) **कस्य०**—क्यों, किसलिए । षष्ठी हेतुप्रयोगे (२-३-२६) से हेतोः में षष्ठी । (११) **किमपि**—कुछ कारण को । लोगों को ही मालूम है कि क्या कारण है ? किमपि अनिर्वचनीय कारण का बोधक है । (१२) **चिरात्**—बहुत काल बाद । सीता के वनवास को है ।

१२ वर्ष हो गए हैं। राम ने अब यह उपालम्भ दिया है। (१३) **उपालम्भः**—
उलाहना, ताना, व्यंग्य करना। उप+आ+लभ्+घञ्। लभेश्च (७-१-६४)
से नुम्। इससे प्रतीत होता है कि राम प्रजा का आदर करने के कारण
अपना शोक मन में ही रखते थे। जनता के प्रति कुछ भी कटु शब्द
नहीं कहते थे। वासन्ती के आग्रह पर १२ वर्ष बाद उन्होंने जनता को
उलाहना दिया है कि लोगों ने मुझे विवश कर दिया कि मैं सीता का परित्याग
करूँ। (१४) **कठोर**—निष्ठुर। हे राम, तुम बहुत कठोरहृदय हो कि
तुमने यश की लालसा से निरपराध और गर्भिणी सीता का परित्याग
किया। (१५) **अयशः**—अकीर्ति, अपयश। निरपराध सीता के परित्याग
से तुम्हें घोर अपयश मिला है। (१६) **किमभवत्**—क्या हुआ? सीता का
क्या हुआ, वह बची या मरी? (१७) **हरिणीदृशः**—मृगी के तुल्य नेत्रों वाली
सीता का। हरिण्या इव दृशौ यस्याः सा, तस्याः, बहु०। हरिणी+दृश्+
क्विन् (०)=हरिणीदृश् +षष्ठी एक०। (१८) **बत**—खेद की बात है।
यह खेदसूचक अव्यय है। खेदानुकम्पासन्तोषविस्मयामन्त्रणे बत, इत्यमरः।
(१९) **मन्यसे**—मानते हो। सीता के विषय में आपका क्या विचार है, वह
जीवित है या मर गई? (२०) इस श्लोक में यश के लिए विरोधी अपयश
का काम करने से विषम अलंकार है। विरूपयोः संघटना या च तद् विषमं
मतम्। (सा० दर्पण १०-७०)। हरिणीदृशः में इव का अर्थ लुप्त होने से
लुप्तोपमा है।

११७. सीता—सखि वासन्ति, त्वमेव दारुणा कठोरा च। यैवं प्रलपन्तं प्रलापयसि।

[सहि वासंदि, तुमं एव्व दारुणा कठोरा अ। जा एव्वं पलवंतं पलावेसि।]

सीता—सखी वासन्ती, तुम ही भयंकर और निष्ठुर हो। जो इस प्रकार विलाप करते हुए (आर्यपुत्र) को और रुला रही हो।

११८. तमसा—प्रणय एवं व्याहरति शोकश्च।

तमसा—प्रेम और शोक ऐसा कह रहा है (कहलवा रहा है)।

११६. रामः--सखि, किमत्र मन्तव्यम् ?

त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टे-
स्तस्याः परिस्फुरितगर्भभरालसायाः ।
ज्योत्स्नामयीव मृदुबालमृणालकल्पा
क्रव्याद्भिरङ्गलतिका नियतं विलुप्ता ।।२८।।

अन्वय--त्रस्तैकहायनकुरङ्गविलोलदृष्टेः परिस्फुरितगर्भभरालसायाः तस्याः मृदुबालमृणालकल्पा ज्योत्स्नामयी इव अङ्गलतिका क्रव्याद्भिः नियतं विलुप्ता ।

राम--सखी, इसमें विचार की क्या बात है ?

डरे हुए एक वर्ष के मृग के तुल्य चंचल नेत्रों वाली और हिलते हुए गर्भ के भार से आलस्य-युक्त उस सीता के लतातुल्य शरीर को, जो कोमल और नवीन कमलनाल के तुल्य था तथा जो चन्द्रिका से बना हुआ सा था, अवश्य ही हिंसक जन्तुओं ने नष्ट कर दिया है ।।२८।।

संस्कृत-व्याख्या

त्रस्तैक०--त्रस्तः भीतः एकहायनः एकवर्षवयस्कः कुरङ्गः मृगः तस्येव विलोले अतिचञ्चले दृष्टी नेत्रे यस्याः तस्याः, परिस्फुरित०--परिस्फुरितस्य प्रकम्पितस्य गर्भस्य गर्भस्थशिशोः भरेण भारेण अलसाया आलस्ययुक्तायाः, तस्याः--सीतायाः, मृदु०--मृदु कोमलं यद् बालमृणालं नवबिसं तत्कल्पा तत्समाना, ज्योत्स्नामयी इव--चन्द्रिकाविरचितेव, अङ्गलतिका--शरीरलता, क्रव्याद्भिः--हिंस्रजीवैः, नियतम्--अवश्यम्, विलुप्ता--नाशिता, भक्षितेत्यर्थः । अत्र लुप्तोपमोत्प्रेक्षा चालंकारौ । वसन्ततिलका वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **दारुण**--भयंकर । सीता वासन्ती से कहती है कि तुम ही अब भयंकर और निष्ठुर हो रही है, जो कि राम को रुला रही हो । (२) **प्रलपन्तम्**--विलाप करते हुए, रोते हुए । यहाँ पर प्रलप् विलप् के अर्थ में है । प्र+लप्+शतृ+द्वि० एक० । (३) **प्रलापयसि**--रुला रही हो । यहाँ भी प्रलप् विलप् के अर्थ में है । प्र+लप्+णिच्+लट् म० एक० । (४) **प्रणयः०**--प्रेम । वासन्ती का तुम्हारे प्रति प्रेम है, अतः परित्याग के कारण उसे शोक हुआ है ।

इसलिए वह राम से ऐसा कह रही है। वासन्ती नहीं कह रही है, अपितु उसका हृदयगत प्रेम और शोक ऐसा कह रहा है। (५) **व्याहरति**--कह रहा है। वि+आ+हृ+लट्। व्याहृ का कहना अर्थ है। (६) **किमत्र०**--इसमें मानने या विचार की क्या बात है? वह अवश्य ही मर गई है। मन्तव्यम्--मन्+तव्य। (७) **त्रस्तैक०**--त्रस्त--डरे हुए, एकहायन--एक वर्ष के, कुरङ्ग--मृग के तुल्य, विलोल--चंचल, दृष्टेः--दृष्टि वाली। त्रस्तः एक-हायनः कुरङ्गः (कर्मधा०), तद्वत् विलोले दृष्टी यस्याः तस्याः, बहु०। त्रस्त--त्रस्+क्त। (८) **परिस्फुरित०**--परिस्फुरित--काँपते या हिलते हुए, गर्भ--गर्भस्थ शिशु के, भर--भार से, अलसायाः--आलस्ययुक्त। परिस्फुरितः गर्भः (कर्मधा०), तस्य भरेण अलसायाः, तत्पु०। परिस्फुरित--परि+स्फुर्+क्त। (९) **ज्योत्स्ना०**--चाँदनी से बनी हुई सी, चाँदनी की तरह चमकती हुई। ज्योत्स्ना+मयट्+ङीप्। (१०) **मृदु०**--मृदु--कोमल, बाल--नवीन, मृणालकल्पा--बिस के तुल्य। मृदु बालमृणालम् (कर्मधा०), तस्माद् ईषत् न्यूना। यहाँ पर कुछ कम अर्थ में ईषदसमाप्तौ० (५-३-६७) से कल्प प्रत्यय है। कल्प प्रत्यय का प्रायः तुल्य अर्थ निकलता है। (११) **क्रव्याद्भिः**--हिंसक जन्तुओं ने। क्रव्य--कच्चा मांस, अद्--खाने वाले। क्रव्यम् अदन्ति इति क्रव्यादः, तैः। क्रव्याद्--क्रव्य+अद्+विट् (०)। क्रव्ये च (३-२-६९) से विट् प्रत्यय। (१२) **अङ्ग०**--शरीररूपी लता को। अङ्गमेव लतिका, उपमित कर्मधा०। (१३) **विलुप्ता**--नष्ट कर दी, अर्थात् खा ली। वि+लुप्+क्त+टाप्। (१४) इस श्लोक में तीन लुप्तोपमाएँ हैं। कुरङ्गविलोल० में इव अर्थ है, मृणालकल्पा में इव अर्थ है, अङ्गलतिका में इव अर्थ है। ज्योत्स्ना-मयी इव में इव उत्प्रेक्षासूचक है।

१२०. सीता--आर्यपुत्र, ध्रिये एषा ध्रिये।

[अज्जउत्त, धरामि एसा धरामि।]

सीता--आर्यपुत्र, मैं जीवित हूँ, जीवित हूँ।

१२१. रामः--हा प्रिये जानकि, क्वासि?

राम--हा प्रिय सीता, तुम कहाँ हो?

१२२. सीता--हा धिक् हा धिक्, अन्य इवार्यपुत्रः

प्रमुक्तकण्ठं प्ररुदितो भवति। [हद्धी हद्धी, अण्णो विअ अज्जउत्तो पमुक्ककंठं परुण्णो होदि।]

सीता—हाय धिक्कार है, धिक्कार है। आर्यपुत्र एक साधारण व्यक्ति की तरह गला फाड़-फाड़ कर रो रहे हैं।

१२३ (क) तमसा—वत्से, साम्प्रतिकमेवैतत्। कर्तव्यानि खलु दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि।

पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते ॥२९॥

अन्वय—तटाकस्य पूरोत्पीडे परीवाहः प्रतिक्रिया। शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैः एव धार्यते।

तमसा—हे पुत्री, यह उचित ही है। दुःखितों को अपना दुःख शान्त करना ही चाहिए।

तालाब में जल-प्रवाह की अधिकता होने पर जल को बाहर निकालना ही उसका एकमात्र प्रतीकार है। शोकजन्य क्षोभ में हृदय विलाप के द्वारा ही बचाया जाता है ॥२९॥

संस्कृत-व्याख्या

तटाकस्य—सरोवरस्य, पूरोत्पीडे—पूरस्य जलप्रवाहस्य उत्पीडे आधिक्ये, परीवाहः—जलनिःसारणमेव, प्रतिक्रिया—प्रतीकारः अस्ति। शोकक्षोभे च—शोकजन्यचित्तचाञ्चल्ये च, हृदयं—चित्तम्, प्रलापैः एव—विलापैरेव, धार्यते—रक्ष्यते। अत्र दृष्टान्तोऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) ध्रियें—प्राणों को धारण कर रही हूँ, जीवित हूँ। धृ (तुदादि० आ०)+लट् उ० एक०। (२) अन्य इव—साधारण व्यक्ति की तरह। जिस प्रकार साधारण व्यक्ति धैर्य को छोड़कर गला फाड़-फाड़ कर रोते हैं, उसी प्रकार राम रो रहे हैं। (३) प्रमुक्त०—मुक्त कण्ठ से, गला फाड़-फाड़कर। प्रमुक्तः कण्ठः यस्मिन् तत्, बहु०। कण्ठ शब्द का लक्षणा से कण्ठ का स्वर अर्थ

पाठभेद—१२३ (क). नि० परिवाहः (जल को बाहर निकालना)। नि० प्रलापैरवधार्यते (विलाप से ही जाना जाता है)।

है । (४) प्ररुदितः०—रो रहे हैं । प्र+रुद्+क्त । गत्यर्थाकर्मक० (३-४-७२) से कर्तृवाच्य में क्त । (५) साम्प्रतिकम्—उचित, उपयुक्त । साम्प्रतम् एव साम्प्रतिकम् । साम्प्रत+ठक् (इक), स्वार्थ में ठक् । (६) दुःखितैः—दुःखित व्यक्तियों के द्वारा । दुःखित—दुःख+इतच् (इत) । तदस्य संजातं० (५-२-३६) से युक्त अर्थ में इतच् । (७) दुःख०—दुःख की शान्ति । दुःखस्य निर्वापणानि, तत्पु० । निर्वापण—बुझाना, शान्त करना । निर्+वा+णिच्+ल्युट् । (८) पूरोत्पीडे—पूर—जलप्रवाह की, उत्पीडे—अधिकता होने पर । पूरस्य उत्पीडे, तत्पु० । पूर का अर्थ है जल की वृद्धि या बाढ़ । पूरः स्यादम्भसां वृद्धौ, इति हैमः । उत्पीड—अधिकता या दबाव । उत्+पीड्+घञ् । (९) परीवाहः—जल को बाहर निकालना या बहा देना । परि+वह्+घञ् । घञ् होने पर उपसर्गस्य घञि० (६-३-१२२) से परि के इ को विकल्प से दीर्घ । (१०) प्रतिक्रिया—प्रतीकार, इलाज । तालाब में पानी बहुत बढ़ जाए तो उसको निकालना ही एकमात्र प्रतीकार है । प्रति+कृ+श (अ)+टाप् । (११) शोकक्षोभे—शोकजन्य क्षुब्ध अवस्था में । जब व्यक्ति शोक के कारण व्याकुल होता है, उस समय रो लेने से उसका गुबार निकल जाता है और वह शान्त हो जाता है । शोकेन क्षोभे, तत्पु० । (१२) प्रलापैः०—विलाप या रोने से ही सँभाला जाता है । धार्यते—संभाला जाता है, बचाया जाता है । धृ+णिच्+कर्मवाच्य में लट् । (१३) पूर्वार्ध और उत्तरार्ध में बिम्बप्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्त अलंकार है । तालाब से पानी निकालना और शोक में आँसू निकालना समान कार्य हैं । (१४) इसी भाव का एक श्लोक है—उपार्जितानामर्थानां त्याग एव हि रक्षणम् । तटाकोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम् ।

१२३ (ख). विशेषतो रामभद्रस्य बहुप्रकारकष्टो जीवलोकः ।

इदं विश्वं पाल्यं विधिवदभियुक्तेन मनसा
प्रियाशोको जीवं कुसुममिव घर्मो ग्लपयति ।
स्वयं कृत्वा त्यागं विलपनविनोदोऽप्यसुलभ-
स्तदद्याप्युच्छ्वासो भवति ननु लाभो हि रुदितम् ॥३०॥

पाठभेद—१२३ (ख). मिल. प्रियाशोकं० (प्रिया सीता-संबन्धी शोक को)

अन्वय—अभियुक्तेन मनसा इदं विश्वं विधिवत् पाल्यम्, घर्मः कुसुमम् इव प्रियाशोकः जीवं ग्लपयति । स्वयं त्यागं कृत्वा विलपनविनोदः अपि असुलभः, तत् अद्यापि उच्छ्वासः भवति, ननु रुदितं लाभः हि ।

तमसा—विशेष रूप से रामचन्द्र के लिए यह संसार अनेक प्रकार के कष्टों से युक्त है ।

सावधान मन से इस संसार का विधिपूर्वक पालन करना पड़ता है । जिस प्रकार धूप फूल को उसी प्रकार सीता-विषयक शोक (राम के) जीवन को सुखा रहा है । स्वयं परित्याग करने के कारण विलाप के द्वारा मनोविनोद भी सुलभ नहीं है, फिर भी आजतक (राम) प्राणधारण किए हुए हैं, अतः रोना भी वस्तुतः लाभकारी सिद्ध हुआ है ।।३०।।

संस्कृत-व्याख्या

अभियुक्तेन--अवहितेन सावधानेन वा, मनसा--हृदयेन, इदम्--एतत्, विश्वं--जगत्, पाल्यं--रक्षणीयम् । घर्मः--आतपः, कुसुमम् इव--पुष्पमिव, प्रियाशोकः--सीताविषयकं दुःखम्, जीवं--जीवनम्, ग्लपयति--शोषयति । स्वयम्--आत्मनैव, त्यागं--सीतानिर्वासनम्, कृत्वा--विधाय, विलपनविनोदः--रोदनेन शोकापनयनम्, असुलभः--दुर्लभः, तत्--तथापि, अद्यापि--इदानीमपि, उच्छ्वासः--रामस्य जीवनधारणम्, भवति--संपद्यते, ननु--निश्चयेन, रुदितं रोदनम्, लाभो हि--रामस्य लाभायैव वर्तते । अत्रोपमा परिणामश्चालंकारौ । शिखरिणी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **विशेषतः**—विशेष रूप से । विशेष शब्द से सार्वविभक्तिक तसि (तः) प्रत्यय । (२) **बहु०**—अनेक प्रकार के कष्टों वाला । बहवः प्रकाराः येषां तानि बहुप्रकाराणि (बहु०), कष्टानि यस्मिन् सः, बहु० । (३) **पाल्यम्**—पालन करना चाहिए, पालन करना पड़ता है । पाल्+णिच्+ण्यत् (य) । (४) **विधिवत्**—विधिपूर्वक । विधिम् अर्हति इति विधिवत् । तदर्हम् (५-१-११७) से वति (वत्) प्रत्यय । (५) **अभियुक्तेन०**—सावधान या तल्लीन चित्त से । अभियुक्त--अभि+युज्+क्त । (६) **प्रियाशोकः**—प्रिय सीता-विषयक शोक । सीता के वियोग का दुःख । प्रियायाः शोकः, तत्पु० । (७)

ग्लपयति--ग्लान करता है, सुखाता है। ग्लै+णिच्+लट् प्र० एक०। ग्ला-स्नावनुवमां च (गणसूत्र) से विकल्प से मित् होने से विकल्प से ग्ला को ह्रस्व। ग्लापयति भी होता है। (८) **विलपन०**--रोने के द्वारा मनोविनोद। विलपनेन विनोदः, तत्पु०। (९) **असुलभ०**--दुर्लभ है। न सुलभः, नञ् तत्पु०। सुलभ--सु+लभ्+खल् (अ)। ईषद्दुःसुषु० (३-३-१२६) से खल्। (१०) **रुदितम्**--रोना। रुद्+क्त। नपुंसके० (३-३-११४) से भाव अर्थ में क्त। रोना लाभप्रद सिद्ध हुआ है। रो लेने के कारण ही राम का शोक आँसू के साथ बहुत कुछ बाहर निकल गया और वे जीवित रह सके हैं, अन्यथा शोकावेग के कारण दम घुटने से मृत्यु हो जाती। (११) यहाँ पर कुसुममिव में इव से उपमा है। रोदन राम के लिए हितकर हुआ है, इस प्रकार प्रकृत अर्थ में उपयोगी होने से परिणाम अलंकार है। विषयात्मतयारोप्ये प्रकृतार्थोपयोगिनि। परिणामो भवेत् तुल्यातुल्याधिकरणो द्विधा॥ (सा० द० १०--३४, ३५)।

१२४. (क) रामः--कष्टं भोः, कष्टम्।

दलति हृदयं शोकोद्वेगाद्द्विधा तु न भिद्यते
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्॥३१॥

अन्वय--हृदयं शोकोद्वेगात् दलति, द्विधा तु न भिद्यते। विकलः कायः मोहं वहति, चेतनां न मुञ्चति। अन्तर्दाहः तनूं ज्वलयति, भस्मसात् न करोति। मर्मच्छेदी विधिः प्रहरति, जीवितं न कृन्तति।

राम--ओह, दुःख की बात है, दुःख की बात है।

(मेरा) हृदय शोक की व्याकुलता से फट रहा है, परन्तु दो टुकड़ों में विभक्त नहीं होता। व्याकुल शरीर मूर्छित होता है, परन्तु चेतना को नहीं छोड़ता। आन्तरिक सन्ताप शरीर को जला रहा है, परन्तु भस्मसात् नहीं करता। मर्म-स्थल को बींधने वाला भाग्य प्रहार करता है, परन्तु जीवन को सर्वथा नष्ट नहीं करता॥३१॥

पाठभेद--१२४ (क). गाढोद्वेगं० (अत्यन्त व्याकुलता से युक्त हृदय)।

संस्कृत-व्याख्या

हृदयं--मम चित्तम्, शोको०--दुःखेन व्याकुलतया, दलति--स्फुटति, द्विधा तु--किन्तु द्वयोः खण्डयोः, न--नैव, भिद्यते--विभक्तं भवति। विकलः--शोकेन व्याकुलः, कायः--शरीरम्, मोहं--मूर्च्छाम्, वहति--धारयति, चेतनां--चैतन्यं तु, न मुञ्चति--न त्यजति। अन्तर्दाहः--आन्तरिकः सन्तापः, तनूं--देहम्, ज्वलयति--दहति, भस्मसात्--भस्मीभूताम्, न करोति--न विदधाति। मर्मच्छेदी--मर्मवेधकः, विधिः--दैवम्, प्रहरति--प्रहारं करोति, जीवितं--जीवनं तु, न कृन्तति--न छिनत्ति। अत्र विशेषोक्तिरलंकारः। हरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **दलति**--फट रहा है। (२) **शोकोद्वेगात्**--शोक की व्याकुलता से। शोकस्य उद्वेगात्, तत्पु०। उद्वेग--उद्+विज्+घञ्। (३) **भिद्यते**--फटता है। भिद्+लट् प्र० एक०, कर्मकर्तृवाच्य में लट्। हृदय फट रहा है, पर इसके दो टुकड़े नहीं हो जाते। (४) **न मुञ्चति०**--नहीं छोड़ता है। बेहोशी होती है, पर पूरी चेतना समाप्त नहीं हो जाती। (५) **ज्वलयति**--जलाती है। ज्वल्+णिच्+लट् प्र० एक०। (६) **अन्तर्दाहः**--आन्तरिक सन्ताप। अन्तः दाहः, सुप्सुपा समास। दाह--दह्+घञ्। (७) **भस्मसात्**--भस्मीभूत। भस्मन्+सात्, विभाषा साति० (५-४-५२) से 'पूर्णरूप से' अर्थ में साति (सात्) प्रत्यय। हार्दिक सन्ताप मुझे जलाता है, पर भस्मीभूत नहीं करता। (८) **मर्मच्छेदी**--मर्मस्थान को बींधने वाला। मर्माणि छिनत्ति इति, मर्मन्+छिद्+णिनि, ताच्छील्य अर्थ में णिनि। (९) **कृन्तति**--काटता है। कृत् (६ प०) + लट् प्र० एक०। भाग्य प्रहार करता है, पर मेरा जीवन नष्ट नहीं करता। (१०) इस श्लोक में चारों चरणों में चार विशेषोक्ति अलंकार हैं। कारण के होने पर भी कार्य के अभाव का वर्णन है।

१२४ (ख). रामः--हे भगवन्तः पौरजानपदाः,
न किल भवतां देव्याः स्थानं गृहेऽभिमतं तत-
स्तृणमिव वने शून्ये त्यक्ता न चाप्यनुशोचिता।

पाठभेद--१२४ (ख). नि० खलु (निश्चय से)।

चिरपरिचितास्ते ते भावास्तथा द्रवयन्ति मा-
मिदमशरणैरद्यास्माभिः प्रसीदत रुद्यते ।।३२।।

अन्वय—देव्याः गृहे स्थानं भवतां न अभिमतं किल, ततः शून्ये वने तृणम् इव त्यक्ता, न च अपि अनुशोचिता । चिरपरिचिताः ते ते भावाः मां तथा द्रवयन्ति । अद्य अशरणैः अस्माभिः इदं रुद्यते, प्रसीदत ।

राम—हे नागरिक और ग्रामीण महानुभावो,

देवी सीता का घर में रहना आप लोगों को वस्तुतः पसन्द नहीं था, अतः मैंने निर्जन वन में तिनके के तुल्य उसे छोड़ दिया और उसका शोक भी नहीं किया । चिर-परिचित वे सभी पदार्थ मुझे अत्यन्त द्रवित कर रहे हैं । आज असहाय होकर मैं यह रो रहा हूँ, आप लोग प्रसन्न हों ।।३२।।

संस्कृत-व्याख्या

देव्याः—सीतायाः, गृहे—मम राजभवने, स्थानं—निवासः, भवतां—युष्माकम्, न—नैव, अभिमतम्—अभीष्टम्, किल—निश्चयेन । ततः—तस्मात् कारणात्, शून्ये—निर्जने, वने—अरण्ये, तृणमिव—तुच्छघासवत्, त्यक्ता—उज्झिता, न चापि—नैव च, अनुशोचिता—पश्चात्तापो विहितः । चिरपरिचिताः—बहुकालानुभूताः, ते ते—पूर्वानुभूताः, भावाः—पदार्थाः, मां—रामम्, तथा—तेन प्रकारेण अत्यधिकमित्यर्थः, द्रवयन्ति—सन्तापयन्ति । अद्य—अस्मिन् दिवसे, अशरणैः—असहायैः, अस्माभिः—मया रामेण, इदम्—एतत्, रुद्यते—विलापः क्रियते, प्रसीदत—यूयं प्रसन्नाः भवत । अत्रोपमा विशेषोक्तिश्चालंकारौ । हरिणी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **भगवन्तः**—महानुभावो, महाशयो । भगवत्—भग+मतुप् । (२) **पौर०**—पौर—नगरवासी, जानपदाः—जनपदवासी या ग्रामीण । पौराश्च जानपदाश्च, द्वन्द्व । पौर—पुर्+अण्, जानपद—जनपद+अण् । (३) **भवताम्**—आप लोगों को । अभिमतम् के कारण क्तस्य च० (२-३-६७) से षष्ठी । (४) **अभिमतम्**—अभीष्ट था, पसन्द था । अभि+मन्+क्त । मतिबुद्धि० (३-२-१८८) से वर्तमान अर्थ में क्त । (५) **अनुशोचिता**—

पाठभेद—१२४ (ख). का०, मां—मामक्लव्. परिद्रवयन्ति (वे पदार्थ मुझे अत्यन्त शोकातुर करते हैं) ।

पश्चात्ताप किया। मैंने सीता के बारे में पश्चात्ताप भी नहीं किया। अनु+शुच्+णिच्+क्त+टाप् । (६) **भावाः**--पदार्थ, वस्तुएँ। भाव--भू+घञ् । (७) **द्रवयन्ति**—द्रवित करती हैं। द्रववन्तं कुर्वन्ति इति, द्रववत्+णिच्+लट्। तत्करोति० (गण०) से णिच् और मतुप् (वत्) का लोप। (८) **अशरणैः**--असहाय। अविद्यमानं शरणं येषां तैः, बहु०। (९) **प्रसीदत**—प्रसन्न हों। सीता को घर से निकलवा कर आप लोगों की इच्छा पूरी हुई, इसलिए आप लोग प्रसन्न हों। (१०) इस श्लोक में तृणमिव में उपमा है। परित्यागरूपी कारण के होने पर भी शोक न करना इस कार्यभाव के कारण विशेषोक्ति है।

१२५. वासन्ती--(स्वगतम्) अतिगभीरमापूरणं मन्युभारस्य। (प्रकाशम्) देव, अतिक्रान्ते धैर्यमवलम्ब्यताम्।

वासन्ती--(मन में) शोक के भार की परिपूर्णता अत्यन्त गंभीर है। (प्रकट) महाराज, बीती हुई बात के बारे में धैर्य रखिए।

१२६. रामः--किमुच्यते धैर्यमिति ?

देव्या शून्यस्य जगतो द्वादशः परिवत्सरः।
प्रनष्टमिव नामापि न च रामो न जीवति ॥३३॥

अन्वय—देव्या शून्यस्य जगतः द्वादशः परिवत्सरः। नाम अपि प्रनष्टम् इव, रामः च न जीवति (इति) न।

राम--क्या कहा--धैर्य रखिए ?

देवी सीता से रहित इस संसार का बारहवाँ वर्ष है। सीता का नाम भी मिट-सा गया है और राम जीवित नहीं है, यह बात नहीं है (अर्थात् राम जीवित ही है) ॥३३॥

संस्कृत-व्याख्या

देव्या—सीतया, शून्यस्य—रहितस्य, जगतः—संसारस्य, द्वादशः—द्वादशसंख्याकः, परिवत्सरः--संवत्सरः, अस्ति। नामापि--सीतायाः नामधेयमपि, प्रनष्टम् इव--विलुप्तमिव, रामश्च—दाशरथिश्च, न जीवति—न प्राणधारणं करोति, इति न--एवं नास्ति, अपि तु स जीवत्येव। अत्रोत्प्रेक्षाऽलंकारः। श्लोके वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **आपूरणम्**--पूर्णता, पूरा होना। अतिगभीरम्--अत्यन्त गंभीर है। (२) **मन्यु०**--शोक के भार की। मन्योः भारस्य, तत्पु०। राम पर शोक का पूरा भार है और उसका परिणाम अत्यन्त गंभीर है। (३) **अतिक्रान्ते**--बीती हुई बात के बारे में, अतीत के बारे में। अतिक्रान्त--अति+क्रम्+क्त। (४) **अवलम्ब्यताम्**--धारण कीजिए, रखिए। अव+लम्ब्+लोट् प्र०१, कर्मवाच्य में। बीती हुई बात को भूल जाइए और अब धैर्य रखिए। (५) **किमुच्यते**--क्या कहती हो? बारह वर्ष से धैर्य ही रखा है, अब उसकी पराकाष्ठा हो गई है। (६) **द्वादशः**--बारहवाँ। द्वादशानां पूरणः, द्वादशन्++डट् (अ)। तस्य पूरणे डट् (५-२-४८) से डट् और डित् होने से अन् का लोप। (७) **परिवत्सरः**--वर्ष, साल। (८) **प्रनष्टम्**--लुप्त सा हो गया है। प्र+नश्+क्त। प्रणष्टम् भी बनता है। (९) **न जीवति न**--राम जीवित नहीं है, ऐसी बात नहीं है, अर्थात् राम जीवित ही है। दो निषेधार्थक न स्वीकृति-सूचक हो जाते हैं। 'नञौ द्वौ प्रकृतार्थं गमयतः'। संभाव्यनिषेधनिवर्तने द्वौ प्रतिषेधौ। (वामन--काव्यालंकार० ५-१-९)। (१०) प्रनष्टम् इव म इव क्रिया की उत्प्रेक्षा का सूचक है, अतः क्रियोत्प्रेक्षा है।

१२७. सीता--अपहरामि च मोहितेव एतैरार्यपुत्रस्य प्रियवचनैः। [ओहरामि अ मोहिआ विअ एदेहिं अज्जउत्तस्स पिअवअणेहिं।]

सीता--आर्यपुत्र के इन प्रिय वचनों से मोहित-सी होकर समय बिता रही हूँ।

१२८. तमसा--एवमेव वत्से,
नैताः प्रियतमा वाचः स्नेहार्द्राः शोकदारुणाः।
एतास्ता मधुनो धाराः श्च्योतन्ति सविषास्त्वयि ॥३४॥

अन्वय--एताः स्नेहार्द्राः शोकदारुणाः वाचः प्रियतमाः न। ताः एताः सविषाः मधुनः धाराः त्वयि श्च्योतन्ति।

तमसा--हे पुत्री, ऐसा ही है ।

ये स्नेह से सिक्त और शोक के कारण कठोर (राम की) बातें अत्यधिक प्रिय नहीं हैं, क्योंकि ये विषयुक्त मधु की धाराएँ हैं, जो तुम्हारे ऊपर टपक रही हैं ।।३४।।

संस्कृत-व्याख्या

एताः--इमाः, स्नेहार्द्राः--प्रेमसिक्ताः, शोक०--शोकेन दुःखेन दारुणाः कठोराः, वाचः--रामस्य वचनानि, प्रियतमाः--अत्यधिकं प्रीतिजनकाः, न--नैव सन्ति । यतो हि, ताः--त्वया श्रुताः, एताः--इमा रामस्य वाचः, सविषाः--विषयुक्ताः, मधुनः--क्षौद्रस्य, धाराः--प्रवाहाः, त्वयि--सीताया उपरि, श्च्योतन्ति--क्षरन्ति । अत्र विरोधाभासोऽपह्नुतिश्चालंकारौ । श्लोको वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **अपहरामि**--बिताती हूँ, अर्थात् समय बिता रही हूँ । अप+हृ+लट् उ०१ । (२) **मोहितेव**--मोहित-सी, विमूढ-सी । मोहिता--मोहः संजातः अस्याः सा, मोह+इतच्+टाप् । तारकादित्वात् इतच् । (३) **प्रियवचनैः**--प्रिय वचनों से । प्रियाणि वचनानि तैः, कर्मधा० । (४) **प्रियतमाः**--अत्यधिक प्रिय । ये वचन अत्यन्त प्रिय नहीं हैं, क्योंकि ये प्रसन्नता के साथ ही विषतुल्य मूर्च्छा को भी दे रहे हैं । प्रिय+तमप्+टाप् प्र० बहु० । (५) **स्नेहार्द्राः**--प्रेम से गीले, प्रेम से सिक्त । स्नेहेन आर्द्राः, तत्पु० । (६) **शोक०**--शोक के कारण कठोर या निष्ठुर । शोकेन दारुणाः, तत्पु० । (७) **श्च्योतन्ति**--टपक रही हैं, गिर रही हैं । श्च्युत्+लट् प्र० बहु० । (८) **सविषाः**--विष से युक्त । विषेण सहिताः, बहु० । (९) इस श्लोक में स्नेहार्द्राः और प्रियतमाः न में विरोधाभास है । स्नेहयुक्त होने पर भी प्रिय नहीं हैं । अत्यधिक प्रियता के कारण वे मूर्च्छा के भी जनक हैं । प्रियतम वचनों को प्रियतम नहीं हैं, ऐसा कहने से अपह्नुति अलंकार है । प्रियतम वचनों को सविष मधु की धारा कहा गया है । प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः । (सा० द० १०-३८) ।

१२९. रामः——अयि वासन्ति, मया खलु-

यथा तिरश्चीनमलातशल्यं
प्रत्युप्तमन्तः सविषश्च दन्तः ।
तथैव तीव्रो हृदि शोकशङ्कु-
र्मर्माणि कृन्तन्नपि किं न सोढः ।।३५।।

अन्वय——यथा अन्तः प्रत्युप्तं तिरश्चीनम् अलातशल्यम्, सविषः दन्तः च, तथा एव हृदि तीव्रः शोकशङ्कुः मर्माणि कृन्तन् अपि किं न सोढः ।।

राम——हे वासन्ती, मैंने वस्तुतः——

हृदय में धँसे हुए तिरछे अंगारमय लोहे की कील के समान और विषैले दाँत के सदृश, हृदय में गड़े हुए तीक्ष्ण शोकरूपी कील को, जो मर्मस्थलों को काटता रहा है, क्या मैंने नहीं सहा ? ।।३५।।

संस्कृत-व्याख्या लक्ष्मण, वासन्ती, मुरला, आत्रेयी

यथा——यद्वत्, अन्तः——हृदयस्य मध्ये, प्रत्युप्तं——प्रविष्टम्, तिरश्चीनं——तिर्यग्रूपम्, अलात०——अङ्गारमयं लोहकीलकम्, सविषः——विषसहितः, दन्तः च——दशनश्च, तथैव——तद्वत्, हृदि——हृदये, तीव्रः——तीक्ष्णः, शोकशङ्कुः——शोकरूपं कीलकम्, मर्माणि——मर्मस्थलानि, कृन्तन् अपि——छिन्दन् अपि, किं न सोढः——किं नाहं सोढवान्, अपि तु सोढवानेव । अत्रोपमा रूपकमर्थापत्तिश्चालंकाराः । उपजातिर्वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **तिरश्चीनम्**——तिरछा, टेढ़ा । तिर्यक् एव तिरश्चीनम् । तिर्यञ्च्+ख (ईन) । विभाषाञ्चे० (५-४-८) से स्वार्थ में ख प्रत्यय । (२) **अलात०**——अंगारमय लोहे की कील । अलात जलती हुई लकड़ी को कहते हैं । 'अङ्गारोऽलातमुल्मुकम्' इत्यमरः । अलातरूपं शल्यम्, शाकपार्थिवादिवत् मध्यमपदलोपी समास । जलती हुई कील तिरछी होने के कारण सरलता से नहीं निकलती और दुःख देती है, इसी प्रकार राम के हृदय में शोकरूपी कील धँसी हुई है और दुःख दे रही है । (३) **प्रत्युप्तम्**——गड़ी हुई, धँसी हुई । प्रति+

पाठभेद——१२९. का०, काले——दशः (डंक, दाँत से काटना)

वप्+क्त । (४) **सविषः**--विषैला, विषयुक्त । विषेण सहितः, बहु० । जैसे जहरीला दाँत अन्दर घुस गया हो और विष फैला रहा हो । (५) **शोक०**--शोकरूपी कील । शोक एव शङ्कुः, उपमित समास । (६) **कृन्तन्**--काटता हुआ, बींधता हुआ । कृत्+शतृ प्र० १ (७) **किं न सोढः**--क्या सहन नहीं किया, अर्थात् सहन किया ही । सोढः--सह्+क्त । सहिवहो० (६-३-११२) से सह् के अ को ओ हो जाता है । (८) इस श्लोक में यथा तिरश्चीनम् में यथा से उपमा है । शोकशङ्कुः में रूपक अलंकार है । किं न सोढः में अर्थापत्ति अलंकार है । क्या नहीं सहा ? हाँ सहा, अर्थ निकलता है ।

१३०. सीता--एवमपि मन्दभागिन्यहं या पुनरायासकारिणी आर्यपुत्रस्य । [एवं वि मंदभाइणी अहं जा पुणो आआसआरिणी अज्जउत्तस्स ।]

सीता--मैं ऐसी अभागिनी हूँ कि फिर भी आर्यपुत्र को कष्ट दे रही हूँ ।

१३१. रामः--एवमतिगूढस्तम्भितान्तःकरणस्यापि मम संस्तुतवस्तुदर्शनादद्यायमावेगः । तथा हि--

वेलोल्लोलक्षुभितकरुणोज्जृम्भणस्तम्भनार्थं
यो यो यत्नः कथमपि समाधीयते तं तमन्तः ।
भित्त्वा भित्त्वा प्रसरति बलात्कोऽपि चेतोविकार-
स्तोयस्येवाप्रतिहतरयः सैकतं सेतुमोघः ॥३६॥

अन्वय--वेलोल्लोलक्षुभितकरुणोज्जृम्भणस्तम्भनार्थं यः यः यत्नः कथम् अपि समाधीयते, तं तं कोऽपि चेतोविकारः अप्रतिहतरयः तोयस्य ओघः सैकतं सेतुम् इव बलात् अन्तः भित्वा भित्वा प्रसरति ।।

राम--इस प्रकार अत्यन्त गुप्त रूप से अन्तःकरण को रोकने पर भी पूर्व-परिचित वस्तुओं के दर्शन से मुझे आज यह चित्त-विकार हो रहा है ।

पाठभेद--१३१. काले--लोलोल्लोल० (अतितीव्रता से युक्त), का० काले--मया धीयते (मेरे द्वारा धारण किया जाता है) ।

मर्यादा को लाँघने वाले अतएव क्षुब्ध शोक की वृद्धि को रोकने के लिए जो भी यत्न किसी प्रकार किया जाता है, उसको मेरा अवर्णनीय चित्त-विकार उसी प्रकार बलपूर्वक अन्दर से छिन्न-भिन्न करके फैल जाता है, जैसे अबाधगति से जाने वाला जल-प्रवाह रेत के पुल को तोड़कर फैल जाता है ।।३६।।

संस्कृत-व्याख्या

वेलो०——वेलायाः मर्यादायाः उल्लोलः बहिर्भूतः क्षुभितः क्षोभयुक्तः करुणः शोकः तस्य उज्जृम्भणस्य अभिवृद्धेः स्तम्भनार्थं निरोधनार्थम्, यः यः——योऽपि, यत्नः——प्रयासः, कथमपि——केनापि प्रकारेण, समाधीयते——विधीयते, तं तं——सर्वं प्रयत्नम्, कोऽपि——अवर्णनीयः, चेतोविकारः——मनोविकारः, अप्रतिहतरयः——निर्बाधगतिः, तोयस्य——जलस्य, ओघः——प्रवाहः, सैकतं——बालुकानिर्मितम्, सेतुमिव——आलिम् इव, बलात्——बलपूर्वकम्, अन्तः——मध्ये, भित्त्वा भित्त्वा——पुनः पुनः छित्वा, प्रसरति——विस्तारम् आप्नोति । अत्रोपमाऽलंकरः । मन्दाक्रान्ता वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **आयास०**——दुःख देने वाली । आयासं करोति इति सा, उपपद समास । आयास+कृ+णिनि+ङीप् । (२) **अतिगूढ०**——अतिगूढ——अत्यन्त गुप्त रूप से, स्तम्भित——रोका है, अन्तःकरणस्य——मन जिसने ऐसे मुझे । अतिगूढं यथा स्यात् तथा स्तम्भितम् अन्तःकरणं येन तस्य, बहु० । अतिगूढ——अति+गुह्+क्त । स्तम्भित——स्तम्भ्+क्त । (३) **संस्तुत०**——संस्तुत——पूर्वपरिचित, वस्तु——पदार्थ के, दर्शनात्——देखने से । संस्तुतानि वस्तूनि (कर्मधा०), तेषां दर्शनात्, तत्पु० । संस्तुत——सम्+स्तु+क्त । (४) **आवेगः**——उद्वेग, चित्त-विकार । आ+विज्+घञ् । (५) **वेलो०**——वेला——मर्यादा, किनारे को, उल्लोल——लाँघने वाले, अतएव, क्षुभित——क्षोभ से युक्त, करुण——करुणरस या शोक के, उज्जृम्भण——विस्तार को, स्तम्भनार्थम्——रोकने के लिए । वेलायाः उल्लोलः (तत्पु०), स चासौ क्षुभितः करुणः (कर्मधा०), तस्य उज्जृम्भणस्य स्तम्भनार्थम्, तत्पु० । क्षुभित——क्षुभ्+क्त । उज्जृम्भण——उत्+जृम्भ्+ल्युट् । स्तम्भन——स्तम्भ्+ल्युट् । (६) **समाधीयते**——किया गया है, अपनाया जाता है । सम्+आ+धा+कर्मवाच्य लट् प्र० १ । (७) **भित्त्वा०**——तोड़-फोड़कर, छिन्न-भिन्न करके । भिद्+क्त्वा । वीप्सा अर्थ में द्विरुक्ति ।

(८) **प्रसरति**--फैलता है, विस्तृत होता है। प्र+सृ+लट् प्र० १। (९) **चेतोविकारः**--मन का विकार। चेतसः विकारः, तत्पु०। (१०) **अप्रतिहत०**--अप्रतिहत--बेरोकटोक, निर्बाध, रयः--वेग वाला। अप्रतिहतः रयः यस्य सः, बहु०। (११) **सैकतम्**--रेतीला, बालू का। सिकतानाम् अयम्, सिकता+अण्=सैकतः, तम्। सिकताशर्कराभ्यां च (५-२-१०४) से अण्। सिकता शब्द बहुवचन में आता है। आपः सुमनसो वर्षा अप्सरः सिकताः समाः। एते स्त्रियां बहुत्वे स्युरेकत्वेऽप्युत्तरद्वयम्। जिस प्रकार रेत का पुल बाढ़ के वेग को नहीं रोक सकता, उसी प्रकार मेरे शोक को कोई भी उपाय नहीं रोक पाता है। (१२) इस श्लोक में तोयस्येव में उपमा है।

१३२. सीता--आर्यपुत्रस्यैतेन दुर्वारदारुणारम्भेण दुःखसंयोगेन परिमुषितनिजदुःखं प्रमुक्तजीवितं मे हृदयं स्फुटति। [अज्जउत्तस्स एदिणा दुव्वारदारुणारंभेण दुःखसंजोएण परिमुसिअणिअदुक्खं पमुक्कजीविअं मे हिअअं फुडइ।]

सीता--आर्यपुत्र के इस अनिवार्य एवं कठोर आरम्भ वाले दुःख के संयोग से अपने दुःख को भुलाकर और निर्जीव सा होकर मेरा हृदय फट रहा है।

१३३. वासन्ती--(स्वगतम्) कष्टमत्यासक्तो देवः। तदाक्षिपामि तावत्। (प्रकाशम्) चिरपरिचितानिदानीं जनस्थानभागानवलोकनेन मानयतु देवः।

वासन्ती--(मन में) खेद की बात है कि महाराज अत्यधिक शोक में मग्न हो गए हैं। अच्छा, इनका ध्यान दूसरी ओर ले जाती हूँ। (प्रकट) महाराज अब इन चिरपरिचित जनस्थान (दण्डकारण्य) के प्रदेशों को दृष्टिपात करके संमानित कीजिए।

१३४. रामः--एवमस्तु।

(इत्युत्थाय परिक्रामति)।

राम--ऐसा ही हो।

(यह कहकर उठकर घूमते हैं।)

१३५. सीता--संदीपन एव दुःखस्य प्रियसख्या विनोदनोपाय इति तर्कयामि। [संदीवण एव्व दुक्खस्स पिअसहीए विणोदणोवाओ त्ति तक्केमि।]

सीता--मेरा अनुमान है कि प्रियसखी (वासन्ती) का (आर्यपुत्र के) मनोविनोद का उपाय दुःख को प्रदीप्त करने वाला ही है।

टिप्पणी

(१) **दुर्वार०**--दुर्वार--कठिनाई से हटाने योग्य और, दारुण--कठोर, आरम्भेण--आरम्भ वाले। दुर्वारः चासौ दारुणः (विशेषण कर्मधा०), आरम्भः यस्य तेन, बहु०। दुर्वार--दुर्+वृ+णिच्+ खल् (अ)। (२) **दुःख०**-- दुःख के संयोग या आगमन से। दुःखस्य संयोगेन, तत्पु०। (३) **परिमुषित०**-- जिसने अपना दुःख भुला दिया है, जिसका अपना दुःख खो गया है। परिमुषितं निजं दुःखं यस्य तत्, बहु०। परिमुषित--परि+मुष्+क्त। (४) **प्रमुक्त०**-- जिसने अपना जीवन छोड़ दिया है। प्रमुक्तं जीवितं येन तत्, बहु०। प्रमुक्त-- प्र+मुच्+क्त। (५) **अत्यासक्तः**--मग्न हैं, लग्न हैं। यहाँ पर भाव है कि राम शोक या कष्ट में पड़े हैं। अति+आ+सञ्ज्+क्त। (६) **आक्षिपामि**-- खींचती हूँ, अर्थात् इनका ध्यान दूसरी ओर ले जाती हूँ। आ+क्षिप्+लट् उ०१। (७) **चिर०**--चिरकाल से परिचित। चिरं परिचितान्, तत्पु०। (८) **जनस्थान०**--जनस्थान या दण्डकारण्य के प्रदेशों को। जनस्थानस्य भागान्, तत्पु०। (९) **मानयतु**--संमानित करें, आदृत करें। मन्+णिच्+ लोट् प्र० एक०। (१०) **सन्दीपनः**--उत्तेजित या प्रदीप्त करने वाला। सम्+दीप्+णिच्+ल्यु (अन)। (११) **विनोदनो०**--मनोविनोद का उपाय। विनोदनस्य उपायः, तत्पु०। मेरा अनुमान है कि इससे राम का दुःख और बढ़ेगा।

१३६. वासन्ती--देव देव,

अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः

सा हंसैः कृतकौतुका चिरमभूद् गोदावरीसैकते।

आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया
कातर्यादरविन्दकुड्मलनिभो मुग्धः प्रणामाञ्जलिः॥३७॥

अन्वय—अस्मिन् एव लतागृहे त्वं तन्मार्गदत्तेक्षणः अभवः। सा हंसैः कृतकौतुका गोदावरीसैकते चिरम् अभूत्। आयान्त्या तया त्वां परिदुर्मनायितम् इव वीक्ष्य कातर्यात् अरविन्दकुड्मलनिभः मुग्धः प्रणामाञ्जलिः बद्धः।

वासन्ती—महाराज, महाराज,

इसी लतागृह में आप उसके मार्ग की ओर दृष्टि लगाए हुए बैठे थे और उसे हंसों के साथ क्रीडा करते हुए गोदावरी के किनारे विलम्ब हो गया था। उसने आने पर आपको कुछ खिन्न-चित्त सा देखकर घबड़ाहट से कमल की कली के सदृश सुन्दर प्रणामाञ्जलि बाँध ली थी॥३७॥

संस्कृत-व्याख्या

अस्मिन्नेव—पुरोवर्तमाने एव, लतागृहे—निकुञ्जे, त्वं—रामः, तन्मार्ग०—तस्याः सीतायाः मार्गे प्रत्यागमनवर्त्मनि दत्ते निहिते ईक्षणे चक्षुषी येन सः, अभवः—आसीः। सा—सीता, हंसैः—मरालैः, कृत०—कृतं विहितं कौतुकं क्रीडनं यया सा, गोदावरी०—गोदावर्याः तटे, चिरं—बहुकालं यावत्, अभूत्—स्थिता। आयान्त्या—लतागृहम् आगच्छन्त्या, तया—सीतया, त्वां—रामम्, परिदुर्मनायितम् इव—खिन्नमिव, वीक्ष्य—निरीक्ष्य, कातर्यात्—त्रासात्, अरविन्द०—पद्ममुकुलतुल्यः, मुग्धः—मनोहरः, प्रणामाञ्जलिः—नमस्कार-सूचकः करपुटः, बद्धः—विरचितः। अत्रोपमोत्प्रेक्षा चालंकारौ। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **लतागृहे**—लता-कुंज में। लतायाः गृहे, तत्पु०। (२) **तन्मार्ग०**—उस सीता के मार्ग की ओर जिसने दृष्टि लगाई हुई है। तस्याः मार्गे दत्ते ईक्षणे येन सः, बहु०। दत्त—दा+क्त। ईक्षण—ईक्ष्+ल्युट् (अन)। (३) **कृतकौतुका**—जिसने हंसों के साथ खेल किया है। कृतं कौतुकं यया सा, बहु०। (४) **गोदावरी०**—गोदावरी के रेतीले किनारे पर। गोदावर्याः सैकते, तत्पु०।

सैकतम्—सिकतामय प्रदेश, रेतीली भूमि। सिकताः सन्ति अस्मिन्, सिकता+अण्। सिकताशर्कराभ्यां च (५—२—१०४) से अण् (अ)। (५) आयान्त्या—आती हुई ने। आ+या+शतृ (अत्)+ङीप् (ई)=आयान्ती+तृ० एक०। स्त्रीलिंग में उगितश्च (४—१—६) से ङीप् और आच्छी० (७—१—८०) से विकल्प से नुम् (न्)। आयान्ती और आयाती दोनों रूप बनते हैं। (६) **परिदुर्मनायितम्**—खिन्नचित्त, अप्रसन्न-मन। अपरिदुर्मनाः परिदुर्मनाः भवति, परिदुर्मनायते। परि+दुर्+मनस्+क्यङ (य)। भृशादिभ्यो० (३—१—१२) से च्वि-प्रत्यय के अर्थ में क्यङ (य) प्रत्यय और मनस् के स् का लोप, अकृत्० (७—४—२५) से अ को दीर्घ आ। परिदुर्मनाय+क्त (त)=परिदुर्मनायित। (७) **वीक्ष्य**—देखकर। वि+ईक्ष्+ल्यप् (य)। (८) **कातर्यात्**—कातरता से, व्याकुलता से। कातरस्य भावः कातर्यम्, तस्मात्, कातर+ष्यञ् (य)। गुणवचन० (५—१—१२४) से ष्यञ्। कातर—ईषत् तरति, कु+तर। ईषत् अर्थ में कु और कु को का आदेश। कातर—जो अपने कार्य को थोड़ा पूरा कर पाता है। (९) **अरविन्द०**—अरविन्द—कमल, कुड्मल—कली, निभः—सदृश, कमल की कली के तुल्य। अरविन्दस्य कुड्मलेन तुल्यः, तत्पु०। तुल्य अर्थ में निभ के साथ समास। यह अस्वपद-विग्रह नित्य तत्पुरुष समास है। (१०) **मुग्धः**—सुन्दर। मुह्+क्त। (११) **प्रणामाञ्जलिः**—नमस्कार की अंजलि। प्रणामस्य अञ्जलिः, तत्पु०। (१२) इस श्लोक में अरविन्द० में निभ शब्द सादृश्यसूचक है, अतः उपमा अलंकार है। परिदुर्मनायितम् इव में इव शब्द उत्प्रेक्षा-सूचक है, अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है। यह श्लोक दशरूपक में प्रणय-मान का उदाहरण दिया गया है। प्रणयमान का लक्षण है—तत्र प्रणयमानः स्यात् कोपावसितयोर्द्वयोः (दश० ४—५८)।

१३७ सीता—दारुणासि वासन्ति, दारुणासि। या एतैर्हृदयमर्मोद्घाटितशल्यसंघट्टनैः पुनः पुनरपि मां मन्दभागिनीमार्यपुत्रं च स्मरयसि। [दालुणासि वासंति,

दालुणासि । जा एदेहिं हिअअमम्मुघाडिअसल्लसंघट्टणेहिं पुणो पुणो वि मं मन्दभाइणिं अज्जउत्तं अ सुमरावेसि ।]

सीता--कठोर हो, हे वासन्ती, तुम कठोर हो, जो हृदय के मर्मस्थल से निकाले हुए बाणों को फिर वहीं चुभाने से बार-बार मुझ मन्दभागिनी को और आर्यपुत्र को एक दूसरे की याद दिला रही हो ।

१३८. रामः--अयि चण्डि जानकि, इतस्ततो दृश्यसे इव, नानुकम्पसे ।

हा हा देवि! स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरलज्वालमन्तर्ज्वलामि ।
सीदन्नन्धे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि ।।३८।।

(इति मूर्च्छति ।)

अन्वय--हा हा देवि, हृदयं स्फुटति, देहबन्धः ध्वंसते, जगत् शून्यं मन्ये, अन्तः अविरलज्वालं ज्वलामि । सीदन् विधुरः अन्तरात्मा अन्धे तमसि मज्जति इव । मोहः विष्वक् स्थगयति । मन्दभाग्यः कथं करोमि ।

राम--हे क्रोध करने वाली सीता, तुम इधर-उधर दिखाई सी दे रही हो, पर मुझपर दया नहीं करती हो ।

हाय हाय, हे देवी सीता, मेरा हृदय फट रहा है। मेरे शरीर के जोड़ ढीले पड़ रहे हैं। संसार सूना प्रतीत हो रहा है। मैं अन्दर ही अन्दर अनवरत ज्वाला से जल रहा हूँ। खिन्न और व्याकुल मेरी अन्तरात्मा घोर अन्धकार में मानो डूब रही है। मूर्च्छा मुझे चारों ओर से घेर रही है। मैं अभागा क्या करूँ? ।।३८।।

(यह कहकर मूर्छित हो जाते हैं।)

पाठभेद--१३८. काले--जगदविरत० (संसार, निरन्तर ज्वालायुक्त)

संस्कृत-व्याख्या

हा हा—दुःखातिशयबोधनार्थं द्विरुक्तिः, देवि—सीते, हृदयं—वक्षःस्थलम्, स्फुटति—विदीर्यते। देहबन्धः——शरीरावयवसंधिः, ध्वंसते——शिथिलो भवति। जगत्—संसारम्, शून्यं——जीवरहितम्, मन्ये—अवगच्छामि। अन्तः—हृदये, अविरल०——अविरलाः अविच्छिन्नाः ज्वालाः तापाः यस्मिन् तत् तथा, ज्वलामि——दग्धो भवामि। सीदन्——खिन्नः सन्, विधुरः——व्याकुलः, अन्तरात्मा—जीवात्मा, अन्धे तमसि——घोरान्धकारे, मज्ज्जति इव—निमग्न इव भवति। मोहः——मूर्च्छा, विष्वक्——सर्वतः, स्थगयति—आवृणोति। मन्दभाग्यः——अभाग्यः, कथं——केन प्रकारेण, करोमि——कुर्याम्। किं मया कर्तव्यमिति नावगच्छामि। अत्रोत्प्रेक्षाऽलंकारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **दारुणासि**—कठोर हो। वासन्ती राम को पुरानी घटनाएँ सुनाकर दुःखित कर रही है, अतः सीता उसे कठोर चित्तवाली कहती है। (२) **हृदय०**——हृदय के मर्मस्थल से निकाले हुए बाणों को फिर वहीं चुभाने से। हृदयस्य मर्मणः उद्घाटितस्य शल्यस्य संघट्टनैः, तत्पु०। (३) **स्मरयसि**—याद दिला रही हो। स्मृ+णिच्+लट् म० एक०। ऋ को वृद्धि। स्मृ धातु घटादिगण में है, अतः घटादयो मितः (गणसूत्र) से मित् होने से मितां ह्रस्वः (६—४——९२) से स्मार् के आ को ह्रस्व। (४) **दृश्यस इव**——दिखाई सी पड़ रही हो। सीता अदृश्यरूप में होने से दिखाई सी पड़ रही है, पर प्रकट नहीं हो रही है। (५) **स्फुटति**——फट रहा है। (६) **ध्वंसते**—नष्ट हो रहा है। शरीर के जोड़ ढीले पड़ रहे हैं। (७) **देहबन्धः**—शरीर के जोड़। देहस्य बन्धः, तत्पु०। (८) **अविरल०**—निरन्तर ज्वाला से। अविरलाः ज्वालाः यस्मिन् तत् यथा स्यात्तथा, बहु०, क्रियाविशेषण। (९) **सीदन्**—दुःखित होता हुआ। सद्+शतृ+प्र० एक०। सद् को सीद् आदेश। (१०) **अन्धे०**—घोर अन्धकार में। (११) **विधुरः**——व्याकुल। प्रिया से हीन होने से विधुर है, अतः व्याकुल है। (१२) **मज्जति इव**—डूब सा रहा है। मज्जति——मस्ज्+लट् प्र० १। स् को ज् होता है। (१३) **विष्वक्**——

चारों ओर से। विषु सर्वतः अञ्चति गच्छति इति, विषु+अञ्च्+क्विन् (०) =विष्वञ्च्+प्र० एक०। (१४) स्थगयति--घेर रहा है, आच्छादित कर रहा है। स्थग+णिच्+लट् प्र० १। (१५) इस श्लोक में मज्जति इव में इव के द्वारा उत्प्रेक्षा अलंकार है। यह श्लोक उत्तररामचरित के उत्तम श्लोकों में से एक है। श्लोक ३--३१ में राम का कथन था कि मेरा हृदय फटता नहीं है, परन्तु इस श्लोक में हृदय के फटने का वर्णन है। इसमें करुण रस चरम-सीमा को पहुँच गया है। राम का करुण रस क्रमशः बढ़ता जा रहा है।

१३९. सीता--हा धिक् हा धिक्, पुनरपि मूढ आर्यपुत्रः। [हद्धी हद्धी, पुणोवि मुद्धो अज्जउत्तो।]

सीता--हाय धिक्कार है! हाय धिक्कार है! आर्यपुत्र फिर मूर्छित हो गए हैं।

१४०. वासन्ती--देव, समाश्वसिहि समाश्वसिहि।

वासन्ती--महाराज, धैर्य रखिए, धैर्य रखिए।

१४१. सीता--आर्यपुत्र, मां मन्दभागिनीमुद्दिश्य सकलजीवलोकमाङ्गलिकजन्मलाभस्य ते वारंवारं संशयितजीवितदारुणो दशापरिणाम इति हा हतास्मि। [अज्जउत्त, मं मंदभाइणिं उद्दिसिअ सअलजीवलोअमंगलिअजम्मलाहस्स दे वारंवारं संसइदजीविअदालुणो दशापरिणामो त्ति हा हदम्हि।]

(इति मूर्च्छति।)

सीता--आर्यपुत्र, आपका जन्म-ग्रहण समस्त संसार के लिए मंगलकारी है, परन्तु मुझ अभागिनी के कारण बार-बार आपका जीवन संशय (खतरे) में पड़ने से भयंकर परिस्थिति में है, अतएव मैं मृत-प्राय सी हो रही हूँ।

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है)

१४२. तमसा––वत्से, समाश्वसिहि समाश्वसिहि। पुनस्ते पाणिस्पर्शो रामभद्रस्य जीवनोपायः।

तमसा––पुत्री, धैर्य रखो, धैर्य रखो। फिर तुम्हारे हाथ का स्पर्श रामभद्र को जीवित करने का उपाय है।

१४३. वासन्ती––कथमद्यापि नोच्छ्वसिति? हा प्रियसखि सीते, क्वासि? सम्भावयात्मनो जीवितेश्वरम्।
(सीता ससंभ्रमुपसृत्य हृदि ललाटे च स्पृशति।)

वासन्ती––क्यों अभी तक होश में नहीं आ रहे हैं? हाय प्रियसखी सीता, कहाँ हो? अपने प्राणनाथ को होश में लाओ।
(सीता घबड़ाहट के साथ पास जाकर राम के हृदय और मस्तक को छूती है।)

१४४. वासन्ती––दिष्ट्या प्रत्यापन्नचेतनो रामभद्रः।

वासन्ती—भाग्य से रामभद्र पुनः होश में आ गए हैं।

टिप्पणी

(१) **मूढः**—मूर्च्छित। मुह्+क्त। (२) **समाश्वसिहि**—धैर्य रखो। सम्+आ+श्वस्+लोट् म० १। (३) **उद्दिश्य**—लक्ष्य करके, ध्यान में रख कर। उत्+दिश्+ल्यप्। (४) **सफल०**—सारे संसार के लिए जिसका जन्म-ग्रहण मंगलकारी है। सकलजीवलोकस्य माङ्गलिकः जन्म-लाभः यस्य तस्य, बहु०। (५) **संशयित०**––जीवन संशय में पड़ने के कारण भयंकर। संशयितं जीवितं यस्मिन् सः, संशयितजीवनः (बहु०), अतः दारुणः, कर्म०। (६) **दशापरिणामः**—परिस्थिति, अवस्था, दशा का फल। दशायाः परिणामः, तत्पु०। (७) **पाणिस्पर्शः**—हाथ से छूना। पाणिना स्पर्शः, तत्पु०। (८) **जीवनोपायः**––जीवित करने का उपाय। जीवनस्य उपायः, तत्पु०। (९) **न उच्छ्वसिति**—साँस नहीं ले रहे हैं, होश में नहीं आ रहे हैं। उत्+श्वस्+लट् प्र० १। (१०) **संभावय**—सम्मानित करो। सम्+भू+णिच्+लोट् म० १।

(११) **जीवितेश्वरम्**—जीवन के स्वामी को, प्राणनाथ को। जीवितस्य ईश्वरम्, तत्पु०। (१२) **संसभ्रमम्**—घबड़ाहट के साथ। संभ्रमेण सहितं यथा स्यात् तथा, क्रियाविशेषण अव्ययी०। (१३) **उपसृत्य**—पास जाकर। उप+सृ+ल्यप्। बीच में त् का आगम। (१४) **दिष्ट्या**—भाग्य से। (१५) **प्रत्यापन्न०**—प्रत्यापन्न—पुनः प्राप्त हो गई है, चेतनः—चेतना जिसको। प्रत्यापन्ना चेतना यस्य सः, बहु०। प्रत्यापन्न—प्रति+आ+पद्+क्त। रदाभ्यां० से त को न और द् को न्।

१४५. रामः—

आलिम्पन्नमृतमयैरिव प्रलेपै-
रन्तर्वा बहिरपि वा शरीरधातून्।
संस्पर्शः पुनरपि जीवयन्नकस्मा-
दानन्दादपरमिवादधाति मोहम्॥३६॥

(सानन्दं निमीलिताक्ष एव) सखि वासन्ति, दिष्ट्या वर्धसे।

अन्वय—अमृतमयैः प्रलेपैः अन्तः वा बहिः अपि वा शरीरधातून् आलिम्पन् इव संस्पर्शः पुनरपि जीवयन् अकस्मात् आनन्दात् अपरं मोहम् आदधाति इव।

राम—अमृतमय लेपों से अन्दर और बाहर शरीर के धातुओं (त्वचा, मांस आदि) को लिप्त करता हुआ सा यह मधुर स्पर्श पुनः जीवन देता हुआ सहसा आनन्द देने के कारण मानो अन्य प्रकार की (सुखद) मूर्च्छा को उत्पन्न कर रहा है ॥३६॥

(आनन्द के साथ आँखें बन्द किए हुए ही) सखी वासन्ती, तुम भाग्य से बढ़ रही हो (अर्थात् तुम्हें बधाई है)।

पाठभेद—१४५. काले—अपरविधं तनोति (अन्य प्रकार की मूर्च्छा को करता है)।

संस्कृत-व्याख्या

अमतमयैः—सुधापरिपूर्णैः, प्रलेपैः—लेपनद्रव्यैः, अन्तः वा—अन्तःस्थितान्, बहिरपि वा—वहिर्विद्यमानान् च, शरीरधातून्—शरीरोपादानानि त्वङ्मांसादीनि, आलिम्पन् इव—लिप्तान् कुर्वन् इव, संस्पर्शः—मधुरः स्पर्शः, पुनरपि—भूयोऽपि, जीवयन्—चेतनां प्रापयन्, अकस्मात्—सहसा, आनन्दात् —सुखप्रदानात्, अपरम्—अन्यप्रकारकं सुखप्रदमित्यर्थः, मोहं—मूर्च्छाम्, आदधाति इव—उत्पादयति इव। अत्रोत्प्रेक्षा विरोधाभासश्चालंकारौ। प्रहर्षिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **आलिम्पन् इव**—लिप्त करता हुआ सा। सीता के हाथ के स्पर्श से जो सुख उत्पन्न हुआ है, वह मानो अमृतयुक्त लेप है और वह मेरे शरीर के अन्दर और बाहर के सभी तत्त्वों को पूर्णतया लिप्त कर रहा है। आ+लिप्+शतृ+प्र० १। शे मुचादीनाम् (७-१-५९) से नुम् (न्), न् को म् होता है। (२) **अमृत०**—अमृत से परिपूर्ण। तत्प्रकृतवचने मयट् (५-४-२१) से आधिक्य अर्थ में मयट् (मय)। अमृतस्वरूपैः—अमृतमयैः। (३) **प्रलेपैः**—लेप के द्रव्यों से। प्रलेप का अर्थ है—उबटन या लेप करने की वस्तुएँ। (४) **वा**—और। यहाँ पर वा च (और) के अर्थ में है। (५) **शरीर-धातून्**—शरीर के धातुओं को। शरीरस्य धातून्, तत्पु०। शरीर में ७ धातु हैं—रक्त, मांस, मेदस्, मज्जा, अस्थि, शुक्र और रस। ये सातों धातु शरीर के धारक तत्त्व हैं। यहाँ पर बाहरी धातु का अर्थ त्वचा है और अन्दर की ये सात धातुएँ हैं। (६) **संस्पर्शः**—सुन्दर स्पर्श, मधुर स्पर्श। शोभनः स्पर्शः संस्पर्शः, कर्मधा०। (७) **जीवयन्**—जीवित करता हुआ। जीव्+णिच्+शतृ प्र० १। (८) **आनन्दात्**—आनन्द देने के कारण। हेतु अर्थ में पंचमी। (९) **अपरम्**—अन्य, अन्य प्रकार की। यह मूर्च्छा दुःख से उत्पन्न न होकर सुख से उत्पन्न होने के कारण अन्य प्रकार की है। (१०) **आदधाति**—रखती है, उत्पन्न करती है। आ+धा+लट् प्र० १। (११) **मोहम्**—मूर्च्छा को। मोह—मुह्+घञ्। (१२) इस श्लोक में आलिम्पन इव और

आदधाति इव में इव के द्वारा क्रियोत्प्रेक्षा है । जीवयन् मोहं तनोति, में विरोधाभास है । इसी भाव के अन्य श्लोक हैं—(क) तव स्पर्शे स्पर्शे० (उत्तर० १-३५), सन्तापजां ····आनन्दनेन जडतां पुनरातनोति (उत्तर० ३-१२) । (१३) निमीलिताक्षः—आँख बन्द किए हुए ही । निमीलिते अक्षिणी यस्य सः, बहु० । निमीलिताक्षि+षच् (अ) । बहुव्रीहौ० (५-४-११३) से समासान्त षच् प्रत्यय । अक्षि के इ का लोप । (१४) दिष्ट्या०—यह मुहावरा है । इसका अर्थ है—वधाई है । राम का अभिप्राय है कि सीता जीवित है, अतः हे वासन्ती, तुम्हें वधाई है ।

१४६. वासन्ती—देव, कथमिव ?

वासन्ती—महाराज, यह कैसे ?

१४७. रामः—सखि, किमन्यत् ? पुनरपि प्राप्ता जानकी ।

राम—सखी, और क्या ? सीता फिर प्राप्त हो गई है ।

१४८. वासन्ती—अयि देव रामभद्र, क्व सा ?

वासन्ती—हे महाराज रामभद्र, वह कहाँ है ?

१४९. रामः—(स्पर्शसुखमभिनीय) पश्य नन्वियं पुरत एव ।

राम—(स्पर्श के सुख का अभिनय करके) देखो, यह सामने ही है ।

१५०. वासन्ती—अयि देव रामभद्र, किमिति मर्मच्छेददारुणैरतिप्रलापैः प्रियसखीविपत्तिदुःखदग्धामपि मां पुनर्मन्दभाग्यां दहसि ?

वासन्ती—हे महाराज रामभद्र, मर्मस्थलों को बींधने के कारण कठोर अपने इन निरर्थक वचनों से प्रियसखी (सीता) की विपत्ति के दुःख से जली हुई मुझ मन्दभागिनी को आप फिर क्यों जला रहे हैं ?

१५१. सीता—अपसर्तुमिच्छामि। एष पुनः चिर-प्रणयसंभारसौम्यशीतलेन आर्यपुत्रस्पर्शेन दीर्घदारुणमपि झटिति संतापमुल्लाघयता वज्रलेपोपनद्ध इव पर्यस्तव्यापार आसञ्जित इव मेऽग्रहस्तः। [ओसरिदुं इच्छम्मि। एसो उण चिरप्पणअसंभारसोम्मसीअलेण अज्जउत्तप्परिसेण दीहदारुणं वि झत्ति संदावं उल्लाहअंतेण वज्जलेहोवणद्धो विअ परिअद्धवावारो आसंजिओ विअ मे अग्गहत्थो।]

सीता—मैं यहाँ से हटना चाहती हूँ। किन्तु दीर्घकालीन प्रेम-समूह के कारण सुखद और शीतल तथा लम्बे और कठोर सन्ताप को तुरन्त कम करने वाले आर्यपुत्र के स्पर्श से मेरे हाथ का अग्रभाग वज्रलेप से जुड़े हुए के तुल्य चेष्टा-रहित हो रहा है और चिपक सा गया है।

टिप्पणी

(१) **कथमिव**—यह कैसे? अर्थात् बधाई की क्या बात है? (२) **किमन्यत्**—और क्या? अर्थात् तुम्हारी सखी मिल गई है, अतः तुम्हें बधाई दे रहा हूँ। (३) **क्व सा**—सीता कहाँ है? अर्थात् सीता मिल गई है तो दिखाइए कहाँ है? (४) **स्पर्श०**—स्पर्श के सुख का अभिनय करके। राम का कथन है कि सीता मेरे सामने खड़ी है और मुझे छू रही है। अभिनीय—अभिनय करके। अभि+नी+ल्यप्। (५) **मर्म०**—मर्मस्थलों को बींधने के कारण कठोर। अथवा, मर्मस्थलों को बींधने के तुल्य कठोर। मर्मणः छेदेन दारुणैः तत्पु०। (६) **अतिप्रलापैः**—बहुत अधिक निरर्थक बातों से। (७) **प्रियसखी०**—प्रियसखी सीता की विपत्ति के दुःख से जली हुई। प्रियसख्याः विपत्तिः, तया यद् दुःखं, तेन दग्धाम्, तत्पु०। दग्ध—दह्+क्त। (८) **अपसर्तुम्०**—हटना चाहती हूँ। सीता का अभिप्राय है कि राम मेरी उपस्थिति से क्रुद्ध न हो जाएँ। अप+सृ+तुमुन्। (९) **चिर०**—चिरप्रणयसंभार—चिरकालीन प्रेम-समूह के कारण, सौम्य—सुखद, शीतलेन—और शीतल। चिरप्रणयस्य

संभारेण सौम्यः शीतलश्च, तेन, तत्पु० । (१०) **आर्यपुत्र०**—आर्यपुत्र के स्पर्श से । आर्यपुत्रस्य स्पर्शेन, तत्पु० । (११) **दीर्घदारुणम्०**—लंबे और कठोर सन्ताप को। दीर्घः चासौ दारुणः, तम्, कर्मधा० । (१२) **उल्लाघयता**—कम या हल्का करने वाले । उत्+लघु+णिच्+शतृ तृ० १ । (१३) **वज्र-लेपो०**—वज्रलेप से जुड़े हुए के तुल्य । वज्रलेपेन उपनद्धः, तत्पु० । उपनद्ध—उप+नह्+क्त । वज्रलेप एक प्रकार का सीमेन्ट होता था, जो वस्तुओं को पक्का जोड़ने के काम आता था। सीता का कथन है कि मेरा हाथ राम के शरीर पर इसी प्रकार जुड़ गया है, जैसे वज्रलेप से जोड़ दिया गया हो। (१४) **पर्यस्त०**—चेष्टारहित, निष्क्रिय । पर्यस्त—रहित, निर्गत, व्यापार—क्रिया । पर्यस्तः व्यापारः यस्य सः, बहु० । पर्यस्त—परि+अस्+क्त । (१५) **आसञ्जित इव**—जुड़ा हुआ सा, चिपका हुआ सा । आ+सञ्ज्+णिच्+क्त । (१६) **अग्रहस्तः**—हाथ का अगला भाग ।

१५२. रामः—सखि, कुतः प्रलापः ?
गृहीतो यः पूर्वं परिणयविधौ कङ्कणधरः
सुधासूतेः पादैरमृतशिशिरैर्यः परिचितः ।

अन्वय—पूर्वं परिणयविधौ कङ्कणधरः यः गृहीतः, सुधासूतेः अमृत-शिशिरैः पादैः यः परिचितः ।

राम—सखी, यह प्रलाप कैसे है ?

मैंने पहले विवाह-संस्कार के समय चन्द्रमा की अमृततुल्य शीतल किरणों से परिचित (अर्थात् चन्द्रकिरणों के तुल्य आह्लादक) तथा कंकणधारी जिस हाथ को मैंने पकड़ा था—

१५३. सीता—आर्यपुत्र, स एवेदानीमसि त्वम् ।
[अज्जउत्त, सो एव्व दाणिं सि तुमं ।]

सीता—आर्यपुत्र, आप अब भी वही हैं ।

पाठभेद—१५२. काले—चिरं स्वेच्छास्पर्शैर० (स्वच्छन्दता से प्राप्य स्पर्शों से जो हाथ चिरकाल तक०) ।

१५४. रामः—

स एवायं तस्यास्तदितरकरौपम्यसुभगो
मया लब्धः पाणिर्ललितलवलीकन्दलनिभः ॥४०॥
(इति गृह्णाति।)

अन्वय—ललितलवलीकन्दलनिभः तदितरकरौपम्यसुभगः स एव अयं तस्याः पाणिः मया लब्धः।

राम—सुकुमार लवलीलता के अंकुर के तुल्य और उस (सीता) के दूसरे हाथ की उपमा से सुशोभित वही यह सीता का हाथ मैंने पाया है॥४०॥
(ऐसा कहकर सीता का हाथ पकड़ते हैं)

संस्कृत-व्याख्या

पूर्वं—पुरा, परिणयविधौ—विवाहसंस्कारकाले, कङ्कणधरः—विवाह-सूत्रधारकः सुवर्णकङ्कणधारको वा, यः—हस्तः, गृहीतः—धृतः, सुधासूतेः—सुधांशोः, अमृतशिशिरैः—सुधाशीतलैः, पादैः—किरणैः, यः—हस्तः, परिचितः—विशेषेण परिज्ञातः, चन्द्रकिरणगुणसमावेशात् तद्वद् आह्लादक आसीदित्यर्थः।

ललित०—ललितं सुकुमारं यत् लवलीकन्दलं लवलीलतानवाङ्कुरं तेन सदृशः, तदितर०—तस्मात् गृहीतात् हस्तात् इतरः अन्यः करः हस्तः तेन यद् औपम्यं सादृश्यं तेन सुभगः मनोहरः, स एव अयं—स एव पूर्वं धृतः, तस्याः—सीतायाः, पाणिः—करः, मया—रामेण, लब्धः—प्राप्तः। अत्र श्लेष उपमा चालंकारौ। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **कुतः प्रलापः**—यह प्रलाप कैसे है? अर्थात् यह बकवाद नहीं, अपितु सच्ची बात है। (२) **गृहीतः**—पकड़ा था। ग्रह्+क्त। इट् और इ

पाठभेद—१५४. का० काले—तुहिननिकरौपम्य० (हिमसमूह के तुल्य०)

को दीर्घ। (३) **परिणय०**—विवाह-संस्कार में। परिणयस्य विधौ, तत्पु०। परिणयः—परि+नी+अच् (अ)। एरच् (३-३-५६) से अच् प्रत्यय। (४) **कङ्कणधरः**—कंकण को धारण करने वाला। कंकण के दो अर्थ हैं—(क) विवाह का मांगलिक धागा, जिसको कंगन कहते हैं, (ख) सोने का कंकण आभूषण। दोनों ही अर्थ यहाँ पर हो सकते हैं। कंकणस्य धरः, तत्पु०। धरतीति धरः, धृ+अच्। पचाद्यच्। (५) **सुधासूतेः**—चन्द्रमा के। सुधायाः सूतिः यस्मात् तस्य, बहु०। जिससे अमृत की उत्पत्ति होती है। (६) **पादैः**—किरणों से। पाद का अर्थ किरण भी है। पादा रश्म्यङ्घ्रितुर्यांशाः, इत्यमरः। (७) **अमृत०**—अमृत के तुल्य शीतल या सन्तापहारक। अमृतवत् शिशिरैः, उपमान तत्पु०। (८) **परिचितः**—परिचित। यहाँ अभिप्राय है कि चन्द्रमा की किरणों के तुल्य गुणों वाला था, अर्थात् आह्लादक था। परि+चि+क्त। (९) **स एव०**—आप भी वही हैं। इस वाक्य के दो अर्थ हो सकते हैं। (क) सीता का कथन है कि क्या आप अब भी वही हैं? अर्थात् क्या आप अब भी मुझसे वैसा ही प्रेम करते हैं। (ख) आप अब भी वही हैं, अर्थात् आपका हाथ अब भी चन्द्र-किरणों के तुल्य आह्लादक और सन्तापहारक है। (१०) **तदितर०**—तदितर—उस हाथ से भिन्न, कर—हाथ की, औपम्य—समानता के कारण, सुभगः—मनोहर। तस्मात् इतरः तदितरः (तत्पु०), तदितरः करः (कर्मधा०), तेन यत् औपम्यं तेन सुभगः, तत्पु०। औपम्यम्—उपमाया भावः, उपमा+ष्यञ् (य)। भाव अर्थ में ष्यञ्। (११) **ललित०**—ललित—सुकुमार या सुन्दर, लवली—'लवली लता के, कन्दल—नवीन अंकुर के, निभः—सदृश। ललितं यत् लवलीकन्दलं (कर्मधा०), तेन सदृशः, नित्य तत्पु०। सदृश अर्थ में निभ के साथ समास। जैसे—अरविन्दकुड्मलनिभः (३-३७)। (१२) इस श्लोक में पूर्वार्ध में अर्थश्लेष है। सीता पूर्वार्ध का अर्थ राम के प्रति लगाती है। कङ्कण शब्द में शब्दश्लेष है। तदितर० में औपम्य शब्द से और ललित० में निभ शब्द से उपमा होने से उपमा अलंकार है।

१५५. सीता—हा धिक् हा धिक्, आर्यपुत्रस्पर्शमोहि-

तायाः प्रमादो ये संवृत्तः। [हद्धी हद्धी, अज्जउत्तप्परिसमोहिदाए पमादो मे संवुत्तो।]

सीता--हाय धिक्कार है, धिक्कार है! आर्यपुत्र के स्पर्श से मोहित हो जाने के कारण मुझसे त्रुटि हो गई है।

१५६. रामः--सखि वासन्ति, आनन्दमीलितः प्रियास्पर्शसाध्वसेन परवानस्मि। तत्त्वमपि धारय माम्।

राम--सखी वासन्ती, मेरी आँखें आनन्द से बन्द हो गई हैं और प्रिया (सीता) के स्पर्श-जन्य विक्षोभ से मैं पराधीन हो गया हूँ। अब तुम भी मुझे पकड़ो (गिरने से बचाओ)।

१५७. वासन्ती--कष्टमुन्माद एव।
(सीता ससंभ्रमं हस्तमाक्षिप्यापसर्पति।)

वासन्ती--खेद की बात है कि यह उन्माद (उन्मत्तता) ही है।
(सीता जल्दी से हाथ खींच कर वहाँ से हट जाती है।)

१५८. रामः--हा धिक्, प्रमादः,--

करपल्लवः स तस्याः सहसैव जडो जडात्परिभ्रष्टः।
परिकम्पिनः प्रकम्पी करान्मम स्विद्यतः स्विद्यन् ॥४१॥

अन्वय—जडः प्रकम्पी स्विद्यन् तस्याः स करपल्लवः जडात् परिकम्पिनः स्विद्यतः मम करात् सहसा एव परिभ्रष्टः।

राम--हाय धिक्कार है! भूल हो गई।

स्तब्ध (संज्ञाहीन), काँपता हुआ और पसीने से युक्त उस (सीता) का पल्लवसदृश वह हाथ स्तब्ध, काँपते हुए और पसीने से युक्त मेरे हाथ से सहसा छूट गया ॥४१॥

संस्कृत-व्याख्या

जडः—स्तब्धः, संज्ञाहीन इत्यर्थः, प्रकम्पी—कम्पमानः, स्विद्यन्—स्वेदयुक्तः, तस्याः—सीतायाः, सः—पूर्वं गृहीतः, करपल्लवः—किसलयतुल्यो हस्तः, जडात्—स्तब्धात्, परिकम्पिनः—कम्पमानात्, स्विद्यतः—स्वेदयुक्तात्, मम—रामस्य, करात्—हस्तात्, सहसा एव—अतर्कित एव, परिभ्रष्टः—च्युतः। अत्र काव्यलिङ्गमुपमा चालंकारौ। आर्या छन्दः।

टिप्पणी

(१) **आर्यपुत्र०**—आर्यपुत्र के स्पर्श से मोहित होने के कारण। राम के स्पर्श के कारण सीता प्रेमविभोर हो गई और मोहित हो जाने के कारण राम ने उसका हाथ पकड़ लिया। आर्यपुत्रस्य स्पर्शेन मोहितायाः, तत्पु०। मोहित—मुह्+णिच्+क्त। (२) **प्रमादः०**—मुझसे प्रमाद हो गया, भूल हो गई। प्रमादः—प्र+मद्+घञ् (अ)। संवृत्तः—हो गया, सम्+वृत्+क्त। (३) **आनन्द०**—आनन्द से जिसकी आँखें बन्द हो गई हैं। आनन्देन मीलितः, तत्पु०। (४) **प्रिया०**—सीता के स्पर्श से उत्पन्न विक्षोभ या घबड़ाहट से। साध्वस का अर्थ भय है, परन्तु यहाँ पर घबड़ाहट, बेचैनी या उद्वेग भाव है। भीतिर्भीः साध्वसं भयम्, इत्यमरः। साध्वस—साधु अस्यते मनः अनेन, साधु+अस्+अच्। जिसके द्वारा मन अत्यन्त व्याकुल किया जाता है। (५) **परवान्०**—पराधीन हूँ। मैं विक्षोभ के वश में हूँ। (६) **उन्मादः०**—उन्मत्तता ही है, अर्थात् राम को वस्तुतः मतिविभ्रम हो गया है, अतः वे ऐसा कह रहे हैं। (७) **करपल्लवः**—किसलय के तुल्य हाथ। करः पल्लव इव, उपमित कर्मधा०। (८) **जडः**—स्तब्ध, निश्चेष्ट, संज्ञाहीन। सीता का हाथ राम के स्पर्श के कारण संज्ञाहीन हो गया था। जो स्थिति सीता के हाथ की थी, वही राम के हाथ की भी थी। दोनों के तीन समान विशेषण हैं। (क) जडात्०—दोनों के हाथ स्तब्ध या संज्ञाहीन थे। (ख) परिकम्पिनः०—दोनों के हाथ काँप रहे थे। (ग) स्विद्यतः०—दोनों के हाथ पसीने से युक्त थे। (९) **परिभ्रष्टः**—छूट गया। परि+भ्रंश्+क्त। (१०) **परिकम्पिनः**—काँपते हुए। परि+कम्प्+णिनि+पं० १। (११) **प्रकम्पी**—काँपता हुआ।

प्र+कम्प्+णिनि+प्र० १। (१२) स्विद्यतः--पसीने से युक्त। स्विद्+शतृ+पं० १। (१३) स्विद्यन्--पसीने से युक्त। स्विद्+शतृ+प्र०१। (१४) इस श्लोक में हाथ छूटने के प्रति जडता, परिकम्पिता और स्वेद-युक्तता हेतु हैं, अतः काव्यलिंग अलंकार है। करपल्लवः में लुप्तोपमा है। इस श्लोक में विप्रलम्भ शृंगार रस है। सीता और राम दोनों में पारस्परिक स्पर्श के कारण जडता, प्रकम्प और स्वेद इन सात्त्विक भावों का वर्णन है। सात्त्विक भाव आठ हैं--स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः। वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः।। (सा० दर्पण ३-१३५, १३६)। यहाँ पर शृंगाररस प्रधान करुण रस का पोषक है।

१५९. सीता--हा धिक् हा धिक्, अद्याप्यनुबद्धबहुघर्णमानवेदनं न संस्थापयाम्यात्मानम्। [हद्धी हद्धी, अज्जवि अणुबद्धबहुघुम्मंतवेअणं ण संठावेमि अत्ताणं।]

सीता--हाय धिक्कार है, धिक्कार है! निरन्तर विद्यमान, अत्यधिक और क्षोभजनक वेदना से युक्त अपने आप को मैं अभी तक नहीं संभाल पा रही हूँ।

१६० तमसा--(सस्नेहकौतुकस्मितं निर्वर्ण्य)

सस्वेदरोमाञ्चितकम्पिताङ्गी
जाता प्रियस्पर्शसुखेन वत्सा।
मरुन्नवाम्भःपरिधूतसिक्ता
कदम्बयष्टिः स्फुटकोरकेव।।४२।।

अन्वय--वत्सा प्रियस्पर्शसुखेन मरुन्नवाम्भःपरिधूतसिक्ता स्फुटकोरका कदम्बयष्टिः इव सस्वेदरोमाञ्चितकम्पिताङ्गी जाता।

तमसा--(स्नेह, कौतूहल और मुस्कराहट के साथ देखकर)--
पुत्री सीता प्रियतम के स्पर्श के सुख के कारण इसी प्रकार स्वेद, रोमांच

पाठभेद--१६०. का० काले--प्रविधूतसिक्ता (कम्पित और सिक्त)।

और कम्पन-युक्त अंगों वाली हो रही है, जैसे हवा से कम्पित और नवीन वर्षा-जल से सिक्त तथा खिली हुई कलियों के युक्त कदम्ब की डाल हो ।।४२।।

संस्कृत-व्याख्या

वत्सा—पुत्री सीता, प्रिय०—प्रियस्य रामस्य स्पर्शस्य अङ्गसंपर्कस्य सुखेन आनन्देन, मरु०—मरुता पवनेन नवाम्भसा नूतनवृष्टिजलेन च क्रमशः परिधूता प्रकम्पिता सिक्ता आर्द्रीकृता च, स्फुटकोरका—विकसितकलिका, कदम्बयष्टिः इव—कदम्बवृक्षशाखेव, सस्वेद०—सस्वेदानि घर्मयुक्तानि रोमाञ्चितानि पुलकितानि कम्पितानि कम्पयुक्तानि अङ्गानि शरीरावयवा यस्याः सा तादृशी, जाता—अभवत्। अत्रोपमा यथासंख्यं चालंकारौ। उपजातिर्वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अनुबद्ध०**—अनुबद्ध—निरन्तर विद्यमान, बहु—अत्यधिक, घूर्णमान—कँपाने वाली, क्षोभजनक, वेदनम्—वेदना वाली । अनुबद्धा बह्वी घूर्णमाना वेदना यस्य तम्, बहु० । अनुबद्ध—अनु+बन्ध्+क्त । घूर्णमान—घूर्ण्+लट्, शानच् । सीता का कथन है कि मेरी वेदना निरन्तर विद्यमान है, अत्यधिक है और मुझे कँपा रही है, अतः मेरा हृदय क्षुब्ध है। (२) **न संस्थापयामि**—नहीं संभाल पा रही हूँ । सम्+स्था+णिच्+लट् उ० १ । (३) **सस्नेह०**—प्रेम, कौतूहल और मुस्कराहट के साथ। स्नेहश्च कौतुकं च स्मितं च—स्नेहकौतुकस्मितानि (द्वन्द्व०), तैः सहितं यथा स्यात् तथा, बहु० । (४) **निर्वर्ण्य**—देखकर। निर्+वर्ण्+णिच्+ल्यप्। (५) **सस्वेद०**—सस्वेद—पसीने से युक्त, रोमाञ्चित—रोमांच से युक्त, कम्पिताङ्गी—कम्पन से युक्त अंगों वाली। सस्वेदानि रोमाञ्चितानि कम्पितानि अङ्गानि यस्याः सा, बहु० । सस्वेदानि—स्वेदेन सहितानि, बहु० । रोमाञ्चितानि—रोमाञ्चाः संजाताः अस्य इति रोमाञ्चितम्, तानि । रोमाञ्च+इतच्, तदस्य संजातं० (५-२-३६) से इतच् (इत)। (६) **प्रिय०**—प्रियतम राम के स्पर्श के सुख से। प्रियस्य स्पर्शः (तत्पु०), तस्य सुखेन, तत्पु० । (७) **मरुत्०**—वायु से, परिधूत—कम्पित और नवाम्भः—नवीन वर्षा के जल से, सिक्ता—सींची हुई। मरुता नवाम्भसा च यथाक्रमं परिधूता सिक्ता च, तत्पु० । परिधूत—

परि+धू+क्त। सिक्त—सिच्+क्त। इसमें यथासंख्य अलंकार होने से मरुत् का परिधूत के साथ सम्बन्ध है और नवाम्भः का सिक्त के साथ। (८) **कदम्ब०** —कदम्ब की डाल। कदम्बस्य यष्टिः, तत्पु०। (९) **स्फुट०**—खिली हुई कलियों से युक्त। स्फुटाः कोरकाः यस्याः सा, बहु०। कलिका कोरकः पुमान्, इत्यमरः। (१०) इस श्लोक में इव के द्वारा उपमा अलंकार है। मरुत्० में यथासंख्य अलंकार है। मरुत् का परिधूत और नवाम्भः का सिक्त के साथ सम्बन्ध है। इस श्लोक में सीता के तीन सात्त्विक भावों का वर्णन है—स्वेद, रोमांच और कम्प। इस श्लोक में सुन्दर उपमा है। सीता के शरीर की कदम्ब की डाल से तुलना की गई है। सीता के स्वेद की नवाम्भः से, रोमाञ्च की कली से और कम्प की मरुत्-परिधूत से तुलना की गई है।

१६१. सीता--(स्वगतम्) अवशेनैतेनात्मना लज्जापितास्मि भगवत्या तमसया। किमिति किलैषा मंस्यत एष परित्याग एषोऽभिषङ्ग इति। [अवसेन एदेण अत्ताणएण लज्जाविदम्हि भअवदीए तमसाए। किं ति किल एसा मण्णिस्सदि एसो परिच्चाओ एसो अहिसंगे त्ति।]

सीता--(मन में) पराधीन मेरी इस आत्मा ने मुझे भगवती तमसा से (बहुत) लज्जित कराया है। यह क्या सोचेंगी--'यह परित्याग और यह आसक्ति ?'

१६२. रामः--(सर्वतोऽवलोक्य) हा, कथं नास्त्येव ? नन्वकरुणे वैदेहि !

राम--(चारों ओर देखकर) हाय, यह कैसे? (सीता) है ही नहीं। हे निष्ठुर सीता,

१६३. सीता--अकरुणास्मि यैवंविधं त्वां पश्यन्त्येव जीवामि। [अकरुणाम्हि जा एव्वंविहं तुमं पेक्खंदी एवं जीवेमि।]

सीता--मैं निष्ठुर हूँ, जो आपको इस अवस्था में देखती हुई भी जीवित हूँ।

१६४. रामः--क्वासि प्रिये, देवि, प्रसीद प्रसीद। न मामेवंविधं परित्यक्तुमर्हसि।

राम--हे प्रिय सीता, कहाँ हो? हे देवी, मुझ पर प्रसन्न हो, प्रसन्न हो। इस स्थिति में विद्यमान मुझे छोड़ना, तुम्हारे लिए उचित नहीं है।

१६५. सीता--अयि आर्यपुत्र, विप्रतीपमिव। [अयि अज्जउत्त, विप्पदीवं विअ।]

सीता--हे आर्यपुत्र, यह आप उल्टी ही बात कह रहे हैं।

१६६. वासन्ती--देव, प्रसीद प्रसीद। स्वेनैव लोकोत्तरेण धैर्येण संस्तम्भयातिभूमिं गतमात्मानम्। कुत्र मे प्रियसखी?

वासन्ती--महाराज, आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। (शोक की) पराकाष्ठा को प्राप्त अपने आप को आप अपने ही असाधारण धैर्य से संभालिए। मेरी प्रिय सखी (सीता) यहाँ कहाँ है?

१६७. रामः--व्यक्तं नास्त्येव। कथमन्यथा वासन्त्यपि तां न पश्येत्? अपि खलु स्वप्न एष स्यात्? न चास्मि सुप्तः। कुतो रामस्य निद्रा? सर्वथापि स एवैष भगवाननेकवारपरिकल्पितो विप्रलम्भः पुनः पुनरनुबध्नाति माम्।

राम--वस्तुतः (सीता यहाँ) नहीं है। नहीं तो वासन्ती भी उसे क्यों नहीं देख पाती? तो क्या यह स्वप्न हो सकता है? मैं सोया हुआ भी नहीं हूँ। राम को नींद कहाँ? निश्चय ही शक्तिशाली और अनेक बार विचार में आया हुआ वही यह भ्रम बार-बार मेरा पीछा कर रहा है।

१६८. सीता--मयैव दारुणया विप्रलब्ध आर्यपुत्रः।
[मए एव्व दारुणाए विप्पलद्धो अज्जउत्तो।]

सीता--मुझ निष्ठुर ने ही आर्यपुत्र को धोखा दिया है।

टिप्पणी

(१) **अवशेन०**--मैं आर्यपुत्र को देखकर परवश हो गई हूँ और अपने भावों को रोक नहीं पा रही हूँ, अतः भगवती तमसा ने मुझे लज्जित कर दिया है। अवशेन—पराधीन। न वशः, तेन, तत्पु०। लज्जापिता—लज्जित की गई। लज्जा+णिच्+क्त+टाप्। लज्जां प्रापिता, प्रातिपदिकाद् धात्वर्थे० (वा०) से लज्जा शब्द से नामधातु में णिच्। (२) **किमिति०**--तमसा क्या सोचेगी कि सीता परित्याग के बाद भी ऐसी आसक्ति दिखा रही है। (३) **विप्रतीपमिव**—यह विपरीत ही बात कह रहे हैं, अर्थात् मैंने आपका परित्याग नहीं किया है, अपि तु आपने मुझे छोड़ा है। अतः आपका कथन उल्टा ही है। विशेषेण प्रतीपं विप्रतीपम्, तत्पु०। (४) **लोकोत्तरेण**—असाधारण, अलौकिक। लोकेषु उत्तरं श्रेष्ठं तेन, अथवा—लोकाद् उत्तरेण, तत्पु०। (५) **संस्तम्भय**—संभालो, रोको। सम्+स्तम्भ्+णिच्+लोट् म० १। (६) **अतिभूमिम्०** —पराकाष्ठा को प्राप्त, अर्थात् शोक की चरमसीमा को प्राप्त। (७) **व्यक्तं०**--वस्तुतः सीता यहाँ नहीं है, अन्यथा वासन्ती उसे अवश्य देखती। मुझे नींद आती ही नहीं है, अतः स्वप्न का भी प्रश्न नहीं उठता है। (८) **अनेक०**—अनेक वार कल्पना या चिन्तन में आया हुआ। अनेकवारं परिकल्पितः, तत्पु०। (९) **विप्रलम्भः**--भ्रम, धोखा। वि+प्र+लभ्+घञ्। (१०) **अनुबध्नाति**—पीछा कर रहा है। अनु+बन्ध्+लट् प्र०१। (११) **विप्रलब्धः**—मुझ सीता ने ही राम को धोखा दिया है। वि+प्र+लभ्+क्त।

१६९. वासन्ती--देव, पश्य पश्य--
पौलस्त्यस्य जटायुषा विघटितः कार्ष्णायसोऽयं रथ-
स्ते चैते पुरतः पिशाचवदनाः कङ्कालशेषाः खराः।

खड्गच्छिन्नजटायुपक्षतिरितः सीतां चलन्तीं वह-
न्नन्तर्व्यापृतविद्युदम्बुद इव द्यामभ्युदस्थादरिः ॥४३॥

अन्वय—जटायुषा विघटितः अयं पौलस्त्यस्य कार्ष्णायसः रथः, एते च ते पुरतः पिशाचवदनाः कङ्कालशेषाः खराः, खड्गच्छिन्नजटायुपक्षतिः अरिः चलन्तीं सीतां वहन् अन्तर्व्यापृतविद्युत् अम्बुद इव इतः द्याम् अभ्युदस्थात्।

वासन्ती—महाराज, देखिए, देखिए।

जटायु-द्वारा तोड़ा हुआ यह रावण का लोहे का रथ है और ये सामने राक्षसों के तुल्य मुँह वाले और अस्थिमात्रशेष खच्चर हैं। तलवार से जटायु के पंखों को काटकर शत्रु (रावण) छटपटाती हुई सीता को लेकर अन्दर चमकती हुई बिजली से युक्त बादल के तुल्य यहाँ से आकाश में उड़ गया था ॥४३॥

संस्कृत-व्याख्या

जटायुषा—जटायुनामकगृध्रेण, विघटितः—ध्वंसितः, अयम्—एषः, पौलस्त्यस्य—रावणस्य, कार्ष्णायसः—लौहविशेषनिर्मितः, रथः—स्यन्दनः। एते च ते—दृश्यमानाश्चेमे, पुरतः—अग्रतः, पिशाच०—राक्षसवद् मुखधारिणः, कङ्काल०—अस्थिमात्रावशेषाः, खराः—अश्वतराः सन्ति। खड्ग०—खड्गेन असिना छिन्ने निकृत्ते जटायोः जटायुगृध्रस्य पक्षती पक्षमूले येन सः, अरिः—शत्रुरूपो रावणः, चलन्तीं—मोक्षार्थं प्रयतमानाम्, सीतां—जानकीम्, वहन्—नयन्, अन्त०—अन्तः मध्ये व्यापृता चलन्ती विद्युत् तडित् यस्य सः, अम्बुद इव—घन इव, इतः—अस्मात् स्थानात्, द्याम्—आकाशम्, अभ्युदस्थात्—उत्पतितः। अत्रोपमाऽलंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **पौलस्त्यस्य**—रावण का। रावण पुलस्त्य का पौत्र था। पुलस्त्य सप्तर्षियों में एक थे और ब्रह्मा के पुत्र थे। पुलस्त्य का पुत्र विश्रवस् (विश्रवाः) था और विश्रवस् के पुत्र रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण थे।

पाठभेद—१६६. काले—व्याकुल० (व्याकुल)।

(२) **जटायुषा**---जटायु नामक गृध्र के द्वारा। जटायु के लिए दो शब्द हैं—जटायुस् और जटायु। प्रथम पंक्ति में जटायुस् शब्द का प्रयोग है और तृतीय पंक्ति में जटायु का। (३) **विघटितः**---तोड़ा हुआ। वि+घट्+क्त। (४) **कार्ष्णायसः**---उत्तम काले लोहे का बना हुआ। कृष्णम् अयः---कृष्णायसम्। कृष्ण+अयस्+टच् (अ)। अनोऽश्मायः० (५-४-९४) से समासान्त टच् प्रत्यय। कृष्णायसस्य विकारः---कार्ष्णायसः। कृष्णायस+अण्, विकार अर्थ में अण्। (५) **पिशाच०**---राक्षसों के तुल्य मुँह वाले। पिशाचानाम् इव वदनानि येषां ते, बहु०। पिशाच---पिशितम् अश्नाति इति पिशाचः, पिशित+अश्+अण्। पृषोदरादि गण में होने से पिशित को पिश और अश् को अच्। पिशित (कच्चा मांस) को अश् (खाने वाला)। (६) **कङ्काल०**---जिनका अस्थिमात्र शेष रहा है। कङ्कालाः शेषाः येषां ते, बहु०। कंकाल---अस्थिपंजर। (७) **खराः**---खच्चर। साधारणतया खर का अर्थ गधा है। (८) **खड्ग०**---जिसने तलवार से जटायु के पंखों को काटा है। खड्गेन छिन्ने जटायोः पक्षती येन सः, बहु०। पक्षति—पंख की जड़। पक्षस्य मूलं—पक्षतिः। पक्षात् तिः (५-२-२५) से मूल अर्थ में पक्ष से ति प्रत्यय। छिन्न—छिद्+क्त। (९) **चलन्तीम्**—हिलती हुई, अपनी रक्षा के लिए छटपटाती हुई। चल्+शतृ+ङीप् द्वि० एक०। (१०) **वहन्**—ले जाता हुआ। वह्+शतृ प्र०१। (११) **अन्त०**—जिसके अन्दर बिजली चमक रही है। अन्तः व्यापृता विद्युत् यस्य सः, बहु०। व्यापृत—चमकती हुई, चलती हुई, वि+आ+पृ+क्त। छटपटाती हुई सीता को लिए हुए रावण ऐसा प्रतीत होता था, जैसे बादल के अन्दर बिजली चमक रही हो। (१२) **द्याम्**---आकाश में। द्यो शब्द का द्वितीया एक० का रूप है। (१३) **अभ्युदस्थात्**---उठा, उड़ गया था। अभि+उत्+स्था+लुङ प्र० १। (१४) अम्बुद इव में इव के द्वारा उपमा है।

१७०. सीता---(सभयम्) आर्यपुत्र, तातो व्यापाद्यते। तस्मात्परित्रायस्व परित्रायस्व। अहमप्यपह्रिये। [अज्जउत्त,

तादो वावादीअदि। ता परित्ताहि परित्ताहि। अहं वि अवहरिज्जामि।]

सीता--(भय के साथ) आर्यपुत्र, तात (जटायु) की हत्या की जा रही है। अतः बचाइए, बचाइए। मेरा भी अपहरण किया जा रहा है।

१७१. रामः--(सवेगमुत्थाय) आः पाप तातप्राण-सीतापहारिन् लङ्कापते, क्व यास्यसि ?

राम--(वेग के साथ उठकर) अरे पापी, पिता (जटायु) के प्राण और सीता का अपहरण करने वाले रावण, तू कहाँ जाएगा ?

१७२. वासन्ती--अयि देव राक्षसकुलप्रलयधूमकेतो, किमद्यापि ते मन्युविषयः ?

वासन्ती--हे महाराज, राक्षस-कुल के विनाश के लिए धूमकेतु, क्या अब भी आपके क्रोध का विषय (कोई पापी) है ?

१७३. सीता--अहो, उद्भ्रान्तास्मि। [अम्महे, उब्भत्तम्हि।]

सीता--अहो, मैं बहुत घबड़ा गई हूँ।

टिप्पणी

(१) **व्यापाद्यते**--मारा जा रहा है। वि+आ+पद्+णिच्+कर्मवाच्य लट् प्र० १। तात शब्द पूज्य जटायु के लिए है। (२) **अपह्रिये**--हरी जा रही हूँ, मेरा अपहरण किया जा रहा है। अप+हृ+कर्मवाच्य लट् उ० १। रावण और जटायु के युद्ध का उल्लेख होते ही सीता अपने आपको भूल गई और उसने समझा कि मेरा अपहरण हो रहा है और जटायु की हत्या हो रही है। (३) **तातप्राण०**--तात जटायु के प्राण और सीता के अपहरण करने वाले। तातस्य प्राणान् सीतां च अपहरति इति, तात०+हृ+णिनि+सं०। तच्छील अर्थ में णिनि। (४) **राक्षस०**--राक्षसों के कुल के विनाश के लिए धूमकेतु।

धूमकेतु पुच्छल तारा है। यह किसी अनिष्ट या विनाश का सूचक है। राक्षसानां कुलस्य प्रलयाय धूमकेतुः तत्संबुद्धिः, तत्पु०। राम राक्षस-वंश के विध्वंसक हैं। (५) **मन्युविषयः**--क्रोध का विषय। क्या राम के क्रोध के लिए कोई और चीज शेष रह गई है ? सपरिवार रावण का वध हो ही चुका है। मन्योः विषयः, तत्पु०। (६) **उद्भ्रान्ता०**--मैं घबड़ा गई हूँ। उद्+भ्रम्+क्त+टाप्। मैं भी राम के तुल्य अपने होश में नहीं हूँ।

१७४. रामः--अन्य एवायमधुना विपर्ययो वर्तते।

उपायानां भावादविरतविनोदव्यतिकरै-
र्विमर्दैर्वीराणां जगति जनितात्यद्भुतरसः।
वियोगो मुग्धाक्ष्याः स खलु रिपुघातावधिरभू-
त्कटुस्तूष्णीं सह्यो निरवधिरयं तु प्रविलयः॥४४॥

अन्वय—उपायानां भावात् अविरतविनोदव्यतिकरैः वीराणां विमर्दैः जगति जनितात्यद्भुतरसः मुग्धाक्ष्याः स वियोगः खलु रिपुघातावधिः अभूत्। कटुः तूष्णीं सह्यः अयं प्रविलयः तु निरवधिः।

राम--अब यह दूसरा ही परिवर्तन उपस्थित हो गया है।

उपायों के होने से निरन्तर मनोविनोद के साधन-स्वरूप (सुग्रीव आदि) वीरों के युद्धों से संसार में अत्यधिक अद्भुत रस को उत्पन्न करने वाला सुनयना सीता का वह पूर्व वियोग वस्तुतः शत्रु रावणादि के वध तक ही रहने वाला था, किन्तु कठोर और चुपचाप सहने योग्य यह वियोग तो असीम है॥४४॥

संस्कृत-व्याख्या

उपायानां--वियोगनिवारकसाधनानाम्, भावात्—सत्त्वात्, अविरत०—अविरतः अविच्छिन्नः विनोदानां मनोविनोदसाधनानां व्यतिकरः सम्बन्धः

पाठभेद—१७४. का० अविरल० (अनेक), नि० जनितजगदत्यद्भुतरसः (जिसने संसार में अत्यधिक अद्भुत रस को उत्पन्न किया है, का० काले—कथं (कैसे), का० काले—त्वप्रतिविधः (प्रतीकार-रहित)।

येषु तैः, वीराणां—सुग्रीवादिशूराणाम्, विमर्दैः—युद्धैः, जगति—संसारे, जनिता०—जनितः उत्पादितः अत्यद्भुतरसः अत्यधिकः अद्भुतनामको रसः येन सः, मुग्धाक्ष्याः—सुनयनायाः सीतायाः, सः—पुरातनः, वियोगः—विरहः, खलु—निश्चयेन, रिपु०—रिपूणां शत्रूणां रावणादीनां घातः वधः अवधिः सीमा यस्य तादृशः, अभूत्—आसीत्। कटुः—कठोरः दुःखद इत्यर्थः, तूष्णीं—मौनभावेन, सह्यः—सहनीयः, अयम्—साम्प्रतम् अनुभूयमानः, प्रविलयः—सीतावियोगः, तु—तर्हि, निरवधिः—अनन्तः, यावज्जीवनस्थायीत्यर्थः। अत्र काव्यलिङ्गं व्यतिरेकश्चालंकारौ। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **उपायानां०**—उपायों के होने के कारण। सीता के पूर्ववियोग के निवारण के लिए अनेक साधन थे। (२) **अविरत०**—अविरत—निरन्तर, विनोद—मनोरंजन के साधनों के, व्यतिकरैः—सम्बन्ध से या घटनाओं के होने से। अविरतः विनोदानां व्यतिकरः येषु तैः, बहु०। व्यतिकर का अर्थ घटना और सम्बन्ध दोनों यहाँ पर लग सकते हैं। (३) **विमर्दैः**—युद्धों से। (४) **जनिता०**—जिसने अत्यधिक अद्भुत रस को उत्पन्न किया है। जनितः अत्यद्भुतरसः येन सः, बहु०। जनित—जन्+णिच्+क्त। (५) **मुग्धाक्ष्याः**—सुन्दर नेत्रों वाली सीता का। मुग्धे अक्षिणी यस्याः सा—मुग्धाक्षी, तस्याः, बहु०। मुग्ध+अक्षि+षच् (अ)+ङीष् (ई)। बहुव्रीहौ० (५-४-११३) से समासान्त षच् प्रत्यय और षित् होने से षिद्गौरा० (४-१-४१) से ङीष्। (६) **रिपुघाता०**—शत्रु रावण आदि का वध जिसकी अवधि या सीमा थी। रिपूणां घातः अवधिः यस्य सः, बहु०। घात—हन्+घञ्। अवधि—अव+धा+कि (इ)। (७) **कटुः**—सीता का यह नवीन वियोग अत्यन्त कठोर है। इसमें कोई मनोरंजन का साधन नहीं है। (८) **सह्यः**—सहने योग्य। इसको चुपचाप सहना पड़ रहा है। सह्+यत् (य), शकिसहोश्च (३-१-९९) से योग्य अर्थ में यत्। (९) **निरवधिः**—असीम, अनन्त। जिसकी कोई सीमा नहीं है। निर्गतः अवधिः यस्य सः, बहु०। पूर्ववियोग में सीता जीवित थी। रावण का वध होने पर वह प्राप्त हो गई थी। राम का विचार है कि सीता मर चुकी

है, अतः इस बार इस वियोग का कभी अन्त नहीं होगा। (१०) **प्रविलयः** —वियोग, विरह। प्र+वि+ली+अच् (अ)। एरच् (३-३-५६) से अच्। (११) प्रथम तीन पदों में पूर्ववियोग की सह्यता और अवधि के कारणों का उल्लेख होने से काव्यलिंग अलंकार है। पूर्ववियोग की अपेक्षा नवीन वियोग अधिक दुःखद बताया गया है, अतः व्यतिरेक अलंकार है।

१७५. सीता——निरवधिरिति हा हतास्मि मन्द-भागिनी। [णिरवधि त्ति हा हदम्हि मन्दभाइणी।]

सीता——'(यह वियोग) असीम है' इन शब्दों को सुनकर मैं अभागिनी मृतप्राय हो गई हूँ।

१७६. रामः——कष्टं भोः,

व्यर्थं यत्र कपीन्द्रसख्यमपि मे, वीर्यं हरीणां वृथा,
प्रज्ञा जाम्बवतो न यत्र, न गतिः पुत्रस्य वायोरपि।
मार्गं यत्र न विश्वकर्मतनयः कर्तुं नलोऽपि क्षमः
सौमित्रेरपि पत्त्रिणामविषये तत्र प्रिये! क्वासि मे।।४५।।

अन्वय—यत्र मे कपीन्द्रसख्यम् अपि व्यर्थम्, हरीणां वीर्यं वृथा, यत्र जाम्बवतः प्रज्ञा न, वायोः पुत्रस्य अपि गतिः न, यत्र विश्वकर्मतनयः नलः अपि मार्गं कर्तुं न क्षमः, सौमित्रेः अपि पत्त्रिणाम् अविषये तत्र क्व, मे प्रिये, असि ? ।।

राम——ओह, बड़े दुःख की बात है।

जहाँ वानरराज सुग्रीव के साथ मेरी मित्रता भी व्यर्थ है, जहाँ वानरों का पराक्रम भी व्यर्थ है, जहाँ जाम्बवान् की बुद्धि भी काम नहीं कर सकती, जहाँ वायु-पुत्र हनुमान की भी गति नहीं है, जहाँ विश्वकर्मा का पुत्र नल भी मार्ग बनाने में समर्थ नहीं है, लक्ष्मण के बाणों के भी अगोचर ऐसे किस स्थान पर हे मेरी प्रिय सीता, तुम रह रही हो ? ।।४५।।

पाठभेद—१७६. का० काले—जाम्बवतोऽपि यत्र (जहाँ पर जाम्बवान् की बुद्धि भी काम नहीं दे सकती)।

संस्कृत-व्याख्या

यत्र--यस्मिन् स्थाने, मे--मम रामस्य, कपीन्द्र०--कपीन्द्रेण सुग्रीवेण सख्यं मित्रता, अपि, व्यर्थम्--निरर्थकम्। यत्र हरीणां--वानराणाम्, वीर्य--पराक्रमः, वृथा--निष्फलम् अस्ति। यत्र, जाम्बवतः--जाम्बवन्नामकस्य ऋक्ष-राजस्य, प्रज्ञा--बुद्धिसंचारः, न--नास्ति। यत्र, वायोः पुत्रस्य०--मारुतेरपि, गतिः--संचारः, न--नास्ति। यत्र, विश्व०--विश्वकर्मणः देवशिल्पिनः तनयः सुतः, नलोऽपि--नलनामकः कपिवरोऽपि, मार्ग--पन्थानम्, कर्तुं--निर्मातुम्, न क्षमः--न समर्थोऽस्ति। सौमित्रेः--लक्ष्मणस्य, अपि, पत्रिणाम्--शराणाम्, अविषये--अगोचरे, तत्र--तादृशे, क्व--कस्मिन् स्थाने, मे प्रिये--मम प्रिय-तमे सीते, असि--त्वं वर्तसे? अत्र समुच्चयोऽलंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **निरवधि०**--यह वियोग अनन्त है, इस राम के वचन से मैं मृत-प्राय हो गई हूँ। राम के निरवधि कहने का अभिप्राय यह था कि--सीता मर चुकी है, अतः मेरे चाहने पर भी वह मुझे अब कभी नहीं मिलेगी। सीता ने इस निरवधि का अर्थ लगाया कि--राम ने निश्चय कर लिया है कि वह मुझ सीता को फिर स्वीकार नहीं करेंगे, अतः यह वियोग अनन्त है। इसीलिए सीता अत्यन्त दुःखित है। (२) **कपीन्द्र०**--वानरों के राजा सुग्रीव के साथ मित्रता। कपीन्द्रेण सह सख्यम्, तत्पु०। सख्यम्--सख्युः भावः, सखि+य। सख्युर्यः (५-१-१२६) से भाव अर्थ में य प्रत्यय। इस वियोग के निवारण में सुग्रीव के साथ मित्रता भी काम नहीं कर सकती है। (३) **हरीणाम्०**--वानरों का पराक्रम भी इस वियोग में काम नहीं दे सकता है। (४) **जाम्बवतः०**--जाम्बवान् की बुद्धि भी काम नहीं दे सकती है। जाम्ब-वान् वानरों का प्रमुख माना जाता है। जाम्बवान् ने राम की कई मुख्य सेवाएँ की थीं। उसने ही हनुमान् को समुद्र पार करने के लिए प्रोत्साहित किया था। उसने ही मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण आदि के मूर्च्छित होने पर हिमा-लय से संजीवनी बूटी लाने के लिए हनुमान् को भेजा था। (५) **पुत्रस्य०**--वायु के पुत्र हनुमान् की। हनुमान् के पिता वायु और माता अञ्जना थीं।

(६) **विश्वकर्म०**--विश्वकर्मा का पुत्र नल। नल वानरों का मुखिया था। उसने ही समुद्र पर पुल बनाया था। रामायण युद्धकाण्ड सर्ग २२ में इसका विवरण है। अयं सौम्य नलो नाम तनयो विश्वकर्मणः।······एष सेतुं महोत्साहः करोतु मयि वानरः। (४१-४२)। यह समुद्र ने राम से कहा है। विश्वकर्मणः तनयः, तत्पु०। (७) **सौमित्रेः०**--सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण के बाणों का भी जो विषय नहीं है। पत्रिन्--बाण। सौमित्रि--सुमित्रायाः अपत्यम्, सुमित्रा+इञ्। बाह्वादिभ्यश्च (४-१-९६) से इञ्। (८) **क्वासि**--हे सीता तुम कहाँ हो? तुम्हारी प्राप्ति का कोई साधन नहीं दीखता है। मेरे पास जितने साधन हैं, वे सभी व्यर्थ हो गए हैं। (९) इस श्लोक में सीता की प्राप्ति के लिए पूर्व-प्रयुक्त पाँच साधनों का उल्लेख है, अतः समुच्चय अलंकार है।

१७७. सीता--बहुमानितास्मि पूर्वविरहे। [बहुमाणिदम्हि पुव्वविरहे।]

सीता--प्रथम विरह के विषय में मैं बहुत संमानित हुई हूँ।

१७८. रामः--सखि वासन्ति, दुःखायैव सुहृदामिदानीं रामदर्शनम्। कियच्चिरं त्वां रोदयिष्यामि। तदनुजानीहि मां गमनाय।

राम--सखी वासन्ती, इस समय राम का दर्शन मित्रों के लिए दुःख का कारण हो गया है। मैं कितनी देर तुम्हें रुलाता रहूँगा? अच्छा, अब मुझे जाने की आज्ञा दो।

१७९. सीता--(सोद्वेगमोहं तमसामाश्लिष्य) हा भगवति तमसे, गच्छतीदानीमार्यपुत्रः। किं करोमि? [हा भअवदि तमसे, गच्छदि दाणिं अज्जउत्तो? किं करिस्सं।]

(इति मूर्च्छति।)

सीता--(घबड़ाहट और मोह के साथ तमसा का आलिंगन करके) हाय, भगवती तमसा, अब आर्यपुत्र जा रहे हैं। क्या करूँ?

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाती है।)

१८०. तमसा--वत्से जानकि, समाश्वसिहि समाश्वसिहि। विधिस्तवानुकूलो भविष्यति। तदायुष्मतोः कुशलवयोर्वर्षवृद्धिमङ्गलानि संपादयितुं भागीरथीपदान्तिकमेव गच्छावः।

तमसा--पुत्री सीता, धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो। भाग्य तुम्हारे अनुकूल होगा। अतः चिरंजीवी कुश और लव की वर्षगाँठ के मंगलाचारों को पूरा करने के लिए भगवती भागीरथी के चरणों के समीप ही चलते हैं।

१८१. सीता--भगवति, प्रसीद। क्षणमात्रमपि दुर्लभदर्शनं जनं पश्यामि। [भअवदि, पसीद। खणमेत्तं वि दुल्लहदंसणं जणं पेक्खामि।]

सीता--भगवती तमसा, थोड़ी कृपा करो। दुर्लभ-दर्शन आर्यपुत्र को क्षण भर और देख लूं।

१८२. रामः--अस्ति चेदानीमश्वमेधसहधर्मचारिणी मे।

राम--अब अश्वमेध यज्ञ के लिए मेरी सहधर्मिणी (धर्मपत्नी) हो गई है।

१८३. सीता--(साक्षेपम्) आर्यपुत्र, का? [अज्जउत्त, का?]

सीता--(आक्षेप के साथ) आर्यपुत्र, वह कौन है?

१८४. वासन्ती--परिणीतमपि किम्?

वासन्ती--क्या विवाह भी कर लिया है?

१८५. रामः--नहि नहि, हिरण्मयी सीताप्रतिकृतिः।

राम--नहीं, नहीं। वह सोने की बनी सीता की मूर्ति है।

१८६. सीता--(सोच्छ्वासास्रम्) आर्यपुत्र, इदानीमसि त्वम्। अहो, उत्खातितमिदानीं मे परित्यागशल्यमार्यपुत्रेण। [अज्जउत्त, दाणिं सि तुमं। अम्महे, उक्खाइदं दाणिं मे परिच्चाअसल्लं अज्जउत्तेण।]

सीता--(लम्बी साँस लेकर आँखों में आँसू भरकर) आर्यपुत्र, अब आप सच्चे आर्यपुत्र हो। ओह, आर्यपुत्र ने आज मेरे परित्यागरूपी काँटे को निकाल दिया है।

टिप्पणी

(१) **बहुमानिता०**--पहला विरह मेरे लिए बहुत सम्मान की बात थी, क्योंकि उसमें पुनर्मिलन की आशा थी। इस नवीन विरह में फिर मिलने की आशा नहीं है। बहुमानं संजातम् अस्याः सा, बहुमान+इतच् (इत)+टाप्। तदस्य संजातं० से इतच्। अथवा बहुमान+णिच्+क्त+टाप्। बहुमानं प्रापिता। (२) **पूर्वविरहे**--पहले विरह की अवस्था में। पूर्वः विरहः, तस्मिन्, कर्मधा०। (३) **दुःखायैव०**--अब राम का दर्शन मित्रों के लिए दुःखद हो गया है। रामदर्शनम्--रामस्य दर्शनम्, तत्पु०। (४) **रोदयिष्यामि**--रुलाऊँगा। रुद्+णिच्+लृट् उ० १। (५) **अनुजानीहि**--आज्ञा दो, अनुमति दो। अनु+ज्ञा+लोट् उ० १। (६) **सोद्वेग०**--घबड़ाहट और मोह के साथ। सीता घबड़ाई हुई है और किंकर्तव्यविमूढ है। उद्वेगश्च मोहश्च (द्वन्द्व), ताभ्यां सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (७) **वर्षर्द्धि०**--वर्षगाँठ के मांगलिक कार्यों को। वर्षस्य ऋद्धिः (तत्पु०), तस्य मङ्गलानि, तत्पु०। वर्षगाँठ के अवसर पर किए जाने वाले पूजा, पाठ, दानादि के लिए। (८) **भागीरथी०**--भागीरथी के चरणों के समीप। भागीरथ्याः पदयोः अन्तिकम्, तत्पु०। (९) **दुर्लभ०**--जिसका दर्शन दुर्लभ है। दुर्लभं दर्शनं यस्य तम्, बहु०। (१०) **अश्वमेध०**--अश्वमेध यज्ञ में सहधर्मिणी या

पत्नी। अश्वमेधाय सहधर्मचारिणी, तत्पु०। अश्वमेध एक महान् यज्ञ था, जिसे राजा या महाराजा दिग्विजय के उपलक्ष्य में करते थे। इसमें राजा की ओर से एक घोड़ा सैनिकों के साथ छोड़ा जाता था। जो राजा अधीनता स्वीकार नहीं करना चाहता था, वह उसे पकड़ता था। उससे युद्ध होता था। घोड़ा सकुशल लौट आने पर राजा दिग्विजयी माना जाता था। सहधर्म-चारिणी—साथ अर्थात् पति के साथ धर्म का आचरण करने वाली, पत्नी। यह वाक्य राम की ओर से अप्रासंगिक प्रतीत होता है, इसका सम्बन्ध वाक्य संख्या १८७ 'तत्रापि तावद् वाष्पदिग्धं चक्षुर्विनोदयामि' से जोड़ने पर ठीक बैठता है। (११) **परिणीतम्०**—क्या दूसरा विवाह कर लिया है। परि+नी+क्त। परि+नी का अर्थ विवाह करना है। (१२) **हिरण्मयी**—सोने की बनी हुई। हिरण्यस्य विकारः, विकार अर्थ में मयट्। हिरण्य+मय=हिरण्मय। य का लोप। (१३) **सीताप्रतिकृतिः**—सीता की प्रतिमा। सीतायाः प्रतिकृतिः, तत्पु०। (१४) **उत्खाततम्**—निकाल दिया। उत्+खन्+क्त=उत्खात+णिच्+क्त। (१५) **परित्याग०**—परित्यागरूपी काँटे को। परित्याग एव शल्यम्, कर्मधा०।

१८७. रामः—तत्रापि तावद्बाष्पदिग्धं चक्षुर्विनोदयामि।

राम—उस (सुवर्ण की मूर्ति) में ही अपने अश्रुपूर्ण नेत्रों को बहलाता हूँ।

१८८. सीता—धन्या खलु सा यैवमार्यपुत्रेण बहुमन्यते। यैवमार्यपुत्रं विनोदयन्त्याशाबन्धनं खलु जाता जीवलोकस्य। [धण्णा खु सा जा एव्वं अज्जउत्तेण बहुमण्णीअदि। जा एव्वं अज्जउत्तं विणोदयंदी आसाबंधणं खु जादा जीअलोअस्स।]

सीता—वह (सुवर्ण की मूर्ति) वस्तुतः धन्य है, जिसको आर्यपुत्र इतना अधिक मानते हैं और जो आर्यपुत्र का मनोरंजन करती हुई संसार के लिए आशा का एक बन्धन (सूत्र) हो गई है।

१८९. तमसा--(सस्मितस्नेहार्द्रं परिष्वज्य) अयि वत्से, एवमात्मा स्तूयते।

तमसा--(मुस्कराहट और स्नेह-सिक्त भाव से आलिंगन करके) हे पुत्री, इस प्रकार तुम अपनी प्रशंसा कर रही हो।

१९०. सीता--(सलज्जम्) परिहसितास्मि भगवत्या। [परिहसिदम्हि भअवदीए।]

सीता--(लज्जा के साथ) भगवती तमसा ने मेरा परिहास किया है।

१९१. वासन्ती--महानयं व्यतिकरोऽस्माकं प्रसादः। गमनं प्रति यथा कार्यहानिर्न भवति तथा कार्यम्।

वासन्ती--आपका यह समागम हमारे लिए बहुत बड़ा अनुग्रह है। अब जिस प्रकार आपके कार्य की हानि न हो, उस प्रकार अपने जाने के विषय में निश्चय कीजिए।

१९२. रामः--तथास्तु।

राम--ठीक है।

१९३. सीता--प्रतिकूलेदानीं मे वासन्ती संवृत्ता। [पडिऊला दाणिं मे वासंदी संवुत्ता।]

सीता--अब वासन्ती मेरे प्रतिकूल हो गई है।

१९४. तमसा--वत्से, एहि गच्छावः।

तमसा--पुत्री सीता, आओ, हम दोनों चलें।

१९५. सीता--एवं कुर्वः। [एव्वं करम्ह।]

सीता--ऐसा ही करते हैं।

टिप्पणी

(१) बाष्प०--आँसुओं से परिपूर्ण। बाष्प--आँसू, दिग्ध--परिपूर्ण, लिप्त। बाष्पैः दिग्धम्, तत्पु०। दिग्ध--दिह् + क्त। (२) विनोदयामि--

बहलाता हूँ। सीता की सोने की मूर्ति को ही देखकर मैं अपने अश्रुपूर्ण नेत्रों को बहलाता हूँ। सीता की सोने की मूर्ति राम के लिए मनोविनोद का साधन थी। वि+नुद्+णिच्+लट् उ० १। (३) धन्या०--सीता कहती है कि वह सोने की मूर्ति धन्य है, जिसे राम इतना मानते हैं। वह मूर्ति राम के जीवन को बचाने के कारण संसार के लिए आशा का सूत्र हो गई है। (४) **विनोदयन्ती**--मनोरंजन करती हुई। वि+नुद्+णिच्+शतृ+ङीप्। (५) **आशा०**--आशा का बन्धन या कारण। आशायाः बन्धनम्, तत्पु०। (६) **सस्मित०**--स्मित--मुस्कराहट और, स्नेह--प्रेम से, आर्द्र--सिक्त भाव से। परिष्वज्य--आलिंगन करके। परि+स्वञ्ज्+ल्यप्। (७) **आत्मा०**--सीता अपनी सोने की प्रतिमा की स्तुति कर रही है। इस प्रकार अप्रत्यक्षरूप से अपनी ही स्तुति कर रही है। यही तमसा ने व्यंग्य किया है। स्तूयते--स्तु+कर्मवाच्य लट् प्र० १। (८) **परिहसिता०**--सीता का कथन है कि तमसा ने मेरी हँसी उड़ाई है। परि+हस्+क्त+टाप्। कर्मवाच्य में क्त। परि उपसर्ग लगने से सकर्मक है। (९) **व्यतिकरः**--समागम, मिलन। वासन्ती ने राम से कहा है कि आपका यह मिलन हमारे ऊपर अनुग्रह है। (१०) **कार्यहानि०**--जिस प्रकार आपके कार्य की कोई हानि न हो, तदनुसार जाने का कार्यक्रम बनाइए। (११) **प्रतिकूला०**--वासन्ती मेरे प्रतिकूल हो गई है। वासन्ती राम को जाने की स्वीकृति देकर मेरे साथ अनुचित व्यवहार कर रही है। (१२) **संवृत्ता**--हो गई है। सम्+वृत्+क्त+टाप्।

१९६. तमसा--कथं वा गम्यते? यस्यास्तव--
प्रत्युप्तस्येव दयिते तृष्णादीर्घस्य चक्षुषः।
मर्मच्छेदोपमैर्यत्नैः संनिकर्षो निरुध्यते॥४६॥

अन्वय--दयिते प्रत्युप्तस्य इव तृष्णादीर्घस्य (तव) चक्षुषः मर्मच्छेदोपमैः यत्नैः संनिकर्षः निरुध्यते।

पाठभेद--१९६. काले--मर्मच्छेदपरैर्यत्नैराकर्षो न समाप्यते (मर्मस्थल को छेदन करने वाले यत्नों से आकर्षण अर्थात् राम के प्रति आकर्षण समाप्त नहीं हो रहा है)।

तमसा--अथवा कैसे चलें? क्योंकि--

प्रियतम राम में मानो गड़े हुए और (दर्शन की) इच्छा के कारण विशाल बने हुए तुम्हारे नेत्रों का सम्बन्ध मर्मस्थल में वेधन के तुल्य (गमन आदि) यत्नों के द्वारा रोका जा रहा है।।४६।।

संस्कृत-व्याख्या

दयिते--प्रियतमे रामे, प्रत्युप्तस्य इव--निखातस्य इव, तृष्णा०--तृष्णया रामस्य दर्शनेच्छया दीर्घस्य विशालस्य, तव--सीतायाः, चक्षुषः--नेत्रस्य, मर्म०--मर्मस्थलभेदनसदृशैः, यत्नै०--गमनादिप्रयत्नैः, संनिकर्षः--रामेण सह सम्बन्धः, निरुध्यते--रोधं प्राप्यते। अत्रोपमोत्प्रेक्षा चालंकारौ। श्लोको वृत्तम्।।

टिप्पणी

(१) **कथं वा०**--तमसा का अभिप्राय है कि सीता की मन की स्थिति ऐसी नहीं है कि वह राम के पास से हट सके। (२) **प्रत्युप्तस्येव०**--राम पर गड़ी हुई सी। प्रत्युप्त--गड़ी हुई, प्रति+वप्+क्त। सीता की दृष्टि राम पर गड़ी हुई सी है। (३) **तृष्णा०**--इच्छा अर्थात् राम को अनिमेष देखने की लालसा से विशाल। देखने की इच्छा से मानो आँखें फाड़ी हुई हैं। तृष्णया दीर्घस्य, तत्पु०। (४) **मर्म०**--मर्मस्थल में बींधने के तुल्य। मर्मणः छेदः (तत्पु०), तेन उपमा यस्य तैः, बहु०। छेद--छिद्+घञ्। सीता को राम के पास से हटाना ऐसा ही है, जैसे उसके मर्मस्थल में घाव करना। (५) **संनिकर्षः**--समीपता, सम्बन्ध। सम्+नि+कृष्+घञ्। (६) **निरुध्यते**--रोका जा रहा है। नि+रुध्+कर्मवाच्य लट् प्र० १। सीता की दृष्टि राम पर आसक्त है, उसे बलात् हटाया जा रहा है। (७) **प्रत्युप्तस्येव** में इव उत्प्रेक्षा-सूचक है। मर्मच्छेदोपमैः में उपमा शब्द के द्वारा उपमा अलंकार है। यत्न मर्मच्छेद के सदृश हैं।

१९७ सीता--नमः सुकृतपुण्यजनदर्शनीयाभ्यामार्यपुत्रचरणकमलाभ्याम्। [णमो सुकिदपुण्णजणदंसणिज्जाणं अज्जउत्तचलणकमलाणं।]

(इति मूर्च्छति।)

सीता--पुण्यात्मा लोगों के द्वारा दर्शनीय आर्यपुत्र के चरणकमलों को प्रणाम है।

(यह कहकर मूर्छित हो जाती है।)

१९८. तमसा--वत्से, समाश्वसिहि।

तमसा--पुत्री, धैर्य रखो।

१९९. सीता--(आश्वस्य) कियच्चिरं वा मेघान्तरेण पूर्णचन्द्रदर्शनम्? [किअच्चिरं वा मेहंतरेण पुण्णचंददंसणं?]

सीता--(धैर्य धारण करके) मेघ के व्यवधान (रुकावट) के कारण पूर्ण चन्द्रमा का दर्शन कितनी देर और हो सकता है? (अर्थात् अधिक देर तक दर्शन नहीं हो सकता है।)

२००. तमसा--अहो संविधानकम्--

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक्पृथगिव श्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारा-
नम्भो यथा, सलिलमेव हि तत्समस्तम् ॥४७॥

अन्वय--एकः करुणः रसः एव निमित्तभेदात् भिन्नः (सन्) पृथक्-पृथक् विवर्तान् श्रयते इव। यथा अम्भः आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान् (श्रयते)। तत् समस्तं सलिलम् एव हि।

तमसा--अहो, विचित्र रचना है (अर्थात् सृष्टि एक विचित्र रचना है)। एक करुण रस ही कारण-भेद से भिन्न होकर पृथक्-पृथक् (शृंगार आदि) परिणामों को प्राप्त करता हुआ प्रतीत होता है, जैसे जल ही भँवर, बुलबुला, तरंग आदि विकारों को प्राप्त होता है। वस्तुतः वह सब जल ही है॥४७॥

पाठभेद--२००. का० काले--इवाश्रयते (मानो विभिन्न अवास्तविक परिणामों का आश्रय होता है)। काले--तु तत्समग्रम् (किन्तु वह सभी)।

संस्कृत-व्याख्या

एकः—अद्वितीयः, करुणः रस एव—करुणनामको रस एव, निमित्तभेदात्—आलम्बनादिकारणभेदात्, भिन्नः सन्—भेदं प्राप्तः सन्, पृथक्-पृथक्—विभिन्नान्, विवर्तान्—शृङ्गारादिपरिणामान्, श्रयते इव—प्राप्नोतीव। यथा—येन प्रकारेण, अम्भः—जलम्, आवर्त०—आवर्तमयान् जलभ्रमिरूपान् बुद्बुदमयान् बुद्बुदरूपान् तरङ्गमयान् वीचिरूपान्, विकारान्—परिणामान्, श्रयते—लभते। तत् समस्तं—तत् सर्वम्, सलिलम् एव—जलमेव, हि—निश्चयेन। अत्रोपमोत्प्रेक्षा चालंकारौ। वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **सुकृत०**—सुकृतपुण्य—जिन्होंने अच्छे ढंग से पुण्य किया है ऐसे, जन—लोगों से, दर्शनीयाभ्याम्—देखने योग्य। सुकृतं पुण्यं यैः ते (बहु०), तादृशाः जनाः (कर्मधा०), तैः दर्शनीयाभ्याम्, तत्पु०। (२) **आर्यपुत्र०**—आर्यपुत्र राम के चरणकमलों को नमस्कार। आर्यपुत्रस्य चरणकमलाभ्याम्, तत्पु०। नमः के कारण नमःस्वस्ति० से ०चरणकमलाभ्याम् में चतुर्थी। (३) **कियच्चिरम्०**—रामरूपी पूर्ण चन्द्रमा चारों ओर बादलों से घिरा हुआ है, अतः कितनी देर उसे देखना हो सकता है? अर्थात् अधिक समय तक नहीं। (४) **मेघान्तरेण**—मेघस्य अन्तरेण, तत्पु०। बादल के बीच से। पूर्णः चन्द्रः (कर्मधा०), तस्य दर्शनम्, तत्पु०। (५) **संविधानकम्**—सुन्दर रचना, विचित्र सृष्टि। संविधीयते इति, सम्+वि+धा+ल्युट् (अन)+स्वार्थ में कन् (क)। इसका भाव है कि यह सृष्टि क्या ही विचित्र है। (६) **एको रसः०**—भवभूति ने उत्तररामचरित के द्वारा यह सिद्ध किया है कि करुण ही एक रस है। अन्य रस इसके ही रूपान्तर हैं। विभाव के अन्तर के कारण करुणरस ही अन्य रसों का रूप ग्रहण करता है। यह श्लोक भवभूति के मन्तव्य को प्रकट करने के लिए रखा गया है। तमसा के मुख से वह प्रकट करता है कि राम और सीता का पूरा जीवन करुणरस से पूर्ण है। (७) **निमित्तभेदात्**—आलम्बन आदि कारणों के भेद से। निमित्तानां भेदात्, तत्पु०। (८) **विवर्तान्०**—पृथक्-पृथक् परिणामों को अपनाता सा है। विवर्त यह वेदान्त का पारिभाषिक शब्द है। इसका अर्थ है—अवास्तविक

रूपान्तर या मिथ्याप्रतीति, जैसे—रस्सी में सर्पबुद्धि। तात्त्विक विकार को परिणाम या विकार कहते हैं। 'अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त इत्युदीर्यते। स तत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदीरितः।।' भवभूति विवर्तवादी हैं। उत्तररामचरित में कई स्थनों पर विवर्त का उल्लेख है। (९) आवर्त०—भँवर, बुलबुले और तरंगरूपी विकारों को। आवर्तश्च बुद्बुदश्च तरङ्गश्च (द्वन्द्व), तन्मयान्। (१०) तत्समस्तम्—आवर्त आदि सभी चीजें केवल जल के रूपान्तर हैं। जल से भिन्न नहीं। इसी प्रकार शृंगार, वीर आदि रस भी करुण-मूलक ही हैं, करुण से भिन्न नहीं। (११) इस श्लोक में इव के द्वारा क्रियोत्प्रेक्षा है और यथा के द्वारा उपमा अलंकार है।

२०१. रामः—अयि विमानराज, इत इतः।

(सर्वे उत्तिष्ठन्ति।)

राम—हे विमानराज (पुष्पक), इधर-इधर (आओ)।

(सब उठते हैं।)

२०२. तमसावासन्त्यौ—(सीतारामौ प्रति)

अवनिरमरसिन्धुः सार्धमस्मद्विधाभिः

स च कुलपतिराद्यश्छन्दसां यः प्रयोक्ता।

स च मुनिरनुयातारुन्धतीको वसिष्ठ-

स्तव वितरतु भद्रं भूयसे मङ्गलाय।।४८।।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते छायानाम तृतीयोऽङ्कः।

अन्वय—अस्मद्विधाभिः सार्धम् अवनिः, अमरसिन्धुः, स च कुलपतिः यः छन्दसाम् आद्यः प्रयोक्ता, स च अनुयातारुन्धतीकः वसिष्ठः मुनिः, तव भूयसे मङ्गलाय भद्रं वितरतु।

पाठभेद—२०२. का० काले—त्वयि (तुझे)।

तमसा और वासन्ती--(सीता और राम के प्रति)

हम जैसों के साथ (अर्थात् तमसा जैसी नदियों और वासन्ती जैसी वनदेवताओं के साथ) पृथिवी, गंगा और छन्दों के सर्वप्रथम प्रयोग करने वाले वह कुलपति वाल्मीकि और अरुन्धती से अनुगत वह ऋषि वसिष्ठ, आपके महान् कल्याण के लिए मंगल प्रदान करें।

(सब का प्रस्थान।)

महाकवि श्री भवभूति-विरचित उत्तररामचरित में छाया-नामक तृतीय अंक समाप्त।

संस्कृत-व्याख्या

अस्मद्विधाभिः—तमसासदृशीभिर्नदीभिः वासन्तीसदृशीभिर्वनदेवताभिश्च, सार्धम्—सह, अवनिः—पृथिवी, अमरसिन्धुः—गङ्गा, स च—स प्रसिद्धश्च, कुलपतिः—दशसहस्रमुनीनाम् अध्यापयिता वाल्मीकिः, यः—वाल्मीकिः, छन्दसाम्—अनुष्टुप्प्रभृतीनां वृत्तानाम्, आद्यः—सर्वप्रथमः, प्रयोक्ता—प्रयोगकर्ता, स च—स विख्यातश्च, अनुयाता०—अनुयाता अनुगता अरुन्धती एतन्नाम्नी जाया यं सः, वसिष्ठः मुनिः—रघुकुलगुरुः ऋषिर्वसिष्ठः, तव—सीताया रामस्य च, भूयसे—महते, मङ्गलाय—शिवाय, भद्रं—कल्याणम्, वितरतु—ददातु। अत्र तुल्ययोगिताऽलंकारः। मालिनी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **तमसा०**—तमसा और वासन्ती सीता और राम के लिए यह शुभकामना का श्लोक पढ़ती हैं। तमसा यह श्लोक सीता से कहती है और वासन्ती राम से। यह पहले उल्लेख किया जा चुका है कि राम और वासन्ती दोनों सीता तथा तमसा को नहीं देख रहे हैं। (२) **अमरसिन्धुः**—गंगा। अमराणां सिन्धुः, तत्पु०। (३) **अस्मद्०**—हम जैसों के साथ। तमसा का अभिप्राय है कि मुझ जैसी नदियों के साथ, वासन्ती का अभिप्राय है मुझ जैसी वन-देवताओं के साथ। (४) **कुलपतिः**—यह कुलपति वाल्मीकि के लिए है। कुलपति का अर्थ कुल का प्रवर्तक सूर्य लेना उचित नहीं है, क्योंकि कुलपति का विशेषण है—यः छन्दसाम् आद्यः प्रयोक्ता। यह सूर्य के साथ संबद्ध

नहीं हो सकेगा। जो दस हजार मुनियों को भोजन देते हुए उनका पालन-पोषण करता था और उन्हें पढ़ाता था, उसे कुलपति कहते थे। "मुनीनां दशसाहस्रं योऽन्नदानादिपोषणात्। अध्यापयति विप्रर्षिरसौ कुलपतिः स्मृतः।" इससे ज्ञात होता है कि एक कुलपति के निरीक्षण में दस हजार छात्र पढ़ते थे। (५) **छन्दसाम्०**—लौकिक छन्दों, मुख्यतया अनुष्टुप्छन्द का, सर्वप्रथम प्रयोग वाल्मीकि ने किया था। प्रयोक्ता—प्र+युज्+तृच् प्र०१। (६) **अनुयाता०**—अरुन्धती जिसके पीछे चलती है। अनुयाता अरुन्धती यं सः, बहु०। अरुन्धती वसिष्ठ की पत्नी का नाम है। (७) **भूयसे**—बहुत अधिक। भूयस्—बहु+ईयस्। बहु को भू और ईयस् के ई का लोप। (८) इस श्लोक में दो प्रस्तुत राम और सीता का एक धर्म के साथ सम्बन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है। (९) इस अंक का नाम छाया अंक है। इसमें सीता राम की छाया के तुल्य प्रारम्भ से अन्त तक विद्यमान रहती है। वह अदृश्य रहते हुए अपने प्रति राम के विशुद्ध प्रेम को जान पाती है और वियोग-जन्य दुःख को भुलाती है। वह पुर्नमिलन के लिए उद्यत होती है। यह अंक इस नाटक का सबसे महत्त्वपूर्ण अंक है। यह सप्तम अंक में होने वाले राम और सीता के मिलन के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।

इत्युत्तररामचरितस्याचार्यकपिलदेवद्विवेदिकृतायां
'भारती'-व्याख्यायां तृतीयोऽङ्कः समाप्तः॥

———

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशतस्तापसौ)

१. एकः--सौधातके, दृश्यतामद्य भूयिष्ठसन्निधापितातिथिजनस्य समधिकारम्भरमणीयता भगवतो वाल्मीकेराश्रमपदस्य। तथा हि--

नीवारौदनमण्डमुष्णमधुरं सद्यः प्रसूतप्रिया-
पीतादभ्यधिकं तपोवनमृगः पर्याप्तमाचामति।
गन्धेन स्फुरता मनागनुसृतो भक्तस्य सर्पिष्मतः
कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोदः परिस्तीर्यते ।।१।।

अन्वय--तपोवनमृगः सद्यःप्रसूतप्रियापीतात् अभ्यधिकम् उष्णमधुरं नीवारौदनमण्डं पर्याप्तम् आचामति। सर्पिष्मतः भक्तस्य स्फुरता गन्धेन मनाक् अनुसृतः कर्कन्धूफलमिश्रशाकपचनामोदः परिस्तीर्यते ।।

(तदनन्तर दो तपस्वियों का प्रवेश)

एक--हे सौधातकि, आज भगवान् वाल्मीकि के आश्रम में बहुत अधिक अतिथि पधारे हुए हैं। अनेक आयोजनों से युक्त आश्रम की सुन्दरता को देखो। जैसा कि--

तपोवन का (यह) मृग अपनी सद्यःप्रसूता प्रिया के पीने से शेष नीवार के भात का उष्ण और मधुर माँड इच्छानुसार पी रहा है। घृतयुक्त भात की फैलती हुई गन्ध से कुछ-कुछ मिश्रित, बदरीफलों (बेर) से युक्त साग के पकने की सुगन्ध चारों ओर फैल रही है ।।१।।

संस्कृत-व्याख्या

तपोवनमृगः--आश्रमस्थहरिणः, सद्यः०--सद्यः तत्क्षणं प्रसूता प्रसववती प्रिया हरिणी तया पीतात् निपीतात्, अभ्यधिकम्--अवशिष्टम्, उष्णमधुरम्--

पाठभेद--१. का० काले--प्रसूता (जिसने बच्चे को जन्म दिया है)

उष्णं च तन्मधुरम्, नीवारौ०--नीवारौदनस्य तृणधान्यभक्तस्य मण्डम् आस्रावम्, पर्याप्तं—यथेच्छम्, आचामति--पिबति । सर्पिष्मतः--घृतयुक्तस्य, भक्तस्य--ओदनस्य, स्फुरता--प्रसरता, गन्धेन--सौरभेण, मनाक्--ईषत्, अनुसृतः —अनुगतः, कर्कन्धू०—कर्कन्धूफलैः बदरीफलैः मिश्राः मिश्रिताः ये शाकाः पालक्यादयः तेषां पचनस्य पाकस्य आमोदः सौरभम्, परिस्तीर्यते--परितः व्याप्नोति । अत्र पर्यायोक्तमलंकारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **सौधातके**—सौधातकि एक तपस्वी बालक का नाम है। दूसरे का नाम दण्डायन है। यहाँ पर दोनों का वार्तालाप वर्णित है। सौधातकि--सुधाता का पुत्र। सुधातुः अपत्यम्, सुधातृ+अक+इञ्। सुधातुरकङ् च (४-१-९७) से अपत्य अर्थ में इञ् (इ) प्रत्यय और ऋ को अकङ् (अक) आदेश। (२) **भूयिष्ठ०**—भूयिष्ठ—बहुत अधिक, सन्निधापित—बुलाए गए हैं, अतिथि०—अतिथिजन जहाँ पर। भूयिष्ठं सन्निधापिताः अतिथिजनाः यस्मिन् तस्य, बहु०। भूयिष्ठ—बहु+इष्ठन्। बहु को भू आदेश और इ को यि। सन्निधापित—सम्+नि+धा+णिच्+क्त। (३) **समधिका०**—अत्यधिक आयोजनों के कारण सुन्दरता। समधिकारम्भैः रमणीयता, तत्पु०। (४) **नीवारौ०**—नीवार के भात का मांड। नीवार—जंगली धान्य (चावल)। इसे ऋषि-मुनि खाया करते थे। ओदन—भात, मण्ड—मांड। नीवारस्य ओदनः, तस्य मण्डम्, तत्पु०। (५) **उष्ण०**—गर्म और मीठा। उष्णं च तत् मधुरम्, कर्मधा०। (६) **सद्यः०**—सद्यः प्रसूत—तुरन्त बच्चे को जन्म देने वाली, प्रिया—हरिणी के, पीतात्—पीने से, अभ्यधिकम्—अवशिष्ट, बचे हुए। सद्यःप्रसूता चासौ प्रिया च (कर्मधा०), तया पीतात्, तत्पु०। यहाँ पर पुंवत्कर्मधारय० (६-३-४२) से प्रसूता को पुंलिंग होने से प्रसूत शब्द रहेगा। सद्यःप्रसूता० पाठ अशुद्ध है। प्रसूता—प्र+सू+क्त+टाप्। पीत—पा+क्त। आ को ई। (७) **तपोवन०**--आश्रम का मृग। तपोवनस्य मृगः, तत्पु०। (८) **पर्याप्तम्**--इच्छानुसार, जी भर कर। (९) **आचामति**—पीता है। आ+चम्+लट् प्र० १। आङि चम इति० (वा०) से चम् के अ को दीर्घ। (१०) **स्फुरता**—फैलते हुए। स्फुर्+शतृ+तृ०१। मनाक्—थोड़ा। अनुसृतः—अनुगत, युक्त। अनु+गम्+क्त। सर्पिष्मतः—घी से युक्त।

(११) कर्कन्धू०—कर्कन्धू०—बेर से, मिश्र—युक्त, शाक—साग के, पचन—पकाने की, आमोदः—सुगन्ध। कर्कन्धूफलैः मिश्राः (तत्पु०), ये शाकाः (कर्मधा०), तेषां पचनस्य आमोदः, तत्पु०। (१२) परिस्तीर्यते—फैल रही है। परि+स्तॄ+कर्मवाच्य लट् प्र० १। (१३) आश्रम में सब ओर प्रसन्नता और आनन्द व्याप्त है, इसका ही प्रकारान्तर से कथन होने के कारण पर्यायोक्त अलंकार है।

२. सौधातकिः—स्वागतमनेकप्रकाराणां जीर्णकूर्चानामनध्यायकारणानां तपोधनानाम्। [साअदं अणेअपआराणं जिण्णकुच्छाणं अणज्झाअकालणाणं तपोधणाणं।]

सौधातकि—सफेद दाढ़ी-मूँछ वाले तथा अनध्याय (छुट्टी) के कारणस्वरूप इन अनेक प्रकार के तपस्वियों का स्वागत है।

३. प्रथमः—(विहस्य) अपूर्वः खलु बहुमानहेतुर्गुरुषु सौधातके।

पहला—(हँस कर) हे सौधातकि, गुरुओं के प्रति विशेष संमान-सूचक यह तुम्हारा हेतु (जीर्णकूर्च तथा अनध्यायकारण) अद्भुत है।

४. सौधातकिः—भो दण्डायन, किंनामधेय इदानीमेष महतः स्त्रीसार्थस्य धुरंधरोऽद्यातिथिरागतः? [भो दंडाअण, किंणामहेओ दाणिं एसो महत्तस्स इत्थिआसत्थस्स धुरंधरो अज्ज अदिही आअदो?]

सौधातकि—हे दण्डायन, आज इस विशाल स्त्री-समूह के अगुआ होकर जो यह अतिथि आए हैं, इनका क्या नाम है?

५. दण्डायनः—धिक् प्रहसनम्। नन्वयमृष्यशृङ्गाश्रमादरुन्धतीं पुरस्कृत्य महाराजदशरथस्य दारानधिष्ठाय भगवान्वसिष्ठः प्राप्तः। तत्किमेवं प्रलपसि?

दण्डायन--तुम्हारे इस उपहास (मजाक) को धिक्कार है। ऋष्यशृंग के आश्रम से अरुन्धती को आगे करके तथा महाराज दशरथ की पत्नियों (कौसल्या आदि) को साथ लेकर यह भगवान् वसिष्ठ आए हैं। अतः तुम इस प्रकार बकवाद क्यों कर रहे हो ?

६. सौधातकिः--हुं वसिष्ठः ? [हुं वसिट्ठो ?]

सौधातकि--ऐं, यह वसिष्ठ हैं।

७. दण्डायनः--अथ किम्।

दण्डायन--और क्या ?

८. सौधातकिः--मया पुनर्ज्ञातं कोऽपि व्याघ्र इवैष इति। [मए उण जाणिदं को वि वग्घो विअ एसो त्ति।]

सौधातकि--मैंने तो समझा था कि यह कोई बघेरा-सा है।

टिप्पणी

(१) **अनेक०**--अनेक प्रकार के तपस्वियों का। अनेके प्रकारा येषां तेषाम्, बहु०। यह तपोधनानाम् का विशेषण है। (२) **जीर्ण०**—जीर्ण--पकी हुई या श्वेत, कूर्चानाम्--दाढ़ी-मूँछ वाले। जीर्णानि कूर्चानि येषां तेषाम्, बहु०। बुढ़ापे के कारण जिनकी दाढ़ी-मूँछ सफेद हो गई हैं। (३) **अनध्याय०**—छुट्टी के कारणस्वरूप। अनध्यायस्य कारणानाम्, तत्पु०। प्राचीन समय में आदरणीय और शिष्ट अतिथियों के आने पर पढ़ाई की छुट्टी रहती थी। याज्ञवल्क्य स्मृति (१-१५१) का कथन है—शिष्टे च गृहमागते। (अनध्यायः)। इसी भाव के अन्य वचन हैं--(क) शिष्टागमनेऽनध्यायः। (ख) अनध्यायं प्रकुर्वीत शिष्टे च गृहमागते। (४) **तपोधनानाम्**--तपस्वियों का। तप एव धनं येषां तेषाम्, बहु०। सौधातकि ने जीर्णकूर्चानाम्, अनध्यायकारणानाम् विशेषण के साथ तपस्वियों का जो स्वागत कहा है, वह गंभीर न होकर हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण है। (५) **विहस्य**—हँस कर। वि+हस्+ल्यप्। (६) **अपूर्वः**—अद्भुत, असाधारण। दण्डायन आयु में कुछ बड़ा और गंभीर प्रतीत होता है। वह सौधातकि के ऐसे विशेषणों पर हँसता है। सौधातकि को छुट्टी हो जाने की खुशी है। (७) **बहु-**

मान०--विशेष संमानसूचक हेतु। बहुमानस्य हेतुः, तत्पु०। (८) **किंनाम०**-किस नाम वाले, क्या नाम है? किं नामधेयं यस्य सः, बहु०। (९) **स्त्रीसार्थस्य०**--स्त्रियों के समूह के अग्रणी। सार्थ--समूह, झुण्ड। स्त्रीणां सार्थः, तस्य, तत्पु०। धुरन्धर--अगुआ, नेता। धुरं धरतीति, धुर+धृ+खच् (अ)। निपातन से बनता है। (१०) **प्रहसनम्**--तेरी इस मजाक को धिक्कार है। धिक् के कारण प्रहसनम् में द्वितीया। महर्षि वसिष्ठ को एक सफेद दाढ़ी वाला बुड्ढा और औरतों का नेता कहना, उसका उपहास करना है। अतः दण्डायन ने उसे टोका है। (११) **ऋष्यशृङ्गा०**--ऋष्यशृंग के आश्रम से। शृष्यशृङ्गस्य आश्रमात्, तत्पु०। (१२) **पुरस्कृत्य**--आगे करके, आगे रखकर। पुरस्+कृ+ल्यप्। (१३) **दारान्**--स्त्रियों को। दारा शब्द का अर्थ पत्नी है। यह पुंलिंग है तथा सदा बहुवचन में आता है। दारान्--पत्नी को, पत्नियों को। अधिष्ठाय के कारण अधिशीङ्० (१-४-४६) से द्वितीया। (१४) **अधिष्ठाय**--अधिष्ठाता (नेता, अगुआ) बनकर। अधि+स्था+ल्यप्। (१५) **प्रलपसि**--बकवाद करते हो। इस प्रकार क्यों अशिष्ट ढंग से बोलते हो? (१६) **हुं०**--ऐं, क्या। क्या यह वसिष्ठ हैं? (१७) **अथ किम्**--और क्या? अर्थात् हाँ। (१८) **कोऽपि व्याघ्र०**--सौधातकि का कथन है कि मैंने इन्हें बघेरा सा समझा था, क्योंकि इनके लिए एक बछिया मारी गई और इन्होंने उसे तुरन्त खा लिया।

९. दण्डायनः--आः, किमुक्तं भवति?

दण्डायन--ओह, क्या कह रहे हो? (तुम्हारे कथन का क्या तात्पर्य है?)

१०. सौधातकिः--येन परापतितेनैव सा वराकी कपिला कल्याणी बलात्कृत्य मडमडायिता। [जेण परावडिदेण एव्व सा वराई कविला कल्लाणी बलामोडिअ मडमडाइआ।]

सौधातकि--जिनके आते ही वह बेचारी पीले रंग की बछिया बलात् मार डाली गई।

११. दण्डायनः---समांसो मधुपर्क इत्याम्नायं बहुमन्यमानाः श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरीं महोक्षं वा महाजं वा पचन्ति गृहमेधिनः। तं हि धर्मं धर्मसूत्रकाराः समामनन्ति।

दण्डायन--'मधुपर्क समांस होता है' इस वैदिक वाक्य को विशेष महत्त्व देने वाले गृहस्थ लोग वेदज्ञ अतिथि के लिए दो वर्ष की बछिया को, बड़े बैल को या बड़े बकरे को पकाते हैं। धर्मसूत्रों के रचयिताओं ने इसे धर्म-कृत्य कहा है।

१२. सौधातकिः---भो निगृहीतोऽसि। [भो णिगिहीदोसि।]

सौधातकि---अरे, तुम निग्रह-स्थान (पकड़) में आ गए हो।

१३. दण्डायनः---कथमिव?

दण्डायन--कैसे?

१४. सौधातकिः---येनागतेषु वसिष्ठमिश्रेषु वत्सतरी विशसिता। अद्यैव प्रत्यागतस्य राजर्षेर्जनकस्य भगवता वाल्मीकिना दधिमधुभ्यामेव निर्वर्तितो मधुपर्कः। वत्सतरी पुनर्विसर्जिता। [जेण आअदेसु वसिट्ठमिस्सेसु वच्छदरी विससिदा। अज्ज एव्व पच्चाअदस्स राएसिणो जणअस्स भअवदा वम्मीइणा धहिमहूहिं एव णिव्वत्तिदो महुवक्को। वच्छतरी उण विसज्जिदा।]

सौधातकि---क्योंकि महर्षि वसिष्ठ के आने पर बछिया मारी गई थी, किन्तु आज ही आए हुए राजर्षि जनक के लिए भगवान् वाल्मीकि ने दही और शहद से ही मधुपर्क तैयार किया और बछिया छोड़ दी।

टिप्पणी

(१) किमुक्तं०---क्या कह रहे हो? अर्थात् तुम्हारे कथन का क्या तात्पर्य है? तुम वसिष्ठ को बघेरा सा क्यों कह रहे हो? (२) परापतितेन०---

सौधातकि का उत्तर है कि--वसिष्ठ के आते ही एक बछिया मारी गई और उन्हें दी गई। इससे प्रतीत होता है कि वह कोई हत्यारा बाघ सा है, जो मरी बछिया को खा गया। व्याघ्र बछिया को मारता है और खाता है। अतः वसिष्ठ की हिंसक व्याघ्र से समानता बताई गई है। यह एक अबोध एवं सरल-हृदय बालक का हार्दिक उद्गार है। परापतितेन एव-आते ही। परापतित—परा+पत्+क्त। वराकी--बेचारी, कपिला--पीले रंग की, कपिल वर्ण की, कल्याणी--शुभ या मंगलकारिणी। वीरराघव ने कल्याणी का अर्थ दो वर्ष की बछिया किया है। (३) **बलात्कृत्य**--बलपूर्वक, जबरदस्ती। बलात्+कृ+ल्यप्। (४) **मडमडायिता**--मारी गई, मडमड शब्द कराई गई। मडमडा+क्यष् (य)+क्त+टाप्। अनुकरणवाचक मडमड शब्द से अव्यक्तानुकरणाद० (५-४-५७) से डाच् (आ) लगाकर मडमडा शब्द बना। उससे लोहितादि० (३-१-१३) से क्यष् (य) प्रत्यय, उससे क्त और टाप्। (५) **समांसो०**--मधुपर्क मांसयुक्त होता है। मांसेन सहितः, बहु०। (६) **मधुपर्कः**--मधुपर्क। अतिथि, वर तथा मान्य अभ्यागतों को मधुपर्क दिया जाता था। सामान्यतया मधुपर्क में तीन चीजें मिलाई जाती हैं--दही, शहद और घी। घी की मात्रा बहुत कम रहती है। मधुपर्क में ५ चीजों के मिलाने का भी विधान है--दही, घी, जल, शहद और चीनी। 'दधि सर्पिर्जलं क्षौद्रं सिता चैतैश्च पञ्चभिः। प्रोच्यते मधुपर्कस्तु सर्वदेवौघतुष्टये'' ॥ मधुना पृच्यते इति मधुपर्कः, मधु+पृच्+घञ्। (७) **आम्नायम्**--वेद या वैदिक वाक्य। आ+म्ना+घञ्। आतो युक्० (७-३-३३) से बीच में य् आगम। (८) **बहुमन्यमानाः**--विशेष आदर देने वाले। बहु+मन्+शानच्+प्र० ३। (९) **श्रोत्रियाय०**--श्रुति अर्थात् वेद को जानने वाले। छन्दः अधीते इति श्रोत्रियः। इस अर्थ में श्रोत्रिय निपातन होता है। श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते (५-२-८४)। छन्दस्+घ (इय), छन्दस् को श्रोत्र आदेश। वेद की एक शाखा का पूर्ण रूप से विधिवत् अध्ययन करने वाले को श्रोत्रिय कहते थे। देवल का कथन है--"एकां शाखां सकल्पां वा, षड्भिरङ्गैरधीत्य वा। षट्कर्मनिरतो विप्रः, श्रोत्रियो नाम धर्मवित्"। (१०) **अभ्यागताय**--अतिथि के लिए। (११) **वत्सतरीम्**--दो वर्ष की बछिया को। वत्सोक्षाश्व० (५-३-९१) से बहुत छोटा अर्थ में तरप् प्रत्यय। वत्स+तर+ङीप्। (१२) **महोक्षम्**--बड़े बैल को। महान् चासौ उक्षा, महोक्षन्+अच् (अ)=महोक्षः। अचतुर० (५-४-७७) सूत्र से समासान्त अच्

प्रत्यय निपातन से होता है। (१३) **गृहमेधिनः**––गृहस्थ लोग। गृहैः मेधन्ते इति। गृह अर्थात् पत्नी से संयुक्त होते हैं। (१४) **समाम्नन्ति**––कहते हैं, आदेश देते हैं, सम्+आ+म्ना+लट् प्र० ३। म्ना को मन् आदेश। (१५) **निगृहीतोऽसि**––निग्रह-स्थान अर्थात् पकड़ में आ गए हो। निग्रह-स्थान यह न्यायदर्शन का एक पारिभाषिक शब्द है। यह न्याय के १६ विषयों में से एक है। तर्कभाषा में इसका लक्षण दिया है—पराजयहेतुर्निग्रहस्थानम्। अपनी ही युक्ति से स्वयं पराजित हो जाना। सौधातकि का कथन है कि आपने समांस मधुपर्क कहा था, पर जनक के लिए समांस मधुपर्क नहीं दिया गया। अतः आप पराजित होते हैं। निगृहीतः—नि+ग्रह्+क्त प्र० १। (१६) **विशसिता**––मारी गई। वि+शस्+क्त+टाप्। (१७) **प्रत्यागतस्य**––लौटकर आए हुए। प्रति+आ+गम्+क्त+ष० १। (१८) **निर्वर्तितः**––संपन्न किया, तैयार किया। निर्+वृत्+णिच्+क्त। (१९) **विसर्जिता**––छोड़ दी। वि+सृज्+णिच्+क्त+टाप् प्र० १।

विशेष––महाकवि भवभूति ने यहाँ पर समांस और अमांस मधुपर्क का उल्लेख किया है। कुछ धर्मसूत्रों और स्मृतियों में समांस मधुपर्क का उल्लेख है। जैसे––मधुपर्के च यज्ञे च, पितृदैवतकर्मणि। अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः।। (मनु० ५-४५)। परन्तु नीचे दिए उद्धरणों से स्पष्ट है कि मनु वानप्रस्थ और संन्यासियों के लिए मांस-भक्षण सर्वथा निषिद्ध घोषित करते हैं। वसिष्ठ संन्यासी हैं। उनके द्वारा मांसभक्षण किसी भी अवस्था में क्षम्य नहीं है।

भवभूति ने इस नाटक में समांस मधुपर्क का वर्णन करके रसदोष और रस-भंग किया है। करुणरस के प्रसंग में गो-हत्या का वर्णन कुरुचि का द्योतक है। इस प्रसंग को छोड़ देने पर भी कथानक के विकास में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती है। अतः यह अनावश्यक और अप्रासंगिक प्रकरण छेड़ना महाकवि भवभूति के लिए उचित नहीं कहा जा सकता है। भवभूति की अपनी मान्यता चाहे जो हो, भवभूति भले ही मांसाहारी ब्राह्मण रहे हों, परन्तु उसके लिए यह प्रकरण उचित स्थान नहीं था। इस नाटक में यह एक बहुत खटकने वाली बात है। इस प्रसंग के द्वारा वसिष्ठ को मांसाहारी बताकर उन्हें लाञ्छित किया गया है। यहाँ पर प्रसंग केवल इतना ही है कि 'महाराज जनक ने सीता के शोक में मांस खाना छोड़ दिया है।' भवभूति इसके लिए अन्य कोई प्रसंग उठा सकते थे।

मध्यकाल में वाममार्गियों के प्रभाव से यज्ञ आदि में मांस की परम्परा प्रारम्भ हुई। मांसाहार के प्रेमी विद्वानों ने यथास्थान मांसाहार, पशुबलि आदि के प्रतिपादक वचन प्रक्षिप्त रूप में जोड़ दिए हैं, अतः परकालीन आचार्यों को कहना पड़ा है कि कलियुग में पशुबलि और गोहत्या आदि शिष्टसंमत नहीं हैं, अतः त्याज्य हैं। जैसे---(१) देवरेण सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः। ...इमान् धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः।। बृहन्नारदीयपुराण। (२) पारस्करगृह्यसूत्र के अर्हणप्रकारनिरूपण में भाष्यकार हरिहर का कथन है कि सूत्रों में वर्णित गवालम्भ (गो-हत्या) कलिकाल में त्याज्य है, क्योंकि यह अस्वर्ग्य और लोकविद्विष्ट है।

वस्तुतः मनु आदि स्मृति-ग्रन्थ मांसाहार, मांस-सेवन और पशु-हत्या का घोर विरोध करते हैं। वानप्रस्थ और संन्यासियों के लिए किसी भी अवस्था में मांसाहार क्षम्य नहीं है। उदाहरणार्थ इस विषय से संबद्ध मनुस्मृति के कुछ श्लोक विचारार्थ नीचे दिए जा रहे हैं:---

१. योऽहिंसकानि भूतानि, हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
स जीवंश्च मृतश्चैव, न क्वचित् सुखमेधते।।(५-४५)

२. यो बन्धनवधक्लेशान्, प्राणिनां न चिकीर्षति।
स सर्वस्य हितप्रेप्सुः, सुखमत्यन्तमश्नुते।।(५-४६)

३. यद् ध्यायति यत् कुरुते, धृतिं बध्नाति यत्र च।
तदवाप्नोत्ययत्नेन, यो हिनस्ति न किंचन।।(५-४७)

४. नाकृत्वा प्राणिनां हिंसां, मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसं विवर्जयेत्।।(५-४८)

५. समुत्पत्तिं च मांसस्य, वधबन्धौ च देहिनाम्।
प्रसमीक्ष्य निवर्तेत, सर्वमांसस्य भक्षणात्।।(५-४९)

(विहितमांसभक्षणादपि निवर्तेत, कुल्लूकभट्टः)

६. अनुमन्ता विशसिता, निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च, खादकश्चेति घातकाः।।(५-५१)

७. वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन, यो यजेत शतं समाः।
मांसानि च न खादेद् यस्तयोः पुण्यफलं समम् ॥ (५-५३)

८. मां स भक्षयिताऽमुत्र, यस्य मांसमिहाद्म्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं, प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ (५-५५)

(वानप्रस्थ और संन्यासी के कर्तव्य)

९. वर्जयेन्मधुमांसं च० (६-१४)

१०. पुष्पमूलफलैर्वापि, केवलैर्वर्तयेत् सदा।
कालपक्वैः स्वयं शीर्णैर्वैखानसमते स्थितः ॥ (६-२१)

११. यस्मादण्वपि भूतानां, द्विजान्नोत्पद्यते भयम्।
तस्य देहाद् विमुक्तस्य, भयं नास्ति कुतश्चन ॥ (६-४०)

१२. अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ (६-६०)

१५. दण्डायनः—अनिवृत्तमांसानामेवं कल्पं व्याहरन्ति केचित्। निवृत्तमांसस्तु तत्रभवान् जनकः।

दण्डायन—कुछ धर्मशास्त्रकारों ने ऐसे व्यक्तियों के लिए ही समांस मधुपर्क का विधान किया है, जिन्होंने मांस खाना नहीं छोड़ा है। पूजनीय जनक ने तो मांस खाना छोड़ दिया है।

१६. सौधातकिः—किंनिमित्तम्? [किंणिमित्तं?]

सौधातकि—किस लिए?

१७. दण्डायनः—यद्देव्याः सीतायास्तादृशं दैवदुर्विपाकमुपश्रुत्य वैखानसः संवृत्तः, तस्य कतिपयसंवत्सरश्चन्द्रद्वीपतपोवने तपस्तप्यमानस्य।

दण्डायन—महारानी सीता के भाग्य के ऐसे दुष्परिणाम को सुनकर राजर्षि जनक वानप्रस्थ हो गए हैं और उन्हें चन्द्रद्वीप नाम के तपोवन में तपस्या करते हुए कई वर्ष बीत गए हैं।

१८. सौधातकिः---ततः किमित्यागतः ? [तदो किंति आअदो ?]

सौधातकि---तो वे यहाँ क्यों आए हैं ?

१९. दण्डायनः---संप्रति च प्रियसुहृदं भगवन्तं प्राचेतसं द्रष्टुम् ।

दण्डायन---इस समय वे अपने प्रिय मित्र भगवान् वाल्मीकि से मिलने आए हैं।

२०. सौधातकिः---अप्यद्य सम्बन्धिनीभिः समं निर्वृत्तं दर्शनमस्य न वेति ? [अवि अज्ज संबंधिणीहिं समं णिउत्तं दंसणं से ण वेत्ति ?]

सौधातकि---तो क्या आज उनका अपनी सम्बन्धिनियों (कौसल्या आदि समधिनों) से मिलना हुआ या नहीं ?

२१. दण्डायनः---संप्रत्येव भगवता वसिष्ठेन देव्याः कौसल्यायाः सकाशं भगवत्यरुन्धती प्रहिता यत् स्वयमुपेत्य स्नेहादयं द्रष्टव्य इति ।

दण्डायन---अभी-अभी भगवान् वसिष्ठ ने महारानी कौसल्या के पास भगवती अरुन्धती को (यह कहने के लिए) भेजा है कि---'स्वयं जाकर स्नेहपूर्वक महाराज जनक से मिलिए ।'

२२. सौधातकिः---यथैते स्थविराः परस्परं मिलिताः, तथावामपि वटुभिः सह मिलित्वाऽनध्यायमहोत्सवं खेलन्तो मानयावः । अथ कुत्र स जनकः ? [जह एदे ट्ठविरा परप्परं मिलिदा, तह अम्हे वि वडुहिं सह मिलिअ अणज्झाअमहुस्सवं खेलंतो माणेम्ह । अह कुत्थ सो जणओ ?]

सौधातकि--जिस प्रकार ये बुड्ढे परस्पर मिल गए हैं, उसी प्रकार हम दोनों भी अन्य विद्यार्थियों के साथ मिलकर खेलते हुए अनध्याय (छुट्टी) के महोत्सव को मनाएँ। वे राजर्षि जनक कहाँ हैं?

टिप्पणी

(१) **अनिवृत्त०**--जिन्होंने मांसभक्षण नहीं छोड़ा है। मांसात् अनिवृत्तः, तेषाम्, तत्पु०। राजदन्तादिषु परम् (२-२-३१) से बाद में प्रयोग के योग्य अनिवृत्त का पूर्व प्रयोग। (२) **कल्प**--शास्त्रीय विधि। (३) **व्याहरन्ति**--कहते हैं। वि+आ+हृ+लट् प्र० ३। (४) **निवृत्तमांसः**--जिसने मांसभक्षण छोड़ दिया है। मांसात् निवृत्तः, तत्पु०। निवृत्त का पूर्व प्रयोग। (५) **दैव०**--दैव--भाग्य, दुर्विपाक--दुष्परिणाम। भाग्य के दुष्परिणाम को। (६) **उपश्रुत्य**--सुनकर। उप+श्रु+ल्यप्। (७) **वैखानसः**--वानप्रस्थ। वैखानस के विवरण के लिए देखो अंक १ श्लोक २५ की व्याख्या। (८) **संवृत्तः**--हो गए। सम्+वृत्+क्त। (९) **चन्द्रद्वीप०**--चन्द्रद्वीपनामक तपोवन में। चन्द्रद्वीपम् एव तपोवनम्, तस्मिन्, कर्मधा०। (१०) **तप०**--तप करते हुए को। तपः पहले होने पर तप् धातु का कर्मकर्ता में प्रयोग होता है। तपस्तपःकर्मकस्यैव (३-१-८८) से कर्मकर्ता में प्रयोग और कर्मवाच्य के तुल्य रूप होंगे। तप्यमानस्य--तप्+कर्मकर्ता में यक्+शानच्+ष० १। (११) **निर्वृत्तम्**--हो गया, पूरा हो गया। निर्+वृत्+क्त। (१२) **प्रहिता**--भेजी गई है। प्र+हि+क्त+टाप्। (१३) **उपेत्य**--आकर। उप+इ+ल्यप्। बीच में तुक् का आगम। (१४) **द्रष्टव्यः**--मिलें। अर्थात् कौसल्या स्वयं जाकर जनक से मिलें। दृश्+तव्य। (१५) **स्थविराः**--वृद्ध। (१६) **अनध्याय०**--छुट्टी के महोत्सव को। अनध्यायस्य महोत्सवम्, तत्पु०। अनध्याय--छुट्टी। (१७) **खेलन्तः**--खेलते हुए। खेल्+शतृ+प्र० ३। (१८) **मानयावः**--मनाएँ। मन्+णिच्+लट् उ० २।

२३. दण्डायनः--**तथायं प्राचेतसवसिष्ठावुपास्य संप्रत्याश्रमस्य बहिर्वृक्षमूलमधितिष्ठति। य एषः--**

हृदि नित्यानुषक्तेन सीताशोकेन तप्यते।
अन्तःप्रसृप्तदहनो जरन्निव वनस्पतिः ।।२।।

(इति निष्क्रान्तौ।)

(इति मिश्रविष्कम्भः।)

अन्वय--हृदि नित्यानुषक्तेन सीताशोकेन अन्तःप्रसृप्तदहनः जरन् वनस्पतिः इव तप्यते।

दण्डायन--वे (जनक) अभी महर्षि वाल्मीकि और वसिष्ठ को प्रणाम करके आश्रम के बाहर पेड़ के नीचे बैठे हुए हैं।

हृदय में निरन्तर विद्यमान सीता के शोक से ये जनक उसी प्रकार सन्तप्त हो रहे हैं, जैसे जीर्ण वृक्ष, जिसके अन्दर आग फैली हुई है, जलता है।।२।।

(दोनों का प्रस्थान)

मिश्रविष्कम्भकसमाप्त।

संस्कृत-व्याख्या

हृदि--हृदये, नित्या०--नित्यं निरन्तरम् अनुषक्तेन व्याप्तेन, सीताशोकेन--जानकीवियोगजन्यदुःखेन, अन्तः०--अन्तः अभ्यन्तरे प्रसृप्तः व्याप्तः दहनः वह्निः यस्य सः, जरन्--जीर्णः, वनस्पतिः इव--वृक्ष इव, तप्यते--सन्तापम् अनुभवति। अत्रोपमाऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **प्राचेतस०**--वाल्मीकि और वसिष्ठ को। प्राचेतस--वाल्मीकि, प्रचेतस् के पुत्र। (२) **उपास्य**--उपासना या पूजा करके। यहाँ प्रणाम करना अभिप्राय है। उप+आस्+ल्यप्। (३) **वृक्षमूलम्०**--पेड़ की जड़ में अर्थात् पेड़ के नीचे बैठे हैं। यहाँ पर अधितिष्ठति के कारण अधिशीङ्० (१-४-४६) से वृक्षमूलम् में द्वितीया है। (४) **नित्या०**--नित्य--सदा, अनुषक्त--व्याप्त। जनक के हृदय में सीता के वियोग का दुःख सदा व्याप्त है। अनुषक्त--अनु+सञ्ज्+क्त। नित्यम् अनुषक्तेन, सुप्सुपा समास। (५) **तप्यते**--तप रहा है। कर्मवाच्य में लट् प्र० १। (६) **अन्तः०**--अन्तः--अन्दर, प्रसृप्त--व्याप्त है, दहनः--

अग्नि जिसके। अन्तः प्रसुप्तः दहनः यस्य सः, बहु०। प्रसुप्त--प्र+सुप्+क्त। (७) जरन्--जीर्ण, पुराना। जनक भी जीर्ण वृक्ष के तुल्य वृद्ध हैं और उनके हृदय में सीता-विषयक शोक की अग्नि है। जरन्--जॄ+शतृ प्र० १। (८) इस श्लोक में जरन् इव में इव के द्वारा उपमा है। (९) मिश्रविष्कम्भक--इस विष्कम्भक में एक शिष्य दण्डायन मध्यमपात्र है, वह संस्कृत में बोलता है और दूसरा शिष्य निम्न श्रेणी का पात्र है, वह प्राकृत में बोलता है। अतः यह मिश्र विष्कम्भक है। **विष्कम्भक का लक्षण है**--वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः। संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः॥ मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः। शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः॥ (सा० दर्पण ६-५५,५६)

(ततः प्रविशति जनकः)

२४. (क) जनकः--

अपत्ये यत्तादृग्दुरितमभवत्तेन महता
विषक्तस्तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयता।
पटुर्धारावाही नव इव चिरेणापि हि न मे
निकृन्तन्मर्माणि क्रकच इव मन्युर्विरमति॥३॥

अन्वय--अपत्ये यत् तादृक् दुरितम् अभवत्, महता तीव्रेण व्रणितहृदयेन व्यथयता तेन विषक्तः, पटुः धारावाही चिरेण अपि हि नवः इव मे मन्युः क्रकचः इव मर्माणि निकृन्तन् न विरमति।

(तदनन्तर जनक का प्रवेश)

जनक--मेरी सन्तान (अर्थात् पुत्री सीता) के विषय में जो उस प्रकार का अनर्थ (लोकापवाद के कारण परित्याग) हुआ, उस महान्, तीक्ष्ण, हृदय में घाव करने वाले तथा पीड़ाजनक उस (परित्याग) से संबद्ध, (हृदय-विदारण में) समर्थ, निरन्तर रहने वाला, चिरकाल के बाद भी नवीन सा मेरा यह शोक आरे के तुल्य मर्मस्थलों को काटता हुआ शान्त नहीं होता है॥३॥

संस्कृत-व्याख्या

अपत्ये—सन्ताने सीतायामित्यर्थः, यत्, तादृक्—तादृशम्, दुरितं—लोकापवादजनितं परित्यागरूपं व्यसनम्, अभवत्—जातम्। महता—विशालेन, तीव्रेण—तीक्ष्णेन, व्रणित०—व्रणितं व्रणयुक्तं हृदयं मानसं येन तेन, व्यथयता—दुःखम् उत्पादयता, तेन—दुरितेन, विषक्तः—संबद्धः, तेन दुरितेन हृदये जनित इत्यर्थः, पटुः—हृदयविदारणे समर्थः, धारावाही—निरन्तरं प्रसृतः, चिरेण अपि हि—चिरकालानन्तरमपि, नव इव—नूतन इव, मे—मम जनकस्य, मन्युः—शोकः क्रोधो वा, क्रकच इव—करपत्रमिव, मर्माणि—मर्मस्थलानि, निकृन्तन्—छिन्दन्, न—नैव, विरमति—शाम्यति, न शान्तिमेतीत्यर्थः। अत्रोत्पेक्षोपमा चालंकारौ। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अपत्ये**—सन्तान के बारे में अर्थात् पुत्री सीता के बारे में। (२) **दुरितम्**—अनर्थ, विपत्ति। यहाँ पर लोकापवाद के कारण सीता के परित्यागरूपी अनर्थ से अभिप्राय है। दुर्+इ+क्त। (३) **विषक्तः**—संबद्ध। वि+सञ्ज्+क्त। इसका अभिप्राय है कि उस अनर्थ से मेरे हृदय में उत्पन्न शोक। (४) **तीव्रेण**—तीक्ष्ण। वह अनर्थ तीक्ष्ण होने से दुःखद है। (५) **व्रणित०**—व्रणित—घाव से युक्त है, हृदयेन—हृदय जिससे। व्रणितं हृदयं येन तेन, बहु०। व्रणितम्—व्रणं संजातम् अस्य, व्रण+इत। तदस्य संजातं० (५-२-३६) से इतच् प्रत्यय। (६) **व्यथयता**—दुःख देने वाले। व्यथ्+णिच्+शतृ+तृ० १। मितां ह्रस्वः (६-४-९२) से उपधा के आ को ह्रस्व। (७) **पटुः**—समर्थ। अर्थात् सीताविषयक शोक मेरे हृदय को फाड़ देने में समर्थ है। (८) **धारावाही**—निरन्तर बहने वाली अर्थात् निरन्तर मेरे हृदय में व्याप्त। धारया वहतीति, धारा+वह्+णिनि (इन्)+प्र० १। (९) **नव इव**—मानो नया शोक हो। शोक पुराना होने पर भी नए शोक के सदृश है। (१०) **निकृन्तन्०**—काटता हुआ, मर्मस्थलों को काटता हुआ। नि+कृत्+शतृ+प्र०१। (११) **क्रकच इव**—आरे के तुल्य। आरा जिस प्रकार लकड़ी को काटता है, उसी प्रकार शोक मेरे मर्मस्थलों को छिन्न-भिन्न कर रहा है। (१२) **मन्युः**—शोक, सीता-विषयक दुःख। मन्यु का अर्थ क्रोध भी है। क्रोध अर्थ भी लिया जा सकता है। मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि, इत्यमरः।

(१३) **विरमति**––रुकता है, शान्त होता है। मेरा शोक शान्त नहीं होता है। व्याङ्परिभ्यो रमः (१-३-८३) से वि+रम् परस्मैपदी होती है। (१४) नव इव में इव उत्प्रेक्षा-सूचक है, अतः उत्प्रेक्षा है। क्रकच इव में इव के द्वारा उपमा है।

२४. (ख) कष्टं एवं नाम जरया दुःखेन च दुरासदेन भूयः पराकसांतपनप्रभृतिभिस्तपोभिः शोषितान्तःशरीरधातोरवष्टम्भ एव। अद्यापि मम दग्धदेहो न पतति। अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकाः प्रेत्य तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिन इत्येवमृषयो मन्यन्ते। अनेकसंवत्सरातिक्रमेऽपि प्रतिक्षणपरिभावनास्पष्टनिर्भासः प्रत्यग्र इव न मे दारुणो दुःखसंवेगः प्रशाम्यति। अयि मातः देवयजनसंभवे सीते! ईदृशस्ते निर्माणभागः परिणतः, येन लज्जया स्वच्छन्दमप्याक्रन्दितुं न शक्यते। हा पुत्रि,

अनियतरुदितस्मितं विराज-
त्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम्।
वदनकमलकं शिशोः स्मरामि
स्खलदसमञ्जसमञ्जुजल्पितं ते ॥४॥

अन्वय––अनियतरुदितस्मितं विराजत्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रं स्खलदसमञ्जसमञ्जुजल्पितं शिशोः ते वदनकमलकं स्मरामि।

जनक––खेद की बात है कि इस प्रकार वृद्धावस्था तथा दुःसह दुःखों से और फिर पराक तथा सांतपन आदि शरीरशोधक व्रतों से शरीर की आन्तरिक धातुओं के सुखा दिए जाने पर भी मेरा शरीर रुका हुआ है। आज भी मेरा यह अधम शरीर नष्ट नहीं हो रहा है। ऋषियों का मन्तव्य है कि जो आत्मघाती (आत्महत्या करने वाले) होते हैं, वे मर कर उन लोकों को जाते हैं,

जहाँ पर घोर अन्धकार रहता है और कभी सूर्य का प्रकाश नहीं होता। (अतः मैं आत्महत्या नहीं कर सकता)। अनेक वर्षों के बीतने पर भी प्रतिक्षण सीता-विषयक चिन्तन से स्पष्ट प्रकाशयुक्त और नवीन सा यह मेरा कठोर दुःख का आवेग शान्त नहीं होता है। हे पूजनीय, यज्ञभूमि से उत्पन्न सीता, तुम्हारे जन्म-जात भाग्य का ऐसा परिणाम हुआ कि लज्जा के कारण स्वतन्त्रतापूर्वक रो भी नहीं सकता हूँ। हा पुत्री,

अनियमित रूप से रोने और हँसने वाले, कलियों के अग्रभाग के तुल्य कोमल कुछ दाँतों से सुशोभित, तोतली असंगत और मधुर ध्वनि से युक्त, बाल्यावस्था के तुम्हारे मुख-कमल को मैं स्मरण कर रहा हूँ ।।४।।

संस्कृत-व्याख्या

अनियत०––अनियते कारणाभावाद् अनियमिते रुदितस्मिते रोदनहासौ यस्मिन् तत्, विराजत्०––विराजन्ति शोभमानानि कतिपयानि कानिचित् कोमलानि सुकुमाराणि दन्तकुड्मलाग्राणि दशनमुकुलाग्राणि यस्मिन् तत्, स्खलद०––स्खलत् अपरिस्फुटम् असमञ्जसम् असंबद्धं मञ्जु मनोहरं जल्पितं कथनं यस्मिन् तत्, शिशोः––बाल्यावस्थायां वर्तमानायाः, तव––सीतायाः, वदनकमलकं––मुख-कमलम्, स्मरामि––चिन्तयामि। अत्रोपमा स्वभावोक्तिश्चालंकारौ। पुष्पिताग्रा वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **जरया**––बुढ़ापे से। जरा शब्द का तृ० १ में जरसा भी रूप बनता है। जराया जरस० (७-२-१०१) से जरा को विकल्प से जरस्। जरया, दुःखेन और तपोभिः का संबन्ध शोषितान्तः० से है। (२) **दुरासदेन**––दुःसह, जो पाया न जा सके अर्थात् जिसको रोकने का कोई उपाय न हो। दुःखेन आसाद्यते इति दुरासदः, दुर्+आ+सद्+खल् (अ)। (३) **पराक०**––पराक और सांतपन आदि। पराकश्च सांतपनं च (द्वन्द्व०), ते प्रभृतिनी आद्ये येषां तैः, बहु०। पराक और सांतपन ये दोनों शरीरशुद्ध्यर्थ कठिन व्रत हैं। पराक में इन्द्रियों और मन को वश में रखते हुए १२ दिन उपवास करना पड़ता था। पराक का लक्षण है––द्वादशाहोपवासेन पराकः परिकीर्तितः। (याज्ञवल्क्यस्मृति ३-३२१)। यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभो-

जनम् । पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापापनोदनः । (मनु० ११-२१५) । सान्तपन में पहले दिन पंचगव्य और कुशोदक का पान किया जाता था और दूसरे दिन उपवास किया जाता था। सांतपन का लक्षण है—गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । जग्ध्वा परेऽह्न्युपवसेत् कृच्छ्रं सान्तपनं परम् ।। (याज्ञ० ३-३१५) । गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् । एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ।। (मनु० ११-२१२) । (४) **शोषिता०**—शोषित—सुखा दी गई हैं, अन्तःशरीर—शरीर के अन्दर की, धातवः—धातुएँ जिसके । शोषिताः अन्तःशरीर-धातवः यस्य तस्य, बहु० । (५) **अवष्टम्भः**—रुका हुआ है । अर्थात् इतने तप आदि करने पर भी मेरा शरीर नष्ट नहीं हो रहा है । अव+स्तम्भ्+घञ् । (६) **दग्ध-देहः**—नीच शरीर । दग्धः देहः, कर्मधा० । दग्ध—जला हुआ, नीच, अधम । दग्ध—दह्+क्त । (७) **न पतति**—नहीं नष्ट होता है । (८) **अन्धतामिस्राः**—घोर अन्धकार से युक्त । अन्धं तामिस्रं येषु ते, बहु० । तमिस्रम् एव तामिस्रम्, स्वार्थ में अण् है । (९) **असूर्याः**—सूर्य-रहित, जहाँ पर कभी भी सूर्य की किरणें नहीं पहुँचती हैं । अविद्यमानः सूर्यः येषु ते, बहु० । (१०) **प्रेत्य**—मरकर । प्र+इ+ल्यप् । बीच में त् का आगम । (११) **प्रतिविधीयन्ते**—निर्धारित किए गए हैं, बताए गए हैं । आत्मघातियों के लिए असूर्य लोक निर्धारित हैं । प्रति+वि+धा+कर्मवाच्य लट् प्र० ३ । (१२) **आत्मघातिनः**—आत्महत्या करने वाले । आत्मानं घ्नन्ति इति ते, आत्मन्+हन्+णिनि (इन्)+प्र० ३ । उपधा के अ को वृद्धि और न् को त् । यह यजुर्वेद (४०-३) का रूपान्तर है । यजुर्वेद का मन्त्र है—असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः । तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः । (यजु० ४०-३) । (१३) **अनेक०**—अनेक वर्ष बीतने पर भी । अनेके संवत्सराः (कर्मधा०), तेषाम् अतिक्रमः, तस्मिन्, तत्पु० । (१४) **प्रतिक्षण०**—प्रतिक्षण—निरन्तर, परिभावना—चिन्तन से, स्पष्टनिर्भासः—स्पष्ट प्रकाश वाला । प्रतिक्षणं परिभावनया स्पष्टः निर्भासः यस्य सः, बहु० । परिभावना—परि+भू+णिच्+युच् (अन)+टाप् । ण्यासश्रन्थो० (३-३-१०७) से युच् । (१५) **दुःखसंवेगः**—दुःख का आवेग या प्रवाह । दुःखस्य संवेगः, तत्पु० । (१६) **अयि मातः**—हे माता, हे पूजनीया । यहाँ पर माता का पूजनीय या आदरणीय अर्थ में प्रयोग है। सीता को पवित्रात्मा मानकर जनक बहुत आदर करते हैं । स्नेह और आदर-

सूचक संबोधन है। (१७) **देवयजन०**—देवयजन—यज्ञभूमि से, संभवे—उत्पन्न। देवाः इज्यन्ते अस्मिन् इति देवयजनम् (उपपदसमास), तस्मात् संभवः यस्याः सा, तत्संबुद्धिः, बहु०। (१८) **निर्माणभागः**—निर्माण—जन्मसमय का, भागः—भाग्य। जन्मजात भाग्य। निर्माणस्य भागः, तत्पु०। (१९) **परिणतः**—परिणाम हुआ। परि+नम्+क्त। (२०) **आक्रन्दितुम्**—रोना, चिल्लाना, शोक करना। (२१) **अनियत०**—अनियत—अनियमित, रुदित—रोना, स्मित—हँसना या मुस्कराना। बच्चे अकारण रोते हँसते हैं। अतः उनके रोने और हँसने में कोई नियम नहीं है। रुदितं च स्मितं च (द्वन्द्व), अनियते रुदितस्मिते यस्मिन् तत्, बहु०। (२२) **विराजत्०**—विराजत्—सुशोभित, कतिपय—कुछ, कोमल—मृदु, दन्तकुड्मलाग्रम्—कलियों के अग्र भाग के तुल्य दाँतों वाले। विराजन्ति कतिपयानि कोमलानि दन्तकुड्मलाग्राणि यस्मिन् तत्, बहु०। (२३) **वदन०**—मुखकमल को, कमल के तुल्य मुख को। वदनं कमलम् इव, उपमित तत्पु०। अल्प अर्थ या अनुकम्पा अर्थ में कन् (क) प्रत्यय। (२४) **स्खलद०**—स्खलत्—तोतले, अस्पष्ट या अपूर्ण, असमञ्जस—असंबद्ध या असंगत, मञ्जु—मनोहर, जल्पितम्—वचन से युक्त। स्खलत् असमञ्जसं मञ्जु जल्पितं यस्मिन् तत्, बहु०। स्खलत्—स्खल्+शतृ। (२५) दन्तकुड्मलाग्रम् और वदनकमलकम् में इव लुप्त होने से लुप्तोपमा है। पूरे श्लोक में स्वभावोक्ति अलंकार है। मालती-माधव (१०-२) में भी यह श्लोक आया है। कालिदास के इस श्लोक से इसकी तुलना करें—आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासैरव्यक्तवर्णरमणीयवचःप्रवृत्तीन्। (शाकुन्तल ७-१७)

२४. (ग) भगवति वसुन्धरे, सत्यमतिदृढासि।

त्वं वह्निर्मुनयो वसिष्ठगृहिणी गङ्गा च यस्या विदु-
र्माहात्म्यं यदि वा रघोः कुलगुरुर्देवः स्वयं भास्करः।
विद्यां वागिव यामसूत भवती शुद्धिं गतायाः पुन-
स्तस्यास्त्वद्दुहितुस्तथा विशसनं किं दारुणेऽमृष्यथाः॥ ५॥

पाठभेद—२४ (ग). का० काले—तद्वत्तु या दैवतम् (उसी के समान जो देवता है)। नि० मृष्यथाः (सहा)।

अन्वय—हे दारुणे, यस्याः माहात्म्यं त्वं, वह्निः, मुनयः, वसिष्ठगृहिणी, गङ्गा च, यदि वा रघोः कुलगुरुः देवः भास्करः स्वयं विदुः, वाक् विद्याम् इव भवती याम् असूत, शुद्धि गतायाः तस्याः त्वद्दुहितुः पुनः तथा विशसनं किम् अमृष्यथाः।

जनक—भगवती पृथिवी, वस्तुतः तुम अत्यन्त कठोर हो।

हे कठोर हृदय वाली (पृथिवी), जिस (सीता) की महिमा को तुम, अग्नि देवता, मुनि-लोग, वसिष्ठ की पत्नी (अरुन्धती) और गंगा तथा रघुवंश के आदि-पुरुष सूर्यदेव स्वयं जानते हैं। वाग्देवता ने जिस प्रकार विद्या को उसी प्रकार आपने जिसको जन्म दिया है और जो (अग्निपरीक्षा के द्वारा) शुद्ध हो चुकी थी, उस अपनी पुत्री की फिर इस प्रकार परित्यागरूपी हिंसा को तुमने कैसे सहन किया? ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या

हे दारुणे—हे कठिनहृदये पृथिवि, यस्याः—सीतायाः, माहात्म्यं—महत्त्वम्, त्वं—भवती पृथिवी, वेत्थ इति शेषः, वह्निः—अग्निदेवः, मुनयः—वसिष्ठवाल्मीकिप्रभृतय ऋषयः, वसिष्ठगृहिणी—अरुन्धती, गङ्गा च—भागीरथी च, यदि वा—अथवा, रघोः—रघुवंशस्य, कुलगुरुः—आदिपुरुषः, देवः भास्करः—भगवान् सूर्यः, स्वयं—स्वयमेव, विदुः—जानन्ति। वाक्—सरस्वती, विद्याम् इव—ज्ञानमिव शास्त्रादिकमित्यर्थः, भवती—त्वं पृथिवी, यां—जानकीम्, असूत—प्रसूतवती, शुद्धिम्—अग्निपरीक्षया पवित्रताम्, गतायाः—प्राप्तायाः, तस्याः—तादृश्याः, त्वद्दुहितुः—तव पुत्र्याः सीतायाः, पुनः—भूयोऽपि, तथा—तेन प्रकारेण, विशसनं—परित्यागरूपेण हननम्, किं—कथम्, अमृष्यथाः—सोढवती। अत्र तुल्ययोगितोपमा चालंकारौ। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **वसुन्धरे**—हे पृथिवी। वसुओं को धारण करने वाली। पृथिवी सारे जीवों को धारण करती है, अतः अत्यन्त कठोर और दृढ़ है। पृथिवी के लिए वसुन्धरा सार्थक प्रयोग है। (२) **त्वं**—तू पृथिवी। यहाँ पर क्रिया वेत्थ का अध्याहार करना चाहिए। हे पृथिवी, तुम सीता के महत्त्व को जानती हो।

(३) **वसिष्ठगृहिणी**––अरुन्धती। वसिष्ठस्य गृहिणी, तत्पु०। (४) **विदुः**–– जानते हैं। यह विद् के लट् लकार प्र०३ का रूप है। विदो लटो वा (३-४-८३) से लट् लकार में विकल्प से लिट् वाले प्रत्यय लगते हैं। भवभूति ने श्लोक में केवल विदुः का प्रयोग किया है। इसका प्रत्येक के साथ यथायोग्य रूप बनाकर प्रयोग होगा, जैसे––त्वं वेत्थ, वह्निः वेद, मुनयः विदुः, वसिष्ठगृहिणी वेद, गङ्गा वेद, देवः भास्करः वेद। एकशेष के आधार पर विदुः रूप मानने में कठिनाई यह है कि प्र० पु० और म० पु० के समाहार में मध्यमपुरुष शेष रहेगा। श्लोक में त्वम् पद है, अतः म० पु० बहुवचन आना चाहिए। अतः विदुः का यथायोग्य रूप बना कर यहाँ अर्थ करना चाहिए। अथवा त्वम् के लिए वेत्थ का अध्याहार करके अन्यों के लिए विदुः प्रयोग उचित माना जा सकता है। (५) **माहात्म्यम्**––महिमा, महत्त्व। महात्मनः भावः, महात्मन्+ष्यञ् (य)। (६) **रघोः कुलगुरुः०**–– इसके दो अर्थ संभव हैं :––(क) रघुवंश के कुलगुरु वसिष्ठ। (ख) रघुवंश के आदिपुरुष भगवान् भास्कर। मुनयः में वसिष्ठ का ग्रहण हो जाता है, अतः मुनयः के बाद वसिष्ठगृहिणी पद है। इसलिए कुलगुरुः का संबन्ध भास्कर से मानना अधिक उचित है। रघोः कुलगुरुः में सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समासः। जैसे–– देवदत्तस्य गुरुकुलम् में समास होता है। रघोः कुलस्य गुरुः, रघोः कुलगुरुः, तत्पु०। (७) **वागिव**––सरस्वती जैसे विद्या को जन्म देती है। विद्या का अभिप्राय शास्त्र आदि से है। (८) **असूत**––जन्म दिया। सू+लङ+प्र० १। (९) **त्वद्दुहितुः**–– तेरी पुत्री सीता का। तव दुहिता, तस्याः, तत्पु०। (१०) **विशसनम्**––हिंसा, हत्या, वध। लोकापवाद के कारण सीता का परित्यागरूपी वध। वि+शस्+ ल्युट्। (११) **अमृष्यथाः**––सहा। मृष्+लङ+म० १। (१२) इस श्लोक में प्रस्तुत त्वम् वह्निः आदि का एक क्रिया विदुः के साथ संबन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है। वागिव में इव उपमाबोधक है, अतः उपमा है।

(नेपथ्ये)

२५. इत इतो भगवतीमहादेव्यौ।

(नेपथ्य में)

भगवती (अरुन्धती) और महादेवी (कौसल्या), इधर से आइए, इधर से।

२६. जनकः—(दृष्ट्वा) अये, गृष्टिनोपदिश्यमान-मार्गा भगवत्यरुन्धती। (उत्थाय) कां पुनर्महादेवीत्याह। (निरूप्य) हा हा, कथमियं महाराजस्य दशरथस्य धर्मदाराः प्रियसखी मे कौसल्या? क एतां प्रत्येति सैवेयमिति नाम?

(क) आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः
श्रीरेव वा किमुपमानपदेन सैषा।
कष्टं बतान्यदिव दैववशेन जाता
दुःखात्मकं किमपि भूतमहो विकारः ॥६॥

(ख) य एव मे जनः पूर्वमासीन्मूर्तो महोत्सवः।
क्षते क्षारमिवासह्यं जातं तस्यैव दर्शनम् ॥७॥

अन्वय—(क) इयं दशरथस्य गृहे श्रीः यथा आसीत्, वा श्रीः एव, उपमानप-देन किम्। कष्टं बत ! दैववशेन अन्यत् किमपि दुःखात्मकं भूतम् इव जाता, अहो विकारः।

(ख) यः एव जनः पूर्वं मे मूर्तः महोत्सवः आसीत्। (अद्य) तस्य एव दर्शनं क्षते क्षारम् इव असह्यं जातम् ॥

जनक—(देखकर) अरे, यह भगवती अरुन्धती हैं, जिन्हें गृष्टिनामक कंचुकी मार्ग दिखा रहा है। (उठकर) अच्छा तो 'महारानी' किसे कहा है? (ध्यान से देखकर) हाय, हाय, क्या यह महाराज दशरथ की धर्मपत्नी और मेरी प्रिय सखी कौसल्या हैं? कौन इनको पहचान सकता है कि यह वही (कौसल्या) हैं?

(क) यह महाराज दशरथ के राजभवन में लक्ष्मी के तुल्य थीं, अथवा स्वयं लक्ष्मी ही थीं, उपमा-वाचक (यथा) शब्द की क्या आवश्यकता है? परन्तु हाय, खेद की बात है कि दुर्भाग्यवश (आज वही) अन्य किसी अतिदुःखित जीव के तुल्य हो गई हैं। ओह, क्या दुष्परिणाम है! ॥६॥

पाठभेद—२६ (क)—का० वाले—विपाकः (दुःखद परिणाम)।

(ख) जो यह व्यक्ति (कौसल्या) पहले मेरे लिए मूर्तिमान् महोत्सव थी, आज उसका ही दर्शन मेरे लिए घाव पर नमक के तुल्य असह्य हो गया है।।७।।

संस्कृत-व्याख्या

(क) इयं—कौसल्या, दशरथस्य—रामस्य पितुः, गृहे—भवने, श्रीः यथा—लक्ष्मीरिव, आसीत्—अभवत्। वा—अथवा, श्रीः एव—साक्षात् लक्ष्मीरेवासीत्। उपमानपदेन—उपमाबोधकयथाशब्देन, किं—किं प्रयोजनम्, न कोऽपि लाभ इत्यर्थः। कष्टं—दुःखम्, बत—हा, दैववशेन—दुर्भाग्यवशात्, अन्यत्—अपरम्, किमपि—अनिर्वचनीयम्, दुःखात्मकं—दुःखस्वरूपम्, भूतमिव—जीववत्, जाता—संवृत्ता। अहो—आश्चर्यम्, विकारः—परिणामः, दुष्परिणाम इत्यर्थः। अत्रोपमोत्प्रेक्षाऽतिशयोक्तिश्चालंकाराः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

(ख) य एव जनः—कौसल्यारूपो जनः, पूर्वं—पुरा, मे—मम जनकस्य, मूर्तः—मूर्तिमान्, महोत्सवः—परमानन्दहेतुः, आसीत्—अभवत्। अद्य तस्यैव—कौसल्यारूपस्य जनस्य, दर्शनं—प्रेक्षणम्, क्षते—व्रणे शस्त्रादिच्छिन्ने स्थाने वा, क्षारमिव—लवणमिव, असह्यं—सोढुम् अशक्यम्, जातं—संवृत्तम्। अत्र रूपकमुपमा चालंकारौ। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **भगवती०**—भगवती अरुन्धती और महारानी कौसल्या। भगवती च महादेवी च, द्वन्द्व०। (२) **गृष्टिना**—गृष्टि महाराज दशरथ के कंचुकी का नाम है। (३) **उपदिश्य०**—जिसको मार्ग बताया जा रहा है। उपदिश्यमानः मार्गः यस्याः सा, बहु०। (४) **धर्मदाराः**—धर्मपत्नी। दार शब्द का पुं० बहु० में ही प्रयोग होता है। दार का अर्थ स्त्री है। (५) **प्रत्येति**—पहचानता है, जानता है। प्रति+इ+लट् प्र० १। (६) **श्रीरेव**—कौसल्या लक्ष्मी के तुल्य नहीं, अपि तु स्वयं लक्ष्मी है। (७) **उपमान०**—उपमा-बोधक यथा शब्द का प्रयोग व्यर्थ है। उपमानबोधकं पदम् उपमानपदम्, तेन, शाकपार्थिवादिवत् समास। (८) **दैववशेन**—दुर्भाग्य से। (९) **दुःखात्मकं०**—अत्यन्त दुःखित। कौसल्या एक अत्यन्त दुःखित सामान्य स्त्री की तरह हो गई है। दुःखम् आत्मा यस्य तत्, बहु०। (१०) **विकारः**—परिणाम। क्या ही दुःखद परिणाम हुआ है। दुःखमग्न होने से क्षीण-

काय कौसल्या अब पहचान में भी नहीं आ रही है। (११) यथा श्रीः में यथा से उपमा है। श्रीरेव में कौसल्या को श्री कहने से अतिशयोक्ति अलंकार है। अन्य-दिव में इव उत्प्रेक्षासूचक है। (१२) **य एव जनः**––जो व्यक्ति अर्थात् महारानी कौसल्या। (१३) **मूर्तः**––मूर्तरूप, मूर्तिमान्, शरीरधारी। मूर्च्छ्+क्त=मूर्त। (१४) **महोत्सवः**—महान् उत्सव, परम आनन्द की वस्तु। महान् उत्सवः, कर्मधा०। (१५) **क्षते०**––घाव पर नमक डालने के तुल्य। यह मुहावरा है। क्षत––चोट या घाव। क्षार––नमक। (१६) **असह्यम्**––न सहने योग्य। न सह्यम्, तत्पु०। सह्य––सह+यत् (य)। शकिसहोश्च (३-१-९९) से यत्। (१७) जब तक सीता दशरथ के घर में सुखपूर्वक थी, तब तक उस परिवार के सभी व्यक्ति परम आनन्द के कारण थे, परन्तु जब से लोकापवाद के कारण राम ने सीता का परि-त्याग कर दिया है, तब से दशरथ के परिवार के सभी लोगों को देखकर दुःख होता है। उन्हें देखकर सीता की स्मृति आती है और उनका दर्शन जले पर नमक का काम करता है। (१८) जनः मूर्तो महोत्सवः में रूपक है। कौसल्या पर महो-त्सव का आरोप है। क्षारमिव में इव के द्वारा उपमा है।

(ततः प्रविशत्यरुन्धती कौसल्या कञ्चुकी च)

२७. अरुन्धती––ननु ब्रवीमि द्रष्टव्यः स्वयमुपेत्यैव वैदेह इत्येवं वः कुलगुरोरादेशः। अत एव चाहं प्रेषिता। तत् कोऽयं पदे पदे महाननध्यवसायः?

(तदनन्तर अरुन्धती, कौसल्या और कंचुकी का प्रवेश)

अरुन्धती––मैं कह रही हूँ कि––स्वयं उनके पास जाकर महाराज जनक से आपको मिलना चाहिए, ऐसा आपके कुलगुरु (वसिष्ठ) की आज्ञा है और इसीलिए उन्होंने मुझे भेजा है। तो फिर आप पद-पद पर यह महान् अनुत्साह क्यों दिखा रही हैं?

२८. कञ्चुकी––देवि, संस्तभ्यात्मानमनुरुध्यस्व भग-वतो वसिष्ठस्यादेशमिति विज्ञापयामि।

कंचुकी--हे महारानी, मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि अपने आपको संभाल कर भगवान् वसिष्ठ की आज्ञा का पालन कीजिए।

२९. कौसल्या--इदृशे काले मिथिलाधिपो मया द्रष्टव्य इति सममेव सर्वदुःखान्यवतरन्ति। तस्मान्न शक्नोम्युद्वर्तमानमूलबन्धनं हृदयं पर्यवस्थापयितुम्। [ईरिसे काले मिहिलाहिवो मए दिट्ठव्वो त्ति समं एव्व सव्वदुक्खाइं ओदरंति। ता ण सक्कणोमि उव्वट्टमाणमूलबंधणं हिअअं पज्जवत्थावेदुं।]

कौसल्या--ऐसे समय (अर्थात् सीता के निर्वासन के समय में) मिथिला के राजा (जनक) से मिलना होगा, इस कारण एक साथ ही सारे दुःख प्रकट हो रहे हैं। इसलिए मैं अपने हृदय को, जिसका मुख्य बन्धन उखड़ रहा है, संभालने में असमर्थ हूँ।

३०. अरुन्धती--अत्र कः सन्देहः?

संतानवाहीन्यपि मानुषाणां
दुःखानि संबन्धिवियोगजानि।
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि
स्रोतःसहस्रैरिव संप्लवन्ते ॥८॥

अन्वय--मानुषाणां संतानवाहीनि अपि संबन्धिवियोगजानि दुःखानि प्रेयसि जने दृष्टे दुःसहानि (सन्ति) स्रोतःसहस्रैः संप्लवन्ते इव।

अरुन्धती--इसमें क्या सन्देह है?

अविच्छिन्न गति से बहने वाले, संबन्धियों के वियोग से उत्पन्न मनुष्यों के दुःख अपने प्रिय जनों के दीखने पर दुःसह होकर हजारों प्रवाहों से बहने-से लगते हैं ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या

मानुषाणां--नराणाम्, संतानवाहीनि अपि--अविच्छिन्नप्रवाहवन्ति अपि, संबन्धिवियोगजानि--संबन्धिनां बन्धूनां वियोगेन विरहेण जातानि, दुःखानि--कष्टानि, प्रेयसि--प्रियतरे, जने--नरे, दृष्टे--अवलोकिते, दुःसहानि (सन्ति)-असह्यानि भूत्वा, स्रोतःसहस्रैः--असंख्यप्रवाहैः, संप्लवन्ते इव--उद्गच्छन्ति इव। अत्र क्रियोत्प्रेक्षाऽलंकारः। इन्द्रवज्रा वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **स्वयमुपेत्य०**--स्वयं पास जाकर। वसिष्ठ ने आज्ञा दी थी कि कौसल्या स्वयं जाकर जनक से मिलें। उपेत्य--उप+इ+ल्यप्। बीच में त् का आगम। (२) **अनध्यवसायः**--अनुत्साह, अनुद्योग, सुस्ती। न अध्यवसायः, नञ् तत्पु०। अध्यवसायः--अधि+अव+सो (सा)+घञ्। आतो युक्० (७-३-३३) से धातु के बाद य् का आगम। सीता के परित्याग के कारण कौसल्या बहुत लज्जित हैं, अतः जनक के सामने जाने में हिचकिचा रही हैं। (३) **संस्तभ्य०**--अपने आपको संभालकर, धैर्य रखकर। सम्+स्तम्भ्+ल्यप्। बीच के म् का लोप। (४) **अनुरुध्यस्व**--अनुसरण कीजिए, पालन कीजिए। अनु+रुध्+लोट् म० १। (५) **विज्ञापयामि**--बताता हूँ, निवेदन करता हूँ। (६) **ईदृशे काले**--ऐसे समय में अर्थात् सीता के परित्याग के बाद। (७) **मिथिलाधिपः**--मिथिला के राजा। मिथिलायाः अधिपः, तत्पु०। बिहार प्रान्त के दरभंगा जिला और उसके समीप के स्थान को मिथिला कहते थे। (८) **अवतरन्ति**--उतरते हैं, हृदय में आते हैं। अव+तॄ+लट् प्र० ३। (९) **उद्वर्तमान०**--उद्वर्तमान--उखड़ रहा है, मूलबन्धनम्--मुख्य बन्धन जिसका। उद्वर्तमानं मूलबन्धनं यस्य तत्, बहु०। उद्वर्तमान--उद्+वृत्+शानच्। (१०) **पर्यवस्थापयितुम्**--संभालने को, स्थिर करने को। परि+अव+स्था+णिच्+तुमुन्। (११) **संतानवाहीनि**--निरन्तर बहने वाले। सन्तानेन वहन्ति इति, सन्तान+वह्+णिनि, नपुं० प्र० ३। (१२) **संबन्धि०**--संबन्धियों के वियोग से उत्पन्न। संबन्धिनां वियोगेन जायन्ते इति, वियोग+जन्+ड (अ)। अन् का लोप। उपपद तत्पु०। (१३) **प्रेयसि**--प्रियतर व्यक्ति के। प्रिय+ईयस्+स० १। प्रियस्थिर० (६-४-१५७) से प्रिय को

प्र आदेश। (१४) दुःसहानि—असह्य होकर। दुर्+सह्+खल् (अ)। (१५) स्रोतःसहस्रैः—हजारों धारों से। स्रोतसां सहस्रैः, तत्पु०। (१६) संप्लवन्ते इव—बहने से लगते हैं। उछलने से लगते हैं। सम्+प्लु+लट् प्र० ३। (१७) संप्लवन्ते इव में इव क्रियासंबन्धी उत्प्रेक्षा का सूचक है, अतः क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है। (१८) इसी प्रकार के भाव वाला श्लोक कुमारसंभव (४-२६) में है—तमवेक्ष्य रुरोद सा भृशं, स्तनसंबाधमुरो जघान च। स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो विवृतद्वारमिवोपजायते॥

३१. कौसल्या—कथं नु खलु वत्साया मे वध्वा वनगतायास्तस्याः पितू राजर्षेर्मुखं दर्शयामः? [कहं णु खु वच्छाए मे वहूए वनगदाए तस्सा पिदुणो राएसिणो मुहं दंसम्ह ?]

कौसल्या—प्रिय पुत्री वधू सीता के वन में निर्वासित हो जाने पर मैं उसके पिता रार्जाष जनक को कैसे अपना मुँह दिखाऊँ?

३२. अरुन्धती—

एष वः श्लाघ्यसंबन्धी जनकानां कुलोद्वहः।
याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ॥९॥

अन्वय—एष वः श्लाघ्यसंबन्धी जनकानां कुलोद्वहः (अस्ति)। यस्मै याज्ञवल्क्यः मुनिः ब्रह्मपारायणं जगौ।

अरुन्धती—यह आपके प्रशंसनीय संबन्धी (समधी) जनकवंशीय राजाओं के वंश-प्रवर्तक हैं, जिन्हें स्वयं याज्ञवल्क्य मुनि ने समस्त ब्रह्म-विद्या का उपदेश दिया है॥९॥

संस्कृत-व्याख्या

एषः—पुरोगतः, वः—युष्माकम्, श्लाघ्य०—श्लाघ्यः प्रशंसनीयः संबन्धी पुत्रश्वशुरः, जनकानां—जनकवंशजानां राज्ञाम्, कुलोद्वहः—वंशप्रवर्तकः,

अस्तीति शेषः। यस्मै—जनकाय, याज्ञवल्क्यः—एतन्नामधेयः, मुनिः—ऋषिः, ब्रह्मपारायणं—ब्रह्मणः ब्रह्मविद्यायाः पारायणं समग्रताम्, जगौ—गीतवान्, उपदिदेशेत्यर्थः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **वत्सायाः**—प्रिय पुत्री का। वत्स अतिशय स्नेहसूचक शब्द है। (२) **वनगतायाः**—वन में गई हुई, वन में निर्वासित। वनं गतायाः, तत्पु०। (३) **श्लाघ्य०**—श्लाघ्य—प्रशंसनीय, संबन्धी—संबन्धी, रिश्तेदार। यहाँ पर संबन्धी समधी के लिए है। संबन्धी का ही अपभ्रंश रूप समधी है। श्लाघ्य—श्लाघ्+ण्यत् (य)। श्लाघ्यश्चासौ संबन्धी, कर्मधा०। (४) **जनकानाम्**—जनकवंश में उत्पन्न हुए राजाओं का। जनक शब्द जनकवंशीय राजाओं के लिए है। (५) **कुलोद्वहः**—कुल का प्रवर्तक। उद्वह का अर्थ नेता, अगुआ, श्रेष्ठ भी है। कुल में श्रेष्ठ अर्थ भी हो सकता है। यहाँ पर वंश-प्रवर्तक अर्थ अधिक उचित है। कुलस्य उद्वहः, तत्पु०। उद्वह—उद्वहतीति उद्+वह्+अच्। (६) **याज्ञवल्क्यः**—याज्ञवल्क्य मुनि। याज्ञवल्क्य अपने समय के सबसे बड़े ब्रह्मर्षि थे। बृहदारण्यक उपनिषद् में अनेक स्थानों पर उल्लेख है कि याज्ञवल्क्य ने जनक को ब्रह्मविद्या की शिक्षा दी। जनको ह वैदेहः..... उवाच—नमस्तेऽस्तु याज्ञवल्क्य, अनु मा शाधीति स होवाच०। (बृहदा० ४-२-१)। बृहदारण्यक उप० अध्याय ३ और ४ में याज्ञवल्क्य को ब्रह्मविद्या का महान् उपदेष्टा बताया गया है। (७) **यस्मै**—जिसको। यहाँ पर कर्मणा यमभिप्रैति० (१-४-३२) से चतुर्थी। (८) **ब्रह्मपारायणम्**—समस्त ब्रह्मविद्या। ब्रह्म का अर्थ वेद है, यहाँ पर ब्रह्म से वेदान्त या ब्रह्मविद्या का अभिप्राय है। पारायणम्—समस्त, आद्योपान्त, ग्रन्थ के पार या अन्त तक जाना। ब्रह्मणः पारायणम्, तत्पु०। पारस्य अयनम्, तत्पु०। पार+अयनम्, पूर्वपदात्० (८-४-३) से न को ण। याज्ञवल्क्य ने सूर्य से वेदों को प्राप्त किया था और उसने वेदों का ज्ञान जनक को दिया। वेदों में वेदान्त, उपनिषद् आदि का ज्ञान भी संमिलित है, अतः यहाँ पर ब्रह्मज्ञान अर्थ है। (९) **जगौ**—गाया, उपदेश दिया। गै (गा)+लिट् प्र० १।

३३. कौसल्या——एष स महाराजस्य हृदयनिर्विशेषो वत्साया मे वध्वाः पिता विदेहराजः सीरध्वजः। स्मारितास्मि अनिर्वेदरमणीयान् दिवसान्। हा दैव, सर्वं तन्नास्ति। [एसो सो महाराअस्स हिअअणिव्विसेसो वच्छाए मे वहूए पिदा विदेहराओ सीरद्धओ। सुमारिदम्हि अणिव्वेदरमणीए दिवहे। हा देव्व, सव्वं तं णत्थि।]

कौसल्या——यह वह महाराज (दशरथ) के अभिन्न-हृदय और मेरी प्रिय वधू (सीता) के पिता मिथिलाधिपति सीरध्वज (जनक) हैं। मुझे सुखद और मनोहर उन दिनों की स्मृति आ गई है। हाय भाग्य, अब वह सब कुछ नहीं रहा।

३४. जनकः——(उपसृत्य) भगवत्यरुन्धति, वैदेहः सीरध्वजोऽभिवादयते।

यया पूतंमन्यो निधिरपि पवित्रस्य महसः
पतिस्ते पूर्वेषामपि खलु गुरूणां गुरुतमः।
त्रिलोकीमङ्गल्यामवनितललीनेन शिरसा
जगद्वन्द्यां देवीमुषसमिव वन्दे भगवतीम् ॥१०॥

अन्वय——पवित्रस्य महसः निधिः अपि, पूर्वेषां गुरूणां गुरुतमः अपि ते पतिः यया पूतंमन्यः खलु, त्रिलोकीमङ्गल्यां जगद्वन्द्यां देवीम् उषसम् इव भगवतीम् अवनितललीनेन शिरसा वन्दे।

जनक——(समीप जाकर) भगवती अरुन्धती, विदेहराज सीरध्वज (जनक) आपका अभिनन्दन करता है।

पवित्र तेज के निधि और प्राचीन गुरुओं के सर्वश्रेष्ठ गुरु होते हुए भी आपके पति (महर्षि वसिष्ठ) जिस आपसे अपने आपको वस्तुतः पवित्र मानते हैं, तीनों लोकों के लिए मंगलदायिनी और जगद्वन्दनीय उषादेवी के तुल्य आप भगवती (अरुन्धती) को भूतल पर रखे हुए शिर से प्रणाम करता हूँ ॥१०॥

पाठभेद——३४ नि० काले——माङ्गल्याम् (मंगल करने वाली)।

संस्कृत-व्याख्या

पवित्रस्य––विशुद्धस्य, महसः––तेजसः, निधिः अपि––कोषोऽपि, पूर्वेषां––प्राचीनानाम्, गुरूणां––शिक्षकानाम्, गुरुतमः अपि––सर्वश्रेष्ठो गुरुः अपि सन्, ते––तव अरुन्धत्याः, पतिः––भर्ता वसिष्ठ इत्यर्थः, यया––अरुन्धत्या, पूतंमन्यः––आत्मानं पवित्रं मन्यमानः, खलु––निश्चयेन, त्रिलोकी०––त्रिलोक्याः त्रिभुवनस्य मङ्गल्यां मङ्गलकारिणीम्, जगद्वन्द्यां––जगतः संसारस्य वन्द्यां वन्दनीयाम्, देवीं––प्रकाशस्वरूपाम्, उषसम् इव––उषःकालाधिष्ठात्रीं देवीमिव, भगवतीं––माहात्म्यशालिनीम् अरुन्धतीम्, अवनि०––अवनितले भूतले लीनेन स्थापितेन, शिरसा––मूर्ध्ना, वन्दे––अभिवादये। अत्र पूर्णोपमाऽलंकारः। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **महाराजस्य**––महाराज दशरथ के। महान् चासौ राजा, तस्य, कर्मधा०। महत्+राजन्+टच्। राजाहः० से समासान्त टच्। आन्महतः० से त् को आ। (२) **हृदय०**––अभिन्न हृदय। हृदयात् निर्विशेषः, तत्पु०। निर्विशेष––अभिन्न। (३) **विदेहराजः**––विदेह (मिथिला) के राजा। विदेहस्य राजा, तत्पु०। समासान्त टच्। (४) **सीरध्वजः**––जनक। सीर––हल या सूर्य। सीरोऽर्कहलयोः पुंसि, इति मेदिनी। सीरः ध्वजे यस्य सः, बहु०। जनकवंशी राजाओं की ध्वजा में सीर (हल या सूर्य) का चिह्न होता था। अतः जनक को सीरध्वज कहते थे। (५) **स्मारिता**––याद आ गई है। स्मृ+णिच्+क्त+टाप्। (६) **अनिर्वेद०**––अनिर्वेद––दुःख का अभाव या आनन्द के कारण, रमणीय––मनोहर। अविद्यमानः निर्वेदः येषु ते अनिर्वेदाः (बहु०), ते च ते रमणीयाः, कर्मधा०। (७) **सर्वं०**––वह सब बातें अब नहीं रहीं। वे सुख के दिन बीत गए। (८) **उपसृत्य**––पास जाकर। उप+सृ+ल्यप्। (९) **अभिवादयते**––प्रणाम करता है। अभि+वद्+णिच्+लट् प्र० १। (१०) **पूतंमन्यः**––अपने आपको पवित्र मानते हैं। आत्मानं पूतं मन्यते इति, पूत+मन्+खश् (अ)। आत्ममाने खश्च (३-२-८३) से खश् प्रत्यय और अरुर्द्विषद० (६-३-६७) से पूत के बाद मुम् (म्)। आत्ममाने० से पक्ष में णिनि होकर पूतमानी भी बनेगा। (११) **निधिरपि०**––पवित्र तेज के आधार या भंडार। महसः––तेज का।

(१२) **गुरूणां०**—गुरुओं के भी बड़े गुरु, अथवा गुरुओं में सर्वश्रेष्ठ। (१३) **त्रिलोकी०**—तीनों लोकों के लिए मंगल करने वाली। त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी (द्विगु०), त्रिलोक्याः मङ्गल्या, ताम्, तत्पु०। मङ्गले साधुः मङ्गल्या, ताम्, मङ्गल+यत् (य)+टाप्। तत्र साधुः (४-४-९८) से यत् प्रत्यय। (१४) **अवनि०**—भूतल पर रखे हुए सिर से। अवनितले लीनेन, तत्पु०। (१५) **जगद्०**—संसार के द्वारा वन्दनीय। जगता वन्द्याम्, तत्पु०। (१६) **उषसमिव**—उषा देवी के तुल्य। उषस् शब्द उषःकाल अर्थ में नपुंसक० है और उषःकाल की अधिष्ठात्री देवता उषा देवी के अर्थ में स्त्रीलिंग है। (१७) **भगवतीम्**—पूज्य अरुन्धती को। त्रिलोकी० जगद्० और भगवतीम् (ऐश्वर्यशालिनी), ये तीनों विशेषण उषस् के साथ भी लगेंगे। निधिरपि० का अर्थ सूर्य के पक्ष में भी लग सकता है। सूर्य जिस प्रकार उषा से अपने आपको पवित्र मानता है, उसी प्रकार वसिष्ठ अरुन्धती से अपने आपको पवित्र मानते हैं। (१८) यहाँ पर उषसमिव में इव के द्वारा पूर्णोपमा अलंकार है। वेद में सूर्य और उषा का प्रेमी-प्रेमिका के रूप में वर्णन मिलता है:—सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् (ऋग्वेद १-११५-२)।

३५. अरुन्धती—अक्षरं ते ज्योतिः प्रकाशताम्। स त्वां पुनातु देवः परो रजसां य एष तपति।

अरुन्धती—आपको अविनाशी ज्योति प्रकाशित हो (अर्थात् आपको परब्रह्म का साक्षात्कार हो)। रजोगुण से रहित, प्रकाश देने वाला वह सूर्यदेव आपको पवित्र करे।

३६. जनकः—आर्य गृष्टे, अप्यनामयमस्याः प्रजापालकस्य मातुः?

जनक—हे आर्य गृष्टि, प्रजापालक (राम) की माता (कौसल्या) स्वस्थ तो हैं?

३७. कञ्चुकी—(स्वगतम्) निरवशेषमतिनिष्ठुरमुपालब्धाः स्मः। (प्रकाशम्) राजर्षे, अनेनैव मन्युना

चिरपरित्यक्तरामभद्रदर्शनां नार्हसि दुःखयितुमतिदुःखितां देवीम्। रामभद्रस्यापि दैवदुर्योगः कोऽपि। यत्किल समन्ततः प्रवृत्तबीभत्सकिंवदन्तीकाः पौराः। न चाग्निशुद्धिमनल्पकाः प्रतियन्तीति दारुणमनुष्ठितं देवेन।

कंचुकी--(मन ही मन) इन्होंने कोई बात न छोड़ते हुए बहुत निष्ठुरता के साथ उलाहना दिया है। (प्रकट) हे रार्जाष, इन्होंने इसी क्रोध के कारण चिरकाल से रामभद्र का दर्शन (राम से मिलना) छोड़ दिया है, अतः अतिदुःखित देवी कौसल्या को और दुःख देना आपके लिए उचित नहीं है। रामभद्र का भी यह कोई दुर्भाग्य ही है कि नागरिकों में चारों ओर बहुत घृणित जनश्रुति फैल रही थी और उनमें से बहुत से व्यक्ति अग्नि-शुद्धि की बात पर विश्वास नहीं कर रहे थे, अतः महाराज (राम) ने ऐसा कठोर कार्य किया।

३८. जनकः--(सरोषम्) आः, कोऽयमग्निर्नामास्मत्प्रसूतिपरिशोधने? कष्टमेवंवादिना जनेन रामभद्रपरिभूता अपि पुनः परिभूयामहे।

जनक--(क्रोध के साथ) ओह, मेरी सन्तान की शुद्धि करने के लिए 'अग्नि' यह कौन होता है? खेद की बात है कि इस व्यक्ति ने यह कहकर रामभद्र के द्वारा पहले ही तिरस्कृत किए हुए हमें और फिर तिरस्कृत किया है।

टिप्पणी

(१) अक्षरं०—अक्षर—अविनाशी, ज्योतिः—तेज। अविनाशी तेज ब्रह्मज्योति है। वह तुम्हारे हृदय में प्रकाशित हो। मुण्डक उपनिषद् में ब्रह्मविद्या के वर्णन में ब्रह्म को अक्षर कहा गया है और ब्रह्म को सर्वोत्तम ज्योति कहा गया है। द्वे विद्ये वेदितव्ये परा चैवापरा च। परा यया तदक्षरमधिगम्यते। (मुण्डक० १-१-४, ५)। हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्। तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद् यदात्मविदो विदुः। (मुण्डक० २-२-६)। न क्षरतीति अक्षरम्। (२) पुनातु--पवित्र करे। पू+लोट् प्र० १। प्वादीनां ह्रस्वः से ह्रस्व।

(३) **परो रजसाम्**--जो रजोगुण से परे है अर्थात् जिसमें रजोगुण सर्वथा नहीं है। सूर्य सत्त्वगुणप्रधान है। सांख्य के अनुसार ३ गुण हैं--सत्त्व, रजस्, तमस्। इनका लक्षण है—सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलं च रजः। गुरु वरणकमेव तमः० (सांख्यकारिका १३)। (४) **अनामयम्**—नीरोगता, स्वस्थता, आरोग्य। अनामयं स्यादारोग्यम्, इत्यमरः। आमय--रोग। न आमयम् अनामयम्, नञ् तत्पु०। प्राचीन परम्परा थी कि ब्राह्मण से कुशल पूछे और क्षत्रिय से अनामय। ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्, क्षत्रबन्धुमनामयम्। (मनु० २-१९७)। (५) **प्रजापालकस्य०**--प्रजा के पालक राम की माता का। प्रजां पालयतीति प्रजापालकः, उपपद तत्पु०। सीता के परित्याग के कारण जनक राम से बहुत क्रुद्ध हैं, अतः राम का नाम न लेकर उन्हें प्रजापालक कहते हैं। इसमें दो व्यंग्य हैं--१. राम प्रजा के पालक हैं, परन्तु अपनी पत्नी के पालक नहीं। २. राम प्रजातन्त्रवादी होने से प्रजा के कहने पर चलते हैं, अपनी बुद्धि का उपयोग नहीं करते हैं। (६) **निरवशेषम्**--कुछ न छोड़ते हुए, कहने में कोई कसर न रखते हुए। (७) **अतिनिष्ठुरम्**—बड़ी निष्ठुरता के साथ। (८) **उपालब्धाः०**—उलाहना दिया है। उप+आ+लभ्+क्त प्र० ३। उलाहना के लिए ऊपर प्रजापालकस्य की व्याख्या देखें। (९) **मन्युना**--क्रोध के कारण। मन्यु का अर्थ दुःख भी होता है। मन्युर्दैन्ये क्रतौ क्रुधि, इत्यमरः। (१०) **चिर०**--चिरकाल से छोड़ दिया है रामभद्र का दर्शन जिसने। चिरं परित्यक्तं रामभद्रस्य दर्शनं यया ताम्, बहु०। कौसल्या ऋष्यशृंग के यज्ञ में १२ वर्ष से थीं और लौटकर वसिष्ठ के साथ वाल्मीकि के आश्रम में आई हैं। १२ वर्ष से राम को नहीं देखा है। (११) **दुःखयितुम्**--दुःख देने को। दुःख+णिच्+तुम्। (१२) **दैवदुर्योगः**--दुर्भाग्य, भाग्य का दुष्परिणाम। दैवस्य दुर्योगः, तत्पु०। (१३) **प्रवृत्त०**--फैल रही है घृणित जनश्रुति जिनमें। प्रवृत्ता बीभत्सा किंवदन्ती येषु ते, बहु०। नद्यृतश्च (५-४-१५३) से समासान्त कप् (क) प्रत्यय। बीभत्स—बध्+सन्+अ। मान्बध० (३-१-६) से चित्तविकार अर्थ में सन् और अ प्रत्ययात् (३-३-१०२) से अ प्रत्यय। (१४) **अनल्पकाः**--बहुत से लोग। कुछ लोगों ने अनल्पकाः का अर्थ तुच्छ, अतिनीच लिया है। अल्पाः एव अल्पकाः, न अल्पकाः, नञ् तत्पु०। तुच्छ अर्थ के लिए—अविद्यमानः अल्पकः येभ्यः, बहु०। जो कुछ भी तुच्छ काम कर सकते हैं।

(१५) **प्रतियन्ति**—विश्वास करते हैं। प्रति+इ+लट् प्र० ३। (१६) **अस्मत्०**—मेरी सन्तान की शुद्धि के लिए। अस्मत्प्रसूतेः परिशोधने, तत्पु०। प्रसूति—प्र+सू+क्तिन्। (१७) **रामभद्र०**—राम के द्वारा तिरस्कृत। रामभद्रेण परिभूताः, तत्पु०। परिभूत—परि+भू+क्त। (१८) **परिभूयामहे**—तिरस्कृत किए जा रहे हैं। परि+भू+कर्मवाच्य लट् उ० ३।

३९. अरुन्धती—(निःश्वस्य) एवमेतत्। अग्निरिति वत्सां प्रति लघून्यक्षराणि। सीतेत्येव पर्याप्तम्। हा, वत्से,

शिशुर्वा शिष्या वा यदसि मम तत्तिष्ठतु तथा
विशुद्धेरुत्कर्षस्त्वयि तु मम भक्तिं द्रढयति।
शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु ननु वन्द्यासि जगतां
गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः ॥११॥

अन्वय—मम शिशुः वा शिष्या वा यत् असि तत् तथा तिष्ठतु। तु विशुद्धेः उत्कर्षः त्वयि मम भक्तिं द्रढयति। शिशुत्वं स्त्रैणं वा भवतु, ननु जगतां वन्द्या असि। गुणिषु गुणाः पूजास्थानम्, न च लिङ्गं न च वयः॥

अरुन्धती—(दीर्घश्वास लेकर) यह ठीक ही है। पुत्री सीता के लिए 'अग्नि' ये अक्षर तुच्छ हैं (अर्थात् सीता अग्नि से अधिक पवित्र है)। 'सीता' इतना कहना ही पर्याप्त है। हा पुत्री,

तुम मेरी पुत्री हो या शिष्या हो, जो कुछ भी हो, वह संबन्ध वैसा ही रहे। किन्तु तुम्हारी पवित्रता की पराकाष्ठा तुम्हारे प्रति मेरी भक्ति को दृढ बना रही है। तुममें शिशुत्व हो या स्त्रीत्व, तुम वस्तुतः संसार की पूजनीय हो, क्योंकि गुणवानों में गुण ही पूजा के स्थान होते हैं, न कोई चिह्न-विशेष (पुरुषत्व, स्त्रीत्व आदि) और न आयु (यौवन, वृद्धावस्था आदि) ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या

मम—अरुन्धत्याः, शिशुः वा—बालिकास्वरूपा वा, शिष्या वा—अन्तेवासिनी वा, यत् असि—यादृशी असि, तत तथा तिष्ठतु—स संबन्धस्तादृश एवास्तु। तु—किन्तुः, विशुद्धेः—पवित्रतायाः, उत्कर्षः—अतिशयः, त्वयि—सीतायाम्,

मम---अरुन्धत्याः, भक्तिं---श्रद्धाम्, पूज्यबुद्धिं वा, द्रढयति---दृढां करोति। शिशुत्वं---बाल्यभावः, स्त्रैणं वा---स्त्रीत्वभावो वा, भवतु---त्वयि अस्तु। ननु---नूनम्, जगतां---लोकानाम्, वन्द्या---पूजनीया, असि---वर्तसे। गुणिषु---गुणवत्सु, गुणाः---सद्गुणाः, पूजास्थानम्---सत्कारस्य स्थानं भवन्ति, न च लिङ्गं---न च पुंस्त्वादिचिह्नम्, न च वयः---न च वृद्धत्वादिरवस्था। अत्रार्थान्तरन्यासोऽलंकारः। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **निःश्वस्य**---लंबी साँस लेकर। निर्+श्वस्+ल्यप्। (२) **एवमेतत्**---ऐसा ही है। अर्थात् सीता को शुद्ध करने वाली अग्नि नहीं हो सकती है। (३) **लघूनि०**---अग्नि शब्द सीता के सामने तुच्छ है, अर्थात् सीता अपने पतिव्रताधर्म के कारण अग्नि से अधिक पवित्र है। अरुन्धती का यह उत्तर बहुत सार्थक है। अरुन्धती ने इस समुचित उत्तर के द्वारा जनक का क्रोध सर्वथा शान्त कर दिया है। (४) **विशुद्धेः०**---पवित्रता की पराकाष्ठा। विशुद्धि---वि+शुध्+क्तिन्। उत्कर्ष---उच्चता, अतिशय, पराकाष्ठा। उत्+कृष्+घञ्। (५) **द्रढयति**---दृढ करती है। दृढ+णिच्+लट् प्र० १। प्रातिपदिकाद् धात्वर्थे० (गणसूत्र) से करोति अर्थ में णिच् और इष्ठवद्भाव होने से र ऋतो० (६-४-१६१) से दृ के ऋ को र आदेश। (६) **स्त्रैणम्**---स्त्रीत्व, स्त्रीपना। स्त्रियाः भावः, स्त्रैणम्। स्त्री+नञ् (न)। स्त्रीपुंसाभ्यां० (४-१-८७) से भाव अर्थ में नञ्। (७) **पूजास्थानम्**---पूजा के स्थान, पूजा के योग्य। पूजायाः स्थानम्, तत्पु०। स्थान, पद, आस्पद, भाजन, पात्र आदि शब्द नपुं० एक० में आते हैं, अतः गुणाः का विशेषण होने पर भी स्थानम् में नपुं० एक० है। (८) **लिङ्गम्**---चिह्न-विशेष। जैसे पुरुषत्व, स्त्रीत्व आदि या जटाधारण आदि। (९) **वयः**---आयु। यौवन, वृद्धावस्था आदि। (१०) इस श्लोक में विशेष सीता की वन्दनीयता के द्वारा सामान्य अर्थ गुणाः पूजास्थानम्० का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। इस श्लोक से मिलते-जुलते भाव वाले निम्न श्लोक हैं:---१. स्त्री पुमानित्यनास्थैषा वृत्तं हि महितं सताम्। (कुमारसंभव ६-१२)। २. पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते (रघु० ३-६२)। ३. कमिवेशते रमयितुं न गुणाः (किराता० ६-२४)। ४. न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते (कुमार० ५-१६)।

४०. कौसल्या——ग्रहो, समुन्मूलयन्तीव वेदनाः। [ग्रहो, समुम्मूलग्रंति विग्र वेग्रणाग्रो।]

(इति मूर्च्छति।)

कौसल्या——ग्रोह, मुझे वेदनाएँ मानो जड़ से उखाड़ रही हैं।

(यह कहकर मूर्छित हो जाती हैं।)

४१. जनकः——हन्त, किमेतत्?

जनक——हाय, यह क्या?

४२. ग्ररुन्धती——राजर्षे, किमन्यत्?

स राजा तत्सौख्यं स च शिशुजनस्ते च दिवसाः
स्मृतावाविर्भूतं त्वयि सुहृदि दृष्टे तदखिलम्।
विपाके घोरेऽस्मिन्न खलु न विमूढा तव सखी
पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति॥१२॥

ग्रन्वय——स राजा, तत् सौख्यम्, स च शिशुजनः, ते च दिवसाः, सुहृदि त्वयि दृष्टे तत् ग्रखिलं स्मृतौ ग्राविर्भूतम्। ग्रस्मिन् घोरे विपाके तव सखी न विमूढा (इति) न खलु। हि पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं भवति।

ग्ररुन्धती——हे राजर्षि, ग्रौर क्या?

वह राजा (दशरथ), वह सुख, वे (राम ग्रादि) बालक ग्रौर वे (सुखमय) दिन——वह सब बातें प्रिय संबन्धी ग्रापको देखने पर याद ग्रा गईं। इस घोर दुष्परिणाम के कारण ग्रापकी सखी (कौसल्या) वस्तुतः मूर्छित हो गई हैं, क्योंकि कुलीन स्त्रियों का चित्त फूल के समान कोमल होता है॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या

स राजा——स प्रसिद्धो नृपो दशरथः, तत्——तादृशम्, सौख्यम्——ग्रानन्दः, स च शिशुजनः——स च रामादिबालकसमूहः, ते च दिवसाः——तानि च ग्रानन्द-मधुराणि दिनानि, सुहृदि——प्रियमित्रे, संबन्धिनि वा, त्वयि——जनके, दृष्टे——

पाठभेद——४२. का० काले——ग्रथ खलु (ग्रवश्य ही)।

अवलोकिते सति, तत् अखिलं—तत् सर्वमपि, स्मृतौ—बुद्धौ, आविर्भूतं—प्रकटितम्। अस्मिन्—वर्तमाने, घोरे—अतिनिष्ठुरे, विपाके—दुष्परिणामे, सीतापरित्यागरूपे दुष्परिणामे इत्यर्थः, तव—जनकस्य, सखी—संबन्धिनी, कौसल्येत्यर्थः, न विमूढा—न मूर्च्छां प्राप्ता इति, न खलु—नैवमस्ति, अर्थात् कौसल्या वस्तुतो मूर्च्छितैव। हि—यतोहि, पुरन्ध्रीणां—कुलस्त्रीणाम्, चित्तं—हृदयम्, कुसुम०—पुष्पवत् कोमलम्, भवति। अत्रार्थान्तरन्यासो लुप्तोपमा चालंकारौ। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **समुन्मूलयन्ति०**—वेदनाएँ मानो जड़ से उखाड़ रही हैं। सम्+उत्+मूल+णिच्+लट् प्र० ३। उन्मूलन अर्थात् जड़ से उखाड़ना। अर्थात् वेदनाएँ मेरी चेतना को जड़ से समाप्त कर रही है। पाठभेद—समुन्मीलन्ति इव—मानो उभर रही हैं। (२) **सौख्यम्**—सुख, आनन्द। सुखमेव सौख्यम्, सुख+ष्यञ् (य)। स्वार्थ में ष्यञ्। (३) **आविर्भूतम्**—प्रकट हुआ है। आविस्+भू+क्त। (४) **सुहृदि**—आप मित्र के, आप संबन्धी के। राजा दशरथ और राजा जनक का प्रेम इतना बढ़ गया था कि दोनों परिवार के व्यक्ति एक दूसरे को अपना मित्र मानते थे। अतः जनक को कौसल्या का मित्र कहा गया है। (५) **दृष्टे**—देखने पर। दृश्+क्त+स० १। (६) **विपाके०**—इस घोर दुष्परिणाम में अर्थात् राम के द्वारा सीता के परित्यागरूपी अनर्थ के कारण। (७) **न खलु न**—अर्थात् अवश्य। नञौ द्वौ प्रकृतार्थं गमयतः। दो नञ् इकट्ठे आने पर स्वीकृतिसूचक अर्थ बताते हैं। कौसल्या मूर्च्छित नहीं हुई, ऐसी बात नहीं है, अर्थात् अवश्य मूर्च्छित हुई है। (८) **विमूढा**—मूर्च्छित हुई। वि+मुह्+क्त+टाप्। (९) **पुरन्ध्रीणाम्**—कुलस्त्रियों का, कुलीन स्त्रियों का। पुरं गेहं धारयति इति पुरन्ध्रिः। पुरन्ध्रि और पुरन्ध्री दोनों शब्द हैं। इसका अर्थ है—पति और पुत्रादि से युक्त स्त्री, कुटुम्ब वाली स्त्री। स्यात्तु कुटुम्बिनी पुरंध्री, इत्यमरः। (१०) **कुसुम०**—फूल के तुल्य कोमल। कुसुमम् इव सुकुमारम्, उपमान तत्पु०। (११) इस श्लोक में विशेष कौसल्या के मूर्च्छित होने से सामान्य स्त्री-सुकुमारता का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। कुसुमसुकुमारम् में इव का अर्थ लुप्त है, अतः लुप्तोपमा है। इससे मिलते हुए भाव का श्लोक मेघदूत में है—आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां, सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि। (मेघदूत १०)

४३. (क) जनकः--हन्त, सर्वथा नृशंसोऽस्मि। यश्चिरस्य दृष्टान्प्रियसुहृदः प्रियदारानस्निग्ध इव पश्यामि।

स संबन्धी श्लाघ्यः प्रियसुहृदसौ तच्च हृदयं
स चानन्दः साक्षादपि च निखिलं जीवितफलम्।
शरीरं जीवो वा यदधिकमतोऽन्यत्प्रियतरं
महाराजः श्रीमान्किमिव मम नासीद्दशरथः॥१३॥

अन्वय--स श्लाघ्यः संबन्धी, असौ प्रियसुहृत्, तत् च हृदयम्, स च साक्षात् आनन्दः, अपि च निखिलं जीवितफलम्, शरीरं जीवः वा, अतः अधिकम् अन्यत् प्रियतरम्, श्रीमान् महाराजः दशरथः मम किमिव न आसीत्।

जनक--हाय, मैं सर्वथा क्रूर हूँ, जो चिरकाल के पश्चात् मिलने पर भी अपने प्रिय मित्र (दशरथ) की प्रिय पत्नी (कौसल्या) को प्रेमहीन-सा होकर देख रहा हूँ।

वह (महाराज दशरथ) प्रशंसनीय संबन्धी, प्रिय मित्र, हृदय-स्वरूप, मूर्तिमान् आनन्द और जीवन के पूर्ण फल-स्वरूप थे। वे मेरे शरीर या आत्म-रूप थे। (इतना ही नहीं) वे इस आत्मा से भी अधिक प्रिय वस्तु (ब्रह्मस्वरूप) थे। श्रीमान् महाराज दशरथ मेरे लिए क्या नहीं थे॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या

सः--दशरथः, श्लाघ्यः--प्रशंसनीयः, संबन्धी--वैवाहिकसंबन्धयुक्तः, जामातुः पितेत्यर्थः, असौ--दशरथः, प्रियसुहृत्--प्रेमपात्रं मित्रम्, तत् च--स दशरथश्च, हृदयं--मम हृदयस्वरूप आसीत्, स च--स दशरथश्च, साक्षात्--प्रत्यक्षः, मूर्तिमानित्यर्थः, आनन्दः--प्रमोदः, अपि च--अन्यच्च, निखिलं--समग्रम्, जीवितफलं--जीवनस्य फलम्, शरीरं--देहरूपः, जीवो वा--जीवात्मा वा, अतः--एतस्मादपि, अधिकं--महत्त्वयुक्तम्, अन्यत्--अपरम्, प्रियतरम्--अभीष्टतरम्, ब्रह्मस्वरूप इत्यर्थः, आसीत्। श्रीमान्--राजलक्ष्म्या निवासभूतः,

---

पाठभेद--४३ (क). नि० किमपि (क्या)।

महाराजः--चक्रवर्ती नृपः, दशरथः—रामस्य जनकः, मम--जनकस्य, किमिव नासीत्--किं वस्तु नाभूत्, अर्थात् दशरथो मम सर्वं सर्वस्वं चासीत्। अत्रातिशयोक्तिरर्थापत्तिः रूपकं चालंकाराः। शिखरिणी वृत्तम्॥

टिप्पणी

(१) **नृशंसः**--क्रूर, हत्यारा, निर्दय। नॄन् शंसति इति, नृ+शंस्+अच् (अ)। मनुष्यों को दुःख देने वाला। (२) **प्रियसुहृदः**--प्रिय मित्र महाराज दशरथ के। सुहृद्--मित्र, शोभनं हृदयं यस्य सः, सु+हृदय, सुहृद्दुर्हृदौ० (५-४-१५०) से हृदय को हृद् आदेश। प्रियः सुहृद्, तस्य, कर्मधा०। (३) **प्रियदारान्**—प्रिय पत्नी कौसल्या को। दार का अर्थ पत्नी है। इसका पुलिंग बहुवचन में ही रूप चलता है। (४) **अस्निग्ध०**--प्रेमहीन या प्रेमशून्य के तुल्य। न स्निग्धः, नञ् तत्पु०। स्निग्ध--स्निह्+क्त। (५) **संबन्धी**—संबन्धी, समधी। यहाँ पर दोनों अर्थ लिए जा सकते हैं। (६) **हृदयम्**--दशरथ मेरे हृदय के तुल्य थे। (७) **साक्षात्**—प्रत्यक्ष, मूर्तरूप, अतएव मूर्तिमान्। दशरथ मूर्तिमान् आनन्द थे। (८) **जीवित०**—जीवन का फल। अर्थात् जैसा पूर्ण और पवित्र जीवन होना चाहिए, वैसा पवित्र जीवन दशरथ का था। जीवितस्य फलम्, तत्पु०। जीव्+क्त। भाव में क्त प्रत्यय। (९) **शरीरम्**--दशरथ मेरे शरीर थे। (१०) **जीवो वा**--वे आत्मा या जीवात्मस्वरूप थे। जीव--जीवात्मा। (११) **अधिकम्०**--इससे भी बढ़ कर प्रिय वस्तु अर्थात् साक्षात् ब्रह्मरूप थे। (१२) **किमिव०**—महाराज दशरथ मेरे लिए क्या नहीं थे, अर्थात् मेरे लिए सब कुछ थे। (१३) इस श्लोक में महाराज दशरथ को आत्मा और ब्रह्म बताया गया है, अतः अतिशयोक्ति अलंकार है। किमिव न० में अर्थापत्ति है, अर्थात् वे मेरे सब कुछ थे। महाराज दशरथ पर हृदय, शरीर आदि का आरोप किया गया है, अतः रूपक अलंकार है।

४३. (ख) कष्टमियमेव सा कौसल्या--

यदस्याः पत्युर्वा रहसि परमन्त्रायितमभू-

दभूवं दम्पत्योः पृथगहमुपालम्भविषयः।

पाठभेद—४३ (ख) का० काले--परमं दूषितमभूत् (जो बड़े प्रणयापराध होते थे)।

प्रसादे कोपे वा तदनु मदधीनो विधिरभू-
दलं वा तत्स्मृत्वा दहति यदवस्कन्द्य हृदयम् ।।१४।।

अन्वय--अस्याः पत्युः वा रहसि यत् परमन्त्रायितम् अभूत्, अहं दम्पत्योः पृथक् उपालम्भविषयः अभूवम् । तदनु प्रसादे कोपे वा मदधीनः विधिः अभूत्, वा तत् स्मृत्वा अलम्, यत् हृदयम् अवस्कन्द्य दहति ।

जनक--खेद की बात है कि यही वह कौसल्या हैं :--

इनका या इनके पति (दशरथ) का एकान्त में जो गुप्त संलाप (या आपसी कहा-सुनी) होता था, उस विषय में मैं पति और पत्नी के अलग-अलग उपालम्भ (उलाहना) का पात्र होता था। तत्पश्चात् दोनों को प्रसन्न या क्रुद्ध करना मेरे हाथ में होता था। अथवा इन सब बातों को स्मरण करने से कोई लाभ नहीं, क्योंकि यह हृदय को पीडित करके जलाता है ।।१४।।

संस्कृत-व्याख्या

अस्याः--कौसल्यायाः, पत्युर्वा--अस्या भर्तुः दशरथस्य वा, रहसि--एकान्ते, यत् परमन्त्रायितम्--यद् गुप्तभाषणं परस्पराक्षेपो वा, अभूत्--अभवत् । अहं--जनकः, दम्पत्योः--पतिपत्न्योः, कौसल्यादशरथयोरित्यर्थः, पृथक्--विभिन्नं यथा स्यात् तथा, उपालम्भ०--उपालम्भस्य निन्दायाः विषयः पात्रम्, अभूवम्--अभवम् । तदनु--तदनन्तरम्, प्रसादे--उभयोः प्रसन्नतासम्पादने, कोपे वा--क्रोधजनने वा, मदधीनः--ममायत्तम्, विधिः--कार्यम्, अभूत्--आसीत् । वा--अथवा, तत्--पूर्ववृत्तम्, स्मृत्वा--स्मरणेन, अलं--निरर्थकम्, संप्रति पूर्ववृत्तस्य स्मरणेन न कोऽपि लाभ इत्यर्थः । यत्--यत्पूर्ववृत्तं स्मृतं सत्, हृदयं--मानसम्, अवस्कन्द्य--आक्रम्य, पीडयित्वेत्यर्थः, दहति--भस्मसात् करोति । अत्रासंगतिरलंकारः । शिखरिणी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **परमन्त्रायितम्**--परस्पर मंत्रणा, वार्तालाप या कहा-सुनी । परेण मन्त्रायितम्, तत्पु० । मन्त्रायित--मन्त्र+णिच्+क्त । तत्करोति० से णिच् । इसका अभिप्राय यह है कि राजा दशरथ और कौसल्या में एकान्त में कभी-कभी

कड़ी कहा-सुनी भी हो जाती थी। वे दोनों अपनी शिकायतें निपटाने के लिए जनक के पास जाते थे। जनक उनके प्रणय-कलह या मनमुटावों को सुलझाया करते थे। (२) **दम्पत्योः**––पति-पत्नी का। जाया च पतिश्च––दम्पती, द्वन्द्व। द्वन्द्व समाज में जाया को दम् और जम् निपातन होने से तीन रूप बनते हैं–– दम्पती, जम्पती, जायापती। (३) **उपालम्भ०**––उलाहना का विषय। उपालम्भस्य विषयः, तत्पु०। इसका अभिप्राय यह है कि महाराज दशरथ, रानी कौसल्या और राजा जनक में अत्यधिक घनिष्टता बढ़ गई थी। दशरथ और कौसल्या उन्हें अपना परम मित्र मानते थे। अपने व्यक्तिगत विवादों का भी निर्णय उनसे कराते थे। यदि दशरथ और कौसल्या में कोई एक दूसरे के प्रति अनुचित कार्य करता था तो वे दोनों उसका उलाहना जनक को देते थे कि––'देखो तुम्हारे मित्र दशरथ ने मेरे साथ यह अनुचित व्यवहार किया है।' इसी प्रकार कौसल्या के लिए––'देखो तुम्हारी सखी कौसल्या ने मेरे साथ यह अनुचित व्यवहार किया है।' इस प्रकार दोनों ओर से उन्हें उलाहना सुनना पड़ता था। (४) **प्रसादे०**–– प्रसन्न करने में। कोपे वा––क्रुद्ध करने में। अर्थात्––जनक की इच्छा पर यह निर्भर रहता था कि वह दशरथ और कौसल्या का विवाद निपटा कर उन्हें प्रसन्न कर दें या दोनों का झगड़ा बढ़ाकर उन्हें क्रुद्ध कर दें। (५) **मदधीनः**–– मेरे अधीन। मयि अधि, मद्+अधि+ख (ईन)। अषडक्ष० (५-४-७) से ख प्रत्यय, सप्तमी शौण्डैः (२-१-४०) से सप्तमी तत्पुरुष समास। (६) **विधिः**–– कार्य, ढंग, व्यवहार। (७) **अलं स्मृत्वा**––स्मरण करना व्यर्थ है। अलं निषेध अर्थ में है, अतः अलंखल्वोः० (३-४-१८) से क्त्वा प्रत्यय है। स्मृ+क्त्वा। (८) **अवस्कन्द्य**––आक्रमण करके, बलात् दबाकर। अतः इसका अभिप्राय होता है––दुःख देकर या पीडा देकर। अव+स्कन्द्+ल्यप्। (९) इस श्लोक में असंगति अलंकार है। कार्य और कारण पृथक् पृथक् हैं। विवाद दशरथ और कौसल्या में है, उलाहना जनक को दिया जाता है। निर्दोष जनक को उलाहना देने से असंगति अलंकार है।

४४. अरुन्धती––हा कष्टम्। अतिचिरनिरुद्ध-निःश्वासनिष्पन्दं हृदयमस्याः।

अरुन्धती--हाय, दुःख की बात है। बहुत देर तक श्वास रुकने के कारण इनका हृदय निश्चेष्ट हो गया है।

४५. जनकः--हा प्रियसखि !

(इति कमण्डलूदकेन सिञ्चति।)

जनक--हाय, प्रियसखी !

(यह कहकर कमण्डलु का जल छिड़कते हैं।)

४६. कञ्चुकी--

सुहृदिव प्रकटय्य सुखप्रदां
प्रथममेकरसामनुकूलताम्।
पुनरकाण्डविवर्तनदारुणः
परिशिनष्टि विधिर्मनसो रुजम्॥१५॥

अन्वय--विधिः प्रथमं सुहृत् इव सुखप्रदाम् एकरसाम् अनुकूलतां प्रकटय्य, पुनः अकाण्डविवर्तनदारुणः (सन्) मनसः रुजं परिशिनष्टि।

कंचुकी--भाग्य पहले मित्र के तुल्य सुखदायक एकरस (प्रेमरसयुक्त) अनुकूलता को प्रकट करके बाद में असमय में ही (प्रतिकूल) परिवर्तन के कारण दुःखद होकर मानसिक कष्ट को सर्वथा बढ़ाता है॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या

विधिः--भाग्यम्, प्रथमं--पूर्वम्, सुहृत् इव--मित्रमिव, सुखप्रदाम्--आनन्ददायिनीम्, एकरसाम्--एकस्वरूपाम्, एकमात्रप्रेमरसयुक्तामित्यर्थः, अनुकूलतां--हितैषिताम्, प्रकटय्य--प्रदर्श्य, पुनः--तदनन्तरम्, अकाण्ड०--अकाण्डे असमये विवर्तनेन परिवर्तनेन दारुणः भयावहः सन्, मनसः--चेतसः, रुजं--दुःखम्, परिशिनष्टि--सर्वतोभावेन विस्तारयति। अत्र विषममुपमा चालंकारौ। द्रुतविलम्बितं वृत्तम्।

पाठभेद--४६. का० काले--सुखप्रदः (भाग्य सुखदायक होकर)। का० काले--०दारुणो विधिरहो विशिनष्टि मनोरुजम् (भाग्य भयंकर होता हुआ मन की व्यथा को विशेष रूप से बढ़ा रहा है)।

टिप्पणी

(१) **अतिचिर०**--अतिचिर--बहुत देर से, निरुद्ध--रुके हुए, निःश्वास--श्वास के कारण, निष्पन्दम्--चेष्टाहीन। अतिचिरं निरुद्धाः निःश्वासाः यस्मिन् तत् (बहु०), तेन निष्पन्दम्, तत्पु०। निरुद्ध--नि+रुध्+क्त। कौसल्या का हृदय निश्चेष्ट हो गया है। (२) **कमण्डलू०**—कमण्डलु के जल से। कमण्डलोः उदकेन, तत्पु०। उदक--जल। सिञ्चति--छींटे देता है। सिच्+लट् प्र० १। (३) **प्रकटय्य**--प्रकट करके। प्र+कट्+णिच्+ल्यप्। (४) **सुखप्रदाम्**--सुख देने वाली। सुखं प्रददाति इति, सुख+प्र+दा+क+टाप्। (५) **एकरसाम्**--एक रस वाली, एक प्रकार के रस वाली। अर्थात् केवल प्रेमरस वाली। एकः रसः यस्यां सा, ताम्, बहु०। (६) **अकाण्ड०**--अकाण्ड--असमय में, विवर्तन--परिवर्तन के कारण, दारुणः--भयंकर या दुःखदायी। अकाण्डे विवर्तनम् (तत्पु०), तेन दारुणः, तत्पु०। विवर्तन--वि+वृत्+ल्युट्। (७) **परिशिनष्टि**—चारों ओर से बढ़ाती है। दुःख को परिशिष्ट से युक्त करती है। परि+शिष्+लट् प्र० १। (८) **मनसो०**--मन की व्यथा को। रुजम्--रोग को, कष्ट को। (९) भाग्य के दो विरुद्ध गुण वाले कार्यों के वर्णन से यहाँ पर विषम अलंकार है। एक बार वह सर्वथा सुखद रहा और बाद में सर्वथा प्रतिकूल हो गया। सुहृदिव में इव उपमा-वाचक है, अतः उपमा अलंकार है। यह श्लोक मालतीमाधव (४-७) में भी आया है।

४७ कौसल्या--(आश्वस्य) हा, वत्से जानकि, कुत्रासि? स्मरामि ते नवविवाहलक्ष्मीपरिग्रहैकमङ्गलं संफुल्लमुग्धमुखपुण्डरीकमारोहत्कौमुदीचन्द्रसुन्दरम्। एहि मे पुनरपि जाते, उद्द्योतयोत्सङ्गम्। सर्वदा महाराज एवं भणति--एषा रघुकुलमहत्तराणां वधूरस्माकं तु जनकसुता दुहितैव। [हा, वच्छे जाणइ, कहिं सि? सुमरामि दे णवविवाह-लच्छीपरिग्गहेक्कमंगलं संफुल्लमुद्धमुहपुंडरीअं आरुहंतकौमुदी-

चंदसुंदरं। एहि मे पुणो वि जादे, उज्जोएहि उच्छंगं। सव्वदा महाराअ एव्वं भणादि--एसा रहुउलमहत्तराणं वहू अम्हाणं दु जणअसुदा दुहिदेव्व।]

कौसल्या--(होश में आकर) हा पुत्री सीता, तुम कहाँ हो? नवीन विवाह की शोभा को धारण करने से अनुपम मंगलमय और उदित होते हुए कार्तिक-पूर्णिमा के चन्द्र के तुल्य सुन्दर, तेरा विकसित और मनोहर मुख मुझे स्मरण आ रहा है। हे पुत्री, आओ और मेरी गोद को फिर प्रकाशित करो। महाराज (दशरथ) सदा यही कहते थे--'यह सीता रघुकुल के पूर्वजों की पुत्रवधू है, परन्तु हमारी तो पुत्री ही है'।

४८. **कञ्चुकी**--यथाह देवी--

पञ्चप्रसूतेरपि तस्य राज्ञः
प्रियो विशेषेण सुबाहुशत्रुः।
वधूचतुष्केऽपि तथैव नान्या
प्रिया तनूजास्य यथैव सीता॥१६॥

अन्वय--पञ्चप्रसूतेः अपि तस्य राज्ञः सुबाहुशत्रुः विशेषेण प्रियः। तथा एव अस्य वधूचतुष्के अपि सीता एव तनूजा यथा प्रिया, अन्या न॥

कञ्चुकी--महारानी ठीक कहती हैं।

महाराज दशरथ की पाँच सन्तान होने पर भी उन्हें सुबाहुराक्षस के शत्रु राम ही विशेषरूप से प्रिय थे। इसी प्रकार चार बहुओं के होने पर भी सीता ही पुत्री के तुल्य प्रिय थी, और कोई (उतनी) प्रिय नहीं थी॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या

पञ्चप्रसूतेः अपि--पञ्च पञ्चसंख्याकाः प्रसूतयः सन्ततयः यस्य तस्य, रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्नशान्ताख्यपञ्चसंततियुक्तस्यापि, तस्य--दशरथस्य, राज्ञः--नृपतेः, सुबाहुशत्रुः--सुबाहोः मारीचसहचरराक्षसविशेषस्य शत्रुः हन्ता, विशेषेण--

पाठभेद--४८. का० काले--यथैव शान्ता, ... तथैव (जिस प्रकार शान्ता थी, उसी प्रकार)।

विशिष्टरूपेण, प्रियः--प्रेमपात्रम् अभूत्। तथैव--तेनैव प्रकारेण, अस्य----राज्ञो दशरथस्य, वधूचतुष्के अपि--वधूनां सीतादिपुत्रवधूनां चतुष्टयेऽपि, सीता एव--जानक्येव, तनूजा यथा--पुत्रीवत्, प्रिया--प्रेमास्पदम् आसीत्, अन्या--वधूचतुष्टये अपरा, न--न तथा स्नेहपात्रम् आसीत्। अत्रोपमाऽलंकारः। उपजातिर्वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **आश्वस्य**--धैर्य धारण करके। यहाँ पर होश में आकर अभिप्राय है। आ+श्वस्+ल्यप्। (२) **नव०**--नव-नवीन, विवाह--विवाह की, लक्ष्मी--शोभा या सुन्दरता को, परिग्रह--धारण करने से, एक--अनुपम, मङ्गलम्--मंगलमय। नवः विवाहः (कर्मधा०), तस्य लक्ष्मीः (तत्पु०), तस्याः परिग्रहेण एकं मङ्गलं यस्य तत्, बहु०। परिग्रह--परि+ग्रह्+अप् (अ)। (३) **संफुल्ल०**--संफुल्ल--खिले हुए, मुग्ध--सुन्दर, मुखपुण्डरीकम्--मुखरूपी कमल को। संफुल्लं मुग्धं यत् मुखपुण्डरीकम्, कर्मधा०। संफुल्ल--सम्+फुल्ल्+घञ्। मुग्ध--मुह्+क्त। (४) **आरोहत्०**--आरोहत्--ऊपर उठते हुए या निकलते हुए, कौमुदीचन्द्र--कार्तिक पूर्णिमा के चन्द्रमा के तुल्य, सुन्दरम्--सुन्दर। आरोहन् चासौ कौमुदीचन्द्रः (कर्मधा०), स इव सुन्दरम्, उपमान कर्मधा०। आरोहत्--आ+रुह्+शतृ। (५) **उद्योतय**--प्रकाशित करो। उत्+द्युत्+णिच्+लोट् म० १। (६) **रघुकुल०**--रघुवंश के प्राचीन महापुरुषों की। रघुकुलस्य महत्तराणाम्, तत्पु०। (७) **दुहितैव**--पुत्री है। दशरथ सीता को पुत्रवधू नहीं, अपितु अपनी पुत्री मानते थे। (८) **पञ्चप्रसूतेः**--पाँच संतान वाले। पञ्च प्रसूतयः यस्य तस्य, बहु०। प्रसूति--प्र+सू+क्तिन्। दशरथ की पाँच संतान थीं--राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और शान्ता नामक पुत्री। (९) **सुबाहुशत्रुः**--सुबाहुनामक मारीच के साथी राक्षस के शत्रु। सुबाहु और मारीच विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न डालते थे। विश्वामित्र दशरथ के पास आए थे और राम-लक्ष्मण को साथ ले गए। राम ने सुबाहु का वध किया। (देखो वाल्मीकि० बालकांड अध्याय १९ और ३०)। सुबाहोः शत्रुः, तत्पु०। (१०) **वधूचतुष्के**--चार बहुओं में। वधूनां चतुष्के, तत्पु०। चतुष्क--चार का समूह। चतस्रः परिमाणम् अस्य, चतुर्+कन् (क)। संख्यायाः संज्ञासंघ० (५-१-५८) से समूह अर्थ में कन्।

चार बहुएँ थीं--सीता, उर्मिला, श्रुतकीर्ति और माण्डवी। (११) तनूजा--पुत्री। तन्वाः जायते इति, तनू+जन्+ड (अ)+टाप्। पञ्चम्यामजातौ (३-२-९८) से ड प्रत्यय। (१२) इस श्लोक में यथा के द्वारा उपमा है।

४९. जनकः--हा प्रियसख महाराज दशरथ, एवमसि सर्वप्रकारहृदयंगमः। कथं विस्मर्यसे ?

कन्यायाः किल पूजयन्ति पितरो जामातुराप्तं जनं
संबन्धे विपरीतमेव तदभूदाराधनं ते मयि।
त्वं कालेन तथाविधोऽप्यपहृतः संबन्धबीजं च तद्
घोरेऽस्मिन्मम जीवलोकनरके पापस्य धिग्जीवितम् ।।१७।।

अन्वय--कन्यायाः पितरः जामातुः आप्तं जनं पूजयन्ति किल, संबन्धे (जाते) मयि ते तत् आराधनं विपरीतम् एव अभूत्। तथाविधः अपि त्वं कालेन अपहृतः, तत् संबन्धबीजं च (अपहृतम्), अस्मिन् घोरे जीवलोकनरके पापस्य मम जीवितं धिक्।

जनक--हाय, प्रियमित्र महाराज दशरथ, आप इस प्रकार पूर्णतया मेरे हृदय में रमे हुए हो। आपको कैसे भुलाया जा सकता है ?

कन्या के पितृवर्ग जामाता के मान्य जनों की पूजा करते हैं, किन्तु संबन्ध हो जाने पर भी मेरे प्रति आपकी वह पूजा विपरीत ही थी (अर्थात् लोकपरम्परा के विपरीत आप मेरी पूजा करते थे)। ऐसे भद्रपुरुष आपको भी काल ने छीन लिया और हम दोनों के संबन्ध के मूल कारण (सीता) को भी (काल ने छीन लिया है)। इस भयंकर संसाररूपी नरक में मुझ पापी के जीवन को धिक्कार है ।।१७।।

संस्कृत-व्याख्या

कन्यायाः--दुहितुः, पितरः--मातापितृपक्षसंबद्धा जनाः, जामातुः--वरस्य, आप्तं जनं--मान्यं जनम्, पूजयन्ति--अर्चन्ति, किल--इति प्रसिद्धौ। संबन्धे--आवयोः वैवाहिके संबन्धे जाते सति, मयि--जनके, ते--तव दशरथस्य, तत्

पाठभेद--४९. का० काले--०विधोऽस्यप० (तुम काल के द्वारा छीन लिए गए हो)।

आराधनं—तत्पूजनम्, विपरीतमेव—लोकाचारविरुद्धमेव, अभूत्—आसीत्। त्वं मामपूजय इत्यर्थः। तथाविधः अपि त्वम्—तादृशः सोम्योऽपि त्वम्, कालेन—मृत्युना, अपहृतः—बलाद् गृहीतोऽसि, लोकान्तरं नीतोऽसीत्यर्थः। तत्—प्रसिद्धम्, संबन्धबीजं च—संबन्धस्य आवयोः संबन्धस्य बीजं मूलकारणं च सीतारूपमित्यर्थः, मृत्युनाऽपहृतम्। अस्मिन्—एतस्मिन्, घोरे—भयावहे, जीवलोक०—जीवलोकः संसार एव नरकः निरयः तस्मिन्, संसाररूपे नरके, पापस्य—दुष्कृतः, मम—जनकस्य, जीवितं—जीवनम्, धिक्—गर्हणीयमेवास्ति। अत्र रूपकमलंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **प्रियसख**—प्रिय मित्र। प्रियः चासौ सखा, कर्मधा०। राजाहः० (५-४-९१) से समासान्त टच् प्रत्यय। प्रियसखि+अ। इ का लोप। (२) **सर्वप्रकार०**—सभी प्रकार से हृदय में पहुँचे हुए या रमे हुए। सर्वप्रकारेण हृदयंगमः, तत्पु०। हृदयं गच्छति इति हृदयंगमः, हृदय+गम्+खच् (अ)। गमेः सुपि वाच्यः (वा०) से खच् प्रत्यय और अरु० (६-३-६७) से हृदय के बाद मुम् (म्)। (३) **विस्मर्यसे**—भुलाए जा सकते हो। वि+स्मृ+कर्मवाच्य लट् म० १। (४) **आप्तं जनम्**—माननीय व्यक्तियों को। साधारणतया आप्त का अर्थ होता है—प्रामाणिक व्यक्ति या यथार्थवक्ता। 'आप्तस्तु यथार्थवक्ता'। (५) **संबन्धे**—संबन्ध होने पर राजा दशरथ के द्वारा जनक की पूजा लोकाचार के विरुद्ध कार्य था। लड़की वाले वर-पक्ष के मान्य जनों का आदर करते हैं। इस पंक्ति का अर्थ इस प्रकार भी किया जा सकता है—१. संबन्धे तद् विपरीतमेव अभूत् (हम दोनों के संबन्ध में यह लोकाचार विपरीत ही था), २. ते आराधनं मयि अभूत् (तुम्हारी पूजा मेरे लिए थी, अर्थात् तुम मेरी पूजा करते थे)। (६) **अपहृतः**—हर लिए गए, मृत्यु ने तुम्हें उठा लिया। अप+हृ+क्त। (७) **संबन्ध०**—संबन्ध का बीज। दोनों के संबन्ध का कारण सीता थी। उसे भी मृत्यु ने उठा लिया है। जनक सीता को मृत समझते हैं। (८) **जीवलोक०**—संसाररूपी नरक में। जीवलोक एव नरकः, तस्मिन्, उपमान कर्मधा०। (९) **जीवितं०**—जीवन को धिक्कार है। धिक् के कारण जीवितम् में द्वितीया है। (१०) जीवलोकनरके में रूपक अलंकार है।

५०. कौसल्या--जाते जानकि, किं करोमि ? दृढ-वज्रलेपप्रतिबन्धनिश्चलं हतजीवितं मां मन्दभागिनीं न परित्यजति। [जादे जाणइ, किं करोमि? दिढवज्जलेवप-डिबद्धणिच्चलं हदजीविदं मं मंदभाइणीं ण पडिच्चअदि।]

कौसल्या--पुत्री सीता, मैं क्या करूँ। कठोर वज्रलेप के द्वारा बन्धन के कारण मानो निश्चल यह मेरा घृणित जीवन (निन्दित प्राण) मुझ मन्दभाग्यवाली को नहीं छोड़ रहा है।

५१. अरुन्धती--आश्वसिहि राज्ञि, बाष्पविश्रामोऽप्य-न्तरेषु कर्तव्य एव। अन्यच्च किं न स्मरसि यदवोचदृष्यशृ-ङ्गाश्रमे युष्माकं कुलगुरुर्भवितव्यं तथेत्युपजातमेव, किंतु कल्याणोदर्कं भविष्यतीति ?

अरुन्धती--महारानी धैर्य रखिए, बीच-बीच में आँसू रोकने भी चाहिएँ। क्या आपको स्मरण नहीं है, जो ऋष्यशृंग के आश्रम में आपके कुलगुरु (वसिष्ठ) ने कहा था कि--जैसी होनहार थी, वैसी ही हुई। किन्तु परिणाम सुखद होगा।

Important ५२. कौसल्या--कुतोऽतिक्रान्तमनोरथाया ममैतत्। [कुदो अदिक्कंदमणोरहाए मह एदं।]

कौसल्या--जो समस्त मनोरथों को लाँघ (समाप्त कर) चुकी है, ऐसी मुझ अभागिनी के लिए यह कैसे हो सकता है ?

५३. अरुन्धती--तत्किं मन्यसे राजपत्नि, मृषोद्यं तदिति ? न हीदं क्षत्रिये ! मन्तव्यम्।

आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां
　　ये व्याहारास्तेषु मा संशयोऽभूत्।

भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता
नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति ॥१८॥

अन्वय--आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां ये व्याहाराः तेषु संशयः मा भूत्। हि एषां वाचि भद्रा लक्ष्मीः निषक्ता। एते विप्लुतार्थां वाचं न वदन्ति।

अरुन्धती--हे महारानी, तो क्या आप समझती हैं कि उनका कथन असत्य है? हे क्षत्रिया, आपको ऐसा नहीं समझना चाहिए।

ब्रह्म-साक्षात्कार करने वाले ब्राह्मणों के जो वचन होते हैं, उनके विषय में कोई सन्देह नहीं होना चाहिए, क्योंकि इनकी वाणी में मंगलमयी सिद्धि निवास करती है। ये कभी भी असत्य वचन नहीं बोलते हैं ॥१८॥

संस्कृत-व्याख्या

आविर्भूत०—आविर्भूतं प्रादुर्भूतं ज्योतिः ब्रह्मतेजः येषां तेषाम्, ब्रह्मसाक्षात्कारकृताम्, ब्राह्मणानां--विप्राणाम्, ये व्याहाराः--यानि वचनानि, तेषु--वचनेषु, संशयः--सन्देहः, मा भूत्--न स्यात्। हि--यतो हि, एषां--ब्रह्मसाक्षात्कारकृतां ब्राह्मणानाम्, वाचि--वचने, भद्रा—मङ्गलकारिणी, लक्ष्मीः—श्रीः सिद्धिर्वा, निषक्ता--संलग्ना भवति। एते—एतादृशा ब्राह्मणाः, विप्लुतार्थां--विप्लुतः असत्यरूपः अर्थः यस्याः ताम्, असत्यार्थाम्, वाचं--वचनम्, न वदन्ति--न भाषन्ते। अत्रार्थान्तरन्यासोऽलंकारः। शालिनी वृत्तम् ॥

टिप्पणी

(१) **वज्रलेप०**—दृढ--कठोर, वज्रलेप--वज्रलेप के द्वारा, प्रतिबन्ध--बाँधने से, निश्चल--निश्चेष्ट। दृढः वज्रलेपः (कर्मधा०), तेन प्रतिबन्धः (तत्पु०), तेन निश्चलम्, तत्पु०। वज्रलेप एक प्राचीन कठोर लेप होता था, जो हड्डियों आदि के जोड़ने के लिए वर्तमान प्लास्टर की भाँति था। इसकी निर्माण-विधि बृहत्संहिता (अध्याय ५७) में मिलती है। (२) **हत०**—पापी या निकृष्ट जीवन। हतं जीवितम्, कर्मधा०। (३) **बाष्पविश्रामः**—आँसुओं का रुकना। वाष्पाणां विश्रामः, तत्पु०। (४) **भवितव्यं०**—जो होनहार थी, वह उसी प्रकार हो गई। उपजातम्—हुआ। (५) **कल्याणो०**—सुखद परिणाम वाला। उदर्क--परिणाम, फल, अन्त। कल्याणम् उदर्कः यस्य तत, बहु०।

उदर्कः फलमुत्तरम्, इत्यमरः। (६) **अतिक्रान्त०**––जो सब मनोरथों को लाँघ चुकी है। अर्थात् जिसे अब किसी मनोरथ के पूर्ण होने की आशा नहीं है, अतः सीता के दर्शन की भी आशा नहीं रही है। अतिक्रान्तः मनोरथः यस्याः तस्याः, बहु०। (७) **मृषोद्यम्**––असत्य वचन। मृषा उद्यते इति, मृषा+वद्+क्यप् (य)। राजसूय० (३-१-११४) से निपातन से मृषोद्य रूप बनता है। (८) **क्षत्रिया**—क्षत्रिय स्त्री। अर्यक्षत्रियाभ्यां वा० (वार्तिक) से पक्ष में आनुक् होने से दो रूप बनते हैं—क्षत्रियाणी, क्षत्रिया। (९) **आविर्भूत०**––आविर्भूत—प्रकाशित हो गई है, ज्योतिषाम्—ज्योति या ब्रह्मतेज जिनको। आविर्भूतं ज्योतिः येषां तेषाम्, बहु०। (१०) **व्याहाराः**—वचन, कथन। वि+आ+हृ+घञ् (अ)। (११) **मा भूत्**—न हो। भूत्—भू+लुङ्+प्र० १। मा के कारण धातु से पहले अट् का अभाव। न माङ्योगे (६-४-७४) से अट् के आगम का अभाव। (१२) **भद्रा०**—कल्याणकारी सिद्धि। लक्ष्मी शब्द सिद्धि के लिए है। (१३) **निषक्ता**––संबद्ध है, स्थित है। निषक्त––नि+सञ्ज्+क्त। (१४) **विप्लुतार्थाम्**––असत्य अर्थ वाली। विप्लुत—बाढ़-पीड़ित, बाढ-ग्रस्त, डूबा हुआ, अतः प्रभावहीन या असत्य। विप्लुतः अर्थः यस्याः ताम्, बहु०। विप्लुत—वि+प्लु+क्त। (१५) भवभूति ने यह श्लोक ऋग्वेद (१०-७१-२) के निम्न मन्त्र को ध्यान में रख कर लिखा है––सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत। अत्रा सखायः सख्यानि जानते, भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि।। इस श्लोक के उत्तरार्ध की दो पंक्तियों में कारण का वर्णन है। कारण के द्वारा पूर्वार्ध कार्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

(नेपथ्ये कलकलः। सर्वे आकर्णयन्ति)

५४. जनकः––अये, अद्य खलु शिष्टानध्याय इत्यस्खलितं खेलतां वटूनां कोलाहलः।

(नेपथ्य में कोलाहल होता है। सब सुनने लगते हैं)

जनक––अरे, आज शिष्ट जनों के आगमन से अनध्याय होने के कारण निर्बाध (बिना रोक टोक के) खेलते हुए बालकों का यह कोलाहल है।

५५. कौसल्या--सुलभसौख्यमिदानीं बालत्वं भवति। (निरूप्य) अहो, एतेषां मध्ये क एष रामभद्रस्य कौमारलक्ष्मीसावष्टम्भैर्मुग्धललितैरङ्गैर्दारकोऽस्माकं लोचने शीतलयति। [सुलहसोक्खं दाणिं बालत्तणं होदि। (निरूप्य) अम्महे, एदाणं मज्झे को एसो रामभद्दस्स कौमारलच्छीसावट्ठम्भेहिं मुद्धललिदेहिं अंगेहिं दारओ अम्हाणं लोअणे सीअलावेदि?]

कौसल्या--इस बाल्यकाल में सुख सुलभ होता है। (ध्यान से देखकर) अरे, इन (बालकों) के बीच में यह कौन बालक है, जो रामचन्द्र की बाल्यावस्था की शोभा से संयुक्त अपने कोमल और सुन्दर अंगों से हमारे नेत्रों को शीतल बना रहा है।

५६. अरुन्धती--(स्वगतम्। सहर्षोत्कण्ठम्) इदं नाम भागीरथीनिवेदितं रहस्यकर्णामृतम्। न त्वेवं विद्मः कतरोऽयमायुष्मतोः कुशलवयोरिति। (प्रकाशम्)--

कुवलयदलस्निग्धश्यामः शिखण्डकमण्डनो
वटुपरिषदं पुण्यश्रीकः श्रियेव सभाजयन्।
पुनरपि शिशुर्भूतो वत्सः स मे रघुनन्दनो
झटिति कुरुते दृष्टः कोऽयं दृशोरमृताञ्जनम्॥१९॥

अन्वय--कुवलयदलस्निग्धश्यामः शिखण्डकमण्डनः पुण्यश्रीकः श्रिया वटुपरिषदं सभाजयन् इव, स मे वत्सः रघुनन्दनः पुनरपि शिशुः भूतः, अयं कः, (यः) दृष्टः (सन्) झटिति दृशोः अमृताञ्जनं कुरुते॥

अरुन्धती--(मन में, हर्ष और उत्कंठा के साथ) भगवती भागीरथी (गंगा) के द्वारा कहा गया यह (अत्यन्त) गोपनीय और कानों के लिए अमृततुल्य वचन

पाठभेद--५६. नि० श्रियैव (अपनी शोभा से ही)। नि० शिशुर्भूत्वा (बालक के रूप में होकर)

है। किन्तु मुझे यह ज्ञात नहीं है कि चिरंजीव कुश और लव में से यह कौन सा है। (प्रकट रूप में)

नीलकमल के पत्ते के तुल्य कोमल और श्यामवर्ण, काकपक्ष (चोटी) से सुशोभित, पवित्र शोभा-संपन्न, अपनी (शारीरिक) शोभा से वटु-समूह को सुशोभित करता हुआ सा, वह मेरा प्रिय रामचन्द्र मानो फिर बालक रूप में हो गया है, इस प्रकार यह कौन बालक है, जो देखने पर सहसा मेरे नेत्रों में अमृतरूपी अंजन का लेप कर रहा है॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या

कुवलय०—कुवलयस्य नीलकमलस्य दलमिव पत्रमिव स्निग्धः कोमलः श्यामः नीलवर्णश्च, शिखण्डक०—शिखण्डकः काकपक्षः मण्डनम् अलंकरणं यस्य सः, पुण्यश्रीकः—पुण्या पवित्रा श्रीः शोभा यस्य सः, पावनशोभासंपन्नः, श्रिया—स्वशरीरशोभया, वटुपरिषदं—कुमारवृन्दम्, सभाजयन् इव—अलंकुर्वन् इव, सः—पूर्ववर्णितः, मे—मम, वत्सः—वात्सल्यभाजनम्, रघुनन्दनः—रामचन्द्रः, पुनरपि—भूयोऽपि, शिशुः—बालरूपः, भूतः—संजात इति मन्ये। अयं कः—एष कोऽयं बालकोऽस्ति, यः दृष्टः सन्—यो निरीक्षितः सन्, झटिति—सहसा, दृशोः—नेत्रयोः, अमृताञ्जनं—सुधामयं नयनाञ्जनम्, कुरुते—विदधाति। अत्रोत्प्रेक्षोपमा चालंकारौ। हरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **शिष्टानध्यायः**—शिष्ट जनों के आगमन के कारण अनध्याय या छुट्टी। शिष्टागमनेन अनध्यायः, शाकपार्थिव के तुल्य मध्यमपद का लोप, तत्पु०। प्राचीन परम्परा थी कि विशिष्ट महापुरुषों के आने पर संस्था में अनध्याय (पढ़ाई की छुट्टी) रहता था। (२) **अस्खलितम्**—बिना रोकटोक के, निर्बाध। न स्खलितं यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात् तथा, बहु०। (३) **खेलताम्**—खेलते हुए। खेल्+शतृ+ष० ३। (४) **सुलभ०**—सुलभ है सुख जिसमें, ऐसा बाल्यकाल होता है। सुलभं सौख्यं यस्मिन् तत्, बहु०। सुलभ—सु+लभ्+खल् (अ)। (५) **कौमार०**—कौमारलक्ष्मी—बाल्यावस्था की शोभा के, सावष्टम्भैः—अवलम्बन से युक्त, संपन्न। कौमारलक्ष्म्याः सावष्टम्भैः, तत्पु०। कौमार—कुमारस्य भावः, कुमार+अण्। सावष्टम्भ—अवष्टम्भेन सह, बहु०। अवष्टम्भ—अव+स्तम्भ्

+घञ्। अवाच्चालम्बना० (८-३-६८) से अवलम्बन अर्थ में स् को ष्। अवष्टम्भ—सहारा, अतएव गौरव, दर्प। (६) **मुग्धललितैः**—कोमल और सुन्दर। मुग्धानि च ललितानि, तैः, बहु०। (७) **शीतलयति**—ठंडा बना रहा है। शीतलं करोति, शीतल+णिच्+लट् प्र० १। करोति अर्थ में तत्करोति० (गण०) से णिच्। (८) **सहर्षो०**—हर्ष और उत्सुकता के साथ। हर्षश्च उत्कण्ठा च (द्वन्द्व०), ताभ्यां सह, बहु०। (९) **भागीरथी०**—गंगा के द्वारा बताया गया। भागीरथ्या निवेदितम्, तत्पु०। (१०) **रहस्य०**—रहस्यमय और कानों के लिए अमृत तुल्य। रहस्यं च तत् कर्णामृतम्, कर्मधा०। (११) **कतरः**—दो में से कौन सा एक। (१२) **कुवलय०**—कुवलय—नीलकमल के, दल—पत्ते के तुल्य, स्निग्ध—चिकना या कोमल और, श्यामः—साँवला। कुवलयस्य दलम् (तत्पु०), तद्वत् स्निग्धः श्यामः च, उपमान कर्मधा०। स्निग्ध—स्निह्+क्त। (१३) **शिखण्डक०**—शिखण्डक—काकपक्ष या बालकों की चोटी से, मण्डनः—सुशोभित। शिखण्डकः मण्डनं यस्य सः, बहु०। (१४) **वटुपरिषदम्**—बालकों के समूह को। वटूनां परिषदम्, तत्पु०। (१५) **पुण्यश्रीकः**—पवित्र शोभा से युक्त। पुण्या श्रीः यस्य सः, बहु०। शेषाद् विभाषा (५-४-१५४) से समासान्त कप् (क) प्रत्यय। (१६) **सभाजयन्**—शोभित करता हुआ। सभाज्+णिच्+शतृ प्र० १। (१७) **अमृताञ्जनम्**—अमृत का अञ्जन। अमृतस्य अञ्जनम्, तत्पु०। (१८) इस श्लोक में सभाजयन् इव में इव उत्प्रेक्षासूचक है, अतः क्रियोत्प्रेक्षा है। कुवलयदल० में इव का अर्थ लुप्त है, अतः लुप्तोपमा अलंकार है।

५७. कञ्चुकी—नूनं क्षत्रियब्रह्मचारी दारकोऽयमिति मन्ये।

कंचुकी—मेरा अनुमान है कि अवश्य ही यह बालक क्षत्रिय ब्रह्मचारी है।

५८. जनकः—एवमेतत्। अस्य हि—

चूडाचुम्बितकङ्कपत्रमभितस्तूणीद्वयं पृष्ठतो
भस्मस्तोकपवित्रलाञ्छनमुरो धत्ते त्वचं रौरवीम्।
मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितमधो वासश्च माञ्जिष्ठकं
पाणौ कार्मुकमक्षसूत्रवलयं दण्डोऽपरः पैप्पलः॥२०॥

भगवत्यरुन्धति, किमित्युत्प्रेक्षसे कुतस्त्योऽयमिति ?

अन्वय—पृष्ठतः अभितः चूडाचुम्बितकङ्कपत्रं तूणीद्वयम्, भस्मस्तोकपवित्रलाञ्छनम् उरः, रौरवीं त्वचं धत्ते। अधः च मौर्व्या मेखलया नियन्त्रितं माञ्जिष्ठकं वासः, पाणौ कार्मुकम्, अक्षसूत्रवलयम्, अपरः पैप्पलः दण्डः (अस्ति)।

जनक—हाँ, यह ठीक है। क्योंकि यह—

पीठ के दोनों ओर चोटी से छुए गए कंकपत्रों से युक्त दो तरकशों को, थोड़ी सी भस्म के पवित्र चिह्न से युक्त वक्षःस्थल को तथा रुरु-मृग की छाल को धारण कर रहा है और अधोभाग में मूर्वालता से बनी हुई मेखला से बँधी हुई मजीठ के रंग में रँगी हुई धोती है। इसके हाथ में धनुष, रुद्राक्ष की माला और पीपल का दण्ड है ॥२०॥

भगवती अरुन्धती, यह बालक किसका है? इस विषय में आपका क्या अनुमान है?

संस्कृत-व्याख्या

पृष्ठतः—पृष्ठभागे, अभितः—उभयतः, चूडा०—चूडाभिः शिखाभिः चुम्बितानि स्पृष्टानि कङ्कस्य पक्षिविशेषस्य पत्राणि शरपुङ्खस्थिताः पक्षाः यस्य तथाविधम्, तूणीद्वयम्—इषुधियुगलम्, भस्म०—भस्मनां विभूतीनां स्तोकेन स्वल्पपरिमाणेन पवित्रं पूतं लाञ्छनं चिह्नं यस्य तथाविधम्, उरः—वक्षःस्थलम्, रौरवीं—रुरुमृगसंबन्धिनीम्, त्वचं—चर्म, धत्ते—धारयति। अधः चः—अधोभागे च, मौर्व्या—मूर्वालतातन्तुनिर्मितया, मेखलया—कटिसूत्रेण, नियन्त्रितं—बद्धम्, माञ्जिष्ठकं—मञ्जिष्ठारागेण रक्तम्, वासः—वस्त्रम्, अधोवस्त्रमित्यर्थः, पाणौ—हस्ते, कार्मुकं—धनुः, अक्षसूत्रवलयं—रुद्राक्षमाला, अपरः—अन्यः, धनुर्दण्डादतिरिक्त इत्यर्थः, पैप्पलः—अश्वत्थशाखाविरचितः, दण्डः—लगुडश्च, वर्तते इति शेषः। अत्र तुल्ययोगिताऽलंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **क्षत्रिय०**—क्षत्रिय ब्रह्मचारी। क्षत्रियः ब्रह्मचारी, कर्मधा०। **दारकः**—बालक। (२) **मन्ये**—समझता हूँ, मेरा अनुमान है। मन्+लट् उ० १।

(३) **चूडा०**--चूडा--चोटी से, चुम्बित--छुए हुए, कङ्कपत्रम्--वाण के अन्त में लगे हुए कंक नामक पक्षी के पंख से युक्त। तीव्र गति के लिए वाण के पिछले छोर पर कंक पक्षी का पंख लगाया जाता था। चूडाभिः चुम्बितानि कङ्कस्य पत्राणि यस्य तथाविधम्, बहु०। (४) **तूणीद्वयम्**--दो तरकश, दो तूणीर। तूणीर--जिसमें वाण रखे जाते हैं। तूणीनां द्वयम्, तत्पु०। (५) **भस्म०**--भस्मस्तोक--थोड़ी राख के, पवित्र--पवित्र, लाञ्छनम्--चिह्न से युक्त। भस्मनां स्तोकेन पवित्रं लाञ्छनं यस्य तत्, बहु०। (६) **उरः**--वक्षःस्थल। **धत्ते**--धारण करता है। धा+लट् आ० प्र० १। **त्वचम्**--खाल या चर्म को। (७) **रौरवीम्**--रुरु नाम के मृग की। रुरोः इयम्, रुरु+अण्+ङीप्। (८) **मौर्व्या**--मूर्वा लता के तन्तुओं से बनी हुई। मूर्वायाः इयम्, मूर्वा+अण्+ङीप् तृ० १। विकार अर्थ में अवयवे च० (४-३-१३५) से अण्। (९) **मेखलया**--मेखला या तगड़ी से। **नियन्त्रितम्**--बाँधा हुआ। **अधः**--नीचे। वासः--वस्त्र, यहाँ पर अधोवस्त्र या धोती अर्थ है। (१०) **माञ्जिष्ठकम्**--मजीठ के रंग में रंगी हुई। मञ्जिष्ठया रक्तम्, मञ्जिष्ठा+अण्+स्वार्थ में कन्। तेन रक्तं० (४-२-१) से रंगा हुआ अर्थ में अण् और उससे स्वार्थ में क प्रत्यय। (११) **कार्मुकम्**--धनुष। कर्मणे प्रभवति, कर्मन्+उकञ्। कर्मण उकञ् (५-१-१०३) से उक प्रत्यय। (१२) **अक्ष०**--अक्षसूत्र--रुद्राक्षमाला, वलयम्--गोल घेरे वाली। गोलाकार बंधी रुद्राक्षमाला। (१३) **पैप्पलः**--पीपल की शाखा का बना हुआ। पिप्पलस्य विकारः, पिप्पल+अण्। विकार अर्थ में अण्। (१४) इस श्लोक में प्रथम दो पंक्तियों में तूणीद्वय, उरः और त्वचम् इन तीन प्रस्तुतों का एक क्रिया धत्ते से संबन्ध है, इसी प्रकार चतुर्थ पंक्ति में कार्मुकम्, अक्षसूत्र० और दण्डः का पाणौ से संबन्ध है। अतः तुल्ययोगिता अलंकार है। क्षत्रिय ब्रह्मचारी के धारण करने योग्य मेखला दण्ड चर्म आदि के विवरण के लिए देखो मनुस्मृति (२·४०-४५)। यह श्लोक महावीरचरित (१-१८) में भी आया है। (१५) **कुतस्त्यः**--कहाँ से आया है, अर्थात् किस माता-पिता से इसका जन्म हुआ है। कुतः+त्यप्। अव्ययात्त्यप् (४-२-१०४) से त्यप् प्रत्यय।

५९. अरुन्धती--अद्यैव वयमागताः।

अरुन्धती--हम लोग आज ही आए हैं, (अतः ठीक अनुमान लगाना कठिन है)।

६०. जनकः—आर्य गृष्टे, अतिकौतुकं वर्तते। तद्भगवन्तं वाल्मीकिमेव गत्वा पृच्छ। इमं च दारकं ब्रूहि। वत्स, केऽप्येते प्रवयसस्त्वां दिदृक्षव इति।

जनक—आर्य गृष्टि, मुझे बहुत उत्सुकता हो रही है। अतः भगवान् वाल्मीकि के ही पास जाकर पूछो और इस बालक से कहना कि—'वत्स, ये कुछ वृद्ध व्यक्ति तुम्हें देखना चाहते हैं' (अर्थात् तुमसे मिलना चाहते हैं)।

६१. कञ्चुकी—यदाज्ञापयति देवः।

(इति निष्कान्तः।)

कंचुकी—जो महाराज की आज्ञा।

(कंचुकी का प्रस्थान)।

६२. कौसल्या—किं मन्यध्वे एवं भणित आगमिष्यति वा न वेति? [किं मण्णेध एव्वं भणिदो आअमिस्सदि वा ण वेत्ति?]

कौसल्या—आप लोगों का क्या विचार है? इस प्रकार कहने पर वह आएगा या नहीं?

६३. जनकः—भिद्यते वा सद्वृत्तमीदृशस्य निर्माणस्य।

जनक—क्या ऐसी सुन्दर आकृति वाला (बालक) शिष्टाचार का उल्लंघन कर सकता है?

६४. कौसल्या—(निरूप्य) कथं सविनयनिशमितगृष्टिवचनो विसर्जिताशेषसदृशदारक इतोभिमुखमपसृत एव स वत्सः? [कहं सविणअणिसमिदगिट्ठिवअणो विस-

ज्जिदासेससरिसदारग्रो इतोहिमुहं ग्रवसरिदो एव्व स
वच्छो ?]

कौसल्या--(ध्यान से देखकर) किस प्रकार विनयपूर्वक कंचुकी के वचन को सुनकर, अपने समस्त साथी बालकों को छोड़कर, वह बालक इधर की ग्रोर चल पड़ा है।

टिप्पणी

(१) **ग्रतिकौतुकम्**---बहुत कुतूहलता, बहुत उत्सुकता। (२) **प्रवयसः**—वृद्ध। प्रकृष्टं वयः येषां ते, बहु०। प्रवयस्—वृद्ध। (३) **दिदृक्षवः**—देखने के इच्छुक। द्रष्टुम् इच्छवः, दृश्+सन्+उ+प्र० ३। सन् प्रत्यय करके सनाशंस० (३-२-१६८) से उ प्रत्यय। (४) **मन्यध्वे**—मानते हो, समझते हो। मन्+लट् म० ३.। (५) **भणितः**—कहा गया, कहे जाने पर। भण्+क्त। (६) **भिद्यते०**--क्या ऐसी सुन्दर ग्राकृति वाला अपने शिष्टाचार को छोड़ सकता है? भिद्यते—छूटता है, भिन्न होता है। सद्वृत्तम्—शिष्टाचार, सदाचार। सतां वृत्तम्, तत्पु०। ईदृशस्य—इस प्रकार के ग्रर्थात् सुन्दर। निर्माणस्य---बनावट का, ग्राकृति का। निर्माण—निर्+मा+ल्युट् (ग्रन)। (७) सुन्दर ग्राकृति वालों में सद्गुण निवास करते हैं। इसी भाव वाले वाक्य निम्नलिखित हैं:—१. न ह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम् (मृच्छकटिक ९-१६)। २. न तादृशा ग्राकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति (शाकुन्तल ग्रंक ४)। ३. यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति (किराता० ६-१ पर मल्लिनाथ द्वारा प्रदत्त उद्धरण)। ४. सेयमाकृतिर्न व्यभिचरति शीलम् (दशकुमार० ६)। ५. भिद्यते न सद्वृत्तमिक्ष्वाकुगृहेषु (महावीर० ६)। (८) **निरूप्य**—ध्यान से देखकर। नि+रूप्+णिच्+ल्यप्। (९) **सविनय०**—जिसने गृष्टि नामक कंचुकी के वचन को नम्रता के साथ सुना है। **निशमित**—सुना है। सविनयं निशमितः गृष्टेः वचनं येन सः, बहु०। नि+शम्+णिच्+क्त। (१०) **विसर्जिता०**—विसर्जित—छोड़ा है, ग्रशेष—सारे, सदृश---समान या साथी, दारकः—बालकों को जिसने। विसर्जिताः ग्रशेषाः सदृशाः दारकाः येन सः, बहु०। (११) **ग्रपसृतः**—चल पड़ा है। ग्रप+सृ+क्त।

६५. जनकः—(चिरं निर्वर्ण्य) भोः, किमप्येतत्—

महिम्नामेतस्मिन्विनयशिशिरो मौग्ध्यमसृणो
विदग्धैर्निर्ग्राह्यो न पुनरविदग्धैरतिशयः।
मनो मे संमोहस्थिरमपि हरत्येष बलवा-
नयोधातुं यद्वत्परिलघुरयस्कान्तशकलः ॥२१॥

अन्वय—एतस्मिन् विनयशिशिरः मौग्ध्यमसृणः महिम्नाम् अतिशयः विदग्धैः निर्ग्राह्यः, न पुनः अविदग्धैः। बलवान् एषः संमोहस्थिरम् अपि मे मनः हरति, यद्वत् परिलघुः अयस्कान्तशकलः अयोधातुं (हरति)।

जनक—(बहुत देर तक ध्यान से देख कर) अरे, यह कुछ अद्भुत-सी बात है। इस बालक में विनय के कारण शीतल और भोलेपन के कारण कोमल, जो (शौर्य आदि गुणों के) महत्त्व का उत्कर्ष है, उसे विशेषज्ञ व्यक्ति ही भाँप सकते हैं, सामान्य अचतुर व्यक्ति नहीं। शक्तिसंपन्न यह (बालक) अपरिचय के कारण स्थिर हुए भी मेरे मन को इसी प्रकार अपनी ओर खींच रहा है, जैसे छोटा-सा चुम्बक का टुकड़ा लोहे को (खींचता है) ॥२१॥

संस्कृत-व्याख्या

एतस्मिन्—अस्मिन् बालके, विनय०—विनयेन विनम्रतया शिशिरः शीतलः, मौग्ध्य०—मौग्ध्येन सारल्येन मसृणः कोमलः, महिम्नां—शौर्यादिगुणमहत्त्वस्य, अतिशयः—उत्कर्षः, विदग्धैः—विशारदैः, निर्ग्राह्यः—ज्ञातुं शक्यः, न पुनः—न तु, अविदग्धैः—अनिपुणैः। बलवान्—शक्तिसंपन्नः, एषः—बालकः, संमोह०—संमोहेन परिचयाज्ञानेन स्थिरमपि निश्चेष्टमपि, मे—मम जनकस्य, मनः—चित्तम्, हरति—आकर्षति, यद्वत्—यथा, परिलघुः—स्वल्पः, अयस्कान्तशकलः—चुम्बकखण्डः, अयोधातुं—लौहधातुम्, हरति—आकर्षति। अत्र परिसंख्योपमा चालंकारौ। शिखरिणी वृत्तम् ॥

पाठभेद—६५. का० काले—विनयशिशुतामौग्ध्यमसृणो (विनय, शैशव और भोलेपन के कारण मनोहर)। का० संमोहः स्थिरमपि (अज्ञान का भाव मेरे स्थिर मन को भी)। काले—संमोदस्थिरमपि (आनन्द के कारण स्थिर मेरे मन को)।

टिप्पणी

(१) **निर्वर्ण्य**—ध्यान से देखकर। निर्+वर्ण्+णिच्+ल्यप्। (२) **किमप्येतत्**—यह कुछ अपूर्व बात है। कुछ अद्भुत सी घटना है। (३) **महिम्नाम्**—महिमाओं का, महत्त्व का। महिमन्—महतः भावः, महत्+इमन्। अत् का लोप। (४) **विनय०**—नम्रता के कारण शीतल। विनयेन शिशिरः, तत्पु०। (५) **मौग्ध्य०**—मौग्ध्य—भोलेभाले पन के कारण, मसृण—कोमल या चिकना। मौग्ध्येन मसृणः, तत्पु०। मौग्ध्य—मुग्धस्य भावः, मुग्ध+ष्यञ्। भाव अर्थ में ष्यञ्। (६) **विदग्धैः**—विद्वानों के द्वारा, विशेषज्ञों के द्वारा। (७) **निर्ग्राह्यः**—ग्रहण करने योग्य, भाँपने योग्य। निर्+ग्रह्+ण्यत् (८) **अविदग्धैः**—मूर्खों या अचतुरों से। **अतिशयः**—उत्कर्ष, अधिकता। अति+शी+अच्। (९) **संमोह०**—संमोह—अज्ञान या अपरिचय के कारण, स्थिरम्—निश्चेष्ट, गतिशून्य। संमोहेन स्थिरम्, तत्पु०। (१०) **बलवान्**—यह शक्तिसंपन्न बालक। बलवान् का संबन्ध बालक से है। बलवान् का संबन्ध महिम्नाम् अतिशयः (बलवान् गुण-गौरव) के साथ भी लग सकता है। (११) **अयोधातुम्**—लोहे को। यद्वत्—जैसे। परिलघुः—बहुत छोटा। (१२) **अयस्कान्त०**—अयस्कान्त—चुम्बक का, शकलः—टुकड़ा। अयस्कान्तस्य शकलः, तत्पु०। जिस प्रकार चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींच लेता है, उसी प्रकार यह बालक मुझे अपनी ओर खींच रहा है। (१३) दूसरी पंक्ति में विदग्धैः निर्ग्राह्यः के द्वारा अन्य की व्यावृत्ति होने से परिसंख्या अलंकार है। यद्वत् के द्वारा उपमा अलंकार है।

६६ लवः—(प्रविश्य) अविज्ञातवयःक्रमौचित्यात्पूज्यानपि सतः कथमभिवादयिष्ये? (विचिन्त्य) अयं पुनरविरुद्धः प्रकार इति वृद्धेभ्यः श्रूयते। (सविनयमुपसृत्य) एष वो लवस्य शिरसा प्रणामपर्यायः।

लव—(प्रवेश करके) आयु और क्रम के औचित्य का ठीक ज्ञान न होने के कारण पूजनीय होते हुए भी इन सज्जनों को किस प्रकार प्रणाम करूँ? (विचार कर) यह निर्विरोध (नमस्कार की) पद्धति है, ऐसा वृद्ध जनों से सुनने में आया है। (विनयपूर्वक समीप जाकर) यह आप लोगों को लव की शिर झुकाकर प्रणाम-परंपरा है (अर्थात् पूज्यक्रम से प्रणाम है)।

६७. अरुन्धतीजनकौ--कल्याणिन्, आयुष्मान्भूयाः।
अरुन्धती और जनक--हे कल्याणसंपन्न, तुम चिरंजीवी हो।

६८. कौसल्या--जात, चिरं जीव। [जाद, चिरं जीव।]
कौसल्या--पुत्र, तुम चिरकाल तक जीओ।

६९. अरुन्धती--एहि वत्स, (लवमुत्सङ्गे गृहीत्वा। आत्मगतम्) दिष्टचा न केवलमुत्सङ्गश्चिरान्मनोरथोऽपि मे पूरितः।

अरुन्धती--हे पुत्र, आओ। (लव को गोद में लेकर, मन ही मन) सौभाग्य से न केवल गोद ही, अपि तु चिरकाल के बाद मेरा मनोरथ भी पूर्ण हुआ है।

७०. कौसल्या--जात, इतोऽपि तावदेहि। (उत्सङ्गे गृहीत्वा) अहो, न केवलं दरविस्पष्टकुवलयमांसलोज्ज्वलेन देहबन्धनेन कवलितारविन्दकेसरकषायकण्ठकलहंसघोष-घर्घरानुनादिना स्वरेण च रामभद्रमनुसरति। ननु कठोर-कमलगर्भपक्ष्मलशरीरस्पर्शोऽपि तादृश एव। जात, पश्यामि ते मुखपुण्डरीकम्। (चिबुकमुन्नमय्य निरूप्य सबाष्पाकूतम्) राजर्षे, किं न पश्यसि निपुणं निरूप्यमाणो वत्साया मे वध्वा मुखचन्द्रेणापि संवदत्येव? [जाद, इदो वि दाव एहि। (उत्सङ्गे गृहीत्वा) अम्महे, ण केवलं दरविप्पट्टकंदो-ट्टमंसलुज्जलेण देहवंधणेण कवलिदारविंदकेसरकसाअकंठक-लहंसघोसघग्घराणुणादिणा सरेण अ रामभद्दं अणुसरेदि। णं कठोरकमलगब्भप्पम्मलसरीरप्पस्सो वि तारिसो एव्व। जाद, पेक्खामि दे मुहपुंडरीअं। (चिबुकमुन्नमय्य निरूप्य

सबाष्पाकूतम्) राएसि, किं ण पेक्खसि णिउणं णिरूवज्जंतो वच्छाए मे वहूए मुहचंदेण वि संवददि एव्व ?]

कौसल्या--पुत्र, इधर भी आओ। (गोद में लेकर) ओह, यह बालक अर्ध-विकसित नीलकमल के तुल्य पुष्ट और तेजोमय शरीर-गठन के द्वारा ही नहीं, अपितु कमल-केसर के खाने से मधुर ध्वनि वाले हंस के शब्द के तुल्य घर्घर-ध्वनियुक्त स्वर के द्वारा भी यह रामचन्द्र का अनुकरण करता है। वस्तुतः पूर्ण विकसित कमल के अन्तर्दल (अन्दर का पत्ता) के तुल्य कोमल शरीर-स्पर्श भी वैसा ही (अर्थात् रामचन्द्र के शरीरस्पर्श के तुल्य ही) है। पुत्र, मैं तेरे मुख-कमल को देखूँ। (ठोडी को ऊपर उठाकर, ध्यान से देखकर, आँखों में आँसू भरकर, विशेष अभिप्राय के साथ) हे राजर्षि जनक, क्या आप नहीं देख रहे हैं कि ध्यान से देखने पर इसका मुँह मेरी पुत्री बहू सीता के मुखचन्द्र से भी मिल रहा है।

टिप्पणी

(१) **अविज्ञात०**--अविज्ञात--नहीं ज्ञात है, वयः--आयु, क्रम--ज्येष्ठता के क्रम का, औचित्यात्--औचित्य जिनका। वयश्च क्रमश्च (द्वन्द्व), तयोः औचित्यम् (तत्पु०), विज्ञातं वयःक्रमौचित्यम् (कर्मधा०), तदभावः तस्मात् (नञ् तत्पु०)। (२) **अविरुद्धः०**--यह बिना विरोध वाली पद्धति है कि सामूहिक प्रणाम कर दिया जाए। अविरुद्धः--नञ्+वि+रुध्+क्त। (३) **उपसृत्य**--पास जाकर। उप+सृ+ल्यप्। (४) **प्रणाम०**--प्रणाम की परंपरा। नतमस्तक होकर अनेक प्रणाम हैं, यथायोग्य प्रणाम समझ लें। (५) **कल्याणिन्**--कल्याण वाले। कल्याण+इनि। मतुप् के अर्थ में इनि। (६) **दिष्ट्या**--भाग्य से, सौभाग्य से। (७) **दर०**--दर--थोड़े, विस्पष्ट--खिले हुए, कुवलय--नील-कमल के तुल्य, मांसल--पुष्ट और, उज्ज्वलेन--तेजोमय या चमकते हुए। दरं विस्पष्टं यत् कुवलयं तदिव मांसलम् उज्ज्वलं च, तेन, (कर्मधा०)। (८) **देह-बन्धनेन**--शरीर के गठन से। देहस्य बन्धनेन, तत्पु०। (९) **कवलिता०**--कवलित--खाए गए, अरविन्द--कमल के, केसर--पराग से, कषाय--कसैला, मीठा, कण्ठ--गला या ध्वनि से युक्त, कलहंस--हंस के, घोष--

ध्वनि के तुल्य, घर्घर--घर्घर ध्वनियुक्त, अनुनादिना--शब्द वाले। कवलिताः अरविन्दकेसराः (कर्मधा०), तैः कषायः कण्ठः यस्य सः (बहु०), तादृशः कलहंसः (कर्मधा०), तस्य घोषः (तत्पु०), स इव घर्घरम् अनुनदति इति, तेन। (१०) **अनुसरति**--राम का अनुकरण करता है। (११) **कठोर०**--कठोर--पुष्ट, कमलगर्भ--कमल के अन्दर के भाग के तुल्य, पक्ष्मल--कोमल, शरीरस्पर्शः--शरीर का स्पर्श। कठोरं कमलम् (कर्मधा०), तस्य गर्भः, तद्वत् पक्ष्मलः शरीरस्य स्पर्शः, तत्पु०। (१२) **तादृश एव**--राम के शरीर के स्पर्श के तुल्य ही है। (१३) **चिबुकम्**--ठोडी को। उन्नमय्य--उठाकर। उत्+नम्+णिच्+ल्यप्। (१४) **सबाष्पा०**--आँखों में आँसू और विशेष अभिप्राय के साथ। अर्थात् इसका मुँह सीता से मिलता है, इस अभिप्राय के साथ। बाष्पेण आकूतेन च सहितं यथा स्यात् तथा, क्रियाविशेषण। (१५) **संवदति**--मिलता है। सीता के मुखचन्द्र से मिलता-जुलता है। इस अर्थ में संवदति के साथ तृतीया होती है।

७१. जनकः--पश्यामि सखि, पश्यामि।

जनक--देख रहा हूँ, सखी, देख रहा हूँ।

७२. कौसल्या--अहो, उन्मत्तीभूतमिव मे हृदयं कुतोमुखं विलपति। [अम्महे, उम्मत्तीभूदं विअ मे हिअअं कुदोमुहं विलवदि।]

कौसल्या--ओह, मेरा हृदय पागल-सा होकर किसी के ध्यान में लगा हुआ विलाप कर रहा है।

७३. जनकः--

वत्सायाश्च रघूद्वहस्य च शिशावस्मिन्नभिव्यज्यते
संवृत्तिः प्रतिबिम्बितेव निखिला सैवाकृतिः सा द्युतिः।
सा वाणी विनयः स एव सहजः पुण्यानुभावोऽप्यसौ
हा हा देवि! किमुत्पथैर्मम मनः पारिप्लवं धावति ॥२२॥

पाठभेद--७३. का० काले--संपूर्णप्रति० (पूर्णरूप से प्रतिबिम्बित)। का० काले--दैव (हे दैव, हे भाग्य)।

अन्वय—अस्मिन् शिशौ वत्सायाः च रघूद्वहस्य च संवृत्तिः प्रतिबिम्बिता इव अभिव्यज्यते, सा एव निखिला आकृतिः, सा द्युतिः, सा वाणी, स एव सहजः विनयः, असौ पुण्यानुभावः अपि, हा हा देवि, मम मनः पारिप्लवं (सत्) किम् उत्पथैः धावति ।।

जनक—इस बालक में पुत्री सीता और रघुकुलश्रेष्ठ राम का संबन्ध प्रतिबिम्बित-सा दिखाई पड़ रहा है। (राम और सीता के समान) वही सम्पूर्ण आकार, वही कान्ति, वही वाणी, वही स्वाभाविक नम्रता और वही पवित्र तेज भी है। हाय हाय देवी, मेरा मन चंचल होकर क्यों कुमार्ग से दौड़ रहा है? ।।२२।।

संस्कृत-व्याख्या

अस्मिन्—एतस्मिन्, शिशौ—बालके, वत्सायाश्च—सीतायाः, रघूद्वहस्य च—रघुकुलश्रेष्ठस्य रामस्य च, संवृत्तिः—संबन्धः, प्रतिबिम्बिता इव—संक्रान्ता इव, अभिव्यज्यते—संलक्ष्यते। सा एव—सीतारामतुल्यैव, निखिला—समग्रा, आकृतिः—आकारः, सा—तादृश्येव, द्युतिः—कान्तिः, सा—तादृश्येव, वाणी—वाक्, स एव—तादृश एव, सहजः—स्वाभाविकः, विनयः—विनम्रता, असौ—एषः, रामवदित्यर्थः, पुण्यानुभावः अपि—पवित्रप्रभावोऽपि अस्ति। हा हा देवि—हा हा जानकि, मम—जनकस्य, मनः—हृदयम्, पारिप्लवं—चञ्चलं सत्, किं—केन कारणेन, उत्पथैः—उन्मार्गैः, धावति—प्रसरति। सीता वने श्वापदैर्नूनं भक्षितैव, कथमेष तस्याः सूनुः संभवति, इति मे मनः नितरां खिन्नमस्ति। अत्र तुल्ययोगिताऽलंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **उन्मत्तीभूतमिव०**—मेरा हृदय उन्मत्त सा हो रहा है। अनुन्मत्तम् उन्मत्तं भूतम् इति उन्मत्तीभूतम्। अभूततद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय है और उन्मत्त के अन्तिम अ को ई। (२) **कुतोमुखम्**—किसी ओर ध्यान लगाए हुए, किसी का चिन्तन करते हुए। यहाँ पर सीता का चिन्तन करना अभिप्राय है। सीता मर चुकी है, अतः उसका पुत्र कैसे संभव है? कुतः मुखं यस्य तत्, बहु०। (३) **विलपति**—विलाप कर रहा है। सीता को याद करके रो रहा है। वि+लप्+लट् प्र० १। (४) **रघूद्वहस्य**—रघुवंश में श्रेष्ठ राम का। रघूणाम्

उद्वहः, तस्य, तत्पु०। उद्वह—उत्+वह्+अच् (अ)। (५) **अभिव्यज्यते**—प्रकट हो रहा है। अभि+वि+अञ्ज्+कर्मवाच्य लट् प्र० १। (६) **संवृत्तिः**—संपर्क, सम्बन्ध। सम्+वृत्+क्तिन् (ति)। (७) **प्रतिबिम्बितेव**—प्रतिविम्बित सी हो रही है। प्रतिविम्बिता—प्रतिविम्बः संजातः अस्याः सा, प्रतिबिम्ब+इतच् (इत)+टाप्। (८) **सहजः**—स्वाभाविक। सह जायते इति, सह+जन्+ड (अ)। जन् के अन् का लोप। (९) **पुण्यानुभावः**—पुण्य—पवित्र, अनुभावः—प्रभाव, तेज। पुण्यः चासौ अनुभावः, कर्मधा०। (१०) **उत्पथैः**—कुमार्ग से। उद्गताः पन्थानः—उत्पथाः, तैः। उत्+पथिन्+अ+तृ० ३। ऋक्पूरब्धूः० (५-४-७४) से समासान्त अ प्रत्यय होने पर नस्तद्धिते (६-४-१४४) से पथिन् के इन् का लोप। उत्पथ अर्थात् उबड़-खाबड़ मार्ग। जनक के कथन का अभिप्राय है कि परित्याग के बाद सीता मर गई थी, उसका कोई पुत्र संभव नहीं है। इस बालक को सीता का पुत्र समझना असत्य और असंभव कल्पना है। अतएव मन को कुमार्गगामी बताया है। (११) **पारिप्लवम्**—चंचल होकर। चञ्चलं तरलं चैव पारिप्लवपरिप्लवे, इत्यमरः। परि+प्लु+अच्=परिप्लवम्, परिप्लवम् एव पारिप्लवम्, स्वार्थ में प्रज्ञादिभ्यश्च से अण्। (१२) अप्रस्तुत सीता और राम का संवृत्तिः आदि से संबन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है।

७४. कौसल्या—जात, अस्ति ते माता, स्मरसि वा तातम्? [जाद, अत्थि दे मादा, सुमरसि वा तादं?]

कौसल्या—पुत्र, क्या तुम्हारी माता है? क्या अपने पिता को स्मरण करते हो? (क्या अपने पिता का नाम जानते हो?)

७५. लवः—नहि।

लव—नहीं।

७६. कौसल्या—ततः कस्य त्वम्? [तदो कस्स तुमं?]

कौसल्या—तो तुम किसके (पुत्र हो)?

७७. लवः—भगवतः सुगृहीतनामधेयस्य वाल्मीकेः।

लव--भगवान् पुण्यात्मा (पवित्र नाम वाले) वाल्मीकि का (पुत्र हूँ)।

७८. कौसल्या---अयि जात, कथयितव्यं कथय। [अयि जाद, कहिदव्वं कहेहि।]

कौसल्या--हे पुत्र, बताने योग्य बात बताओ।

७९. लवः---एतावदेव जानामि।

लव--इतना ही जानता हूँ।

(नेपथ्ये)

८०. भो भोः सैनिकाः, एष खलु कुमारश्चन्द्रकेतुराज्ञापयति न केनचिदाश्रमाभ्यर्णभूमय आक्रमितव्या इति।

(नेपथ्य में)

हे सैनिको, यह राजकुमार चन्द्रकेतु आज्ञा देते हैं कि--आश्रम के समीपस्थ प्रदेश में कोई आक्रमण न करे।

८१. अरुन्धतीजनकौ---अये, मेध्याश्वरक्षाप्रसङ्गादुपागतो वत्सश्चन्द्रकेतुर्द्रष्टव्य इत्यहो सुदिवसः।

अरुन्धती और जनक--अरे, अश्वमेध यज्ञ के अश्व की रक्षा के प्रसंग में आए हुए कुमार चन्द्रकेतु का दर्शन होगा, इसलिए (आज का) दिन शुभ दिन है।

८२. कौसल्या---वत्सलक्ष्मणस्य पुत्रक आज्ञापयतीत्यमृतबिन्दुसुन्दराण्यक्षराणि श्रूयन्ते।

कौसल्या--'पुत्र लक्ष्मण का बालक आज्ञा देता है' ये अमृत की बूंदों के तुल्य सुन्दर अक्षर सुनाई पड़ रहे हैं।

टिप्पणी

(१) कस्य त्वम्--तुम किसके हो? अर्थात् तुम किसके पुत्र हो? (२) सुगृहीत०--ठीक रखा गया है नाम जिसका। सुगृहीत--सार्थक, नामधेयस्य--नाम वाले। सुगृहीतं नामधेयं यस्य तस्य, बहु०। पुण्यात्मा या पवित्र

नाम वाले वाल्मीकि का पुत्र हूँ। (३) **कथयितव्यं०**—बताने योग्य बात बताओ? कौसल्या के कथन का अभिप्राय है कि महर्षि वाल्मीकि बालब्रह्मचारी हैं। तुम उनके शिष्य हो, न कि पुत्र। अतः तुम अपने असली पिता का नाम बताओ? वाल्मीकि आजन्म ब्रह्मचारी हैं। अतः उनके कोई सन्तान नहीं है। लव के कथन का अभिप्राय है कि मैं अपने माता-पिता का नाम नहीं जानता। महर्षि वाल्मीकि ने मुझे पाला है, अतः वही मेरे पिता हैं। (४) **चन्द्रकेतुः**—राजकुमार चन्द्रकेतु। चन्द्रकेतु लक्ष्मण और उर्मिला का पुत्र है। (५) **आज्ञापयति**—आज्ञा देता है। आ+ज्ञा+णिच्+लट् प्र० १। (६) **आश्रमा०**—आश्रम—आश्रम के, अभ्यर्ण—समीप के, भूमयः—प्रदेश। आश्रमस्य अभ्यर्ण-भूमयः, तत्पु०। अभ्यर्ण—अभि+अर्द्+क्त। अभेश्चाविदूर्ये (७-२-२५) से समीप अर्थ में इट् का अभाव होकर यह रूप बनता है। (७) **न आक्रमितव्याः**—आक्रमण नहीं करना चाहिए। आश्रम के समीपस्थ प्रदेश में किसी जीव पर आक्रमण न करें। आ+क्रम्+तव्य+स्त्री० प्र० ३। (८) **मेध्याश्व०**—अश्वमेध यज्ञ के घोड़े की रक्षा के प्रसंग में। मेध्यः अश्वः (कर्मधा०), तस्य रक्षायाः प्रसङ्गः तस्मात्, तत्पु०। मेध्य—मेधम् अर्हति, मेध+यत् (य)। (९) **उपागतः**—आया हुआ। उप+आ+गम्+क्त। (१०) **सुदिवसः**—शुभ दिन है कि लक्ष्मण के पुत्र के दर्शन होंगे। (११) **अमृत०**—अमृत की बूँदों के तुल्य सुन्दर। अमृतस्य विन्दवः (तत्पु०), ते इव सुन्दराणि, उपमान तत्पु०। (१२) **श्रूयन्ते**—सुने जा रहे हैं। श्रु+कर्मवाच्य लट्+प्र० ३। (१३) वाक्य सं० ८२ अर्थात् वत्सलक्ष्मणस्य० यह वाक्य स्वगत प्रतीत होता है, अन्यथा वाक्य सं० ८३ में लव का यह प्रश्न संगत प्रतीत नहीं होता कि चन्द्रकेतु कौन है?

८३. लवः—आर्य, क एष चन्द्रकेतुर्नाम?

लव—आर्य, यह चन्द्रकेतु कौन है?

८४. जनकः—जानासि रामलक्ष्मणौ दाशरथी?

जनक—क्या तुम दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण को जानते हो?

८५. लवः—एतावेव रामायणकथापुरुषौ?

लव—क्या ये ही रामायण की कथा के प्रमुख पुरुष पात्र हैं?

८६. जनकः—अथ किम् ?

जनक—और क्या ?

८७. लवः—तत्कथं न जानामि ?

लव—तो क्यों नहीं जानूँगा ?

८८. जनकः—तस्य लक्ष्मणस्यायमात्मजश्चन्द्रकेतुः।

जनक—उसी लक्ष्मण का पुत्र यह चन्द्रकेतु है।

८९. लवः—ऊर्मिलायाः पुत्रस्तर्हि मैथिलस्य राजर्षेर्दौहित्रः।

लव—तो वह ऊर्मिला का पुत्र और मिथिलानरेश राजर्षि जनक का दौहित्र (धेवता) है ?

९०. अरुन्धती—आविष्कृतं कथाप्रावीण्यं वत्सेन।

अरुन्धती—इस बालक ने रामायण की कथा में कुशलता प्रकट की है।

९१. जनकः—(विचिन्त्य) यदि त्वमीदृशः कथायामभिज्ञस्तद्ब्रूहि तावत्पश्यामस्तेषां दशरथस्य पुत्राणां कियन्ति किंनामधेयान्यपत्यानि केषु दारेषु प्रसूतानि ?

जनक—(सोचकर) यदि तुम रामायण की कथा में ऐसे निपुण हो तो हम देखते हैं (परीक्षा करते हैं), बताओ—दशरथ के उन पुत्रों के किस-किस पत्नी से किस-किस नाम वाले कितने पुत्र उत्पन्न हुए हैं ?

टिप्पणी

(१) **राम०**—राम और लक्ष्मण को। रामश्च लक्ष्मणश्च, द्वन्द्व०। (२) **दाशरथी**—दशरथ के दो पुत्रों को। दशरथस्य अपत्ये पुमांसौ, दशरथ+इञ् (इ) =दाशरथि+द्वितीया २। अत इञ् (४-१-९५) से अपत्य अर्थ में इञ्। (३) **रामायण०**—रामायण नामक कथा के दो मुख्य पुरुष पात्र। रामायणस्य कथायाः पुरुषौ, तत्पु०। (४) **अथ किम्**—और क्या ? अर्थात्

नाम वाले वाल्मीकि का पुत्र हूँ। (३) **कथयितव्यं०**—बताने योग्य बात बताओ? कौसल्या के कथन का अभिप्राय है कि महर्षि वाल्मीकि बालब्रह्मचारी हैं। तुम उनके शिष्य हो, न कि पुत्र। अतः तुम अपने असली पिता का नाम बताओ? वाल्मीकि आजन्म ब्रह्मचारी हैं। अतः उनके कोई सन्तान नहीं है। लव के कथन का अभिप्राय है कि मैं अपने माता-पिता का नाम नहीं जानता। महर्षि वाल्मीकि ने मुझे पाला है, अतः वही मेरे पिता हैं। (४) **चन्द्रकेतुः**—राजकुमार चन्द्रकेतु। चन्द्रकेतु लक्ष्मण और उर्मिला का पुत्र है। (५) **आज्ञापयति**—आज्ञा देता है। आ+ज्ञा+णिच्+लट् प्र० १। (६) **आश्रमा०**—आश्रम—आश्रम के, अभ्यर्ण—समीप के, भूमयः—प्रदेश। आश्रमस्य अभ्यर्णभूमयः, तत्पु०। अभ्यर्ण—अभि+अर्द्+क्त। अभेश्चाविदूर्ये (७–२–२५) से समीप अर्थ में इट् का अभाव होकर यह रूप बनता है। (७) **न आक्रमितव्याः**—आक्रमण नहीं करना चाहिए। आश्रम के समीपस्थ प्रदेश में किसी जीव पर आक्रमण न करें। आ+क्रम्+तव्य+स्त्री० प्र० ३। (८) **मेध्याश्व०**—अश्वमेध यज्ञ के घोड़े की रक्षा के प्रसंग में। मेध्यः अश्वः (कर्मधा०), तस्य रक्षायाः प्रसङ्गः तस्मात्, तत्पु०। मेध्य—मेधम् अर्हति, मेध+यत् (य)। (९) **उपागतः**—आया हुआ। उप+आ+गम्+क्त। (१०) **सुदिवसः**—शुभ दिन है कि लक्ष्मण के पुत्र के दर्शन होंगे। (११) **अमृत०**—अमृत की बूँदों के तुल्य सुन्दर। अमृतस्य बिन्दवः (तत्पु०), ते इव सुन्दराणि, उपमान तत्पु०। (१२) **श्रूयन्ते**—सुने जा रहे हैं। श्रु+कर्मवाच्य लट्+प्र० ३। (१३) वाक्य सं० ८२ अर्थात् वत्सलक्ष्मणस्य० यह वाक्य स्वगत प्रतीत होता है, अन्यथा वाक्य सं० ८३ में लव का यह प्रश्न संगत प्रतीत नहीं होता कि चन्द्रकेतु कौन है?

८३. लवः—आर्य, क एष चन्द्रकेतुर्नाम?

लव—आर्य, यह चन्द्रकेतु कौन है?

८४. जनकः—जानासि रामलक्ष्मणौ दाशरथी?

जनक—क्या तुम दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण को जानते हो?

८५. लवः—एतावेव रामायणकथापुरुषौ?

लव—क्या ये ही रामायण की कथा के प्रमुख पुरुष पात्र हैं?

८६. जनकः--अथ किम् ?

जनक—और क्या ?

८७. लवः--तत्कथं न जानामि ?

लव—तो क्यों नहीं जानूँगा ?

८८. जनकः--तस्य लक्ष्मणस्यायमात्मजश्चन्द्रकेतुः।

जनक—उसी लक्ष्मण का पुत्र यह चन्द्रकेतु है।

८९. लवः--ऊर्मिलायाः पुत्रस्तर्हि मैथिलस्य राजर्षेर्दौहित्रः।

लव—तो वह ऊर्मिला का पुत्र और मिथिलानरेश राजर्षि जनक का दौहित्र (धेवता) है ?

९०. अरुन्धती--आविष्कृतं कथाप्रावीण्यं वत्सेन।

अरुन्धती—इस बालक ने रामायण की कथा में कुशलता प्रकट की है।

९१. जनकः--(विचिन्त्य) यदि त्वमीदृशः कथायामभिज्ञस्तद्ब्रूहि तावत्पश्यामस्तेषां दशरथस्य पुत्राणां कियन्ति किंनामधेयान्यपत्यानि केषु दारेषु प्रसूतानि ?

जनक--(सोचकर) यदि तुम रामायण की कथा में ऐसे निपुण हो तो हम देखते हैं (परीक्षा करते हैं), बताओ—दशरथ के उन पुत्रों के किस-किस पत्नी से किस-किस नाम वाले कितने पुत्र उत्पन्न हुए हैं ?

टिप्पणी

(१) राम०—राम और लक्ष्मण को। रामश्च लक्ष्मणश्च, द्वन्द्व०। (२) दाशरथी—दशरथ के दो पुत्रों को। दशरथस्य अपत्ये पुमांसौ, दशरथ+इञ् (इ) =दाशरथि+द्वितीया २। अत इञ् (४-१-९५) से अपत्य अर्थ में इञ्। (३) रामायण०—रामायण नामक कथा के दो मुख्य पुरुष पात्र। रामायणस्य कथायाः पुरुषौ, तत्पु०। (४) अथ किम्—और क्या ? अर्थात्

हाँ। (५) **दौहित्रः**—धेवता, लड़की का पुत्र। दुहितुः अपत्यम्, दुहितृ+अञ् (अ)। अनृष्यानन्तर्ये० (४-१-१०४) से अञ्। लव का यह कथन नाटकीय व्यङ्ग्य भी है कि चन्द्रकेतु तुम्हारा ही धेवता है। (६) **आविष्कृतम्**—प्रकट किया, प्रदर्शित किया। आविस्+कृ+क्त। (७) **कथा०**—कथा में प्रवीणता। कथायां प्रावीण्यम्, तत्पु०। प्रावीण्यम्—प्रवीणस्य भावः, प्रवीण+ष्यञ् (य)। प्रवीण का अर्थ था—प्रकृष्टा वीणा अस्य, वीणावादन में निपुण, परन्तु अर्थविस्तार के द्वारा यह निपुण अर्थ का बोधक हो गया। (८) **अभिज्ञः**—जानकार, चतुर, निपुण। अभि+ज्ञा+क (अ)। (९) **किंनाम०**—किस नाम वाले। किं नामधेयं येषां तानि, बहु०। नाम एव—नामधेयम्, नामन्+धेय, स्वार्थं में धेय प्रत्यय होता है। (१०) **प्रसूतानि**—उत्पन्न हुए। प्र+सू+क्त+नपुं प्र० ३। (११) जनक का यह प्रश्न बहुत चतुरतापूर्ण है। यदि लव इसका ठीक-ठीक उत्तर दे देता तो जनक की शंकाओं का स्वयं समाधान हो जाता।

९२. लवः—नायं कथाविभागोऽस्माभिरन्येन वा श्रुतपूर्वः।

लव—कथा का यह अंश हमने या अन्य किसी ने अभी तक नहीं सुना है।

९३. जनकः—किं न प्रणीतः कविना?

जनक—क्या कवि ने (यह अंश) बनाया ही नहीं है?

९४. लवः—प्रणीतो न प्रकाशितः। तस्यैव कोऽप्येकदेशः प्रबन्धान्तरेण रसवानभिनेयार्थः कृतः। तं च स्वहस्तलिखितं मुनिर्भगवान्व्यसृजद्भगवतो भरतस्य तौर्यत्रिकसूत्रधारस्य।

लव—बनाया है, परन्तु प्रकाशित नहीं किया है। उसका ही कोई एक (श्रव्य) अंश अन्य प्रबन्ध (दृश्य रूपक) के द्वारा रसयुक्त करके अभिनय के योग्य बनाया है और उसको अपने हाथ से लिखकर भगवान् मुनि (वाल्मीकि) ने नाट्यशास्त्र के प्रणेता भगवान् भरत मुनि के पास भेजा है।

९५. जनकः--किमर्थम् ?

जनक—किसलिए ?

९६. लवः--स किल भगवान्भरतस्तमप्सरोभिः प्रयोजयिष्यतीति ।

लव—वह भगवान् भरत मुनि अप्सराओं से उस (ग्रन्थ) का अभिनय कराएंगे।

९७. जनकः--सर्वमिदमाकूततरमस्माकम् ।

जनक—यह सब कुछ हमारे लिए अतिगूढ अभिप्राययुक्त (अर्थात् विशेष कुतूहलता-जनक) है।

९८. लवः--महती पुनस्तस्मिन्भगवतो वाल्मीकेरास्था। यतः केषांचिदन्तेवासिनां हस्तेन तत्पुस्तकं भरताश्रमं प्रति प्रेषितम्। तेषामनुयात्रिकश्चापपाणिः प्रमादच्छेदनार्थमस्मद्भ्राता प्रेषितः।

लव—भगवान् वाल्मीकि की उस (ग्रन्थ) में बहुत अधिक रुचि है। अतः कुछ विद्यार्थियों के हाथ वह पुस्तक भरत मुनि के आश्रम में भेजी है और (मार्ग में) असावधानी से होने वाले विघ्नों के निवारणार्थ धनुष हाथ में लिए हुए हमारे भाई को अनुयायी के रूप में भेजा है।

टिप्पणी

(१) **नायं०**—यह कथा का अंश हमने नहीं सुना है। नाटककार यह नहीं चाहता है कि इस स्थिति में यह बताया जाय कि यह राम का पुत्र है, अतः उसने जनक के प्रश्न का टाल-मटोल वाला उत्तर लव से दिलवाया है। (२) **न श्रुतपूर्वः**—इससे पहले नहीं सुना है। पूर्वं श्रुतः—श्रुतपूर्वः, सुप्सुपा समास। भूतपूर्वे चरट् (५-३-५३) इस पाणिनि के प्रयोग से पूर्व शब्द का बाद में प्रयोग। (३) **प्रणीतः**—बनाया है। प्र+नी का अर्थ होता है—ग्रन्थ-रचना,

प्रणयन या पुस्तक बनाना। प्र+नी+क्त। (४) **न प्रकाशितः**—अभी वह अंश प्रकाशित नहीं किया है। वह अंश जनसाधारण को अज्ञात है। प्र+काश्+क्त—प्रकाशित। (५) **प्रबन्धा०**—अन्य प्रबन्ध के द्वारा अर्थात् दृश्य रूपक के द्वारा। अन्यः प्रबन्धः—प्रबन्धान्तरः, तेन, अस्वपद० कर्मधा०। (६) **अभिनेयार्थः**—अभिनय के योग्य अर्थ वाला। अभिनेयः अर्थः यस्य सः, बहु०। अभिनेय—अभि+नी+यत् (य)। अचो यत् (३–१–९७) से यत्। (७) **स्वहस्त०**—अपने हाथ से लिखित। स्वहस्तेन लिखितम्, तत्पु०। (८) **व्यसृजत्**—भेजा है। वि+सृज्+लङ प्र० १। (९) **तौर्यत्रिक०**—तौर्यत्रिक—नृत्य गीत और वाद्य के, सूत्रधारस्य—प्रयोग करने वाले। तूर्ये भवम्—तौर्यम्, तूर्य+अण्। त्रयः अंशा अस्य इति त्रिकम्—त्रि+कन्, अवयव अर्थ में कन्। तौर्याणां त्रिकम्—तौर्यत्रिकम् (तत्पु०), तस्य सूत्रधारस्य। तूर्य का अर्थ है पटह, नगाड़ा, ढोल, अतः तौर्य का अर्थ है—ढोल से संबद्ध। त्रिकम्—तीन चीजें। तौर्यत्रिक का अर्थ है—नृत्य, गीत और वाद्य। तौर्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यं नाट्यमिदं त्रयम्, इत्यमरः। तौर्यत्रिक नाट्य का पर्यायवाची है, अतः इसका अर्थ होता है—नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि के पास। भरत नाट्यशास्त्र नामक ग्रन्थ के प्रणेता हैं। (१०) **प्रयोजयिष्यति**—प्रयोग कराएंगे, अभिनय कराएंगे। प्र+युज्+णिच्+लृट् प्र० १। (११) **आकूततरम्**—अत्यन्त गूढ अभिप्राय वाला। आकूत—अभिप्राय, आश्चर्य, उत्सुकता। जनक के कथन का अभिप्राय है कि इसमें कुछ रहस्य छिपा हुआ है। (१२) **भरता०**—भरत मुनि के आश्रम को। भरतस्य आश्रमम्, तत्पु०। (१३) **अनुयात्रिकः**—अनुयायी, अनुचर। अनु पश्चात् यात्रा गमनम्—अनुयात्रा, अनुयात्रा अस्ति अस्य, अनुयात्रा+ठन् (इक)। (१४) **चापपाणिः**—धनुर्धर, धनुष हाथ में लिए हुए। चापं पाणौ यस्य सः, बहु०। (१५) **प्रमाद०**—असावधानी के निवारणार्थ। प्रमादस्य छेदनार्थम्, तत्पु०। इसका अभिप्राय है—असावधानी के कारण होने वाले विघ्नों को दूर करने के लिए।

९९. कौसल्या—जात, भ्रातापि तेऽस्ति? [जाद, भादावि दे अत्थि ?]

कौसल्या—पुत्र, क्या तुम्हारा भाई भी है?

१००. लवः—अस्त्यार्य: कुशो नाम।

लव—हाँ, आर्य 'कुश' उनका नाम है।

१०१. कौसल्या—ज्येष्ठ इति भणितं भवति। [जेट्ठोत्ति भणिदं होदि।]

कौसल्या—तुम्हारे कहने से ज्ञात होता है कि वे ज्येष्ठ भाई हैं।

१०२. लवः—एवमेतत्। प्रसवानुक्रमेण स किल ज्यायान्।

लव—जी हाँ। वह जन्म-क्रम से मुझसे बड़े हैं।

१०३. जनकः—किं यमावायुष्मन्तौ?

जनक—क्या चिरंजीव तुम दोनों जुड़वाँ हो?

१०४. लवः—अथ किम्।

लव—और क्या?

१०५. जनकः—वत्स, कथय कथाप्रपञ्चस्य कियान्पर्यन्तः।

जनक—पुत्र, बताओ कथा का विस्तार कहाँ तक है (अर्थात् कथा कहाँ समाप्त होती है)?

१०६. लवः—अलीकपौरापवादोद्विग्नेन राज्ञा निर्वासितां देवीं देवयजनसंभवां सीतामासन्नप्रसववेदनामेकाकिनीमरण्ये लक्ष्मणः परित्यज्य प्रतिनिवृत्त इति।

लव—नागरिकों के झूठे अपवाद (अफवाह) से घबड़ाए हुए राजा (राम) के द्वारा निर्वासित, यज्ञभूमि से उत्पन्न तथा समीपवर्तिनी प्रसव-पीड़ा से युक्त देवी सीता को वन में अकेली छोड़कर लक्ष्मण लौट गए। (यहाँ पर कथा की समाप्ति है)।

१०७. कौसल्या—हा वत्से मुग्धमुखि, क इदानीं ते शरीरकुसुमस्य झटिति दैवदुर्विलासपरिणाम एकाकिन्या निपतितः। [हा वच्छे मुद्धमुहि, को दाणिं दे सरीरकुसुमस्स झत्ति देव्वदुव्विलासपरिणामो एक्काइणीए निवडिदो ।]

कौसल्या—हा भोले-भाले मुख वाली पुत्री सीता, तुझ अकेली के फूल के तुल्य कोमल शरीर पर सहसा भाग्य की कुचेष्टाओं का यह दुष्परिणाम आ पड़ा है।

टिप्पणी

(१) **आर्यः कुशः**—आर्य कुश। अपने से बड़े के लिए आर्य का प्रयोग होता है और छोटे के लिए वत्स। अतः आर्यः से व्यक्त होता है कि कुश लव का बड़ा भाई था। (२) **ज्येष्ठः**—बड़ा भाई। आर्य शब्द के प्रयोग से कौसल्या ने यह अर्थ निकाला। अयम् एषां वृद्धः, वृद्ध+इष्ठन् (इष्ठ)। वृद्ध को ज्य आदेश, वृद्धस्य च (५-३-६२) से। ज्येष्ठ—सबसे बड़ा। (३) **प्रसवा०**—प्रसव—जन्म के, अनुक्रमेण—क्रम से। हेतु अर्थ में तृतीया। प्रसवस्य अनुक्रमेण, तत्पु०। (४) **ज्यायान्**—बड़ा भाई, दो भाइयों में बड़ा भाई। अयम् अनयोः अतिशयेन वृद्धः, वृद्ध+ईयसुन् (ईयस्)। वृद्धस्य च (५–३–६२) से वृद्ध को ज्य और ज्यादादीयसः (६–४–१६०) से ईयस् के ई को आ। (५) **यमौ**—युगल, जुड़वाँ। क्या तुम दोनों जुड़वाँ बच्चे हो? (६) **कथा०**—कथा के विस्तार का। कथायाः प्रपञ्चस्य, तत्पु०। (७) **कियान्०**—कहाँ अन्त है, अर्थात् कथा कहाँ समाप्त होती है? (८) **अलीक०**—अलीक—झूठे, पौरापवाद—नागरिकों के अफवाह के कारण, उद्विग्नेन—घबड़ाए हुए। पौराणाम् अपवादः (तत्पु०), अलीकः पौरापवादः (कर्मधा०), तेन उद्विग्नः, तेन, तत्पु०। उद्विग्न—उद्+विज्+क्त। त को न आदेश। (९) **निर्वासिताम्**—निकाली गई, परित्यक्त। निर्+वस्+णिच्+क्त+टाप् द्वि० १। (१०) **देवयजन०**—देवयजन—यज्ञवेदी से, संभवाम्—उत्पन्न। देवाः इज्यन्ते यस्मिन् इति देवयजनम्, देवयजनात् संभवः यस्याः सा, ताम्, बहु०। (११) **आसन्न०**—आसन्न—समीपवर्ती है, प्रसव—सन्तान-उत्पत्ति की, वेदनाम्—पीड़ा जिसको। समीपवर्ती प्रसव-पीड़ा से

युक्त। आसन्ना प्रसववेदना यस्याः, ताम्, बहु०। (१२) **एकाकिनीम्**—अकेली को। एकाकिनी शब्द से ध्वनि है कि उस अकेली सीता को हिंसक जीव खा गए। उसका कोई रक्षक नहीं था। एक शब्द से असहाय अर्थ में आकिन् प्रत्यय, एक+आकिन्+ङीप्। एकादा० (५–३–५२) से आकिन् प्रत्यय। (१३) **परित्यज्य**—छोड़कर। परि+त्यज्+ल्यप्। (१४) **मुग्ध०**—मुग्ध—भोले, मुखि—मुखवाली। मुग्धं मुखं यस्याः सा, संबोधन, बहु०। (१५) **शरीर०**—फूल के तुल्य शरीर का। शरीरं कुसुमम् इव, तस्य, उपमानोत्तरपद कर्मधा०। (१६) **दैव०**—दैव—भाग्य की, दुर्विलास—कुचेष्टा का, परिणामः—परिणाम। दैवस्य दुर्विलासस्य परिणामः, तत्पु०। (१७) **निपतितः**—गिरा, आ पड़ा, हुआ।

१०८. जनकः—हा वत्से,

नूनं त्वया परिभवं च वनं च घोरं
तां च व्यथां प्रसवकालकृतामवाप्य।
क्रव्याद्गणेषु परितः परिवारयत्सु
संत्रस्तया शरणमित्यसकृत्स्मृतोऽहम् ॥२३॥

अन्वय—परिभवं च, घोरं वनं च, प्रसवकालकृतां तां व्यथां च अवाप्य, क्रव्याद्गणेषु परितः परिवारयत्सु, संत्रस्तया त्वया नूनं शरणम् इति असकृत् अहं स्मृतः।

जनक—हा पुत्री,

(राम के द्वारा किए गए परित्यागरूपी) तिरस्कार, भयंकर वन और प्रसवकालीन उस (असह्य) वेदना को प्राप्त करके, मांसभक्षी (व्याघ्र आदि) हिंसक जन्तुओं के चारों ओर से घेर लेने पर अत्यन्त भयभीत तूने अवश्य ही अपना रक्षक समझते हुए मुझे बार-बार स्मरण किया होगा।।२३।।

पाठभेद—१०८. का० काले—स्मृतोऽस्मि (मुझे याद किया होगा)

संस्कृत-व्याख्या

परिभवं च—रामकृतपरित्यागरूपं तिरस्कारम्, घोरं—भयावहम्, वनं च—काननं च, प्रसव०—प्रसवकालेन विहिताम्, ताम्—असह्याम्, व्यथां च—पीडां च, अवाप्य—प्राप्य, क्रव्याद्गणेषु—मांसभक्षकहिंस्रजन्तुसमूहेषु, परितः—समन्ततः, परिवारयत्सु—परिवेष्टमानेषु, संत्रस्तया—अतिभीतया, त्वया—सीतया, नूनम्—अवश्यम्, शरणम् इति—संरक्षक इति मत्वा (पितः, रक्ष माम् इति), असकृत्—भूयो भूयः, अहं—जनकः, स्मृतः—त्वया चिन्तितः। अत्र तुल्ययोगिताऽलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **परिभवम्**—तिरस्कार को, अपमान को। राम के द्वारा किए गए परित्यागरूपी अपमान को। (२) **व्यथाम्**—कष्ट को। व्यथ्+अङ (अ)+टाप्। षिद्भिदा० (३-३-१०४) से अङ। (३) **प्रसव०**—प्रसव काल के द्वारा जन्य। प्रसवस्य कालः (तत्पु०), तेन कृताम्, तत्पु०। (४) **अवाप्य**—प्राप्त करके। अव+आप्+ल्यप्। (५) **क्रव्याद्०**—क्रव्याद्—मांसभक्षी व्याघ्र आदि जीवों के, गणेषु—समूह के। क्रव्यादां गणेषु, तत्पु०। क्रव्याद्—क्रव्य—कच्चे मांस को, अद्—खाने वाले। क्रव्य+अद्+विट् (०)। क्रव्ये च (३-२-६९) से विट् प्रत्यय। पूरे विट् प्रत्यय का लोप। (६) **परिवारयत्सु**—घेरने पर। परि+वृ+णिच्+शतृ+स० ३। (७) **संत्रस्तया**—डरी हुई ने। सम्+त्रस्+क्त+टाप् तृ० १। (८) सीता घोर वन में हिंसक व्याघ्र आदि को देखकर अवश्य डर गई होगी और रक्षा के लिए उसने अपने माता-पिता को स्मरण किया होगा। विपत्ति में मनुष्य अपने, माता-पिता को रक्षार्थ स्मरण करता है कि हे पिता (या माँ), मुझे बचाओ। (९) यहाँ पर अप्रस्तुत परिभव, घोर वन और व्यथा का अवाप्य इस एक क्रिया से संबन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है।

१०९. लवः—आर्ये, कावेतौ ?

लव—आर्या, ये दोनों कौन हैं ?

११०. अरुन्धती—इयं कौसल्या। अयं जनकः।
(लवः सबहुमानखेदं कौतुकं पश्यति)

अरुन्धती—ये कौसल्या हैं और ये (महाराज) जनक हैं।
(लव विशेष आदर, खेद और कौतूहल के साथ देखता है)

१११. जनकः—अहो, निर्दयता दुरात्मनां पौराणाम्। अहो, रामभद्रस्य क्षिप्रकारिता,

एतद् वैशसवज्रघोरपतनं शश्वन्ममोत्पश्यतः
क्रोधस्य ज्वलितुं झटित्यवसरश्चापेन शापेन वा।

अन्वय—(पूर्वार्ध) एतत् वैशसवज्रघोरपतनं शश्वत् उत्पश्यतः मम क्रोधस्य चापेन शापेन वा झटिति ज्वलितुम् अवसरः।

जनक—ओह, दुष्ट नागरिकों की निर्दयता! ओह, राम की (अविवेकपूर्ण) शीघ्रता!

(परित्याग के द्वारा सीता के) हत्यारूपी इस भयंकर वज्रपात का निन्तर चिन्तन करते हुए मेरे क्रोध (रूपी अग्नि) का धनुष अथवा शाप के द्वारा शीघ्र प्रज्वलित होने का यह अवसर है।

११२. कौसल्या—(सभयकम्पम्) भगवति, परित्रायताम्, प्रसादय कुपितं राजर्षिम्। [भअवदि, परित्ताअदु। पसादेहि कुविदं राएसिं।]

कौसल्या—(भय से काँपते हुए) भगवती (अरुन्धती), बचाइए। क्रुद्ध राजर्षि (जनक) को मनाइए।

११३. लवः—
एतद्धि परिभूतानां प्रायश्चित्तं मनस्विनाम्।

पाठभेद—१११. काले—धगित्य० (धक धक यह शब्द करके)

११४. अरुन्धती—

राजन्नपत्यं रामस्ते पाल्याश्च कृपणा जनाः ।।२४।।

अन्वय—(११३) परिभूतानां मनस्विनाम् एतत् हि प्रायश्चित्तम्। (११४) राजन्, रामः ते अपत्यम्, कृपणाः जनाः च पाल्याः ।।

लव—अपमानित मनस्वियों के लिए यही (धनुष या शाप से प्रतिकार करना) प्रायश्चित्त (चित्तशुद्धि) है।

अरुन्धती—राजन्, राम आपका पुत्र (पुत्रतुल्य) है और दीन प्रजाजनों की आपको रक्षा करनी चाहिए ।।२४।।

११५. जनकः—

शान्तं वा रघुनन्दने तदुभयं तत्पुत्रभाण्डं हि मे
भूयिष्ठद्विजबालवृद्धविकलस्त्रैणश्च पौरो जनः ।।२५।।

अन्वय—(उत्तरार्ध) वा रघुनन्दने तत् उभयं शान्तम्, हि तत् मे पुत्रभाण्डम्। पौरः जनः च भूयिष्ठद्विजबालवृद्धविकलस्त्रैणः ।।

जनक—अथवा राम के विषय में वे दोनों बातें (चाप और शाप) शान्त हों, क्योंकि वह मेरा पुत्ररूपी धन है और नागरिक लोगों में अधिकांश ब्राह्मण, बालक, वृद्ध, विकलांग और स्त्रियाँ हैं ।।२५।।

संस्कृत-व्याख्या

(१११) एतत्—इदम्, वैशस०—वैशसं हननं, सीतापरित्यागरूपं हननमित्यर्थः, वज्रस्य अशनेः घोरं भयंकरं पतनं पातः, सीताहननरूपाशनिभीषणपातम्, शश्वत्—निरन्तरम्, उत्पश्यतः—चिन्तयतः, मम—जनकस्य, क्रोधस्य—कोपस्य, चापेन—धनुषा, धनुर्ग्रहणेनेत्यर्थः, शापेन वा—शापप्रदानेन वा, झटिति—सत्वरम्, ज्वलितुं—प्रज्वलनस्य, अवसरः—समयः, उपस्थित इति शेषः।

(११३,११४) परिभूतानां—तिरस्कृतानाम्, मनस्विनाम्—उदात्तचेतसाम्, एतत् हि—एतादृशं कर्मैव, धनुर्ग्रहणं शापप्रदानरूपं वा कर्म, प्रायश्चित्तं

पाठभेद—११५. नि० यत् (जो)।

—चेतःशुद्धिसाधनम् अस्ति। राजन्—हे राजर्षे, रामः—दाशरथिः, ते—तव जनकस्य, अपत्यं—पुत्रः, जामातृत्वेन पुत्ररूप इत्यर्थः, कृपणाः—दीनाः, जनाश्च—प्रजाश्च, पाल्याः—रक्षणीयाः। अत्र श्लोको वृत्तम्।

(११५) वा—अथवा, रघुनन्दने—रामे, तत्—पूर्वोक्तम्, उभयं—द्वयं, चापधारणं शापदानं चेत्यर्थः, शान्तं—निवृत्तं भवेत्, हि—यतो हि, तत्—राम इत्यर्थः, मे—मम जनकस्य, पुत्रभाण्डं—पुत्ररूपं मूलधनम् अस्ति। पौरः—नागरिकः, जनश्च—लोकश्च, भूयिष्ठ०—भूयिष्ठाः अत्यधिकाः द्विजाः ब्राह्मणाः बालाः बालकाः वृद्धाः स्थविराः विकलाः अङ्गहीनाः स्त्रैणं स्त्रीसमूहश्च यस्मिन् सः तादृशः अस्ति। नागरिकेष्वपि तदुभयं शान्तं भवत्वित्यर्थः। अत्र काव्यलिङ्ग-मलंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **सबहुमान०**—बहुमान—विशेष आदर, खेद—दुःख, कौतुक—कुतूहल के साथ। जनक और कौसल्या के प्रति विशेष आदर-भाव, उनकी अवस्था को देखकर दुःख और उनके आकस्मिक दर्शन पर कुतूहल। बहुमानश्च खेदश्च कौतुकं च (द्वन्द्व०), तैः सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (२) **दुरात्मनाम्**—दुष्ट, नीच। दुष्टः आत्मा येषां तेषाम्, बहु०। (३) **पौराणाम्**—नागरिकों की। पुरे भवाः पौराः तेषाम्, पुर+अण्। (४) **क्षिप्रकारिता**—शीघ्रता, जल्दबाजी। बिना विचारे शीघ्रता में काम करना। राम ने बिना विचारे सीता का परित्याग किया है। क्षिप्रं करोतीति, क्षिप्र+कृ+णिनि (इन्), तस्य भावः। (५) **वैशस०**—वैशस—हत्यारूपी, सीता के परित्याग के द्वारा उसकी हत्या-रूपी, वज्र—व्रज के, घोरपतनम्—भयंकर पतन को। घोरं पतनम् (कर्मधा०), वज्रस्य घोरपतनम् (तत्पु०), वैशसं वज्रघोरपतनम् (कर्मधा०)। वैशस—विशसति हिनस्ति इति विशसः, वि+शस्+अच्, तस्य कर्म वैशसम्, विशस++अण्। (६) **उत्पश्यतः**—देखते हुए, विचार करते हुए। उत्+दृश्+शतृ+ष० १। (७) **चापेन०**—धनुष के द्वारा या शाप के द्वारा। जनक क्षत्रिय राजा होने से धनुष के द्वारा शत्रुनाश कर सकते थे और राजर्षि होने से शाप के द्वारा। उनके लिए दोनों प्रकार संभव थे। (८) **परिभूतानाम्**—तिरस्कृत, अपमानित।

परि+भू+क्त। (९) **प्रायश्चित्तम्**—प्रायश्चित्त। प्रायः—पाप की, चित्तम्—शुद्धि करना। प्रायः पापं विजानीयात्, चित्तं तस्य विशोधनम् (सि० कौ० तत्त्वबोधिनी टीका में उद्धृत)। (१०) **मनस्विनाम्**—स्वाभिमानियों का। मनः अस्ति येषां तेषाम्, मनस्+विन्+ष० ३। (११) **अपत्यम्**—राम तुम्हारे पुत्र के तुल्य है। अपत्य—पुत्र। (१२) पाल्याः०—दीन प्रजा रक्षा के योग्य है, अतः उस पर चाप या शाप न चलाइए। पा+णिच्+यत् प्र० ३। (१३) **उभयम्**—दोनों चीजें, चाप और शाप। (१४) **पुत्रभाण्डम्**—पुत्र—पुत्ररूपी, भाण्डम्—मूलधन। भाण्डं पात्रे वणिङ्मूलधने, इति मेदिनी। राम पुत्ररूपी मूलधन है, उसकी विशेष सुरक्षा करनी चाहिए। (१५) **भूयिष्ठ०**—भूयिष्ठ—बहुत अधिक हैं, द्विज—ब्राह्मण, बाल—बालक, वृद्ध—वृद्ध पुरुष, विकल—विकल अंग वाले लूले लंगड़े आदि और, स्त्रैणः—स्त्रीसमूह जिसमें, ऐसे नागरिक लोग हैं। भूयिष्ठाः द्विजाः बालाः वृद्धाः विकलाः स्त्रैणं यस्मिन् सः, बहु०। भूयिष्ठ—बहु+इष्ठन्। बहु को भू, इ को यि। स्त्रैणम्—स्त्रीणां समूहः, स्त्री+नञ्। स्त्रीपुंसाभ्यां० (४-१-८७) से नञ्। (१६) इस श्लोक में तदुभयं शान्तम् (चाप और शाप शान्त हों) के प्रति राम का पुत्रवत् होना और नागरिकों का द्विजादियुक्त होना कारण हैं, अतः काव्यलिंग अलंकार है।

(प्रविश्य)

११६. **संभ्रान्ता वटवः**—कुमार कुमार, अश्वोऽश्व इति कोऽपि भूतविशेषो जनपदेष्वनुश्रूयते, सोऽयमधुनास्माभिः स्वयं प्रत्यक्षीकृतः।

(प्रवेश करके)

घबड़ाए हुए ब्रह्मचारी—कुमार, कुमार, जनपद में अश्व (घोड़ा) नाम का कोई प्राणि-विशेष सुना जाता है, उसको हमने अभी स्वयं प्रत्यक्ष देखा है।

११७. **लवः**—अश्वोऽश्व इति नाम पशुसमाम्नाये सांग्रामिके च पठ्यते, तद्ब्रूत कीदृशः।

लव—पशुवर्ग में और धनुर्वेद में 'अश्व' यह नाम पढ़ा गया है। अच्छा बताओ, वह कैसा है?

११८. वटवः—अये, श्रूताम्—

पश्चात्पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रं
दीर्घग्रीवः स भवति खुरास्तस्य चत्वार एव।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिण्डकानाम्रमात्रा-
न्किं व्याख्यानैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः ॥२६॥

(इत्यजिने हस्तयोश्चाकर्षन्ति।)

अन्वय—पश्चात् विपुलं पुच्छं वहति, तत् च अजस्रं धूनोति। स दीर्घग्रीवः भवति। तस्य चत्वारः एव खुराः। शष्पाणि अत्ति, आम्रमात्रान् शकृत्पिण्डकान् प्रकिरति। व्याख्यानैः किम्? स दूरं व्रजति, एहि एहि, यामः॥

ब्रह्मचारी—आर्य, सुनिए—

उसके (शरीर के) पिछले भाग में एक बड़ी पूँछ होती है और वह उसे निरन्तर हिलाता रहता है। उसकी गर्दन लंबी होती है और उसके चार ही खुर होते हैं। वह हरी घास खाता है और आम के फल के बराबर लीद करता है। अधिक व्याख्या की क्या आवश्यकता है? वह फिर दूर जा रहा है, आओ आओ, हम भी चलते हैं॥२६॥

(यह कहकर मृगचर्म और उसके दोनों हाथ पकड़ कर खींचते हैं।)

संस्कृत-व्याख्या

पश्चात्—पृष्ठतः, विपुलं—विशालम्, पुच्छं—लाङ्गूलम्, वहति—धारयति। तत् च—तत् लाङ्गूलं च, अजस्रं—निरन्तरम्, धूनोति—कम्पयति। सः—अश्वः, दीर्घग्रीवः—दीर्घा आयता ग्रीवा कन्धरा यस्य सः, भवति। तस्य—अश्वस्य, चत्वारः एव—चतुःसंख्याका एव, खुराः—शफानि भवन्ति। शष्पाणि

पाठभेद—११८. का० काले—वाऽऽख्यातैः (अथवा वर्णन करने से क्या लाभ?)।

—नवतृणानि, अत्ति—भक्षयति। आम्रमात्रान्—आम्रफलपरिमाणान्, शकृत्-पिण्डान्—पुरीषखण्डान्, प्रकिरति—विसृजति। व्याख्यानैः—विस्तृतवर्णनेन, किम्—को लाभः? स दूरं—विप्रकृष्टम्, व्रजति—गच्छति, एहि एहि—आगच्छ, आगच्छ, यामः—वयं गच्छामः। अत्रोपमा दीपकं स्वभावोक्तिश्चालंकाराः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **संभ्रान्ताः**—घबड़ाए हुए। सम्+भ्रम्+क्त प्र० ३। (२) **भूत-विशेषः**—प्राणिविशेष, एक विशेष प्राणी। भूतेषु विशेषः, तत्पु०। (३) **जनप-देषु**—प्रान्त का एक अंश, प्रदेश। (४) **प्रत्यक्षीकृतः**—प्रत्यक्ष देखा है। अप्रत्यक्षः प्रत्यक्षः कृतः, अभूततद्भाव में च्वि प्रत्यय। च्वि का लोप, च्वि के कारण क्ष के अ को ई। प्रत्यक्षम्—अक्ष्णोः प्रति, अव्ययी०। प्रति+अक्षि+टच्। प्रतिपर० (वा०) से समासान्त टच्। फिर अर्शआदित्वात् अच् होकर प्रत्यक्षः। (५) **पशुसमाम्नाये**—पशुनाम-संग्रह में, पशुवर्ग में। पशुसमा-म्नाय पशुवेद या पशुशास्त्र के लिए है, जिसमें पशुओं का विस्तृत वर्णन दिया गया है। पशूनां समाम्नायः तस्मिन्, तत्पु०। समाम्नाय—संग्रहग्रन्थ। सम्यक् आम्नायते अस्मिन् इति समाम्नायः। सम्+आ+म्ना+घञ्। बीच में य् का आगम। (६) **सांग्रामिके**—संग्रामसंबन्धी वेद में अर्थात् धनुर्वेद में। सांग्रामिक—संग्रामम् अर्हति इति, संग्राम+ठञ् (इक)। (७) **पश्चात्**—पीछे, पीठ की तरफ। (८) **धूनोति**—हिलाता है, चलाता है। धू+लट् प्र० १। (९) **दीर्घ-ग्रीवः**—लंबी गर्दन वाला। दीर्घा ग्रीवा यस्य सः, बहु०। (१०) **अत्ति**—खाता है। अद्+लट् प्र० १। (११) **प्रकिरति**—फैलाता है, करता है। प्र+कॄ+लट् प्र० १। (१२) **शकृत्०**—शकृत्—लीद के, पिण्डकान्—टुकड़े, अंश। शकृतः पिण्डकान्, तत्पु०। (१३) **आम्रमात्रान्**—आम के फल के बराबर। आम्रं प्रमाणं येषां तान्, आम्र+मात्र+द्वि० ३। प्रमाण अर्थ में मात्रच् प्रत्यय। (१४) **यामः**—हम जाते हैं या चलते हैं। या+लट् उ० ३। (१५) इस श्लोक में शकृत्पिण्ड की आम्रफल से उपमा होने से उपमा अलंकार है। अश्व का वहति धूनोति आदि अनेक क्रियाओं से संबन्ध होने से दीपक अलं-कार है। अश्व का स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति अलंकार है।

११९. लवः—(सकौतुकोपरोधविनयम्) आर्याः, पश्यत। एभिर्नीतोऽस्मि।

(इति त्वरितं परिक्रामति।)

लव—[(अश्वदर्शन की) कुतूहलता (साथियों का) अनुरोध और (जनक आदि के प्रति) विनय के साथ] आर्यगण, देखिए। ये मुझे (खींचे) ले जा रहे हैं।

(यह कहकर शीघ्रता से चला जाता है।)

१२०. अरुन्धतीजनकौ—महत्कौतुकं वत्सस्य।

अरुन्धती और जनक—बालक को बड़ा कुतूहल है।

१२१. कौसल्या—अरण्यगर्भरूपालापैर्यूयं तोषिता वयं च। भगवति, जानामि तं पश्यन्ती वञ्चितेव। तस्मादितोऽन्यतोभूत्वा प्रेक्षामहे तावत्पलायमानं दीर्घायुषम्। [अरण्णगब्भरूवालावेहिं तुम्हे तोसिदा अम्हे अ। भअवदि, जाणामि तं पेक्खंती वंचिदा विअ। ता इदो अण्णदो भविअ पेक्खम्ह दाव पलाअंतं दीहाउं।]

कौसल्या—वनवासी इस बालक ने अपने रूप और वार्तालाप से आपको और हमें सन्तुष्ट किया है। भगवती (अरुन्धती), उसको देखकर मैं अपने आपको ठगी हुई सी अनुभव कर रही हूँ। अतः यहाँ से दूसरी ओर होकर भागते हुए उस चिरंजीवी बालक को देखें।

१२२. अरुन्धती—अतिजवेन दूरमतिक्रान्तः स चपलः कथं दृश्यते?

अरुन्धती—वह चंचल बालक अत्यन्त वेग से दूर चला गया है, अब कैसे दिखाई दे सकता है?

१२३. कञ्चुकी--(प्रविश्य) भगवान्वाल्मीकिराह 'ज्ञातव्यमेतदवसरे भवद्भि' रिति ।

कंचुकी—(प्रवेश करके) भगवान् वाल्मीकि कहते हैं—'आप लोगों को यह सब कुछ यथासमय ज्ञात हो जाएगा।'

१२४. जनकः---अतिगम्भीरमेतत्किमपि। भगवत्यरुन्धति, सखि कौसल्ये, आर्ये गृष्टे, स्वयमेव गत्वा भगवन्तं प्राचेतसं पश्यामः ।

(इति निष्क्रान्तो वृद्धवर्गः ।)

जनक—यह कुछ गंभीर बात ज्ञात होती है। भगवती अरुन्धती, सखी कौसल्या, आर्य गृष्टि, हम सब स्वयं चलकर भगवान् वाल्मीकि से मिलते हैं।

(तत्पश्चात् वृद्धगण का प्रस्थान।)

टिप्पणी

(१) **सकौतुको०**—कौतुक—कुतूहल अर्थात् घोड़े को देखने की उत्कट अभिलाषा, उपरोध—आग्रह, अनुरोध, अर्थात् साथियों का ले जाने का अनुरोध, विनय—जनक आदि पूज्यों के प्रति नम्रता के साथ। कौतुकं च उपरोधश्च विनयश्च (द्वन्द्व०) कौतुकोपरोधविनयाः, तैः सह यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (२) **नीतोऽस्मि**—ये मुझे खींच कर ले जा रहे हैं। नीत—नी+क्त। (३) **अरण्य०**—अरण्यगर्भ—वन में रहने वाले बालक के, रूप—आकृति, आलापैः—वार्तालाप से। लव की आकृति और वार्तालाप से। अरण्यं गर्भः निवासः यस्य सः, अरण्यगर्भः (बहु०), तस्य रूपं च आलापाः च, तैः, तत्पु०। (४) **तोषिताः**—सन्तुष्ट किए गए हैं। तुष्+णिच्+क्त+प्र० ३। (५) **वञ्चितेव**—ठगी सी गई हूँ। कौसल्या लव को देखकर मन्त्र-मुग्ध हो गई थी और लव के जाने पर अपने आपको अपहृत एवं ठगी हुई सी अनुभव करती है। वञ्च्+णिच्+क्त+टाप्। (६) **अन्यतः**—दूसरी ओर। सप्तमी के अर्थ में तसिल् (तः) है। (७) **अतिक्रान्तः**—चला गया। अति+क्रम्+क्त।

(८) अवसरे—समय आने पर। वाल्मीकि का अभिप्राय है कि लव कौन है, किसका पुत्र है आदि बातें यथासमय स्वयं ज्ञात हो जाएंगी। (९) अतिगंभीरम्०—इसमें कुछ गुप्त बात है, इसमें कुछ रहस्य है। (१०) गृष्टे--गृष्टि। यह कंचुकी का नाम है। (११) प्राचेतसम्—वाल्मीकि को। वे प्रचेतस् के पुत्र थे। (१२) पश्यामः—देखते हैं, उनसे मिलते हैं।

(प्रविश्य)

१२५. वटवः—पश्यतु कुमारस्तावदाश्चर्यम्।

(प्रवेश करके)

ब्रह्मचारी लोग—कुमार, इस आश्चर्य को देखिए।

१२६. लवः—दृष्टमवगतं च, नूनमाश्वमेधिकोऽयमश्वः।

लव—मैंने देख लिया और जान लिया। निस्सन्देह यह अश्वमेध का घोड़ा है।

१२७. वटवः—कथं ज्ञायते?

ब्रह्मचारी लोग—आपने यह कैसे जाना?

१२८. लवः—ननु मूर्खाः, पठितमेव हि युष्माभिरपि तत्काण्डम्। किं न पश्यथ प्रत्येकं शतसंख्याः कवचिनो दण्डिनो निषङ्गिणश्च रक्षितारः? तत्प्रायमेवान्यदपि दृश्यते। यदि च विप्रत्ययस्तत्पृच्छथ।

लव—अरे मूर्खो, तुमने भी (वेद का) वह (अश्वमेध) कांड पढ़ा ही है। क्या तुम नहीं देख रहे हो कि प्रत्येक सौ संख्या वाले कवचधारी दण्डधारी और तरकशधारी इसके रक्षक हैं। प्रायः उसी प्रकार का अन्य सामान भी दिखाई देता है। यदि तुम्हें अविश्वास हो तो पूछ लो।

१२९. वटवः—भो भोः, किंप्रयोजनोऽयमश्वः परिवृतः पर्यटति ?

ब्रह्मचारी लोग—अरे, (सैनिकों से) घिरा हुआ (सुरक्षित) यह घोड़ा किसलिए घूम रहा है ?

१३०. लवः—(सस्पृहमात्मगतम्) अश्वमेध इति नाम विश्वजयिनां क्षत्रियाणामूर्जस्वलः सर्वक्षत्रपरिभावी महानुत्कर्षनिकषः।

लव—(अभिलाषा के साथ, मन ही मन) 'अश्वमेध' नामक यज्ञ विश्वविजेता क्षत्रियों की समस्त क्षत्रियों को तिरस्कृत करने वाली, अतिशय बलवाली और उत्कर्षसूचक बहुत बड़ी कसौटी है।

टिप्पणी

(१) **अवगतम्**—जान लिया। अव+गम्+क्त। अव+गम् का जानना अर्थ होता है। (२) **आश्वमेधिकः**—अश्वमेध नामक यज्ञ-संबन्धी। अश्वमेधः प्रयोजनम् अस्य, अश्वमेध+ठञ् (इक)। (३) **तत्काण्डम्**—वह कांड या अध्याय। (४) **शतसंख्याः**—सौ संख्या वाले। शतं संख्या येषां ते, बहु०। (५) **कवचिनः**—कवचधारी। कवचाः सन्ति येषां ते, कवच+इन्+प्र० ३। मत्वर्थ में इन्। इसी प्रकार—दण्डिनः—दण्डधारी। दण्ड+इन्+प्र० ३। (६) **निषङ्गिणः**—तरकशधारी या तूणीरधारी। निषङ्ग—तूणीर, जिसमें बाण रखे जाते हैं। निषङ्गाः सन्ति येषां ते, निषङ्ग+इन्+प्र० ३। (७) **तत्प्रायम्०**—प्रायः उसी प्रकार का अर्थात् अश्वमेध के अश्व के साथ जैसा होना चाहिए वैसा। (८) **विप्रत्ययः**—अविश्वास। (९) **किंप्रयोजनः**—किस प्रयोजन वाला। किं प्रयोजनं यस्य सः, बहु०। (१०) **परिवृतः**—घिरा हुआ, सुरक्षित। परि+वृ+क्त। (११) **विश्वजयिनाम्**—संसार को जीतने वाले। विश्वं विजयन्ते तच्छीलाः तेषाम्, विश्व+जि+इन्+ष० ३। (१२) **ऊर्जस्वलः**—शक्तिशाली, बलवान्। ऊर्जः अस्य अस्तीति, ऊर्जस्+वलच् (वल)।

ज्योत्स्ना० (५-२-११४) से मत्वर्थ में वलच् प्रत्यय निपातन से। (१३) **सर्व०**—सर्वक्षत्र—सारे क्षत्रियों को, परिभावी—तिरस्कृत करने वाला। सर्वे क्षत्राः सर्वक्षत्राः (कर्मधा०), तान् परिभवति इति, सर्वक्षत्र+परि+भू+णिनि (इन्) +प्र० १। तच्छील अर्थ में णिनि। (१४) **उत्कर्ष०**—उत्कर्ष की कसौटी। अश्वमेध यज्ञ करने का वही अधिकारी है, जो सर्वश्रेष्ठ क्षत्रिय हो और जो अपने पराक्रम से सब राजाओं को जीत सकता हो। उत्कर्षस्य निकषः, तत्पु०। शाणस्तु निकषः कषः, इत्यमरः।

(नेपथ्ये)

१३१. योऽयमश्वः पताकेयमथवा वीरघोषणा।
सप्तलोकैकवीरस्य दशकण्ठकुलद्विषः ॥२७॥

अन्वय—अयं यः अश्वः, इयं सप्तलोकैकवीरस्य दशकण्ठकुलद्विषः पताका अथवा वीरघोषणा (अस्ति)।

(नेपथ्य में)

यह जो घोड़ा है, यह सातों लोकों में अद्वितीय वीर और रावणवंश के विनाशक (महाराज राम) की विजयपताका अथवा (उसके) वीरत्व की घोषणा है ॥२७॥

संस्कृत-व्याख्या

अयं—पुरोवर्ती, यः अश्वः—हयः अस्ति, इयम्—अश्वरूपा, सप्त०—सप्तसु सप्तसंख्याकेषु लोकेषु भुवनेषु एकवीरस्य अद्वितीयवीरस्य, दशकण्ठ०—दशकण्ठस्य रावणस्य कुलं वंशं द्वेष्टि विनाशयति इति तस्य, पताका—विजयवैजयन्ती, अथवा—उत, वीरघोषणा—वीरत्वस्य घोषणा, अस्ति इति शेषः। अत्रातिशयोक्तिरलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **इयं०**—यह पताका है। विधेय पताका के कारण इयम् यह स्त्रीलिंग प्रयोग है। अश्व के लिए होने से पुंलिंग होना चाहिए था। (२) **वीरघोषणा**—

पाठभेद—१३१. काले—अयमश्वः (यह घोड़ा)।

वीरत्व की घोषणा। वीरत्व के लिए वीर शब्द है। वीरस्य घोषणा, तत्पु०। (३) **सप्त०**—सातों लोकों में एकमात्र वीर। सप्तसु लोकेषु एकवीरस्य, तत्पु०। (४) **दशकण्ठ०**—दशकण्ठ—रावण के, कुल—वंश के, द्विषः—द्वेषी या विनाशक। दश कण्ठाः यस्य सः (बहु०), तस्य कुलम् (तत्पु०), तद् द्वेष्टि इति, तस्य, उपपद तत्पु०। (५) अश्व को पताका और वीरघोषणा के रूप में वर्णन होने से भेद में अभेद का बोध है, अतः अतिशयोक्ति अलंकार है। क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा में यह श्लोक तथा श्लोक ४–२९ प्रबन्धार्थौचित्य के उदाहरण उद्धृत किए हैं।

१३२. लवः—(सगर्वम्) अहो संदीपनान्यक्षराणि।

लव—(गर्व के साथ) ओह, ये अक्षर बहुत उत्तेजक हैं।

१३३. वटवः—किमुच्यते ? प्राज्ञः खलु कुमारः।

ब्रह्मचारी लोग—आप क्या कहते हैं? कुमार बुद्धिमान् हैं।

१३४. लवः—भो भोः, तत्किमक्षत्रिया पृथिवी यदेवमुद्घोष्यते ?

लव—अरे (सैनिको), क्या पृथिवी क्षत्रियों से शून्य हो गई है जो इस प्रकार घोषणा कर रहे हो?

(नेपथ्ये)

१३५. रे रे महाराजं प्रति कुतः क्षत्रियाः ?

(नेपथ्य में)

अरे, महाराज राम के सामने क्षत्रिय कहाँ? (अर्थात् राम के सामने कोई प्रतिस्पर्धी क्षत्रिय नहीं है)

१३६. लवः—धिग्जाल्मान्,

यदि नो सन्ति सन्त्येव केयमद्य विभीषिका ?

किमुक्तैरेभिरधुना तां पताकां हरामि वः ॥२८॥

पाठभेद—१३६. का० काल्ले—ते (वे क्षत्रिय)।

हे वटवः, परिवृत्य लोष्टैरभिघ्नन्तो नयतैनमश्वम्। एष रोहितानां मध्येचरो भवतु।

अन्वय--यदि नो सन्ति, सन्ति एव, अद्य इयं का विभीषिका? अधुना एभिः उक्तैः किम्? वः तां पताकां हरामि।

लव--तुम नीचों को धिक्कार है।

यदि कहो कि (क्षत्रिय) नहीं हैं तो (मैं कहता हूँ कि) वे हैं ही। आज यह क्या डर दिखा रहे हो? अब (मेरे) इन शब्दों को कहने से क्या लाभ? मैं तुम्हारी इस विजयपताका (घोड़े) को हर रहा हूँ।।२८।।

हे ब्रह्मचारियो, इस घोड़े को घेर कर ढेलों से मारते हुए (आश्रम में) ले जाओ। यह मृगों के मध्य में विचरण करे।

संस्कृत-व्याख्या

यदि---यद्येवं कथ्यते यत्, नो सन्ति---क्षत्रिया न सन्तीति तर्हि, सन्ति एव ---मया उद्घोष्यते यत् क्षत्रियाः सन्त्येव। अद्य---अस्मिन् दिवसे, इयम्---एषा, का विभीषिका---किमर्थं भयप्रदर्शनं क्रियते। अधुना---संप्रति, एभिः---एतैः, उक्तैः---वचनैः, किं---किंप्रयोजनम्। वः---युष्माकम्, तां पताकाम्---अश्वरूपविजयपताकाम्, हरामि---अपनयामि। अत्रार्थापत्तिरलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **संदीपनानि०**---ये अक्षर क्रोध को उद्दीप्त करने वाले, अर्थात् उत्तेजक हैं। (२) **प्राज्ञः**---बुद्धिमान्। प्रज्ञ एव प्राज्ञः, स्वार्थ में प्रज्ञादिभ्यश्च (५-४-३८) से अण्। प्रज्ञ---प्र+ज्ञा+क (अ)। आतश्चोपसर्गे (३-३-१०६) से क। (३) **अक्षत्रिया**---क्षत्रियों से रहित। अविद्यमानाः क्षत्रियाः यस्यां सा, बहु०। (४) **उद्घोष्यते**---घोषणा की जा रही है। उद्+घुष्+णिच्+कर्म० लट् प्र० १। (५) **नो सन्ति०**---यदि आप लोग यह कहें कि राम के समक्ष कोई क्षत्रिय नहीं है तो मैं कहता हूँ कि क्षत्रिय विद्यमान हैं। (६) **सन्त्येव**---क्षत्रिय विद्यमान हैं। (७) **विभीषिका**---भय दिखाना, डराना।

(८) **किमुक्तैः०**—कहने से क्या लाभ ? जो करना है, वह कर रहा हूँ। (९) **पताकां०**—राम के विजयपताकारूपी घोड़े को भगा कर ले जा रहा हूँ। यदि तुममें शक्ति हो तो रोको। (१०) इस श्लोक में अर्थापत्ति अलंकार है। पताका हरण कर रहा हूँ, इससे अभिप्राय निकलता है कि यदि शक्ति हो तो मुझे रोको। (११) **परिवृत्य**—घेरकर। (१२) **अभिघ्नन्तः**—मारते हुए। अभि+हन्+शतृ+प्र० ३। (१३) **रोहितानाम्**—मृगविशेषों के। रोहित मृगों का एक भेद है। (१४) **मध्येचरः**—बीच में विचरण करने वाला। मध्ये चरति इति, उपपद तत्पु०।

(प्रविश्य सक्रोधः)

१३७. पुरुषः—धिक्चपल, किमुक्तवानसि ? तीक्ष्णतरा ह्यायुधश्रेणयः शिशोरपि दृप्तां वाचं न सहन्ते। राजपुत्रश्चन्द्रकेतुर्दुर्दान्तः, सोऽप्यपूर्वारण्यदर्शनाक्षिप्तहृदयो न यावदायाति तावत्त्वरितमनेन तरुगहनेनापसर्पत।

(प्रवेश करके क्रोध के साथ)

पुरुष—अरे चंचल बालक, तुझे धिक्कार है। तूने क्या कहा ? अतितीक्ष्ण आयुधों को धारण करने वाले सैनिकों के समूह बालक की भी गर्वपूर्ण उक्ति को सहन नहीं करते हैं। राजकुमार चन्द्रकेतु अजेय हैं। अपूर्व वन के देखने में मग्नचित्त वे जब तक नहीं आते हैं, तब तक शीघ्रता के वृक्षों से सघन इस मार्ग से भाग जाओ।

१३८. वटवः—कुमार, कृतं कृतमश्वेन। तर्जयन्ति विस्फारितशरासनाः कुमारमायुधीयश्रेणयः। दूरे चाश्रमपदमितः। तदेहि, हरिणप्लुतैः पलायामहे।

ब्रह्मचारी लोग—कुमार, बस, बस, घोड़ा नहीं चाहिए। ये शस्त्रधारियों के समूह अपने धनुषों को चमकाते हुए आप कुमार को डरा रहे हैं। आश्रमभूमि यहाँ से दूर है। अतः आओ, हिरण के तुल्य उछलते हुए भाग चलें।

१३९. लवः—किं नाम विस्फुरन्ति शस्त्राणि। (इति धनुरारोपयन्)

ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्र-
मुद्भूरिघोरघनघर्घरघोषमेतत्।
ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्र-
जृम्भाविडम्बि विकटोदरमस्तु चापम् ॥२९॥

(इति यथोचितं परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचिते उत्तररामचरिते कौसल्याजनकयोगो नाम चतुर्थोऽङ्कः।

अन्वय—ज्याजिह्वया वलयितोत्कटकोटिदंष्ट्रम् उद्भूरिघोरघनघर्घरघोषम् एतत् चापं ग्रासप्रसक्तहसदन्तकवक्त्रयन्त्रजृम्भाविडम्बि विकटोदरम् अस्तु।

लव—क्या शस्त्र चमक रहे हैं? (यह कहकर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाते हुए)—

प्रत्यंचारूपी जिह्वा से जिसके उग्र दो छोररूपी दाढ़ घिरे हुए हैं तथा असंख्य भयंकर और गंभीर घर्घर ध्वनि से युक्त यह धनुष (संसार को) निगलने में प्रवृत्त एवं हँसते हुए यम के मुखरूपी यन्त्र की जंभाई का अनुकरण करने वाला और अतएव भयंकर मध्यभाग वाला हो जाए।।२९।।

(तत्पश्चात् यथायोग्य घूमकर सबका प्रस्थान)

यह महाकवि श्री भवभूति-विरचित उत्तररामचरित में कौसल्या और जनक का मिलन नामक चतुर्थ अंक समाप्त हुआ।

पाठभेद—१३९. का० काले—उद्गारि० (निकलते हुए या ऊपर उठते हुए)।

संस्कृत-व्याख्या

ज्याजिह्वया—ज्या मौर्वी एव जिह्वा रसना तया, वलयितो०—वलयिते परिवेष्टिते उत्कटे प्रखरे कोटी अग्रभागे एव दंष्ट्रे विशालदन्तौ यस्य तत्, उद्भूरि०—उद्भूरयः असंख्याताः घोराः भयावहाः घनाः निबिडाः घर्घरघोषाः घर्घरध्वनयः यस्य तत्, एतत्—इदम्, चापं—धनुः, ग्रास०—ग्रासे संसारस्य कवलने प्रसक्तः प्रवृत्तः हसन् हासं कुर्वन् अन्तकः यमः तस्य वक्त्रं मुखं तदेव यन्त्रं तस्य जृम्भां व्यादानं विडम्बयति अनुकरोति इति तच्छीलम्, विकटोदरं—विकटं भयंकरम् उदरं मध्यं यस्य तत् तादृशम्, अस्तु—भवतु। अत्र रूपकमलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **तीक्ष्णतराः**—अधिक तेज या तीक्ष्ण। (२) **आयुध०**—आयुध—शस्त्रधारियों की, श्रेणयः—पंक्तियाँ या समूह। आयुधानि सन्ति येषां ते आयुधाः, अर्शआदित्वात् मत्वर्थ में अच् (अ) प्रत्यय। आयुधानां श्रेणयः, तत्पु०। (३) **दृप्ताम्**—गर्वयुक्त। दृप्त—दृप्+क्त। (४) **दुर्दान्तः**—अधर्षणीय, अजेय। (५) **अपूर्व०**—अनुपम वन को देखने में जिसका मन लग गया है। अपूर्वम् अरण्यम् (कर्मधा०), तस्य दर्शनेन आक्षिप्तं हृदयं यस्य सः, बहु०। (६) **कृतमश्वेन**—घोड़ा नहीं चाहिए, घोड़ा छोड़िए। कृतम् के कारण तृतीया। (७) **विस्फारित०**—विस्फारित—चमकाए हैं, शरासनानि—धनुष जिन्होंने। विस्फारितानि शरासनानि यैः ते, बहु०। (८) **आयुधीय०**—आयुधीय—शस्त्रधारियों की, श्रेणयः—पंक्तियाँ। आयुधीयानां श्रेणयः, तत्पु०। आयुधेन जीवन्ति इति आयुधीयाः, आयुध+छ (ईय)। आयुधाच्छ च (४-४-१४) से छ प्रत्यय। (९) **हरिण०**—हरिण—मृग के तुल्य, प्लुतैः—उछलते हुए। हरिणानां प्लुतैः, तत्पु०। (१०) **पलायामहे**—भाग चलें। परा+अय्+लट् उ० ३। उपसर्गस्यायतौ (८-२-१९) से परा के र को ल। (११) **ज्याजिह्वया**—प्रत्यंचारूपी जीभ से। ज्या एव जिह्वा, तया, रूपक तत्पु०। (१२) **वलयितो०**—वलयित—घिरे हुए हैं, उत्कट—तीक्ष्ण, कोटि—दो नोकरूपी, दंष्ट्रम्—दाढ़ जिसके। वलयिते उत्कटकोटी एव दंष्ट्रे यस्य तत्, बहु०।

धनुष के दोनों कोने दो तीक्ष्ण दाढ़ के तुल्य हैं। (१३) **उद्भूरि०**—उद्भूरि—असंख्यों, घोर—भयंकर और, घन—घने, घर्घरघोषम्—घर्घर ध्वनि से युक्त। उद्भूरयः घोराः घनाः घर्घरघोषाः यस्य तत्, बहु०। (१४) **ग्रास०**—ग्रास—निगलने में, प्रवृत्त—लगे हुए और, हसत्—हँसते हुए, अन्तक—यम के, वक्त्रयन्त्र—मुँहरूपी यन्त्र की, जृम्भा—जंभाई का, विडम्बि—अनुकरण करने वाला। ग्रासे प्रसक्तः (तत्पु०), तथाभूतः हसन् अन्तकः (कर्मधा०), तस्य वक्त्रं तदेव यन्त्रम् (रूपक तत्पु०), तस्य जृम्भा (तत्पु०) तां विडम्बयति इति तत्, उपपद तत्पु०। (१५) **विकटोदरम्**—भयंकर मध्यभाग वाला। विकटम् उदरं यस्य तत्, बहु०। मेरा धनुष यम के मुख के तुल्य सारी सेना का भक्षण करे। (१६) इस श्लोक में ज्याजिह्वया, उत्कटकोटिदंष्ट्रम्, वक्त्रयन्त्रम् में रूपक अलंकार है। इस श्लोक में वीर रस है, ओज गुण है और गौडी रीति है। यह श्लोक महावीरचरित (३–२९) में भी आया है।

इत्युत्तररामचरितस्याचार्यकपिलदेवद्विवेदिकृतायां 'भारती'-व्याख्यायां चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः॥

पञ्चमोऽङ्कः

पंचम अंक प्रारम्भ।

(नेपथ्ये)

१. भो भोः सैनिकाः, जातमवलम्बनमस्माकम्।

नन्वेष त्वरितसुमन्त्रनुद्यमान-
प्रोद्वल्गत्प्रजवितवाजिना रथेन।
उत्खातप्रचलितकोविदारकेतुः
श्रुत्वा वः प्रधनमुपैति चन्द्रकेतुः ॥१॥

अन्वय—ननु त्वरितसुमन्त्रनुद्यमानप्रोद्वल्गत्प्रजवितवाजिना रथेन उत्खातप्रचलितकोविदारकेतुः एष चन्द्रकेतुः वः प्रधनं श्रुत्वा उपैति ॥

(नेपथ्य में)

हे सैनिको, हम लोगों को सहारा मिल गया है।

शीघ्रतायुक्त सारथि सुमन्त्र के द्वारा प्रेरित होने के कारण दौड़ते हुए एवं वेगयुक्त घोड़ों से युक्त रथ में बैठे हुए, ऊँची नीची भूमि पर चलने के कारण जिसके रथ का कचनार-काष्ठनिर्मित ध्वजदंड विशेषरूप से काँप रहा है, ऐसा यह चन्द्रकेतु तुम्हारे युद्ध को सुनकर इधर आ रहा है ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या

ननु—नूनम्, त्वरित०—त्वरितेन त्वरायुक्तेन सुमन्त्रेण सुमन्त्रनामकसारथिना नुद्यमानाः प्रेर्यमाणाः अतएव प्रोद्वल्गन्तः धावन्तः प्रजविताः अति-

पाठभेद—१. का०—प्रोद्वेल्लत्० (दौड़ते हुए), काले—व्यावल्गत्प्रजवन० (दौड़ते हुए तथा तीव्रगति वाले)। काले—उद्घात० (ऊँची-नीची भूमि)। काले—नः (हमारे)।

वेगयुक्ताः वाजिनः अश्वाः यस्य तादृशेन, रथेन—स्यन्दनेन, उत्खात०—उत्खातेषु निम्नोन्नतप्रदेशेषु प्रचलितः प्रकम्पमानः कोविदारकेतुः कोविदारकाष्ठनिर्मितध्वजदण्डः यस्य सः, एषः—पुरोदृश्यमानः, चन्द्रकेतुः—लक्ष्मणपुत्रः, वः—युष्माकम्, प्रधनं—युद्धम्, श्रुत्वा—आकर्ण्य, उपैति—समीपमागच्छति। अत्र काव्यलिङ्गं यमकं चालंकारौ। प्रहर्षिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **भो भोः०**—हे सैनिको, हमें सहारा मिल गया है। चन्द्रकेतु आ रहा है, वह हमारी रक्षा करेगा। यह वाक्य सं० १ नेपथ्य से सूचित किया गया है, अतः यह चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक है। चूलिका का लक्षण है—अन्तर्जवनिका-संस्थैः सूचनार्थस्य चूलिका (सा० द० ६–५८)। (२) **त्वरित०**—त्वरित—शीघ्रतायुक्त, सुमन्त्र—सुमन्त्र नामक सारथि के द्वारा, नुद्यमान—प्रेरणा किए जाते हुए, अतएव, प्रोद्वल्गत्—दौड़ते हुए, प्रजवित—वेगयुक्त, वाजिना—घोड़े से युक्त। त्वरितेन सुमन्त्रेण नुद्यमानाः प्रोद्वलगन्तः प्रजविताः वाजिनः यस्य तेन, बहु०। त्वरित—त्वरा संजाता अस्य इति, त्वरा+इतच् (इत), अथवा त्वर्+क्त। नुद्यमान—नुद्+कर्म० लट्—शानच् (आन)। प्रोद्वल्गत्—प्र+उद्+वल्ग्+शतृ। (३) **उत्खात०**—उत्खात—ऊँची-नीची भूमि पर चलने से, प्रचलित—विशेषरूप से हिल रहा है, कोविदार—कचनार का, केतुः—ध्वज-दंड जिसका, ऐसा चन्द्रकेतु। उत्खातेषु प्रचलितः कोविदारकेतुः यस्य सः, बहु०। उत्खात—उत्+खन्+क्त। प्रचलित—प्र+चल्+क्त। (४) **प्रधनम्**—युद्ध को। युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्, इत्यमरः। (५) **उपैति**—समीप आ रहा है। उप+इ+लट् प्र० १। (६) इस श्लोक में अश्वों के दौड़ने का कारण सुमन्त्र के द्वारा प्रेरणा है और कोविदारकेतु के कम्प का कारण उत्खात है, अतः काव्यलिंग अलंकार है। पाद ३ और ४ में केतुः की आवृत्ति है, अतः अन्त्ययमक है।

(ततः प्रविशति सुमन्त्रसारथिना रथेन धनुष्पाणिः साद्भुतहर्षसंभ्रमश्चन्द्रकेतुः)

२. (क) चन्द्रकेतुः—आर्य सुमन्त्र, पश्य पश्य—
किरति कलितकिंचित्कोपरज्यन्मुखश्री-
रविरतगुणगुञ्जत्कोटिना कार्मुकेण।
समरशिरसि चञ्चत्पञ्चचूडश्चमूना-
मुपरि शरतुषारं कोऽप्ययं वीरपोतः॥२॥

अन्वय—कलितकिंचित्कोपरज्यन्मुखश्रीः चञ्चत्पञ्चचूडः कोऽपि अयं वीरपोतः समरशिरसि अविरतगुणगुञ्जत्कोटिना कार्मुकेण चमूनाम् उपरि शरतुषारं किरति॥

(तदनन्तर सारथि सुमन्त्र के साथ रथ पर बैठे हुए, हाथ में धनुष लिए हुए चन्द्रकेतु का आश्चर्य हर्ष और शीघ्रता के साथ प्रवेश)

चन्द्रकेतु—आर्य सुमन्त्र, देखिए, देखिए।

कुछ क्रोध के आविर्भाव से जिसके मुख की कान्ति लाल हो रही है तथा जिसकी पाँचों शिखाएँ हिल रही हैं, ऐसा यह कोई अपरिचित वीर बालक युद्ध-भूमि में निरन्तर प्रत्यंचा पर गूंजते हुए अग्रभागों से युक्त धनुष से (हमारी) सेना के ऊपर हिमपात के तुल्य बाण-वर्षा कर रहा है॥२॥

संस्कृत-व्याख्या

कलित०—कलितेन आविर्भूतेन किंचित्कोपेन ईषत्क्रोधेन रज्यन्ती रक्ततामापद्यमाना मुखश्रीः आननशोभा यस्य सः, चञ्चत्०—चञ्चन्त्यः चपलाः पञ्चचूडाः पञ्च शिखाः यस्य सः, कोऽपि—अविदितः, अयम्—एषः, वीरपोतः—शूरपुत्रः, समरशिरसि—युद्धाग्रभूमौ, अविरत०—अविरतं निरन्तरं गुणे ज्यायां गुञ्जन्त्यौ शब्दायमाने कोटी अटन्यौ यस्य तेन, कार्मुकेण—धनुषा, चमूनां—सेनानाम्, उपरि—उपरिष्टात्, शरतुषारम्—शरो बाणः तुषार इव हिमम् इव तम्, किरति—क्षिपति। अत्र लुप्तोपमाऽलंकारः। मालिनी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **सुमन्त्र०**—सुमन्त्र है सारथि जिसका, ऐसे रथ से। सुमन्त्रः सारथिः यस्य सः, बहु०। सुमन्त्र महाराज दशरथ का सारथि था, अतः वह बहुत वृद्ध

व्यक्ति था। वही रथ चला रहा था। (२) **धनुष्पाणिः**—धनुष हाथ में लिए हुए। धनुः पाणौ यस्य सः, बहु०। (३) **साद्भुत०**—अद्भुत—आश्चर्य, हर्ष—प्रसन्नता और, संभ्रमः—घबड़ाहट या शीघ्रता के साथ। लव की वीरता को देखकर आश्चर्य, समान वीर प्रतिद्वन्द्वी के लाभ से प्रसन्नता तथा अपनी सेना के संहार से घबड़ाहट। अद्भुतेन हर्षेण संभ्रमेण च सहितः, बहु०। (४) **किरति**—फैला रहा है, बखेर रहा है। कॄ+लट् प्र० १। (५) **कलित०**—कलित—प्रकट होते हुए, किंचित्कोप—कुछ क्रोध से, रज्यत्—लाल पड़ रही है, मुखश्रीः—मुख की शोभा जिसकी। कलितेन किंचित्कोपेन रज्यन्ती मुखश्रीः यस्य सः, बहु०। किंचित्कोप का अभिप्राय यह है कि चन्द्रकेतु की सेना लव के सामने बहुत तुच्छ पड़ रही थी, अतः उसे थोड़ा ही क्रोध आया था। रज्यत्—रञ्ज्+शतृ। (६) **अविरत०**—अविरत—निरन्तर, गुण—प्रत्यंचा पर, गुञ्जत्—गूंजते हुए, कोटिना—अग्रभागों से युक्त। कोटि धनुष के दोनों कोनों या नोक के लिए है। अविरतं गुणे गुञ्जन्त्यौ कोटी यस्य तेन, बहु०। कार्मुकेण—धनुष से। (७) **समर०**—समर—युद्ध के, शिरसि—अगले हिस्से में। समरस्य शिरसि, तत्पु०। (८) **चञ्चत्०**—चञ्चत्—हिल रही है, पञ्च—पाँच, चूडः—चोटियाँ जिसकी। क्षत्रिय बालक अपने बालों की पाँच चोटियाँ बनाते थे। चञ्चन्त्यः पञ्च चूडाः यस्य सः, बहु०। चञ्चत्—चञ्च्+शतृ। (९) **शरतुषारम्**—हिमपात के तुल्य बाणवर्षा को। शरः तुषार इव, उपमानोत्तरपद कर्मधा०। (१०) **वीरपोतः**—वीर बालक। वीरः चासौ पोतः, कर्मधा०। (११) इस श्लोक में शरतुषारम् में इव का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा अलंकार है। इस श्लोक में व्यंजना है कि लव श्यामवर्ण होने से मेघ है, चंचल पाँच शिखाएँ विद्युत् हैं, उसका धनुष इन्द्रधनुष है, बाणवर्षा हिमवर्षा है।

२. (ख) आश्चर्यमाश्चर्यम्—

मुनिजनशिशुरेकः सर्वतः संप्रकोपा-
न्नव इव रघुवंशस्याप्रसिद्धः प्ररोहः।

पाठभेद—२ (ख). का० काले—सैन्यकाये (सेनासमूह के मध्य में)। नि० ०स्याप्रसिद्धिप्ररोहः (अप्रसिद्धि से युक्त अंकुर के तुल्य)।

दलितकरिकपोलग्रन्थिटंकारघोर-
ज्वलितशरसहस्रः कौतुकं मे करोति ।।३।।

अन्वय—रघुवंशस्य अप्रसिद्धः नवः प्ररोहः इव एकः मुनिजनशिशुः संप्रकोपात् सर्वतः दलितकरिकपोलग्रन्थिटंकारघोरज्वलितशरसहस्रः मे कौतुकं करोति।

चन्द्रकेतु—आश्चर्य है, आश्चर्य है,

रघुकुल के अप्रसिद्ध नए अंकुर के तुल्य यह अकेला मुनि-बालक अत्यन्त क्रोध के कारण चारों ओर हाथियों के खंडित गंडस्थल की ग्रन्थियों की टंकार से भयंकर एवं प्रदीप्त हजारों बाणों से युक्त यह मेरे लिए आश्चर्य को उत्पन्न कर रहा है ।।३।।

संस्कृत-व्याख्या

रघुवंशस्य—रघुकुलस्य, अप्रसिद्धः—ख्यातिमप्राप्तः, नवः—नूतनः, प्ररोहः इव—अङ्कुर इव, एकः—एकाकी, मुनिजनशिशुः—मुनिबालकः, संप्रकोपात्—क्रोधाधिक्यात्, सर्वतः—समन्ततः, दलित०—दलितानां मर्दितानां करिकपोलग्रन्थीनां गजगण्डस्थलसन्धीनां टंकारेण टमितिशब्देन घोरं भयङ्करं ज्वलितं प्रदीप्तं शराणां बाणानां सहस्रं दशशतं यस्य सः तादृशः, मे—मम चन्द्रकेतोः, कौतुकम्—आश्चर्यम्, करोति—उत्पादयति । अत्रोपमाऽलंकारः । मालिनी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **मुनि०**—मुनि-बालक। मुनिजनस्य शिशुः, तत्पु०। (२) **संप्रकोपात्**—क्रोध की अधिकता से। संप्रकोप—सम्+प्र+कुप्+घञ्। (३) **रघुवंशस्य०**—रघुकुल का। (४) **अप्रसिद्धः**—अज्ञात, अविख्यात। न प्रसिद्धः, नञ् तत्पु०। प्रसिद्ध—प्र+सिध्+क्त। (५) **प्ररोहः**—अंकुर। प्र+रुह्+घञ्। वंश के दो अर्थ हैं—कुल और बाँस। जिस प्रकार बाँस का अंकुर होता है, उसी प्रकार यह रघुवंश का अंकुर है। (६) **दलित०**—दलित—नष्ट किए गए, करि—हाथियों के, कपोल—गंडस्थल या शिरोभाग की, ग्रन्थि—गाँठों की, टंकार—टंकार से, घोर—भयंकर और, ज्वलित—तेजोमय, शरसहस्रः—

हजारों बाणों से युक्त। हाथियों के गंडस्थल की गाँठें बाणों के लगने से चटक रही हैं और उनसे टंकार की ध्वनि हो रही है। दलितानां करिकपोलग्रन्थीनां टंकारेण घोरं ज्वलितं शराणां सहस्रं यस्य सः, बहु०। दलित—दल्+णिच्+क्त। (७) इस श्लोक में नव इव में इव के द्वारा उपमा अलंकार है।

३. सुमन्त्रः—आयुष्मन्,

अतिशयितसुरासुरप्रभावं
शिशुमवलोक्य तथैव तुल्यरूपम्।
कुशिकसुतमखद्विषां प्रमाथे
धृतधनुषं रघुनन्दनं स्मरामि ॥४॥

अन्वय—अतिशयितसुरासुरप्रभावं तथा एव तुल्यरूपं शिशुम् अवलोक्य कुशिकसुतमखद्विषां प्रमाथे धृतधनुषं रघुनन्दनं स्मरामि।

सुमन्त्र—चिरंजीव,

देवों और असुरों के प्रभाव को अतिक्रमण करने वाले तथा उसी प्रकार की आकृति से युक्त इस बालक को देखकर महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ को नष्ट करने वाले (सुबाहु आदि) राक्षसों के नष्ट करने के लिए धनुर्धारी रामचन्द्र को स्मरण कर रहा हूँ ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या

अतिशयित०—अतिशयितः अतिक्रान्तः सुरासुराणां देवदानवानां प्रभावः पराक्रमः येन तम्, तथैव—तेनैव प्रकारेण, तुल्यरूपं—समानाकृतिम्, रामसदृश-रूपधरमित्यर्थः, शिशुं—मुनिबालकम्, अवलोक्य—निरीक्ष्य, कुशिक०—कुशिक-सुतस्य कुशिकपुत्रस्य विश्वामित्रस्य मखस्य यज्ञस्य द्विषां विघातकानां राक्षसानाम्, प्रमाथे—संहारे, धृतधनुषं—धनुर्धरम्, रघुनन्दनं—रामचन्द्रम्, स्मरामि—चिन्तयामि। अत्रातिशयोक्तिरुपमा स्मरणं चालंकाराः। पुष्पिताग्रा वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अतिशयित०—अतिशयित—अतिक्रमण** किया है, सुरासुर—देवों **और राक्षसों के, प्रभावम्—प्रभाव को जिसने। अतिशयितः सुरासुराणां प्रभावः**

येन तम्, बहु० । सुराश्च असुराश्च सुरासुराः, द्वन्द्व । देवों और असुरों का शाश्वत विरोध न होने से येषां च विरोधः० (२-४-९) से सुरासुर में एकवचन नहीं हुआ । अतिशयित—अति+शी+क्त । प्रभाव—प्र+भू+घञ् । (२) **अवलोक्य**—देखकर । अव+लोक्+णिच्+ल्यप् । (३) **तुल्यरूपम्**—समान रूप वाले । तुल्यं रूपं यस्य सः तम्, बहु० । (४) **कुशिक०**—कुशिकसुत—विश्वामित्र के, मख—यज्ञ को, द्विषाम्—नष्ट करने वाले राक्षसों के । कुशिकसुतस्य मखं द्विषन्ति इति तेषाम्, उपपद तत्पु० । वाल्मीकि रामायण (बालकांड अध्याय ३२ से ३४) में विश्वामित्र को गाधि का पुत्र बताया गया है और उनकी वंशावलि इस प्रकार दी है :—ब्रह्मा→कुश→कुशनाभ→गाधि→विश्वामित्र । विश्वामित्र ने राम को बताया है कि वे कुशनाभ के पुत्र गाधि के पुत्र हैं और उनका नाम कौशिक है । कस्यचित्त्वथ कालस्य कुशनाभस्य धीमतः । जज्ञे परमधर्मिष्ठो गाधिरित्येव नामतः ।। स पिता मम काकुत्स्थ गाधिः परमधार्मिकः । कुरुवंशप्रसूतोऽस्मि कौशिको रघुनन्दन ।। (बालकांड ३४-५, ६) । इस प्रकार विश्वामित्र कुशिक के पुत्र नहीं, अपि तु गाधि के पुत्र हैं और कुश के वंशज । संभवतः कुश का ही दूसरा नाम कुशिक रहा है, उस वंश में उत्पन्न होने से विश्वामित्र कौशिक हैं । सुबाहु और मारीच नामक दो राक्षस विश्वामित्र के यज्ञ में मांस आदि डालकर विघ्न करते थे । उनको मारने के लिए विश्वामित्र दशरथ के पास गए और राम तथा लक्ष्मण को राक्षसों के वधार्थ लाए । (देखो वा० रा० बालकांड अध्याय १८-२१) । (५) **प्रमाथे**—नष्ट करते समय, संहार करते समय । प्र+मथ्+घञ् । (६) **धृतधनुषम्**—धनुष धारण किए हुए । धृतं धनुः येन तम्, बहु० । यहाँ पर धनुषश्च (५-४-१३२) से समासान्त अनङ् होकर धृतधन्वन् शब्द बनना चाहिए, जैसे—उदीर्णधन्वन्, पुष्पधन्वन् आदि, परन्तु समासान्त विधि को अनित्य मानकर यहाँ पर अनङ् नहीं हुआ है । (७) **रघुनन्दनम्**—राम को । (८) इस श्लोक में प्रथम चरण में अतिशयित० के द्वारा अतिशयोक्ति अलंकार है । द्वितीय चरण में तथैव के द्वारा उपमा है । बालक को देखकर राम के स्मरण के कारण स्मरण अलंकार है । अलंकारसर्वस्व में यह श्लोक स्मरण अलंकार का उदाहरण दिया गया है । स्मरण का लक्षण है—सदृशानुभवाद् वस्तुस्मृतिः स्मरणमुच्यते (सा० द० १०-२७) ।

४. चन्द्रकेतुः——मम त्वेकमुद्दिश्य भूयसामारम्भ इति हृदयमपत्रपते।

अयं हि शिशुरेकको मदभरेण भूरिस्फुर-
त्करालकरकन्दलीजटिलशस्त्रजालैर्बलैः।
क्वणत्कनककिङ्किणीझणझणायितस्यन्दनै-
रमन्दमदर्दुदिनद्विरदडामरैरावृतः ।।५।।

अन्वय——हि अयम् एककः शिशुः मदभरेण भूरिस्फुरत्करालकरकन्दली-जटिलशस्त्रजालैः क्वणत्कनककिङ्किणीझणझणायितस्यन्दनैः अमन्दमददुर्दिन-द्विरदडामरैः बलैः आवृतः ।।

चन्द्रकेतु——अकेले बालक को लक्ष्य करके बहुत से सैनिकों का यह युद्ध आरम्भ हो रहा है, इसलिए मेरा हृदय लज्जित हो रहा है।

क्योंकि यह अकेला बालक मद की अधिकता के कारण अपने कदली वृक्ष-सदृश विशाल हाथों में अत्यन्त चमकते हुए क्रूर और भयंकर शस्त्रसमूह को धारण किए हुए, शब्द करती हुई सोने की घंटियों के झनझन शब्द वाले रथों से युक्त और अत्यधिक मदजल बरसाने वाले हाथियों से भयावह, सैन्यसमूह से घिरा हुआ है ।।५।।

संस्कृत-व्याख्या

हि——यतो हि, अयम्——एषः, एककः——एकाकी, शिशुः——मुनि-बालकः, मदभरेण——वीरत्वमदाधिक्येन, भूरि०——भूरि प्रचुरं यथा स्यात् तथा स्फुरन्ति तेजोमयानि करालानि क्रूराणि करकन्दलीषु कदलीसदृशविशालकरेषु गृहीतानि जटिलानि भयावहानि शस्त्रजालानि आयुधसमूहाः येषां तैः, क्वणत्०——क्वणन्तीभिः शब्दायमानाभिः कनककिङ्किणीभिः सुवर्णक्षुद्रघण्टिकाभिः झण-

पाठभेद——४. काले——रेककः समरभारभूरिस्फुरत्० (भयंकर युद्ध में बहुत चमकते हुए) काले——कलित (धारण किए हुए)। काले——वारिदै० (मेघतुल्य हाथियों से)

झणायिताः झणझणशब्दयुक्ताः स्यन्दनाः रथाः येषां तैः, अमन्द०—अमन्दः अत्यधिकः मदः दानजलम् एव दुर्दिनं वर्षणं येषां ते तादृशाः द्विरदाः गजाः तैः डामरैः भयंकरैः, बलैः—सैन्यैः, आवृतः—परिवृतोऽस्ति, अतोऽहं लज्जितोऽस्मीति भावः। अत्रोपमाऽलंकारः। पृथ्वी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **एकम्०**—एक लव को लक्ष्य करके बहुत से सैनिक युद्ध कर रहे हैं, इसलिए मेरा हृदय लज्जित है। उद्दिश्य—लक्ष्य करके। उत्+दिश्+ल्यप्। भूयसाम्—बहुतों का। अपत्रपते—लज्जित हो रहा है। अप+त्रप्+लट् प्र० १। (२) **मदभरेण**—मद की अधिकता के कारण। मदस्य भरेण, तत्पु०। (३) **भूरिस्फुरत्०**—भूरि—बहुत अधिक, स्फुरत्—चमकते हुए, कराल—क्रूर और, करकन्दली—केले के वृक्ष के तुल्य विशाल हाथों में धारण किए गए, जटिल—भयंकर, शस्त्रजालैः—शस्त्रसमूह से युक्त। कन्दली का अर्थ केले का वृक्ष है, अतः करकन्दली का अर्थ होगा—केले के वृक्ष के तुल्य विशाल हाथों में गृहीत। कन्दली द्रुमे, इति हैमः। भूरि स्फुरन्ति करालानि करकन्दलीषु जटिलानि शस्त्रजालानि यैः तैः, बहु०। स्फुरत्—स्फुर्+शतृ। कराः कन्दल्यः इव तासु, उपमानोत्तरकर्मधा०। बलैः—सेनाओं से। (४) **क्वणत्०**—क्वणत्—शब्द करती हुई, कनक—सोने की, किंकिणी—छोटी घंटियों के, झणझणायित—झनझन शब्द वाले, स्यन्दनैः—रथों से युक्त। क्वणन्तीभिः कनककिङ्किणीभिः झणझणायिताः स्यन्दना येषां तैः, बहु०। क्वणत्—क्वण्+शतृ। झणझणायित—झणझण+डाच् (आ)+क्यष् (य)+क्त। झणझण इस अव्यक्तानुकरण शब्द से अव्यक्तानुकरणाद० (५–४–५७) सूत्र से डाच् (आ) प्रत्यय और लोहितादि० (३–१–१३) से क्यष् (य) प्रत्यय होकर नामधातु, उससे क्त। (५) **अमन्द०**—अमन्द—बहुत अधिक, मददुर्दिन—मदरूपी-जल की वर्षा करने वाले, द्विरद—हाथियों से, डामरैः—भयंकर। अमन्दः मद एव दुर्दिनं येषां ते (बहु०), तादृशा द्विरदाः (कर्मधा०), तैः डामरैः, तत्पु०। मद—हाथी के माथे से निकलने वाला मदजल, दुर्दिन—वर्षा का दिन, यहाँ पर वर्षा अर्थ लिया जाएगा। मदजलरूपी वर्षा को करने वाले। (६) **आवृतः**—घिरा

हुआ। आ+वृ+क्त। (७) इस श्लोक में करकन्दली और मदद्दुर्दिन में उपमा अलंकार है।

५. सुमन्त्रः—वत्स, एभिः समस्तैरपि नालमस्य, किं पुनर्व्यस्तैः?

सुमन्त्र—वत्स, ये सारे सैनिक मिलकर भी इसके लिए पर्याप्त नहीं हैं, फिर पृथक्-पृथक् का तो कहना ही क्या?

६. चन्द्रकेतुः—आर्य, त्वर्यतां त्वर्यताम्। अनेन हि महानाश्रितजनप्रमारोऽस्माकमारब्धः। तथा हि—

आगर्जद्गिरिकुञ्जकुञ्जरघटानिस्तीर्णकर्णज्वर-
ज्यानिर्घोषममन्ददुन्दुभिरवैराध्मातमुज्जृम्भयन्।
वेल्लद्भैरवरुण्डखण्डनिकरैर्वीरो विधत्ते भुवं
तृष्यत्कालकरालवक्त्रविघसव्याकीर्यमाणामिव ॥६॥

अन्वय—(अयम्) वीरः अमन्ददुन्दुभिरवैः आध्मातम् आगर्जद्गिरिकुञ्जकुञ्जरघटानिस्तीर्णकर्णज्वरज्यानिर्घोषम् उज्जृम्भयन् वेल्लद्भैरवरुण्डखण्डनिकरैः भुवं तृष्यत्कालकरालवक्त्रविघसव्याकीर्यमाणाम् इव विधत्ते।

चन्द्रकेतु—आर्य, शीघ्रता कीजिए, शीघ्रता कीजिए। इस बालक ने हमारे आश्रित जनों का महासंहार प्रारम्भ कर दिया है। क्योंकि—

यह वीर बालक नगाड़ों की गंभीर ध्वनि से बढ़े हुए तथा (भय के कारण) ओर से गरजते हुए पर्वतकुंजों में रहने वाले हस्तिसमूह के कानों को पीड़ा देने वाले प्रत्यंचा के शब्द को उत्पन्न करता हुआ, छटपटाते हुए भयंकर रुण्ड-मुण्ड-समूह से पृथ्वी को मानो प्यासे यम के भयंकर मुख के उच्छिष्ट पदार्थों से आच्छादित कर रहा है॥६॥

पाठभेद—६. का०—काले—कर्णज्वरं (कान की व्यथा को)। का० काले—मुण्ड० (शिर)। का० तृप्यत् (तृप्त होते हुए)।

संस्कृत-व्याख्या

अयं वीरः—शूरः, अमन्द०—अमन्दैः भीषणैः दुन्दुभिरवैः रणभेरीनादैः, आध्मातं—प्रवृद्धम्, आगर्जद्०—आगर्जतां भयाद् गाढं गर्जनं कुर्वतां गिरिकुञ्ज-कुञ्जराणां पर्वतनिकुञ्जवासिगजानां घटायै समूहाय निस्तीर्णः प्रदत्तः कर्णज्वरः कर्णपीडा येन तं तादृशं ज्यानिर्घोषं मौर्वीनादम्, उज्जृम्भयन्—उत्पादयन्, वेल्लद्० —वेल्लतां विचेष्टमानानां भैरवाणां भयंकराणां रुण्डखण्डानां कबन्धानां तच्छिरसां च निकरैः समूहैः, भुवं—पृथ्वीम्, तृष्यत्०—तृष्यतः पिपासितस्य कालस्य यमस्य यत् करालं भीषणं वक्त्रं मुखं तस्य विघसैः भुक्तावशिष्टैः व्याकीर्यमाणाम् इव आच्छाद्यमानाम् इव, विधत्ते—करोति। अत्रातिशयोक्तिरुत्प्रेक्षा चालंकारौ। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **समस्तैः**—इकट्ठे, एकत्रित। अलम् के कारण तृतीया। सब सैनिक मिलकर भी इसे नहीं हरा सकते हैं, अलग-अलग का तो कहना ही क्या? समस्त —सम्+अस्+क्त। (२) **व्यस्तैः**—अलग-अलग। अलम् के कारण तृतीया। व्यस्त—वि+अस्+क्त। (३) **आश्रित०**—आश्रित लोगों का संहार। आश्रितजनानां प्रमारः, तत्पु०। (४) **आगर्जद्०**—आगर्जत्—जोर से गरजते हुए, गिरिकुञ्जकुञ्जर—पहाड़ के कुंजों में रहने वाले हाथियों के, घटा —समूह के लिए, निस्तीर्ण—दी है, कर्णज्वर—कानों की पीड़ा जिसने ऐसे, ज्या—प्रत्यंचा के, निर्घोषम्—शब्द को। आगर्जतां गिरिकुञ्जकुञ्जराणां घटायै निस्तीर्णः कर्णज्वरः येन (बहु०), तादृशं ज्यानिर्घोषम्, कर्मधा०। आगर्जत्—आ+गर्ज्+शतृ। निस्तीर्ण—नि+स्तृ+क्त। (५) **अमन्द०**— अमन्द—घोर, दुन्दुभि—नगाड़ों के, रवैः—ध्वनि से। अमन्दाः दुन्दुभिरवाः, तैः, कर्मधा०। (६) **आध्मातम्**—बढ़े हुए। आ+ध्मा+क्त। (७) **उज्जृम्भयन्**—उत्पन्न करता हुआ। उत्+जृम्भ्+णिच्+शतृ। (८) **वेल्लद्०**— वेल्लत्—छटपटाते हुए, भैरव—भयंकर, रुण्डखण्ड—रुण्डमुण्ड के, निकरैः— समूह से। वेल्लतां रुण्डखण्डानां निकरैः, तत्पु०। रुण्ड—कबन्ध या धड़, खण्ड —अवशिष्ट अंश सिर। वेल्लत्—वेल्ल्+शतृ। (९) **तृष्यत्०**—तृष्यत्— प्यासे, काल—यम के, कराल—भयंकर, वक्त्र—मुख के, विघस—उच्छिष्ट

अंश से (भोजन के बचे अंश से), व्याकीर्यमाणाम् इव—आच्छादित सा। तृष्यन् कालः (कर्मधा०), तस्य यत् करालं वक्त्रं (तत्पु०), तस्य विघसैः व्याकीर्यमाणाम्, तत्पु०। तृष्यत्—तृष्+शतृ। विघस—वि+अद्+अप् (अ)। उपसर्गेऽदः (३–३–५९) से अप् प्रत्यय और घञपोश्च (२–४–३८) से अद् को घस् आदेश। व्याकीर्यमाण—वि+आ+कॄ+शानच्। (१०) ज्यानिर्घोष को कर्णज्वरप्रद कहकर असंबन्ध में सबन्ध के वर्णन से अतिशयोक्ति अलंकार है। अन्तिम चरण में इव उत्प्रेक्षासूचक है। इस श्लोक में वीर और अद्भुत रस हैं।

७. सुमन्त्रः—(स्वगतम्) कथमीदृशेन सह वत्सस्य चन्द्रकेतोर्द्वन्द्वसंप्रहारमनुजानीमः? (विचिन्त्य) अथवा इक्ष्वाकुकुलवृद्धाः खलु वयम्। प्रत्युपस्थिते रणे च का गतिः?

सुमन्त्र—(मन में) ऐसे वीर के साथ वत्स चन्द्रकेतु को द्वन्द्व-युद्ध की आज्ञा कैसे दूं? (सोचकर) अथवा मैं इक्ष्वाकुवंश में पला हुआ वृद्ध व्यक्ति हूँ। अब युद्ध के उपस्थित होने पर क्या किया जाए? (अर्थात् स्वीकृति देनी ही होगी)।

८. चन्द्रकेतुः—(सविस्मयलज्जासंभ्रमम्) हन्त धिक्, अपावृत्तान्येव सर्वतः सैन्यानि मम।

चन्द्रकेतु—(आश्चर्य, लज्जा और शीघ्रता के साथ) ओह, धिक्कार है, मेरी सेनाएँ चारों ओर से पीछे हट रही हैं।

९. सुमन्त्रः—(रथवेगं निरूप्य) आयुष्मन्, एष ते वाग्विषयीभूतः स वीरः।

सुमन्त्र—(रथ के वेग का अभिनय करके) चिरंजीव, अब वह वीर तुम्हारी वाणी का विषय हो गया है (अर्थात् तुम्हारी आवाज उस तक पहुँच सकती है)।

१०. चन्द्रकेतुः—(विस्मृतिमभिनीय) आर्य, किंनामधेयमाख्यातमाह्वायकैः?

चन्द्रकेतु—(भूलने का अभिनय करके) आर्य, पुकारने वालों ने इस बालक का क्या नाम लिया था?

११. सुमन्त्रः—लव इति।

सुमन्त्र—'लव'।

१२. चन्द्रकेतुः—

भो भो लव! महाबाहो! किमेभिस्तव सैनिकैः।
एषोऽहमेहि मामेव तेजस्तेजसि शाम्यतु ॥७॥

अन्वय—भो भो महाबाहो लव, एभिः सैनिकैः तव किम्? एषः अहम्। माम् एव एहि। तेजः तेजसि शाम्यतु।

चन्द्रकेतु—हे महाबाहु लव, इन सैनिकों से तुम्हारा क्या प्रयोजन? (अर्थात् इन सैनिकों से लड़ने से तुम्हें क्या लाभ है)। यह (मुख्य योद्धा) मैं हूँ। मेरे पास ही आओ। (तुम्हारा) तेज (मेरे) तेज में शान्त (समाप्त) हो जाए।।७।।

संस्कृत-व्याख्या

भो भो महाबाहो लव—हे हे महाभुज लव, एभिः—एतैः, सैनिकैः—मम योधैः, तव—लवस्य, किं—किं प्रयोजनम्, एभिः सह युद्धेन न तव किमपि प्रयोजनं सेत्स्यतीति भावः। एषः—एष प्रधानयोद्धा, अहं—चन्द्रकेतुः अस्मि। मामेव एहि—युद्धार्थं मत्समीपमेव आगच्छ। तेजः—त्वदीयं शौर्यम्, तेजसि—मम शौर्ये, शाम्यतु—शान्तिं गच्छतु, निर्वाणं प्राप्नोत्वित्यर्थः। काव्यलिङ्गमलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) द्वन्द्व०—द्वन्द्व—दोनों के, संप्रहारम्—युद्ध को, द्वन्द्वयुद्ध को। द्वन्द्वस्य संप्रहारम्, तत्पु०। (२) अनुजानीमः—आज्ञा दूं, स्वीकृति दूं। अनु+ज्ञा+लट् उ० ३। (३) इक्ष्वाकु०—इक्ष्वाकु-वंश में पला हुआ वृद्ध व्यक्ति मैं। इक्ष्वाकूनां कुले वृद्धाः, तत्पु०। वृद्ध शब्द के दो अर्थ हैं—पले हुए और वृद्ध। दोनों अर्थ यहाँ पर लग सकते हैं। (४) वयम्—मैं। अस्मदो द्वयोश्च

(१-२-५९) से अहम् के स्थान पर वयम् बहुवचन का प्रयोग। (५) **प्रत्यु-पस्थिते०**—रण के उपस्थित हो जाने पर। का गतिः—और क्या रास्ता है, और क्या किया जाए। प्रत्युपस्थित—प्रति+उप+स्था+क्त। मनु का कथन है कि युद्धार्थ आह्वान होने पर राजा युद्ध से न हटे। समोत्तमाधमै राजा त्वाहूतः पालयन् प्रजाः। न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन्॥ (मनु० ७-८८)। (६) **सविस्मय०**—आश्चर्य, लज्जा और शीघ्रता से। विस्मयश्च लज्जा च संभ्रमश्च (द्वन्द्व०), तैः सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (७) **अपावृत्तानि**—पीछे हट गईं। अप+आ+वृत्+क्त नपुं० प्र० ३। (८) **सैन्यानि**—सेनाएँ। सेना एव सैन्यम्, सेना+ष्यञ् (य)। चतुर्वर्णादीनां० (वा०) से स्वार्थ में ष्यञ्। सैन्यम् नपुं० का अर्थ होता है सेना और सैन्यः पुं० का अर्थ सैनिक है। (९) **वाग्विषयीभूतः**—वाणी का विषय हो गया है। वाचां विषयीभूतः, तत्पु०। विषयीभूतः में अभूततद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय है, अतः य के अ को ई। (१०) **विस्मृतिम्०**—भूलने का, अभिनीय—अभिनय करके। अभिनीय—अभि+नी+ल्यप्। (११) **आह्वायकैः**—पुकारने वालों ने। आ+ह्वे+ण्वुल् (अक)। बीच में य् आगम। (१२) **तेजः०**—तेज तेज में शान्त हो। तेरा तेज मेरे तेज में समाप्त हो जाए। शाम्यतु—शम्+लोट् प्र० १। (१३) किमेभिस्तव सैनिकैः का कारण मामेव एहि है, अतः काव्यलिंग अलंकार है।

१३. सुमन्त्रः—कुमार, पश्य पश्य—

विनिर्वतित एष वीरपोतः

पृतनानिर्मथनात्त्वयोपहूतः।

स्तनयित्नुरवादिभावलीना-

मवमर्दादिव दृप्तसिंहशावः॥८॥

अन्वय—एष वीरपोतः त्वया उपहूतः (सन्), दृप्तसिंहशावः स्तनयित्नुरवात् इभावलीनाम् अवमर्दात् इव, पृतनानिर्मथनात् विनिवर्तितः।

पाठभेद—१३. का० धीरपोतः (धीर बालक)।

सुमन्त्र—कुमार, देखो देखो—

यह वीर बालक तेरे द्वारा चुनौती दिए जाने पर सेना के संहार से इसी प्रकार निवृत्त हो गया है, जैसे गर्वयुक्त सिंह-शावक बादल की कड़क सुनकर गज-समूह के विनाश से निवृत्त होता है ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या

एषः—अयम्, वीरपोतः—वीरबालकः, त्वया—चन्द्रकेतुना, उपहूतः—युद्धार्थम् आहूतः सन्, दृप्तसिंहशावः—दृप्तः गर्वयुक्तः चासौ सिंहशावः केसरि-किशोरः, स्तनयित्नु०—स्तनयित्नोः मेघस्य रवात् गर्जनात्, इभावलीनां—हस्ति-यूथानाम्, अवमर्दात् इव—संहाराद् इव, पृतना०—पृतनानां सेनानां निर्मथनाद् विनाशात्, विनिर्वर्तितः—विरतोऽभूत् । अत्रोपमाऽलंकारः । औपच्छन्दसिकं (मालभारिणी) वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **विनिर्वर्तितः**—निवृत्त हो गया है। वि+नि+वृत्+णिच्+क्त। (२) **वीरपोतः**—वीर बालक। वीरश्चासौ पोतः, कर्मधा०। (३) **पृतना०**—पृतना—सेना के, निर्मथनात्—संहार से। पृतनानां निर्मथनात्, तत्पु०। (४) **उपहूतः**—पुकारा हुआ, चुनौती दिया हुआ। उप+ह्वे+क्त। (५) **स्तनयित्नु०**—बादल के गर्जन से। स्तनयित्नोः रवात्, तत्पु०। (६) **इभाव-लीनाम्**—इभ—हाथियों के, अवलीनाम्—समूह के। इभानाम् अवलयः, तासाम्, तत्पु०। (७) **अवमर्दात्**—संहार से। अवमर्द—अव+मृद्+घञ्। (८) **दृप्त०**—दृप्त—गर्वयुक्त, सिंहशावः—सिंह का बच्चा। दृप्तः सिंह शावः, कर्मधा०। दृप्त—दृप्+क्त। (९) इस श्लोक में चतुर्थ पंक्ति में इव के द्वारा उपमा है। (१०) इसी भाव के कुछ श्लोक ये हैं—(क) तृणानि नोन्मूलयति प्रभञ्जनो मृदूनि नीचैः प्रणतानि सर्वतः। स्वभाव एवोन्नतचेतसामयं महान् महत्स्वेव करोति विक्रमम्॥ (हितोपदेश)। (ख) अनुहुंकुरुते घन-ध्वनिं नहि गोमायुरुतानि केसरी (शिशुपाल० १६–२५)। (ग) किमपेक्ष्य फलं पयोधरान् ध्वनतः प्रार्थयते मृगाधिपः। प्रकृतिः खलु सा महीयसः सहते नान्य-समुन्नतिं यया॥ (किरातार्जुनीय २–२१)।

(ततः प्रविशति धीरोद्धतपराक्रमो लवः)

१४. लवः--साधु राजपुत्र, साधु। सत्यमैक्ष्वाकः खल्वसि। तदहं परागत एवास्मि।

(तदनन्तर धीर और उद्भट पराक्रम वाले लव का प्रवेश)

लव--शाबाश राजकुमार, शाबाश। तुम वस्तुतः इक्ष्वाकुवंशी हो, अतः मैं भी पहुँच ही रहा हूँ।

(नेपथ्ये महान्कलकलः)

१५. लवः--(सावष्टम्भं परावृत्य) आः, कथमिदानीं भग्ना अपि पुनः प्रतिनिवृत्ताः पृष्ठानुसारिणः पर्यवष्टम्भयन्ति मां चमूपतयः? धिग्जाल्मान्--

अयं शैलाघातक्षुभितवडवावक्त्रहुतभु-
क्प्रचण्डक्रोधार्चिर्निचयकवलत्वं व्रजतु मे।
समन्तादुत्सर्पद्घनतुमुलहेलाकलकलः
पयोराशेरोघः प्रलयपवनास्फालित इव ॥९॥

(सवेगं परिक्रामति।)

अन्वय—प्रलयपवनास्फालितः पयोराशेः ओघः इव अयं समन्तात् उत्सर्पद्घनतुमुलहेलाकलकलः मे शैलाघातक्षुभितवडवावक्त्रहुतभुक्प्रचण्डक्रोधार्चिर्निचयकवलत्वं व्रजतु।

(नेपथ्य में महान् कोलाहल)

लव--(गर्व के साथ लौटकर) ओह, छिन्न-भिन्न किए हुए भी ये सेनापति किस प्रकार अब फिर लौट कर मेरा पीछा करते हुए मेरा घेराव कर रहे हैं? इन पापियों को धिक्कार है।

पाठभेद—१५. का० काले—उत्सर्पन् (फैलता हुआ)। काले—सेना० (सेना का)

प्रलय काल की वायु से आन्दोलित समुद्र के प्रवाह के तुल्य यह चारों ओर फैलता हुआ गंभीर और प्रचंड युद्ध-क्रीडा का कोलाहल पर्वतों के आघात से क्षुब्ध वाडवाग्नि के तुल्य मेरी प्रचण्ड क्रोधाग्नि-समूह का ग्रास बने ।।६।।

(वेग के साथ चारों ओर घूमता है।)

संस्कृत-व्याख्या

प्रलय०—प्रलयपवनेन कल्पान्तवायुना आस्फालितः आन्दोलितः, पयोराशेः—समुद्रस्य, ओघः इव—प्रवाह इव, अयं—पुरोवर्ती, समन्तात्—परितः, उत्सर्पद्०—उत्सर्पन् उद्गच्छन् घनः गम्भीरः तुमुलः प्रचण्डः हेलायाः युद्धक्रीडायाः कलकलः कोलाहलः, मे—मम लवस्य, शैला०—शैलानां पर्वतानाम् आघातेन संघट्टनेन क्षुभितः उद्दीपितः यः वडवावक्त्रहुतभुक् अश्वतरीमुखनिर्गतवह्निः वडवाग्निरित्यर्थः स इव प्रचण्डः दारुणः यः क्रोधः कोपः स एव अर्चिषां ज्वालानां निचयः समूहः तस्य कवलत्वं ग्रासत्वम्, व्रजतु—प्राप्नोतु। अत्रोपमा रूपकं चालंकारौ। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) धीरोद्धत०—वीर—निर्भीक, उद्धत—गर्वयुक्त, पराक्रमः—पराक्रम वाला। धीरः उद्धतश्च पराक्रमः यस्य सः, बहु०। (२) ऐक्ष्वाकः—इक्ष्वाकुवंशी। इक्ष्वाकोः गोत्रापत्यम्, इक्ष्वाकु+अञ्। जनपद०। (४-१-१६८) से अञ् और दाण्डिनायन० (६-४-१७४) से निपातन से उ का लोप। (३) परागतः०—लौट आया हूँ, आ ही गया हूँ। परा+आ+गम्+क्त। (४) सावष्टम्भम्—गर्व के साथ। अवष्टम्भेन सहितम्, अव्ययी०। अवष्टम्भ—अव+स्तम्भ्+घञ्। अवाच्चा० (८-३-६८) से समीप अर्थ में स् को ष्। (५) भग्नाः—छिन्न-भिन्न, तोड़े हुए। भञ्ज्+क्त। ओदितश्च (८-२-४५) से त को न। (६) प्रतिनिवृत्ताः—लौटे हुए। प्रति+नि+वृत्+क्त+प्र० ३। (७) पृष्ठानुसारिणः—पीछे आने वाले, पीछा करने वाले। पृष्ठम् अनुसरन्ति इति ते, उपपद तत्पु०। पृष्ठ+अनु+सृ+णिनि+प्र० ३। (८) पर्यवष्टम्भयन्ति—घेर रहे हैं, घेराव कर रहे हैं। परि+अव+स्तम्भ्+णिच्+लट् प्र० ३। (९) जाल्मान्०—पापियों को, नीचों को। धिक् के कारण द्वितीया।

(१०) **शैलाघात०**—शैल—पर्वतों के, आघात—टकराने से, क्षुभित—क्षुब्ध हुए, वडवावक्त्रहुतभुक्—वडवानल के तुल्य, प्रचण्ड—भयंकर, क्रोधार्चिर्निचय—क्रोधरूपी ज्वालासमूह का, कवलत्वम्—ग्रास हो। शैलानाम् आघातेन क्षुभितः यः वडवावक्त्रहुतभुक् स इव प्रचण्डः यः कोपः स एव अर्चिषां निचयः तस्य कवलत्वम्, तत्पु०। आघात—आ+हन्+घञ्। क्षुभित—क्षुभ्+क्त। इसका क्षुब्ध रूप भी बनता है। हुतभुक्—हुतं भुङ्क्ते इति, हुत+भुज्+क्विप् (०)। वडवा—घोड़ी या खच्चर के, वक्त्र—मुँह से निकली हुई, हुतभुक्—अग्नि अर्थात् वडवाग्नि। समुद्र के अन्दर विद्यमान अग्नि को वाडवाग्नि या वडवानल कहते हैं। वाडवानल के विषय में निम्नलिखित कथा है:—कार्तवीर्य के पुत्रों ने भृगुवंशियों का नाश करने के लिए गर्भस्थ बच्चों की भी हत्या प्रारम्भ कर दी। अतः भृगुवंश की एक स्त्री ने अपने गर्भस्थ बच्चे को ऊरु (जाँघ) में छिपा लिया। उत्पन्न होने पर उस बच्चे का नाम और्व (ऊरु से उत्पन्न) रखा गया। उसको देखकर कार्तवीर्य के पुत्र अन्धे हो गए। उसके क्रोध की ज्वाला संसार को भस्म करने लगी। पितरों के कहने पर उसने वह क्रोधाग्नि समुद्र में डाल दी। समुद्र में वह अग्नि वडवा (घोड़ी) का सा मुँह धारण किए हुए समुद्र के जल को सुखाती रहती है। वस्तुतः समुद्र के अन्दर बहने वाली उष्णधारा (गर्म जल की धारा) को ही भारतीय कवियों ने वडवाग्नि नाम दिया है। इसका कालिदास ने इस प्रकार वर्णन किया है:—अन्तर्निविष्टपदमात्मविनाशहेतुं शापं दधज्ज्वलनमौर्वमिवाम्बुराशिः। (रघुवंश ९–८९)। (११) **उत्सर्पत्०**—उत्सर्पत्—निकलता हुआ, घन—गंभीर और, तुमुल—प्रचंड, हेला—युद्धरूपी क्रीडा का, कलकलः—कोलाहल। उत्सर्पन् घनः तुमुलः हेलायाः कलकलः, तत्पु०। उत्सर्पत्—उत्+सृप्+शतृ। (१२) **पयोराशेः**—समुद्र का, ओघः—प्रवाह। (१३) **प्रलय०**—प्रलय—प्रलय काल की, पवन—वायु से, आस्फालितः—आन्दोलित, ताडित। प्रलयस्य पवनेन आस्फालितः, तत्पु०। आस्फालित—आ+स्फल्+णिच्+क्त। (१४) इस श्लोक में वडवाग्निरूपी क्रोधाग्नि है, अतः रूपक है। चतुर्थ पंक्ति में इव उपमाबोधक है।

१६. चन्द्रकेतुः—भो भोः कुमार,

अत्यद्भुतादपि गुणातिशयात्प्रियो मे
तस्मात्सखा त्वमसि यन्मम तत्तवैव।
तत्किं निजे परिजने कदनं करोषि
नन्वेष दर्पनिकषस्तव चन्द्रकेतुः ॥१०॥

अन्वय—अत्यद्भुतात् गुणातिशयात् अपि त्वं मे प्रियः, तस्मात् त्वं सखा असि, यत् मम तत् तव एव। तत् निजे परिजने किं कदनं करोषि? ननु एष चन्द्रकेतुः तव दर्पनिकषः।

चन्द्रकेतु—हे कुमार,

अत्यन्त आश्चर्यजनक गुणोत्कर्ष के कारण भी तुम मेरे प्रिय हो, अतएव तुम मेरे मित्र होते हो। जो कुछ मेरा है, वह तुम्हारा ही है। अतः अपने अनुचरवर्ग (सैन्यसमूह) की क्यों हत्या कर रहे हो? निश्चय ही, यह चन्द्रकेतु तुम्हारे गर्व की कसौटी है॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या

अत्यद्भुतात्—अत्याश्चर्यजनकात्, गुणातिशयात्—गुणानां शौर्यादीनाम् अतिशयाद् उत्कर्षात्, अपि त्वम्, मे—मम चन्द्रकेतोः, प्रियः—प्रेमपात्रम् असि। तस्मात्—अत एव, त्वं—लवः, सखा—मित्रम्, असि—वर्तसे। यत् मम—यद् वस्तु मदीयं वर्तते, तत्—तद् वस्तु, तव एव—तव लवस्यैव मन्तव्यम्। तत्—तस्मात् कारणात्, निजे—स्वकीये, परिजने—अनुजीविवर्गे, सैन्यसमूहे इत्यर्थः, किं—केन कारणेन, कदनं—हननम्, करोषि—विदधासि। ननु—निश्चयेन, एषः—पुरोवर्ती, चन्द्रकेतुः—लक्ष्मणपुत्रोऽहम्, तव—लवस्य, दर्पनिकषः—दर्पस्य वीरत्वाभिमानस्य निकषः परीक्षास्थानम्, अस्तीति शेषः। अत्र परिणामोऽलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

पाठभेद—१६. का० काले—असि (हो)।

टिप्पणी

(१) **गुणातिशयात्**—गुणों के उत्कर्ष के कारण। गुणानाम् अतिशयात्, तत्पु०। अतिशय—अति+शी+अच्। हेतु अर्थ में पंचमी। (२) **यन्मम०**—मेरी चीज तुम्हारी चीज है, क्योंकि तुम मेरे मित्र हो। (३) **परिजने**—सेवक, आश्रित। कदनम्—हत्या। निर्वापणनिवासनकदनव्यापादनानि तुल्यानि, इति हलायुधः। कदनम्—कद्+ल्युट् (अन)। (४) **दर्पनिकषः**—दर्प—गर्व की, निकषः—कसौटी। दर्पस्य निकषः, तत्पु०, तुम्हारे गर्व या बल की परीक्षा मैं करूँगा। निकष—नि+कष्+अच् (अ)। (५) इस श्लोक में चन्द्रकेतु में निकष का आरोप है और उसका दर्पपरीक्षा में उपयोग किया गया है, अतः परिणाम अलंकार है।

१७. लवः—(सहर्षसंभ्रमं परावृत्य) अहो, महानुभावस्य प्रसन्नकर्कशा वीरवचनप्रयुक्तिर्विकर्तनकुलकुमारस्य। तत्किमेभिः? एनमेव तावत्संभावयामि।

लव—(हर्ष और शीघ्रता के साथ लौटकर) ओह, महाप्रभावशाली सूर्यवंशी राजकुमार के वीर-वचनों का प्रयोग प्रसाद-गुणयुक्त एवं कठोर है। तो इन (सैनिकों) से क्या प्रयोजन? इस (चन्द्रकेतु) का ही (युद्ध के द्वारा) सत्कार करता हूँ।

(पुनर्नेपथ्ये कलकलः)

१८. लवः—(सक्रोधनिर्वेदम्) आः, कदर्थीकृतोऽहमेभिर्वीरसंवादविघ्नकारिभिः पापैः।

(इति तदभिमुखं परिक्रामति।)

(फिर नेपथ्य में कोलाहल)

लव—(क्रोध और खेद के साथ) ओह, इस वीर के साथ संवाद में विघ्न डालने वाले इन पापियों ने मेरा तिरस्कार किया है।

(यह कहकर सेना की ओर चल पड़ता है।)

१६. चन्द्रकेतुः—आर्य, दृश्यतां द्रष्टव्यमेतत्—

दर्पेण कौतुकवता मयि बद्धलक्ष्यः
पश्चाद्बलैरनुसृतोऽयमुदीर्णधन्वा ।
द्वेधा समुद्धतमरुत्तरलस्य धत्ते
मेघस्य माघवतचापधरस्य लक्ष्मीम् ॥११॥

अन्वय—कौतुकवता दर्पेण मयि बद्धलक्ष्यः, पश्चाद् बलैः अनुसृतः, उदीर्ण-धन्वा अयं द्वेधा समुद्धतमरुत्तरलस्य माघवतचापधरस्य मेघस्य लक्ष्मीं धत्ते।

चन्द्रकेतु—आर्य, यह दर्शनीय दृश्य देखिए।

कुतूहलयुक्त गर्व से मेरी ओर दृष्टि लगाए हुए और पीछे से सेनाओं से पीछा किया गया धनुर्धारी यह लव इसी प्रकार की शोभा को धारण कर रहा है, जैसी दोनों ओर से प्रचंड वायु के चलने से चंचल एवं इन्द्रधनुष को धारण करने वाले बादल की शोभा होती है ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या

कौतुकवता—कौतूहलयुक्तेन, दर्पेण—गर्वेण, मयि—चन्द्रकेतौ, बद्धलक्ष्यः—कृतदृष्टिपातः, पश्चात्—पृष्ठतः, बलैः—सैन्यैः, अनुसृतः—अनुधावितः, उदीर्ण०—उदीर्णम् उद्गतं धनुः कार्मुकं यस्य सः, अयं—लवः, द्वेधा—प्रकार-द्वयेन, विपरीतोभयपक्षत इत्यर्थः, समुद्धत०—समुद्धतेन प्रचण्डवेगेन मरुता पवनेन तरलस्य चञ्चलस्य, माघवत०—माघवतम् ऐन्द्रं चापं धनुः तस्य धरस्य धारकस्य, मेघस्य—जलदस्य, लक्ष्मीं—शोभाम्, धत्ते—धारयति। अत्र निदर्शनाऽलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) सहर्ष०—हर्ष और शीघ्रता के साथ। हर्षश्च संभ्रमश्च (द्वन्द्व०), ताभ्यां सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। परावृत्य—लौटकर। परा+वृत्+ल्यप्। (२) प्रसन्न०—प्रसन्न—प्रसादगुणयुक्त और, कर्कशा—कठोर। प्रसन्ना चासौ कर्कशा, कर्मधा०। अत्यद्भुतात्० श्लोक में पूर्वार्ध में प्रेमवर्णन और प्रसादगुण है। उत्तरार्ध में कर्कशता है। (३) वीर०—वीरवचनों का

प्रयोग। वीरवचनानां प्रयुक्तिः, तत्पु०। (४) **विकर्तन०**—विकर्तन—सूर्य के, कुल—वंश के, कुमारस्य—राजकुमार का। विकर्तनस्य कुलम् (तत्पु०), तस्य कुमारस्य, तत्पु०। विकर्तन—विशेषेण कर्तनम् अस्य, बहु०। विश्वकर्मा ने बहुत घिस कर सूर्य को गोल बनाया है। (देखो रघु० ६–३२)। (५) **संभावयामि**—आदर करता हूँ। सम्+भू+णिच्+लट् उ० १। (६) **सक्रोध०**—क्रोध और खेद के साथ। क्रोधश्च निर्वेदश्च (द्वन्द्व), ताभ्यां सह यथा तथा, अव्ययी०। (७) **कदर्थी०**—अपमानित या तिरस्कृत किया गया। कुत्सितः अर्थः कदर्थः, अकदर्थः कदर्थः कृतः, च्वि प्रत्यय। कु+अर्थ=कदर्थ, कु को कत् आदेश, कोः कत्० (६–३–१०१) से। (८) **वीर०**—वीर के साथ संवाद में विघ्न करने वाले। वीरेण संवादः (तत्पु०), तस्मिन् विघ्नं कुर्वन्ति इति तैः, उपपद तत्पु०। पापैः—पापियों के द्वारा। (९) **कौतुकवता**—कुतूहल से युक्त। कौतुकम् अस्य अस्ति इति तेन, कौतुक+मत्+तृ० १। म् को व्। (१०) **बद्धलक्ष्यः**—दृष्टि लगाए हुए। बद्धं लक्ष्यं येन सः, तत्पु०। बद्ध—बन्ध्+क्त। (११) **अनुसृतः**—अनुगत, पीछा किया गया। अनु+सृ+क्त। (१२) **उदीर्णधन्वा**—उठा हुआ है धनुष जिसका। उदीर्णं धनुः यस्य सः, बहु०। धनुषश्च (५–४–१३२) से समासान्त अनङ् (अन्)। (१३) **द्वेधा**—दो प्रकार से। द्वे विधे यस्य सः, द्वि+एधा। एधाच्च (५–३–४६) से विधा अर्थ में एधाच् प्रत्यय। (१४) **समुद्धत०**—समुद्धत—तीव्र गति वाले, मरुत्—वायु के द्वारा, तरलस्य—चंचल। समुद्धतेन मरुता तरलस्य, तत्पु०। समुद्धत—सम्+उत्+हन्+क्त। (१५) **माघवत०**—माघवत—इन्द्र के, चाप—धनुष को, धरस्य—धारण करने वाले। मघवतः इदम्—माघवतम्, तत् चापम् (कर्मधा०), तस्य धरस्य, तत्पु०। मघवन्+अण्=माघवत। मघवा बहुलम् (६–४–१२८) से मघवन् को मघवत्। (१६) इस श्लोक में लव के द्वारा मेघ की शोभा को धारण करने से असंभवद्वस्तुसंबन्धरूपी निदर्शना अलंकार है।

२०. सुमन्त्रः—कुमार एवैनं द्रष्टुमपि जानाति। वयं तु केवलं परवन्तो विस्मयेन।

सुमन्त्र—कुमार ही इसको देखना भी जानते हैं। मैं तो आश्चर्य के कारण केवल पराधीन हूँ (अर्थात् मैं केवल आश्चर्यचकित हूँ)।

२१. चन्द्रकेतुः——भो भोः, राजानः,

संख्यातीतैर्द्विरदतुरगस्यन्दनस्थैः पदाता-
वत्रैकस्मिन्कवचनिचितैर्नद्धचर्मोत्तरीये।
कालज्येष्ठैरपरवयसि ख्यातिकामैर्भवद्भि-
र्योऽयं बद्धो युधि समभरस्तेन धिग्वो धिगस्मान् ॥१२॥

अन्वय—संख्यातीतैः द्विरदतुरगस्यन्दनस्थैः कवचनिचितैः कालज्येष्ठैः ख्यातिकामैः भवद्भिः एकस्मिन् पदातौ नद्धचर्मोत्तरीये अपरवयसि अत्र युधि यः अयं समभरः बद्धः, तेन वः धिक्, अस्मान् च धिक्।

चन्द्रकेतु—हे राजाओ,

हाथी घोड़े और रथों पर बैठे हुए, कवचधारी, आयु में ज्येष्ठ तथा यश के इच्छुक, अगणित आप लोगों ने इस अकेले, पैदल, मृगचर्म का उत्तरीय (चादर) बाँधे हुए और आयु में छोटे इस बालक पर युद्ध में जो यह सामूहिक आक्रमण का आयोजन किया है, उसके लिए आप सब को धिक्कार है और हमें भी धिक्कार है ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या

संख्यातीतैः—संख्यां गणनाम् अतीतैः अतिक्रान्तैः, अगणितैरित्यर्थः, द्विरद०——द्विरदेषु गजेषु तुरगेषु अश्वेषु स्यन्दनेषु रथेषु च तिष्ठन्तीति तैः, कवच०——कवचैः वर्मभिः निचितैः पिनद्धैः, बद्धकवचैरित्यर्थः, कालज्येष्ठैः—कालेन वयसा ज्येष्ठैः वृद्धतमैः, ख्यातिकामैः—कीर्तिलिप्सुभिः, भवद्भिः—युष्माभिः नृपैः, एकस्मिन्—एकाकिनि, पदातौ—पादचारिणि, नद्ध०—नद्धं बद्धं चर्म मृग-चर्म एव उत्तरीयं प्रावारः येन तस्मिन्, अपर०—अपरं न्यूनं वयः आयुः यस्य तस्मिन्, अल्पवयस्के इत्यर्थः, अत्र—लवे, युधि—समरे, यः अयं—य एषः,

पाठभेद—२१. का० काले—मेघ्य० (पवित्र)। का० काले—अभिनव-वयःकाम्यकाये भवद्भिः (बाल्यावस्था के कारण सुन्दर शरीर वाले इस बालक पर आप लोग)। काले—परिकरः० (कमर बाँधी है)।

समभरः—समेषां सर्वेषां भरः जयायोद्योगः, समत्वव्यवहारो वा, बद्धः—प्रारब्धः, तेन—तस्मात् कारणात्, वः—युष्मान्, धिक्—धिक्कारः, अस्मान् च—मां च, धिक्—धिक्कारः। अत्र विषममलंकारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **परवन्तः**—पराधीन। परतन्त्रः पराधीनः परवान् नाथवानपि, इत्यमरः। विस्मयेन—आश्चर्य से। हेतु में तृतीया। मैं आश्चर्य के वशीभूत हो गया हूँ। (२) **संख्यातीतैः**—असंख्य, अगणित। संख्याम् अतीतैः, द्वितीया श्रितातीत० (२–१–२४) से तत्पु० समास। अतीत—अति+इ+क्त। (३) **द्विरद०**—द्विरद—हाथी, तुरग—घोड़े और, स्यन्दनस्थैः—रथों पर बैठे हुए। द्विरदाश्च तुरगाश्च स्यन्दनाश्च—द्विरदतुरगस्यन्दनम् (समाहार द्वन्द्व, सेना का अंग होने से एकवचन), तस्मिन् तिष्ठन्तीति—द्विरद० स्था+क (अ) +तृ० ३। (४) **पदातौ**—पैदल पर। पादाभ्याम् अतति इति पदातिः, पाद+ अत्+इण् (इ)। पादस्य० (६–३–५२) से पाद को पद्। (५) **कवच०**—कवच—कवच से, निचितैः—बद्ध, घिरे हुए। कवचैः निचितैः, तत्पु०। (६) **नद्ध०**—नद्ध—बाँधा है, चर्म—मृगचर्मरूपी, उत्तरीयैः—चादर जिसने। नद्धं चर्म एव उत्तरीयं येन तस्मिन्, बहु०। नद्ध—नह्+क्त। (७) **काल०**—आयु में बड़े। कालेन ज्येष्ठैः, तत्पु०। (८) **अपरवयसि**—न्यून आयु वाले। अपर का अर्थ न्यून या हीन है। अपरं वयः यस्य तस्मिन्, बहु०। ख्याति-कामैः—यश के इच्छुक। (९) **बद्धः**—बाँधा है, लगाया है। बन्ध्+क्त। (१०) **समभरः**—सम—सबका, भरः—प्रयत्न, आप लोगों का सामूहिक प्रयत्न कि इस बालक को जीता जाए। इसका यह भी भाव हो सकता है—सम—समानता का, भर—भार, उत्तरदायित्व अर्थात् इससे बराबरी का व्यवहार करना। (११) **धिक्०**—तुम सबको और मुझे धिक्कार है। धिक् के योग में द्वितीया। (१२) युद्ध के नियमानुसार पदाति के साथ पैदल ही युद्ध करना चाहिए। रथ आदि पर बैठ कर पैदल से युद्ध करना नियम-विरुद्ध था, अतः धिक्कार है। मनु ने युद्ध के नियम मनुस्मृति (७-८९–९३) में दिए हैं। जैसे—न हन्यात् स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम् (मनु० ७–९१)। व्याख्याकार कुल्लूक का कथन है—स्वयं रथस्थो रथं त्यक्त्वा स्थलारूढं न हन्यात्। महाभारत

(भीष्मपर्व १.२७–३२) में भी युद्ध के नियम दिए हैं। उसका कथन है—रथी च रथिना योध्यो गजेन गजधूर्गतः। अश्वेनाश्वी पदातिश्च पदातेनैव भारत॥ (भीष्म० १–२९)। (१३) असमान गुण वालों के युद्ध के वर्णन से यहाँ पर विषम अलंकार है।

२२. लवः—(सोन्माथम्) आः, कथमनुकम्पते नाम? (ससंभ्रमं विचिन्त्य) भवतु, कालहरणप्रतिषेधाय जृम्भकास्त्रेण तावत्सैन्यानि संस्तम्भयामि।

(इति ध्यानं नाटयति।)

लव—(खेद के साथ) ओह, क्या आप मुझ पर दया कर रहे हैं? (शीघ्रता से सोचकर) अच्छा, व्यर्थ में समय नष्ट न हो, इसलिए मैं तब तक जृम्भक अस्त्र से सेनाओं को निश्चेष्ट कर देता हूँ।

(यह कह कर ध्यान लगाने का अभिनय करता है।)

२३. सुमन्त्रः—तत्किमकस्मादुल्लोलाः सैन्यघोषाः प्रशाम्यन्ति?

सुमन्त्र—तो क्या कारण है कि हमारी सेनाओं का भयंकर कोलाहल सहसा शान्त हो गया है?

२४. लवः—पश्याम्येनमधुना प्रगल्भम्।

लव—अब मैं इस ढीठ को देखता हूँ (अर्थात् अब इस ढीठ से निबटता हूँ)।

२५. सुमन्त्रः—(ससंभ्रमम्) वत्स, मन्ये कुमारकेणानेन जृम्भकास्त्रमामन्त्रितमिति।

सुमन्त्र—(घबड़ाहट से) वत्स, मैं समझता हूँ कि इस बालक ने जृम्भक अस्त्र का प्रयोग किया है।

२६. (क) चन्द्रकेतुः—अत्र कः सन्देहः?

व्यतिकर इव भीमस्तामसो वैद्युतश्च
प्रणिहितमपि चक्षुर्ग्रस्तमुक्तं हिनस्ति।

अथ लिखितमिवैतत्सैन्यमस्पन्दमास्ते
नियतमजितवीर्यं जृम्भते जृम्भकास्त्रम् ।।१३।।

अन्वय—तामसः वैद्युतः च भीमः व्यतिकरः इव, प्रणिहितम् अपि ग्रस्तमुक्तं चक्षुः हिनस्ति। अथ एतत् सैन्यं लिखितम् इव अस्पन्दम् आस्ते। नियतम् अजितवीर्यं जृम्भकास्त्रं जृम्भते ।।

चन्द्रकेतु—इसमें क्या सन्देह है? (अर्थात् कोई सन्देह नहीं है)।

अन्धकार और बिजली के भयंकर संमिश्रण के समान यह एकाग्र की हुई भी दृष्टि को पहले ग्रस्त (अन्धकार से आवृत) और बाद में मुक्त (प्रकाश के कारण अन्धकार से मुक्त) करता हुआ पीडित कर रहा है (अर्थात् चकाचौंध में डाल रहा है) और हमारी यह सेना चित्रलिखित सी निश्चेष्ट हो रही है। अवश्य ही यह अजेय जृम्भक अस्त्र प्रकट हो रहा है।।१३।।

संस्कृत-व्याख्या

तामसः—तमःसंबन्धी, वैद्युतः च—विद्युत्संबन्धी च, भीमः—भीषणः, व्यतिकर इस—संपर्क इव, प्रणिहितमपि—एकाग्रावस्थितमपि, ग्रस्तमुक्तं—ग्रस्तं च अन्धकाराधिक्यात् प्राक् आवृतं मुक्तं च पश्चात् प्रकाशोदयात् अन्धाकाराद् निर्मुक्तं च, चक्षुः—लोचनम्, हिनस्ति—पीडयति, कार्याक्षमं करोतीत्यर्थः। अथ—किं च, एतत्—पुरोवर्ति अस्मदीयम्, सैन्यं—बलम्, लिखितम् इव—चित्रलिखितम् इव, अस्पन्दं—निश्चेष्टम्, आस्ते—वर्तते। नियतम्—अवश्यम्, अजितवीर्यम्—अजेयसामर्थ्यम्, जृम्भकास्त्रं—जृम्भकनामकम् आयुधम्, जृम्भते—प्रस्फुरति, प्रकाशत इत्यर्थः। अत्रोपमोत्प्रेक्षाऽनुमानं चालंकाराः। मालिनी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **सोन्माथम्**—दुःख या खेद के साथ। उन्माथेन सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (२) **कालहरण०**—काल—समय के, हरण—नष्ट होने को, प्रतिषेधाय—रोकने के लिए। कालस्य हरणम् (तत्पु०), तस्य प्रतिषेधाय,

---

पाठभेद—२६ (क)—का० अमित० (अपरिमित शक्ति वाला)।

तत्पु०। (३) **संस्तम्भयामि**—निश्चेष्ट करता हूँ, स्तब्ध करता हूँ। सम्+स्तम्भ्+णिच्+लट् उ० १। (४) **उल्लोलाः**—चंचल, भयंकर। सैन्यघोषाः—सेना का कोलाहल। सैन्यानां घोषाः, तत्पु०। प्रगल्भम्—ढीठ को। (५) **आमन्त्रितम्**—आमन्त्रित किया है, आह्वानपूर्वक प्रयोग किया है। आ+मन्त्र्+णिच्+क्त। (६) **व्यतिकरः**—मिश्रण, मेल। वि+अति+कृ+अप् (अ)। ऋदोरप् (३-३-५७) से अप्। (७) **तामसः**—अन्धकार-संबन्धी। तमसः अयं तामसः, तमस्+अण्। (८) **वैद्युतः**—विद्युत्-संबन्धी। विद्युतः अयं वैद्युतः, विद्युत्+अण्। (९) **प्रणिहितम्**—ध्यानपूर्वक लगाई गई, एकाग्र। प्र+नि+धा+क्त। धा को हि। (१०) **ग्रस्तमुक्तम्**—पहले ग्रस्त और बाद में मुक्त। पूर्वं ग्रस्तं पश्चात् मुक्तम्, कर्मधा०। अन्धकार के कारण पहले कुछ दिखाई नहीं पड़ता था, बाद में प्रकाश होने पर दिखाई पड़ने लगा। (११) **हिनस्ति**—पीडित कर रहा है। हिंस्+लट् प्र० १। प्रकाश की चकाचौंध से आँखों को कष्ट हो रहा है। (१२) **लिखितमिव**—चित्रलिखित सी। सेना निश्चेष्ट होने से चित्रलिखित सी थी। (१३) **अस्पन्दम्**—निश्चेष्ट। नास्ति स्पन्दः यस्मिन् तत्, बहु०। आस्ते—है। नियतम्—अवश्य। (१४) **अजित०**—अजित—नहीं जीता गया है, वीर्यम्—पराक्रम जिसका, अर्थात् अजेय। अजितं वीर्यं यस्य तत्, बहु०। (१५) **जृम्भकास्त्रम्०**—जृम्भक अस्त्र प्रकट हो रहा है। इस श्लोक में जृम्भक अस्त्र के प्रयोग का वर्णन है। जृम्भक अस्त्र से तीन कार्य होते थे—१. पहले बहुत जोर का धुआँ होना। इससे आँखों के सामने अश्रुगैस के तुल्य घोर धुआँ फैल जाता था और कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। २. धुएँ के बाद तीव्र प्रकाश। इससे आँखों के सामने का अन्धकार हट जाता था, परन्तु चकाचौंध के कारण आँखें निश्चेष्ट हो जाती थीं और सामने देखा नहीं जा सकता था। ३. तत्पश्चात् निद्रा का प्रकोप। जिस पर जृम्भक का प्रयोग होता था, वह थोड़े समय के लिए निश्चेष्ट और निद्रित सा हो जाता था। (१६) प्रथम-पंक्ति में इव उपमा-सूचक है। लिखितम् इव में इव उत्प्रेक्षा-सूचक है। कार्य अस्पन्दता आदि के द्वारा जृम्भक अस्त्र का अनुमान होने से अनुमान अलंकार है।

२६. (ख) आश्चर्यमाश्चर्यम्--
पातालोदरकुञ्जपुञ्जिततमःश्यामैर्नभो जृम्भकै-
रुत्तप्तस्फुरदारकूटकपिलज्योतिर्ज्वलद्दीप्तिभिः ।
कल्पाक्षेपकठोरभैरवमरुद्व्यस्तैरभिस्तीर्यते
लीनाम्भोदतडित्कडारकुहरैर्विन्ध्याद्रिकूटैरिव ।।१४।।

अन्वय--पातालोदरकुञ्जपुञ्जिततमःश्यामैः उत्तप्तस्फुरदारकूटकपिलज्योतिर्ज्वलद्दीप्तिभिः जृम्भकैः कल्पाक्षेपकठोरभैरवमरुद्व्यस्तैः लीनाम्भोदतडित्कडारकुहरैः विन्ध्याद्रिकूटैः इव नभः अभिस्तीर्यते ।।

चन्द्रकेतु--आश्चर्य है, आश्चर्य है।

पाताल के अन्दर कुंजों में एकत्र अन्धकार के तुल्य काले तथा तपे हुए एवं चमकते हुए पीतल की पीली कान्ति के तुल्य देदीप्यमान कान्तियुक्त ये जृम्भक अस्त्र, प्रलयकालीन प्रचंड और भयंकर वायु से व्यस्त और अन्दर विद्यमान बादल तथा बिजली के कारण पीले रंग की गुफाओं से युक्त विन्ध्यपर्वत के शिखरों के तुल्य होकर आकाश को व्याप्त कर रहे हैं।।१४।।

संस्कृत-व्याख्या

पातालो०---पातालस्य रसातलस्य उदरे मध्यभागे ये कुञ्जाः लताच्छादितानि स्थानानि तेषु पुञ्जितानि राशीभूतानि यानि तमांसि अन्धकाराः तानि इव श्यामानि कृष्णवर्णानि तैः, उत्तप्त०---उत्तप्तं वह्नितापेन द्रवीभूतं स्फुरत् दीप्यमानं यत् आरकूटं पित्तलं तस्य यत् कपिलं पीतवर्णं ज्योतिः प्रभा तद्वत् ज्वलन्ती दीप्यमाना दीप्तिः कान्तिः येषां तैः, जृम्भकैः---जृम्भकनामकास्त्रैः, कल्पाक्षेप० ---कल्पस्य युगस्य आक्षेपे संहारे प्रलयकाले इत्यर्थः कठोरैः प्रचण्डैः भैरवैः भयङ्करैः मरुद्भिः प्रलयकालीनपवनैः व्यस्तैः विक्षिप्तैः, लीना०---लीनाः व्याप्ताः

पाठभेद---२६ (ख)---काले--तमश्यामै० (अन्धकार के तुल्य काले रंग वाले)। का० काले---अवस्तीर्यते (आच्छादित किया जा रहा है)। का० काले --मीलन्मेघ० (इकट्ठे होते हुए बादलों से युक्त)।

अम्भोदाः मेघाः येषु तानि तथा तडिद्भिः विद्युद्भिः कडाराणि पिङ्गलानि कुहराणि गह्वराणि येषां तैः, विन्ध्याद्रि०—विन्ध्याद्रेः विन्ध्यपर्वतस्य कूटैः शिखरैः इव विद्यमानैः, नभः—आकाशम्, अभिस्तीर्यते—व्याप्यते। अत्रोत्प्रेक्षाऽलंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **पातालोदर०**—पाताल—पाताल के, उदर—मध्यभाग में विद्यमान, कुञ्ज—लताकुंजों में, पुञ्जित—एकत्र, तमः—अन्धकार के तुल्य, श्यामैः—काले। पातालस्य उदरे ये कुञ्जाः, तेषु पुञ्जितानि यानि तमांसि, तानि इव श्यामानि तैः, तत्पु०। पाताल अन्धकारपूर्ण माना जाता है। उसके मध्यभाग के लताकुंजों में अन्धकार अत्यधिक घोर होगा। वह पुंजीभूत होने पर जितना घना अंधकार होगा, वैसा घोर अंधकार जृम्भक अस्त्र से हो गया था। पुञ्जित—पुञ्जः संजातः अस्य, पुञ्ज+इतच् (इत)। (२) **उत्तप्त०**—उत्तप्त—तपे हुए और, स्फुरत्—चमकते हुए, आरकूट—पीतल की, कपिल—पीली, ज्योतिः—कान्ति के तुल्य, ज्वलत्—देदीप्यमान, दीप्तिभिः—कान्ति से युक्त। उत्तप्तं स्फुरत् यत् आरकूटं, तस्य यत् कपिलं ज्योतिः तद्वत् ज्वलन्ती दीप्तिः येषां तैः, तत्पुरुषगर्भक बहु०। उत्तप्त—उत्+तप्+क्त। स्फुरत्—स्फुर्+शतृ। ज्वलत्—ज्वल्+शतृ। रीतिः स्त्रियामारकूटम्, इत्यमरः। अन्धकार के बाद तपे हुए पीतल के तुल्य पीली कान्ति वाला तीव्र प्रकाश फैला। (३) **कल्पाक्षेप०**—कल्प—युग के, आक्षेप—संहार के समय अर्थात् प्रलयकालीन, कठोर—प्रचण्ड और, भैरव—भयंकर, मरुत्—वायु से, व्यस्तैः—इधर-उधर फेंके हुए। कल्पस्य आक्षेपे ये कठोराः भैरवाश्च मरुतः तैः व्यस्तैः, तत्पु०। आक्षेप—आ+क्षिप्+घञ्। व्यस्त—वि+अस्+क्त। (४) **अभिस्तीर्यते**—व्याप्त किया जा रहा है, आच्छादित किया जा रहा है। अभि+स्तॄ+कर्म० लट् प्र० १। (५) **लीना०**—लीन—अन्दर विद्यमान, अम्भोद—बादल और, तडित्—बिजली से, कडार—पीली, कुहरैः—गुफाओं से युक्त। लीनाः अम्भोदाः येषु तानि (बहु०), तडिद्भिः कडाराणि (तत्पु०), कुहराणि येषां तैः, बहु०। (६) **विन्ध्याद्रि०**—विन्ध्य पर्वत के शिखरों के तुल्य। विन्ध्याद्रेः कूटैः, तत्पु०। (७) जृम्भक अस्त्र के धुएँ और प्रकाश की विन्ध्य पर्वत के शिखरों से तुलना की गई है, जिनकी

गुफाओं में बादल घुसे हुए हैं और बिजली चमक रही हैं। विन्ध्यपर्वत की चोटियाँ भी प्रलय के समय चलने वाली ४९ वायुओं से तितर-वितर हो चुकी हैं। इतना भयंकर जृम्भक अस्त्र का प्रभाव था। (८) एक कल्प में १ सहस्र महायुग होते हैं और १ महायुग में कृत (सत्), त्रेता, द्वापर और कलि ये चार युग होते हैं। एक कल्प ४ अरब ३२ करोड़ मानवीय वर्ष का होता है। यह ब्रह्मा का एक दिन माना जाता है। इतनी ही बड़ी रात भी होती है। कल्प के अन्त में संसार का प्रलय हो जाता है। (९) इस श्लोक में चतुर्थ पंक्ति में इव उत्प्रेक्षा-सूचक है।

२७. सुमन्त्रः—कुतः पुनरस्य जृम्भकाणामागमः स्यात्?

सुमन्त्र—किन्तु इस बालक को जृम्भक अस्त्रों की प्राप्ति कहाँ से हुई?

२८. चन्द्रकेतुः—भगवतः प्राचेतसादिति मन्यामहे।

चन्द्रकेतु—मैं समझता हूँ भगवान् वाल्मीकि से हुई होगी।

२९. सुमन्त्रः—वत्स, नैतदेवमस्त्रेषु विशेषतो जृम्भकेषु। यतः—

कृशाश्वतनया ह्येते कृशाश्वात्कौशिकं गताः।
अथ तत्संप्रदायेन रामभद्रे स्थिता इति॥१५॥

अन्वय—एते हि कृशाश्वतनयाः, कृशाश्वात् कौशिकं गताः। अथ तत्संप्रदायेन रामभद्रे स्थिताः इति॥

सुमन्त्र—वत्स, अस्त्रों के विषय में और विशेषरूप से जृम्भक अस्त्रों के विषय में यह बात ठीक नहीं है। क्योंकि—

ये जृम्भक अस्त्र वस्तुतः महर्षि कृशाश्व के पुत्र हैं (अर्थात् ये अस्त्र महर्षि कृशाश्व के तपोबल से उत्पन्न हुए हैं)। महर्षि कृशाश्व से कुशिकपुत्र (विश्वामित्र) को प्राप्त हुए हैं। तदनन्तर ऋषि विश्वामित्र के विधिवत् उपदेश से ये रामभद्र में ही स्थित हो गए हैं, (राम से आगे किसी को प्राप्त नहीं हुए हैं)॥१५॥

पाठभेद—२९. का० काले—अपि (रुक ही गए हैं)।

संस्कृत-व्याख्या

एते—जृम्भकास्त्राणि, (कृशाश्वतनया इति विधेयमाश्रित्य अत्र पुंस्त्वम्), हि—निश्चयेन, कृशाश्व०—कृशाश्वस्य कृशाश्वनामकमहर्षेः तनयाः पुत्ररूपाः, कृशाश्वात्—कृशाश्वमहर्षेः, कौशिकं—कुशिकपुत्रं विश्वामित्रम्, गताः—प्राप्ताः। अथ—तदनन्तरम्, तत्संप्रदायेन—विश्वामित्रस्य विधिवदुपदेशेन, रामभद्रे—रामचन्द्रे, स्थिता इति—स्थितिं प्राप्ताः। तदनन्तरं नान्यं संप्राप्ता इत्यर्थः। अत्र पर्यायोऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) कृशाश्व०—महर्षि कृशाश्व के पुत्र। अर्थात् महर्षि कृशाश्व ने तपोबल से जृम्भक अस्त्रों को उत्पन्न किया था, या इनका आविष्कार किया था, अतः इन्हें कृशाश्व का पुत्र कहा गया है। कृशाश्वस्य तनयाः, तत्पु०। (२) **कौशिकं०**—कृशाश्व से विश्वामित्र को प्राप्त हुए। गत—गम्+क्त। (३) **तत्संप्रदायेन**—गुरु-शिष्य परम्परा से। विश्वामित्र ने राम को विधिवत् इस अस्त्र की शिक्षा दी, तब राम को ये अस्त्र प्राप्त हुए। तस्य संप्रदायेन, तत्पु०। (४) **स्थिताः**—स्थित हो गए, राम के पास आकर रुक गए। स्थित—स्था+क्त। (५) इस श्लोक में जृम्भक अस्त्रों का अनेक के पास जाने के कारण एक के अनेकगत होने से पर्याय अलंकार है।

३०. चन्द्रकेतुः—अपरेऽपि प्रचीयमानसत्त्वप्रकाशाः स्वयं सर्वं मन्त्रदृशः पश्यन्ति।

चन्द्रकेतु—अन्य मन्त्रद्रष्टा ऋषि भी अपने अन्दर सत्त्वगुण के प्रकाश की अभिवृद्धि से स्वयं ही (अर्थात् गुरूपदेश के बिना ही) सब कुछ साक्षात्कार कर लेते हैं।

३१. सुमन्त्रः—वत्स, सावधानो भव। परागतस्ते प्रतिवीरः।

सुमन्त्र—वत्स, सावधान हो जाओ। तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी वीर आ पहुँचा है।

३२. कुमारौ--(अन्योन्यं प्रति) अहो, प्रियदर्शनः कुमारः। (सस्नेहानुरागं निर्वर्ण्य)

यदृच्छासंवादः किमु गुणगणानामतिशयः
पुराणो वा जन्मान्तरनिबिडबद्धः परिचयः।
निजो वा सम्बन्धः किमु विधिवशात्कोऽप्यविदितो
ममैतस्मिन्दृष्टे हृदयमवधानं रचयति ।।१६।।

अन्वय--यदृच्छासंवादः किमु, गुणगणानाम् अतिशयः (किमु), वा जन्मान्तरनिबिडबद्धः पुराणः परिचयः। वा विधिवशात् अविदितः कोऽपि निजः संबन्धः किमु। एतस्मिन् दृष्टे मम हृदयम् अवधानं रचयति।

दोनों कुमार--(एक दूसरे के प्रति) ओह, कुमार देखने में प्रिय हैं। (प्रेम और अनुराग से देखकर)

क्या यह आकस्मिक मिलन है? क्या यह गुण-समूह का उत्कर्ष है? अथवा पूर्वजन्म का घनिष्ट पुराना परिचित है? अथवा क्या यह भाग्यवशात् अज्ञात कोई अपना संबन्धी है? इसको देखकर मेरा हृदय एकाग्र (इसकी ओर आकृष्ट) हो रहा है।।१६।।

संस्कृत-व्याख्या

यदृच्छा०--यदृच्छया स्वेच्छया दैवयोगेनेत्यर्थः संवादः समागमः समानरूपत्वं वा, किमु--किम्। गुणगणानां--शौर्यादिगुणसमूहस्य, अतिशयः--उत्कर्षः, किमु--किम्। वा--अथवा, जन्मान्तर०--जन्मान्तरेषु पूर्वजन्मसु निबिडबद्धः घनिष्टरूपेण संबद्धः, पुराणः--प्राचीनः, परिचयः--संस्तवः, परिचित इत्यर्थः। वा--अथवा, विधिवशात्--दैवयोगेन, अविदितः--अज्ञातः, कोऽपि--कश्चन, निजः--आत्मीयः, संबन्धः--स्वजनः, किमु--किम्। एतस्मिन्--लवे चन्द्रकेतौ वा, दृष्टे--अवलोकिते सति, मम--लवस्य चन्द्रकेतोः वा, हृदयं--चित्तम्,

पाठभेद--३२. का० काले--किम. किम गुणानाम० (क्या आकस्मिक मिलन है, क्या गुणों का प्रकर्ष है)।

अवधानम्—एकाग्रताम्, रचयति—विदधाति। अत्र सन्देहः काव्यलिङ्गं चालंकारौ। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **प्रचीयमान०**—प्रचीयमान—बढ़ा हुआ है, सत्त्व—सत्त्वगुण का, प्रकाशाः—प्रकाश जिनमें ऐसे। प्रचीयमानः सत्त्वस्य प्रकाशः येषु ते, बहु०। प्रचीयमान—प्र+चि+कर्म० शानच्। (२) **मन्त्रदृशः**—मन्त्रद्रष्टा ऋषिलोग। मन्त्रान् पश्यन्ति इति ते, मन्त्र+दृश्+क्विप् (०) +प्र० ३। (३) **परागतः**—लौट आया। प्रतिवीरः—प्रतिस्पर्धी वीर। (४) **सस्नेहा०**—स्नेह और अनुराग के साथ। स्नेहश्च अनुरागश्च (द्वन्द्व०), ताभ्यां सह यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (५) **निर्वर्ण्य**—ध्यान से देखकर। निर्+वर्ण्+ णिच्+ल्यप्। (६) **यदृच्छा०**—यदृच्छा—स्वेच्छा से अर्थात् दैवयोग से, संवादः—समागम। संवाद के अर्थ संभाषण, मिलन और समान आकृति हैं। क्या संयोग से हम दोनों की आकृति एक जैसी है? यह अर्थ भी हो सकता है। यदृच्छया संवादः, तत्पु०। (७) **गुणगणानाम्**—गुणसमूह का। गुणानां गणाः तेषाम्, तत्पु०। अतिशयः—उत्कर्ष। अति+शी+अच्। (८) **जन्मान्तर०**—जन्मान्तर—पूर्व जन्म का, निबिड—घना, बद्धः—बँधा हुआ। अन्यत् जन्म जन्मान्तरम्, मयूरव्यंसकादि कर्मधा०। जन्मान्तरेषु निबिडबद्धः, तत्पु०। बद्ध—बन्ध्+क्त। (९) **परिचयः**—परिचित व्यक्ति। परिचित के लिए परिचय लाक्षणिक प्रयोग है। परि+चि+अच्। (१०) **संबन्धः**—संबन्धी। संबन्धी के लिए संबन्ध लाक्षणिक प्रयोग है। (११) **विधिवशात्**—भाग्य-वश। विधेः वशात्, तत्पु०। (१२) **अवधानं०**—एकाग्रता को कर रहा है, अर्थात् यह मेरे हृदय को अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। (१३) मन पूर्वजन्म के संबन्धों को स्मरण करता है। इसी भाव के अन्य सुभाषित हैं—(क) मनो हि जन्मान्तरसंगतिज्ञम् (रघु० ७-१५)। (ख) तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं, भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि॥ (शाकु० ५-२)। (१४) इस श्लोक में प्रथम तीन पदों में किम् आदि के द्वारा सन्देह अलंकार है। हृदय का परस्पर आकृष्ट होना कारण है, अतः चतुर्थ पंक्ति में काव्यलिंग है।

३३. सुमन्त्रः—भूयसां जीविनामेव धर्म एष यत्र स्वरसमयी कस्यचित्क्वचित्प्रीतिः, यत्र लौकिकानामुपचारस्तारामैत्रकं चक्षूराग इति। तदप्रतिसंख्येयनिबन्धनं प्रमाणमामनन्ति।

अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया।
स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्भूतानि सीव्यति॥१७॥

अन्वय—यः अहेतुः पक्षपातः तस्य प्रतिक्रिया न अस्ति। हि स स्नेहात्मकः तन्तुः भूतानि अन्तः सीव्यति।

सुमन्त्र—बहुत से प्राणियों का यह स्वभाव ही होता है कि किसी का किसी के प्रति आनन्दमय प्रेम हो जाता है, जिसके संबन्ध में लोगों में कहावत है—'पुतलियों की मित्रता' या 'आँखों का प्रेम'। ऐसे प्रेम को विद्वान् लोग अनिर्वचनीय और प्रामाणिक कहते हैं।

जो अकारण प्रेम होता है, उसका कोई प्रतिकार नहीं है, क्योंकि वह प्रेमरूपी तन्तु है जो प्राणियों के हृदयों को सी देता है॥१७॥

संस्कृत-व्याख्या

यः, अहेतुः—अकारणम्, पक्षपातः—पक्षाश्रयणम्, आसक्तिरित्यर्थः, तस्य—अहेतुकपक्षपातस्य, प्रतिक्रिया—प्रतीकारः, न अस्ति—न वर्तते। हि—यतो हि, सः—अहेतुपक्षपातः, स्नेहात्मकः—प्रेमरूपः, तन्तुः—सूत्रम्, भूतानि—प्राणिनः, अन्तः—अन्तरात्मनि, सीव्यति—स्यूतानि करोति। अत्रार्थान्तरन्यासो रूपकं चालंकारौ। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **भूयसाम्**—बहुतों का। भूयस्—बहु+ईयसुन्। जीविनाम्—प्राणियों का। जीवः अस्ति येषां तेषाम्, जीव+इनि (इन्)। मत्वर्थ में इनि। (२) **स्वरस०**—आत्मिक-आनन्दयुक्त। लौकिकानाम्—लोगों का। पतंजलि का कथन है कि—प्रियतद्धिता दाक्षिणात्याः (महा० आ० १)। दाक्षिणात्य होने

पाठभेद—३३. काले—अन्तर्मर्माणि (अन्दर के मर्मस्थानों को)।

के कारण भवभूति ने लोकानाम् के स्थान पर लौकिकानाम् प्रयोग किया है। उपचारः—कहावत, परम्परागत प्रवाद। उप+चर्+घञ्। (३) **तारामैत्रकं०**—आँख की पुतलियों का प्रेम। चक्षूरागः—आँख देखे का प्रेम। तारयोः मैत्रकम्, तत्पु०। चक्षुषोः रागः, तत्पु०। इसी भाव की उर्दू की कहावत है—'जब आँखें चार होती हैं, मुहब्बत हो ही जाती है।' (४) **अप्रति०**—अप्रतिसंख्येय—अनिर्वचनीय, निबन्धनम्—बन्धन वाला। अप्रतिसंख्येयं निबन्धनं तस्य तत्, बहु०। प्रतिसंख्येय—प्रति+सम्+ख्या+यत्। ईद्यति (६–४–६५) से आ को ई और गुण। (५) **आमनन्ति**—कहते हैं। आ+म्ना+लट् प्र० ३। म्ना को मन् आदेश। (६) **अहेतुः**—अकारण, स्वभावसिद्ध। अविद्यमानः हेतुः यस्य सः, बहु०। पक्षपातः—आसक्ति, प्रेम। प्रतिक्रिया—प्रतिकार। (७) **स्नेहात्मकः**—स्नेहरूपी। स्नेहः आत्मा यस्य सः, बहु०। बाद में समासान्त कप् (क)। (८) **सीव्यति**—सी देता है। सिव्+लट् प्र० १। (९) प्रेमरूपी धागा प्रेमियों के हृदयों को सीकर एक बना देता है। साधारण सिलाई में सूत या रेशम का धागा काम में आता है, परन्तु इस सिलाई में प्रेमरूपी धागा काम में आता है। इस श्लोक में पूर्वार्धगत कार्य का उत्तरार्धगत कारण से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। स्नेहरूपी तन्तु में रूपक है।

३४. (क) कुमारौ—(अन्योन्यमुद्दिश्य)

एतस्मिन्मसृणितराजपट्टकान्ते
मोक्तव्याः कथमिव सायकाः शरीरे।
यत्प्राप्तौ मम परिरम्भणाभिलाषा-
दुन्मीलत्पुलककदम्बमङ्गमास्ते ॥१८॥

अन्वय—मसृणितराजपट्टकान्ते एतस्मिन् शरीरे सायकाः कथमिव मोक्तव्याः, यत्प्राप्तौ परिरम्भणाभिलाषात् मम अङ्गम् उन्मीलत्पुलककदम्बम् आस्ते।

दोनों कुमार—(एक दूसरे को लक्ष्य करके)

चिकने मखमल के तुल्य मनोहर इस शरीर पर, जिसके मिलने पर आलिंगन की इच्छा से मेरा शरीर रोमांचित हो रहा है, बाण कैसे छोड़े जा सकते हैं ॥१८॥

संस्कृत-व्याख्या

मसृणित०—मसृणितः चिक्कणतां प्रापितः राजपट्टः राजकीयवस्त्रविशेषः मणिविशेषो वा तद्वत् कान्तं मनोज्ञं तस्मिन्, एतस्मिन्—पुरोवर्तिनि, शरीरे—देहे, सायकाः—बाणाः, कथमिव—केन प्रकारेण, भोक्तव्याः—प्रक्षेप्तव्याः। यत्प्राप्तौ—यस्य शरीरस्य प्राप्तौ समागमे, परिरम्भ०—परिरम्भणस्य आलिङ्गनस्य अभिलाषात् इच्छावशात्, मम—मदीयम्, अङ्गं—शरीरावयवः, शरीरमित्यर्थः, उन्मीलत्०—उन्मीलत् उद्गच्छत् पुलकानां रोमाञ्चानां कदम्बं समूहः यस्मिन् तत्, आस्ते—वर्तते। अत्र लुप्तोपमा काव्यलिङ्गं चालंकारौ। प्रहर्षिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **मसृणित०**—मसृणित—जिसको चिकना या मुलायम बनाया गया है ऐसे, राजपट्ट—मखमल के तुल्य, कान्ते—मनोहर। मसृणितः राजपट्टः (कर्मधा०), स इव कान्तं तस्मिन्, उपमानपूर्वपद कर्मधा०। मसृणित—मसृणं करोति मसृणयति, मसृण+णिच्। तत्करोति० (गणसूत्र) से णिच्। मसृण+णिच्+क्त। (२) **मोक्तव्याः**—छोड़ने चाहिएँ। मोक्तव्य—मुच्+तव्य। (३) **यत्प्राप्तौ**—जिसके मिलने पर। यस्य प्राप्तौ, तत्पु०। (४) **परिरम्भ०**—परिरम्भण—आलिंगन की, अभिलाषात्—इच्छा से। परिरम्भणस्य अभिलाषात्, तत्पु०। परिरम्भण—परि+रभ्+ल्युट् (अन)। रभे० (७-१-६३) से बीच में न्। अभिलाष—अभि+लष्+घञ्। (५) **उन्मीलत्०**—उन्मीलत्—निकल रहे हैं, पुलक—रोमांच के, कदम्बम्—समूह जिसमें। उन्मीलत्—उत्+मील्+शतृ। (६) इस श्लोक में राजपट्टकान्ते में इव का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा है। राजपट्टवत् कान्तता परिरम्भण का कारण है, अतः काव्यलिंग है।

३४. (ख)—

किं चाक्रान्तकठोरतेजसि गतिः का नाम शस्त्रं विना
शस्त्रेणापि हि तेन किं न विषयो जायेत यस्येदृशः।

पाठभेद—३४ (ख). का० काले—किन्त्वाक्रान्त० (किन्तु प्राप्त किया है उग्र तेज जिसने)।

किं वक्ष्यत्ययमेव युद्धविमुखं मामुद्यतेऽप्यायुधे
वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहक्रमं बाधते ।।१६।।

अन्वय—किं च आक्रान्तकठोरतेजसि शस्त्रं विना का नाम गतिः ? हि तेन शस्त्रेण अपि किम्, यस्य विषयः ईदृशः न जायेत ? आयुधे उद्यते अपि युद्धविमुखं माम् अयम् एव किं वक्ष्यति ? हि दारुणरसः वीराणां समयः स्नेहक्रमं बाधते ।।

दोनों कुमार—किन्तु उत्कृष्ट तेजस्वी व्यक्ति के प्रति शस्त्र उठाने के अतिरिक्त और उपाय ही क्या है ? उस शस्त्र से भी क्या लाभ, जिसका लक्ष्य ऐसा वीर न बने ? (युद्धार्थ) शस्त्र उठने पर भी मुझे युद्ध से विमुख देखकर यह बालक ही क्या कहेगा ? क्योंकि कठोर वीररस से युक्त वीरों का आचार प्रेम-व्यवहार को रोकता है ।।१६।।

संस्कृत-व्याख्या

किं च—किन्तु, आक्रान्त०—आक्रान्तं लब्धं कठोरम् उग्रम् उत्कृष्टं वा तेजः शौर्यं येन तस्मिन्, शस्त्रं विना—शस्त्रप्रहराद् ऋते, का नाम गतिः—को नाम अन्य उपायः ? न कोऽपीत्यर्थः, हि—नूनम्, तेन—तथाविधेन, शस्त्रेण—आयुधेन, अपि किम्—को लाभः, यस्य—आयुधस्य, विषयः—लक्ष्यम्, ईदृशः—एतादृशो वीरः, न—नहि, जायेत—भवेत् ? आयुधे—शस्त्रे, उद्यते अपि—प्रहारार्थम् उत्थापितेऽपि, युद्धविमुखं—रणपराङ्मुखम्, माम्—लवं चन्द्रकेतुं वा, अयमेव—एष चन्द्रकेतुर्लवो वा, किं—किमिति, वक्ष्यति—कथयिष्यति ? हि—यतोहि, दारुण०—दारुणः क्रूरः रसः वीररसः यस्मिन् सः, वीराणां—शूराणाम्, समयः—आचारः, स्नेहक्रमं—प्रेमव्यवहारम्, बाधते—रुणद्धि । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलंकारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **आक्रान्त०**—आक्रान्त—प्राप्त किया है, कठोर—उत्कट, तेजसि—तेज जिसने ऐसे । आक्रान्तं कठोरं तेजः येन तस्मिन्, बहु० । आक्रान्त—आ +क्रम्+क्त । (२) **का गतिः**—और क्या मार्ग या उपाय हो सकता है ? (३) **शस्त्रेण०**—शस्त्र से क्या लाभ ? किम् के कारण तृतीया । (४) **वक्ष्यति**—कहेगा । ब्रू+लृट् प्र० १ । ब्रू को वच् आदेश । (५) **युद्धविमुखम्**—युद्ध

से विमुख। युद्धात् विमुखम्, तत्पु०। (६) उद्यते०—शस्त्र उठने पर भी। उद्यत—उद्+यम्+क्त। (७) समयः—आचार, मर्यादा। समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः, इत्यमरः। (८) दारुणरसः—दारुणः—क्रूर, रसः—वीर रस जिसमें है। दारुणः रसः यस्मिन् सः, बहु०। (९) स्नेह०—स्नेह—प्रेम के, क्रमम्—प्रसार को। स्नेहस्य क्रमम्, तत्पु०। वीरों के आचार में प्रेम-व्यवहार को स्थान नहीं है, अतः प्रतिपक्षी का संहार करेंगे। (१०) चतुर्थ पंक्ति में सामान्य का वर्णन है। सामान्य के द्वारा प्रथम तीन पंक्तियों में वर्णित विशेष का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

३५. सुमन्त्रः—(लवं निर्वर्ण्य सास्रमात्मगतम्) हृदय, किमन्यथा परिप्लवसे?

मनोरथस्य यद्बीजं तद्दैवेनादितो हृतम्।
लतायां पूर्वलूनायां प्रसवस्योद्भवः कुतः? ॥२०॥

अन्वय—मनोरथस्य यद् बीजं, तत् दैवेन आदितः हृतम्। पूर्वलूनायां लतायां प्रसवस्य उद्भवः कुतः ॥

सुमन्त्र—(लव को देखकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से मन ही मन) हृदय, क्यों विपरीत कल्पना करके (अर्थात् इसको सीता का पुत्र समझकर) चंचल हो रहा है?

(पुत्ररूपी) मनोरथ का जो मूलकारण (सीतारूपी कारण) था, उसे भाग्य ने पहले ही छीन लिया। पहले से ही काटी हुई लता पर फूल की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? ॥२०॥

संस्कृत-व्याख्या

मनोरथस्य—पुत्ररूपाभिलाषस्य, यद् बीजं—यत् सीतारूपं मूलकारणम् आसीत्, तत्—मूलकारणम्, दैवेन—भाग्येन, आदितः—पूर्वमेव, हृतम्—अपहृतम्। पूर्वलूनायां—पूर्वं पुष्पोगद्मात् पूर्वमेव लूनायां छिन्नायाम्, लतायां—व्रतत्याम्, प्रसवस्य—पुष्पस्य, उद्भवः—उद्गमः, कुतः—कस्मात् कारणात् संभवति। अत्र दृष्टान्तोऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **सास्रम्**—आँसू के साथ, आँखों में आँसू भरकर। अस्रैः सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (२) **किमन्यथा०**—क्यों अन्यथा चंचल हो रहा है। भाव यह है कि मेरा हृदय लव को सीता का पुत्र समझकर उद्विग्न और चंचल हो रहा है, परन्तु सीता नष्ट हो चुकी है, अतः उसके पुत्र की कल्पना निरर्थक है। (३) **परिप्लवसे**—चंचल हो रहा है। परि+प्लु+लट् म० १। (४) **बीजम्**—बीज। सीता बीज थी, जिससे पुत्ररूपी अंकुर होता। (५) **आदितः**—आदि में ही, पहले ही। सप्तमी के अर्थ में तसिल् (तः) है। भाग्य ने सीता को पहले ही हर लिया है। (६) **पूर्वं०**—पूर्वं—पहले ही, लूनायाम्—काटी हुई। पूर्वं लूना, तस्याम्, तत्पु०। लून—लू+क्त। ल्वादिभ्यः (८–२–४४) से त को न। (७) **प्रसवस्य**—फूल और फल आदि का। प्रसव—प्र+सू+अप् (अ)। (८) **उद्भवः**—उत्पत्ति। उद्+भू+अप् (अ)। (९) पूर्वार्ध के दृष्टान्त-रूप में उत्तरार्ध है, बिम्बप्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्त अलंकार है।

३६. **चन्द्रकेतुः**——अवतराम्यार्य सुमन्त्र, स्यन्दनात्।

चन्द्रकेतु——आर्य सुमन्त्र, मैं (अब) रथ से उतरता हूँ।

३७. **सुमन्त्रः**——कस्य हेतोः ?

सुमन्त्र——किस लिए ?

३८. **चन्द्रकेतुः**——एकस्तावदयं वीरपुरुषः पूजितो भवति। अपि च——खल्वार्य, क्षात्रधर्मः परिपालितो भवति। न रथिनः पादचारमभियुञ्जन्तीति शास्त्रविदः परिभाषन्ते।

चन्द्रकेतु——आर्य, एक तो इस वीर पुरुष का संमान होता है और (दूसरी ओर) क्षात्रधर्म का पालन होता है। शास्त्रवेत्ताओं का कथन है कि——'रथारूढ पैदल से युद्ध नहीं करते हैं'।

३९. **सुमन्त्रः**——(स्वगतम्) आः, कष्टां दशामनुप्रपन्नोऽस्मि।

कथं हीदमनुष्ठानं मादृशः प्रतिषेधतु।
कथं वाऽभ्यनुजानातु साहसैकरसां क्रियाम् ॥२१॥

अन्वय—हि मादृशः इदम् अनुष्ठानं कथं प्रतिषेधतु, साहसैकरसां क्रियां वा अभ्यनुजानातु।

सुमन्त्र—(मन में) आह, मैं कठिन परिस्थिति में फँस गया हूँ।

क्योंकि मुझ जैसा व्यक्ति इस प्रकार के (वीरोचित) कार्य को कैसे मना करे? और एकमात्र साहस-पूर्ण कार्य के लिए कैसे स्वीकृति प्रदान करे॥२१॥

संस्कृत-व्याख्या

हि—यतोहि, मादृशः—मत्सदृशः, इदं—वीरोचितम्, अनुष्ठानं—कार्यम्, कथं—केन प्रकारेण, प्रतिषेधतु—निवारयेत्, साहसैकरसां—साहसम् अविमृश्य-कारित्वम् एकः मुख्यः रसः सारः यस्यां ताम्, क्रियां—कार्यम्, कथं वा—केन रूपेण वा, अभ्यनुजानातु—अनुमन्येत। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **वीरपुरुषः**—वीर पुरुष। वीरः पुरुषः, कर्मधा०। (२) **पूजितः**—संमानित। पूज्+णिच्+क्त। मतिबुद्धि० (३-२-१८८) से वर्तमान अर्थ में क्त। (३) **क्षात्रधर्मः**—क्षत्रियोचित धर्म। क्षत्राणाम् अयं क्षात्रः, क्षत्र+अण्। क्षात्रः चासौ धर्मः, कर्मधा०। (४) **रथिनः**—रथ पर बैठे हुए, रथारूढ। पादचारम्—पैदल को। पादाभ्यां चारः यस्य सः, बहु०। चार—चलना, चर्+घञ्। (५) **न अभियुञ्जन्ति**—नहीं लड़ते हैं। अभि+युज्+लट् प्र० ३। (६) **शास्त्रविदः**—शास्त्रवेत्ता लोग। शास्त्राणि विदन्ति इति ते, शास्त्र+विद्+क्विप् प्र० ३। (७) **परिभाषन्ते**—कहते हैं। परि+भाष्+लट् प्र० ३। (८) **कष्टां०**—कठिन परिस्थिति को। (९) **अनुप्रपन्नः**—प्राप्त हो गया हूँ। मैं कठिन परिस्थितियों में आ गया हूँ। मैं चन्द्रकेतु को युद्ध के लिए न हाँ कर सकता हूँ और न नहीं। दोनों ही बातें कठिन हैं। अनु+प्र+पद्+क्त। रदाभ्यां० से द् को न् और त को न। (१०) **अनुष्ठानम्**—कार्य को, आचरण को। मादृशः—मुझ जैसा व्यक्ति। प्रतिषेधतु—मना करे। प्रति+सिध्+लोट् प्र० १।

पाठभेद—३९. का० काले—न्याय्यम्० (न्यायोचित)।

(११) **अभ्यनुजानातु**—स्वीकृति दे, आज्ञा दे। अभि + अनु + ज्ञा + लोट् प्र० १। (१२) **साहसैक०**—साहस—साहस करना ही है, एक—मुख्य, रसाम्—रस या सार जिसमें ऐसी। साहसम् एव एकः रसः यस्यां ताम्, बहु०। (१३) क्षत्रिय का काम है—चुनौती मिलने पर युद्ध करना, अतः इसे रोक नहीं सकता। स्वीकृति देने पर इसके जीवन को संकट है, अतः हाँ करने में भी संकोच हो रहा है। मनु का कथन है—न हन्यात् स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम् (मनु० ७-९१)। चतुर्वर्गचिन्तामणि का कथन है—रथी च रथिना सार्धं पदातिश्च पदातिना। कुञ्जरस्थो गजस्थेन योद्धव्यो भृगुनन्दन॥

४०. चन्द्रकेतुः—यदा तातमिश्रा अपि पितुः प्रियसखं त्वामर्थसंशयेषु पृच्छन्ति तत्किमार्यो विमृशति ?

चन्द्रकेतु—जब कि पूजनीय पिता जी (राम, लक्ष्मण आदि) भी अपने पिता (दशरथ) के प्रिय मित्र आप से ही सन्दिग्ध विषयों में राय लेते हैं तो आप अब क्या विचार कर रहे हैं?

४१. सुमन्त्रः—आयुष्मन्, एवं यथाधर्ममभिमन्यसे।

एष सांग्रामिको न्याय एष धर्मः सनातनः।

इयं हि रघुसिंहानां वीरचारित्रपद्धतिः॥२२॥

अन्वय—एष सांग्रामिकः न्यायः, एष सनातनः धर्मः। हि इयं रघुसिंहानां वीरचारित्रपद्धतिः॥

सुमन्त्र—चिरंजीव, तुम यह क्षात्र धर्म के अनुकूल विचार कर रहे हो।

यही युद्ध का नियम है, यही प्राचीन धर्म है और यही रघुकुल-श्रेष्ठों के वीरोचित आचार की परम्परा है॥२२॥

संस्कृत-व्याख्या

एषः—वीरसत्काररूप आचारः, **सांग्रामिकः**—युद्धसंबन्धी, **न्यायः**—नियमोऽस्ति। **एषः**, **सनातनः**—पुरातनः, **धर्मः**—आचारः। **हि**—यतोहि, **इयं**—त्वदीया कृतिः, **रघुसिंहानां**—रघुकुलश्रेष्ठानाम्, **वीर०**—वीराणां शूराणां चारित्रस्य आचारस्य पद्धतिः परम्परा अस्ति। श्लोको वृत्तम्।

पाठभेद—४१. नि० न्याय्यः (न्यायोचित)।

टिप्पणी

(१) **तातमिश्राः**—पूज्य पिता जी, अर्थात् राम, लक्ष्मण आदि। मिश्र शब्द पूज्य अर्थ में है, हिन्दी के 'जी' के तुल्य आदरार्थ में इसका प्रयोग होता है। इसका सामान्यतया बहुवचनान्त प्रयोग होता है। (२) **प्रियसखम्**—प्रिय मित्र को। प्रियः सखा प्रियसखः तम्, (कर्मधा०)। राजाहः० (५-४-९१) से समासान्त टच् (अ) और सखि के इ का लोप। (३) **अर्थसंशयेषु**—कार्याकार्य के विषय में सन्देह होने पर। अर्थ--प्रयोजन, कार्य और अकार्य। अर्थेषु संशयः, तेषु, तत्पु०। (४) **विमृशति**—सोचते हैं। आप क्या विचार रहे हैं? अर्थात् चिन्ता छोड़कर मुझे स्वीकृति दीजिए। वि+मृश्+लट् प्र० १। (५) **यथाधर्मम्०**—तुम्हारा विचार क्षात्रधर्म के अनुकूल है। यथाधर्मम्—धर्मम् अनतिक्रम्य, अव्ययी०। अभिमन्यसे—समझ रहे हो। अभि+मन्+लट् म० १। (६) **सांग्रामिकः**—युद्धसंबन्धी। संग्रामे भवः, संग्राम+ठक् (इक)। (७) **रघुसिंहानाम्**—श्रेष्ठ रघुवंशियों की। रघवः सिंहा इव रघुसिंहाः तेषाम्, उपमित कर्मधा०। (८) **वीर०**—वीरों के चरित्र का मार्ग है। वीराणां चारित्रस्य पद्धतिः, तत्पु०। चर्+इत्र—चरित्रम्, चरित्रमेव चारित्रम्, स्वार्थ में अण्। पद्धतिः—पद्भ्यां हन्यते इति, पाद+हति। हिमकाषि० (६-३-५४) से पाद को पद्। हति—हन्+क्तिन्।

४२. चन्द्रकेतुः—अप्रतिरूपं वचनमार्यस्य।
इतिहासं पुराणं च धर्मप्रवचनानि च।
भवन्त एव जानन्ति रघूणां च कुलस्थितिम्॥२३॥

अन्वय—भवन्तः एव इतिहासं पुराणं च धर्मप्रवचनानि च रघूणां कुलस्थितिं च जानन्ति।

चन्द्रकेतु—आपका कथन अनुपम है।

आप ही इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र और रघुवंशी राजाओं की कुल-परम्परा को (ठीक ढंग से) जानते हैं॥२३॥

संस्कृत-व्याख्या

भवन्त एव—आर्या सुमन्त्रवर्या एव, इतिहासं—प्राचीनम् ऐतिह्यम्, पुराणं च—पञ्चलक्षणसमन्वितान् पुराणनामकग्रन्थान्, धर्मप्रवचनानि च—धर्माः नित्य-

नैमित्तिकादिकर्माणि प्रोच्यन्ते परिभाष्यन्ते यैस्तानि, मन्वादिधर्मशास्त्राणि, रघूणां—रघुवंशिनां राज्ञाम्, कुलस्थितिं च—वंशमर्यादां च, जानन्ति—याथार्थ्येन अवगच्छन्ति। अत्र तुल्ययोगिताऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अप्रतिरूपम्**—अनुपम, बेजोड़। अविद्यमानं प्रतिरूपं यस्य तत्, बहु०। (२) **धर्म०**—धर्मशास्त्रों का। धर्माः प्रोच्यन्ते यैः तानि, बहु०। जिन ग्रन्थों में धर्म अर्थात् कर्तव्याकर्तव्य का वर्णन है, अर्थात् धर्मशास्त्र। (३) **रघूणाम्**—रघुवंशियों की। रघोः अपत्यानि रघवः, तेषाम्। तद्राजस्य० (२–४–६२) से अपत्य अर्थ में होने वाले अञ् का बहुवचन में लोप हो जाता है। एक० द्विवचन में राघवः राघवौ आदि रूप होते हैं। (४) **कुलस्थितिम्**—कुल की मर्यादा को। कुलस्य स्थितिम्, तत्पु०।(५)इस श्लोक में इतिहास से प्राचीन इतिहास और पुराण शब्द से प्राचीन पुरावृत्त वाले ग्रन्थों का अभिप्राय है। इतिहास का लक्षण है—धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्। पूर्ववृत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥ पुराण का लक्षण है—सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ रामायण और महाभारत अर्थ यहाँ पर लेना उचित नहीं है, क्योंकि ये दोनों ग्रन्थ बाद की रचनाएँ हैं। सुमन्त्र को इनका ज्ञान होना संभव नहीं था। प्राचीन इतिहास और पुराण-ग्रन्थ यहाँ अभिप्रेत हैं। (६) इस श्लोक में इतिहास, पुराण आदि अनेक पदार्थों का एक 'जानन्ति' क्रिया से संबद्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है।

४३. (सस्नेहास्रं परिष्वज्य)

जातस्य ते पितुरपीन्द्रजितो निहन्तु-
र्वत्सस्य वत्स, कति नाम दिनान्यमूनि।
तस्याप्यपत्यमनुतिष्ठति वीरधर्मं
दिष्टचागतं दशरथस्य कुलं प्रतिष्ठाम् ॥२४॥

पाठभेद—४३. का० काले—दिष्टचा गतम् (भाग्य से प्राप्त हुआ है)।

अन्वय—हे वत्स, इन्द्रजितः निहन्तुः वत्सस्य ते पितुः अपि जातस्य अमूनि कति नाम दिनानि? तस्य अपत्यम् अपि वीरधर्मम् अनुतिष्ठति। दिष्ट्या दशरथस्य कुलं प्रतिष्ठाम् आगतम् ।।

सुमन्त्र--(स्नेह और आनन्दाश्रु के साथ गले लगाकर)

हे वत्स, इन्द्रजित् मेघनाद को मारने वाले, प्रिय तुम्हारे पिता (लक्ष्मण) को भी उत्पन्न हुए अभी कुल कितने दिन हुए हैं? उस (लक्ष्मण) के पुत्र (तुम) भी वीरोचित धर्म (युद्ध) का पालन कर रहे हो। (इससे स्पष्ट है कि) भाग्य से महाराज दशरथ का कुल प्रतिष्ठा को प्राप्त हो गया है।।२४।।

संस्कृत-व्याख्या

हे वत्स--हे प्रिय चन्द्रकेतो, इन्द्रजितः—इन्द्रस्य जेतुः, रावणपुत्रस्य मेघनादस्येत्यर्थः, निहन्तुः—नाशकस्य, वत्सस्य—प्रेमपात्रस्य, ते—तव चन्द्रकेतोः, पितुः अपि--जनकस्य लक्ष्मणस्यापि, जातस्य—उत्पन्नस्य, अमूनि—एतानि, कति नाम दिनानि--कति दिनानि व्यतीतानि? अर्थात् लक्ष्मणोऽपि मम दृष्ट्या स्वल्पायुरेवास्तीत्यर्थः, तस्य--लक्ष्मणस्य, अपत्यम् अपि—पुत्रोऽपि, वीरधर्मं—शूरोचितं कर्म, अनुतिष्ठति--प्रारभते, करोतीत्यर्थः। दिष्ट्या—सौभाग्येन, दशरथस्य—महाराजदशरथस्य, कुलं—वंशः, प्रतिष्ठां—गौरवम्, आगतं—प्राप्तम्। अत्र काव्यलिङ्गमलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **सस्नेहास्रम्**—स्नेह और आनन्दजन्य आँसुओं के साथ। स्नेहश्च अस्रं च (द्वन्द्व), ताभ्यां सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। परिष्वज्य—आलिंगन करके, गले लगाकर। परि+स्वञ्ज्+ल्यप्। (२) **इन्द्रजितः**—इन्द्र को जीतने वाले मेघनाद के। इन्द्रं जयतीति इन्द्रजित् तस्य, इन्द्र+जि+क्विप् (०)। त् का आगम। मेघनाद ने इन्द्र को जीता था, अतः उसका नाम इन्द्रजित् है। (३) **निहन्तुः**—मारने वाले। नि+हन्+तृच्+ष० १। (४) **कति दिनानि०**—तुम्हारे पिता को ही उत्पन्न हुए अभी कितने दिन हुए हैं? सुमन्त्र का अभिप्राय है कि मेरी दृष्टि में तुम और तुम्हारे पिता लक्ष्मण दोनों ही बहुत थोड़ी आयु के हैं। (५) **अनुतिष्ठति**--आचरण करता है, पालन करता है। अनु+स्था+

लट् प्र० १। (६) **वीरधर्मम्**—वीरों के धर्म अर्थात् युद्ध का। वीराणां धर्मम्, तत्पु०। (७) **दिष्टचा**—भाग्य से। आगतम्—प्राप्त हुआ है। (८) **दशरथस्य०**—दशरथ का कुल अब प्रतिष्ठित हो गया है। (९) इस श्लोक में वीर-धर्म का अनुष्ठान कुल-प्रतिष्ठा का कारण है, अतः काव्यलिंग अलंकार है।

४४. चन्द्रकेतुः—(सकष्टम्)

अप्रतिष्ठे कुलज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य नः।
इति दुःखेन तप्यन्ते त्रयो नः पितरोऽपरे ॥२५॥

अन्वय—कुलज्येष्ठे अप्रतिष्ठे (सति) नः कुलस्य का प्रतिष्ठा? इति दुःखेन नः अपरे त्रयः पितरः तप्यन्ते ॥

चन्द्रकेतु—(कष्ट के साथ)

कुल में ज्येष्ठ (राम) के (सन्तानहीनता के कारण) वंश के प्रतिष्ठित न होने पर हमारे कुल की क्या प्रतिष्ठा है? इसी दुःख से हमारे अन्य तीन पिता (भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न) दुःखित रहते हैं ॥२५॥

संस्कृत-व्याख्या

कुलज्येष्ठे—रघुकुले ज्येष्ठे, रामचन्द्रे इत्यर्थः, अप्रतिष्ठे—सन्तत्यभावेन प्रतिष्ठारहिते सति, नः—अस्माकम्, कुलस्य—वंशस्य, का प्रतिष्ठा—का स्थितिः, न काऽपि प्रतिष्ठा वर्तत इत्यर्थः। इति—एवंप्रकारेण, दुःखेन—सन्तापेन, नः—अस्माकम्, अपरे—अन्ये, त्रयः—त्रिसंख्याकाः, पितरः—पितृवर्याः, भरतलक्ष्मण-शत्रुघ्ना इत्यर्थः, तप्यन्ते—सन्तापमनुभवन्ति। अत्रार्थापत्तिरलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अप्रतिष्ठे**—प्रतिष्ठा से रहित होने पर। राम के सन्तान नहीं है, अतः उनका कुल अप्रतिष्ठित (स्थायित्वरहित) है। जब बड़े भाई का ही वंश प्रतिष्ठित नहीं तो छोटों के वंश के प्रतिष्ठित होने से क्या लाभ? अविद्यमाना प्रतिष्ठा यस्य, तस्मिन्, बहु०। (२) **कुलज्येष्ठे**—कुल में ज्येष्ठ राम के। कुले

पाठभेद—४४. का०—रघुज्येष्ठे (रघुकुल में ज्येष्ठ राम के)।

ज्येष्ठः, तस्मिन्, तत्पु०। (३) तप्यन्ते—सन्तप्त हैं, दुःखित हैं। तप्+कर्मवाच्य लट् प्र० ३। (४) पितरः ०—अन्य तीन पिता अर्थात् भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न दुःखित रहते हैं कि बड़े भाई राम की कोई सन्तान नहीं है और उनका वंश नष्ट हो रहा है। (५) का प्रतिष्ठा का भाव है कि कोई प्रतिष्ठा नहीं है, अतः अर्थापत्ति होने से अर्थापत्ति अलंकार है।

४५. सुमन्त्रः—अहह, हृदयमर्मदारणान्येव चन्द्रकेतोर्वचनानि।

सुमन्त्र—ओह, चन्द्रकेतु के ये वचन हृदय के मर्मस्थल को विदीर्ण करने वाले हैं।

४६. लवः—हन्त, मिश्रीकृतक्रमो रसो वर्तते-

यथेन्दावानन्दं व्रजति समुपोढे कुमुदिनी

तथैवास्मिन्दृष्टिर्मम कलहकामः पुनरयम्।

रणत्कारक्रूरक्वणितगुणगुञ्जद्गुरुधनु-

र्धृतप्रेमा बाहुर्विकचविकरालव्रणमुखः ॥२६॥

अन्वय—यथा इन्दौ समुपोढे (सति) कुमुदिनी आनन्दं व्रजति। तथा एव अस्मिन् मम दृष्टिः (आनन्दं व्रजति)। रणत्कारक्रूरक्वणितगुणगुञ्जद्गुरुधनुर्धृतप्रेमा विकचविकरालव्रणमुखः अयं (मम) बाहुः पुनः कलहकामः।

लव—ओह, (वात्सल्य और वीर) रसों का क्रम मिश्रित हो गया है (अर्थात् दोनों रसों का मिश्रण हो गया है)।

जिस प्रकार चन्द्रमा के उदित होने पर कुमुदिनी आनन्दित (विकसित) होती है, उसी प्रकार इस कुमार को देखकर मेरी दृष्टि आनन्दित हो रही है। (किन्तु) रणत् (रन-रन) इस प्रकार के शब्द से कठोर झंकार-युक्त प्रत्यंचा से गूँजते हुए महाधनुष से प्रेम करने वाली और जिसके अगले भाग में स्पष्ट एवं भयावह घाव हैं, ऐसी यह मेरी भुजा तो युद्ध की इच्छुक है।।२६।।

पाठभेद—४६. काले—टणत्कार० (टन की ध्वनि से युक्त)। का० काले—विकरालोल्बणरसः (भीषण वीर रस वाला)

संस्कृत-व्याख्या

यथा—यद्वत्, इन्दौ—चन्द्रे, समुपोढे सति—उदिते सति, कुमुदिनी—कुमुद्वती, आनन्दं—विकासम्, व्रजति—प्राप्नोति, तथा एव—तेनैव प्रकारेण, अस्मिन्—चन्द्रकेतौ, मम—लवस्य, दृष्टिः—लोचनम्, आनन्दं व्रजति—आनन्दं लभते। रणत्कार०—रणत्कारेण रणद् इति शब्देन क्रूरं निष्ठुरं क्वणितं निनादः यस्य तादृशः यः गुणः मौर्वी तेन गुञ्जत् शब्दं कुर्वत् यद् गुरुधनुः महत्कार्मुकं तस्मिन् धृतं स्थापितं प्रेम स्नेहः येन सः, विकच०—विकचानि स्फुटानि विकरालानि भयावहानि व्रणानि क्षतचिह्नानि मुखे अग्रभागे यस्य सः, अयम्—एषः, मम—लवस्य, बाहुः पुनः—भुजस्तु, कलहकामः—युद्धाभिलाषी वर्तते। अत्र विषममुपमा चालंकारौ। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **हृदय०**—हृदय के मर्मस्थल को भेदन करने वाले। हृदयस्य मर्माणां दारणानि, तत्पु०। (२) **मिश्रीकृत०**—मिश्रीकृत—मिला हुआ या मिश्रित है, क्रमः—क्रम जिसका। अमिश्रः मिश्रः कृतः मिश्रीकृतः। अभूततद्भाव में च्वि, अ को ई। मिश्रीकृतः क्रमः यस्य सः, बहु०। एक ओर चन्द्रकेतु को देखकर प्रेम उत्पन्न हो रहा है, दूसरी ओर उससे लड़ने की इच्छा से वीर रस उत्पन्न हो रहा है, इस प्रकार वात्सल्य और वीर रसों का संमिश्रण हो रहा है। (३) **समुपोढे**—उदय होने पर। समुपोढ—सम्+उप+वह्+क्त। संप्रसारण होकर वह्+क्त का ऊढ रूप बनता है। (४) **कलहकामः**—युद्ध का इच्छुक। कलहे कामः यस्य सः, बहु०। (५) **रणत्०**—रणत्कार—रन-रन शब्द से, क्रूर—कठोर, क्वणित—शब्द वाली, गुण—प्रत्यंचा से, गुञ्जत्—गूँजते हुए, गुरुधनुः—विशाल धनुष से, धृतप्रेमा—प्रेम करने वाली भुजा। रणत्कारेण क्रूरं क्वणितं यस्य सः (बहु०), तादृशः गुणः, तेन गुञ्जत् यद् गुरुधनुः, तस्मिन् धृतं प्रेम येन सः, बहु०। क्वणित—क्वण्+क्त। गुञ्जत्—गुञ्ज्+शतृ। (६) **विकच०**—विकच—स्पष्ट दीखने वाले और, विकराल—भयंकर, व्रण—घाव, मुखः—जिसके अग्रभाग में हैं, ऐसी भुजा। विकचानि विकरालानि व्रणानि मुखे यस्य सः, बहु०। (७) पूर्वार्ध में वात्सल्य रस के अनुकूल कोमल वर्णों का प्रयोग है तथा प्रसाद गुण है और उत्तरार्ध में वीर रस के अनुकूल कठोर वर्णों का प्रयोग है तथा ओज

गुण है। (८) विरूप वात्सल्य और वीर रस के एकत्र रखने से विषम अलंकार है। प्रथम पंक्ति में यथा के द्वारा उपमा है।

४७. चन्द्रकेतुः—(अवतरणं निरूपयन्) आर्य, अयमसावैक्ष्वाकश्चन्द्रकेतुरभिवादयते।

चन्द्रकेतु—(उतरने का अभिनय करते हुए) आर्य, यह इक्ष्वाकुवंशी चन्द्रकेतु आपको प्रणाम करता है।

४८. सुमन्त्रः—अहितस्यैव पुनः पराभवाय महानादिवराहः कल्पताम्। अपि च—

देवस्त्वां सविता धिनोतु समरे गोत्रस्य यस्ते पति-
स्त्वां मैत्रावरुणोऽभिनन्दतु गुरुर्यस्ते गुरूणामपि।
ऐन्द्रावैष्णवमाग्निमारुतमथो सौपर्णमोजोऽस्तु ते
देयादेव च रामलक्ष्मणधनुर्ज्याघोषमन्त्रो जयम् ॥२७॥

अन्वय—यः ते गोत्रस्य पतिः (सः) देवः सविता समरे त्वां धिनोतु, यः ते गुरूणाम् अपि गुरुः (सः) मैत्रावरुणः त्वाम् अभिनन्दतु। ऐन्द्रावैष्णवम् आग्निमारुतम् अथो सौपर्णम् ओजः ते अस्तु। रामलक्ष्मणधनुर्ज्याघोषमन्त्रः च जयं देयात् एव।

सुमन्त्र—(तुम्हारे) शत्रु की पराजय के लिए महान् आदिवराह (वराहावतार विष्णु) पुनः प्रादुर्भूत हों। और भी—

जो तुम्हारे वंश का प्रवर्तक है, वह सूर्य देव युद्ध में तुम्हें प्रसन्न रखे। जो तुम्हारे पूर्वजों के भी गुरु हैं, वह महर्षि वसिष्ठ तुम्हारा अभिनन्दन करें। इन्द्र और

पाठभेद—४८. काले—अहितस्यैव० इति गद्यभागस्य स्थाने श्लोकः पठ्यते। 'अर्जितं पुण्यमूर्जस्वि ककुत्स्थस्येव ते महः। श्रेयसे शाश्वतो देवो वराहः परिकल्पताम्'। (पुरातन वराह देव तेरे कल्याण के लिए तुझे ककुत्स्थ के तुल्य अजेय, पवित्र और बलिष्ठ तेज प्रदान करे)। का० काले—पिता (पिता)। नि० ओजस्तु ते (तुझे तेज प्राप्त हो)।

विष्णु का, अग्नि और वायु का तथा गरुड का तेज तुम्हें प्राप्त हो। राम और लक्ष्मण के धनुष की प्रत्यंचा का शब्दरूपी मन्त्र तुम्हें विजय प्रदान करे।।२७।।

संस्कृत-व्याख्या

यः—सूर्यः, ते—तव चन्द्रकेतोः, गोत्रस्य—वंशस्य, पतिः—स्वामी, प्रवर्तक इत्यर्थः, स देवः—भगवान्, सविता—सूर्यः, समरे—युद्धे, त्वां—चन्द्रकेतुम्, धिनोतु—प्रीणयतु। यः—वसिष्ठः, ते—चन्द्रकेतोः, गुरूणाम् अपि—पूर्वजानां पित्रादीनामपि, गुरुः—आचार्यः, सः, मैत्रावरुणः—मित्रावरुणयोः पुत्रः, महर्षिर्वसिष्ठ इत्यर्थः, त्वां—चन्द्रकेतुम्, अभिनन्दतु—आशीर्भिः वर्धयतु। ऐन्द्रावैष्णवम्—इन्द्रसंबन्धि विष्णुसंबन्धि च, आग्निमारुतम्—अग्नि-संबन्धि वायुसंबन्धि च, अथो—अथ च, सौपर्णम्—गरुडसंबन्धि च, ओजः—तेजः, ते—चन्द्रकेतोः, अस्तु—भवेत्। राम०—रामलक्ष्मणयोः धनुषः चापस्य ज्यायाः मौर्व्याः घोषः शब्दः स एव मन्त्रः स च, जयं—विजयम्, देयात् एव—नूनं वितरतु। अत्र निदर्शना रूपकं चालंकारौ। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अहितस्य०**—शत्रु की पराजय के लिए। (२) **आदिवराहः**—आदि वराह या वराहावतार प्रकट हों। अन्तर्गत कथा यह है—प्राचीन समय में हिरण्याक्ष पृथ्वी को समुद्र में ले गया था। उस समय विष्णु ने वराह का अवतार लेकर हिरण्याक्ष को मारा और पृथ्वी का उद्धार किया। विष्णु का सबसे पहला मुख्य अवतार वराह रूप में माना जाता है, अतः उसे आदि-वराह संज्ञा दी गई है। इसको वराहावतार या शूकरावतार भी कहते हैं। यहाँ पर आदिवराह के उल्लेख का अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार वराह ने राक्षसों का संहार किया और पृथ्वी का उद्धार करके महाकल्याण किया, उसी प्रकार अब भी शत्रुओं का संहार करे। (३) **धिनोतु**—प्रसन्न रखे। धिन्व्+लोट् प्र० १। धिन्वि० (३-१-८०) से व् को अ, उ विकरण, अ का लोप। (४) **गोत्रस्य०**—तुम्हारे वंश का पति (स्वामी, प्रवर्तक) सूर्य। (५) **मैत्रावरुणः**—मित्रावरुण के पुत्र वसिष्ठ। मित्रश्च वरुणश्च मित्रावरुणौ, द्वन्द्व। देवताद्वन्द्वे च (६-३-२६) से आनङ् होकर मित्र को मित्रा होगा। मित्रावरुणयोः अपत्यम्, मित्रावरुण+अण्। ऋग्वेद

में वसिष्ठ को मित्र और वरुण का पुत्र कहा गया है। उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठो-र्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधिजातः (ऋग्० ७-३३-११)। (६) **गुरूणाम्०**—जो वसिष्ठ तुम्हारे गुरुओं के भी गुरु अर्थात् पूर्वजों के भी गुरु हैं। (७) **ऐन्द्रा०**—इन्द्र और विष्णु का। इन्द्रश्च विष्णुश्च, इन्द्राविष्णू, देवताद्वन्द्वे० (६-३-२६) से आनङ्, तयोः इदम्, इन्द्राविष्णू+अण्। देवताद्वन्द्वे च (७-३-२१) से उभय-पदवृद्धि। (८) **आग्निमारुतम्**—अग्नि और मरुत् (वायु) का। अग्निश्च मरुच्च अग्नामरुतौ, द्वन्द्व। देवताद्वन्द्वे० से आनङ। अग्नामरुतोः इदम्, अग्नामरुत्+अण्। देवताद्वन्द्वे० (७-३-२१) से उभयपद वृद्धि और इद्वृद्धौ (६-३-२८) से ग्ना के आ को इ होकर आग्निमारुत रूप बनता है। (९) **सौपर्णम्**—गरुड का। सुपर्णस्य इदम्, सुपर्ण+अण्। सुपर्ण गरुड का नाम है। उसकी माता का नाम विनता था। गरुड विष्णु का वाहन था। (१०) **देयात्**—देवे। दा+आशीर्लिङ् प्र० १। एर्लिङि (६-४-६७) से आ को ए। (११) **राम०**—राम और लक्ष्मण के धनुष की प्रत्यंचा का शब्दरूपी मन्त्र। रामश्च लक्ष्मणश्च (द्वन्द्व), तयोः धनुषः ज्यायाः घोषः (तत्पु०), स एव मन्त्रः, कर्मधा०। (१२) इस श्लोक में ज्याघोष को मन्त्र कहने में असंभद्वस्तु-संबन्धरूपी निदर्शना है और ज्याघोषरूपी मंत्र अर्थ होने से रूपक है।

४९. लवः—अतीव नाम शोभसे रथस्थ एव। कृतं कृतमत्यादरेण।

लव—आप रथ पर बैठे हुए ही बहुत अच्छे लगते हैं। अधिक संमान-प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं है।

५०. चन्द्रकेतुः—तर्हि महाभागोऽप्यन्यं रथमलंकरोतु।

चन्द्रकेतु—तो आप भी दूसरे रथ को अलंकृत करें।

५१. लवः—आर्य, प्रत्यारोपय रथोपरि राजपुत्रम्।

लव—आर्य (सुमन्त्र), आप राजकुमार को रथ पर बैठाइए।

५२. सुमन्त्रः—त्वमप्यनुरुध्यस्व वत्सस्य चन्द्रकेतोर्वचनम्।

सुमन्त्र—तुम भी वत्स चन्द्रकेतु की बात मान लो।

५३. लवः—को विचारः स्वेषूपकरणेषु? किं त्वरण्यसदो वयमनभ्यस्तरथचर्याः।

लव—अपने साधनों (रथ आदि) के विषय में विचार करने की क्या आवश्यकता है? किन्तु वनवासी हम लोग रथ के उपयोग के अभ्यस्त नहीं हैं।

५४. सुमन्त्रः—जानासि वत्स, दर्पसौजन्ययोर्यदाचरितम्। यदि पुनस्त्वामीदृशमैक्ष्वाको राजा रामभद्रः पश्येत्तदा तस्य स्नेहेन हृदयमभिष्यन्देत।

सुमन्त्र—वत्स, तुम अभिमान और सौजन्य के आचरण को (भली भाँति) जानते हो। यदि इस प्रकार के (सौम्य-स्वभाव) तुम्हें इक्ष्वाकुवंशी राजा रामचन्द्र देखते तो प्रेम से उनका हृदय द्रवित हो जाता।

टिप्पणी

(१) **कृतम्०**—बस करो। कृतम् अलम् के अर्थ में है। अतएव आदरेण में तृतीया है। (२) **अलंकरोतु**—शोभित करें। अलम्+कृ+लोट् प्र० १। (३) **प्रत्यारोपय**—चढ़ा लो, बैठा लो। प्रति+आ+रुह्+णिच्+लोट् म० १। रुहः पोऽ० (७–३–४३) से ह् को प्। (४) **रथोपरि**—रथ के ऊपर। रथस्य उपरि, तत्पु०। (५) **अनुरुध्यस्व**—मान लो, स्वीकार कर लो। अनु+रुध्+लोट् म० १। (६) **स्वेषूपकरणेषु**—अपने साधनों के बारे में विचार की क्या आवश्यकता? लव का अभिप्राय है कि श्लोक १० में चन्द्रकेतु ने कहा था कि जो मेरा है, वह तेरा है। अतः चन्द्रकेतु के रथ आदि भी मेरे ही समझो। अपनी वस्तु का उपयोग करूँ या न करूँ, इसके लिए आग्रह की आवश्यकता नहीं है। (७) **अरण्यसदः**—जंगल में रहने वाले। अरण्ये सीदन्ति इति ते, अरण्य+सद्+क्विप् (०)+प्र० ३। (८) **अनभ्यस्त०**—अनभ्यस्त—नहीं अभ्यास किया है, रथचर्या—रथ का उपयोग जिन्होंने। न अभ्यस्ता रथचर्या यैः ते, बहु०। अभ्यस्त—अभि+अस्+क्त। चर्या—चर्+श (अ)+टाप्। स्त्रीलिंग भाव में श। (९) **दर्प०**—अभिमान और सज्जनता के। दर्पश्च सौजन्यं च तयोः, द्वन्द्व।

सौजन्य—सुजनस्य भावः, सुजन+ष्यञ्। (१०) अभिष्यन्देत—पिघल जाता, द्रवित हो जाता। अभि+स्यन्द्+विधिलिङ प्र० १।

५५. लवः—आर्य, सुजनः स राजर्षिः श्रूयते। (सलज्जमिव)

वयमपि न खल्वेवंप्राया: क्रतुप्रतिघातिनः
क इह न गुणैस्तं राजानं जनो बहु मन्यते।
तदपि खलु मे स व्याहारस्तुरङ्गमरक्षिणां
विकृतिमखिलक्षत्राक्षेपप्रचण्डतयाकरोत् ॥२८॥

अन्वय—वयम् अपि खलु एवंप्रायाः क्रतुप्रतिघातिनः न, इह कः जनः गुणैः तं राजानं न बहु मन्यते? तदपि खलु तुरङ्गमरक्षिणां स व्याहारः अखिलक्षत्राक्षेपप्रचण्डतया मे विकृतिम् अकरोत्।

लव—आर्य (सुमन्त्र), सुनते हैं कि वह राजर्षि (रामचन्द्र) सज्जन हैं। (लज्जित सा होकर)

हम भी वस्तुतः कोई ऐसे यज्ञ-विध्वंसक नहीं हैं (जो अश्वमेध के घोड़े का अपहरण करें)। इस संसार में कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो गुणों के कारण उस राजा (राम) का बहुत अधिक आदर नहीं करता है? तथापि वस्तुतः अश्वरक्षकों के उस कथन (योऽयमश्वः० ४–२७) ने समस्त क्षत्रियों के अपमान के कारण उत्तेजक होने से मुझे विकृत (क्रोधयुक्त) कर दिया॥२८॥

संस्कृत-व्याख्या

वयम् अपि—अहं लवोऽपि, खलु—निश्चयेन, एवंप्रायाः—एतादृशाः, क्रतुप्रतिघातिनः—यज्ञविध्वंसकाः, न—न सन्ति। इह—अस्मिन् लोके, कः जनः—को नरः, गुणैः—सद्गुणैः, तं राजानं—तं नृपं रामचन्द्रम्, न—नहि, बहु

पाठभेद—५५. नि० यदि च वयमप्येवंप्राया: क्रतुद्विषतामरौ (यद्यपि हम भी यज्ञों के द्वेषी राक्षसों के नाशक राम के प्रति इसी प्रकार प्रेम करने वाले हैं)। नि० क इव (कौन)

मन्यते—अतीव सत्करोति । तदपि—तथापि, खलु—निश्चयेन, तुरङ्गमरक्षिणाम्—अश्वरक्षकाणाम्, सः—अयमश्व० इत्यादि, व्याहारः—कथनम्, अखिल०—अखिलानां सर्वेषां क्षत्राणां क्षत्रियाणाम् आक्षेपेण अपमानेन प्रचण्डतया उद्दीपकत्वात्, मे—मम लवस्य, विकृतिं—विकारम्, क्रोधमित्यर्थः, अकरोत्—व्यदधात्। अत्रार्थापत्तिरप्रस्तुतप्रशंसा चालंकारौ। हरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **सलज्जम्०**—लज्जित सा होकर। लव के लज्जा का कारण है राम के अश्वमेध में विघ्न डालना। लज्जया सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (२) **एवंप्रायाः**—प्रायः इस प्रकार के। प्रायेण एवंविधाः एवंप्रायाः, सह सुपा से समास। (३) **क्रतु०**—क्रतु—यज्ञ को, प्रतिघातिनः—नष्ट करने वाले। क्रतुं प्रतिघ्नन्ति इति तच्छीलाः, क्रतु+प्रति+हन्+णिनि (इन्)+प्र० ३। स्वभाव अर्थ में णिनि। (४) **गुणैः**—गुणों के कारण। हेतु अर्थ में तृतीया। (५) **व्याहारः**—कथन, वचन। योऽयमश्वः० (४–२७) सैनिकों का यह कथन। वि+आ+हृ+घञ्। (६) **तुरङ्गम०**—घोड़े के रक्षकों का। तुरंगमं रक्षन्ति इति तेषाम्, ० रक्ष्+णिनि+ष० ३। तच्छील अर्थ में णिनि। (७) **विकृतिम्**—विकार को, क्रोध को। वि+कृ+क्तिन्+द्वि० १। (८) **अखिल०**—अखिल—समस्त, क्षत्र—क्षत्रियों के, आक्षेप—तिरस्कार या अपमान के कारण, प्रचण्डतया—उत्तेजक होने से। अखिलाः क्षत्राः (कर्मधा०), तेषाम् आक्षेपेन प्रचण्डतया, तत्पु०। आक्षेप—आ+क्षिप्+घञ्। प्रचण्डस्य भावः प्रचण्डता, तया। भाव अर्थ में ता। (९) योऽयमश्वः० कथन के द्वारा तुम्हारे अश्वरक्षकों ने सारे क्षत्रियों का अपमान किया, अतः मुझे क्रोध आया। (१०) द्वितीय पंक्ति में क इह न० में अर्थापत्ति से भाव है कि सभी राम का आदर करते हैं। अतः अर्थापत्ति अलंकार है। चतुर्थ पंक्ति में क्रोध का कारण बताया गया है, उससे अश्वहरणरूपी कार्य का बोध होता है। कारण से कार्य का बोध होने से अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है।

५६. चन्द्रकेतुः—किं नु भवतस्तातप्रतापोत्कर्षेऽप्यमर्षः ?

चन्द्रकेतु--क्या आपको तात (रामचन्द्र) के प्रताप के उत्कर्ष पर भी क्रोध आता है?

५७. (क) लवः---अस्त्विहामर्षो मा भूद् वा। अन्यदेतत्पृच्छामि---दान्तं हि राजानं राघवं शृणुमः। स किल नात्मना दृप्यति, नाप्यस्य प्रजा वा दृप्ता जायन्ते। तत्किं मनुष्यास्तस्य राक्षसीं वाचमुदीरयन्ति?

ऋषयो राक्षसीमाहुर्वाचमुन्मत्तदृप्तयोः।
सा योनिः सर्ववैराणां सा हि लोकस्य निष्कृतिः ॥२६॥

इति ह स्म तां निन्दन्ति।

अन्वय—ऋषयः उन्मत्तदृप्तयोः वाचं राक्षसीं (वाचम्) आहुः। सा सर्ववैराणां योनिः, सा हि लोकस्य निष्कृतिः॥

लव--क्रोध आवे या न आवे। मैं आपसे एक और बात पूछना चाहता हूँ--हम सुनते हैं कि राजा राम शान्त-दान्त (क्रोधादि से रहित) व्यक्ति हैं। वे न स्वयं गर्व करते हैं और न उनकी प्रजा ही गर्व करती है। तो फिर उनके व्यक्ति क्यों राक्षसी (दर्पपूर्ण) वाणी बोलते हैं?

ऋषि लोग उन्मत्त और गर्वयुक्त मनुष्यों की वाणी को राक्षसी वाणी कहते हैं। वह सारे झगड़ों की जड़ है और वही लोगों के तिरस्कार का कारण है॥२६॥ अत एव उसकी निन्दा करते हैं।

संस्कृत-व्याख्या

ऋषयः—मुनयः, उन्मत्त०—उन्मत्तस्य विक्षिप्तस्य दृप्तस्य गर्वितस्य तयोः, वाचं—वाणीम्, राक्षसीं वाचं—राक्षसजनोचितां वाणीम्, आहुः—वदन्ति। सा—राक्षसी वाक्, सर्ववैराणां—सर्वकलहानाम्, योनिः—कारणम् अस्ति, सा हि—सा राक्षसी वागेव, लोकस्य—जनस्य, निष्कृतिः—तिरस्कारकारणम् अस्ति। अत्र रूपकमलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

पाठभेद—५७ (क)—का० काले—निर्ऋतिः (अलक्ष्मी है)।

टिप्पणी

(१) तात०—तात—पितृतुल्य राम के, प्रताप—प्रताप के, उत्कर्षे—गौरव में। रामस्य प्रतापस्य उत्कर्षे, तत्पु०। अमर्षः—क्रोध। क्या तुम राम का गौरव भी नहीं सुन सकते? (२) अस्त्विह०—क्रोध आवे या न आवे, इससे तुम्हें क्या लेना है? (३) दान्तम्—क्रोध आदि को वश में करने के कारण दम-गुण से युक्त। दम्+क्त। (४) दृप्यति—गर्व करते हैं। दृप्+लट् प्र० १। दृप्ताः—गर्वयुक्त। (५) राक्षसीम्०—राक्षसोचित वाणी को। रक्षसाम् इयम्, ताम्, रक्षस्+अण्+ङीप् द्वि० १। (६) उदीरयन्ति—कहते हैं, बोलते हैं। उत्+ईर्+णिच्+लट् प्र० ३। (७) उन्मत्त०—उन्मत्त—पागल और, दृप्तयोः—गर्वयुक्त की। उन्मत्तश्च दृप्तश्च तयोः, द्वन्द्व। (८) योनिः—कारण। सर्ववैराणाम्—सारे झगड़ों की। सर्वाणि वैराणि तेषाम्, कर्मधा०। (९) लोकस्य—संसार की, लोगों की। लोक का अर्थ लोग, जनसाधारण भी है। (१०) निष्कृतिः—पराभव या तिरस्कार का कारण। निष्कृति का अर्थ उऋण होना, हटाना भी है। निर्+कृ+क्तिन्। (११) वाणी को निष्कृति बताया गया है, अतः रूपक अलंकार है।

५७. (ख) अथैतरामभिष्टुवन्ति—

कामं दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं
कीर्तिं सूते दुर्हृदो निष्प्रलाति।
शुद्धां शान्तां मातरं मङ्गलानां
धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः ॥३०॥

अन्वय—(दैवी वाक्) कामं दुग्धे, अलक्ष्मीं विप्रकर्षति, कीर्तिं सूते, दुर्हृदः निष्प्रलाति। (अतः) धीराः शुद्धां शान्तां मङ्गलानां मातरं सूनृतां वाचं धेनुम् आहुः॥

पाठभेद—५७ (ख)—काले—कामान् (कामनाओं को)। का० काले—दुष्कृतं या हिनस्ति (जो पापों को नष्ट करती है)। का० काले—तां चाप्येतां मातरं० (ऐसी इस कल्याणों को जन्म देने वाली को)।

लव—(ऋषि लोग) दूसरी (दैवी) वाणी की प्रशंसा करते हैं—

(दैवी वाणी) मनुष्य की कामनाओं को पूर्ण करती है, उसकी अलक्ष्मी (दुर्भाग्य) को दूर करती है, यश को उत्पन्न करती है और शत्रुओं को नष्ट करती है। अत एव विद्वान् लोग पवित्र, शान्त और सौभाग्य को उत्पन्न करने वाली सूनृत (सत्य और प्रिय) वाणी को कामधेनु कहते हैं ॥३०॥

संस्कृत-व्याख्या

दैवी वाक्—सूनृता वाणी, कामं—मनोरथम्, दुग्धे—पूरयति, अलक्ष्मीं—दुर्भाग्यम्, विप्रकर्षति—अपनयति, कीर्तिं—यशः, सूते—जनयति, दुर्हृदः—शत्रून्, निष्प्रलाति—विनाशयति। अतः, धीराः—विद्वांसः, शुद्धां—पवित्राम्, शान्तां—कोमलाम्, मङ्गलानां—कल्याणानाम्, मातरं—जन्मदात्रीम्, सूनृतां—सत्य-प्रियगुणोपेताम्, वाचं—वाणीम्, धेनुं—कामधेनुम्, आहुः—वदन्ति। अत्र दीपकं निदर्शना चालंकारौ। शालिनी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **इतराम्**—दूसरी को, अर्थात् दैवी वाणी को। (२) **अभिष्टुवन्ति**—प्रशंसा करते हैं। अभि+स्तु+लट् प्र० ३। (३) **कामम्**—कामनाओं को, मनोरथों को। दुग्धे—दुहती है अर्थात् पूरा करती है। दुह्+लट् आ० प्र० १। (४) **विप्रकर्षति**—हटाती है, दूर करती है। वि+प्र+कृष्+लट् प्र० १। अलक्ष्मीम्—अकल्याण या अशुभ को। (५) **सूते**—उत्पन्न करती है, जन्म देती है। सू+लट् प्र० १। (६) **दुर्हृदः**—शत्रुओं को। दुर्+हृदय=दुर्हृद्। सुहृद्दुर्हृदौ० (५-४-१५०) से हृदय को हृद् आदेश। दुष्टं हृदयं यस्य सः, बहु०। (७) **निष्प्रलाति**—नष्ट करती है। निस्+प्र+ला+लट् प्र० १। (८) **मातरं०**—दैवी वाणी मंगलों को जन्म देने वाली है। (९) **धेनुम्०**—विद्वान् दैवी वाणी को धेनु अर्थात् कामधेनु कहते हैं। कामधेनु अभीष्ट को पूर्ण कर देती है, इसी प्रकार दैवी वाणी सभी मनोरथों को पूर्ण करती है। (१०) **सूनृतां०**—सूनृत वाणी को। प्रिय और सत्य वाणी को सूनृत कहते हैं। प्रियं च सत्यं च वचो हि सूनृतम्। (११) इस श्लोक की शब्दावली निरुक्त के निम्न वाक्य से ली गई प्रतीत होती है—नास्मै कामान् दुग्धे····यो वाचं श्रुतवान् भवत्यफलामपुष्पाम् (निरुक्त १-२०)। (१२) इस श्लोक में सूनृत वाणी का दुग्धे, विप्रकर्षति,

सूते आदि अनेक क्रियाओं में अन्वय होने से दीपक अलंकार है। सूनृत वाणी का धेनु या कामधेनु से सादृश्य बताने से असंभवद्वस्तुसंवन्धरूपी निदर्शना है।

५८. सुमन्त्रः——परिभूतोऽयं बत कुमारः प्राचेतसान्तेवासी। वदत्ययमभ्युपपन्नामर्षेण संस्कारेण।

सुमन्त्र——खेद की बात है कि यह महर्षि वाल्मीकि का शिष्य कुमार तिरस्कृत हो रहा है (हार गया है), क्योंकि यह क्रोधपूर्ण भावना से बोल रहा है।

५९. लवः——यत्पुनश्चन्द्रकेतो, वदसि 'किं नु भवतस्तातप्रतापोत्कर्षेऽप्यमर्ष' इति तत्पृच्छामि——किं व्यवस्थितविषयः क्षत्रधर्म इति।

लव——हे चन्द्रकेतु, आप जो यह कह रहे थे कि——'क्या आपको तात राम के प्रताप के उत्कर्ष पर भी क्रोध आता है ? तो उस विषय में मैं पूछता हूँ कि 'क्या क्षत्रिय धर्म किसी व्यक्ति-विशेष में नियमित है ?'

६०. सुमन्त्रः——नैव खलु जानासि देवमैक्ष्वाकं येनैवं वदसि। तद् विरमातिप्रसङ्गात्।

सैनिकानां प्रमाथेन सत्यमोजायितं त्वया।
जामदग्न्यस्य दमने न हि निर्बन्धमर्हसि ॥३१॥

अन्वय—सत्यं सैनिकानां प्रमाथेन त्वया ओजायितम्। जामदग्न्यस्य दमने निर्बन्धं न हि अर्हसि ॥

सुमन्त्र——तुम इक्ष्वाकुवंशी महाराज (रामचन्द्र) को नहीं जानते हो, अतः ऐसा कह रहे हो। अब इस अशिष्ट प्रसंग को छोड़ो।

वस्तुतः तुम सैनिकों के संहार के कारण इतने ताव में आ गए हो, किन्तु जमदग्नि के पुत्र (परशुराम) के दमन करने वाले राम के प्रति तुम्हें दुराग्रह नहीं करना चाहिए ॥३१॥

संस्कृत-व्याख्या

सत्यं—वस्तुतः, सैनिकानां—योधानाम्, प्रमाथेन—संहारेण, त्वया—लवेन, ओजायितम्—ओजस्विवद् आचरितम्, स्वप्रकृष्टत्वं प्रदर्शितमित्यर्थः। जामदग्न्यस्य—जमदग्निपुत्रस्य परशुरामस्य, दमने—जेतरि रामचन्द्रे, निर्बन्धं—दुराग्रहं रूक्षवादं वा, न हि अर्हसि—न कर्तुं योग्योऽसि। अत्रोपमाऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **परिभूतः**—तिरस्कृत हुआ, हार गया। लव क्रोधयुक्त वाणी बोल रहा है। क्रोध राक्षसी कार्य है। अतः लव राक्षसी कार्य करने के कारण हार गया है। (२) **प्राचेतसा०**—प्राचेतस—वाल्मीकि का, अन्तेवासी—शिष्य, अर्थात् लव। प्राचेतसस्य अन्तेवासी, तत्पु०। (३) **अभ्युपपन्ना०**—अभ्युपपन्न—प्राप्त हो गया है, अमर्षेण—क्रोध जिसको, ऐसे संस्कार से। अभ्युपपन्नः अमर्षः यस्य तेन, बहु०। अभ्युपपन्न—अभि+उप+पद्+क्त। (४) **व्यवस्थित०**—व्यवस्थित—सीमित है, विषयः—विषय जिसका। व्यवस्थितः विषयः यस्य सः, बहु०। क्षत्रधर्मः—क्षत्रियों का धर्म। क्षत्राणां धर्मः, तत्पु०। (५) **विरम०**—विरम—रुको, अतिप्रसंगात्—अनुचित प्रसंग से। वि+रम्+लोट् म० १। व्याङ्परिभ्यो० (१–३–८३) से वि+रम् परस्मैपदी हो जाती है। जुगुप्साविराम० (वा०) से विरम के कारण अतिप्रसङ्गात् में पंचमी। (६) **प्रमाथेन**—संहार से। (७) **ओजायितम्**—ओजस्वी के तुल्य आचरण किया है, अर्थात् अभिमानवश ताव में आ गए हो। ओजस्+क्यङ (य) =ओजाय+क्त। ओजस् शब्द लक्षणा से ओजस्वी अर्थ में है। कर्तुः क्यङ० (३–१–११) से आचरति अर्थ में क्यङ और स् का लोप। ओजसो० (वा०) से नित्य क्यङ। ओजस्विवद् आचरितम्—ओजायितम्। (८) **जामदग्न्यस्य०**—परशुराम को हराने वाले। जमदग्नेः अपत्यम्—जमदग्नि+यञ्=जामदग्न्य। गर्गादिभ्यो० (४–१–१०५) से यञ्। दमनः—दमयति इति दमनः, दम्+ल्यु (अन)। नन्दिग्रहि० (३–१–१३४) से ल्यु। (९) ओजायितम् में उपमा का अर्थ होने से उपमा है।

६१. लवः—(सहासम्) आर्य, जामदग्न्यस्य दमनः स राजेति कोऽयमुच्चैर्वादः ?

सिद्धं ह्येतद् वाचि वीर्यं द्विजानां
बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत्क्षत्रियाणाम्।
शस्त्रग्राही ब्राह्मणो जामदग्न्य-
स्तस्मिन्दान्ते का स्तुतिस्तस्य राज्ञः? ॥३२॥

अन्वय—हि एतत् सिद्धं (यत्) द्विजानां वाचि वीर्यम्, यत् बाह्वोः वीर्यं तत् तु क्षत्रियाणाम्। जामदग्न्यः शस्त्रग्राही ब्राह्मणः, तस्मिन् दान्ते तस्य राज्ञः का स्तुतिः।

लव—(हँसी के साथ) आर्य, वह राजा राम जमदग्नि-पुत्र (परशुराम) के दमन करने वाले हैं—यह कौन सी बड़ी बात है?

क्योंकि यह बात सिद्ध है कि ब्राह्मणों की वाणी में शक्ति होती है और जो भुजाओं का बल है, वह तो क्षत्रियों में ही होता है। परशुराम एक शस्त्रधारी ब्राह्मण हैं, उनके दमन करने में राजा राम की क्या बड़ाई है? ॥३२॥

संस्कृत-व्याख्या

हि—यतो हि, एतत्—इदं तथ्यम्, सिद्धं—निर्णीतमस्ति, यत्, द्विजानां—ब्राह्मणानाम्, वाचि—वाण्याम्, वीर्यं—शक्तिर्भवति। यत्—यत्तु, बाह्वोः—भुजयोः, वीर्यं—सामर्थ्यम्, तत्तु—तद् वीर्यं तु, क्षत्रियाणां—राजन्यानामेव भवति। जामदग्न्यः—जमदग्निपुत्रः परशुरामः, शस्त्रग्राही—शस्त्रधारी, ब्राह्मणः—द्विजोऽस्ति, ब्राह्मणस्य शस्त्रग्रहणानधिकाराद् अनधिकारचेष्टाकारी स इत्यर्थः, तस्मिन्—परशुरामे, दान्ते—पराजिते सति, तस्य राज्ञः—नृपस्य रामचन्द्रस्य, का स्तुतिः—का नाम प्रशंसा। ब्राह्मणस्य परशुरामस्य दमने रामस्य न कापि प्रशंसाऽस्तीति भावः। अत्र परिसंख्याऽलंकारः। शालिनी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **उच्चैर्वादः**—बड़ी बात, प्रशंसा की बात। क्षत्रिय राम ने ब्राह्मण परशुराम को जीत लिया, इसमें प्रशंसा की क्या बात है? (२) **सिद्धम्**—यह बात सिद्ध है, सर्वसंमत है। सिध्+क्त। (३) **वाचि वीर्यम्**—ब्राह्मण की वाणी

में ही शक्ति होती है। ताण्ड्य ब्राह्मण का कथन है कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुआ है, अतः मुख से ही पराक्रम करता है। तस्माद् ब्राह्मणो मुखेन वीर्यं करोति, मुखतो हि सृष्टः। (ता० ब्रा०)। (४) **द्विजानाम्**—ब्राह्मणों के। द्विज के अर्थ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों होते हैं। तीनों में मुख्य होने से द्विज का अर्थ ब्राह्मण भी होता है। (५) **शस्त्रग्राही**—शस्त्रधारी। शस्त्रं गृह्णाति इति, शस्त्र+ग्रह्+णिनि (इन्)। स्वभाव अर्थ में णिनि। (६) **दान्ते**—वश में करने पर, जीतने पर। दम्+क्त=दान्त। दमित भी रूप बनता है। (७) **का स्तुतिः**—क्या प्रशंसा की बात है। क्षत्रिय ब्राह्मण को हरा दे, इसमें क्या प्रशंसा की बात है? ब्राह्मण शस्त्रविद्या में निपुण नहीं होता, अतः उसका हार जाना स्वाभाविक है। यदि राम ने किसी शूर क्षत्रिय को हराया होता तो प्रशंसा की बात होती। (८) 'भुजबल क्षत्रियों में ही होता है' इस कथन से भाव निकलता है कि—'भुजबल ब्राह्मणों में नहीं होता'। इस प्रकार अन्य के निवारण के द्वारा यहाँ पर आर्थी परिसंख्या अलंकार है।

६२. चन्द्रकेतुः—(सोन्माथमिव) आर्य सुमन्त्र, कृत-मुत्तरोत्तरेण।

कोऽप्येष संप्रति नवः पुरुषावतारो
वीरो न यस्य भगवान्भृगुनन्दनोऽपि।
पर्याप्तसप्तभुवनाभयदक्षिणानि
पुण्यानि तातचरितान्यपि यो न वेद ॥३३॥

अन्वय—संप्रति एषः कोऽपि नवः पुरुषावतारः, यस्य भगवान् भृगुनन्दनः अपि वीरः न। यः पर्याप्तसप्तभुवनाभयदक्षिणानि पुण्यानि तातचरितानि अपि न वेद॥

चन्द्रकेतु—(खिन्न सा होकर) आर्य सुमन्त्र, (अब अधिक) उत्तर-प्रत्युत्तर की आवश्यकता नहीं है।

पाठभेद—६२. नि० तात, चरितान्यपि (हे तात, पिता के चरितों को भी)

अब यह कोई नवीन विष्णु का अवतार प्रतीत होता है, जिसके लिए भगवान् परशुराम भी वीर नहीं हैं और जो पूर्णरूप से सातों लोकों को अभयदान देने वाले, पवित्र, पिता जी के चरितों को भी कुछ नहीं समझता है ।।३३।।

संस्कृत-व्याख्या

सम्प्रति—इदानीम्, एषः—पुरोवर्ती लवः, कोऽपि—अज्ञातगौरवः, नवः—अपूर्वः, पुरुषावतारः—पुरुषस्य विष्णोः अवतारः प्रतीयते। यस्य—यस्य कृते, भगवान्—ऐश्वर्यान्वितः, भृगुनन्दनः अपि—परशुरामोऽपि, वीरो न—शूरो नास्ति। यः—लवः, पर्याप्त०—पर्याप्ता पूर्णरूपेण प्राप्ता सप्तभुवनस्य लोकसप्तकस्य अभयं भयनिवारणमेव दक्षिणा यज्ञान्तदानं येषु तानि, पुण्यानि—पावनानि, तात०—तातस्य पितृतुल्यस्य रामस्य चरितानि वीरकर्माणि अपि, न वेद—न किञ्चिदवगच्छति। एष कुमारो रामस्य चरितानि लोकोत्तराणि न मन्यते, एकविंशतिवारं क्षत्रियकुलनाशकं परशुरामं च वीरं न मनुते, अतो ज्ञायते यदयं कश्चनापूर्वो विष्णोरवतारोऽस्ति । अत्र रूपकमलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **सोन्माथम्**—खेद या दुःख के साथ। उन्माथ—दुःख, तीव्र पीडा । उन्माथेन सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (२) **उत्तरोत्तरेण**—उत्तर-प्रत्युत्तर से बस करो। कृतम् अलम् के अर्थ में है, अतः तृतीया। उत्तरस्य उत्तरं तेन, तत्पु०। (३) **पुरुषावतारः**—विष्णु का अवतार। पुरुष—विष्णु, पुरि शेते इति पुरुषः। पुरुषस्य अवतारः, तत्पु०। अवतार—अवतरन्ति अनेन इति, अव+तॄ+घञ्। अवे तॄ० (३–३–१२०) से करण में घञ्। यह कोई विष्णु का नया अवतार है, जो परशुराम को भी वीर नहीं मानता। (४) **भृगुनन्दनः**—परशुराम। भृगोः नन्दनः, तत्पु०। (५) **पर्याप्त०**—पर्याप्त—पूर्णरूप से प्राप्त हो गई है, सप्तभुवन—सातों लोकों को, अभयदक्षिणानि—अभयदान-रूपी दक्षिणा जिनसे। पर्याप्ता सप्तभुवनस्य अभयमेव दक्षिणा येषु तानि, बहु०। सप्तानां भुवनानां समाहारः सप्तभुवनम्, द्विगु०। पर्याप्त—परि+आप्+क्त। (६) **तात०**—पिता राम के चरितों को भी। तातस्य चरितानि, तत्पु०।

चरित—चर्+क्त। (७) पौराणिक परम्परा के अनुसार परशुराम ने क्षत्रिय-वंश के उन्मूलन की प्रतिज्ञा ली थी और उन्होंने २१ बार समस्त क्षत्रियों को नष्ट किया था। राम ने उन्हें हराया था। परशुराम के विषय में उल्लेख है कि—'त्रिःसप्तकृत्वो जगतीपतीनां हन्ता गुरुर्यस्य स जामदग्न्यः'। (८) अभयदक्षिणा में अभयरूपी दक्षिणा अर्थ होने से रूपक अलंकार है।

६३. लवः—को हि रघुपतेश्चरितं महिमानं च न जानाति। यदि नाम किंचिदस्ति वक्तव्यम्। अथवा शान्तम्।

वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु किं वर्ण्यते
सुन्दस्त्रीमथनेऽप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हि ते।
यानि त्रीणि कुतोमुखान्यपि पदान्यासन्खरायोधने
यद्वा कौशलमिन्द्रसूनुनिधने तत्राप्यभिज्ञो जनः ॥३४॥

अन्वय—ते वृद्धाः (अतः) विचारणीयचरिताः न (सन्ति), (ते तथैव) तिष्ठन्तु, किं वर्ण्यते? सुन्दस्त्रीमथने अपि अकुण्ठयशसः ते लोके महान्तः हि। खरायोधने यानि त्रीणि पदानि कुतोमुखानि अपि आसन्, वा इन्द्रसूनुनिधने यत् कौशलम्, तत्र अपि जनः अभिज्ञः ॥

लव—राम के चरित और महत्त्व को कौन नहीं जानता? यदि कुछ उल्लेखनीय हो तो बताइए। अथवा रहने दीजिए।

वे वृद्ध हैं, अतः उनके चरित की आलोचना नहीं करनी चाहिए। उन्हें वैसा ही रहने दो। उनका क्या वर्णन किया जाए? सुन्द राक्षस की पत्नी ताडका का वध करने पर भी वे अकुण्ठित यश वाले तथा महान् ही हैं। खर राक्षस के साथ युद्ध में जो तीन पैर पीछे हटाए थे, अथवा वाली को मारने में जो कुशलता दिखाई थी, उससे भी जन-साधारण परिचित है ॥३४॥

पाठभेद—६३. नि० हुं वर्तते (हाँ, है)। का० काले—त्रीण्यपराङ्मुखान्यपि (मुँह पीछे न फेरते हुए भी तीन पैर)

संस्कृत-व्याख्या

ते—रामभद्राः, वृद्धाः—वयोवृद्धाः सन्ति, अतः, विचारणीय०—विचारणीयानि आलोचनीयानि चरितानि कर्तव्यानि येषां तादृशाः, न सन्ति—नहि वर्तन्ते। ते तथैव तिष्ठन्तु—ते तादृशा एव तिष्ठन्तु, ते आलोचनीयचरिता न भवन्त्वित्यर्थः। किं वर्ण्यते—अथवा तेषां चरिते किं वर्णनीयमस्ति। सुन्दस्त्रीमथनेऽपि—ताडकावधेऽपि, अकुण्ठयशसः—अप्रतिहतकीर्तयः, ते—रामभद्राः, लोके—जगति, महान्तो हि—महापुरुषा एव सन्ति। खरायोधने—खरेण खरनामकराक्षसेन सह आयोधने युद्धे, यानि त्रीणि पदानि—त्रयः पादन्यासाः, कुतोमुखानि अपि—पराङ्मुखानि, आसन्—अभवन्, वा—अथवा, इन्द्रसूनु०—इन्द्रसूनोः इन्द्रपुत्रस्य वालिनः निधने वधे, यत् कौशलं—यत् चातुर्यं प्रदर्शितम्, यत् छलं कृतमित्यर्थः, तत्रापि—तद्विषयेऽपि, जनः—लोकः, अभिज्ञः—विदितवृत्तान्त एवास्ति। लोकः सर्वं रामकृत्यं पूर्णतया वेत्ति, इति भावः। अत्राक्षेपोऽलंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **वृद्धाः**—राम वृद्ध हैं, अतः उनके दोष निकालना उचित नहीं है। ते—वे राम। नकली आदरप्रदर्शन में बहुवचन है। (२) **न विचारणीय०**—उनके चरित पर विचार नहीं करना चाहिए, अर्थात् टीका-टिप्पणी करना अनुचित है। विचारणीयानि चरितानि येषां ते, बहु०। विचारणीय—वि+चर्+णिच्+अनीय। (३) **तिष्ठन्तु**—रहने दो, वैसा ही रहने दो। उनकी बात मत करो। (४) **किं वर्ण्यते**—क्या वर्णन किया जाए? (५) **सुन्द०**—सुन्द की स्त्री ताडका का वध करने पर भी। सुन्दस्य स्त्रियाः मथने, तत्पु०। (६) **अकुण्ठ०**—अकुण्ठित यश वाले। अकुण्ठं यशः यस्य तस्य, बहु०। क्षत्रिय को किसी स्त्री पर हाथ नहीं उठाना चाहिए, पर राम ने ताडका का वध किया। यह उनके लिए अकीर्ति की बात है। फिर भी वे बड़े आदमी गिने जाते हैं। (७) **कुतोमुखानि**—पीछे की ओर। कुतः मुखं यस्य तानि, बहु०। (८) **खरायोधने**—खर राक्षस के साथ युद्ध में। आयोधन—युद्ध। युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्, इत्यमरः। खर राक्षस को मारते समय राम तीन पैर पीछे हटे थे। कथा इस प्रकार है—खर राक्षस ने बड़े वेग से राम के ऊपर प्रहार किया। राम सँभलने

के लिए और निशाना ठीक जमाने के लिए दो-तीन पैर पीछे हटे और सँभल कर उन्होंने खर को मारा। 'तमापतन्तं संक्रुद्धं कृतास्त्रो रुधिरप्लुतम्। अपासर्पद् द्वित्रिपदं किंचित् त्वरितविक्रमः। ततः पावकसंकाशं वधाय समरे शरम्। खरस्य रामो जग्राह ब्रह्मदण्डमिवापरम्॥(रामा० अरण्यकांड ३०-२३, २४)। लव के कथन का अभिप्राय है कि क्षत्रिय के लिए युद्ध में एक पैर भी हटना कलंक की बात है। राम तीन पैर पीछे हटे, अतः बहुत कलंक की बात है। (६) इन्द्रसूनु-निधने—इन्द्रसूनु—वाली के, निधने—वध में। कथा इस प्रकार है—वाली सुग्रीव के साथ युद्ध में व्यस्त था। उसी समय राम ने वृक्ष के पीछे छिप कर वाली पर वाण छोड़ा था, जिससे वाली मरा था। वाली को वरदान था कि वह सन्मुख योद्धा का तेज हर लेता था, अतः राम ने छिपकर पीछे से बाण मारा था। अत-एव वाली ने रामायण में राम को कोसा है। पराङमुखवधं कृत्वा कोऽत्र प्राप्तस्त्वया गुणः। यदहं युद्धसंरब्धस्त्वत्कृते निधनं गतः॥ (किष्किन्धा० १७-१६)। लव का अभिप्राय है कि छिपकर शत्रु पर बाण मारना कायरता का चिह्न है। यह राम के लिए कलंक की बात थी। कौशलम्—चतुरता, अभिज्ञः जनः—लोग यह सारी बात जानते हैं। (१०) नाटकीय नियमानुसार नायक के अवगुण या न्यून-ताओं का प्रदर्शन या वर्णन वर्जित है। अतः क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा में 'वीररसस्य····स्ववचसा कविना विनाशः कृत इत्यनुचितमेतत्' कहकर भवभूति की कड़ी आलोचना की है। विश्वनाथ का कथन है कि नायक में जो दोष हो या रस के विरुद्ध जो बात हो, उसे या तो छोड़ देना चाहिए या उसे प्रकारान्तर से कहना चाहिए। राम का छलपूर्वक वालिवध करना अनुचित कार्य है, इसका वर्णन नहीं करना चाहिए था। 'यत् स्यादनुचितं वस्तु नायकस्य रसस्य वा। विरुद्धं तत् परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत्॥ (सा० दर्पण ६-५०)। अनुचितमितिवृत्तं यथा—रामस्य छद्मना वालिवधः। (११) इस श्लोक में राम के दोष-वर्णन का 'तिष्ठन्तु किं वर्ण्यते' के द्वारा निषेध सा प्रदर्शित करने से आक्षेप अलंकार है। यह निषेधाभास वर्णनीय वस्तु के वैशिष्ट्य को प्रकट करने के लिए किया जाता है।

६४. चन्द्रकेतुः—आः तातापवादिन् भिन्नमर्याद, अति हि नाम प्रगल्भसे।

चन्द्रकेतु—ओह, पिता (रामचन्द्र) जी की निन्दा करने वाले और मर्यादा का उल्लंघन करने वाले, तू बहुत अधिक बहक कर बात कर रहा है।

६५. लवः—अये, मय्येव भ्रुकुटीमुखः संवृत्तः।

लव—ओह, मुझ पर ही भौंहें तान रहा है।

६६. सुमन्त्रः—स्फुरितमनयोः क्रोधेन। तथा हि—

क्रोधेनोद्धतधूतकुन्तलभरः सर्वाङ्गजो वेपथुः
किंचित्कोकनदच्छदस्य सदृशे नेत्रे स्वयं रज्यतः।
धत्ते कान्तिमिदं च वक्त्रमनयोर्भङ्गेन भीमं भ्रुवो-
श्चन्द्रस्योद्भटलाञ्छनस्य कमलस्योद्भ्रान्तभृङ्गस्य च ॥३५॥

अन्वय—क्रोधेन उद्धतधूतकुन्तलभरः सर्वाङ्गजः वेपथुः, कोकनदच्छदस्य किञ्चित् सदृशे नेत्रे स्वयं रज्यतः। भ्रुवोः भङ्गेन भीमम् अनयोः इदं वक्त्रं च उद्भटलाञ्छनस्य चन्द्रस्य उद्भ्रान्तभृङ्गस्य कमलस्य च कान्तिं धत्ते॥

सुमन्त्र—इन दोनों का क्रोध (अब) प्रकट हो गया है। क्योंकि—

क्रोध के कारण केश-समूह को अत्यधिक हिलाने वाला कम्पन इनके सारे अंगों में व्याप्त हो गया है और लाल कमल के पत्ते से कुछ मिलते हुए इनके नेत्र स्वयं लाल हो गए हैं तथा भ्रूभंग के कारण भयंकर इन दोनों के मुख स्पष्ट कलंक-युक्त चन्द्रमा के सदृश और ऊपर मँडराते हुए भौंरों से युक्त कमल के तुल्य शोभा को धारण कर रहे हैं॥३५॥

६७. लवः—कुमार कुमार, एह्येहि। विमर्दक्षमां भूमिमवतरावः।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

पाठभेद—६६. का० काले—चूडामण्डलबन्धनं तरलयत्याकूतजो वेपथुः (साभिप्राय उत्पन्न कम्पन शिखासमूह के बन्धन को शिथिल कर रहा है)। का० काले—कान्तिमकाण्डताण्डवितयोर्भङ्गेन वक्त्रं भ्रुवो० (इनका मुख अकस्मात् ताण्डव नृत्य करती हुई भौंहों की कुटिलता से)। का० उत्कट (प्रबल)।

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते कुमारविक्रमो नाम पञ्चमोऽङ्कः।

लव--कुमार, कुमार, आओ आओ। हम दोनों युद्ध के योग्य भूमि पर उतरते हैं।

(तदनन्तर सबका प्रस्थान।)

महाकवि श्रीभवभूति-विरचित उत्तररामचरित में कुमार-विक्रम नाम का पंचम अंक समाप्त।

संस्कृत-व्याख्या

क्रोधेन—कोपेन, उद्धत०—उद्धतम् उत्कटं यथा स्यात् तथा धूताः चलिताः कुन्तलभराः केशसमूहाः यस्मिन् सः, सर्वाङ्गजः—सर्वशरीरव्यापी, वेपथुः—कम्पः, अस्ति इति शेषः। कोकनदच्छदस्य—रक्तकमलपत्रस्य, किंचित् सदृशे—किंचित् तुल्ये, नेत्रे—लोचने, स्वयं—स्वत एव, रज्यतः—रक्तवर्णे भवतः। भ्रुवोः—भ्रूयुगलस्य, भङ्गेन—कौटिल्येन, भीमं—भयानकम्, अनयोः—लवचन्द्रकेत्वोः, इदम्—एतत्, वक्त्रं च—मुखं च, उद्भटलाञ्छनस्य—स्फुटकलङ्कस्य, चन्द्रस्य—विधोः, उद्भ्रान्त०—उद्भ्रान्ताः उपरि भ्रमन्तः भृङ्गाः भ्रमराः यस्य तादृशस्य, कमलस्य च—पद्मस्य च, कान्ति—शोभाम्, धत्ते—धारयति। अत्र निदर्शनाऽनुमानं चालंकारौ। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्॥

टिप्पणी

(१) **तातापवादिन्**—पिता जी की निन्दा करने वाले। तातम् अपवदतीति, उपपदतत्पु०। तात+अप+वद्+णिनि+सं० १। स्वभाव अर्थ में णिनि। (२) **भिन्नमर्याद**—मर्यादा का उल्लंघन करने वाले। भिन्ना मर्यादा येन सः, तत्संबुद्धिः, बहु०। (३) **प्रगल्भसे**—धृष्टतापूर्वक बोल रहा है। प्र+गल्भ्+लट् म० १। (४) **भ्रुकुटी०**—भ्रूभंग-युक्त मुख वाला। भ्रुकुटी शब्द चार प्रकार से लिखा जाता है—भ्रूकुटी, भ्रुकुटी, भ्रकुटी और भृकुटी। (५) **स्फुरितम्**—प्रकट हो गया है, उद्बुद्ध हो गया है। दोनों का क्रोध जागृत हो गया है। स्फुर्+क्त। (६) **उद्धत०**—उद्धत—वेगपूर्वक, धूत—हिल रहे हैं, कुन्तलभराः—केशसमूह जिसमें, ऐसा कम्पन। उद्धतं यथा स्यात् तथा धूताः कुन्तल-

भराः यस्मिन् सः, बहु०। धूत—धू+क्त। (७) **सर्वाङ्गजः**—सारे अंगों में व्याप्त। सर्वाङ्गेषु जायते इति,० जन्+ड (अ)। अन् का लोप। (८) **वेपथुः**—कम्पन। वेप्+अथुच् (अथु)। (९) **कोकनद०**—कोकनद—लाल कमल के, छदस्य—पत्ते के। कोकनदस्य छदः, तस्य, तत्पु०। (१०) **रज्यतः**—लाल पड़ रहे हैं। रञ्ज्+लट् प्र० २। (११) **भङ्गेन०**—दोनों भौंहों की कुटिलता के कारण भयंकर। (१२) **चन्द्रस्य०**—उद्भट—स्पष्ट दीखने वाले, लाञ्छनस्य—कलंक से युक्त, चन्द्रमा की शोभा को धारण कर रहा है। सुन्दर लाल गोल मुँह चन्द्रमा के तुल्य है और भ्रू की कालिमा चन्द्रगत कलंक के तुल्य है। उद्भटं लाञ्छनं यस्मिन् तस्य, बहु०। (१३) **कमलस्य०**—उद्भ्रान्त—ऊपर घूम रहे हैं, भृंगस्य—भौंरे जिसके, ऐसे कमल के तुल्य। मुख कमल के तुल्य है और काली भौंहों का घूमना चंचल भौरों के घूमने के तुल्य है। उद्भ्रान्ताः भ्रमराः यस्य तस्य, बहु०। उद्भ्रान्त—उद्+भ्रम्+क्त। (१४) इस श्लोक में वक्त्र की चन्द्रमा और कमल से समता दिखाई गई है। अतः यहाँ पर असंभवद्वस्तुसंबन्ध-रूपी निदर्शना है। कम्पन और लाल नेत्र होना आदि के द्वारा क्रोध का अनुमान होने से अनुमान अलंकार है। (१५) **विमर्द०**—विमर्द—युद्ध के, क्षमाम्—योग्य। विमर्दाय क्षमाम्, तत्पु०। (१६) **अवतरावः**—हम दोनों उतरते हैं। अव+तॄ+लट् उ० २।

इत्युत्तररामचरितस्याचार्यकपिलदेवद्विवेदिकृतायां 'भारती'-व्याख्यायां पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः।

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विमानेनोज्ज्वलं विद्याधरमिथुनम्)

१. (क) विद्याधरः—अहो नु खल्वनयोर्विकर्तनकुल-कुमारयोरकाण्डकलहप्रचण्डयोरुद्द्योतितक्षत्रलक्ष्मीकयोरत्यद्-भुतोद्भ्रान्तदेवासुराणि विक्रान्तविलसितानि। तथा हि प्रिये, पश्य—

झणज्झणितकङ्कणक्वणितकिङ्किणीकं धनु-
र्ध्वनद्गुरुगुणाटनीकृतकरालकोलाहलम्।
वितत्य किरतोः शरानविरतं पुनः शूरयो-
र्विचित्रमभिवर्तते भुवनभीममायोधनम् ॥१॥

अन्वय—झणज्झणितकङ्कणक्वणितकिङ्किणीकं ध्वनद्गुरुगुणाटनीकृत-करालकोलाहलं धनुः वितत्य अविरतं शरान् किरतोः शूरयोः पुनः विचित्रं भुव-नभीमम् आयोधनम् अभिवर्तते।

(तदनन्तर विमान में बैठे हुए तेजोमय विद्याधर और विद्याधरी के जोड़े का प्रवेश)

विद्याधर—ओह, आकस्मिक युद्ध से उद्दीप्त और क्षत्रियोचित शोभा से संपन्न इन दोनों सूर्यवंशी राजकुमारों के पराक्रम के कार्यों ने देवों और असुरों को आश्चर्यचकित कर दिया है। क्योंकि हे प्रिया, देखो :—

पाठभेद—१. का० नि० रणत्करणझञ्झण० (धनुष को खींचने की रन-रन ध्वनि से झन-झन शब्दयुक्त)। काले—अविरतस्फुरच्चूडयोः (जिन दोनों की चोटियाँ निरन्तर हिल रही हैं।)

झन-झन शब्द करने वाले कंकण के तुल्य ध्वनि करने वाली किंकिणियों से सुशोभित और गूँजती हुई विशाल प्रत्यंचा तथा धनुष की कोटियों से किए गए भयंकर कोलाहल से युक्त अपने धनुष को फैलाकर निरन्तर बाण-वर्षा करते हुए इन दोनों शूर-वीर बालकों का फिर यह अद्भुत और संसार के लिए भयावह युद्ध सामने हो रहा है।।१।।

संस्कृत-व्याख्या

झणज्०——झणज्झणितं झणझणशब्दयुक्तं यत् कङ्कणं हस्ताभरणं तद्वत् क्वणिताः ध्वनियुक्ताः किङ्किण्यः क्षुद्रघण्टिकाः यस्य तत्, ध्वनद्०——ध्वनता शब्दं कुर्वता गुरुणा विशालेन गुणेन मौर्व्या अटनीभ्यां धनुषः कोटिभ्यां च कृतः विहितः करालः भयंकरः कोलाहलः संरावः यस्य तत्, धनुः—चापम्, वितत्य—— विस्तार्य, मण्डलीकृत्येत्यर्थः, अविरतम्—अनवरतम्, शरान्——बाणान्, किरतोः—— प्रक्षिपतोः, शूरयोः—वीरबालकयोः, पुनः——भूयोऽपि, विचित्रम्—अद्भुतम्, भुवनभीमम्—भुवनानां लोकानां भीमं भयजनकम्, आयोधनं—युद्धम्, अभिवर्तते —पुरतः प्रवर्तते। अत्रोपमाऽलंकारः। पृथ्वी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **विमानेन०**——विमानेन प्रविशति——विमान में बैठे हुए विद्याधर-युगल प्रवेश करते हैं। यात्रा के साधन में तृतीया होने से यहाँ तृतीया है। (२) **उज्ज्वलम्**—प्रकाशमान, तेजोमय। (३) **विद्याधर०**—विद्याधर और विद्याधरी का जोड़ा। विद्याधरश्च विद्याधरी च विद्याधरौ, पुमान् स्त्रिया (१-२-६७) से एकशेष द्वन्द्व समास, तयोः मिथुनम्, तत्पु०। विद्याधर एक देवयोनिविशेष हैं। इनमें अलौकिक शक्तियाँ होती हैं। 'विद्याधरा जीमूतवाहनादयः, खड्गगुटिकाञ्जनादिविद्याधारिणश्च', क्षीरस्वामी। (४) **विकर्तन०**— विकर्तनकुल—सूर्यवंश के, कुमारयोः—राजकुमारों के। विकर्तनस्य कुलम् (तत्पु०), तस्य कुमारयोः, तत्पु०। (५) **अकाण्ड०**—अकाण्ड—आकस्मिक, कलह—युद्ध से, प्रचण्डयोः——क्रुद्ध या उद्दीप्त। अकाण्डे कलहेन प्रचण्डयोः, तत्पु०। (६) **उद्योतित०**——उद्योतित—प्रकाशित है, क्षत्र—क्षत्रियोचित, लक्ष्मीकयोः—शोभा जिनकी। उद्योतिता क्षत्रलक्ष्मीः ययोः तयोः, बहु०। उद्योतित—उत्+द्युत्+णिच्+क्त। (७) **अत्यद्भुतो०**—अत्यद्भुत—

अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्यों से, उद्भ्रान्त—किंकर्तव्यविमूढ कर दिया है, देवासुराणि—देवों और असुरों को जिन्होंने। अत्यद्भुतेन उद्भ्रान्ताः देवासुराः यैः तानि, बहु०। उद्भ्रान्त—उद्+भ्रम्+क्त । (८) **विक्रान्त०**—पराक्रमयुक्त कार्य। विक्रान्तस्य विलसितानि, तत्पु०। विक्रान्त—वि+क्रम्+क्त। (६) **झगत्०**—झणज्झणित—झनझन शब्द करते हुए, कङ्कण—कंगन के सदृश, क्वणित—शब्द से युक्त, किंकिणीकम्—छोटी घंटियों से युक्त। झणज्झणितं यत् कङ्कणं (कर्मधा०), तद्वत् क्वणिताः किङ्किण्यः यस्य तत्, बहु०। झणज्झणित—झणज्झणः संजातः अस्य इति, झणज्झण+इतच् (इत) । तदस्य संजातं० (५–२–३६) से इतच्। क्वणित—क्वण्+क्त। (१०) **ध्वनद्०**—ध्वनद्—शब्द करती हुई, गुरु—विशाल, गुण—प्रत्यंचा तथा, अटनी—धनुष की छोरों से, कृत—किए गए, कराल—भयंकर, कोलाहलम्—हल्ले से युक्त। ध्वनता गुरुगुणेन अटनीभ्यां च कृतः करालः कोलाहलः यस्य तत्, बहु०। ध्वनत्—ध्वन्+शतृ। (११) **वितत्य**—फैलाकर। वि+तन्+ल्यप्। न् का लोप। (१२) **किरतोः**—फैलाते हुए, बाणवर्षा करते हुए। कॄ+शतृ+ष० २। (१३) **अभिवर्तते**—सामने हो रहा है। (१४) **भुवन०**—संसार के लिए भयप्रद। भुवनानां भीमम्, तत्पु०। (१५) **आयोधनम्**—युद्ध। युद्धमायोधनं जन्यं प्रधनं प्रविदारणम्, इत्यमरः । (१६) इस श्लोक में कंकणक्वणित में इव का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा है।

१. (ख)

जृम्भितं च विचित्राय मङ्गलाय द्वयोरपि ।
स्तनयित्नोरिवामन्ददुन्दुभेर्दुन्दुमायितम् ॥२॥

तत्प्रवर्त्यतामनयोः प्रवीरयोरनवरतमविरलमिलितविकचकनककमलकमनीयसंहतिरमरतरुतरुणमणिमुकुलनिकरमकरन्दसुन्दरः पुष्पनिपातः ।

पाठभेद—१ (ख). काले—विजृम्भितं च दिव्यस्य (दिव्य दुन्दुभि का शब्द प्रकट हो रहा है)। काले—रिवामन्द्रं (आमन्द्रम्—अतिगंभीर)।

अन्वय—द्वयोः अपि विचित्राय मङ्गलाय स्तनयित्नोः इव अमन्ददुन्दुभेः दुन्दुमायितं जृम्भितम् ।।

विद्याधर—इन दोनों बालकों के अद्भुत मंगल (अर्थात् उत्साहवर्धन) के लिए गरजते हुए बादल के तुल्य विशाल नगाड़े का दुम्-दुम् शब्द प्रारम्भ हो गया है ।।२।।

अतएव इन दोनों श्रेष्ठ वीरों के ऊपर निरन्तर घने मिले हुए तथा विकसित सुवर्ण-कमलों के मनोरम समूह से युक्त और कल्पवृक्ष की तेजोमय रत्न-सदृश कलियों के मधु से सुशोभित पुष्पवर्षा प्रारम्भ करो।

संस्कृत-व्याख्या

द्वयोः अपि—उभयोः कुमारयोः अपि, विचित्राय—अद्भुताय, मङ्गलाय—कल्याणाय, उत्साहवर्धनार्थमित्यर्थः, स्तनयित्नोः इव—गर्जतो जलदस्येव, अमन्ददुन्दुभेः—विशालभेर्याः, दुन्दुमायितं—दुम्-दुम्ध्वनिः, जृम्भितं—प्रादुर्भूतम्। अत्रोपमाऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **जृम्भितम्**—प्रारम्भ हुआ है। जृम्भ्+क्त। (२) **स्तनयित्नोः ०**—गरजते हुए बादल के तुल्य। (३) **दुन्दुमायितम्**—दुम्-दुम् शब्द। दुम् इस अव्यक्तानुकरणात्मक शब्द से डाच् (आ) और द्वित्व होकर दुन्दुमा। अव्यक्ता० (५–४–५७) से डाच्। दुन्दुमा करणं दुन्दुमायितम्, दुन्दुमा+क्यष् (य)+क्त। लोहितादि० (३–१–१३) से क्यष् प्रत्यय, भाव अर्थ में क्त। (४) इस श्लोक में इव के द्वारा उपमा अलंकार है। (५) **प्रवर्त्यताम्**—प्रारम्भ करो। प्र+वृत्+णिच्+कर्मवाच्य लोट् प्र० १। (६) **प्रवीरयोः**—श्रेष्ठ वीरों पर। प्रकृष्टः वीरः प्रवीरः, कर्मधा०। (७) **अविरल०**—अविरल—घने, मिलित—मिले हुए तथा, विकच—खिले हुए, कनककमल—सुवर्णकमलों की, कमनीय—सुन्दर, संहतिः—समूह से युक्त। अविरलानि मिलितानि च यानि विकचानि कनककमलानि (कर्मधा०), तेषां कमनीया संहतिः यस्मिन् सः, बहु०। (८) **अमरतरु०**—अमरतरु—कल्पवृक्ष की, तरुणमणिमुकुल—तेजोमय मणियों के तुल्य कलियों के, निकर—समूह के, मकरन्द—मधु से, सुन्दरः—सुशोभित। अमरतरूणां यानि तरुणमणिमुकुलानि (तत्पु०), तेषां निकरस्य मकरन्दैः सुन्दरः, तत्पु०। (९) **पुष्प०**—पुष्प-वर्षा। पुष्पाणां निपातः, तत्पु०।

२. विद्याधरी---तत्किमिति पुर आकाशं दुर्दर्शतरलतडिच्छटाकडारमपरमिव झटिति संवृत्तम्? [ता किं ति पुरो आआसं दुद्दंततरलतडिच्छडाकडारं अवरं विअ झत्ति संवुत्तं?]

विद्याधरी---तो क्या कारण है कि सामने चकाचौंध करने वाली चंचल बिजली की चमक से पीतवर्ण यह आकाश सहसा अनोखा सा हो गया है?

३ (क). विद्याधरः---तत्किं नु खल्वद्य?
त्वष्टृयन्त्रभ्रमिभ्रान्तमार्तण्डज्योतिरुज्ज्वलः।
पुटभेदो ललाटस्थनीललोहितचक्षुषः ।।३।।

अन्वय---ललाटस्थनीललोहितचक्षुषः त्वष्टृयन्त्रभ्रमिभ्रान्तमार्तण्डज्योतिरुज्ज्वलः पुटभेदः (संजातः)।

विद्याधर---तो क्या आज---

शिव के ललाट पर विद्यमान नेत्र की पलकें खुली हैं, जो विश्वकर्मा के शाण-यन्त्र पर चक्कर से घूमते हुए सूर्य की ज्योति के तुल्य प्रकाशमान हैं?।।३।।

संस्कृत-व्याख्या

ललाट०---ललाटस्थस्य भालसंस्थितस्य नीललोहितस्य शिवस्य चक्षुषः नेत्रस्य, शिवललाटस्थतृतीयनेत्रस्येत्यर्थः, त्वष्टृ०---त्वष्टुः विश्वकर्मणः यन्त्रं शाणयन्त्रं तस्य भ्रमिभिः आवर्तनैः भ्रान्तस्य आवर्तितस्य मार्तण्डस्य सूर्यस्य ज्योतिरिव तेज इव उज्ज्वलः जाज्वल्यमानः, पुटभेदः---पुटयोः नेत्रावरणयोः भेदः विघटनम्, संजातः। शिवस्य तृतीयं नेत्रमुन्मीलितं किमित्यर्थः। अत्र लुप्तोपमा सन्देहश्चालंकारौ। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) दुर्दर्श०---दुर्दर्श---चकाचौंध करने वाली, तरल---चंचल, तडित्---बिजली की, छटा---चमक से, कडारम्---पीले रंग वाला। दुर्दर्शा तरला या तडिच्छटा (कर्मधा०), तया कडारम्, तत्पु०। (२) अपरमिव---दूसरा सा,

पाठभेद---३ (क). काले---त्वाष्ट्र० (विश्वकर्मा का)। नि० उज्ज्वलम् (उज्ज्वल, दीप्तिमान्)

अनोखा सा। आग्नेय अस्त्र के कारण आकाश का स्वरूप अनोखा सा हो रहा है। (३) **संवृत्तम्**--हो गया है। सम्+वृत्+क्त। (४) **त्वष्टृ०**--त्वष्टृ--विश्वकर्मा के, यन्त्र--शाणरूपी यन्त्र पर, भ्रमि--भ्रमण या चक्कर लगाने से, भ्रान्त--घूमते हुए, मार्तण्ड--सूर्य की, ज्योतिः--ज्योति के सदृश, उज्ज्वलः--तेजोमय। त्वष्टुः यन्त्रं (तत्पु०), तस्य भ्रमिभिः भ्रान्तस्य मार्तण्डस्य ज्योतिरिव उज्ज्वलः, तत्पु०। भ्रान्त--भ्रम्+क्त। (५) **पुटभेदः**--दोनों नेत्रों का खुलना। पुटयोः भेदः, तत्पु०। (६) **ललाटस्थ०**--ललाटस्थ--माथे पर विद्यमान, नीललोहित--शिव के, चक्षुषः--नेत्र का। ललाटस्थस्य नीललोहितस्य चक्षुषः, तत्पु०। माथे पर विद्यमान शिव का तृतीय नेत्र मानो खुल गया है। ललाटे तिष्ठति इति ललाटस्थः, ललाट+स्था+क (अ)। (७) इस श्लोक में पौराणिक कथा का संकेत है :--सूर्य की पत्नी संज्ञा अपने पति सूर्य के तेज को सहन नहीं कर सकती थी, अतः उसने अपने पिता विश्वकर्मा से प्रार्थना की थी कि वह सूर्य का तेज सह्य करे। विश्वकर्मा ने सूर्य को अपने शाणयन्त्र (सान) पर चढ़ा कर घुमाया। इससे सूर्य का तेज कम होकर सह्य हो गया। उसका ही इस श्लोक में संकेत है। विष्णुपुराण (३-२-६,१०) में इसका उल्लेख है--'भ्रमिमारोप्य सूर्यं तु तस्य तेजोविशातनम्। कृतवानष्टमं भागं न व्यशातयताव्ययम्।। यत् सूर्याद् वैष्णवं तेजः शातितं विश्वकर्मणा।।' मार्कण्डेय पुराण अध्याय ७७ में भी इसका वर्णन है। कालिदास ने रघुवंश (६-३२) में इस प्रकार इसका उल्लेख किया है--'आरोप्य चक्रभ्रममुष्णतेजास्त्वष्ट्रेव यन्त्रोल्लिखितो विभाति'।। (८) मार्तण्डज्योतिरुज्ज्वलः में इव का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा अलंकार है। आग्नेय अस्त्र के द्वारा अग्निवर्षा को शिव के तृतीय नेत्र की अग्नि बताने से सन्देह अलंकार है।

३ (ख). आं ज्ञातम्। ज़ातक्षोभेण चन्द्रकेतुना प्रयुक्तमप्रतिरूपमाग्नेयमस्त्रम्, यस्यायमग्निवच्छरसंपातः। संप्रति हि--

अवदग्धकर्बुरितकेतुचामरै-
रपयातमेव हि विमानमण्डलैः।

पाठभेद--३ (ख) नि० काले--बर्बरित (बर्बर ध्वनि से युक्त)।

दहति ध्वजांशुकपटावलीमिमां

नवकिंशुकद्युतिसविभ्रमः शिखी ।।४।।

आश्चर्यम्, प्रवृत्त एवायमुच्चण्डवज्रखण्डावस्फोटपटुरटत्स्फुलिङ्गगुरुरुत्तालतुमुललेलिहानोज्ज्वलज्ज्वालासंभारभैरवः भगवानुषर्बुधः। प्रचण्डश्चास्य सर्वतः संपातः। तत्प्रियामंशुकेनाच्छाद्य सुदूरमपसरामि।

(तथा करोति।)

अन्वय——अवदग्धकर्बुरितकेतुचामरैः विमानमण्डलैः अपयातम् एव हि। नवकिंशुकद्युतिसविभ्रमः शिखी इमां ध्वजांशुकपटावलीं दहति।

विद्याधर——अच्छा, मैं समझ गया। क्रुद्ध चन्द्रकेतु ने अनुपम आग्नेय अस्त्र का प्रयोग किया है, जिससे अग्नि के तुल्य यह बाणों की धारा निकल रही है। इस समय——

अंशतः जले हुए अतएव चितकबरे झण्डों और चँवरों से युक्त विमानसमूह दूर हट गए हैं। नए ढाक के फूल के तुल्य कान्ति वाली अग्नि झंडों के इन रेशमी वस्त्रों को जला रही है।।४।।

आश्चर्य की बात है कि प्रचण्ड शिलाओं को तोड़ने में समर्थ तथा धधकती हुई चिनगारियों से विशाल और भयंकर लपलपाती हुई एवं वेग से जलती हुई ज्वालाओं के समूह से भीषण भगवान् अग्निदेव प्रकट ही हो गए हैं। इनका चारों ओर प्रचंड प्रसार हो रहा है। अतः अपनी प्रिया को रेशमी वस्त्र से ढक कर बहुत दूर ले चलता हूँ।

(ऐसा ही करता है)

संस्कृत-व्याख्या

अवदग्ध०——अवदग्धानि अंशतो दग्धानि अतएव कर्बुरितानि शबलीकृतानि केतवः ध्वजाः चामराणि बालव्यजनानि च येषां तैः, विमानमण्डलैः——व्योमयानसमूहैः, अपयातम् एव हि——सुदूरम् अपसृतमेव। नव०——नवं नवीनं किंशुकं

पाठभेद——३ (ख). काले——दधति ध्वजांशुकपटाञ्चलेष्विमाः, क्षणकुङ्कुमच्छुरणविभ्रमं शिखाः (आग्नेय अस्त्र की ये लपटें पताकाओं के सूक्ष्म वस्त्रों के छोर पर थोड़ी देर के लिए कुंकुम की लाली की शोभा को धारण करती हैं)।

पलाशपुष्पं तस्य द्युतेः कान्त्याः सविभ्रमः समानो विलासः यस्य सः तादृशः, शिखी—अग्निः, इमाम्—एताम्, ध्वजांशुक०—ध्वजानां पताकानां अंशुकपटानां क्षौम-वस्त्राणाम् आवलीं समूहम्, दहति—भस्मसात् करोति। अत्र निदर्शनाऽलंकारः। मञ्जुभाषिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **जात०**—जिसको क्रोध उत्पन्न हो गया है अर्थात् क्रुद्ध। जातः क्षोभः यस्य तेन, बहु०। (२) **अप्रतिरूपम्**—अनुपम, अपूर्व। अविद्यमानं प्रतिरूपं यस्य तत्, बहु०। (३) **आग्नेयम्**—आग्नेय, अग्निदेवता-संबन्धी। अग्निः देवता अस्येति, अग्नि+ढक् (एय)। अग्नेर्ढक् (४–२–३३) से ढक्। (४) **शर-संपातः**—बाणों की वर्षा। शराणां संपातः, तत्पु०। (५) **अवदग्ध०**—अवदग्ध—अंशतः जले हुए, अतएव, कर्बुरित—चितकबरे, केतु—झंडे और, चामरैः—चँवरों से युक्त। अवदग्धानि कर्बुरितानि केतवः चामराणि च येषां तैः, बहु०। अवदग्ध—अव+दह्+क्त। चित्रं किर्मीरकल्माषशबलैताश्च कर्बुरे, इत्यमरः। कर्बुरितानि—कर्बुराणि कृतानि, कर्बुर+णिच्+क्त। तत्क-रोति० (गण०) से णिच्। (६) **अपयातम्**—दूर हट गए हैं। अप+या+क्त। (७) **विमान०**—विमानों के समूह। विमानानां मण्डलैः, तत्पु०। (८) **ध्वजा०**—ध्वज—ध्वजाओं के, अंशुकपट—रेशमी वस्त्र के, आवलीम्—समूह को। ध्वजानाम् अंशुकपटानाम् आवलीम्, तत्पु०। (९) **नव०**—नव—नवीन, किंशुक—ढाक के फूल की, द्युति—शोभा के, सविभ्रमः—समान कान्ति वाला। नवं किंशुकं तस्य द्युतेः समानः विभ्रमः यस्य सः, बहु०। (१०) **शिखी**—अग्नि। शिखाः सन्ति अस्य, शिखा+इन्। (११) इस श्लोक में अग्नि की लपटों की नवीन ढाक के फूलों से समानता बताई गई है, अतः असंभवद्वस्तुसंबन्धरूपी निद-र्शना अलंकार है। (१२) **उच्चण्ड०**—उच्चण्ड—प्रचण्ड, वज्रखंड—चट्टानों के, अवस्फोट—तोड़ने में, पटु—समर्थ, रटत्—शब्द करती हुई, स्फुलिंग—चिन-गारियों से, गुरुः—विशाल। उच्चण्डाः वज्रखण्डाः (कर्मधा०), तेषाम् अव-स्फोटे पटवः ये, रटन्तः स्फुलिङ्गाः तैः गुरुः, तत्पु०। (१३) **उत्ताल०**—उत्ताल—अत्यन्त ऊँची, तुमुल—भयंकर, लेलिहान—सब चीजों को चाटती हुई या लपलपाती हुई, उज्ज्वल ... ज्वाला—ज्वालाओं के, संभार

—समूह से, भैरवः—भीषण। उत्तालाः तुमुलाः लेलिहानाः उज्ज्वलन्त्यः याः ज्वालाः तासां संभारः तेन भैरवः, तत्पु०। उत्तालः—उद्गतः तालात्, प्रादि तत्पु०। लेलिहानः—लिह्+यङ+शानच्। यङ के कारण द्वित्व आदि। यहाँ पर यङ का लोप है। सामान्यतया लेलिह्यमान रूप बनेगा। (१४) उषर्बुधः—अग्नि। उषसि बुध्यते इति, उषस्+बुध्+क (अ)। इगुपधज्ञा० (३–१–१३५) से क प्रत्यय। (१५) आच्छाद्य—ढककर। आ+छद्+णिच्+ल्यप्।

४. विद्याधरी—दिष्ट्या एतेन विमलमुक्ताशैलशीतलस्निग्धमसृणमांसलेन नाथदेहस्पर्शेनानन्दसंदलितघूर्णमानवेदनाया अर्धोदित एवान्तरितो मे सन्तापः। [दिट्ठिआ एदेण विमलमुत्तासेअसीअलसिणिद्धमसिणमंसलेण णाहदेहप्पंसेण आणंदसंदलिदघुण्णमाणवेअणाए अद्धोदिदो एव्व अंदरिदो मे संदावो।]

विद्याधरी—सौभाग्य से पतिदेव के इस निर्मल मोती के पर्वत के तुल्य शीतल, चिकने, कोमल और पुष्ट शरीर के स्पर्श से उत्पन्न आनन्द के कारण बढ़ती हुई वेदना के नष्ट हो जाने से मेरा संताप अधूरा प्रकट होकर ही समाप्त हो गया।

५. विद्याधरः—अयि, किमत्र मया कृतम्? अथवा—

न किंचिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ॥५॥

अन्वय—यो हि जनः यस्य प्रियः (सः) किंचिद् अपि न कुर्वाणः सौख्यैः दुःखानि अपोहति। तत् तस्य किमपि द्रव्यम् (अस्ति)।

विद्याधर—अरी, मैंने इसमें क्या किया है? अथवा—जो व्यक्ति जिसका प्रिय होता है, वह कुछ न करते हुए भी (सहवास-जन्य) सुख से दुःखों को दूर करता है। वह व्यक्ति उसके लिए एक अपूर्व धन होता है।

संस्कृत-व्याख्या

(देखो श्लोक २–१९, पृष्ठ १५५)

पाठभेद—५. का०, काले—अकिंचिदपि (कुछ भी नहीं)

टिप्पणी

(१) **दिष्ट्या**—भाग्य से। (२) **विमल०**—विमल—निर्मल, मुक्ता-शैल—मोती के पत्थर के तुल्य, शीतल—शीतल, स्निग्ध—चिकने, मसृण—कोमल और, मांसलेन—पुष्ट। विमलः यः मुक्ताशैलः (कर्मधा०), स इव शीतलः स्निग्धः मसृणः मांसलः तेन, उपमान कर्मधा०। स्निग्ध—स्निह्+क्त। (३) **नाथ०**—पति के देह के स्पर्श से। नाथस्य देहः (तत्पु०), तस्य स्पर्शेन, तत्पु०। (४) **आनन्द०**—आनन्द—आनन्द के कारण, सन्दलित—नष्ट हो गई है, घूर्णमान—बढ़ती हुई, वेदनायाः—वेदना जिसकी। आनन्देन संदलिता घूर्ण-माना वेदना यस्याः तस्याः, बहु०। घूर्णमान—घूर्ण्+शानच्। (५) **अर्धोदितः**—अधूरा प्रकट हुआ। अर्धः चासौ उदितः, कर्मधा०। (६) **अन्तरितः**—समाप्त हो गया, नष्ट हो गया। अन्तर्+इ+क्त।

६. विद्याधरी—कथमविरलविलोलघूर्णमानविद्युल्लता-विलासमांसलैर्मत्तमयूरकण्ठश्यामलैरवस्तीर्यते नभोऽङ्गणं जलधरैः ? [कहं अविरलविलोलघुण्णमाणविज्जुल्लदा-विलासमंसलेहिं मत्तमोरकण्ठसामलेहिं ओत्थरीअदि णभोंगणं जलहरेहिं ?]

विद्याधरी—निरन्तर चंचल और चारों ओर घूमती हुई बिजली की चमक से परिपुष्ट तथा मत्त मयूरों के कण्ठ के तुल्य श्यामवर्ण मेघों से आकाशरूपी आँगन क्यों व्याप्त हो रहा है?

७. विद्याधरः—हन्त, कुमारलवप्रयुक्तवारुणास्त्रप्रभावः खल्वेषः। कथमविरलप्रवृत्तवारिधारासंपातैः प्रशान्तमेव पावकास्त्रम् ?

विद्याधर—हर्ष की बात है कि कुमार लव के द्वारा छोड़े गए वारुणास्त्र का यह प्रभाव है। क्या कारण है कि घोर मूसलाधार वर्षा से आग्नेय अस्त्र सर्वथा शान्त हो गया है?

८. विद्याधरी—प्रियं मे प्रियं मे। [पिअं मे पिअं मे।]

विद्याधरी—(आग्नेय अस्त्र की शान्ति) मुझे प्रिय है, मुझे प्रिय है।

६. विद्याधरः—हन्त भोः, सर्वमतिमात्रं दोषाय। यत्प्रलयवातोत्क्षोभगम्भीरगुलुगुलायमानमेघमेदुरितान्धकारनीरन्ध्रनद्धमिव एकवारविश्वग्रसनविकटविकरालकालमुखकन्दरविवर्तमानमिव युगान्तयोगनिद्रानिरुद्धसर्वद्वारं नारायणोदरनिविष्टमिव भूतं विपद्यते। साधु चन्द्रकेतो, साधु। स्थाने वायव्यमस्त्रमीरितम्। यतः—

विद्याकल्पेन मरुता मेघानां भूयसामपि।
ब्रह्मणीव विवर्तानां क्वापि प्रविलयः कृतः॥६॥

अन्वय—विद्याकल्पेन मरुता भूयसाम् अपि मेघानां विवर्तानां ब्रह्मणि इव क्वापि प्रविलयः कृतः॥

विद्याधर—हाय रे, 'अति' सभी चीज़ की बुरी होती है। क्योंकि प्रलयकालीन वायु से विक्षुब्ध होने के कारण गंभीर गड़गड़ ध्वनि करने वाले बादलों के घोर अन्धकार से दम घुटा हुआ सा और एक बार में ही समस्त संसार को निगलने के लिए विशाल खुले हुए अति भयंकर यमराज के गुफा-सदृश मुँह में छटपटाता हुआ सा तथा प्रलयकाल में योगरूपी निद्रा से जिसने अपने शरीर के सभी (मुख आदि) द्वारों को बन्द कर लिया है, ऐसे भगवान् विष्णु के पेट में पड़ा हुआ सा प्राणि-वर्ग दुःखित हो रहा है। शाबाश चन्द्रकेतु, शाबाश। तुमने उचित अवसर पर वायव्य अस्त्र छोड़ा है, क्योंकि—

जिस प्रकार तत्त्वज्ञान से विवर्तों (कल्पित नाम-रूपात्मक जगत्-प्रपंचों) का ब्रह्म में लय हो जाता है, उसी प्रकार (वायव्य अस्त्र से उत्पन्न) वायु ने असंख्य मेघों को कहीं लुप्त कर दिया है॥६॥

संस्कृत-व्याख्या

विद्याकल्पेन—तत्त्वज्ञानसदृशेन, मरुता—वायव्यास्त्रजनितवायुना, भूयसाम् अपि—प्रचुराणाम् अपि, मेघानां—जलदानाम्, विवर्तानां—कल्पितनामरूपात्मकजगत्प्रपञ्चानाम्, ब्रह्मणि इव—तुरीये चैतन्ये इव, क्वापि—कुत्रापि, प्रविलयः—विनाशः, कृतः—विहितः। अत्रोपमाऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अविरल०**--अविरल--निरन्तर, विलोल--चंचल, घूर्णमान--चारों ओर घूमती हुई, विद्युल्लता--बिजली की, विलास--चमक से, मांसलैः--परिपुष्ट। अविरलं विलोलाः घूर्णमानाः याः विद्युल्लताः तासां विलासेन मांसलैः, तत्पु०। (२) **मत्त०**--मत्त मोरों के कण्ठ के तुल्य श्यामवर्ण। मत्ताः ये मयूराः (कर्मधा०), तेषां कण्ठाः (तत्पु०), तद्वत् श्यामलैः, उपमानकर्मधा०। (३) **अवस्तीर्यते**--व्याप्त किया जा रहा है। अव+स्तॄ+कर्मवाच्य लट् प्र० १। (४) **नभो०**--आकाशरूपी आँगन। नभ एव अङ्गणम्, उपमित कर्मधा०। (५) **कुमार०**--कुमार लव के द्वारा छोड़े गए वारुण (वरुण-सम्बन्धी या जलीय) अस्त्र का प्रभाव। कुमारलवेन प्रयुक्तं यद् वारुणास्त्रम्, तस्य प्रभावः, कर्मधारयगर्भक तत्पु०। वारुणः--वरुणः देवता अस्येति, वरुण+अण्। (६) **अविरल०**--अविरल--निरन्तर, प्रवृत्त--चलती हुई, वारिधारा--जलधारा के, संपातैः--गिरने से। अविरलं प्रवृत्ताः याः वारिधाराः तासां संपातैः, तत्पु०। (७) **प्रशान्तम्**--शान्त हो गया। प्र+शम्+क्त। (८) **पावकास्त्रम्**--आग्नेय अस्त्र। (९) **सर्वम्०**--अति सर्वत्र बुरा है। तुलना करो--अति सर्वत्र वर्जयेत्। (१०) **प्रलय०**--प्रलय--प्रलयकालीन, वात--वायु से, उत्क्षोभ--क्षुब्ध होने के कारण, गम्भीर--गंभीर, गुलगुलायमान--गड़गड़ ध्वनि करने वाले, मेघ--बादलों के, मेदुरित--घने, अन्धकार--अंधकार से, नीरन्ध्र--पूर्णतया, नद्धम्--बद्ध या घिरा हुआ। प्रलये यः वातः, तेन उत्क्षोभः, तेन गम्भीरं यथा स्यात् तथा गुलगुलायमानाः मेघाः, तैः मेदुरितः यः अन्धकारः, तेन नीरन्ध्रं यथा स्यात् तथा नद्धम्, तत्पु०। गुलगुलायमान--गुलगुल+डाच्+क्यष्+शानच्। नद्ध--नह्+क्त। (११) **एकवार०**--एकवार--एक बार में ही, विश्व--समस्त संसार को, ग्रसन--निगलने के लिए, विकट--विशाल और, विकराल--भयंकर, काल--यम के, मुखकन्दर--गुफासदृश मुँह में, विवर्तमानम् इव--छटपटाता हुआ सा। एकवारं विश्वस्य ग्रसनं तस्मै विकटं विकरालं यत् कालस्य मुखमेव कन्दरं तस्मिन् विवर्तमानम्, तत्पु०। विवर्तमान--वि+वृत्+शानच्। (१२) **युगान्त०**--युगान्त--प्रलयकाल में, योगनिद्रा--योगरूपी निद्रा से, निरुद्ध--रोक दिया है, सर्वद्वारम्--सारे मुख आदि द्वारों को जिसने।

युगान्ते या योगनिद्रा, तया निरुद्धानि सर्वद्वाराणि यस्य तत्, बहु०। (१३) **नारायणो०**--विष्णु के पेट में पड़ा हुआ। नारायणस्य उदरे निविष्टम्, तत्पु०। (१४) **भूतम्**--प्राणिवर्ग। विपद्यते--दुःखित हो रहा है। वि+पद्+लट् प्र० १। (१५) **वायव्यम्**--वायव्य अस्त्र, वायुसंबन्धी अस्त्र। वायुः देवता अस्य, वायु+यत् (य)। वाय्वृतु० (४-२-३१) से यत्। ईरितम्—प्रेरित किया, छोड़ा। ईर्+णिच्+क्त। (१६) **विद्याकल्पेन**—विद्या के तुल्य, तत्त्वज्ञान के सदृश। विद्या+कल्पप्। कुछ कम अर्थ में ईषदसमाप्तौ० (५-३-६७) से कल्पप् प्रत्यय। (१७) **भूयसाम्**--बहुतेरे। बहु+ईयस्=भूयस् । (१८) (१८) **विवर्तानाम्**--संसार के काल्पनिक प्रपंचों का। अतात्त्विक रूपान्तरण को विवर्त कहते हैं। यह वेदान्त का पारिभाषिक शब्द है। ब्रह्म सत्य है। जगत् उसका विवर्त है, अतः यह अतात्त्विक, असत्य या मिथ्या है। प्रलय काल में यह संसार ब्रह्म में लीन हो जाता है। 'स तत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदीरितः। अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त इत्युदीरितः। (वेदान्तसार), जिस प्रकार तत्त्वज्ञान से विवर्त ब्रह्म में लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार वायव्य अस्त्र की वायु से सारे मेघ नष्ट हो गए हैं। (१९) इस श्लोक में विद्याकल्पेन में कल्प प्रत्यय इवार्थ-सूचक है तथा उत्तरार्ध में इव के द्वारा उपमा है। इस प्रकार इस श्लोक में दो उपमाएँ हैं। (२०) **विशेष**--आग्नेय आदि अस्त्र विशेष विधि से बनाए गए अस्त्र होते थे। इनके छोड़ने से अग्नि-वर्षा आदि होती थी। जृम्भक अस्त्र से प्रचण्ड धुआँ और अग्नि उठती थी। इससे शत्रु-सेना निश्चष्ट हो जाती थी। आग्नेय अस्त्र से प्रचण्ड अग्नि-तुल्य बाण-वर्षा होती थी। आग्नेय अस्त्र का प्रभाव शान्त करने के लिए वारुण अस्त्र था। इसके प्रयोग से घोर जलवृष्टि होती थी और अग्नि शान्त हो जाती थी। वारुण अस्त्र का प्रभाव वायव्य अस्त्र से शान्त होता था। वायव्य अस्त्र से प्रचण्ड आँधी चलती थी और वह बादलों को उड़ा ले जाती थी। इस प्रकार इन अस्त्रों से घात-प्रतिघात होता था। इन अस्त्रों के निर्माण का रहस्य अत्यन्त गुप्त रखा जाता था। अत्यन्त प्रभावशाली एवं विश्वासपात्र सुयोग्य शिष्यों को ही इनका रहस्य बताया जाता था। इन अस्त्रों का रहस्य महर्षि कठिन तपःसाधना से प्राप्त करते थे।

१०. विद्याधरी--नाथ, क इदानीमेष ससंभ्रमोत्क्षिप्तकरभ्रमदुत्तरीयाञ्चलो दूरत एव मधुरस्निग्धवचनप्रतिषिद्धयुद्धव्यापार एतयोरन्तरे विमानवरमवतारयति ? [णाध, को दाणिं एसो ससंभमोक्खित्तकरम्भमदुत्तरीअंचलो दूरदो एव्व महुरसिणिद्धवअणपडिसिद्धजुद्धव्वावारो एदाणं अंदरे विमाणवरं ओदरावेदि ?]

विद्याधरी--नाथ, यह कौन है जो इस समय शीघ्रतापूर्वक उठाए हुए हाथ से दुपट्टे के छोर को हिला कर दूर से ही मधुर और प्रेमपूर्ण वचनों से युद्ध-कार्य को रोककर इन दोनों के बीच में अपने श्रेष्ठ (पुष्पक) विमान को उतार रहा है ?

११. विद्याधरः--(दृष्ट्वा) एष शम्बूकवधात्प्रतिनिवृत्तो रघुपतिः ।

शान्तं महापुरुषसंगदितं निशम्य
तद्गौरवात्समुपसंहृतसंप्रहारः ।
शान्तो लवः प्रणत एव च चन्द्रकेतुः
कल्याणमस्तु सुतसंगमनेन राज्ञः ।।७।।

तदितस्तावदेहि ।

(इति निष्क्रान्तौ ।)

मिश्रविष्कम्भः ।

अन्वय—शान्तं महापुरुषसंगदितं निशम्य तद्गौरवात् समुपसंहृतसंप्रहारः लवः शान्तः, चन्द्रकेतुः च प्रणतः एव, सुतसंगमनेन राज्ञः कल्याणम् अस्तु ।।

विद्याधर--(देखकर) शम्बूक का वध करके लौटे हुए ये रामचन्द्र हैं।

महापुरुष (रामचन्द्र) के शान्तिपूर्ण वचन को सुनकर उनके प्रति आदरभाव के कारण युद्ध रोक कर लव शान्त हो गया है और चन्द्रकेतु (राम के प्रति)

नतमस्तक हो गया है। अपने पुत्रों (कुश-लव) के समागम से महाराज (रामचन्द्र) का कुशल हो ।।७।।

अच्छा, इधर आओ।

(दोनों का प्रस्थान)

मिश्र-विष्कम्भक समाप्त।

संस्कृत-व्याख्या

शान्तं—शान्तियुक्तम्, महा०—महापुरुषस्य रामस्य संगदितं वचनम्, निशम्य—श्रुत्वा, तद्गौरवात्—तस्मिन् रामे गौरवाद् आदराधिक्यात्, समुप०—समुपसंहृतः सम्यक्तया निरुद्धः संप्रहारः युद्धं येन सः, लव; शान्तः—युद्धपरित्यागात् शान्ति प्राप्तः। चन्द्रकेतुः च—लक्ष्मणपुत्रश्च, प्रणत एव—रामं प्रति नतमस्तक एव, संजातः। सुत०—सुतयोः कुशलवयोः संगमनेन समागमेन, राज्ञः—रामचन्द्रस्य, कल्याणं—मङ्गलम्, अस्तु—भवेत्। अत्र समाधिरलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **ससंभ्रमो०**—ससंभ्रम—शीघ्रतापूर्वक, उत्क्षिप्त—उठाए हुए, कर—हाथ से, भ्रमत्—हिल रहा है, उत्तरीयाञ्चलः—दुपट्टे का छोर जिसका। ससंभ्रमम् उत्क्षिप्तेन करेण भ्रमन् उत्तरीयाञ्चलः यस्य सः, बहु०। (२) **मधुर०**—मधुर—मीठे और, स्निग्ध—प्रेमपूर्ण, वचन—शब्दों से, प्रतिषिद्ध—रोका है, युद्धव्यापारः—युद्धकार्य जिसने। मधुराणि स्निग्धानि यानि वचनानि (कर्मधा०), तः प्रतिषिद्धः युद्धव्यापारः येन सः, बहु०। स्निग्ध—स्निह्+क्त। प्रतिषिद्ध—प्रति+सिध्+क्त। (३) **विमानवरम्**—श्रेष्ठ विमान को अर्थात् पुष्पक विमान को। (४) **अवतारयति**—उतार रहा है। अव+तॄ+णिच्+लट् प्र० १। (५) **शम्बूक०**—शम्बूक के वध से। शम्बूकस्य वधात्, तत्पु०। शम्बूक एक शूद्र मुनि था। वह दण्डक वन में तपस्या कर रहा था। राम उसे मार कर लौट रहे हैं। **विशेष**—भवभूति के समय में शूद्रों को तपस्या करने का अधिकार नहीं था। अतः उसने राम के द्वारा शम्बूक का वध दिखाया है। वस्तुतः यह प्राचीन वैदिक परम्परा के विरुद्ध है। शूद्रों को अयोग्यता के आधार पर

यज्ञोपवीत से वंचित किया गया है, न कि तपस्या करने के अधिकार से। अतः राम के द्वारा शम्बूक का वध अनुचित कार्य है। (६) **प्रतिनिवृत्तः**--लौटकर आए हुए। प्रति+नि+वृत्+क्त। (७) **महापुरुष०**--महापुरुष राम के वचन को। महापुरुषस्य संगदितम्, तत्पु०। सम्+गद्+क्त। नपुंसके भावे क्तः (३-३-११४) से क्त। (८) **निशम्य**--सुनकर। नि+शम्+णिच्+ल्यप्। (९) **तद्गौरवात्**--उनके प्रति आदरभाव के कारण। तस्मिन् गौरवात्, तत्पु०। (१०) **समुपसंहृत०**--रोक लिया है युद्ध या आक्रमण जिसने। समुपसंहृतः संप्रहारः येन सः, बहु०। समुपसंहृत--सम् + उप + सम् + हृ + क्त। (११) **शान्तः**--शान्त हो गया। शम्+क्त। (१२) **प्रणतः**--नतमस्तक हो गया, प्रणाम किया। प्र+नम्+क्त। (१३) **सुत०**--पुत्रों के मिलन से। सुतयोः संगमनेन, तत्पु० (१४) इस श्लोक में राम के दर्शन से लव और चन्द्रकेतु का उग्र रूप शान्त होता है। अतः समाधि या समाहित अलंकार है। (१५) यहाँ पर दो मध्यम कोटि के पात्र विद्याधर और विद्याधरी हैं। एक संस्कृत में और दूसरा प्राकृत में बोलता है। अतः मिश्रविष्कम्भक है। युद्ध का दृश्य रंगमंच पर दिखाना उचित न समझ कर संक्षेप के लिए यह विष्कम्भक है।

(ततः प्रविशति रामो लवः प्रणतश्चन्द्रकेतुश्च)

१२. रामः--(पुष्पकादवतरन्)

दिनकरकुलचन्द्र ! चन्द्रकेतो !
सरभसमेहि दृढं परिष्वजस्व।
तुहिनशकलशीतलैस्तवाङ्गैः
शममुपयातु ममापि चित्तदाहः ॥८॥

(उत्थाप्य सस्नेहास्रं परिष्वज्य) अप्यनामयं नूतनदिव्यास्त्रायोधनस्य तव ?

अन्वय--दिनकरकुलचन्द्र चन्द्रकेतो, सरभसम् एहि, दृढं परिष्वजस्व। तुहिनशकलशीतलैः तव अङ्गैः मम चित्तदाहः अपि शमम् उपयातु।

(तदनन्तर राम, लव और नतमस्तक चन्द्रकेतु का प्रवेश)

राम--(पुष्पक विमान से उतरते हुए)

हे सूर्यवंश के चन्द्र (आह्लादक) चन्द्रकेतु, तुम शीघ्रता से आओ और गाढ आलिंगन करो। हिमखंड के तुल्य शीतल तुम्हारे अंगों (के स्पर्श) से मेरा हार्दिक सन्ताप भी दूर हो ॥८॥

(उठाकर स्नेहजन्य आँसुओं के साथ आलिंगन करके) दिव्य अस्त्रों से नवीन युद्ध करने वाले तुम सकुशल तो हो?

संस्कृत-व्याख्या

दिनकर०--दिनकरकुलस्य सूर्यवंशस्य चन्द्र चन्द्रवदाह्लादक, हे चन्द्रकेतो--हे लक्ष्मणपुत्र, सरभसं--सत्वरम्, एहि--आगच्छ, दृढं--गाढम्, परिष्वजस्व--आलिंगनं कुरु। तुहिन०--तुहिनस्य हिमस्य शकलैरिव खण्डैरिव शीतलैः शीतैः, तव--चन्द्रकेतोः, अङ्गैः--शरीरावयवैः सह संस्पर्शेन, मम--रामस्य, चित्त-दाहः अपि--मानसिकः सन्तापोऽपि, शमं--शान्ति विनाशमित्यर्थः, उपयातु--प्राप्नोतु। अत्रोपमाऽर्थापत्तिर्लाटानुप्रासाश्चालंकाराः। पुष्पिताग्रा वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अवतरन्**--उतरते हुए। अव+तॄ+शतृ प्र० १। (२) **दिनकर०**--सूर्यवंश के चन्द्रमा, अर्थात् सूर्यवंश के लिए चन्द्रमा के तुल्य आह्लादक। राम के कथन का अभिप्राय है कि तुम मेरे हृदय को भी शान्ति देने वाले हो। दिन-करकुलस्य चन्द्र, तत्पु०। (३) **सरभसम्**--वेग से, शीघ्रता से। रभसेन सहितम्, अव्ययी०। रभसो वेगहर्षयोः, इति विश्वः। (४) **एहि**--आओ। आ+इ+लोट् म० १। (५) **परिष्वजस्व**--आलिंगन करो। परि+स्वञ्ज्+लोट् म० १। (६) **तुहिन०**--तुहिन--बर्फ के, शकल--टुकड़े के तुल्य, शीतलैः--शीतल। तुहिनस्य शकलानि (तत्पु०), तानि इव शीतलानि तैः, उपमान-कर्मधा०। (७) **उपयातु**--प्राप्त हो। उप+या+लोट् प्र० १। (८) **चित्त-दाहः**--चित्त का सन्ताप। चित्तस्य दाहः, तत्पु०। (९) इस श्लोक में तुहिन-शकलशीतलैः में इव का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा है। इस श्लोक में अर्था-पत्ति से प्रकट होता है कि चित्तदाह शान्त होगा तो शरीर का सन्ताप तो स्वयं ही नष्ट हो जाएगा। अतः अर्थापत्ति है। प्रथम पंक्ति में दो बार चन्द्र का प्रयोग है। दोनों चन्द्र शब्दों का तात्पर्यमात्र में भेद है, अतः लाटानुप्रास अलंकार है।

शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यं भेदे तात्पर्यमात्रतः। लाटानुप्रास इत्युक्तः (सा० द० १०–६)। (१०) **सस्नेहास्रम्**—प्रेमजन्य आँसुओं के साथ। (११) **परिष्वज्य**—आलिंगन करके। परि+स्वञ्ज्+ल्यप्। (१२) **अनामयम्०**—सकुशल तो है। क्षत्रिय से अनामय या नीरोगता का प्रश्न पूछा जाता है। 'ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत् क्षत्रबन्धुमनामयम्'। (१३) **नूतन०**—नूतन—नवीन, दिव्यास्त्र—दिव्य अस्त्रों से, आयोधनस्य—युद्ध करने वाले। युद्धमायोधनं जन्यम्, इत्यमरः। नूतनैः दिव्यास्त्रैः आयोधनं यस्य तस्य, बहु०।

१३. चन्द्रकेतुः—कुशलमत्यद्भुतप्रियवयस्यलाभाभ्युदयेन। तद् विज्ञापयामि मामिव विशेषेण स्निग्धेन चक्षुषा पश्यत्वमुं वीरमनरालसाहसं तातः।

चन्द्रकेतु—अत्यन्त अद्भुत प्रिय मित्र के लाभरूपी अभ्युदय से कुशल है। अतः मेरा निवेदन है कि पिता जी आप अकुटिल (उत्कट) साहस-युक्त इस वीर को मेरी तरह ही विशिष्ट प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखें।

१४. रामः—(लवं निरूप्य) दिष्टचा अतिगम्भीरमधुरकल्याणाकृतिरयं वयस्यो वत्सस्य।

त्रातुं लोकानिव परिणतः कायवानस्त्रवेदः
क्षात्रो धर्मः श्रित इव तनुं ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै।
सामर्थ्यानामिव समुदयः संचयो वा गुणाना-
माविर्भूय स्थित इव जगत्पुण्यनिर्माणराशिः ॥६॥

अन्वय—लोकान् त्रातुं अस्त्रवेदः कायवान् परिणतः इव, ब्रह्मकोशस्य गुप्त्यै क्षात्रः धर्मः तनुं श्रितः इव, सामर्थ्यानां समुदयः इव, गुणानां संचयः वा, जगत्पुण्यनिर्माणराशिः आविर्भूय स्थितः इव।

राम—(लव को देखकर) सौभाग्य से तुम्हारे इस मित्र की आकृति अत्यन्त गंभीर, मधुर और कल्याणकारी है।

(तीनों) लोकों की रक्षा के लिए मानो धनुर्वेद ही शरीर धारण करके प्रकट हुआ है। वेदरूपी निधि की सुरक्षा के लिए मानो क्षात्र धर्म ने ही शरीर धारण

किया है। यह शक्तियों का मानो विकास है। गुणों का मानो समूह है। संसार के पुण्यकर्मों का फल-समूह ही मानो शरीर धारण करके विद्यमान है।।६।।

संस्कृत-व्याख्या

लोकान्––भुवनानि, त्रातुं––रक्षितुम्, अस्त्रवेदः––धनुर्वेदः, कायवान्––शरीरधारी, परिणत इव––परिणामं प्राप्त इव, प्रकटित इवेत्यर्थः। ब्रह्मकोशस्य ––ब्रह्म वेदः तदेव कोशः निधिः तस्य, गुप्त्यै––रक्षणाय, क्षात्रः धर्मः––क्षत्रिय-संबद्धो धर्मः, तनुं––शरीरम्, श्रित इव––प्राप्त इव, मूर्तिमानिव क्षात्रधर्मोऽयमिति भावः। सामर्थ्यानां––शक्तीनाम्, समुदय इव––संभूय विकास इव वर्तते। गुणानां––धैर्यदयादिगुणानाम्, संचयः वा––पुञ्ज इव वर्तते। जगत्०––जगतां लोकानां पुण्यनिर्माणानां कृतसत्कर्मफलानां राशिः समूहः, आविर्भूय––शरीरं प्राप्य, स्थित इव––विद्यमान इवास्ते। अत्रोत्प्रेक्षाऽलंकारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अत्यद्भुत०**––अत्यद्भुत––अत्यन्त आश्चर्यजनक, प्रियवयस्य––प्रिय मित्र के, लाभाभ्युदयेन––लाभरूपी अभ्युदय से। अत्यद्भुतः प्रियवयस्यः (कर्मधा०), तस्य लाभः (तत्पु०), स एव अभ्युदयः, तेन, रूपक कर्मधा०। वयस्यः––वयसि भवः, वयस्+यत् (य)। अभ्युदय––अभि+उत्+इ+अच् (अ)। (२) **अनराल०**––अनराल––अकुटिल, साहसम्––साहस वाले। अरालं वृजिनं जिह्मम्, इत्यमरः। अनरालं साहसं यस्य तम्, बहु०। (३) **अतिगम्भीर०** ––अतिगम्भीर––अत्यन्त गंभीर, मधुर––मधुर, कल्याण––कल्याणकारी, आकृतिः––आकृति वाला। अतिगम्भीरा मधुरा कल्याणी आकृतिः यस्य सः, बहु०। (४) **त्रातुम्**––रक्षा करने को। त्रै (त्रा)+तुमुन्। (५) **परिणतः** ––परिणाम को प्राप्त हुआ, परिवर्तित। परि+नम्+क्त। (६) **कायवान्**–– शरीरधारी। कायः अस्ति यस्य सः, काय+मतुप्+प्र० १। (७) **अस्त्रवेदः**–– धनुर्वेद। क्षात्रो धर्मः––क्षत्रसंबन्धी धर्म, क्षात्रधर्म। श्रित इव तनुम्––मानो शरीर धारण किया है। (८) **ब्रह्मकोशस्य०**––वेदरूपी कोश की, गुप्त्यै–– सुरक्षा के लिए। ब्रह्मन् का अर्थ वेद और ब्राह्मण है। ब्राह्मण अर्थ भी लिया जा सकता है। ब्रह्म के अर्थ हैं––वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः,

इत्यमरः। वेदों और ब्राह्मणों की रक्षा करना क्षत्रिय का परम कर्तव्य है। ब्रह्म एव कोशः, तस्य, रूपक कर्मधा०। गुप्ति—गुप्+क्तिन्। (९) सामर्थ्यानाम्—शक्तियों का। समर्थस्य भावः सामर्थ्यम्, समर्थ+ष्यञ्। (१०) आविर्भूय—प्रकट होकर। आविस्+भू+ल्यप्। (११) जगत्०—जगत्—संसार के, पुण्यनिर्माण—धर्मानुष्ठान या किए हुए सत्कर्मों के फल का, राशिः—समूह। जगतां पुण्यनिर्माणानां राशिः, तत्पु०। (१२) इस श्लोक में चार इव पदों और इवार्थक वा शब्द के द्वारा पाँच उत्प्रेक्षा अलंकार हैं। (१३) यह श्लोक महावीरचरित (२–४१) में भी आया है।

१५ (क). लवः—(स्वगतम्) अहो पुण्यानुभावदर्शनोऽयं महापुरुषः।
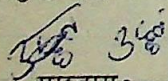
आश्वासस्नेहभक्तीनामेकमायतनं महत्।
प्रकृष्टस्येव धर्मस्य प्रसादो मूर्तिसुन्दरः॥१०॥

अन्वय—आश्वासस्नेहभक्तीनाम् एकं महत् आयतनम्। प्रकृष्टस्य धर्मस्य मूर्तिसुन्दरः प्रसादः इव॥

लव—(मन में) ओह, इस महापुरुष के दर्शन और प्रभाव दोनों ही पवित्र हैं।

ये विश्वसनीयता, प्रेम और भक्ति के एकमात्र महान् आधार हैं तथा उत्कृष्ट धर्म के मानो सुन्दर आकृति वाले विकसित रूप हैं॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या

आश्वास०—आश्वासः विश्वसनीयता स्नेहः प्रेम भक्तिश्च पूजनीयेष्वादरभावः तासाम्, एकं—केवलम्, एकमात्रमित्यर्थः, महत्—गुरु, आयतनम्—आधारोऽस्ति। प्रकृष्टस्य—उत्कृष्टस्य, धर्मस्य—पुण्यस्य, मूर्ति०—मूर्त्या शरीरेण सुन्दरः मनोहरः, प्रसाद इव—प्रसन्नता इव, विकसितं रूपमिवेत्यर्थः, वर्तते। अत्रोत्प्रेक्षाऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

पाठभेद—१५ (क). नि० आश्वास इव भक्तीनाम् (भक्ति में तत्पर लोगों के लिए विश्वासोत्पादक सा)। काले—आलम्बनम् (आलंबन)। काले—मूर्तिसंचरः (शरीरधारी)।

टिप्पणी

(१) **पुण्या०**—पुण्य—पवित्र हैं, अनुभाव—प्रभाव और, दर्शनः—दर्शन जिसके। अनुभावः दर्शनं च (द्वन्द्व), पुण्ये अनुभावदर्शने यस्य सः, बहु०। (२) **आश्वास०**—आश्वास—विश्वसनीयता, स्नेह—प्रेम और, भक्तीनाम्—भक्ति का। आश्वासः स्नेहः भक्तिश्च, तासाम्, द्वन्द्व। (३) **आयतनम्**—आधार, घर। राम विश्वसनीयता, प्रेम और भक्ति के एक महान् आधार हैं। (४) **प्रसादः**—प्रसन्नता, सुन्दर रूप, विकसित स्वरूप। प्र+सद्+घञ्। (५) **मूर्तिसुन्दरः**—आकृति से सुन्दर, सुन्दर रूप वाले। मूर्त्या सुन्दरः, तत्पु०। राम धर्म के साक्षात् सुन्दर रूप हैं। (६) इस श्लोक में इव के द्वारा उत्प्रेक्षा है।

१५. (ख) आश्चर्यम्—

विरोधो विश्रान्तः प्रसरति रसो निर्वृतिघन-
स्तदौद्धत्यं क्वापि व्रजति विनयः प्रह्वयति माम्।
झटित्यस्मिन्दृष्टे किमिति परवानस्मि यदि वा
महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः ॥११॥

अन्वय—विरोधः विश्रान्तः, निर्वृतिघनः रसः प्रसरति, तत् औद्धत्यं क्वापि व्रजति, विनयः मां प्रह्वयति, किमिति अस्मिन् दृष्टे झटिति परवान् अस्मि। यदि वा तीर्थानाम् इव महतां कः अपि महार्घः अतिशयः हि॥

लव—आश्चर्य की बात है कि—

विरोध शान्त हो गया है, आनन्दातिशययुक्त प्रेमरस व्याप्त हो रहा है, वह धृष्टता लुप्त हो गई है, विनय मुझे विनम्र बना रहा है। क्या कारण है कि इनके देखते ही मैं सहसा पराधीन हो गया हूँ? अथवा तीर्थस्थानों के तुल्य महापुरुषों में भी कोई ब मूल्य (जिसका मूल्यांकन न किया जा सके) उत्कर्ष होता है॥११॥

पाठभेद—१५ (ख). काले—किमपि (किसी कारण से), का० किमिव (किस प्रकार)।

संस्कृत-व्याख्या

विरोधः—वैरभावः, विश्रान्तः—शान्ति प्राप्तः, निर्वृति०—निर्वृत्या आनन्देन घनः सान्द्रः, रसः—प्रेमरसः, प्रसरति—व्याप्नोति, तत्—पूर्वमनुभूतम्, औद्धत्यं—धाष्टर्चम्, क्वापि—कुत्रापि, व्रजति—गच्छति, विनश्यतीत्यर्थः, विनयः—नम्रता, मां—लवम्, प्रह्वयति—विनम्रं करोति। किमिति—केन कारणेन, अस्मिन्—पुरोवर्तिनि महापुरुषे, दृष्टे—अवलोकिते सति, झटिति—सहसा, परवान्—पराधीनः, अस्मि—भवामि। यदि वा—अथवा, तीर्थानाम् इव—पुण्यस्थानानामिव, महतां—महापुरुषाणाम्, कोऽपि—अपूर्वः, महार्घः—बहुमूल्यः, मूल्याङ्कनातीत इत्यर्थः, अतिशयः हि—उत्कर्षो भवति। अत्रोपमाऽर्थान्तरन्यासश्चालंकारौ। शिखरिणी वृत्तम्॥

टिप्पणी

(१) **विश्रान्तः**—शान्त हो गया। वि+श्रम्+क्त। (२) **निर्वृतिघनः**—निर्वृति—आनन्द के कारण, घनः—घना। अर्थात् आनन्द की अधिकता से युक्त प्रेमरस। निर्वृत्या घनः, तत्पु०। निर्वृति—निर्+वृ+क्तिन्। (३) **औद्धत्यम्**—उद्धतता, धृष्टता। उद्धतस्य भावः, उद्धत+ष्यञ्। (४) **क्वापि०**—कहीं जा रही है, अर्थात् नष्ट हो रही है। (५) **प्रह्वयति**—नम्र बना रहा है। प्रह्वो नम्रः, उणादिकोश। प्रह्वं करोति, प्रह्व+णिच्+लट् प्र० १। तत्करोति० (गणसूत्र) से णिच्। (६) **परवान्०**—पराधीन हो गया हूँ। (७) **महार्घः**—बहुमूल्य। महान् अर्घः यस्य सः, बहु०। (८) **तीर्थानाम्**—तीर्थों या पवित्र क्षेत्रों का। (९) **अतिशयः**—उत्कर्ष, महत्त्व। अति+शी+अच्। (१०) इस श्लोक में चतुर्थ चरण में इव के द्वारा उपमा है। तीन पदों में उक्त विशेष राम के महत्त्व का सामान्य चतुर्थ चरण के द्वारा समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। यह श्लोक दशरूपक (१–४६) में अवमर्श संधि के शक्ति नामक अंग का उदाहरण दिया गया है।

१६. रामः—तत्किमयमेकपद एव मे दुःखविश्रामं ददात्युपस्नेहयति च कुतोऽपि निमित्तादन्तरात्मानम्। अथवा स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्ष इति विप्रतिषिद्धमेतत्।

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः ॥१२॥

अन्वय--आन्तरः कः अपि हेतुः पदार्थान् व्यतिषजति, प्रीतयः बहिरुपाधीन् खलु न संश्रयन्ते। हि पतङ्गस्य उदये पुण्डरीकं विकसति, हिमरश्मौ च उद्गते चन्द्रकान्तः द्रवति॥

राम--क्या बात है कि यह (लव) सहसा मेरे दुःख को शान्त कर रहा है और किसी अज्ञात कारणवश मेरी अन्तरात्मा को प्रेम-विभोर कर रहा है? अथवा 'स्नेह कारण की अपेक्षा करता है' यह कथन असंगत है।

कोई अज्ञात आन्तरिक कारण पदार्थों को परस्पर संबद्ध करता है। प्रेम बाह्य साधनों पर निर्भर नहीं होता है, क्योंकि सूर्य के उदय होने पर कमल खिलता है और चन्द्रमा के उदय होने पर चन्द्रकान्त मणि पिघलती है॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या

आन्तरः--आभ्यन्तरः, कोऽपि--अनिर्वचनीयः, हेतुः--कारणम्, पदार्थान्--वस्तूनि, व्यतिषजति--संयोजयति। प्रीतयः--स्नेहाः, बहिरुपाधीन्--बाह्य-साधनानि, खलु--निश्चयेन, न--नहि, संश्रयन्ते--आश्रयन्ते। हि--यतो हि, पतङ्गस्य--सूर्यस्य, उदये--उद्गमे, पुण्डरीकं--पद्मम्, विकसति--प्रस्फुटति। हिमरश्मौ च--चन्द्रमसि च, उद्गते--उदिते सति, चन्द्रकान्तः--चन्द्रकान्त-मणिः, द्रवति--आर्द्रीभवति। अत्रार्थान्तरन्यासोऽलंकारः। मालिनी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **एकपदे**--सहसा, एकदम, तुरन्त। (२) **दुःखविश्रामम्**--दुःख की शान्ति को। दुःखस्य विश्रामम्, तत्पु०। विश्रम एव विश्रामः। (३) **उपस्नेहयति**--स्नेह युक्त करता है। उप+स्निह्+णिच्+लट् प्र० १। (४) **कुतोऽपि०**--किसी अज्ञात कारणवश, जिसका कारण मुझे ज्ञात नहीं है। (५) **निमित्त०**--निमित्त--बाह्य कारण की, सव्यपेक्षः--अपेक्षा रखने वाला या

आवश्यकता मानने वाला। विशिष्टा अपेक्षा व्यपेक्षा, व्यपेक्षया सहितः सव्यपेक्षः, बहु०। निमित्तेन सव्यपेक्षः, तत्पु०। (६) **विप्रतिषिद्धम्**—विरुद्ध बात है, असंगत बात है। अर्थात् प्रेम सदा अकारण ही होता है। वि+प्रति+सिध्+क्त। (७) **व्यतिषजति**—परस्पर मिलाता है, परस्पर संबद्ध करता है। इसमें णिच् का अर्थ गुप्त है। वि+अति+सञ्ज्+लट् प्र० १। उपसर्गात् सुनोति० (८–३–६५) से स् को ष्। (८) **आन्तरः**—आन्तरिक। अन्तरे भवः, अन्तर्+अण्। (९) **बहि०**—बाहरी कारणों को। उपाधि—कारण। उप+आ+धा+कि (इ)। उपसर्गे घोः किः (३–३–९२) से कि प्रत्यय। (१०) **संश्रयन्ते**—आश्रय लेते हैं। सम्+श्रि+लट् प्र० ३। (११) **पतङ्गस्य**—सूर्य के। पतङ्गौ पक्षिसूर्यौ च, इत्यमरः। (१२) **पुण्डरीकम्**—कमल। पुण्डरीक श्वेत कमल के लिए आता है, परन्तु यहाँ पर इसका कमलमात्र अर्थ है। पुण्डरीकं सिताम्भोजम्, इत्यमरः। (१३) **द्रवति**—पिघलता है। द्रु+लट् प्र० १। (१४) **हिमरश्मौ०**—चन्द्रमा के उदय होने पर। यस्य च भावेन० (२–३–३७) से सप्तमी। उद्गत—उद्+गम्+क्त। (१५) **चन्द्रकान्तः**—चन्द्रकान्त मणि। चन्द्रमा की किरणें पड़ने पर चन्द्रकान्त मणि से जल की बूंदें टपकने लगती हैं। (१६) पूर्वार्ध में वर्णित सामान्य अर्थ का उत्तरार्ध में वर्णित दो विशेष बातों से समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। इस श्लोक से पूर्ववर्ती गद्य अंश और यह श्लोक मालतीमाधव (१–२७) में भी आया है।

१७. लवः—चन्द्रकेतो ! क एते ?

लव—चन्द्रकेतु, ये कौन हैं ?

१८. चन्द्रकेतुः—प्रियवयस्य, ननु तातपादाः।

चन्द्रकेतु—प्रियमित्र, ये (मेरे) पूज्य पिता जी हैं।

१९. लवः—ममापि तर्हि धर्मतस्तथैव, यतः प्रियवयस्येति भवतोक्तम्। किन्तु चत्वारः किल भवन्त्येवंव्यपदेशभागिनस्तत्रभवन्तो रामायणकथापुरुषाः। तद्विशेषं ब्रूहि।

लव--तो मेरे भी ये धर्म से पिता (धर्मपिता) हैं, क्योंकि आपने मुझे 'प्रिय-मित्र' कहा है। किन्तु आपके पिता शब्द से व्यवहार के योग्य चार आदरणीय व्यक्ति रामायण-कथा के मुख्य पात्र हैं। अतः आप विशेष रूप से बताइए (कि उनमें से ये कौन हैं)।

२०. चन्द्रकेतुः--ज्येष्ठतात इत्यवेहि।

चन्द्रकेतु--आप इन्हें ज्येष्ठ पिता जी समझिए।

२१. लवः--(सोल्लासम्) कथं रघुनाथ एव? दिष्ट्या सुप्रभातमद्य यदयं देवो दृष्टः। (सविनयं निर्वर्ण्य) तात, प्राचेतसान्तेवासी लवोऽभिवादयते।

लव--(आनन्द के साथ) क्या ये रघुनाथ ही हैं? सौभाग्य से आज यह शुभ प्रभात (सुदिन) है जो इन महापुरुष के दर्शन हुए हैं। (विनय सहित ध्यान से देखकर) तात, महर्षि वाल्मीकि का शिष्य लव आपको प्रणाम करता है।

२२. रामः--आयुष्मन्, एह्येहि। (इति सस्नेहमालिङ्ग्य) अयि वत्स, कृतमत्यन्तविनयेन। अङ्गेन मामपरिश्लथं परिरम्भस्व।

परिणतकठोरपुष्करगर्भच्छदपीनमसृणसुकुमारः।
नन्दयति चन्द्रचन्दननिष्यन्दजडस्तव स्पर्शः ॥१३॥

अन्वय--परिणतकठोरपुष्करगर्भच्छदपीनमसृणसुकुमारः चन्द्रचन्दननिष्यन्द-जडः तव स्पर्शः नन्दयति।

राम--चिरंजीव, आओ-आओ। (यह कहकर प्रेमपूर्वक आलिंगन करके) हे वत्स, अत्यधिक नम्रता की आवश्यकता नहीं है। अपने शरीर से दृढता के साथ मेरा आलिंगन करो।

विकसित और परिपूर्ण कमल के भीतर के पत्ते के तुल्य परिपुष्ट चिकना और कोमल तथा चन्द्र एवं चन्दन के रस के सदृश शीतल तेरा स्पर्श मुझे आनन्दित कर रहा है।॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या

परिणत०—परिणतं सुविकसितं कठोरं परिपूर्णं यत् पुष्करं कमलं तस्य गर्भच्छदः आभ्यन्तरं पत्रं स इव पीनः परिपुष्टः मसृणः स्निग्धः सुकुमारः सुकोमलः, चन्द्र०—चन्द्रस्य विधोः चन्दनस्य श्रीखण्डस्य च यो निष्यन्दः द्रवः स इव जडः शीतलः, तव—लवस्य, स्पर्शः—शरीरसंयोगः, नन्दयति—आह्लादयति। अत्रोपमाऽलंकारः। आर्या जातिः।

टिप्पणी

(१) **तातपादाः**—पूज्य पिता। तात शब्द पिता, चाचा, ताऊ आदि पितृतुल्य के लिए आता है। पाद शब्द आदरसूचक है। यहाँ आदर अर्थ में बहुवचन है। (२) **धर्मतः०**—मेरे भी ये धर्म-पिता हैं। लव को अभी तक ज्ञात नहीं है कि राम उसके वास्तविक पिता हैं, अतः वह राम को धर्मपिता कहता है। (३) **एवं०**—एवं—इस प्रकार के, व्यपदेश—नाम को, भागिनः—धारण करने वाले। व्यपदेशं भजन्ते इति। एवम्+व्यपदेश+भज्+घिनुण् (इन्)। संपृचा० (३-२-१४२) से घिनुण्। व्यपदिश्यते अनेन इति व्यपदेशः (जिस नाम से पुकारा जाता है, अर्थात् नाम), वि+अप+दिश्+घञ्। (४) **रामायण०**—रामायण की कथा के मुख्य पात्र। रामायणस्य कथायाः पुरुषाः, तत्पु०। (५) **ज्येष्ठतातः**—बड़े पिता जी अर्थात् राम। (६) **अवेहि**—जानो। अव+आ+इ+लोट् म० १। अव+इ और अव+आ+इ का अर्थ जानना होता है। (७) **सोल्लासम्**—आनन्द के साथ। उल्लासेन सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। दिष्टचा—भाग्य से। सुप्रभातम्—सुन्दर प्रभात है, अर्थात् आज का दिन शुभ है। निर्वर्ण्य—ध्यान से देखकर। (८) **प्राचेतसा०**—वाल्मीकि का शिष्य। प्राचेतसस्य अन्तेवासी, तत्पु०। अभिवादयते—प्रणाम करता है। अभि+वद्+णिच्+लट् प्र० १। (९) **आलिङ्ग्य**—आलिंगन करके। आ+लिङ्ग्+ल्यप्। कृतम्—बस करो। कृतम् के कारण अत्यन्तविनयेन में तृतीया है। (१०) **अपरिश्लथम्**—जोर से, दृढता से। न परिश्लथम्, नञ् तत्पु०। (११) **परिरम्भस्व**—आलिंगन करो। परि+रभ्+लोट् म० १। (१२) **परिणत०**—परिणत—विकसित, कठोर—पूर्ण,

पुष्कर—कमल के, गर्भ—अन्दर के, छद—पत्ते के तुल्य, पीन—पुष्ट, मसृण—चिकने और, सुकुमारः—कोमल। परिणतं कठोरं यत् पुष्करम् (कर्मधा०), तस्य गर्भच्छद इव पीनः मसृणः सुकुमारः, उपमान कर्मधा०। परिणत—परि+नम्+क्त। (१३) नन्दयति—आनन्दित करता है। नन्द्+णिच्+लट् प्र० १। (१४) चन्द्र०—चन्द्र और चन्दन के रस के तुल्य शीतल। चन्द्रः चन्दनं च (द्वन्द्व), तयोः निष्यन्दः (तत्पु०), स इव जडः, उपमान कर्मधा०। (१५) दोनों पदों में दो उपमाएँ लुप्त हैं, अतः लुप्तोपमा अलंकार है।

२३. लवः—(स्वगतम्) ईदृशो मां प्रत्यमीषामकारणस्नेहः। मया पुनरेभ्य एव द्रोग्धुमज्ञेनायुधपरिग्रहः कृतः। (प्रकाशम्) मृष्यन्तां त्विदानीं लवस्य बालिशतां तातपादाः।

लव—(मन में) मेरे प्रति इनका ऐसा अकारण स्नेह है और मुझ मूर्ख ने इनसे ही द्रोह करने के लिए शस्त्र धारण किया था। (प्रकट) पूज्य पिताजी, अब आप लव की मूर्खता क्षमा करें।

२४. रामः—किमपराद्धं वत्सेन ?

राम—बच्चे ने क्या अपराध किया है ?

२५. चन्द्रकेतुः—अश्वानुयात्रिकेभ्यस्तातप्रतापाविष्करणमुपश्रुत्य वीरायितमनेन।

चन्द्रकेतु—अश्व के अनुयायियों (रक्षकों) से आपके प्रताप का वर्णन सुनकर इसने वीरोचित कार्य किया था।

२६. रामः—नन्वयमलंकारः क्षत्रियस्य।

न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां विषहते
स तस्य स्वो भावः प्रकृतिनियतत्वादकृतकः।
मयूखैरश्रान्तं तपति यदि देवो दिनकरः
किमाग्नेयो ग्रावा निकृत इव तेजांसि वमति ॥१४॥

अन्वय—तेजस्वी अपरेषां प्रसृतं तेजः न विषहते, स तस्य प्रकृतिनियतत्वात् अकृतकः स्वः भावः। यदि देवः दिनकरः मयूखैः अश्रान्तं तपति, किम् आग्नेयः ग्रावा निकृतः इव तेजांसि वमति ? ॥

राम—यह तो क्षत्रिय का आभूषण है।

तेजस्वी व्यक्ति दूसरों के फैले हुए तेज को नहीं सहन करता है। यह प्रकृति-प्रदत्त होने से उसका जन्म सिद्ध स्वभाव है। यदि भगवान् सूर्य किरणों से अनवरत तपते हैं तो क्या कारण है कि सूर्यकान्त मणि तिरस्कृत सी होकर आग उगलती है? ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या

तेजस्वी—प्रतापवान् नरः, अपरेषाम्—अन्येषाम्, प्रसृतं—विस्तीर्णम्, तेजः—प्रतापम्, न—नैव, विषहते—मृष्यति। सः—परप्रतापासहनरूपो धर्मः, तस्य—तेजस्विनः, प्रकृति०—प्रकृत्या स्वभावेन नियतत्वात् निर्धारितत्वात्, अकृतकः—अकृत्रिमः, जन्मसिद्ध इत्यर्थः, स्वः—स्वकीयः, भावः—धर्मः अस्ति, स्वभावोऽस्तीत्यर्थः, यदि—अथ चेत्, देवः—भगवान्, दिनकरः—सूर्यः, मयूखैः—किरणैः, अश्रान्तम्—अनवरतम्, तपति—तापं करोति तर्हि, किं—केन कारणेन, आग्नेयः—अग्निसंबद्धः, ग्रावा—पाषाणः, सूर्यकान्तमणिरित्यर्थः, निकृतः इव—तिरस्कृत इव, तेजांसि—अग्नीन्, वमति—उद्गिरति। अत्रोत्प्रेक्षाऽर्थान्तरन्यासश्चालंकारौ। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अकारण०**—अकारण स्नेह। अविद्यमानं कारणं यस्य सः अकारणः, बहु०। अकारणः स्नेहः, कर्मधा०। (२) **एभ्य एव द्रोग्धुम्**—इनसे ही द्रोह करने के लिए। क्रुधद्रुहेर्ष्या० (१-४-३७) से द्रुह् के योग में चतुर्थी। एभ्य एवाभिद्रुग्धम् और एभ्य एवाभिद्रोग्धुम् पाठ अशुद्ध हैं। उपसर्गयुक्त द्रुह् के साथ क्रुधद्रुहे० (१-४-३८) से द्वितीया होती है। (३) **आयुध०**—शस्त्र-धारण। आयुधानां परिग्रहः, तत्पु०। (४) **मृष्यन्ताम्**—क्षमा करें। मृष्+लोट् प्र० ३। (५) **बालिशताम्**—मूर्खता को। अज्ञे मूढयथाजातमूर्खवैधेय-बालिशाः, इत्यमरः। (६) **अपराद्धम्**—अपराध किया। अप+राध्+क्त।

(७) **अश्वानु०**——घोड़े के अनुयायियों से। अश्वस्य आनुयात्रिकेभ्यः, तत्पु०। आनुयात्रिक——अनुयात्रा प्रयोजनं येषां ते, अनुयात्रा+ठञ् (इक)। प्रयोजनम् (५-१-१०६) से ठञ्। (८) **तात०**——तात——पिता अर्थात् आपके, प्रताप——प्रभाव के, आविष्करणम्——विवरण को। तातस्य प्रतापः (तत्पु०), तस्य आविष्करणम्, तत्पु०। (६) **उपश्रुत्य**——सुनकर। उप+श्रु+ल्यप्। बीच में त् का आगम। (१०) **वीरायितम्**——वीरतुल्य आचरण किया। वीरवत् आचरितम्, वीर+क्यङ (य)+क्त। क्यङ प्रत्यय करके वीरायते नामधातु बनती है। (११) **प्रसृतम्**——फैले हुए, विस्तृत। प्र+सृ+क्त। (१२) **विषहते**——सहन करता है। वि+सह्+लट् प्र० १। परिनि० (८-३-७०) से स् को ष्। स्वो भावः——स्वभाव, निजी धर्म। (१३) **प्रकृति०**——प्रकृति——स्वभाव से, नियतत्वात्——निर्धारित होने के कारण। प्रकृत्या नियतत्वात्, तत्पु०। नियत——नि+यम्+क्त। (१४) **अकृतकः**——अकृत्रिम, स्वाभाविक। न कृतकः, नञ् तत्पु०। कृत से स्वार्थ में कन्। (१५) **अश्रान्तम्**——निरन्तर, अविराम भाव से। न श्रान्तम्, नञ् तत्पु०। श्रान्त——श्रम्+क्त। (१६) **आग्नेयः०**——सूर्यकान्त मणि, अग्नि से संबद्ध मणि। सूर्य की किरणें पड़ने पर सूर्यकान्त मणि से अग्नि की लपटें निकलने लगती हैं। (१७) **निकृत इव**——तिरस्कृत सा होकर। नि+कृ+क्त। (१८) **वमति**——उगलता है। वम्+लट् प्र० १। सूर्यकान्तमणि सूर्य की किरणों के पड़ने से अपने आपको अपमानित समझती है, अतः प्रत्युत्तर में आग उगलती है। इसी प्रकार तेजस्वी लव ने राम के शौर्य-वर्णन को सुनकर अपना तेजोमय रूप प्रकट किया है। (१६) इस श्लोक में निकृत इव में इव उत्प्रेक्षासूचक है, अतः क्रियोत्प्रेक्षा है। उत्तरार्धगत विशेष के द्वारा पूर्वार्धगत सामान्य का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। (२०) इसी भाव के अन्य सुभाषित ये हैं :——(क) प्रकृतिः खलु सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं यया। (किराता० २-२१)। (ख) यदचेतनोऽपि पादैः स्पृष्टः प्रज्वलति सवितुरिनकान्तः। तत्तेजस्वी पुरुषः परनिकृतिं कथं सहते। (भर्तृहरि नीति० ३७)

२७. **चन्द्रकेतुः——अमर्षोऽप्यस्यैव शोभते महावीरस्य।**

पश्यन्तु हि तातपादाः प्रियवयस्यनियुक्तेन जृम्भकास्त्रेण विक्रम्य स्तम्भितानि सर्वसैन्यानि।

चन्द्रकेतु—असहिष्णुता भी इसी महावीर को शोभा देती है। पिता जी, देखिए, प्रिय मित्र के द्वारा प्रयुक्त जृम्भक अस्त्र के प्रताप ने सारी सेना को निश्चेष्ट कर दिया है।

२८. रामः—(सविस्मयखेदं निर्वर्ण्य। स्वगतम्) अहो, वत्सस्य ईदृशः प्रभावः। (प्रकाशम्) वत्स, संह्रियतामस्त्रम्। त्वमपि चन्द्रकेतो, निर्व्यापारतया विलक्षाणि सान्त्वय बलानि।

(लवः प्रणिधानं नाटयति।)

राम—(आश्चर्य और खेद के साथ देखकर, मन में) ओह, वत्स का ऐसा प्रभाव है। (प्रकट) वत्स, अस्त्र को लौटा लो। हे चन्द्रकेतु, तुम भी निश्चेष्टता के कारण आश्चर्यचकित अपनी सेनाओं को सान्त्वना दो।

(लव ध्यान लगाने का अभिनय करता है)

२९. चन्द्रकेतुः—यथा निर्दिष्टम्।

(इति निष्क्रान्तः।)

चन्द्रकेतु—जैसी (आपकी) आज्ञा।

(प्रस्थान)

टिप्पणी

(१) **अमर्षः**—क्रोध, असहनशीलता। न मर्षः, नञ् तत्पु०। मर्ष—मृष्+घञ्। (२) **प्रिय०**—प्रिय मित्र के द्वारा प्रयुक्त। प्रियवयस्येन नियुक्तः, तेन, तत्पु०। नियुक्त—नि+युज्+क्त। (३) **विक्रम्य**—पराक्रम करके, अर्थात् जृम्भक अस्त्र के प्रताप से। वि+क्रम्+ल्यप्। स्तम्भितानि—निश्चेष्ट। स्तम्भ्+णिच्+क्त। (४) **सर्व०**—सारी सेना को। सर्वं सैन्यं तानि, कर्मधा०। (५) **सविस्मय०**—आश्चर्य और खेद के साथ। विस्मयश्च खेदश्च (द्वन्द्व),

ताभ्यां सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (६) संह्रियताम्--रोको, लौटाओ। सम्+हृ+कर्मवाच्य लोट् प्र० १। (७) निर्व्यापारतया--निश्चेष्टता के कारण। निर्गतः व्यापारात् निर्व्यापारः (तत्पु०), तस्य भावः तया। (८) विलक्षाणि--आश्चर्ययुक्त। विलक्षो विस्मयान्विते, इत्यमरः। सान्त्वय--सान्त्वना दो। बलानि--सेनाओं को। (९) प्रणिधानम्--ध्यान लगाना। प्र+नि+धा+ल्युट् (अन)। नेर्गद० (८-४-१७) से नि के न् को ण्। नाटयति--अभिनय करता है। ध्यान लगाने का अभिनय करता है। (१०) निर्दिष्टम्--आज्ञा दी, जैसी आपकी आज्ञा। निर्+दिश्+क्त।

३०. लवः--तात, प्रशान्तमस्त्रम्।

लव--तात, अस्त्र शान्त हो गया है।

३१. रामः--सरहस्यप्रयोगसंहारजृम्भकास्त्राणि दिष्टया वत्सस्यापि संपद्यन्ते।

ब्रह्मादयो ब्रह्महिताय तप्त्वा
परःसहस्रं शरदस्तपांसि।
एतान्यपश्यन्गुरवः पुराणाः
स्वान्येव तेजांसि तपोमयानि ॥१५॥

अथैतामस्त्रमन्त्रोपनिषदं भगवान्कृशाश्वः परःसहस्राधिकसंवत्सरपरिचर्यानिरतायान्तेवासिने कौशिकाय प्रोवाच। स भगवान्मह्यमिति गुरुपूर्वानुक्रमः। कुमारस्य कुतः संप्रदाय इति पृच्छामि।

अन्वय--ब्रह्मादयः पुराणाः गुरवः ब्रह्महिताय परःसहस्रं शरदः तपांसि तप्त्वा स्वानि एव तपोमयानि तेजांसि एतानि अपश्यन्।

राम--सौभाग्य से इस वत्स को भी प्रयोग और संहार के रहस्यात्मक मन्त्रों से युक्त जृम्भक अस्त्र प्राप्त हैं।

पाठभेद--३१. क्व० परःसहस्राः (हजारों)। पश्यन्, अदर्शन् (देखा)।

ब्रह्मा आदि प्राचीन आचार्यों ने वेदों और ब्राह्मणों की रक्षा के लिए हजारों वर्षों से भी अधिक समय तक तप करके अपने ही तपोमय तेज के तुल्य इन (अस्त्रों) को प्राप्त किया था।।१५।।

जृम्भक अस्त्र की इस मन्त्रमयी रहस्य-विद्या को भगवान् कृशाश्व ने हजारों वर्षों से भी अधिक समय तक सेवा-शुश्रूषा में संलग्न, अपने शिष्य महर्षि विश्वामित्र को बताया था। उन भगवान् विश्वामित्र ने मुझे बताया था, यह इन अस्त्रों का गुरु-परम्परागत क्रम है। मैं यह पूछना चाहता हूँ कि कुमार को किस गुरु-परम्परा से ये अस्त्र प्राप्त हुए हैं?

संस्कृत-व्याख्या

(देखो अंक १ श्लोक १५ पृष्ठ ३६ पर इसकी व्याख्या तथा टिप्पणी)

टिप्पणी

(१) **प्रशान्तम्**—शान्त हो गया, अर्थात् जृम्भक अस्त्र लौटा लिया है, अतः उसका प्रभाव शान्त हो गया है। प्र+शम्+क्त। (२) **सरहस्य०**—सरहस्य—रहस्यात्मक मंत्रों से युक्त, प्रयोग—प्रयोग और, संहार—संहार वाले, जृम्भकास्त्राणि—जृम्भक अस्त्र। रहस्येन सहितौ सरहस्यौ (बहु०), सरहस्यौ प्रयोगसंहारौ येषां तानि (बहु०), तथाविधानि जृम्भकास्त्राणि, कर्मधा०। (३) **दिष्ट्या**—भाग्य से। संपद्यन्ते—सिद्ध हैं, प्राप्त हैं। सम्+पद्+लट् प्र० ३। (४) **अस्त्र०**—अस्त्र की मन्त्रात्मक रहस्य विद्या को। उपनिषद्—रहस्य विद्या। उप+नि+सद्+क्विप् (०)। सदिरप्रतेः (८–३–६६) से स् को ष्। अस्त्रमन्त्राणाम् उपनिषदम्, तत्पु०। (५) **परःसहस्रा०**—परःसहस्राधिकसंवत्सर—हजारों वर्षों से अधिक समय तक, परिचर्या—सेवा में, निरत—लगे हुए। सहस्रात् परे परःसहस्राः (तत्पु०), तेभ्यः अधिकाः ये संवत्सराः, तान् व्याप्य या परिचर्या, तस्यां निरताय, तत्पु०। अन्तेवासिने—शिष्य को। परःसहस्राः में राजदन्तादिषु० (२–२–३१) से पर का पूर्व प्रयोग और पारस्करादिगण में होने से बीच में स् का आगम। (६) **गुरु०**—गुरु-परम्परागत क्रम। पूर्वः अनुक्रमः पूर्वानुक्रमः (कर्मधा०), गुरूणां पूर्वानुक्रमः, तत्पु०। (७) **संप्रदायः**—परम्परागत ज्ञान। संप्रदीयते इति संप्रदायः, सम्+प्र+दा+घञ (अ)। बीच में य् का आगम।

३२. लवः——स्वतःप्रकाशान्यावयोरस्त्राणि।

लव——हम दोनों को ये अस्त्र स्वतः प्रतिभासित हुए हैं।

३३. रामः——(विचिन्त्य) किं न संभाव्यते। प्रकृष्ट-पुण्योपादानकः कोऽपि महिमा स्यात्। द्विवचनं तु कथम्?

राम——(सोचकर) क्या बात संभव नहीं है? उत्कृष्ट पुण्य-मूलक यह कोई (अज्ञात) महिमा हो सकती है (जिससे ये अस्त्र इन्हें प्राप्त हुए हैं)। यह द्विवचन का प्रयोग क्यों किया है?

३४. लवः——भ्रातरावावां यमौ।

लव——हम दोनों जुड़वाँ भाई हैं।

३५. रामः——स तर्हि द्वितीयः क्व?

राम——तो वह दूसरा कहाँ है?

(नेपथ्ये)

३६. दण्डायन,

आयुष्मतः किल लवस्य नरेन्द्रसैन्यै-

रायोधनं ननु किमात्थ सखे! तथेति।

अद्यास्तमेतु भुवनेषु च राजशब्दः

क्षत्रस्य शस्त्रशिखिनः शममद्य यान्तु॥१६॥

अन्वय——ननु आयुष्मतः लवस्य नरेन्द्रसैन्यैः आयोधनं किल? हे सखे, किम् आत्थ, तथा इति? अद्य भुवनेषु राजशब्दः अस्तम् एतु। अद्य क्षत्रस्य शस्त्र-शिखिनः शमं यान्तु॥

(नेपथ्य में)

हे दण्डायन,

क्या चिरंजीव लव का महाराज (राम) के सैनिकों के साथ युद्ध हो रहा

पाठभेद——३६. का० काले——भुवनेष्वधिराजशब्दः (भुवनों में अधिराज अर्थात् सम्राट् शब्द)

है? हे मित्र, क्या कहा कि 'हाँ हो रहा है'? (यदि ऐसा है तो) आज संसार में 'राजा' शब्द समाप्त हो जाएगा और आज क्षत्रियों की शस्त्ररूपी अग्नि (सदा के लिए) बुझ जाएगी।।१६।।

संस्कृत-व्याख्या

ननु—किमिति, आयुष्मतः—चिरजीविनः, लवस्य—लवनामकस्य ममानुजस्य, नरेन्द्रसैन्यैः—महाराजसैनिकैः, आयोधनं—युद्धम्, प्रारब्धमिति शेषः, किल—निश्चयेन, हे सखे—हे मित्र, किम् आत्थ—किं वदसि, तथेति—युद्धं प्रारब्धमिति तर्हि, अद्य—अस्मिन् दिवसे, भुवनेषु—लोकेषु, राजशब्दः—राजेतिशब्दः, अस्तं—विनाशम्, एतु—गच्छतु। अद्य—अस्मिन् दिवसे, क्षत्रस्य—क्षत्रियस्य, शस्त्र०—शस्त्राणि आयुधानि एव शिखिनः वह्नयः, शमं—शान्तिम्, यान्तु—प्राप्नुवन्तु। अत्र रूपकमलंकारः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **स्वतः०**—स्वयं प्रकाशित, स्वतः प्रतिभासित। स्वतः प्रकाशः येषां तानि, बहु०। (२) **आवयोः**—हम दोनों को, अर्थात् हम दोनों भाई कुश और लव को। (३) **संभाव्यते**—संभव है। सम्+भू+णिच्+कर्म० लट् प्र० १। (४) **प्रकृष्ट०**—प्रकृष्ट—उत्कृष्ट, पुण्य—पवित्र कार्य हैं, उपादानकः—मूलकारण जिसके। प्रकृष्टं पुण्यम् उपादानं यस्य सः, बहु०। समासान्त क प्रत्यय। (५) **महिमा**—महत्त्व, महत्त्वपूर्ण कार्य। महत्+इमनिच् (इमन्)। महत् के अत् का लोप। यमौ—युगल, जुड़वाँ भाई। (६) **आयुष्मतः**—चिरंजीव। आयुः अस्य अस्तीति, आयुष्+मतुप् (मत्)+ष० १। (७) **नरेन्द्र०**—महाराज के सैनिकों से। नरेन्द्रस्य सैन्यैः, तत्पु०। (८) **आयोधनं ननु**—क्या युद्ध हो रहा है? युद्धमायोधनं जन्यम्, इत्यमरः। (९) **किमात्थ**—क्या कहा? यह कुश के द्वारा आकाशभाषित है। इसका उत्तर है—तथेति, हाँ ऐसी ही बात है। आत्थ—ब्रू+लट् म० १। ब्रुवः पञ्चानाम्० (३-४-८४) से ब्रू को आह् आदेश और सि को थ। (१०) **अस्तमेतु**—अस्त हो जाए, अर्थात् आज संसार से राजा नाम का शब्द ही समाप्त कर दूंगा। (११) **शस्त्र०**—शस्त्ररूपी अग्नि। शस्त्राणि एव शिखिनः, रूपककर्मधा०। (१२) इस श्लोक में शस्त्रशिखिनः में रूपक अलंकार है।

३७. रामः—

अथ कोऽयमिन्द्रमणिमेचकच्छवि-
ध्वनिनैव बद्धपुलकं करोति माम्।
नवनीलनीरधरधीरगर्जित-
क्षणबद्धकुड्मलकदम्बडम्बरम् ॥१७॥

अन्वय—अथ इन्द्रमणिमेचकच्छविः कः अयं ध्वनिना एव मां नवनीलनीरधरधीरगर्जितक्षणबद्धकुड्मलकदम्बडम्बरं बद्धपुलकं करोति।

राम—इन्द्रनीलमणि के तुल्य श्यामवर्ण यह कौन अपनी ध्वनि से ही नवीन एवं नीले मेघ के गंभीर गर्जन के समय विकसित कलियों से युक्त कदम्ब-वृक्ष के सदृश मुझको रोमांचित कर रहा है॥१७॥

संस्कृत-व्याख्या

अथ—वाक्यारम्भार्थकम् अव्ययम्, इन्द्रमणि०—इन्द्रमणिः इव इन्द्रनील-मणिवत् मेचका श्यामा छविः कान्तिः यस्य सः, कः अयं—कोऽसौ बालकः, ध्वनिना एव—स्वकण्ठस्वरेणैव, मां—रामम्, नव०—नवः नूतनः नीलः श्यामः यः नीरधरः जलदः तस्य यत् धीरं गम्भीरं गर्जितं स्तनितं तस्य क्षणे समये बद्धाः समुद्भूताः, विकसिता इत्यर्थः, कुड्मलाः मुकुलाः यस्य तादृशो यः कदम्बः नीप-वृक्षः तस्य डम्बरं सदृशम्, बद्धपुलकं—बद्धाः संजाताः पुलकाः रोमाञ्चाः यस्य तम् रोमाञ्चितम्, करोति—विदधाति। अत्रोपमाऽलंकारः। मञ्जुभाषिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **इन्द्रमणि०**—इन्द्रमणि—इन्द्रनील मणि के सदृश, मेचक—श्याम, छविः—कान्ति वाला। इन्द्रमणिः इव मेचका छविः यस्य सः, बहु०। (२) **बद्ध०**—रोमाञ्चित, पुलकों से युक्त। बद्धाः पुलकाः यस्य तम्, बहु०। (३) **नवनील०**—नव—नवीन एवं, नील—नीले, नीरधर—बादल के, धीर-गर्जित—गंभीर गर्जन के, क्षण—समय पर, बद्ध—विकसित या उत्पन्न, कुड्मल—कलियों से युक्त, कदम्ब—कदम्ब वृक्ष के, डम्बरम्—सदृश। नवः नीलः यः

नीरधरः (कर्मधा०), तस्य यत् धीरं गर्जितम्, तस्य क्षणे बद्धाः कुड्मलाः यस्य सः (बहु०), तादृशः यः कदम्बः (कर्मधा०), तस्य डम्बरम्, तत्पु०। नीरधर—धरतीति धरः, ध+अच्, नीरस्य धरः, तत्पु०। गर्जित—गर्ज्+क्त। बद्ध—बन्ध्+क्त। क्षण का अर्थ उत्सव भी यहाँ लिया जा सकता है। गर्जितमेव क्षणः, तेन बद्धाः कुड्मला यस्य सः। नवीन बादल के धीर गर्जनरूपी उत्सव के कारण विकसित कलियों से युक्त। (४) इस श्लोक में इन्द्रमणिमेचक० में इव का अर्थ लुप्त है, अतः लुप्तोपमा अलंकार है।

३८. लवः—अयमसौ मम ज्यायानार्यः कुशो नाम भरताश्रमात्प्रतिनिवृत्तः।

लव—ये मेरे ज्येष्ठ भाई आर्य कुश भरत मुनि के आश्रम से लौटे हैं।

३९. रामः—(सकौतुकम्) तर्हि वत्स, इत एवैतमाह्वयायुष्मन्तम्।

राम—(कुतूहल के साथ) तो हे वत्स, इस चिरंजीव को इधर ही बुलाओ।

४०. लवः—यदाज्ञापयति।

(इति निष्क्रान्तः।)

लव—जो आपकी आज्ञा।

(प्रस्थान।)

(ततः प्रविशति कुशः)

४१. कुशः—(सक्रोधं कृतधैर्यं धनुरास्फाल्य)

दत्तेन्द्राभयदक्षिणैर्भगवतो वैवस्वतादामनो-
र्दृप्तानां दमनाय दीपितनिजक्षत्रप्रतापाग्निभिः।
आदित्यैर्यदि विग्रहो नृपतिभिर्धन्यं ममैतत्ततो
दीप्तास्त्रस्फुरदुग्रदीधितिशिखानीराजितज्यं धनुः ॥१८॥

(विकटं परिक्रामति।)

पाठभेद—४१. का० काले—दहनाय (जलाने के लिए)

अन्वय—भगवतः वैवस्वतात् मनोः आ दत्तेन्द्राभयदक्षिणैः दृप्तानां दमनाय दीपितनिजक्षत्रप्रतापाग्निभिः आदित्यैः नृपतिभिः यदि विग्रहः ततः दीप्तास्त्र-स्फुरदुग्रदीधितिशिखानीराजितज्यं मम एतत् धनुः धन्यम् ।।

(तदनन्तर कुश का प्रवेश)

कुश——(क्रोध के साथ तथा धैर्यपूर्वक धनुष की टंकार करके)

भगवान् वैवस्वत मनु से लेकर आज तक इन्द्र को अभयदान देने वाले तथा अभिमानियों के दमन के लिए अपने क्षात्र-तेज-रूपी अग्नि को प्रदीप्त करने वाले सूर्यवंशी राजाओं से यदि युद्ध होता है तो तेजोमय अस्त्रों की चमकती हुई एवं तीक्ष्ण किरणों की शिखाओं से जिसकी आरती उतारी गई है ऐसी प्रत्यंचा से युक्त मेरा यह धनुष धन्य है ।।१८।।

(उद्धत भाव से घूमता है)

संस्कृत-व्याख्या

भगवतः——ऐश्वर्यशालिनः, वैवस्वतात्——विवस्वतः सूर्यस्य अपत्यं पुमान् वैवस्वतः तस्मात्, मनोः आ——महाराजं मनुमारभ्य, दत्तेन्द्रा०——दत्ता वितीर्णा इन्द्राय सुरेश्वराय अभयमेव दक्षिणा दानं यैस्तैः, दृप्तानां——गर्वयुक्तानाम्, दम-नाय——विनाशाय, दीपित०——दीपितः प्रज्वालितः निजः स्वकीयः क्षत्रप्रतापः क्षात्रतेजः एव अग्निः वह्निः यैस्तैः, आदित्यैः——सूर्यवंशोद्भवैः, नृपतिभिः——भूपैः, यदि विग्रहः——यदि युद्धं प्रवर्तते, ततः——तर्हि, दीप्तास्त्र०——दीप्तानां तेजो-मयानाम् अस्त्राणाम् आयुधानां स्फुरन्त्यः विलसन्त्यः उग्राः तीक्ष्णाः या दीधितयः किरणाः तासां शिखाभिः अग्रभागैः नीराजिता कृतनीराजना ज्या मौर्वी यस्य तत्, मम——कुशस्य, एतत्——इदम्, धनुः——चापम्, धन्यं——प्रशंसनीयं भवेत् । अत्र रूपकमलंकारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **ज्यायान्**——बड़ा, ज्येष्ठ । यहाँ बड़ा भाई अर्थ है । वृद्ध+ईयसुन् (ईयस्) । वृद्धस्य च (५–३–६२) से वृद्ध को ज्य आदेश । (२) **भरताश्र-मात्**——भरत मुनि के आश्रम से । भरतस्य आश्रमात्, तत्पु० । (३) **प्रतिनि-वृत्तः**——लौटा है । प्रति+नि+वृत्+क्त । (४) **आह्वय**——बुलाओ । आ+ह्वे

+लोट् म० १। (५) **कृतधैर्यम्**--धैर्य के साथ। कृतं धैर्यं यस्मिन् तत्, बहु०। (६) **आस्फाल्य**--टंकार करके। आ+स्फुर्+णिच्+ल्यप्। चिस्फुरोणौं (६-१-५४) से उ को आ। र् को ल्। (७) **दत्तेन्द्रा०**--इन्द्र को अभयदान देने वाले। दत्ता इन्द्राय अभयमेव दक्षिणा यैः तैः, बहु०। सूर्यवंशी राजा देवासुरसंग्राम में इन्द्र की सहायता करते थे, अतः इन्द्र के रक्षक थे। (८) **वैवस्वतात्०**--विवस्वान् अर्थात् सूर्य के पुत्र मनु से लेकर। विवस्वतः अपत्यं वैवस्वतः, विवस्वत्+अण्। आ मनोः=मनु से लेकर। आ मर्यादा अर्थ में है, अतः आ के योग में पंचमी। (९) **दृप्तानाम्**--गर्वयुक्तों के। दृप्त--दृप्+क्त। दमनाय--दमन या नाश के लिए। (१०) **दीपित०**--दीपित--जलाया है, निज--अपने, क्षत्र--क्षात्रधर्म के, प्रताप--प्रभावरूपी, अग्निभिः--अग्नि को जिन्होंने। दीपितः निजः क्षत्रप्रताप एव अग्निः यैः तैः, बहु०। दीपित--दीप्+णिच्+क्त। (११) **आदित्यैः**--सूर्यवंशीयों से। अदितेरपत्यम् आदित्यः, अदिति+ण्य (य) दित्यदित्या० (४-१-८५) से ण्य। आदित्यस्य अपत्यानि पुमांसः, आदित्य+अण्=आदित्याः। विग्रहः--युद्ध। विग्रहः समरे काये, इत्यमरः। (१२) **दीप्तास्त्र०**--दीप्तास्त्र--तेजोमय अस्त्रों की, स्फुरत्--चमकती हुई, उग्र--तीक्ष्ण, दीधिति--किरणों की, शिखा--शिखाओं से, नीराजित--आरती की गई है, ज्यम्--प्रत्यंचा की जिसकी। दीप्तानाम् अस्त्राणां स्फुरन्त्यः उग्राः याः दीधितयः, तासां शिखाभिः नीराजिता ज्या यस्य तत्, बहु०। नीराजित--निर्+राज्+णिच्+क्त। (१३) इस श्लोक में अभयदक्षिणैः और क्षत्रप्रतापाग्निभिः में रूपक अलंकार है।

४२. रामः--कोऽप्यस्मिन्क्षत्रियपोतके पौरुषातिरेकः। तथा हि--

दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा
धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम्।
कौमारकेऽपि गिरिवद्गुरुतां दधानो
वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव॥१९॥

अन्वय—दृष्टिः तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा, धीरोद्धता गतिः धरित्रीं नमयति इव, कौमारके अपि गिरिवद् गुरुतां दधानः किम् अयं वीरः रसः ? उत दर्प एव एति।

राम—इस क्षत्रिय बालक में अवर्णनीय शक्ति का उत्कर्ष है। क्योंकि—

इसकी दृष्टि तीनों लोकों की शक्ति के उत्कर्ष को तृणवत् तिरस्कृत कर रही है तथा इसकी धीर और गर्वयुक्त गति पृथ्वी को मानो झुका देती है। बाल्यावस्था में भी पर्वत के सदृश गौरव को धारण किए हुए क्या यह वीर रस है? या साक्षात् गर्व ही आ रहा है? ॥१९॥

संस्कृत-व्याख्या

दृष्टिः—प्रेक्षणम्, तृणीकृत०—तृणीकृतः तृणवद् गणितः जगत्त्रयस्य त्रिभुवनस्य सत्त्वस्य बलस्य सारः उत्कर्षः यया सा, धीरोद्धता—धीरा धीरगुणोपेता उद्धता दर्पयुक्ता च, गतिः—पादन्यासः, धरित्रीं—पृथ्वीम्, नमयति इव—अवनतामिव करोति। कौमारके—शैशवेऽपि, गिरिवद्—शैलवत्, गुरुतां—गौरवम्, दधानः—धारयन्, किम्, अयम्—एषः, वीरः रसः—मूर्तरूपो वीरनामको रसः, उत—अथवा, दर्प एव—साक्षाद् गर्व एव, एति—आगच्छति। अत्रोपमोत्प्रेक्षाऽतिशयोक्तिश्चालंकाराः। वसन्ततिलका वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **क्षत्रिय०**—क्षत्रिय के बालक में। क्षत्रियस्य पोतके, तत्पु०। अज्ञातः पोतः पोतकः, अज्ञात अर्थ में कन् (क) प्रत्यय। (२) **पौरुषा०**—पौरुष—शक्ति की, अतिरेकः—अधिकता या उत्कर्ष। पौरुषस्य अतिरेकः, तत्पु०। पुरुषस्य भावः कर्म वा पौरुषम्, पुरुष+अण्। अतिरेकः—अति+रिच्+घञ् (अ)। (३) **तृणीकृत०**—तृणीकृत—तृणवत् तुच्छ माना है, जगत्त्रय—तीनों लोकों की, सत्त्व—शक्ति के, सारा—उत्कर्ष को जिसने। तृणीकृतः जगत्त्रयस्य सत्त्वस्य सारः यया सा, बहु०। तृणीकृत—अतृणः तृणः कृतः, अभूततद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय। अतएव ण के अ को ई। सत्त्व का अर्थ प्राणी भी होता है। प्राणी अर्थ लेने पर अर्थ होगा—तीनों लोकों के प्राणियों के बल को तृणवत् मानने वाली। (४) **धीरोद्धता**—धीर और उद्धत अर्थात् गर्वयुक्त। धीरा चासौ उद्धता,

कर्मधा०। (५) **नमयतीव**––मानो झुका देती है। नम्+णिच्+लट् प्र० १।
(६) **कौमारके०**––कुमारावस्था में भी। कुमारस्य भावः कौमारम्, कुमार+अण्, कौमार से स्वार्थ में कन् (क) प्रत्यय। (७) **दधानः**––धारण करता हुआ। धा+शानच्। तच्छील अर्थ में ताच्छील्य० (३–२–१२९) से चानश् प्रत्यय करने पर भी दधानः बनेगा। (८) इस श्लोक में गिरिवद् में उपमा है। नमयतीव में इव उत्प्रेक्षा-सूचक है। कुश को वीर रस और दर्प कहने से अतिशयोक्ति है। किमयम् के द्वारा सन्देह बताने से सन्देहालंकार भी है। यह श्लोक दशरूपक (२–११) में विलास का उदाहरण दिया गया है। 'गतिः सधैर्या दृष्टिश्च विलासे सस्मितं वचः' (दश० २–११)।

४३. लवः––(उपसृत्य) जयत्वार्यः।

लव––(समीप जाकर) आर्य की जय हो।

४४. कुशः––नन्वायुष्मन्, किमियं वार्ता युद्धं युद्धमिति?

कुश––चिरंजीव, 'युद्ध युद्ध' यह क्या बात हो रही थी?

४५. लवः––यत्किंचिदेतत्। आर्यस्तु दृप्तं भावमुत्सृज्य विनयेन वर्तताम्।

लव––यह कोई बात नहीं है। आप गर्वयुक्त भाव को छोड़कर विनय का व्यवहार कीजिए।

४६. कुशः––किमर्थम्?

कुश––क्यों?

४७. लवः––यदत्र देवो रघुनन्दनः स्थितः। स रामायणकथानायको ब्रह्मकोशस्य गोप्ता।

लव––क्योंकि यहाँ पर भगवान् राम उपस्थित हैं। वह रामायण की कथा के नायक हैं और वेदरूपी कोश के रक्षक हैं।

४८. कुशः––आशंसनीयपुण्यदर्शनः स महात्मा। किंतु स कथमस्माभिरुपगन्तव्य इति संप्रधारयामि।

कुश--उन महात्मा के पवित्र दर्शन अभीष्ट हैं। किन्तु मैं यह विचार कर रहा हूँ कि उनके पास हमें कैसे जाना चाहिए ?

४९. लवः--यथैव गुरुस्तथोपसदनेन।

लव--जिस प्रकार गुरुजनों के पास उसी प्रकार उनके पास जाना चाहिए।

५०.--कुशः--कथं हि नामैतत् ?

कुश--यह कैसे ?

५१. लवः--अत्युदात्तः सुजनश्चन्द्रकेतुरौर्मिलेयः प्रियवयस्येति सख्येन मामुपतिष्ठते। तेन संबन्धेन धर्मतस्तात एवायं राजर्षिः।

लव--अत्युत्कृष्ट विचार वाले एवं सज्जन उर्मिला-पुत्र चन्द्रकेतु 'प्रिय मित्र' इस प्रकार संबोधित करते हुए मित्रतापूर्वक मुझसे मिलते हैं। इस सम्बन्ध से यह राजर्षि (राम) हमारे धर्मपिता ही हैं।

५२. कुशः--संप्रत्यवचनीयो राजन्येऽपि प्रश्रयः।

(उभौ परिक्रामतः।)

कुश--अब क्षत्रिय के प्रति भी विनीत व्यवहार निन्दनीय नहीं है।

(दोनों घूमते हैं)

टिप्पणी

(१) **उपसृत्य**--पास जाकर । उप+सृ+ल्यप्। (२) **दृप्तं०**--गर्वयुक्त भाव को। उत्सृज्य--छोड़कर। उत्+सृज्+ल्यप्। (३) **रामायण०**--रामायण की कथा के नायक। रामायणस्य कथायाः नायकः, तत्पु०। (४) **ब्रह्मकोशस्य०**--वेदरूपी कोश का रक्षक। ब्रह्म एव कोशः तस्य, कर्मधा०। गोप्ता--गुप्+तृच्। (५) **आशंसनीय०**--आशंसनीय--अभीष्ट है, पुण्य--पवित्र, दर्शनः--दर्शन जिसका। आशंसनीयं पुण्यं दर्शनं यस्य सः, बहु०। (६) **उपगन्तव्यः**--समीप जाना चाहिए। उप+गम्+तव्य। (७) **संप्रधारयामि**--विचार कर रहा हूँ, निश्चय कर रहा हूँ। सम्+प्र+धृ+णिच्+लट् उ० १। (८) **उपसदनेन**--समीप जाने से। गुरु के तुल्य उनके पास जाना

चाहिए। उप+सद्+ल्युट् (अन) तृ० १। (९) **अत्युदात्तः**--अत्यन्त उत्कृष्ट। अतिशयेन उदात्त, प्रादितत्पु०। (१०) **औमिलेयः**--ऊर्मिला का पुत्र। ऊर्मिलायाः अपत्यं पुमान्, ऊर्मिला+ढक् (एय)। स्त्रीभ्यो ढक् (४-१-१२०) से ढक्। (११) **सख्येन**--मित्रता के भाव से। सख्युः भावः सख्यम्, सखि+य। सख्युर्यः (५-१-१२६) से भाव अर्थ में य। यहाँ पर करण में तृतीया है। (१२) **मामुपतिष्ठते**--मेरे पास आता है, मुझसे मिलता है। मित्रता करना या संगति करना अर्थ में यहाँ पर उपाद् देवपूजा० (वा०) से उप+स्था आत्मनेपदी है। उप+स्था+लट् प्र० १। (१३) **धर्मतः०**--धर्म से पिता है, अर्थात् राम मेरे धर्मपिता हैं। (१४) **अवचनीयः**--निन्दा के योग्य नहीं है। न वचनीयः, नञ् तत्पु०। वचनीय--निन्दा के योग्य। (१५) **राजन्ये०**--क्षत्रिय के प्रति भी। प्रश्रयः--प्रेम, विनय। प्रणयप्रश्रयौ समौ, इत्यमरः। यहाँ पर प्रश्रय का विनय या विनीत व्यवहार अर्थ है। कुश अपने आपको किसी से कम वीर नहीं समझता है, अतः वह राम को प्रणाम करने में लज्जा अनुभव कर रहा था। धर्मपिता मानकर उन्हें प्रणाम करता है और इस विनीतता को निन्दनीय नहीं समझता है।

५३. लवः--पश्यत्वेनमार्यो महापुरुषमाकारानुभावगाम्भीर्यसंभाव्यमानविविधलोकोत्तरसुचरितातिशयम्।

लव--आकार, प्रभाव और गंभीरता से जिसके अनेक अलौकिक सच्चरितों के उत्कर्ष का अनुमान किया जा सकता है ऐसे इन महापुरुष को आप देखिए।

५४. कुशः--(निर्वर्ण्य)

अहो प्रासादिकं रूपमनुभावश्च पावनः।
स्थाने रामायणकविर्देवीं वाचमवीवृधत् ॥२०॥

(उपसृत्य) तात, प्राचेतसान्तेवासी कुशोऽभिवादयते।

अन्वय--अहो प्रासादिकं रूपम्, पावनः अनुभावः च। रामायणकविः देवीं वाचम् अवीवृधत्, (इति) स्थाने॥

पाठभेद--५४. का० वाचं व्यवीवृतत् (दिव्यवाणी को रामायण के रूप में परिणत किया है), काले--वाचमवीवृतत (वाणी को स्थिर किया है)।

कुश--(ध्यान से देखकर)

अहो, इनका प्रसादगुणयुक्त रूप है और पवित्र प्रभाव है। रामायण के कवि (वाल्मीकि) ने (इस महापुरुष के वर्णन के द्वारा) संस्कृत-वाङ्मय की जो अभिवृद्धि की है, वह सर्वथा उचित है ॥२०॥

(समीप जाकर) तात, महर्षि वाल्मीकि का शिष्य कुश आपको प्रणाम करता है।

संस्कृत-व्याख्या

अहो--आश्चर्यमेतत्, प्रासादिकं--प्रसादगुणयुक्तम्, रूपम्--आकृतिः, पावनः--पवित्रः, अनुभावश्च--प्रभावश्च। रामायणकविः--रामायणस्य रचयिता महर्षिर्वाल्मीकिः, देवीं वाचं--देववाणीम्, संस्कृतवाङ्मयमित्यर्थः, अवीवृधत्--अवर्धयत्, इति स्थाने--इत्येतत् सर्वथा समुचितमेवास्ति। अत्र काव्यलिङ्गमलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **आकारा०**--आकार--आकृति, अनुभाव--प्रभाव और, गाम्भीर्य--गंभीरता से, संभाव्यमान--अनुमेय है, विविध--अनेक, लोकोत्तर--अलौकिक, सुचरित--सत्कर्मों का, अतिशयम्--उत्कर्ष जिसका। आकारः अनुभावः गाम्भीर्यं च (द्वन्द्व), तैः संभाव्यमानः विविधानां लोकोत्तराणां सुचरितानाम् अतिशयः यस्य तम्, बहु०। गाम्भीर्यम्--गम्भीरस्य भावः, गम्भीर+ष्यञ्। संभाव्यमान--सम्--भू+णिच्+कर्म० शानच्। अतिशय--अति+शी+अच्। (२) **प्रासादिकम्**--प्रसादगुण-युक्त, प्रसन्नता से परिपूर्ण, अथवा प्रसाद अर्थात् कृपा करने वाला। प्रसादे भवम्, प्रसाद+ठक् (इक)। (३) **अनुभावः**--प्रभाव। अनु+भू+घञ्। पावनः--पवित्र, पवित्र करने वाला। पू+णिच्+ल्यु (अन)। (४) **स्थाने**--उचित है, यह ठीक है। स्थाने यह सप्तमीविभक्तियुक्त अव्यय है। (५) **रामायणकविः**--रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि। रामायणस्य कविः, तत्पु०। (६) **देवीं वाचम्**--दिव्य वाणी को, देववाणी को, अर्थात् संस्कृतवाङ्मय को। (७) **अवीवृधत्**--बढ़ाया है, अर्थात् महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचना के द्वारा संस्कृत वाङ्मय को समृद्ध किया है। वृध्+णिच्+लुङ् प्र० ए०। (८) इस श्लोक में रामायण की रचना का कारण

राम की गुणातिशययुक्तता बताई गई है, अतः वाक्यार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है। (९) **उपसृत्य**--पास जाकर। प्राचेतसा०—वाल्मीकि का शिष्य। प्राचेतसस्य अन्तेवासी, तत्पु०। (१०) **अभिवादयते**--प्रणाम करता है। अभि+वद्+णिच्+लट् प्र० १।

५५ (क). रामः--एह्येह्यायुष्मन्,

अमृताध्मातजीमूतस्निग्धसंहननस्य ते।
परिष्वङ्गाय वात्सल्यादयमुत्कण्ठते जनः॥२१॥

अन्वय--अयं जनः वात्सल्यात् अमृताध्मातजीमूतस्निग्धसंहननस्य ते परिष्वङ्गाय उत्कण्ठते॥

राम--हे चिरंजीव, आओ, आओ।

यह व्यक्ति (अर्थात् राम) प्रेम के कारण जल से परिपूर्ण मेघ के तुल्य मनोहर शरीर वाले तुम्हारे आलिंगन के लिए उत्कंठित हो रहा है॥२१॥

संस्कृत-व्याख्या

अयं जनः—एष रामः, वात्सल्यात्—स्नेहात् हेतोः, अमृता०—अमृतेन जलेन आध्मातः परिपूर्णः यो जीमूतः जलदः स इव स्निग्धं मनोज्ञं संहननं शरीरं यस्य तस्य, ते—तव कुशस्य, परिष्वङ्गाय—आलिङ्गनाय, उत्कण्ठते—औत्सुक्यं वहति। अत्रोपमा परिकरश्चालंकारौ। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अमृता०**--अमृत—जल से, आध्मात—परिपूर्ण, जीमूत—बादल के तुल्य, स्निग्ध--मनोहर, संहननस्य--शरीर वाले। अमृतेन आध्मातः यः जीमूतः स इव स्निग्धं संहननं यस्य तस्य, बहु०। अमृत का अर्थ जल भी है। पयः कीलालममृतम्, इत्यमरः। आध्मात—आ+ध्मा+क्त। स्निग्ध--स्निह्+क्त। संहनन--शरीर, जिसमें अस्थि चर्म आदि एकत्र किया जाता है। संहन्यते अस्थि-चर्मादि अत्र इति, सम्+हन्+ल्युट् (अन)। अधिकरण में ल्युट्। गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः, इत्यमरः। (२) **परिष्वङ्गाय**--आलिंगन के लिए। परि+स्वञ्ज्+घञ् (अ)। उत्कण्ठते के कारण चतुर्थी है। उत्कण्ठ् के साथ

षष्ठी और चतुर्थी होती हैं। (३) **वात्सल्यात्**--प्रम के कारण। उत्कण्ठते--उत्कंठित है। (४) इस श्लोक में जीमूतस्निध० में इव अर्थ लुप्त है। अतः समासगता उपमा है। ते का विशेषण स्निग्धसंहनन साभिप्राय है, अतः परिकर अलंकार है।

५५ (ख). (परिष्वज्य, स्वगतम्) तत्किमपत्यमयं दारकः?

अङ्गादङ्गात्सृत इव निजस्नेहजो देहसारः
प्रादुर्भूय स्थित इव बहिश्चेतनाधातुरेकः।
सान्द्रानन्दक्षुभितहृदयप्रस्रवेणावसिक्तो
गाढाश्लेषः स हि मम हिमच्योतमाशंसतीव।।२२।।

अन्वय--अङ्गात् अङ्गात् सृतः निजस्नेहजः देहसारः इव, एकः चेतनाधातुः प्रादुर्भूय बहिः स्थितः इव, सान्द्रानन्दक्षुभितहृदयप्रस्रवेण अवसिक्तः स हि गाढाश्लेषः मम हिमच्योतम् आशंसति इव।।

राम--(आलिंगन करके, मन में) तो क्या यह बालक मेरा पुत्र है?

यह मानो मेरे प्रत्येक अंग से क्षरित एवं मेरे स्नेह से उत्पन्न शरीर का सारभाग है। यह मानो एक शरीरधारक चैतन्य तत्त्व है, जो प्रकट होकर (शरीर से) बाहर विद्यमान है। घने आनन्द से आन्दोलित हृदय के रस से सिक्त यह गाढ आलिंगन करने पर मानो मुझे हिम से सिक्त कर रहा है।।२२।।

संस्कृत-व्याख्या

अङ्गात् अङ्गात्--सर्वेभ्योऽवयवेभ्यः, सृतः--क्षरितः, निजस्नेहजः--स्वप्रेमोद्भूतः, देहसारः इव--शरीरस्य सारभाग इवास्ति। एकः--मुख्यः,

---

पाठभेद--५५ (ख)--काले--एव (ही)। का० काले--प्रस्रवेनेव सृष्टो, गात्रं श्लेषे यदमृतरसस्रोतसा सिञ्चतीव (मानो यह हृदय के द्रव से बना है, क्योंकि आलिगन के समय मेरे शरीर को मानो अमृतरस के प्रवाह से सींच रहा है)।

चेतनाधातुः—चैतन्यरूपं शरीरधारकं तत्त्वम्, प्रादुर्भूय—प्रकटीभूय, बहिः—शरीराद् बहिर्भागे, स्थितः इव—विद्यमान इवास्ति। सान्द्रा०—सान्द्रः घनः य आनन्द आह्लादः तेन क्षुभितम् आन्दोलितं यत् हृदयं चित्तं तस्य प्रस्रवेण द्रवेण, अवसिक्तः—आर्द्रीकृतः, स हि—बालकोऽसौ, गाढा०—गाढः दृढः आश्लेषः आलिङ्गनं यस्य सः तादृशः, मम—रामस्य, हिमच्योतं—तुषारक्षरणम्, आशंसति इव—सूचयति इव। अत्रोत्प्रेक्षाऽलंकारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **परिष्वज्य**—आलिंगन करके। तत्किम्०—तो क्या यह मेरा पुत्र है? कुश के स्पर्श से राम को जो आनन्द प्राप्त हुआ, उससे उनका अनुमान था कि यह मेरा पुत्र ही है। पुत्रस्पर्श से जो आनन्द प्राप्त होता है, वह आनन्द उन्हें मिला। दारकः—पुत्र। (२) **अङ्गा०**—प्रत्येक अंग से। सृत इव—क्षरित सा, निकला हुआ सा। सृत—सृ+क्त। (३) **निज०**—निज—अपना अर्थात् मेरा, स्नेहजः—प्रेम से उत्पन्न। निजः स्नेहजः, कर्मधा०। स्नेहात् जायते इति स्नेहजः, स्नेह+जन्+ड (अ)। डित् होने से अन् का लोप। (४) **देहसारः**—शरीर का सारभाग है। देहस्य सारः, तत्पु०। पुत्र को पिता की आत्मा कहा गया है। 'आत्मा वै जायते पुत्रः'। निरुक्त (अध्याय ३) में शतपथब्राह्मण (१५-६-४-२६) का यह श्लोक उद्धृत है कि पुत्र पिता का सारभाग होता है। 'अङ्गादङ्गात् संभवसि, हृदयादधिजायसे। आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम्'। (५) **प्रादुर्भूय**—प्रकट होकर। प्रादुस्+भू+ल्यप्। बहिः०—बाहर विद्यमान। (६) **चेतना०**—चैतन्य तत्त्व। चेतना एव धातुः, रूपक तत्पु०। चेतनता से युक्त शरीर का धारक तत्त्व या पदार्थ। (७) **सान्द्रा०**—सान्द्र—घने, आनन्द—आनन्द से, क्षुभित—क्षुब्ध हुए, हृदय—हृदय के, प्रस्रवेण—रस से। अवसिक्तः—सींचा हुआ। सान्द्रः आनन्दः (कर्मधा०), तेन क्षुभितं यत् हृदयम् (कर्मधा०), तस्य प्रसवः तेन, तत्पु०। क्षुभित—क्षुभ्+क्त। प्रस्रव—प्र+स्रु+अप् (अ)। अवसिक्त—अव+सिच्+क्त। (८) **गाढाश्लेषः**—गाढः आलिंगन से युक्त। गाढः आश्लेषः यस्य सः, बहु०। आश्लेष—आ+श्लिष्+घञ्। (९) **हिम०**—हिम की वृष्टि को, हिम के क्षरण को। हिमस्य च्योतम्, तत्पु०। (१०) **आशंसतीव**—सूचित सा कर रहा है। आ+शंस्+लट् प्र० १।

(११) इस श्लोक में प्रथम द्वितीय और चतुर्थ पाद में इव के द्वारा तीन उत्प्रेक्षाएँ हैं।

५६. लवः——ललाटन्तपस्तपति घर्मांशुः। तदत्र सालवृक्षच्छायायां मुहूर्तमासनपरिग्रहं करोतु तातः।

लव——सूर्य ललाट को तपा रहा है। अतः हे तात, आप थोड़ी देर के लिए इस साल वृक्ष की छाया में आसन पर बैठिए।

५७. रामः——यदभिरुचितं वत्सस्य।

(सर्वे परिक्रम्य यथोचितमुपविशन्ति।)

राम——वत्स को जैसा पसन्द है।

(सब घूमकर यथोचित स्थान पर बैठते हैं)

५८ (क). रामः——(स्वगतम्)

अहो प्रश्रययोगेऽपि गतिस्थित्यासनादयः।
साम्राज्यशंसिनो भावाः कुशस्य च लवस्य च ॥२३॥

वपुरवियुतसिद्धा एव लक्ष्मीविलासाः
प्रतिकलकमनीयां कान्तिमुद्भेदयन्ति।
अमलिनमिव चन्द्रं रश्मयः स्वे यथा वा
विकसितमरविन्दं बिन्दवो माकरन्दाः ॥२४॥

अन्वय——अहो प्रश्रययोगे अपि कुशस्य च लवस्य च गतिस्थित्यासनादयः भावाः साम्राज्यशंसिनः॥

पाठभेद——५८ (क). का० काले——अविहित० (बिना प्रयत्न के ही सिद्ध)। काले——०कमनीयं कान्तिमत्केतयन्ति (प्रतिक्षण सुन्दर और तेजोमय शरीर को भूषित करते हैं)। काले——रत्नं रश्मयस्ते मनोज्ञा (जैसे मनोहर किरणें रत्न को)। काले——विकसितमिव पद्मम् (जैसे खिले हुए कमल को)

अन्वय—यथा स्वे रश्मयः अमलिनं चन्द्रम् इव, माकरन्दाः बिन्दवः विकसितम् अरविन्दं वा, वपुरवियुतसिद्धाः एव लक्ष्मीविलासाः प्रतिकलकमनीयां कान्तिम् उद्भेदयन्ति ।

राम—(मन में)

ओह, विनम्रता के होने पर भी कुश और लव का चलना रुकना और बैठना आदि क्रियाएँ (इनके) सम्राट् होने की सूचना दे रही हैं ।।२३।।

जिस प्रकार अपनी (स्वच्छ) किरणें निर्मल चन्द्रमा को और जिस प्रकार मधु की बूँदें विकसित कमल को (शोभित करती हैं), उसी प्रकार शरीर के साथ जन्मसिद्ध मनोरम हाव-भाव इनकी प्रतिपल मनोहर शोभा को विकसित कर रहे हैं ।।२४।।

संस्कृत-व्याख्या

अहो—आश्चर्यमेतत्, प्रश्रय०—प्रश्रयस्य विनयस्य योगे संबन्धे सत्यपि, कुशस्य लवस्य च—द्वयोरपि बालकयोः, गति०—गतिः गमनं स्थितिः अवस्थानम् आसनम् उपवेशनं तानि आदयः येषां ते, भावाः—क्रियाः, साम्राज्य०—साम्राज्यं सार्वभौमत्वं शंसन्ति सूचयन्ति इति ते, सन्ति । अत्रानुमानमलंकारः । श्लोको वृत्तम् ।

यथा—येन प्रकारेण वा, स्वे—स्वीयाः, रश्मयः—किरणाः, अमलिनं—निर्मलम्, चन्द्रमिव—शशाङ्कमिव, माकरन्दाः—पुष्परससंबन्धिनः, बिन्दवः—कणाः, विकसितं—प्रस्फुटितम्, अरविन्दं वा—पद्मम् इव, वपु०—वपुषा शरीरेण सह अवियुतसिद्धाः निसर्गसिद्धा एव, लक्ष्मीविलासाः—लक्ष्म्याः शोभायाः विलासाः विभ्रमाः, प्रतिकल०—प्रतिकलं प्रतिक्षणं कमनीयां मनोरमाम्, कान्ति—शोभाम्, उद्भेदयन्ति—विकासयन्ति । अत्रोपमाऽलंकारः । मालिनी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **ललाटन्तपः**—माथे को तपाने वाला । ललाटं तपति इति, उपपद तत्पु० । ललाट+तप्+खश् (अ) । असूर्यललाटयोः० (३–२–३६) से खश् प्रत्यय और खित् होने से अरुर्द्विषद० (६–३–६७) से ललाट के बाद म् का आगम । (२) **घर्मांशुः**—सूर्य । घर्माः अंशवः यस्य सः, बहु० । (३) **साल०**—साल वृक्ष की छाया में । सालवृक्षस्य छायायाम्, तत्पु० ।

विभाषा सेना० (२–४–२५) से समासान्त छाया को विकल्प से नपुंसक होने से यहाँ पर नपुंसक नहीं हुआ है। (४) **आसन०**––आसन का ग्रहण करना। आसनस्य परिग्रहम्, तत्पु०। (५) **अभिरुचितम्**––जो रुचिकर हो, पसन्द हो। अभि+रुच्+क्त। (६) **प्रश्रय०**––प्रश्रय––विनय का, योगे––संबन्ध होने पर भी। नम्रता के होने पर भी। प्रश्रयस्य योग, तत्पु०। (७) **गति०**––गति ––चलना, स्थिति––रुकना और, आसनादयः––बैठना आदि क्रियाएँ। गतिश्च स्थितिश्च आसनं च (द्वन्द्व०), तानि आदयः येषां ते, बहु०। (८) **साम्राज्य०** ––साम्राज्य की सूचना देने वाले। साम्राज्यं शंसन्ति इति, साम्राज्य+शंस्+ इन्+प्र० ३। तच्छील अर्थ में णिनि (इन्), उपपद तत्पु०। (९) **वपु०**–– वपुः––शरीर के साथ, अवियुतसिद्धाः––स्वभावसिद्ध, जन्मसिद्ध। वपुषा अवियुताः च ते सिद्धाः, तत्पु०। (१०) **लक्ष्मी०**––लक्ष्मी––शोभा के, विलासाः ––कार्य, अर्थात् सुन्दर हावभाव। लक्ष्म्याः विलासाः, तत्पु०। (११) **प्रति-कल०**––प्रतिकल––प्रतिक्षण, कमनीयाम्––मनोहर। कलायां कलायाम् इति प्रतिकलम् (अव्ययी०), प्रतिकलं कमनीयाम्, सुप्सुपा समास। (१२) **उद्भेद-यन्ति**––विकसित कर रहे हैं। उद्+भिद्+णिच्+लट् प्र० ३। (१३) **माक-रन्दाः**––मकरन्द या पुष्परस की। मकरन्दस्य इमे, मकरन्द+अण्। (१४) इस श्लोक में इवार्थक इव और वा के द्वारा दो उपमाएँ हैं।

५८ (ख). भूयिष्ठं च रघुकुलकौमारमनयोः पश्यामि।

कठोरपारावतकण्ठमेचकं
वपुर्वृषस्कन्धसुबन्धुरांसयोः।
प्रसन्नसिंहस्तिमितं च वीक्षितं
ध्वनिश्च माङ्गल्यमृदङ्गमांसलः ॥२५॥

अन्वय––वृषस्कन्धसुबन्धुरांसयोः वपुः कठोरपारावतकण्ठमेचकम्, वीक्षितं च प्रसन्नसिंहस्तिमितम्, ध्वनिः च माङ्गल्यमृदङ्गमांसलः (अस्ति)।

पाठभेद––५८ (ख) का० काले––सुबन्धुरांसकम् (सुन्दर कन्धों वाला शरीर)।

राम—मैं इन दोनों बालकों में रघुवंशी बालकों की बहुत अधिक समानता देख रहा हूँ।

बैल के कन्धों के तुल्य सुन्दर कन्धों वाले इन दोनों (बालकों) का शरीर तरुण कबूतर के गले के तुल्य श्यामवर्ण है, दृष्टि मनोहर और सिंह के समान निश्चल है तथा ध्वनि मंगलसूचक मृदंग (ढोलक) के तुल्य गंभीर है।।२५।।

संस्कृत-व्याख्या

वृष०—वृषस्कन्धौ वृषभांसौ इव सुबन्धुरौ अतिमनोहरौ अंसौ स्कन्धौ ययोः तयोः, कुशलवयोरित्यर्थः, वपुः—शरीरम्, कठोर०—कठोरः तरुणः यः पारावतः कपोतः तस्य कण्ठः गलः इव मेचकं श्यामवर्णम्, वीक्षितं च—दृष्टिश्च, प्रसन्न०—प्रसन्नं निर्मलं मनोहरमित्यर्थः सिंहस्य केसरिणः इव स्तिमितं निश्चलम्, ध्वनिश्च—कण्ठस्वरश्च, माङ्गल्य०—माङ्गल्यः मङ्गलसूचकः यः मृदङ्गः मुरजः स इव मांसलः गम्भीरः, अस्तीति शेषः। अत्रोपमाऽलंकारः। वंशस्थं वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **भूयिष्ठम्**—बहुत अधिक। बहु+इष्ठन्। बहु को भू और इ को यि। (२) **रघु०**—रघुकुल—रघुवंशियों की, कौमारम्—कुमारावस्था की विशेषताएँ। रघूणां कुलम् (तत्पु०), तस्मिन् यत् कौमारम्, तत्पु०।(३) **कठोर०**—कठोर—पुष्ट अर्थात् तरुण, पारावत—कबूतर के, कण्ठ—गले के तुल्य, मेचकम्—श्याम वर्ण। कठोरः पारावतः (कर्मधा०), तस्य कण्ठः (तत्पु०) स इव मेचकम्, उपमान कर्मधा०। (४) **वृष०**—वृष—बैल के, स्कन्ध—कंधों के तुल्य, सुबन्धुर—सुन्दर, अंसयोः—कन्धों वाले। वृषस्कन्धौ इव सुबन्धुरौ अंसौ ययोः तयोः, बहु०। (५) **प्रसन्न०**—प्रसन्न—निर्मल और, सिंह—शेर के तुल्य, स्तिमितम्—निश्चल। वीक्षितम्—देखना, दृष्टि। सिंहस्येव स्तिमितम् (उपमानकर्मधा०), प्रसन्नं च तत् सिंहस्तिमितम्, कर्मधा०। स्तिमित—स्तिम् +क्त। वीक्षितम्—वि+ईक्ष्+क्त। भाव अर्थ में क्त। (६) **माङ्गल्य०**—माङ्गल्य—मंगलसूचक, मृदङ्ग—ढोल के तुल्य, मांसलः—पुष्ट या गंभीर। मङ्गलाय हितं मङ्गल्यम्, मंगल+यत्। मंगल्यम् एव मांगल्यम्, स्वार्थ में अण्।

मांगल्यः यः मृदङ्गः (कर्मधा०), स इव मांसलः, उपमानकर्मधा०। (७) इस श्लोक में चारों पदों में इव का अर्थ लुप्त है, अतः चार समासगत लुप्तोपमाएँ हैं।

५८ (ग). (निपुणं निरूप्य) अये, न केवलमस्मद्वंश-संवादिन्याकृतिः।

अपि जनकसुतायास्तच्च तच्चानुरूपं
स्फुटमिह शिशुयुग्मे नैपुणोन्नेयमस्ति।
ननु पुनरिव तन्मे गोचरीभूतमक्ष्णो-
रभिनवशतपत्रश्रीमदास्यं प्रियायाः ॥२६॥

शुक्लाच्छदन्तच्छविसुन्दरेयं
सैवोष्ठमुद्रा स च कर्णपाशः।
नेत्रे पुनर्यद्यपि रक्तनीले
तथापि सौभाग्यगुणः स एव ॥२७॥

अन्वय--इह शिशुयुग्मे नैपुणोन्नेयं जनकसुतायाः तच्च तच्च अनुरूपम् अपि स्फुटम् अस्ति। ननु अभिनवशतपत्रश्रीमत् तत् प्रियायाः आस्यं पुनः मे अक्ष्णोः गोचरीभूतम् इव॥

अन्वय--शुक्लाच्छदन्तच्छविसुन्दरा इयम् ओष्ठमुद्रा सा एव, स च कर्ण-पाशः। यद्यपि नेत्रे पुनः रक्तनीले तथापि सौभाग्यगुणः स एव॥

राम--(ध्यान से देखकर) अरे, इनकी न केवल आकृति ही हमारे वंश से मिलती-जुलती है, अपि तु--

इन दोनों बालकों में विशेषज्ञता से जानने योग्य सीता की विविध समानताएँ भी प्रकट हो रही हैं। वस्तुतः नवीन कमल के तुल्य सुन्दर प्रियतमा सीता का वह मुख फिर मानो मेरी आँखों के सामने आ गया है॥२६॥

श्वेत और निर्मल दाँतों की कान्ति से सुन्दर यह ओष्ठमुद्रा (ऊपर और नीचे के ओठों का विन्यास) वही है और सुन्दर कान भी वैसे ही हैं। यद्यपि नेत्र लाल और नीले हैं, तथापि सौन्दर्य-गुण वही है॥२७॥

पाठभेद--५८ (ग). काले--मुक्ताच्छ० (मोती के तुल्य निर्मल)।

संस्कृत-व्याख्या

इह—अत्र, शिशुयुग्मे—बालकद्वये, नैपुणोन्नेयं—नैपुणेन विशेषज्ञतया उन्नेयम् अनुमेयम्, जनकसुतायाः—सीतायाः, तच्च तच्च—तद् विविधम्, अनुरूपम् अपि—साम्यम् अपि, स्फुटं—व्यक्तम्, अस्ति—वर्तते। ननु—वस्तुतः, अभिनव० —अभिनवं नवीनं यत् शतपत्रं कमलं तद्वत् श्रीमत् शोभासंपन्नम्, तत्—पूवदृष्टम्, प्रियायाः—प्रियतमायाः सीतायाः, आस्यं—मुखम् पुनः—भूयोऽपि, मे—मम रामस्य, अक्ष्णोः—नेत्रयोः, गोचरीभूतम् इव—विषयतां प्राप्तमिव। अत्रोपमोत्प्रेक्षा स्मरणं चालंकाराः। मालिनी वृत्तम्।

शुक्लाच्छ०—शुक्लाः श्वेताः अच्छाः निर्मलाः ये दन्ताः दशनाः तेषां छविभिः कान्तिभिः सुन्दरा सुशोभना, इयम्—एषा, ओष्ठमुद्रा—अधरोत्तरोष्ठ-विन्यासः, सा एव—तादृशी एवास्ति। स च—तादृश एव च, कर्णपाशः—सुन्दरौ कर्णौ स्तः। यद्यपि, नेत्रे पुनः—लोचने तु, रक्तनीले—रक्ते प्रान्तयोर्लोहिते नीले मध्ये कृष्णे च स्तः, तथापि, सौभाग्य०—सौभाग्यं सौन्दर्यं तदेव गुणः, सौन्दर्यगुणः, स एव—तादृश एवास्ति। अत्र निदर्शनाऽलंकारः। उपजाति-वृंत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अस्मद्०**—अस्मद्—हमारे, वंश—वंश से, संवादिनी—मिलती हुई। अस्माकं वंशेन संवादिनी, तत्पु०। संवादिनी—सम्+वद्+णिनि+ङीप्। (२) **जनक०**—जनक की पुत्री सीता का। जनकस्य सुतायाः, तत्पु०। तच्च तच्च—वे विविध विशेषताएँ। (३) **अनुरूपम्**—समानता। शिशु०—दोनों बालकों में। शिश्वोः युग्मे, तत्पु०। (४) **नैपुणो०**—नैपुण—विशेष योग्यता से, उन्नेयम्—जानने योग्य। नैपुणेन उन्नेयम्, तत्पु०। नैपुणम्—निपुणस्य भावः, निपुण+अण्। उन्नेय—उत्+नी+यत् (य)। (५) **गोचरीभूतम्**—दृष्टि-गोचर हुआ है। अगोचरं गोचरं भूतम्, अभूततद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय, अतः र के अ को ई। (६) **अभिनव०**—अभिनव—नवीन, शतपत्र—कमल के तुल्य, श्रीमत्—सुन्दर। अभिनवं शतपत्रम् (कर्मधा०), तद्वत् श्रीमत्, उपमान कर्मधा०। इस बालक में सीता के मुख की सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं, अतः सीता का मुख साक्षात् दिखाई पड़ रहा है। (७) इस श्लोक में अभिनव० में

इव का अर्थ लुप्त होने से लुप्तोपमा है। पुनरिव में इव उत्प्रेक्षा-सूचक है। (८) **शुक्लाच्छ०**—शुक्ल—सफेद और, अच्छ—निर्मल, दन्तच्छवि—दाँतों की कान्ति से, सुन्दरा—मनोहर। शुक्लाः अच्छाः ये दन्ताः (कर्मधा०), तेषां छविभिः सुन्दरा, तत्पु०। (९) **ओष्ठ०**—ओष्ठ—दोनों ओष्ठों का, मुद्रा—मुद्रण अर्थात् ऊपर-नीचे विन्यास। ओष्ठयोः मुद्रा, तत्पु०। (१०) **कर्णपाशः**—सुन्दर कान। पाश का अर्थ सुन्दर या उत्तम है। प्रशस्तौ कर्णौ इस अर्थ में प्रशंसावचनैश्च (२-१-६६) से पाश के साथ समास। (११) **रक्तनीले**—लाल और नीले। रक्ते च ते नीले, कर्मधा० (वर्णो वर्णेन) (२-१-६९) से समास। (१२) **सौभाग्य०**—सौन्दर्यरूपी गुण। सौभाग्यमेव गुणः, रूपक तत्पु०। सुभगस्य भावः सौभाग्यम्, सुभग+ष्यञ् (य)। हृद्भग० (७-३-१९) से उभयपद वृद्धि। (१३) इस श्लोक में सीता के ओष्ठ आदि की सुन्दरता कुश के ओष्ठ आदि में वर्णित है। दोनों में साम्य प्रदर्शित किया गया है। अतः असंभवद्-वस्तुसंबन्धरूप निदर्शना अलंकार है।

५८ (घ). (विचिन्त्य) तदेतत्प्राचेतसाध्युषितमरण्यं यत्र किल देवी परित्यक्ता। इयं चानयोराकृतिर्वयोऽनुभावश्च। यत्स्वतःप्रकाशान्यस्त्राणीति च। तत्रापि स्मरामि खलु तदपि चित्रदर्शनप्रासङ्गिकमस्त्राभ्यनुज्ञानं प्रबुद्धं स्यात्। न ह्यसांप्रदायिकान्यस्त्राणि पूर्वेषामपि शुश्रुमः। अयं विस्मयसंप्लवमानसुखदुःखातिशयो हृदयस्य मे विप्रलम्भः। यमाविति च भूयिष्ठमात्मसंवादः। जीवद्वयापत्यचिह्नो हि देव्या गर्भिणीभाव आसीत्। (सास्रम्)

परां कोटिं स्नेहे परिचयविकासादधिगते

रहोविस्रब्धाया अपि सहजलज्जाजडदृशः।

पाठभेद—५८ (घ)—का० काले—पुरा रूढे (पहले उत्पन्न हुए स्नेह के)। का० काले—उपचिते (वृद्धि को प्राप्त होने पर)

मयैवादौ ज्ञातः करतलपरामर्शकलया
द्विधा गर्भग्रन्थिस्तदनु दिवसैः कैरपि तया ।।२८।।
(रुदित्वा) तत्किमेतौ पृच्छामि केनचिदुपायेन ।

अन्वय—परिचयविकासात् स्नेहे परां कोटिम् अधिगते, रहोविस्रब्धायाः अपि सहजलज्जाजडदृशः (सीतायाः) गर्भग्रन्थिः मया एव आदौ करतलपरामर्शकलया द्विधा ज्ञातः, तदनु कैः अपि दिवसैः तया (ज्ञातः) ।।

राम—(सोचकर) यह वही वाल्मीकि ऋषि से अधिष्ठित वन है, जहाँ पर देवी सीता को छोड़ा था। इन दोनों की यह आकृति, अवस्था और प्रभाव वैसे ही हैं। (अर्थात् सीता के तुल्य ही आकृति और प्रभाव हैं तथा आयु भी उतनी ही है, जितने वर्ष सीता के परित्याग के हुए हैं।) जो इन दोनों को जृम्भक अस्त्र स्वयं प्रकाशित हुए हैं, उनके विषय में मुझे स्मरण है कि चित्र-दर्शन के प्रसंग में (गर्भस्थ बालक के लिए) मैंने जृम्भक अस्त्रों की प्राप्ति की जो स्वीकृति दी थी, वही संभवतः प्रकट हुई है। हमने अभी तक ऐसा नहीं सुना है कि पूर्वजों को भी ये जृम्भक अस्त्र बिना गुरु-परम्परा के प्राप्त हुए हों। मेरे हृदय में जो विप्रलंभ (वियोग) शृंगार है, उसके सुख और दुःख का आधिक्य आश्चर्य के प्रवाह में तैर रहा है। ये दोनों युगल भाई हैं, यह बात भी बहुत अधिक बुद्धि-संगत है, क्योंकि देवी सीता का गर्भिणीत्व दो सन्तानों के चिह्न से युक्त था। (आँखों में आँसू भरकर)

परिचय बढ़ने के कारण जब प्रेम चरम सीमा को प्राप्त हो गया था तब एकान्त में विश्वस्त एवं स्वाभाविक लज्जा के कारण निश्चेष्ट दृष्टिवाली सीता के गर्भ को मैंने ही पहले (पेट पर) हाथ फेरने की क्रिया से दो भागों में विभक्त पता लगाया था, तत्पश्चात् कुछ दिनों बाद उसे भी इसका पता लगा था ।।२८।।

(रोकर) तो क्या इन दोनों से किसी प्रकार यह बात पूछूँ ?

संस्कृत-व्याख्या

परिचय०—परिचयस्य संस्तवस्य विकासात् वृद्धेः, स्नेहे—प्रेम्णि, परां कोटिं—चरमसीमाम्, अधिगते—प्राप्ते सति, रहो०—रहसि एकान्ते विस्रब्धायाः विश्वस्ताया अपि, सहज०—सहजया स्वाभाविक्या लज्जया व्रीडया जडे निश्चेष्टे

दृशौ लोचने यस्याः तस्याः सीतायाः, गर्भग्रन्थिः—ग्रन्थीभूतो गर्भपिण्डः, मया एव—मया रामेणैव, आदौ—पूर्वम्, करतल०—करतलेन पाणितलेन यः परामर्शः स्पर्शः तस्य कलया चातुर्येण, हस्तस्पर्शक्रियाचातुर्येणेत्यर्थः, द्विधा—द्विधा विभक्तः, ज्ञातः—अवगतः, तदनु—तदनन्तरम्, कैरपि—कतिपयैः, दिवसैः—दिनैः, तया—सीतया, ज्ञातः—अवगतः। अत्र तुल्ययोगिताऽलंकारः। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **प्राचेतसा०**—प्राचेतस—वाल्मीकि से, अध्युषित—अधिष्ठित। जहाँ वाल्मीकि निवास करते हैं। प्राचेतसेन अध्युषितम्, तत्पु०। अध्युषित—अधि+वस्+क्त। व् को संप्रसारण से उ। परित्यक्ता—छोड़ी गई थी। परि+त्यज्+क्त+टाप्। (२) **आकृतिः**—आकार। वयः—आयु। अनुभावः—प्रभाव। (३) **चित्र०**—चित्रदर्शन के प्रसंग में। चित्रदर्शने प्रासङ्गिकम्, तत्पु०। प्रसङ्गे भवं प्रासङ्गिकम्, प्रसङ्ग+ठक् (इक)। (४) **अस्त्रा०**—अस्त्रों की स्वीकृति। अस्त्राणाम् अभ्यनुज्ञानम्, तत्पु०। अभि+अनु+ज्ञा+ल्युट् (अन)। प्रबुद्धम्—जागृत। प्र+बुध्+क्त। (५) **असांप्रदायिकानि**—बिना गुरुपरम्परा के। न सांप्रदायिकानि, नञ् तत्पु०। संप्रदायात् आगतानि, संप्रदाय+ठक् (इक)। (६) **विस्मय०**—विस्मय—आश्चर्य में, संप्लवमान—तैर रहा है, सुखदुःखातिशयः—सुख और दुःख का आधिक्य जिससे। विस्मये संप्लवमानः सुखदुःखातिशयः येन सः, बहु०। संप्लवमान—सम्+प्लु+शानच्। विप्रलम्भ—वियोग शृंगार। (७) **जीव०**—जीवद्द्वयापत्य—दो सन्तानों के, चिह्नः—चिह्न वाला। जीवद्द्वयं यत् अपत्यम् (कर्मधा०), तस्य चिह्नं यस्मिन् सः, बहु०। गर्भिणीभावः—गर्भावस्था। (८) **परां कोटिम्**—चरम सीमा को। (९) **परिचय०**—परिचय की वृद्धि के कारण। परिचयस्य विकासात्, तत्पु०। अधिगते—प्राप्त होने पर। (१०) **रहो०**—रहः—एकान्त में, विस्रब्धायाः—विश्वस्त। रहसि विस्रब्धायाः, तत्पु०। विस्रब्ध—वि+स्रम्भ्+क्त। (११) **सहज०**—सहजलज्जा—स्वाभाविक लज्जा से, जड—निश्चेष्ट है, दृशः—दृष्टि जिसकी। सहजा लज्जा (कर्मधा०), तया जडे दृशौ यस्याः तस्याः, बहु०। (१२) **करतल०**—करतल—हथेली से, परामर्श—छूने की, कलया—कला से या चतुरता से। करतलेन परामर्शः (तत्पु०), तस्य कलया,

तत्पु०। परामर्श—परा+मृश्+घञ्। (१३) द्विधा—दो भागों में विभक्त। गर्भ०—गर्भ की गाँठ, गर्भस्थ बालक। गर्भस्य ग्रन्थिः, तत्पु०। (१४) इस श्लोक में राम और सीता (मया, तया) दो प्रस्तुतों का ज्ञातः इस एक क्रियारूपी धर्म से संबन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है।

५६. लवः—तात, किमेतत्?
बाष्पवर्षेण नीतं वो जगन्मङ्गलमाननम्।
अवश्यायावसिक्तस्य पुण्डरीकस्य चारुताम्।।२६।।

अन्वय—जगन्मङ्गलं वः आननं बाष्पवर्षेण अवश्यायावसिक्तस्य पुण्डरीकस्य चारुतां नीतम्।।

लव—तात, यह क्या?

संसार के लिए मंगलकारी आपका यह मुख अश्रुवर्षा के कारण ओस के कणों से आर्द्र कमल की सुन्दरता को प्राप्त कर रहा है।।२६।।

संस्कृत-व्याख्या

जगन्मङ्गलं—जगतां भुवनानां मङ्गलम् अभ्युदयकारि, वः—युष्माकम्, आननं—मुखम्, बाष्प०—बाष्पाणाम् अश्रूणां वर्षेण वृष्ट्या, अवश्याया०—अवश्यायैः तुषारकणैः अवसिक्तस्य आर्द्रस्य, पुण्डरीकस्य—कमलस्य, चारुतां—सौन्दर्यम्, नीतं—प्रापितम्। अत्र निदर्शनाऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **बाष्पवर्षेण**—आँसुओं की वर्षा से। बाष्पाणां वर्षेण, तत्पु०। (२) **जगन्मङ्गलम्**—संसार के लिए मंगलकारी। जगतां मङ्गलम्, तत्पु०। (३) **अवश्याया०**—अवश्याय—ओस के कणों से, अवसिक्तस्य—गीले। अवश्यायेन अवसिक्तस्य, तत्पु०। अवश्याय—अव+श्यै (श्या)+ण (अ)। य् का बीच में आगम। श्याद्० (३-१-१४१) से ण प्रत्यय। अवसिक्त—अव+सिच्+क्त। (४) **पुण्डरीकस्य**—कमल की। चारुताम्—शोभा को। नी धातु द्विकर्मक है, अतः यहाँ उसके दो कर्म हैं—आननम् (प्रधानकर्म), चारुताम् (गौण कर्म)। (५) इस श्लोक में मुख में पुण्डरीक की सुन्दरता का वर्णन होने से असंभवद्वस्तुसंबन्धरूप निदर्शना है। मुख कमलवत् सुन्दर है, इस उपमा में समाप्ति होती है।

६०. कुशः--अयि वत्स,

विना सीतादेव्या किमिव हि न दुःखं रघुपतेः
प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति।
स च स्नेहस्तावानयमपि वियोगो निरवधिः
किमेवं त्वं पृच्छस्यनधिगतरामायण इव ॥३०॥

अन्वय—सीतादेव्या विना रघुपतेः किमिव दुःखं न हि? हि प्रियानाशे कृत्स्नं जगत् किल अरण्यं भवति। स च तावान् स्नेहः, अयम् अपि निरवधिः वियोगः, त्वम् अनधिगतरामायणः इव किम् एवं पृच्छसि?

कुश--हे वत्स,

देवी सीता के बिना राम के लिए क्या वस्तु दुःखद नहीं है? क्योंकि प्रियतमा का नाश होने पर सारा संसार ही वस्तुतः जंगल सा हो जाता है। कहाँ उनका उतना अधिक वह प्रेम और कहाँ यह अनन्त वियोग? तुम रामायण न पढ़े हुए व्यक्ति के तुल्य क्यों इस प्रकार पूछ रहे हो? ॥३०॥

संस्कृत-व्याख्या

सीतादेव्या विना--जानकीमन्तरेण, रघुपतेः—रामस्य, किमिव—किं सांसारिकं वस्तु, दुःखं—दुःखकरम्, नहि—नैवास्ति। हि—यतोहि, प्रियानाशे—भार्याया निधने, कृत्स्नं--सकलम्, जगत्—भुवनम्, किल—निश्चयेन, अरण्यं—वनसदृशम्, भवति—संजायते। स च—पूर्वानुभूतः, तावान्—तत्परिमाणः, अपरिमित इत्यर्थः, स्नेहः—प्रेम, अयमपि—साम्प्रतम् अनुभूयमानः, निरवधिः—अनन्तः, वियोगः—विरहः। त्वं—लवः, अनधिगत०—अनधिगतम् अविदितं रामायणं रामायणनामकं महाकाव्यं येन तादृश इव, किं—किमर्थम्, एवम्—अनेन प्रकारेण, पृच्छसि--जिज्ञाससे। अत्रार्थान्तरन्यासः परिणामश्चालंकारौ। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **प्रियानाशे**—पत्नी के नष्ट होने पर। प्रियायाः नाशे, तत्पु०। **कृत्स्नम्**—संपूर्ण। (२) **निरवधिः**--अनन्त, अवधि से रहित। निर्गतः अवधिः यस्य सः, बहु०। (३) **अनधिगत०**—अनधिगत--नहीं जाना है, रामायणः—रामायण

को जिसने। जिसने रामायण नहीं पढ़ी है। न अधिगतम् अनधिगतम् (तत्पु०), अनधिगतं रामायणं येन सः, बहु०। अधिगत——अधि+गम्+क्त। (४) इस श्लोक में द्वितीय चरण के सामान्य अर्थ के द्वारा प्रथम चरण के विशेष अर्थ का समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। जगदरण्यं हि भवति में संसार को अरण्यवत् सूना कहकर राम के लिए जंगल बताने के कारण परिणाम अलंकार है।

६१. रामः——(स्वगतम्) अये, तटस्थ आलापः। कृतं प्रश्नेन। मुग्धहृदय, कोऽयमाकस्मिकस्ते संप्लवाधिकारः? एवं च निर्भिन्नहृदयावेगः शिशुजनेनाप्यनुकम्पितोऽस्मि। भवतु तावदन्तरयामि। (प्रकाशम्) वत्सौ, रामायणं रामायणमिति श्रूयते भगवतो वाल्मीकेः सरस्वतीनिष्यन्दः प्रशस्तिरादित्यवंशस्य तत्कौतूहलेन यत्किंचिच्छ्रोतुमिच्छामि।

राम——(मन में) अरे, इनका यह वार्तालाप उदासीन व्यक्तियों के तुल्य है (अर्थात् इनके वार्तालाप से यह ज्ञात नहीं होता है कि इनका राम और सीता से कुछ भी संबन्ध है)। अतः इनसे प्रश्न पूछना व्यर्थ है। हे मूढ हृदय, तुझे यह सहसा (भावावेश में) बह जाने (बहक जाने) का क्या अधिकार है? मैं इस प्रकार मनोवेग के प्रकट हो जाने के कारण बालकों के द्वारा भी दया का पात्र हो गया हूँ। अच्छा, मैं (अपने भावावेश को) छिपाता हूँ। (प्रकट) वत्स, 'रामायण, रामायण——यह भगवान् वाल्मीकि की वाणी का प्रवाह सूर्यवंश की प्रशस्ति है' ऐसा सुना जाता है। अतः मैं कुतूहलवश उसमें से कुछ सुनना चाहता हूँ।

६२. कुशः——स कृत्स्न एव संदर्भोऽस्माभिरावृत्तः। स्मृतिप्रत्युपस्थितौ तावदिमौ बालचरितस्यासाते द्वौ श्लोकौ।

कुश——वह सारा का सारा प्रकरण हमें स्मरण है। इस समय बालचरित के ये दो श्लोक याद आ रहे हैं।

६३. रामः—उदीरयतं वत्सौ।

राम—तुम दोनों बालक सुनाओ।

टिप्पणी

(१) **तटस्थ०**—उदासीन व्यक्ति के तुल्य इनका यह वार्तालाप है। (२) **कृतं प्रश्नेन**—प्रश्न पूछना व्यर्थ है। कृतम् अलम् के अर्थ में है, अतः तृतीया। (३) **मुग्ध०**—भोले-भाले हृदय। मुग्धं हृदयम्, संबोधन, कर्मधा०। (४) **आकस्मिकः**—सहसा। अकस्माद् भवः, अकस्मात्+ठञ् (इक)। (५) **संप्लवा०**—बहने का तुझे क्या अधिकार है ? संप्लवस्य अधिकारः, तत्पु०। (६) **निर्भिन्न०**—निर्भिन्न—प्रकट हो गया है, हृदयावेगः—मन का वेग जिसका। निर्भिन्नः हृदयस्य आवेगः यस्य सः, बहु०। निर्भिन्न—निर्+भिद्+क्त। (७) **अन्तरयामि**—छिपाता हूँ, अर्थात् अपने भावावेश को छिपाता हूँ अन्तर+णिच्+लट् उ० १। तत्करोति० से णिच् होकर नामधातु बनी है। (८) **सरस्वती०**—विद्या का प्रवाह। सरस्वत्याः निष्यन्दः, तत्पु०। (९) **आवृत्तः**—अभ्यास किया हैं, आवृत्ति की हैं। आ+वृत्+क्त। (१०) **स्मृति०**—स्मृति में उपस्थित हैं, अर्थात् याद हैं। स्मृतौ उपस्थितौ, तत्पु०। (११) **आसाते**—हैं। आस्+लट् प्र० २। (१२) **उदीरयतम्**—तुम दोनों कहो। उत्+ईर्+णिच्+लोट् म० २।

६४. कुशः—

प्रिया तु सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति।
गुणै रूपगुणैश्चापि प्रीतिर्भूयोऽप्यवर्धत ॥३१॥
तथैव रामः सीतायाः प्राणेभ्योऽपि प्रियोऽभवत्।
हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम् ॥३२॥

पाठभेद—६४. का० काले—प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीन्महात्मनः। प्रियभावः स तु तया स्वगुणैरेव वर्धितः॥ (स्वभाव से ही सीता महात्मा राम की प्यारी थी। वह प्रेम का भाव सीता ने अपने गुणों से ही बढ़ाया था)।

अन्वय—पितृकृताः दाराः इति सीता रामस्य तु प्रिया। गुणैः रूपगुणैः च अपि प्रीतिः भूयः अपि अवर्धत ।।३१।।

तथा एव रामः सीतायाः प्राणेभ्यः अपि प्रियः अभवत्। तु हृदयम् एव परस्परं प्रीतियोगं जानाति ।।३२।।

कुश—पिता (महाराज जनक) के द्वारा (विधिपूर्वक) पत्नीरूप में दी गई सीता राम को बहुत प्रिय थीं। (सुशीलता आदि) गुणों से तथा सौन्दर्य आदि गुणों से भी (सीता के प्रति उनका) प्रेम बहुत अधिक बढ़ गया था ।।३१।।

उसी प्रकार राम सीता को प्राणों से भी अधिक प्रिय थे, क्योंकि (उन दोनों का) हृदय ही पारस्परिक प्रेम के संबन्ध को समझता है ।।३२।।

संस्कृत-व्याख्या

पितृकृताः—पित्रा जनकेन कृताः विधिपूर्वकं प्रदत्ताः, दाराः इति—पत्नीत्येवंरूपा, सीता—जानकी, रामस्य—रामचन्द्रस्य, तु—विशेषतः, प्रिया—प्रेमपात्रभूता आसीत्। गुणैः—शीलविनयादिगुणैः, रूपगुणैः—सौन्दर्यादिगुणैः, च अपि, प्रीतिः—प्रेम, भूयः अपि—पुनरपि, अतिशयेनेत्यर्थः, अवर्धत—वृद्धि प्राप। श्लोको वृत्तम्।

तथैव—तेनैव प्रकारेण, रामः—रामचन्द्रः, सीतायाः—जानक्याः, प्राणेभ्यः अपि—असुभ्योऽपि, प्रियः—प्रेमास्पदम्, अभवत्—आसीत्। तु—किन्तु, यतो हीत्यर्थः, हृदयमेव—सीतारामयोः चित्तमेव, परस्परं—पारस्परिकम्, प्रीतियोगं—प्रेमसंबन्धम्, जानाति—अवगच्छति। अत्र परिसंख्याऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **दाराः**—पत्नी, भार्या। दार शब्द का अर्थ पत्नी है, परन्तु पुंलिंग शब्द है और सदा बहुवचन में आता है। (२) **पितृकृताः**—पिता के द्वारा विधिपूर्वक दी गई। पित्रा कृताः, तत्पु०। (३) **रूपगुणैः**—सौन्दर्यरूपी गुण से। रूपमेव गुणः तैः, रूपक तत्पु०। (४) **प्रीतियोगम्**—प्रेम के संबन्ध को। प्रीतेः योगम्, तत्पु०। (५) इस श्लोक में अर्थगत परिसंख्या अलंकार है। सीता राम के अतिरिक्त अन्य किसी का कभी भी चिन्तन नहीं करती थी। (६) वाल्मीकि रामायण के वर्तमान संस्करणों में ये श्लोक इस प्रकार मिलते हैं:—प्रिया तु

सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति । गुणाद् रूपगुणाच्चापि प्रीतिर्भूयोऽभिवर्धते । तस्याश्च भर्ता द्विगुणं हृदये परिवर्तते । अन्तर्गतमपि व्यक्तमाख्याति हृदयं हृदा ।। (बालकांड अ० ७७ श्लोक २६–२७) ।

६५ (क). रामः—कष्टमतिदारुणो हृदयमर्मोद्घातः । हा देवि, एवं किलैतदासीत् । अहो निरन्वयविपर्यासविप्रलम्भस्मृतिपर्यवसायिनस्तावका: संसारवृत्तान्ताः ।

क्व तावानानन्दो निरतिशयविस्रम्भबहुलः
क्व वाऽन्योन्यप्रेम क्व च नु गहनाः कौतुकरसाः ।
सुखे वा दुःखे वा क्व नु खलु तदैक्यं हृदययो-
स्तथाप्येष प्राणः स्फुरति न तु पापो विरमति ।।३३।।

अन्वय—निरतिशयविस्रम्भबहुलः तावान् आनन्दः क्व? वा अन्योन्यप्रेम क्व? गहनाः कौतुकरसाः च क्व नु? सुखे वा दुःखे वा हृदययोः तत् ऐक्यं क्व नु खलु? तथापि एष पापः प्राणः स्फुरति, न तु विरमति ।।

राम—खेद की बात है कि यह हृदय के मर्मस्थल पर होने वाला प्रहार अत्यन्त कठोर है। हा देवी, उस समय ऐसा ही था। ओह, तुम्हारे जीवन के वृत्तान्त अब आकस्मिक परिवर्तन के कारण वियोग और स्मरण में ही समाप्त हो जाते हैं (अर्थात् घटनाचक्र ने तुम्हारे वियोग के द्वारा तुम्हें नामशेष कर दिया है और अब तुम केवल स्मरण की वस्तु हो गई हो) ।

अत्यधिक विश्वास से परिपुष्ट वह असीम आनन्द अब कहाँ? अथवा दोनों का पारस्परिक प्रेम अब कहाँ? वह अगाध भौतिक विलासों का रसास्वाद अब कहाँ? सुख और दुःख में हम दोनों के हृदयों की वह एकता अब कहाँ? फिर भी यह पापी प्राण अभी तक चल रहा है, रुक नहीं रहा है।।३३।।

संस्कृत-व्याख्या

निरतिशय०—निरतिशयेन अत्युत्कृष्टेन विस्रम्भेण विश्वासेन बहुलः वृद्धः परिपुष्ट इत्यर्थः, तावान्—तत्परिमाणः, अपरिमेय इत्यर्थः, आनन्दः—हर्षः, क्व—कुत्रास्ति? वा—अथवा, अन्योन्य०—अन्योन्यस्य परस्परस्य प्रेम स्नेहः, क्व

--क्वास्ति ? गहनाः—सान्द्राः, कौतुक०—कौतुकानां भौतिकविलासानां रसाः रसास्वादाः च, क्व--क्व सन्ति ? सुखे वा--प्रमोदे वा, दुःखे वा--कष्टे वा, हृदययोः—आवयोश्चित्तयोः, तत्—पूर्वानुभूतम्, ऐक्यम्—एकत्वम्, अभेदानुभव इत्यर्थः, क्व नु खलु—कुत्र वर्तते ? तथापि--एतादृशीमवस्थां गतेऽपि, एषः —अयम्, पापः--पापी, प्राणः--प्राणवायुः, स्फुरति—चलति, न तु—नहि, विरमति—निवर्तते, नावसानं प्राप्नोतीत्यर्थः । अत्र विशेषोक्तिरलंकारः । शिखरिणी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **हृदय०**—हृदय के मर्मस्थल पर प्रहार । उद्घातः—प्रहार । हृदयस्य मर्मणि उद्घातः, तत्पु० । उद्घात--उत्+हन्+घञ् (अ) । ह् को घ और न् को त् । (२) **निरन्वय०**—निरन्वय—असंबद्ध या आकस्मिक, विपर्यास—परिवर्तन के कारण, विप्रलम्भ—वियोग और, स्मृति—स्मरण में, पर्यवसायिनः—समाप्त होने वाले । निरन्वयः विपर्यासः (कर्मधा०), तेन विप्रलम्भे स्मृतौ च पर्यवस्यन्ति इति, उपपद समास । पर्यवसायी--परि+अव+सो (सा) +णिनि (इन्) । (३) **संसार०**—सांसारिक वृत्तान्त । संसारस्य वृत्तान्ताः, तत्पु० । (४) **निरतिशय०**—निरतिशय--अत्यधिक, विस्रम्भ—विश्वास से, बहुलः—बढ़ा हुआ या परिपुष्ट । नास्ति अतिशयो यस्मात् सः निरतिशयः (बहु०), तेन विस्रम्भेण बहुलः, तत्पु० । गहनाः—घने । (५) **कौतुक०**—कौतुक—भौतिक भोगों के, रसाः—रसास्वादन । कौतुकानां रसाः, तत्पु० । कौतुकं त्वभिलाषे स्यादुत्सवे नर्महर्षयोः, इति मेदिनी । (६) **ऐक्यम्०**—दोनों हृदयों की एकता । ऐक्यम्—एकस्य भावः, एक+ष्यञ् । (७) **पापः**--पापी । पापम् अस्यास्तीति, पाप+अच् (अ) । अर्श आदिभ्योऽच् (५-२-१२७) से मत्वर्थ में अच् । पापम् का अर्थ पाप है और पापः—पापी । (८) **विरमति**—रुकता है, शान्त होता है । व्याङ्परिभ्यो रमः (१-३-८३) से वि+रम् परस्मैपदी है । (९) इस श्लोक में प्राणों की समाप्ति या मृत्यु का कारण विद्यमान होने पर भी मृत्यु न होने से कारण के होने पर भी कार्य का अभाव है, अतः विशेषोक्ति है ।

६५ (ख). भोः कष्टम्—

प्रियागुणसहस्राणां क्रमोन्मीलनतत्परः ।
य एव दुःसहः कालस्तमेव स्मारिता वयम् ।।३४।।

अन्वय—प्रियागुणसहस्राणां क्रमोन्मीलनतत्परः यः एव दुःसहः कालः, तम् एव वयं स्मारिताः ।।

राम—हा दुःख है,

प्रियतमा सीता के सहस्रों गुणों को क्रमशः प्रकाशित करने में तत्पर जो असह्य समय है, उसकी ही हमें याद दिलाई गई है ।।३४।।

संस्कृत-व्याख्या

प्रिया०—प्रियायाः सीतायाः गुणसहस्राणां सुशीलताद्यसंख्यगुणानाम्, क्रमो०—क्रमेण क्रमशः उन्मीलने प्रकाशने तत्परः प्रवृत्तः, य एव, दुःसहः—असह्यः, कालः—समयः, तमेव—तं समयमेव, वयम्—अहम्, स्मारिताः—स्मृतिं प्रापिताः । अत्र स्मरणमलंकारः । श्लोको वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **प्रिया०**—प्रिया सीता के सहस्रों गुणों को । प्रियायाः गुणानां सहस्राणि, तेषाम्, तत्पु० । (२) **क्रमो०**—क्रम—क्रमशः, उन्मीलन—प्रकाशन में, तत्परः—लगा हुआ । क्रमेण उन्मीलने 'तत्परः, तत्पु० । उन्मीलन—उत्+मील्+ल्युट् (अन) (३) **दुःसहः**—असह्य । दुर्+सह्+खल् (अ) । ईषद्० (३-३-१२६) से खल् । (४) **स्मारिताः**—स्मरण दिलाए गए हैं, हमें उसकी याद दिलाई गई है । स्मृ+णिच्+क्त प्र० ३ । (५) इस श्लोक में पूर्वानुभूत सीता-संयोग के समय की स्मृति से स्मरण अलंकार है ।

६५ (ग).

तदा किंचित्किंचित्कृतपदमहोभिः कतिपयै-
स्तदीषद्विस्तारि स्तनमुकुलमासीन्मृगदृशः ।

पाठभेद—६५ (ख)—का० काले—एकोन्मीलनपेशलः (एक साथ प्रकट करने में चतुर) । का० काले—दुःस्मरः (दुःखपूर्वक स्मरण करने योग्य) ।

६५ (ग) नि० का०—यदा (जब) । नि० यद् (जो) ।

वयःस्नेहाकूतव्यतिकरघनो यत्र मदनः
प्रगल्भव्यापारः स्फुरति हृदि मुग्धश्च वपुषि ।।३५।।

अन्वय—यत्र वयःस्नेहाकूतव्यतिकरघनः मदनः हृदि प्रगल्भव्यापारः, वपुषि च मुग्धः स्फुरति, तदा किञ्चित्किञ्चित् कृतपदं मृगदृशः तत् स्तनमुकुलं कतिपयैः अहोभिः ईषद्विस्तारि आसीत् ।।

राम—जिस समय (एक ओर) युवावस्था, प्रेम और पारस्परिक अभिलाषा के संपर्क के कारण प्रबुद्ध कामदेव हृदय में प्रौढ चेष्टा युक्त था और (दूसरी ओर) शरीर में (लज्जा के कारण) मुग्धता (अप्रगल्भता) से युक्त था, उस समय धीरे-धीरे अपना स्थान बनाने वाले मृगनयनी सीता के वे कली के तुल्य सुन्दर स्तन कुछ ही दिनों में थोड़े विस्तृत हो गए थे ।।३५।।

संस्कृत-व्याख्या

यत्र—यस्मिन् काले, वयः०—वयसः यौवनस्य स्नेहस्य प्रेम्णः आकूतस्य परस्पराभिलाषस्य च व्यतिकरेण संपर्केण घनः सान्द्रः, मदनः—मनोजः, हृदि—हृदये, प्रगल्भ०—प्रगल्भः प्रौढः व्यापारः चेष्टा यस्य सः तादृशः, वपुषि च—शरीरे च, मुग्धः—अप्रगल्भः, स्फुरति—प्रकाशते, तदा—तस्मिन् काले, किंचित्किंचित्—शनैः शनैः, कृतपदं—विहितस्थानम्, मृगदृशः—हरिणनेत्रायाः सीतायाः, तत्—पूर्वानुभूतम्, स्तनमुकुलं—कुचकुड्मलम्, कतिपयैः—परिमितैः, अहोभिः—दिवसैः, ईषद्विस्तारि—किंचिद्विस्तारयुक्तम्, आसीत्—अभवत् । अत्र पर्यायो विरोधाभासश्चालंकारौ । शिखरिणी वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **कृतपदम्**—जिसने स्थान बनाया है। कृतं पदं येन तत्, बहु० । (२) **ईषद्०**—थोड़े विस्तार वाला। ईषद् विस्तृणाति इति, वि+स्तृ+णिनि (इन्)+नपुं० प्र० १ । (३) **स्तन०**—स्तनरूपी कलियाँ। स्तनौ मुकुले इव, उपमित कर्मधा० । (४) **मृगदृशः**—मृगनयनी सीता का। मृगस्य दृशौ इव दृशौ यस्याः तस्याः, बहु० । (५) **वयः०**—वयः—आयु या युवावस्था, स्नेह—प्रेम और, आकूत—पारस्परिक अभिलाषा के, व्यतिकर—संपर्क के कारण, घनः—घना या प्रबुद्ध । वयसः स्नेहस्य आकूतस्य च व्यतिकरेण घनः, तत्पु० ।

(६) **प्रगल्भ०**––प्रौढ चेष्टाओं वाला। प्रगल्भः व्यापारः यस्य सः, बहु०। हृदय में कामदेव का प्रभाव अत्यन्त उद्बुद्ध होने से प्रौढावस्था में था। (७) **मुग्धः०**––शरीर में भोलापन था। लज्जा और शील के कारण शरीर पर काम का प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता था। (८) इस श्लोक में एक मदन का हृदय और शरीर इन दो के साथ अन्वय होने से पर्याय अलंकार है। एक सीता में ही कामदेव की प्रगल्भता और अप्रगल्भता का वर्णन होने से विरोधाभास अलंकार है। हृदय में प्रगल्भता है और शरीर में अप्रगल्भता, यह परिहार है।

६६. लवः––अयं तु चित्रकूटवर्त्मनि मन्दाकिनीविहारे सीतादेवीमुद्दिश्य रघुपतेः श्लोकः।

त्वदर्थमिव विन्यस्तः शिलापट्टोऽयमायतः।
यस्यायमभितः पुष्पैः प्रवृष्ट इव केसरः।।३६।।

अन्वय––अयम् आयतः शिलापट्टः त्वदर्थं विन्यस्तः इव, यस्य अभितः अयं केसरः पुष्पैः प्रवृष्टः इव।।

लव––चित्रकूट पर्वत के मार्ग में गंगा-जल-विहार के समय देवी सीता को लक्ष्य करके (कहा गया) राम का यह श्लोक है:––

यह विशाल शिलापट्ट मानो तुम्हारे लिए बिछाया गया है, जिसके चारों ओर यह मौलश्री का पेड़ फूलों की वर्षा सी कर रहा है।।३६।।

संस्कृत-व्याख्या

अयम्––एषः, आयतः––विशालः, शिलापट्टः––पाषाणपट्टः, त्वदर्थं––तव सीताया उपवेशनार्थम्, विन्यस्तः इव––संस्थापित इव। यस्य––शिलापट्टस्य, अभितः––परितः, अयम्––एषः, केसरः––बकुलवृक्षः, पुष्पैः––कुसुमैः, प्रवृष्ट इव––कृतवृष्टिरिव वर्तते। अत्रोत्प्रेक्षाऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **चित्रकूट०**––चित्रकूट पर्वत के मार्ग में। चित्रकूटस्य वर्त्म, तस्मिन्, तत्पु०। (२) **मन्दाकिनी०**––गंगा के जल में विहार के समय। मन्दाकिन्यां

पाठभेद––६६. का० काले––अग्रतः (सामने)।

विहारः, तस्मिन्, तत्पु०। (३) विन्यस्तः—रखा हुआ। वि+नि+अस् (४) +क्त। आयतः—विस्तृत, विशाल। आ+यम्+क्त। (४) यस्य अभितः—जिसके चारों ओर। अभितःपरितः० (वा०) से द्वितीया होकर यम् अभितः होना चाहिए। यह आर्ष प्रयोग समझना चाहिए। (५) प्रवृष्टः—वर्षा की है। प्र+वृष्+क्त। केसरः—मौलसरी का वृक्ष। (६) इस श्लोक में दोनों इव उत्प्रेक्षासूचक हैं, अतः दो उत्प्रेक्षा अलंकार हैं।

६७ (क). रामः—(सलज्जास्मितस्नेहकरुणम्) अति हि नाम मुग्धः शिशुजनः विशेषतस्त्वरण्यचरः। हा देवि, स्मरसि वा तस्य तत्समयविस्रम्भातिप्रसङ्गस्य ?

श्रमाम्बुशिशिरीभवत्प्रसृतमन्दमन्दाकिनी-
मरुत्तरलितालकाकुलललाटचन्द्रद्युति ।
अकुङ्कुमकलङ्कितोज्ज्वलकपोलमुत्प्रेक्ष्यते
निराभरणसुन्दरश्रवणपाशमुग्धं मुखम् ॥३७॥

अन्वय—श्रमाम्बुशिशिरीभवत् प्रसृतमन्दमन्दाकिनीमरुत्तरलितालकाकुल-ललाटचन्द्रद्युति अकुङ्कुमकलङ्कितोज्ज्वलकपोलं निराभरणसुन्दरश्रवणपाश-मुग्धं मुखम् उत्प्रक्ष्यते ॥

राम—(लज्जा, मुस्कराहट, प्रेम और करुणा के साथ) बच्चे बहुत अधिक भोले-भाले होते हैं, विशेष कर जंगल में रहने वाले। हा देवी सीता, क्या तुम्हें उस समय के अति विश्वास-युक्त भोग-विलासों का स्मरण है ?

थकान से उत्पन्न पसीने से शीतल होता हुआ, गंगा की मन्द-मन्द चलती हुई वायु के कारण चंचल केशपाश से जिसके चन्द्र-सदृश ललाट की कान्ति आच्छादित है, कुंकुम के लेप के बिना भी तेजोमय कपोलों से युक्त तथा आभूषणों के बिना भी मनोहर कर्णपाश से सुशोभित तुम्हारा मुख मुझे प्रत्यक्ष दिखाई-सा पड़ रहा है ॥३७॥

संस्कृत-व्याख्या

श्रमाम्बु०—श्रमाम्बुभिः श्रमजन्यस्वेदजलैः शिशिरीभवत् शीतलतां प्राप्नुवत्, प्रसृत०—प्रसृतः प्रवहन् यः मन्दः मन्दगतिः मन्दाकिनीमरुत् गङ्गा-

जलसंपृक्तो वायुः तेन तरलिताः चञ्चलतां प्रापिताः ये अलकाः केशपाशाः तैः आकुला आच्छादिता ललाटचन्द्रस्य चन्द्रतुल्यभालस्य द्युतिः कान्तिः यस्य तत्, अकुङ्कुम०––अकुङ्कुमकलङ्कितौ कुङ्कुमकृतरागरहितौ उज्ज्वलौ दीप्यमानौ स्वभावसुन्दरौ इत्यर्थः कपोलौ गण्डस्थलौ यस्मिन् तत्, निराभरण०––निराभरणौ आभूषणरहितौ अपि सुन्दरौ मनोहरौ यौ श्रवणपाशौ प्रशस्तकर्णौ ताभ्यां मुग्धं मनोज्ञम्, मुखं––त्वदीयं वदनम्, उत्प्रेक्ष्यते––पुरतो दृश्यत इव। अत्रोत्प्रेक्षा रूपकं विभावना स्मरणं चालंकाराः। पृथ्वी वृत्तम्॥

टिप्पणी

(१) **सलज्जा०**––लज्जा, मुस्कराहट, प्रेम और करुणा के साथ। लज्जा च स्मितं च स्नेहश्च करुणा च (द्वन्द्व), ताभिः सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (२) **अरण्यचरः**––वन में रहने वाला। अरण्ये चरतीति, अरण्य+चर्+ट (अ)। चरेष्टः (३-२-१६) से ट प्रत्यय। (३) **तत्समय०**––तत्समय––उस समय के, विस्रम्भ––अतिविश्वासयुक्त, अतिप्रसङ्गस्य––भोगविलास की घटनाओं को। तत्समये यः विस्रम्भः (तत्पु०), तस्य अतिप्रसङ्गस्य, तत्पु०। स्मरसि के कारण अधीगर्थ० (२-३-५२) से षष्ठी। (४) **श्रमाम्बु०**––श्रमाम्बु––(संभोगजन्य) थकान से उत्पन्न पसीने की बूँदों से, शिशिरीभवत्––शीतल होता हुआ। श्रमाम्बुभिः शिशिरीभवत्, तत्पु०। अशिशिरं शिशिरं भवत्, शिशिर+च्वि (०)+भवत्। अभूततद्भाव अर्थ में च्वि। (५) **प्रसृत०**––प्रसृत––फैली हुई, चलती हुई, मन्द––शिथिल, मन्दाकिनीमरुत्––गंगा के जल-कणों से युक्त वायु से, तरलित––चंचल, अलक––केशपाश से, आकुल––ढकी हुई है, ललाटचन्द्र––ललाटरूपी चन्द्रमा की, द्युति––कान्ति जिसकी। प्रसृतः मन्दः मन्दाकिनीमरुत् (कर्मधा०), तेन तरलिताः (तत्पु०), ये अलकाः (कर्म-धा०), तैः आकुला ललाटचन्द्रस्य द्युति यस्य तत्, बहु०। तरलित––तरल+णिच्+क्त। तरल शब्द से करोति अर्थ में तत्करोति० (गणसूत्र) से णिच् होकर तरलयति नामधातु है, उससे क्त। ० द्युति नपुं० प्र० १ है, वारिवत् रूप चलेंगे। (६) **अकुंकुम०**––अकुंकुमकलंकित०––कुंकुम की लालिमा के बिना भी, उज्ज्वल––तेजोमय, कपोलम्––गालों से युक्त। अकुंकुमकलंकितौ उज्ज्वलौ कपोलौ यस्मिन् तत्, बहु०। (७) **उत्प्रेक्ष्यते**––मानो सामने दिखाई पड़ रहा

है। उत्+प्र+ईक्ष्+कर्म० लट् प्र० १। (८) **निराभरण०**—निराभरण—बिना आभूषणों के भी, सुन्दर—मनोहर, श्रवणपाश—प्रशस्त कानों से, मुग्धम्—मनोहर। निराभरणौ सुन्दरौ श्रवणपाशौ (कर्मधा०), ताभ्यां मुग्धम्, तत्पु०। श्रवणपाश में पाश प्रशस्त या उत्कृष्ट अर्थ में है। (९) इस श्लोक में उत्प्रेक्ष्यते के कारण द्वारा उत्प्रेक्षा अलंकार की व्यंजना है, अतः प्रतीयमान उत्प्रेक्षा है। ललाटचन्द्र में रूपक है। अकुंकुमकलंकितोज्ज्वल० और निराभरण० में दो विभावना हैं। कुंकुमलेप और आभूषणों के बिना ही सुन्दरता है। सीता के मुख का स्मरण करने से स्मरण अलंकार है।

६७ (ख). (स्तम्भित इव स्थित्वा, सकरुणम्) अहो नु खलु भोः—

चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निहित इव निर्माय पुरतः
प्रवासे चाश्वासं न खलु न करोति प्रियजनः।
जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलत्रे ह्युपरते
कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव ॥३८॥

अन्वय—प्रवासे च चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निर्माय पुरतः निहितः इव प्रियजनः आश्वासं न खलु करोति (इति) न। हि कलत्रे उपरते च जगत् जीर्णारण्यं भवति। तदनु हृदयं कुकूलानां राशौ पच्यते इव॥

राम—(निश्चेष्ट से होकर शोक के साथ) ओह, अरे,

प्रवास के समय भी चिरकाल तक बार-बार ध्यान करके (कल्पना-द्वारा मानसिक मूर्ति) बनाकर सामने प्रतिष्ठापित सा प्रिय व्यक्ति (अपने प्रियजन को) सान्त्वना नहीं देता है, ऐसी बात नहीं है (अर्थात् सान्त्वना देता ही है), क्योंकि पत्नी का स्वर्गवास होने पर यह संसार जीर्ण-शीर्ण वन के तुल्य हो जाता है

पाठभेद—६७ (ख). का० काले—प्रवासेऽप्याश्वासं० (वियोग के समय में भी)। नि०—कलत्रेऽप्युपरते (स्त्री के मरने पर भी), का०—कलत्रव्युपरमे (स्त्री के मरने पर), काले—विकल्पव्युपरमे (असत्य कल्पना के निवृत्त होने पर)।

और तत्पश्चात् उसका हृदय तुष की अग्नि के समूह में मानो जलता रहता है।।३८।।

संस्कृत-व्याख्या

प्रवासे च—देशान्तरं गतेऽपि, वियोगेऽपीत्यर्थः, चिरं—बहुकालं यावत्, ध्यात्वा ध्यात्वा—भूयो भूयः स्मृत्वा, निर्माय—विरचय्य, तस्य काल्पनिकीं मूर्तिं विधायेत्यर्थः, पुरतः—सन्मुखम्, निहित इव—प्रतिष्ठापित इव, प्रियजनः—प्रेमपात्रं जनः, आश्वासं—सान्त्वनाम्, न खलु करोति—न सम्पादयति, इति न—एतन्नास्ति, अर्थात् सान्त्वनां प्रददात्येवेत्यर्थः। हि—यतो हि, कलत्रे—भार्यायाम्, उपरते च—स्वर्गतायां च, जगत्—संसारः, जीर्णारण्यं—शोभारहितं पुरातनं वनमिव, भवति—जायते। तदनु—तत्पश्चात्, हृदयं—चित्तम्, कुकूलानां—तुषानलानाम्, राशौ—समूहे, पच्यत इव—दह्यत इव। अत्रोत्प्रेक्षा रूपकं चालंकारौ। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **स्तम्भित०**—निश्चेष्ट सा होकर। स्तम्भ्+णिच्+क्त। (२) **ध्यात्वा०**—बार-बार ध्यान करके। ध्यै (ध्या)+क्त्वा। नित्यवीप्सयोः (८-१-४) से बारबार या आभीक्ष्ण्य अर्थ में द्विरुक्ति। (३) **निहित०**—मानो रखा हुआ सा। नि+धा+क्त। धा को हि आदेश। निर्माय—बनाकर। निर्+मा+ल्यप्। (४) **न खलु०**—नहीं करता है ऐसी बात नहीं है, अर्थात् करता ही है। दो न स्वीकृति-सूचक हो जाते हैं। (५) **जीर्णारण्यम्**—पुराने वन के तुल्य। जीर्णं च तद् अरण्यम्, कर्मधा०। जीर्ण—जॄ+क्त। (६) **कलत्रे**—पत्नी के। कलत्र का अर्थ स्त्री है, परन्तु यह नपुंसकलिंग शब्द है। (७) **उपरते**—मर जाने पर। उपरत—उप+रम्+क्त। (८) **कुकूलानां०**—तुष की अग्नि के ढेर में। कुकूल का अर्थ है भूसी की अग्नि। कुकूलं शंकुभिः कीर्णे श्वभ्रे ना तु तुषानले, इत्यमरः। तुष की अग्नि धीरे-धीरे जलती है, परन्तु बहुत तेज होती है। उसमें पड़ी हुई वस्तु धीरे-धीरे जलती है और देर में नष्ट होती है। इसी प्रकार राम का हृदय सीता के शोक के कारण निरन्तर दुःखित रहता है, जैसे तुष की अग्नि में पड़ी हुई वस्तु। इसी को घुट-घुटकर मरना कहते हैं। यहाँ पर भवभूति ने तुषाग्नि में जलने की सुन्दर उत्प्रेक्षा दी है।

(९) **पच्यते**—स्वयं जलता रहता है। पच्+कर्मकर्ता में लट् प्र० १। (१०) इस श्लोक में दोनों इव उत्प्रेक्षा-सूचक हैं, अतः दो उत्प्रेक्षा अलंकार हैं। जगज्जीर्णारण्यम् में रूपक है। संसार को जीर्णवन वताया गया है।

६८. **(नेपथ्ये)**

वसिष्ठो वाल्मीकिर्दशरथमहिष्योऽथ जनकः
सहैवारुन्धत्या शिशुकलहमाकर्ण्य सभयाः।
जराग्रस्तैर्गात्रैरथ खलु सुदूराश्रमतया
चिरेणागच्छन्ति त्वरितमनसो विश्लथजटाः ॥३९॥

अन्वय—अरुन्धत्या सह एव वसिष्ठः वाल्मीकिः दशरथमहिष्यः अथ जनकः शिशुकलहम् आकर्ण्य सभयाः (अतएव) त्वरितमनसः विश्लथजटाः (सन्तः) अथ सुदूराश्रमतया जराग्रस्तैः गात्रैः चिरेण आगच्छन्ति खलु ॥

(नेपथ्य में)

अरुन्धती के साथ ही वसिष्ठ, वाल्मीकि, दशरथ की महारानियाँ और जनक—ये सभी बालकों के युद्ध को सुनकर (अनिष्ट की आशंका से) भयभीत, अतएव मानसिक शीघ्रता से युक्त और (तीव्रगति के कारण) शिथिल जटाओं वाले ये आश्रम के सुदूर होने के कारण जरा-पीडित अंगों से विलम्ब से आ रहे हैं ॥३९॥

संस्कृत-व्याख्या

अरुन्धत्या—वसिष्ठपत्न्या, सह एव—सार्धम् एव, वसिष्ठः—महर्षिर्वसिष्ठः, वाल्मीकिः—आदिकविर्वाल्मीकिः, दशरथमहिष्यः—दशरथपत्न्यः कौसल्यादयः, अथ जनकः—राजर्षिर्जनकश्च, शिशुकलहं—बालयुद्धम्, आकर्ण्य—श्रुत्वा, सभयाः—भयान्विताः, अतएव त्वरितमनसः—मनोवेगयुक्ताः, विश्लथजटाः—विश्लथाः शिथिलाः जटाः केशबन्धाः येषां ते तादृशाः, अथ—अनन्तरम्, सुदूराश्रमतया—सुदूरः रणस्थलाद् अतिदूरवर्ती आश्रमः तपोवनं तस्य भावः

पाठभेद—६८. का० काले—विदूराश्रमतया (आश्रम के दूर होने के कारण)। का० काले—मनसोऽपि श्रमजडाः (शीघ्रतायुक्त मन वाले होने पर भी थकान के कारण जड़वत्)

तया, जराग्रस्तैः—जरया वृद्धावस्थया ग्रस्तैः पीडितैः, जीर्णशीर्णैरित्यर्थः, गात्रैः—अङ्गैः, चिरेण—विलम्बेन, आगच्छन्ति—आयान्ति, खलु—इति पादपूरणे। अत्र काव्यलिङ्गमलंकारः। शिखरिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **दशरथ०**—राजा दशरथ की रानियाँ या पत्नियाँ, कौसल्या आदि। महिषी—रानी। महिषी का अर्थ भैंस भी होता है। दशरथस्य महिष्यः, तत्पु०। (२) **शिशु०**—दोनों बालकों के युद्ध को अर्थात् लव और चन्द्रकेतु के युद्ध को। शिश्वोः कलहम्, तत्पु०। आकर्ण्य—सुनकर। आ+कर्ण् (१०) +णिच्+ल्यप्। (३) **सभयाः**—भययुक्त। भयेन सहिताः, बहु०। (४) **जरा०**—बुढ़ापे से पीडित। जरया ग्रस्तैः, तत्पु०। (५) **गात्रैः**—अंगों से। गात्रं वपुः संहननम्, इत्यमरः। गात्र का अर्थ शरीर है। गात्र शब्द का शरीर अर्थ में एकवचनान्त प्रयोग होता है और अंग या शरीरावयव अर्थ में बहुवचनान्त प्रयोग होता है। इत्थंभूतलक्षणे (२–३–२१) से तृतीया। (६) **सुदूरा०**—आश्रम से दूर होने के कारण। सुदूरः आश्रमः (कर्मधा०), तस्य भावः, तया। सुदूराश्रम +तल्+टाप्+तृ० १। (७) **त्वरित०**—त्वरित—शीघ्रतायुक्त हैं, मनसः—मन जिनके। त्वरितं मनः येषां ते, बहु०। त्वरित—त्वरा संजाता अस्येति, त्वरा+इतच्। तदस्य संजातं० (५–२–३६) से इतच्। वसिष्ठ आदि वृद्ध हैं, अतः उनकी शीघ्रता मानसिक है। शरीर साथ नहीं दे रहा है, अतः धीरे-धीरे आ रहे हैं। (८) **विश्लथ०**—विश्लथ—शिथिल हैं, जटाः—जटाएँ जिनकी। विश्लथाः जटाः येषां ते, बहु०। (९) इस श्लोक में विलम्ब से आने का कारण जराग्रस्तगात्रता है, अतः पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है।

६९. रामः—कथं भगवत्यरुन्धती वसिष्ठोऽम्बाश्च जनकश्चात्रैव? कथं खलु ते द्रष्टव्याः? (सकरुणं विलोक्य) तातजनकोऽप्यत्रैवायात इति वज्रेणेव ताडितोऽस्मि मन्दभाग्यः।

संबन्धस्पृहणीयताप्रमुदितैर्जुष्टे वसिष्ठादिभि-
र्दृष्ट्वापत्यविवाहमङ्गलविधौ तत्तातयोः संगमम् ।
पश्यन्नीदृशमीदृशः पितृसखं वृत्ते महावैशसे
दीर्ये किं न सहस्रधाऽहमथवा रामेण किं दुष्करम् ।।४०।।

अन्वय—संबन्धस्पृहणीयताप्रमुदितैः वसिष्ठादिभिः जुष्टे अपत्यविवाहमङ्गलविधौ तत्तातयोः संगमं दृष्ट्वा महावैशसे वृत्ते ईदृशं पितृसखं पश्यन् ईदृशः अहं किं सहस्रधा न दीर्ये ? अथवा रामेण किं दुष्करम् ।।

राम—क्या भगवती अरुन्धती, वसिष्ठ, माताएँ और जनक यहीं हैं ? मैं उनसे कैसे मिलूँ ? (शोक के साथ देखकर) पिता जनक भी यहीं आए हुए हैं, इस समाचार से मैं अभागा मानो वज्र से आहत हो गया हूँ ।

(रघुवंश और जनकवंश के विवाह-) सम्बन्ध की श्लाघ्यता से प्रसन्न महर्षि वसिष्ठ आदि से अधिष्ठित स्वसन्तानों के विवाह-सम्बन्धी मांगलिक विधि में अपने दोनों पिताओं (दशरथ और जनक) के मिलन को देखकर (तथा अब सीता-परित्यागरूपी) घोर हत्या के हो जाने पर इस प्रकार (दुःखित) पिता जी के मित्र (जनक) को देखता हुआ ऐसा (पापी) मैं क्यों सहस्रों टुकड़ों में विदीर्ण नहीं हो जाता हूँ ? अथवा राम के लिए क्या दुष्कर है ? ।।४०।।

संस्कृत-व्याख्या

संबन्ध०—संबन्धस्य रघुवंशजनकवंशयोः वैवाहिकसंबन्धस्य स्पृहणीयतया श्लाघ्यतया प्रमुदितैः प्रसन्नैः, वसिष्ठादिभिः—महर्षिवसिष्ठप्रभृतिभिः, जुष्टे—सेविते, अधिष्ठित इत्यर्थः, अपत्य०—अपत्यानां सीतारामादीनां सन्ततीनां विवाहस्य परिणयस्य मङ्गलविधौ शुभकर्मणि, तत्तातयोः—तेषाम् अपत्यानां तातयोः पित्रोः, जनकदशरथयोरित्यर्थः, संगमं—संमेलनम्, दृष्ट्वा—अवलोक्य, महावैशसे—सीतापरित्यागरूपघोरहिंसाकर्मणि, वृत्ते—संजाते, ईदृशं—शोकातिशयपरिभूतम्, पितृसखं—पितुः दशरथस्य सखायं मित्रम्,

पाठभेद—६६. नि० ज्येष्ठैः (श्रेष्ठ) । काले—जुष्टैः (सेवित) । का० काले—मङ्गलमहे (मंगलमय उत्सव में) । का० काले—संगतम् (मिलन) । काले—ईदृशे (ऐसे) ।

राजर्षि जनकमित्यर्थः, पश्यन्—निरीक्षमाणः, ईदृशः—पापकर्मा, अहं—रामः, किं—कथम्, सहस्रधा—सहस्रप्रकारेण, न—नहि, दीर्ये—विदीर्णो भवामि। अथवा, रामेण—दाशरथिना मया, किं—किं कार्यम्, दुष्करम्—असाध्यम्। मया सर्वमपि कार्यं सुकरम्। यथैव मया सीतापरित्यागः कृतः, तथैव राजर्षिजनक-मुखदर्शनेऽपि न मे हृदयं विदीर्यते। अत्र विशेषोक्तिरर्थापत्तिश्चालंकारौ। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **सम्बन्ध०**—संबन्ध—रघुवंश और जनकवंश के वैवाहिक संबन्ध की, स्पृहणीयता—प्रशंसनीयता के कारण, प्रमुदितैः—प्रसन्नचित्त। संबन्धस्य स्पृहणीयतया प्रमुदितैः, तत्पु०। स्पृहणीयता—स्पृह्+अनीयर्+भावार्थक तल्। (२) **जुष्टे**—सेवित, अधिष्ठित, अर्थात् जहाँ वसिष्ठ आदि उपस्थित हैं। जुष्+क्त+स० १। (३) **अपत्य०**—अपत्य—सीता और राम आदि सन्तानों के, विवाह—विवाह के, मंगलविधौ—मंगलमय कार्य में। अपत्यानां विवाहस्य मंगलविधौ, तत्पु०। (४) **तत्तातयोः**—उनके पिताओं के। तेषां तातयोः, तत्पु०। (५) **पितृसखम्**—अपने पिता दशरथ के मित्र, अर्थात् राजर्षि जनक को। पितुः सखा—पितृसखः, तम्। राजाहः० (५-४-९१) से सखि शब्द के बाद समासान्त टच् (अ), इ का लोप। वृत्ते—होने पर। वृत्त—वृत्+क्त। (६) **महावैशसे**—बड़ा हिंसाकार्य या घोर हत्या। सीता का परित्याग एक बड़ी हिंसापूर्ण घटना है। वैशस—हिंसाकार्य। महद् वैशसम्, तस्मिन्, कर्मधा०। वि+शस्+अच्=विशस+स्वार्थ में अण्। (७) **दीर्ये**—फट जाता हूँ। दॄ+-कर्मकर्ता में लट् उ० १। (८) **दुष्करम्**—कठिन कार्य। अर्थात् राम के लिए कोई कठिन कार्य नहीं है। राम अत्यन्त कठोर है, अतः उसका हृदय स्वयं नहीं फट जाता है। दुस्+कृ+खल् (अ)। (९) इस श्लोक में हृदयविदीर्ण होने का कारण होने पर भी हृदय विदीर्ण होना रूपी कार्य न होने से विशेषोक्ति अलंकार है। किं दुष्करम् ? में अर्थापत्ति से सिद्ध होता है कि राम के लिए कुछ दुष्कर नहीं है, अतः अर्थापत्ति अलंकार है।

(नेपथ्ये)

७०. भो भोः, कष्टम्—

अनुभावमात्रसमवस्थितश्रियं
सहसैव वीक्ष्य रघुनाथमीदृशम्।
प्रथमप्रबुद्धजनकप्रबोधिता
विधुराः प्रमोहमुपयान्ति मातरः ॥४१॥

अन्वय——अनुभावमात्रसमवस्थितश्रियम् ईदृशं रघुनाथं सहसा एव वीक्ष्य प्रथमप्रबुद्धजनकप्रबोधिताः मातरः विधुराः प्रमोहम् उपयान्ति ॥

(नेपथ्य में)

हाय, दुःख की बात है कि——

केवल तेजोमात्र से शोभा-संपन्न ऐसे (अस्थिमात्र शेष) राम को सहसा देखते ही पहले होश में आए हुए जनक के द्वारा होश में लाई गई (कौसल्या आदि) माताएँ शोक से व्याकुल होकर (पुनः) मूर्च्छित हो रही हैं ॥४१॥

संस्कृत-व्याख्या

अनुभाव०——अनुभावमात्रेण प्रभावमात्रेण तेजोमात्रेणेत्यर्थः समवस्थिता विद्यमाना श्रीः शोभा यस्य तम्, ईदृशं——दुःखाधिक्येन अस्थिमात्रावशेषम्, रघुनाथं——रामम्, सहसा एव——अकस्मादेव, वीक्ष्य——अवलोक्य, प्रथम०——प्रथमं पूर्वं प्रबुद्धः संज्ञां प्राप्तः यः जनकः मिथिलाधिपतिः तेन प्रबोधिताः संज्ञां प्रापिताः, मातरः——कौसल्यादयो जनन्यः, विधुराः——शोकविह्वलाः, प्रमोहं——मूर्च्छाम्, उपयान्ति——प्राप्नुवन्ति। मञ्जुभाषिणी वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अनुभाव०**——अनुभावमात्र——प्रभावमात्र से, समवस्थित——विद्यमान है, श्रियम्——शोभा जिसकी ऐसे राम को। अनुभावमात्रेण समवस्थिता श्रीः यस्य तम्, बहु०। अनुभाव एव अनुभावमात्रम्, कर्मधा०। मयूरव्यंसकादयश्च (२-१-७२) से एव अर्थ में मात्र के साथ समास। अभिप्राय यह है कि राम शरीर से सर्वथा कृश हो चुके थे, वे केवल अपने तेज से सुशोभित थे। समवस्थित——सम्+अव+स्था+क्त। आ को इ। (२) **वीक्ष्य**——देखकर। वि+ईक्ष्+

पाठभेद——[illegible] काले—[illegible]मूर्च्छितजनकप्रबोधनाद् (प्रथम मूर्च्छित हुए जनक को होश में लाकर)।

ल्यप्। (३) **प्रथम०**—पहले होश में आए हुए जनक के द्वारा होश में लाई हुई। प्रथमं प्रबुद्धः जनकः (कर्मधा०), तेन प्रबोधिताः, तत्पु०। प्रबुद्ध—प्र+बुध्+क्त। प्रबोधित—प्र+बुध्+णिच्+क्त। (४) **विधुराः**—शोकग्रस्त, दुःखित। प्रमोहम्—मूर्च्छा को। उपयान्ति—प्राप्त होती हैं। मातरः—कौसल्या आदि माताएँ।

७१. रामः—

जनकानां रघूणां च यत्कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम्।
तत्राप्यकरुणे पापे वृथा वः करुणा मयि ॥४२॥

यावत्संभावयामि।

(इत्युत्तिष्ठति)

अन्वय—जनकानां रघूणां च यत् कृत्स्नं गोत्रमङ्गलम्, तत्र अपि अकरुणे पापे मयि वः करुणा वृथा ॥

राम—जनकवंशी और रघुवंशी राजाओं के लिए जो (सीता) पूर्णरूप से कुल-मंगलकारिणी थी, उस (सीता) के प्रति भी निर्दय एवं पापी मुझ पर आप लोगों की कृपा व्यर्थ है ॥४२॥

अच्छा, मैं इन लोगों का सत्कार करता हूँ।

(यह कह कर उठते हैं)

७२. कुशलवौ—**इत इतस्तातः।**

(सकरुणाकुलं परिक्रम्य निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते कुमारप्रत्यभिज्ञानं नाम षष्ठोऽङ्कः।

कुश और लव—तात, इधर से चलिए, इधर से।

(शोक-विह्वलता के साथ परिक्रमा करके सबका प्रस्थान।)

महाकवि श्री भवभूति-विरचित उत्तररामचरित में 'कुमार-प्रत्यभिज्ञान' नामक षष्ठ अंक समाप्त ॥

पाठभेद—७१. काले—तस्मिन्नकरुणे (उसके प्रति भी निर्दय)।

संस्कृत-व्याख्या

जनकानां--जनकवंशीयानाम्, रघूणां च--रघुवंशीयानां च राज्ञाम्, यत् --यत् सीतारूपं वस्तु, कृत्स्नं--समग्रम्, गोत्रमङ्गलं--गोत्रयोः कुलयोः मङ्गलं कल्याणकरम्, तत्रापि--तस्यां सीतायामपि, अकरुणे--निर्दये, पापे--पापकारिणि, मयि--रामे, वः--युष्माकम्, जनकादीनामित्यर्थः, करुणा--दया, वृथा --निष्फलैवास्ति। अत्र काव्यलिङ्गमलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **जनकानां०**--जनकानाम्--जनकवंशियों, रघूणां च--और रघुवंशियों के लिए। (२) **कृत्स्नम्**--पूर्णरूप से, सारा। (३) **गोत्र०**--गोत्र--कुलों के लिए, मंगलम्--मंगल करने वाली। सीता दोनों कुलों के लिए मंगलकारिणी थी। गोत्रयोः मङ्गलम्, तत्पु०। (४) **अकरुणे**--दयाहीन राम पर। अविद्यमाना करुणा यस्मिन् तस्मिन्, बहु०। राम के कथन का अभिप्राय है कि दोनों कुलों के लिए मंगलकारिणी सीता पर मैंने दया नहीं की, अतः मुझ निर्दय पर भी किसी को दया नहीं करनी चाहिए। (५) राम पर दया की व्यर्थता का कारण है, उसकी निर्दयता, अतः पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है। (६) **यावत् संभावयामि**--इनका सत्कार करूँगा। यावत्पुरा० (३-३-४) से भविष्यत् अर्थ में लट्। यावत् के कारण अर्थ हो जाता है--अभी सत्कार करता हूँ। (७) **सकरुणा०**--शोकयुक्त विह्वलता के साथ। करुणया सहितं सकरुणम् (अव्ययी०), सकरुणं च तत् आकुलम्, सुप्सुपा समास। (८) **कुमार-प्रत्यभिज्ञानम्**--लव और कुश दोनों कुमारों को पहचानना। विभिन्न चिह्नों से राम लव और कुश को पहचानते हैं। लव और कुश के पुत्रत्व का स्पष्टीकरण अगले अंक में है। इस अंक की समता शाकुन्तल के सप्तम अंक से है, जहाँ पर दुष्यन्त भरत को इसी प्रकार विविध चिह्नों से पहचानता है। अतः अंक का यह नाम उचित है।

इत्युत्तररामचरितस्याचार्यकपिलदेवद्विवेदिकृतायां 'भारती'-व्याख्यायां षष्ठोऽङ्कः समाप्तः।

सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति लक्ष्मणः)

१. लक्ष्मणः--भोः, अद्य खलु भगवता वाल्मीकिना सब्रह्मक्षत्रपौरजानपदाः प्रजाः सहास्माभिराहूय कृत्स्न एव सदेवासुरतिर्यङ्निकायः सचराचरो भूतग्रामः स्वप्रभावेण संनिधापितः। आदिष्टश्चाहमार्येण---'वत्स लक्ष्मण, भगवता वाल्मीकिना स्वकृतिमप्सरोभिः प्रयुज्यमानां द्रष्टुमुपनिमन्त्रिताः स्मः। गङ्गातीरमातोद्यस्थानमुपगम्य क्रियतां समाजसंनिवेशः' इति। कृतश्च मर्त्यामर्त्यस्य भूतग्रामस्य समुचितस्थानसंनिवेशो मया। अयं तु--

राज्याश्रमनिवासोऽपि प्राप्तकष्टमुनिव्रतः।
वाल्मीकिगौरवादार्य इत एवाभिवर्तते ।।१।।

अन्वय---राज्याश्रमनिवासः अपि प्राप्तकष्टमुनिव्रतः आर्यः वाल्मीकिगौरवात् इत एव अभिवर्तते ।।

(तदनन्तर लक्ष्मण का प्रवेश)

लक्ष्मण---हे लोगो, आज भगवान् वाल्मीकि ने हम लोगों के साथ ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, नागरिक और ग्रामवासी लोगों के सहित (सारी) प्रजा को बुलाकर देवता, राक्षस और पशु-पक्षि-समूह के साथ समस्त स्थावर और जंगम प्राणि-समूह को अपने प्रभाव से अपने समीप एकत्र कर लिया है। आर्य (राम) ने मुझे आदेश दिया है कि---'वत्स लक्ष्मण, भगवान् वाल्मीकि ने अप्सराओं द्वारा अभिनय की जाने वाली अपनी रचना (रामायण) को देखने के लिए हमें

पाठभेद---१. का० का०---निवासोऽपि (राज्यरूपी आश्रम में निवास करने पर भी)।

निमन्त्रित किया है। अतः गंगा-तट पर रंग-शाला में जाकर दर्शकों के यथा-स्थान बैठने का प्रबन्ध करो।' मैंने मनुष्यों और देवों आदि प्राणि-समूह के यथास्थान बैठने का समुचित प्रबन्ध कर दिया है। यह तो—

राज्यरूपी आश्रम में निवास करते हुए भी कष्टप्रद मुनि-व्रत का पालन करने वाले आर्य (राम) वाल्मीकि के प्रति आदरभाव के कारण इधर ही आ रहे हैं ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या

राज्याश्रम०—राज्यं प्रजापालनरूपं राजकर्म तदेव आश्रमः तपोमयजीवन-यापनस्थानं तस्मिन् निवासः स्थितिः यस्य तादृशोऽपि, प्राप्त०—प्राप्तं स्वीकृतं कष्टं कष्टप्रदं मुनिव्रतं तपोमयं जीवनं येन सः, आर्यः—रामचन्द्रः, वाल्मीकि०—वाल्मीकौ प्राचेतसे यद् गौरवं बहुमानः तस्माद् हेतोः, इत एव—अस्मिन् एव स्थाने, अभिवर्तते—आयाति। अत्र विरोधाभासोऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **सब्रह्म०**—ब्रह्म—ब्राह्मण, क्षत्र—क्षत्रिय, पौर—नागरिक और, जानपदाः—ग्रामवासियों के सहित। ब्रह्मभिः क्षत्रैः पौरैः जानपदैश्च सहिताः, द्वन्द्वगर्भक बहु०। (२) **आहूय**—बुलाकर। आ+ह्वे+ल्यप्। (३) **सदेवा०**—देव—देवता, असुर—राक्षस और, तिर्यङ्निकायः—पशु-पक्षि समूह के साथ। निकाय—समूह। देवाः असुराः तिर्यञ्चश्च (द्वन्द्व), तेषां निकायः (तत्पु०), तेन सहितः, बहु०। तिर्यंच्—तिरस्+अञ्च्, तिरस् को तिरि आदेश होकर तिर्यंच् शब्द बनता है। (४) **सचराचरः**—चर और अचर सहित अर्थात् समस्त स्थावर और जंगम जीवजगत्। चराश्च अचराश्च (द्वन्द्व), तैः सहितः, बहु०। (५) **भूतग्रामः**—प्राणिसमूह। भूतानां ग्रामः, तत्पु०। (६) **स्वप्रभावेण**—अपने प्रभाव से। स्वस्य प्रभावः, तेन, तत्पु०। (७) **संनिधापितः**—अपने समीप एकत्र किया है। सम्+नि+धा+णिच्+क्त। (८) **प्रयुज्यमानाम्**—प्रयोग की जाती हुई को। इसका अभिनय अप्सराओं ने किया है। प्र+युज्+शानच्+यक्+टाप्। (९) **उपनिमन्त्रिताः**—निमंत्रित किए गए हैं। उप+नि+मन्त्र्+णिच्+क्त प्र० ३। (१०) **गङ्गा०**—

गंगा के तट पर। गङ्गायाः तीरम्, तत्पु०। (११) **आतोद्य०**—आतोद्य—चार प्रकार के वाद्यों का, स्थानम्—स्थान। जहाँ पर चारों प्रकार के बाजे बजाए जाते हैं, अर्थात् रंगशाला। आ समन्तात् तुद्यते ताडयते इति आतोद्यम्। चार प्रकार के वाद्य हैं—१. तन्तुवाद्य, वीणा आदि, २. मुखवाद्य,—बाँसुरी आदि, ३. हस्तवाद्य, ठोक कर बजाए जाने वाले ढोल मृदंग आदि, ४. झंकृतिवाद्य—जिनसे झंकारयुक्त ध्वनि निकलती है। (१२) **समाज०**—समाज—सामाजिक अर्थात् दर्शकों को, संनिवेशः—यथास्थान बैठाना। समाजस्य संनिवेशः, तत्पु०। (१३) **मर्त्या०**—मर्त्य—मनुष्यों और, अमर्त्यस्य—देवों आदि का। मर्त्याश्च अमर्त्याश्च तस्य, समाहारद्वन्द्व। (१४) **समुचित०**—समुचित—यथोचित, स्थान—स्थान पर, संनिवेशः—बैठने का ठीक प्रबन्ध। समुचितं स्थानम् (कर्मधा०), तत्र संनिवेशः, तत्पु०। (१५) **राज्या०**—राज्यरूपी आश्रम में निवास करने वाला। राज्यम् एव आश्रमः (रूपक कर्मधा०), तस्मिन् निवासः यस्य सः, बहु०। (१६) **प्राप्त०**—प्राप्त—पाया है, स्वीकार किया है, कष्ट—कष्टप्रद, मुनिव्रतः—मुनियों का व्रत जिसने। प्राप्तं कष्टं मुनिव्रतं येन सः, बहु०। (१७) **वाल्मीकि०**—महर्षि वाल्मीकि के प्रति आदर भाव के कारण। वाल्मीकौ गौरवात्, तत्पु०। अभिवर्तते—आ रहे हैं। (१८) इस श्लोक में विरोधाभास अलंकार है। राज्य का उपभोग करते हुए भी मुनि-जीवन बिताना, यह विरोध है। परिहार है—सीता के वियोग के कारण राजकीय सुख में अलिप्त होकर मुनि-जीवन बिताना। (१९) **विशेष**—वाल्मीकि ने इस अंक के द्वारा समस्त संसार के समक्ष सीता की पवित्रता सिद्ध की है और पुत्रों के सहित सीता का राम से मिलन दिखाकर सुखद समाप्ति की है। वाल्मीकि ने इस नाटक का अभिनय अप्सराओं से कराया है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय स्त्रीपात्र नाटकीय अभिनय करते थे और पुरुषपात्रों का भी अभिनय वही करते थे।

(ततः प्रविशति रामः)

२. रामः—वत्स लक्ष्मण, अपि स्थिता रङ्ग-

प्राश्निकाः ?

(तदनन्तर राम का प्रवेश)

राम--प्रिय लक्ष्मण, क्या नाटचशाला के विशेषज्ञ विद्वान् (यथास्थान) बैठ गए हैं?

३. लक्ष्मणः--अथ किम्।

लक्ष्मण--और क्या?

४. रामः--इमौ पुनर्वत्सौ कुशलवौ कुमारचन्द्रकेतुसमां प्रतिपत्तिं लम्भयितव्यौ।

राम--इन दोनों प्रिय कुश और लव को कुमार चन्द्रकेतु के समान ही संमानित करना (अर्थात् इन्हें संमानपूर्ण स्थान पर बिठाना)

५. लक्ष्मणः--प्रभुस्नेहप्रत्ययात्तथैव कृतम्। इदं चास्तीर्णं राजासनम्। तदुपविशत्वार्यः।

लक्ष्मण--(इन दोनों बालकों के प्रति) आपके प्रेम का ज्ञान होने के कारण मैंने वैसा ही किया है। यह राजासन बिछा हुआ है। आप इस पर विराजिए।

६. रामः--(उपविश्य) प्रस्तूयतां भोः।

राम--(प्रविष्ट होकर) अच्छा, (अभिनय) प्रस्तुत कीजिए।

७. सूत्रधारः--(प्रविश्य) भगवान्भूतार्थवादी प्राचेतसः स्थावरजङ्गमं जगदाज्ञापयति--यदिदमस्माभिरार्षेण चक्षुषा समुद्वीक्ष्य पावनं वचनामृतं करुणाद्भुतरसं च किंचिदुपनिबद्धम्, तत्र काव्यगौरवादवधातव्यमिति।

सूत्रधार--(प्रविष्ट होकर) यथार्थवादी भगवान् वाल्मीकि चराचर संसार को आदेश देते हैं कि--'हमने आर्ष (दिव्य, ऋषिजनोचित) दृष्टि से अच्छी तरह देखकर करुणा और अद्भुत रस से युक्त, पवित्र एवं अमृतमय वचनों से युक्त कुछ काव्यरचना की है। काव्य के प्रति आदरभाव के कारण आप लोग उस पर ध्यान दें।

८. रामः—एतदुक्तं भवति साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः। तेषामृतंभराणि भगवतां परोरजांसि प्रज्ञानानि न क्वचिद् व्याहन्यन्त इति नहि शङ्कनीयानि।

राम—यह कहा जाता है कि—'महर्षियों ने धर्म (ब्रह्म) का साक्षात्कार किया है। (अतएव) ऐश्वर्यसंपन्न उन महर्षियों के यथार्थ से परिपूर्ण और रजोगुणरहित उत्कृष्ट ज्ञान कहीं पर हो निरुद्ध नहीं होते हैं' इस विषय में कोई शंका नहीं करनी चाहिए।

टिप्पणी

(१) रङ्ग०—रङ्ग—रंगमंच या नाट्यशाला के, प्राश्निकाः—विशेषज्ञ विद्वान्। रङ्गस्य प्राश्निकाः, तत्पु०। रङ्ग—रञ्ज्+घञ् (अ)। रज्यति अस्मिन् इति रङ्गः। अकर्तरि च० (३–३–१९) से अधिकरण में घञ्। ज् को कुत्व से ग्। प्राश्निक—विशेषज्ञ विद्वान्, जिनको उस विषय का पूर्ण ज्ञान है और उस विषय में प्रश्न करने के अधिकारी हैं। प्रश्नम् अर्हति इति प्राश्निकः। प्रश्न+ठञ् (इव)। तदर्हति (५–१–६३) से ठञ्। अपि—क्या, प्रश्नवाचक है। अथ किम्—और क्या? अर्थात् हाँ। (२) **कुमारचन्द्रकेतु०**—कुमार चन्द्रकेतु के सदृश। कुमारः चन्द्रकेतुः (कर्मधा०), तेन समाम्, तत्पु०। प्रतिपत्तिम्—आदर या संमान को। प्रति+पद्+क्तिन् (ति)। (३) **लम्भयितव्यौ**—प्राप्त कराना, अर्थात् इन्हें आदर का स्थान देना। लभ्+णिच्+तव्यत्+प्र० २। (४) **प्रभु०**—प्रभु—स्वामी के, स्नेह—प्रेम के, प्रत्ययात्—ज्ञान के कारण। आप इससे प्रेम करते है, इसलिए। प्रभोः स्नेहस्य प्रत्ययात्, तत्पु०। (५) **आस्तीर्णम्०**—आपके लिए राजासन बिछाया गया है। राजासन का अर्थ सिंहासन होता है। परन्तु यहाँ पर वास्तविक सिंहासन नहीं लाया गया है। राजा के योग्य उत्तम आसन बिछाया गया है। यहाँ राजासन का अभिप्राय है राजा के योग्य उत्कृष्ट आसन। राज्ञः आसनम्—राजासनम्, तत्पु०। आस्तीर्ण—आ+स्तॄ+क्त। (६) **प्रस्तूयताम्**—प्रस्तुत करो, अभिनय प्रारम्भ करो। प्र+स्तु+कर्म० लोट् प्र० १। (७) **भूतार्थवादी**—सत्यवादी। भूतार्थ—सत्य। भूतार्थं वदति इति, भूतार्थ+वद्+णिनि प्र० १। तच्छील अर्थ में णिनि।

(८) **स्थावर०**—चर और अचर जगत्। स्थावराश्च जङ्गमाश्च तेषां समाहारः, समाहार द्वन्द्व। (९) **आर्षेण**—आर्ष, ऋषिजनोचित, दिव्य। ऋषेः इदम् आर्षम्, ऋषि+अण्। तस्येदम् (४–३–१२०) से अण्। (१०) **समुद्वीक्ष्य**—देखकर । सम्+उत्+वि+ईक्ष्+ल्यप्। (११) **वचनामृतम्**—अमृत तुल्य वचनों से युक्त। वचनम् अमृतमिव, उपमित कर्मधा०। (१२) **करुणा०**—करुण और अद्भुत रस से युक्त। करुणश्च अद्भुतश्च (द्वन्द्व), तौ रसौ यस्मिन् तत्, बहु०। (१३) **उपनिबद्धम्**—रचा है, बनाया है। उप+नि+बन्ध्+क्त। (१४) **काव्य०**—काव्य के प्रति आदरभाव के कारण। काव्ये गौरवात्, तत्पु०। अवधातव्यम्—ध्यान देना चाहिए। अव+धा+तव्यत्। (१५) **साक्षात्कृत०**—जिन्होंने धर्म अर्थात् ब्रह्म का साक्षात्कार किया है। साक्षात्कृतः धर्मः यैः ते, बहु०। धर्मादनिच्० (५–४–१२४) से समासान्त अनिच् (अन्) प्रत्यय। यह कथन निरुक्त (अध्याय १) के निम्नलिखित वाक्य का सारांश है:—'साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् संप्रादुः।' (१६) **ऋतंभराणि**—सत्य से परिपूर्ण। ऋतं बिभ्रति इति, ऋत+भृ+खच् (अ)। संज्ञायां भृतृ० (३–२–४६) से खच्। खित् होने से ऋत के बाद मुम् (म्) आगम। यह अपाणिनीय प्रयोग है। क्योंकि उपर्युक्त सूत्र से संज्ञावाचक होने पर ही खच् होता है, जैसे—विश्वंभरा आदि। योगदर्शन में ऋतंभरा प्रज्ञा का वर्णन है, उसी के अनुकरण पर भवभूति ने ऋतंभर प्रयोग विशेषण के रूप में किया है। यहाँ पर ऋतंभराणि प्रज्ञानानि का भाव ऋतंभरा प्रज्ञा ही है। अतः इसको पारिभाषिक शब्द ऋतंभर नामक ज्ञान ही समझना चाहिए। (१७) **परोरजांसि**—रजोगुणरहित। रजसः पराणि, तत्पु०। राजदन्तादि गण में होने से पर का पूर्व प्रयोग और पारस्करादिगण में होने से पर के बाद सुट् (स्)। (१८) **व्याहन्यन्ते**—कुंठित होते हैं, विरुद्ध होते हैं। वि+आ+हन्+कर्म० लट् प्र० ३। अर्थात् महर्षियों के वचन कभी असत्य नहीं होते हैं। (१९) **नहि०**—ऐसी आशंका कभी नहीं करनी चाहिए।

(नेपथ्ये)

९. हा आर्यपुत्र, हा कुमार लक्ष्मण, एकाकिनीमशरणामासन्नप्रसववेदनामरण्ये हताशा श्वापदा मामभिलषन्ति।

हा, इदानीं मन्दभाग्या भागीरथ्यामात्मानं निक्षिपामि।
[हा अज्जउत्त, हा कुमार लक्खण, एआइणिं असरणं आसण्णप्पसववेअणं अरण्णे हदासं सावदा मं अहिलसंदि। हा, दाणिं मंदभाइणी भाईरहीए अत्ताणं णिक्खिविस्सं।]

(नेपथ्य में)

हा आर्यपुत्र! हा कुमार लक्ष्मण! अकेली, असहाय, समीपवर्ती प्रसव-पीडा से युक्त तथा वन में (जीवन के प्रति) निराश मुझको हिंसक जन्तु खाना चाहते हैं। हाय, अभागिनी मैं अब अपने आप को गंगा में प्रवाहित करती हूँ।

१०. लक्ष्मणः—कष्टं बतान्यदेव किमपि।

लक्ष्मण—खेद की बात है कि यह कुछ और ही (प्रसंग यहाँ उपस्थित) है।

११. सूत्रधारः—

विश्वंभरात्मजा देवी राज्ञा त्यक्ता महावने।
प्राप्तप्रसवमात्मानं गङ्गादेव्यां विमुञ्चति॥२॥

(इति निष्क्रान्तः।)

प्रस्तावना।

अन्वय—विश्वंभरात्मजा देवी राज्ञा महावने त्यक्ता प्राप्तप्रसवम् आत्मानं गङ्गादेव्यां विमुञ्चति॥

सूत्रधार—पृथ्वी की पुत्री महारानी सीता महाराज (राम) के द्वारा महा-वन में छोड़ी जाने पर प्रसव-वेदना से पीडित होकर अपने आपको गंगा नदी में प्रवाहित कर रही है॥२॥

(सूत्रधार का प्रस्थान)

प्रस्तावना समाप्त।

संस्कृत-व्याख्या

विश्वंभरात्मजा—विश्वंभरायाः पृथिव्याः आत्मजा पुत्री, देवी—महाराज्ञी सीता, राज्ञा—महाराजेन रामेणेत्यर्थः, महावने—महारण्ये, त्यक्ता—

परित्यक्ता सती, प्राप्त०—प्राप्तः समुपस्थितः प्रसवः प्रसूतिकालः यस्य **तम्,** आत्मानं—स्वशरीरम्, गङ्गादेव्यां—गङ्गाजलप्रवाहे, विमुञ्चति—परित्यजति। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **आसन्न०**—आसन्न—समीपवर्ती हैं, प्रसववेदनाम्—प्रसव की पीडा जिसको, ऐसी मुझ सीता को। आसन्ना प्रसववेदना यस्याः ताम्, बहु०। आसन्न—आ+सद्+क्त। द् को न् और त को न। (२) **हताशाम्**—निराश। हता आशा यस्याः ताम्, बहु०। (३) **श्वापदाः**—जंगली हिंसक जन्तु। शुनः इव पदानि येषां ते, श्वन्+पद। शुनो दन्त० (वा०) से श्वन् के अ को दीर्घ। (४) **अभिलषन्ति**—चाहते हैं। अभि+लष्+लट् प्र० ३। (५) **आत्मानम्**—अपने आपको, अर्थात् अपने शरीर को। आत्मा का अर्थ शरीर भी है। आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च, इत्यमरः। (६) **निक्षिपामि**—डालती हूँ, प्रवाहित करती हूँ। नि+क्षिप्+लट् उ० १।(७) **अन्यदेव०**—यह तो कुछ और ही प्रसंग उपस्थित है, अर्थात् यह तो राम के द्वारा परित्यक्त सीता के विलाप का प्रसंग है। (८) **विश्वंभरा०**—विश्वंभरा—पृथिवी की, आत्मजा—पुत्री, अर्थात् सीता। विश्वं बिभर्ति इति विश्वंभरा, विश्व+भृ+खच् (अ)। संज्ञायां भृतॄ० (३-२-४६) से खच् प्रत्यय, खित् होने से पूर्वपद को मुम् (म्) का आगम। विश्वंभरायाः आत्मजा, तत्पु०। (९) **त्यक्ता**—छोड़ी हुई। त्यज्+क्त+टाप्। (१०) **प्राप्त-प्रसवम्**—उपस्थित है प्रसव-काल जिसको, ऐसी सीता, जिसको शीघ्र ही बच्चा होने वाला है, अतएव प्रसवपीडा-युक्त। प्राप्तः प्रसवः यस्य तम्, बहु०। (११) **विमुञ्चति**—छोड़ रही है, डाल रही है, प्रवाहित कर रही है। वि+मुच्+लट् प्र० १। शे मुचादीनाम् (७-१-५९) से धातु को नुम् (न्) आगम। (१२) **प्रस्तावना**—यहाँ पर गर्भ अंक की प्रस्तावना समाप्त होती है।

१२. रामः—(सावेगम्) देवि देवि, लक्ष्मणमवेक्षस्व।

राम—(भयजनित उद्वेग के साथ) हे देवी, हे देवी, लक्ष्मण को देखो (अर्थात् लक्ष्मण की प्राणरक्षा के लिए तुम गंगा में प्रवाहित न हो।)

१३. लक्ष्मणः--आर्य, नाटकमिदम्।

लक्ष्मण--आर्य, यह नाटक है।

१४. रामः--हा देवि दण्डकारण्यवासप्रियसखि, एष ते रामाद् विपाकः।

राम--हा देवी, दण्डकारण्य में निवास के समय प्रिय सहचरी, तुम्हारी राम के कारण यह दुरवस्था हुई है।

१५. लक्ष्मणः--आर्य, आश्वस्य दृश्यताम्। प्रबन्धस्त्वार्षः।

लक्ष्मण--आर्य, धैर्य रखकर इसे देखिए। यह ऋषिप्रणीत (नाटकीय) रचना है।

१६. रामः--एष सज्जोऽस्मि वज्रमयः।

राम--वज्रतुल्य मैं (देखने के लिए) तैयार हूँ।

(ततः प्रविशति उत्सङ्गितैकैकदारकाभ्यां पृथ्वीगङ्गाभ्यामवलम्बिता प्रमुग्धा सीता)

१७. रामः--वत्स, असंविज्ञातपदनिबन्धने तमसीवाहमद्य प्रविशामि, धारय माम्।

(तदनन्तर एक-एक बालक को गोदी में लिए हुए पृथ्वी और गंगा के द्वारा सँभाली गई बेहोश सीता का प्रवेश)

राम--वत्स, आज मैं अन्धकार में प्रवेश कर रहा हूँ, जिसमें पैर रखने के स्थान का भी मुझे ज्ञान नहीं है। अतः तुम मुझे सँभालो।

१८. देव्यौ--

समाश्वसिहि कल्याणि! दिष्ट्या वैदेहि! वर्धसे।
अन्तर्जले प्रसूतासि रघुवंशधरौ सुतौ॥३॥

अन्वय--हे कल्याणि, वैदेहि, समाश्वसिहि। दिष्टया वर्धसे। अन्तर्जले रघुवंशधरौ सुतौ प्रसूता असि॥

दोनों देवियाँ—हे मंगलमयी जानकी, तुम धैर्य रखो। तुम्हें बधाई है। तुमने जल के अन्दर रघुकुल को धारण करने वाले दो पुत्रों को जन्म दिया है ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या

हे कल्याणि—हे मङ्गलमयि, हे वैदेहि—हे जानकि, समाश्वसिहि—धैर्यम् अवलम्बस्व। दिष्टया—सौभाग्येन, वर्धसे—वृद्धि प्राप्नोषि, त्वं प्रशंसापात्रं संजातेत्यर्थः। अन्तर्जले—जलाभ्यन्तरे, रघुवंशधरौ—रघुकुलोन्नायकौ, सुतौ—पुत्रौ, प्रसूता—उत्पादितवती, असि—वर्तसे। अत्र काव्यलिङ्गमलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **सावेगम्**—उद्विग्नता के साथ। आवेगेन सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (२) **अवेक्षस्व**—देखो। अव+ईक्ष्+लोट् म० १। (३) **दण्डका०**—दण्डकारण्य—दण्डकवन में, वास—निवास के समय, प्रियसखि—प्रिय सहचरी। दण्डकारण्ये वासः (तत्पु०), तस्मिन् प्रियसखी, तत्संबुद्धिः, तत्पु०। (४) **विपाकः**—परिणाम, अर्थात् दुष्परिणाम या दुरवस्था। वि+पच्+घञ्। (५) **प्रबन्धः०**—यह ऋषिकृत रचना है। ऋषेः अयम् आर्षः, ऋषि+अण्। (६) **वज्रमयः**—वज्रतुल्य राम। अभिप्राय यह है कि मैं राम पाषाणहृदय होकर इस दृश्य को देखने के लिए तैयार हो गया हूँ। जो भी दुःखद घटना दिखानी हो, दिखाई जाए। वज्रस्य विकारः वज्रमयः, विकार अर्थ में मयट् (मय) प्रत्यय। (७) **उत्सङ्गितै०**—उत्संगित—गोदी में लिया है, एकैक—एक एक, दारकाभ्याम्—बच्चे को जिन्होंने, ऐसी पृथिवी और गंगा के द्वारा। उत्सङ्गितः एकैकः दारकः याभ्यां ताभ्याम्, बहु०। उत्सङ्गित—उत्सङ्ग+णिच्+क्त। नामधातु से क्त। एकैकः—एकः एकः, एकं बहुव्रीहिवत् (८-१-९) से द्विरुक्त एक शब्द को बहुव्रीहिवत् मानने से सुप् का लोप और पुंवद्भाव। (८) **प्रमुग्धा**—बेहोश, मूच्छित। प्र+मुह्+क्त+टाप्। (९) **असंविज्ञात०**—असंविज्ञात—अविदित है, पदनिबन्धने—पैर रखने का स्थान जहाँ पर। असंविज्ञातं पदनिबन्धनं यस्मिन् तस्मिन्, बहु०। (१०) **तमसि**—अन्धकार में। धारय—सँभालो। (११) **समाश्वसिहि**—धैर्य रखो। सम्+आ+श्वस्+लोट् म० १।

दिष्टचा--भाग्य से। वर्धसे--बढ़ रही हो, अर्थात् तुम्हें इस शुभ समाचार के लिए बधाई है। दिष्टचा वर्धसे--बधाई है, यह मुहावरा है। (१२) **अन्तर्जले**--जल में। जलस्य अन्तः, अव्ययीभाव। तृतीयासप्तम्यो० (२-४-८४) से सप्तमी में अम् न होने से यह रूप बना। प्रसूता--जन्म दिया। प्र+सू+क्त+टाप्। (१३) **रघुवंशधरौ**--रघुकुल को धारण करने वाले। धरतीति धरः, रघुवंशस्य धरौ, तत्पु०। (१४) इस श्लोक में बधाई का कारण रघुकुल के धारक पुत्रों को जन्म देना है, अतः वाक्यार्थमूलक काव्यलिंग अलंकार है।

१९. सीता--(आश्वस्य) दिष्ट्या दारकौ प्रसूतास्मि। हा आर्यपुत्र! [दिट्ठिआ दारए प्पसूदम्हि। हा अज्जउत्त!]

सीता--(होश में आकर) भाग्य से मैंने दो बालकों को जन्म दिया है। हा आर्यपुत्र!

२०. लक्ष्मणः--(पादयोर्निपत्य) आर्य, दिष्ट्या वर्धामहे। कल्याणप्ररोहो रघुवंशः। (विलोक्य) हा, कथं क्षुभितबाष्पोत्पीडनिर्भरः प्रमुग्ध एवार्यः।

(वीजयति)

लक्ष्मण--(पैरों पर गिरकर) आर्य, भाग्य से हमारी वृद्धि हो रही है। रघुकुल शुभ अंकुर से युक्त हुआ है। (देखकर) हाय, क्या बात है कि बहते हुए अश्रु-समूह से व्याकुल आर्य (राम) मूर्च्छित ही हो गए हैं।

(पंखे से हवा करता है)

२१. देव्यौ--वत्से, समाश्वसिहि।

दोनों देवियाँ--हे पुत्री, धैर्य रखो।

२२. सीता--(समाश्वस्य) भगवत्यौ, के युवाम्? मुञ्चतम्। [भअवदीओ, का तुम्हे? मुंचह।]

सीता--(होश में आकर) हे देवियो, आप दोनों कौन हैं? मुझे छोड़ दीजिए।

२३. पृथिवी--इयं ते श्वशुरकुलदेवता भागीरथी।

पृथिवी—यह तुम्हारे श्वशुर-कुल की पूज्य देवता भागीरथी हैं।

२४. सीता--नमस्ते भगवति! [णमो दे भअवदि।]

सीता—हे भगवती, आप को नमस्कार है।

२५. भागीरथी--चारित्रोचितां कल्याणसंपदमधिगच्छ।

भागीरथी--अपने चरित्र के अनुकूल कल्याणमयी संपत्ति प्राप्त करो।

२६. लक्ष्मणः--अनुगृहीताः स्मः।

लक्ष्मण—हम सब (आपके) अनुगृहीत हैं।

२७. भागीरथी--इयं ते जननी विश्वंभरा।

भागीरथी—यह तुम्हारी माता पृथ्वी हैं।

२८. सीता--हा अम्ब, ईदृश्यहं त्वया दृष्टा। [हा अंब, ईरिसी अहं तुए दिट्ठा।]

सीता—हा माता, आपने मुझे ऐसी अवस्था में देखा।

२९. पृथिवी--एहि पुत्रि, वत्से सीते!

(उभौ आलिङ्ग्य मूर्च्छतः।)

पृथिवी--प्रिय पुत्री सीता, आओ मिलो।

(दोनों आलिंगन करके मूर्च्छित हो जाती हैं।)

टिप्पणी

(१) आश्वस्य—होश में आकर। आ+श्वस्+ल्यप्। (२) निपत्य—गिरकर, पैरों पर गिरकर। नि+पत्+ल्यप्। (३) दिष्ट्या०--हम लोग भाग्य से बढ़ रहे ह, अर्थात् हमारी उन्नति हो रही है। (४) कल्याण०—कल्याणकारी अंकुर अर्थात् सन्तान से युक्त रघुकुल हो गया है। प्ररोह--अंकुर। प्र+रुह्+घञ्। कल्याणः प्ररोहः यस्य सः, बहु०। (५) क्षुभित०—क्षुभित—क्षुब्ध या बहते हुए, बाष्प—आँसुओं के, उत्पीड—समूह से, निर्भरः—

व्याकुल। क्षुभितानां बाष्पाणाम् उत्पीडेन निर्भरः, तत्पु०। प्रमुग्धः—मूर्छित, बेहोश। (६) **वीजयति**—पंख से हवा करता है। वि+ईज्+णिच्+लट् प्र० १। (७) **श्वशुर०**—श्वशुर-कुल की देवता गंगा है। श्वशुरस्य कुलम् (तत्पु०), तस्य देवता, तत्पु०। (८) **चारित्रो०**—चरित्र के अनुकूल। चरित्रम् एव चारित्रम्। चर्+इत्र=चरित्र+अण्। चरित्र से स्वार्थ में अण्। चारित्रस्य उचिताम्, तत्पु०। (९) **कल्याण०**—कल्याणों की संपत्ति को, अर्थात् कल्याणमयी समृद्धि को। कल्याणानां सम्पदम्, तत्पु०। (१०) **अधिगच्छ**—प्राप्त करो। अधि+गम्+लोट् म० १। अधिगम् का अर्थ जानना और पाना है। (११) **विश्वंभरा**—पृथ्वी, यह तुम्हारी माता पृथ्वी है। विश्वं बिभर्ति इति, विश्व+भृ+खच्+टाप्। पूर्वपद को म् आगम। (१२) **आलिङ्गय०**—आलिंगन करके दोनों मूर्छित हो जाती हैं। आ+लिङ्ग्+ल्यप्।

३०. लक्ष्मणः—(सहर्षम्) कथमार्या गङ्गापृथिवीभ्यामभ्युपपन्ना ?

लक्ष्मण—(हर्ष के साथ) क्या कारण है कि आर्या (सीता) गंगा और पृथिवी के द्वारा अनुगृहीत हुई हैं ?

३१. रामः—दिष्ट्या खल्वेतत्। करुणान्तरं तु वर्तते।

राम—सौभाग्य से ऐसा हुआ है। किन्तु यह और अधिक शोक की बात है।

३२. भागीरथी—अत्रभवती विश्वंभरा व्यथत इति जितमपत्यस्नेहेन। यद्वा सर्वसाधारणो ह्येष मनसो मूढग्रन्थिरान्तरश्चेतनावतामुपप्लवः संसारतन्तुः। सखि, भूतधात्रि, वत्से वैदेहि, समाश्वसिहि।

भागीरथी—विश्व को धारण करने वाली पूजनीया पृथिवी भी दुःखित हो रही हैं, अतः अपत्यस्नेह की विजय हुई है। अथवा यह (अपत्य-स्नेह) सबमें समान रूप से विद्यमान है, मन का मोहात्मक बन्धन है, प्राणिमात्र के लिए आन्तरिक चंचलता का कारण है और सृष्टिप्रवाह को मिला कर रखने वाला सूत्र (धागा) है। हे सखी प्राणिमात्रधारिका पृथ्वी, हे प्रियपुत्री सीता, धैर्य रखो।

३३. पृथिवी--(आश्वस्य) देवि, सीतां प्रसूय कथ-
माश्वसिमि ?

सोढश्चिरं राक्षसमध्यवास-
स्त्यागो द्वितीयस्तु सुदुःसहोऽस्याः ।

३४. भागीरथी--
को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तु-
र्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे ॥४॥

अन्वय--(क) अस्याः राक्षसमध्यवासः चिरं सोढः, तु द्वितीयः त्यागः सुदुःसहः। (ख) कः नाम जन्तुः पाकाभिमुखस्य दैवस्य द्वाराणि पिधातुम् ईष्टे ॥

पृथिवी--(होश में आकर) हे देवी, सीता को जन्म देकर मैं कैसे धैर्य धारण करूँ ?

राक्षसों के मध्य इसके निवास को मैंने चिरकाल तक सहन किया, किन्तु इसका परित्याग (राम के द्वारा परित्याग) सर्वथा असह्य है।

भागीरथी--भला कौन व्यक्ति परिणामाभिमुख भाग्य के द्वार को बन्द करने में समर्थ है ? (अर्थात् होनहार को कोई नहीं रोक सकता है) ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या

(क) अस्याः—सीतायाः, राक्षस०--राक्षसानां निशाचराणां मध्ये अन्तरे वासः अवस्थानम्, चिरं--दीर्घकालं यावत्, सोढः—मर्षितः। तु--किन्तु, द्वितीयः—अपरो रामकृतः, त्यागः—परित्यागः, निर्वासनमित्यर्थः, सुदुः-सहः—नितराम् असह्यः।

(ख) कः नाम जन्तुः--को नाम जीवः, पाकाभिमुखस्य---परिणामाभि-मुखस्य, दैवस्य—भाग्यस्य, द्वाराणि--प्रवेशमार्गान्, पिधातुम्--आच्छादयितुम्, रोद्धुमित्यर्थः, ईष्टे—प्रभवति। अत्रार्थापत्तिरर्थान्तरन्यासश्चालंकारौ। इन्द्रवज्रा वृत्तम्।

पाठभेद—३३. का० द्वितीयो हि (दूसरा), काले—द्वितीयश्च (और दूसरा)। ३४. का० काले—जन्तोः (प्राणी के)।

टिप्पणी

(१) **गङ्गा०**——गंगा और पृथिवी के द्वारा। गङ्गा च पृथिवी च, गङ्गा-पृथिव्यौ, ताभ्याम्, द्वन्द्व। (२) **अभ्युपपन्ना**——अनुगृहीत की गई। अभि+उप+पद्+क्त+टाप्। (३) **करुणान्तरम्**——अन्य शोकप्रद बात। अन्यत् करुणं करुणान्तरम्, कर्मधा०। मयूरव्यंसकादयश्च (२–१–७२) से समास। (४) **अपत्य०**——सन्तानप्रेम की विजय हुई। अतः पृथिवी भी दुःखित हो रही है। अपत्येषु स्नेहः, तेन, तत्पु०। (५) **सर्वसाधारणः**——सबमें सामान्यरूप से व्याप्त। सर्वेषां साधारणः, तत्पु०। (६) **मूढग्रन्थिः**—मोहरूपी गाँठ या बन्धन। मूढस्य ग्रन्थिः, तत्पु०। (७) **आन्तरः**——आन्तरिक। अन्तः भवः, अन्तर्+अण्। (८) **चेतनावताम्**—प्राणियों के लिए। चेतना अस्ति येषां तेषाम्, चेतना+मतुप्+ष० ३। म् को व्। (९) **उपप्लवः**——चंचलता का कारण। उप+प्लु+अप् (अ)। (१०) **संसारतन्तुः**——संसार का सूत्र, अर्थात् सृष्टिप्रवाह को मिलाकर रखने वाला सूत्र या धागा। संसारस्य तन्तुः, तत्पु०। (११) **भूत-धात्रि**—प्राणिमात्र को धारण करने वाली। संबोधन कर रूप है। (१२) **प्रसूय**—उत्पन्न करके। प्र+सू+ल्यप्। आश्वसिमि—धैर्य रखूँ। आ+श्वस्+लट् उ० १। (१३) **सोढः**—सहा। सह्+क्त। सहिवहो० (६–३–११२) से सह् के अ को ओ। (१४) **राक्षस०**——राक्षसों के बीच में निवास। राक्षसानां मध्ये वासः, तत्पु०। (१५) **सुदुःसहः**——अत्यन्त असह्य है। सु+दुर्+सह्+खल् (अ)। कठिन अर्थ में खल् प्रत्यय। (१६) **पाकाभिमुखस्य**—परिणाम या कर्मफल के लिए प्रवृत्त। पाकस्य अभिमुखं तस्य, तत्पु०। (१७) **पिधातुम्**——रोकने को। अपि+धा+तुमुन्। वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः, आचार्य भागुरि के मतानुसार अपि के अ का लोप होता है। (१८) **ईष्टे**—समर्थ है। ईश्+लट् प्र० १। यह अदादिगणी धातु है। (१९) इस श्लोक में अभिप्राय है कि भाग्य की गति को कौन रोक सकता है, अर्थात् कोई नहीं। अतः अर्थापत्ति अलंकार है। पूर्वार्ध विशेष का सामान्य उत्तरार्ध के द्वारा समर्थन होने से अर्थान्तरन्यास अलंकार है। (२०) इसी भाव के अन्य सुभाषित हैं——(क) अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र (शाकु० १—१५)। (ख) दैवी च सिद्धिरपि लङ्घयितुं न शक्या (मृच्छ०)। (ग) यत्पूर्वं विधिना

ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः (भर्तृहरि)। (घ) नियतिः केन लङ्घ्यते (काव्यादर्श २-११७)।

३५. पृथिवी——भगवति भागीरथि, युक्तमेतत्सर्वं वो रामभद्रस्य।

न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः।
नाहं न जनको नाग्निर्न तु वृत्तिर्न संततिः॥५॥

अन्वय—बाल्ये बालेन पीडितः पाणिः न प्रमाणीकृतः। न अहम्, न जनकः, न अग्निः, न तु वृत्तिः, न संततिः।

पृथिवी—हे भगवती गंगा, रामभद्र के लिए क्या आपका यह सब कुछ करना उचित है?

बालक (राम) ने बाल्यावस्था में किए गए (सीता के) पाणिग्रहण को भी प्रमाण नहीं माना तथा उसने न मुझको, न जनक को, न अग्नि को, न (सीता के पवित्र) चरित्र को और न अपनी सन्तान को ही प्रमाण माना (अर्थात् उसने इनका भी विचार नहीं किया)॥५॥

संस्कृत-व्याख्या

बाल्ये—शैशवे, बालेन——बालकेन रामेण, पीडितः—गृहीतः, पाणिः—करः, न——नहि, प्रमाणीकृतः—प्रमाणरूपेण गृहीतः। न—नहि, अहं—पृथिवी, न——नहि, जनकः——राजर्षिर्जनकः, न——नहि, अग्निः—पावकः, अग्निपरीक्षायां तस्य प्रयोगात् निर्दोषतासिद्धेरित्यर्थः, न तु—न तर्हि, वृत्तिः—सीतायाः पातिव्रत्याचरणम्, न—नहि, संततिः—गर्भस्थं सन्तानम्, प्रमाणीकृताः। रामेण सीतापरित्यागकाले जनकस्य वह्नेः पृथिव्याश्च प्रमाणत्वं न विचारितम्, न च तेन गर्भस्थसन्ततेरेव चिन्तनं कृतम्। अत्र तुल्ययोगिताऽलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

पाठभेद——३५. का० काले——नानुवृत्तिः (सीताद्वारा राम के अनुसरण का भी विचार नहीं किया)।

टिप्पणी

(१) **न प्रमाणीकृतः**—प्रमाण नहीं माना। अप्रमाणं प्रमाणं कृतः प्रमाणीकृतः। यहाँ अभूततद्भाव अर्थ में च्वि प्रत्यय है, अतः ण के अ को ई। (२) **पीडितः**—ग्रहण किए गए। पीड्+क्त। (३) **न वृत्तिः**—न आचारण को प्रमाण माना, अर्थात् सीता के पातिव्रत्यपूर्ण आचरण को भी प्रमाण नहीं माना। (४) **न सन्ततिः**—न गर्भस्थ सन्तान का ही विचार किया। (५) यहाँ पर प्रस्तुत पाणि, जनक, अग्नि आदि का प्रमाणीकृतः इस एक क्रिया के साथ संबन्ध होने से तुल्ययोगिता अलंकार है।

३६. सीता--हा आर्यपुत्र, स्मरसि? [हा अज्जउत्त, सुमरेसि?]

सीता--हा आर्यपुत्र, क्या आप मुझे याद करते हैं?

३७. पृथिवी--आः, कस्तवार्यपुत्रः?

पृथिवी--ओह, आर्यपुत्र (राम) तुम्हारा कौन है? (अर्थात् राम अब तुम्हारा कुछ नहीं लगता है)।

३८. सीता--(सलज्जास्रम्) यथाऽम्बा भणति। [जह अंबा भणादि।]

सीता--(लज्जा और आँसू के साथ) माता जी ठीक कहती हैं (अर्थात् अब आर्यपुत्र राम से मेरा कोई संबन्ध नहीं है)।

३९. रामः--अम्ब पृथिवि, ईदृशोऽस्मि।

राम--माता पृथिवी, मैं ऐसा ही हूँ।

४०. भागीरथी--भगवति वसुंधरे, शरीरमसि संसारस्य। तत्किमसंविदानेव जामात्रे कुप्यसि?

घोरं लोके विततमयशो या च वह्नौ विशुद्धि-
र्लङ्काद्वीपे कथमिव जनस्तामिह श्रद्दधातु।
इक्ष्वाकूणां कुलधनमिदं यत्समाराधनीयः
कृत्स्नो लोकस्तदिह विषमे किं स वत्सः करोतु॥६॥

पाठभेद—४०. करोति (तो ऐ)।

अन्वय—लोके घोरम् अयशः विततम्, या च लङ्काद्वीपे वह्नौ विशुद्धिः ताम् इह जनः कथमिव श्रद्दधातु। इक्ष्वाकूणाम् इदं कुलधनं यत् कृत्स्नः लोकः समाराधनीयः। तत् इह विषमे सः वत्सः किं करोतु।

भागीरथी—हे भगवती पृथिवी, आप संसार की शरीररूप हो। अतः क्यों अबोध की तरह अपने जामाता (राम) पर क्रुद्ध हो रही हो?

संसार में (राम का) भयंकर अपयश फैल गया था और लंकाद्वीप में जो (सीता की) अग्नि-परीक्षा में निर्दोषता सिद्ध हुई थी, उस पर यहाँ साधारण लोग कैसे विश्वास करें? इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का यह कुलक्रमागत धन (धर्म) है कि 'सारी प्रजा को प्रसन्न रखा जाए'। अतः इस विषम परिस्थिति में वह बालक (बेचारा राम) क्या करता? ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या

लोके—जगति, घोरं—भीषणम्, अयशः—अकीर्तिः, विततं—विस्तृतम्। या च—या पूर्वदृष्टा, लङ्काद्वीपे—लङ्कानामके द्वीपे, वह्नौ—अग्निपरीक्षायाम्, विशुद्धिः—निर्दोषत्वसिद्धिः, तां—वह्निपरीक्षायां विशुद्धिम्, इह—अत्रायोध्यायाम्, जनः—लोकः, कथमिव—केन प्रकारेण, श्रद्दधातु—विश्वसितु। इक्ष्वाकूणाम्—इक्ष्वाकुवंशजानां नृपाणाम्, इदम्—एतत्, कुलधनं—कुलक्रमागतं धनम्, यत्, कृत्स्नः—समग्रः, लोकः—जनः, समाराधनीयः—प्रसादनीयः। तत्—र्तीह, इह—अस्मिन्, विषमे—विषमपरिस्थितौ, स वत्सः—स वराको रामभद्रः, किं—किमन्यत्, करोतु—कुर्यात्। सीतापरित्यागमन्तरेण नान्य उपाय आसीत् लोकप्रसादनस्येत्यर्थः। अत्र पर्यायोक्तमलंकारः। मन्दाक्रान्ता वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **कस्तव०**—आर्यपुत्र राम अब तुम्हारा कौन है? अर्थात् राम ने तुम्हारा परित्याग कर दिया है, अतः वह तुम्हारा कुछ नहीं लगता। (२) **सलज्जा०**—लज्जा और आँसू के साथ। लज्जा च अस्राणि च—लज्जास्राणि (द्वन्द्व), तैः सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। भणति—कहती है। भण्+लट् प्र० १। (३) **असंविदानेव**—न जानती हुई सी, अबोध की तरह।

न संविदाना—असंविदाना, नञ् तत्पु०। संविदाना—सम्+विद्+शानच्। विदिप्रच्छि० (वा०) से सम्+विद् (२ प०) आत्मनेपदी है। (४) जामात्रे०—जामाता राम पर क्रुद्ध हो रही हो। क्रुधद्रुहे० (१-४-३७) से क्रुध् के योग में चतुर्थी होने से जामात्रे में चतुर्थी। (५) विततम्—फैल गया था। वि+तन्+क्त। न् का लोप। (६) वह्नौ०—अग्निपरीक्षा में शुद्धि। विशुद्धि—वि+शुध्+क्तिन्। (७) श्रद्दधातु—श्रद्धा करे, विश्वास करे। श्रत्+धा+लोट् प्र० १। अग्निपरीक्षा में सीता की शुद्धि लंका में हुई थी, अतः यहाँ के लोगों को उस पर विश्वास नहीं है। (८) कुलधनम्—कुलक्रमागत धन, कुल की मर्यादा। कुलस्य धनम्, तत्पु०। (९) समाराधनीयः—प्रसन्न करना चाहिए। सम्+आ+राध्+अनीयर्। (१०) किं स०—बेचारा राम क्या करता? अर्थात् सीता के परित्याग के अतिरिक्त राम के सामने और कोई मार्ग नहीं था। (११) 'किं स वत्सः करोतु' के द्वारा प्रकारान्तर से कहा गया है कि राम को सीता-परित्याग करना पड़ा। प्रकारान्तर से उसी अर्थ को बताने से पर्यायोक्त अलंकार है।

४१. लक्ष्मणः—अव्याहतान्तःप्रकाशा हि देवताः सत्त्वेषु।

लक्ष्मण—प्राणियों के विषय में देवताओं का आन्तरिकभाव-ज्ञान निर्बाध होता है।

४२. भागीरथी—तथाप्येष तेऽञ्जलिः।

भागीरथी—फिर भी मैं आप (पृथ्वी) को प्रणाम करती हूँ।

४३. रामः—अम्ब, अनुवृत्तस्त्वया भगीरथकुले प्रसादः।

राम—हे माता, आपने भगीरथ के कुल पर निरन्तर कृपा की है।

४४. पृथिवी—देवि, नित्यं प्रसन्नास्मि तव। किं त्वसावापातदुःसहः स्नेहसंवेगः। न पुनर्न जानामि सीतास्नेहं रामभद्रस्य।

दह्यमानेन मनसा दैवाद्वत्सां विहाय सः।
लोकोत्तरेण सत्त्वेन प्रजापुण्यैश्च जीवति ॥७॥

अन्वय—स दह्यमानेन मनसा दैवात् वत्सां विहाय लोकोत्तरेण सत्त्वेन प्रजा-पुण्यैः च जीवति ॥

पृथिवी—हे देवी भागीरथी, मैं तुमसे सदा प्रसन्न हूँ। किन्तु यह प्रेम-जन्य क्षोभ प्रारम्भिक क्षणों में अत्यन्त असह्य होता है। मैं सीता के प्रति राम के प्रेम को नहीं जानती हूँ, ऐसी बात नहीं है।

वह (राम) अत्यन्त दुःखित हृदय से दुर्भाग्यवश पुत्री (सीता) का परित्याग करके अलौकिक धैर्य से और प्रजाओं के पुण्यों से ही जीवित है ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या

सः—रामः, दह्यमानेन—अतिसन्तप्तेन, मनसा—हृदयेन, दैवात्—दुर्भाग्यवशात्, वत्सां—पुत्रीं सीताम्, विहाय—परित्यज्य, लोकोत्तरेण—अलौकिकेन, सत्त्वेन—धैर्येण, प्रजापुण्यैः च—प्रकृतीनां सुकृतैश्च, जीवति—जीवनं धारयति। अन्यथा नूनं सीतावियोगजेन दुःखेन मृतो भवेदिति भावः। अत्रासंगतिरलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अव्याहता०**—अव्याहत—बेरोकटोक या निर्बाध है, अन्तःप्रकाशाः—आन्तरिक प्रकाश या ज्ञान जिनका, अर्थात् जो हृदय की बात ठीक-ठीक जानते हैं। लक्ष्मण का अभिप्राय है कि गंगा आदि देवताओं को मनुष्य के अन्दर के भाव सर्वथा ज्ञात हैं। गंगा राम की लाचारी को समझती है। अव्याहतः अन्तः-प्रकाशः येषां ते, बहु०। अव्याहत—न व्याहतः, नञ् तत्पु०। व्याहत—वि+आ+हन्+क्त। सत्त्वेषु—प्राणियों के विषय में। (२) **अंजलिः**—आपके लिए प्रणाम की अंजलि है, अर्थात् आपको प्रणाम है। (३) **अनुवृत्तः**—अनुवृत्ति की है, चालू रखा है। अनु+वृत्+क्त। प्रसादः—कृपा। (४) **प्रसन्ना०**—तुझसे प्रसन्न हूँ। प्रसन्ना—प्र+सद्+क्त+टाप्। (५) **आपात०**—आपात—प्रारम्भिक क्षणों में, दुःसहः—असह्य। आपाते दुःसहः, तत्पु०। दुःसहः—दुर्+सह्+खल्। (६) **स्नेह०**—प्रेम से उत्पन्न क्षोभ या उद्विग्नता। स्नेहस्य

संवेगः, तत्पु०। (७) **न पुनः०**—नहीं जानती हूँ, ऐसी बात नहीं है, अर्थात् जानती ही हूँ। दो न आने पर स्वीकृतिसूचक अर्थ होता है। (८) **दह्यमानेन०**—सन्तप्त हृदय से। दह्यमान—दह्+कर्मवाच्य शानच्। दैवात्—दुर्भाग्य से। (९) **विहाय**—छोड़कर। वि+हा+ल्यप्। (१०) **लोकोत्तरेण**—अलौकिक। लोकात् उत्तरेण, तत्पु०। सत्त्वेन—धैर्य से, साहस से। (११) **प्रजापुण्यैः**—प्रजा के पुण्यों से। प्रजानां पुण्यैः, तत्पु०। ((१२) राम प्रजा के पुण्यों से जीवित हैं। कारण पुण्य प्रजा में हैं और कार्य जीवित रहना राम में है, अतः कार्य और कारण के भिन्न देश में होने से असंगति अलंकार है।

४५. रामः—सकरुणा हि गुरवो गर्भरूपेषु।

राम—गुरुजन सन्तान-तुल्य (हम लोगों) पर दयालु हैं।

४६. सीता—(रुदती कृताञ्जलिः) नयतु मामात्मनोऽङ्गेषु विलयमम्बा। [णेदु मं अत्तणो अंगेसु विलअं अंबा।]

सीता—(रोती हुई, हाथ जोड़कर) हे माता, मुझे अपने अंगों में विलीन कर लो।

४७. भागीरथी—किं ब्रवीषि? अविलीना वत्से, संवत्सरसहस्राणि भूयाः।

भागीरथी—हे पुत्री, तुम क्या कह रही हो? तुम बिना विलीन हुए हजारों वर्षों तक जीवित रहो।

४८. पृथिवी—वत्से, अवेक्षणीयौ ते पुत्रौ।

पृथिवी—हे पुत्री, तुम इन दोनों पुत्रों की देखभाल करना।

४९. सीता—किमेताभ्यामनाथाभ्याम्? [किं एहिं अणाहेहिं?]

सीता—इन अनाथ बालकों से मुझे क्या करना है?

५०—रामः—हृदय, वज्रमसि।

राम--हे हृदय, तू वज्र है।

५१. भागीरथी--कथं वत्सौ सनाथावप्यनाथौ ?

भागीरथी--ये दोनों पुत्र सनाथ होते हुए भी अनाथ कैसे हैं ?

५२. सीता--कीदृशं मे अभाग्यायाः सनाथत्वम् ?
[कीरिसं मे अभग्गाए सणाहत्तणं ?]

सीता--मैं अभागिनी कैसे सनाथ हूँ ?

५३. देव्यौ--

जगन्मङ्गलमात्मानं कथं त्वमवमन्यसे।
आवयोरपि यत्सङ्गात्पवित्रत्वं प्रकृष्यते ॥८॥

अन्वय--त्वं जगन्मङ्गलम् आत्मानं कथम् अवमन्यसे। यत्सङ्गात् आवयोः अपि पवित्रत्वं प्रकृष्यते ॥

दोनों देवियाँ--(हे पुत्री,) तुम संसार के लिए मंगलकारी अपने आपको क्यों तिरस्कृत कर रही हो ? (क्योंकि) तुम्हारे संपर्क के कारण हम दोनों की भी पवित्रता उत्कृष्ट हो रही है ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या

त्वं--जानकी, जगन्मङ्गलं--जगतः संसारस्य मङ्गलं शुभकरम्, आत्मानं --स्वम्, कथं--केन हेतुना, अवमन्यसे--तिरस्करोषि ? यत्सङ्गात्--यस्य तव सङ्गात् संपर्कात्, आवयोः अपि--पृथिवीभागीरथ्योः अपि, पवित्रत्वं--पावनत्वम्, प्रकृष्यते--उत्कर्षं प्राप्नोति। अत्रातिशयोक्तिरलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **सकरुणाः**--दयाभाव से युक्त। करुणया सहिताः, बहु०। (२) **गर्भरूपेषु**--गर्भ अर्थात् गर्भस्थ शिशु या बालक के तुल्य हम लोगों पर। गर्भस्य इव रूपं येषां तेषु, बहु०। (३) **रुदती**--रोती हुई। रुद्+शतृ+ङीप्। कृताञ्जलिः--हाथ जोड़ कर। कृता अञ्जलिः यया सा, बहु०। (४) **विलयं०**--

विलीन कर ले। पृथ्वी मुझे अपने अन्दर लीन कर ले। विलय—वि+ली+ +अच्। (५) **अविलीना**—विलीन न होते हुए। न विलीना, नञ् तत्पु०। विलीन—वि+ली+क्त। त को न। (६) **संवत्सर०**—हजारों वर्षों तक। संवत्सराणां सहस्राणि, तत्पु०। (७) **भूयाः**—होओ। भू+आशीर्लिङ+म० १। (८) **अवेक्षणीयौ**—दोनों की देखभाल करना। अवेक्षणीय—अव+ईक्ष् +अनीयर्। (९) **अनाथाभ्याम्०**—इन अनाथ बालकों से क्या करना है? किम् के कारण तृतीया है। इन दोनों बालकों के पिता राम ने इन्हें भी छोड़ दिया है, अतः ये अनाथ हैं। अविद्यमानः नाथः ययोः ताभ्याम्, बहु०। (१०) **सनाथौ**—सनाथ अर्थात् पिता से युक्त। नाथेन सहितौ, बहु०। (११) **अभाग्यायाः०**—मैं अभागिनी सनाथ कैसे हूँ? मैं राम के द्वारा परित्यक्त हूँ। अविद्यमानं भाग्यं यस्याः तस्याः, बहु०। सनाथत्वम्—सनाथ होना। सनाथस्य भावः। भाव अर्थ में त्व प्रत्यय। (१२) **जगन्मङ्गलम्**—संसार के लिए मंगलकारी। जगतः मङ्गलम्, तत्पु०। (१३) **अवमन्यसे**—तिरस्कार करती हो। तुम्हारे अन्दर हीनभावना नहीं आनी चाहिए। अव+मन्+लट् म० १। (१४) **यत्सङ्गात्**—जिसके संग से। यस्याः सङ्गात्, तत्पु०। (१५) **पवित्रत्वम्**—पवित्रता। पवित्रयोः भावः, भाव अर्थ में त्व। (१६) **प्रकृष्यते**—उत्कृष्ट हो रही है। प्र+कृष्+कर्मकर्ता में लट्+प्र० १। (१७) इस श्लोक में गंगा और पृथिवी से भी अधिक सीता की पवित्रता का वर्णन होने से अतिशयोक्ति अलंकार है।

५४. लक्ष्मणः—आर्य, श्रूयताम्।

लक्ष्मण—आर्य, सुनिए।

५५. रामः—लोकः शृणोतु।

(नेपथ्ये कलकलः।)

राम—सभी लोग सुनें।

(नेपथ्य में कोलाहल होता है)

५६. रामः—अद्भुततरं किमपि।

राम—यह कुछ अधिक आश्चर्य की बात है।

५७. सीता—किमित्याबद्धकलकलं प्रज्वलितमन्तरिक्षम्? [किंत्ति आबद्धकलकलं पज्जलिअं अंतरिक्खं?]

सीता—क्या बात है कि आकाश कोलाहल से व्याप्त और प्रकाशमय हो रहा है।

५८. देव्यौ—ज्ञातम्।

कृशाश्वः कौशिको राम इति येषां गुरुक्रमः।
प्रादुर्भवन्ति तान्येव शस्त्राणि सह जृम्भकैः ॥६॥

अन्वय—कृशाश्वः कौशिकः रामः इति येषां गुरुक्रमः, तानि एव शस्त्राणि जृम्भकैः सह प्रादुर्भवन्ति ॥

दोनों देवियाँ—(अच्छा), समझ गईं।

कृशाश्व, विश्वामित्र और राम, इस प्रकार जिनकी गुरु-परम्परा है, वे ही शस्त्र जृम्भक अस्त्रों के साथ प्रकट हो रहे हैं ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या

कृशाश्वः—जृम्भकास्त्राविष्कर्ता कृशाश्वनामको मुनिः, कौशिकः—विश्वामित्रः, रामः—रामचन्द्रः, इति—इत्येवंरूपेण, येषां—शस्त्रास्त्राणाम्, गुरुक्रमः—आचार्यपरम्परा, तानि एव—तथाविधान्येव, शस्त्राणि—आयुधविशेषाः, जृम्भकैः सह—जृम्भकास्त्रैः सह, प्रादुर्भवन्ति—आविर्भवन्ति। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **लोकः०**—सब लोग सुन। राम ने प्रजा को उलाहना दिया है कि लोग सुनें कि गंगा और पृथ्वी भी सीता को अपने से अधिक पवित्र मानती हैं। लोगों ने सीता की पवित्रता पर सन्देह करके अपनी नीचता का परिचय दिया है। वे अब सीता की पवित्रता को समझें। (२) **अद्भुततरम्**—अधिक आश्चर्य की बात। (३) **आबद्ध०**—आबद्ध—फैल रहा है, कलकलम्—कोलाहल जहाँ पर। आबद्धः कलकलः यस्मिन् तत्, बहु०। आबद्ध—आ+बन्ध्+क्त। (४) **प्रज्वलितम्**—प्रकाशमय हो रहा है। प्र+ज्वल्+क्त। (५) **कृशाश्वः**—महर्षि कृशाश्व। ये जृम्भक अस्त्र के आविष्कर्ता माने जाते हैं। संभवतः ये

दुर्बल घोड़ा रखते थे, अतः इनका कृशाश्व नाम पड़ा। (६) **कौशिकः**—कुशिकपुत्र, विश्वामित्र। कुशिकस्य अपत्यं पुमान्, कुशिक+अण्। कृशाश्व ने विश्वामित्र को जृम्भक अस्त्रों का ज्ञान दिया था। (७) **रामः**—रामचन्द्र। विश्वामित्र ने राम को जृम्भक अस्त्रों की शिक्षा दी थी। (८) **गुरुक्रमः**—गुरुपरंपरा। जृम्भक अस्त्रों की गुरुपरंपरा थी—कृशाश्व>विश्वामित्र>राम। गुरूणां क्रमः, तत्पु०। (९) **प्रादुर्भवन्ति**—प्रकट हो रहे हैं। प्रादुस्+भू+लट् प्र० ३।

(नेपथ्ये)

५९.

देवि सीते! नमस्तेऽस्तु गतिर्नः पुत्रकौ हि ते।
आलेख्यदर्शनादेव ययोर्दाता रघूद्वहः ॥१०॥

अन्वय—हे देवि सीते, ते नमः अस्तु, हि ते पुत्रकौ नः गतिः, आलेख्यदर्शनात् एव रघूद्वहः ययोः दाता॥

(नेपथ्य में)

हे देवी सीता, तुम्हें नमस्कार है, क्योंकि तुम्हारे दोनों पुत्र ही हमारे आश्रय हैं। चित्रदर्शन के समय से ही महाराज राम ने हमें उन दोनों को समर्पित कर दिया है ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या

हे देवि सीते—हे देवि जानकि, ते—तुभ्यम्, नमः—नमस्कारः, अस्तु—भवतु। हि—यतो हि, ते—तव, पुत्रकौ—कुशलवौ, नः—अस्माकम्, गतिः—आश्रयौ स्तः। आलेख्य०—आलेख्यानां चित्राणां दर्शनादेव अवलोकनसमयादेव, रघूद्वहः—रामचन्द्रः, ययोः—त्वत्पुत्रयोः, कुशलवाभ्यामित्यर्थः, दाता—प्रदायकोऽस्ति। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **नमः ते**—तुम्हें नमस्कार है। नमः के कारण ते (ते=तुभ्यम्) में चतुर्थी है। यह युष्मद् का चतुर्थी एक० का रूप है। (२) **आलेख्य०**—चित्रों

के दर्शन के समय से ही। आलेख्यानां दर्शनात्, तत्पु०। (३) रघूद्वहः—रघुवंशियों में श्रेष्ठ, रघुवंशियों के नेता। रघूणाम् उद्वहः, तत्पु०।

६०. सीता—दिष्ट्या अस्त्रदेवता एताः। हा आर्यपुत्र, अद्यापि ते प्रसादाः परिस्फुरन्ति। [दिट्ठिआ अत्थदेवदाओ एदाओ। हा अज्जउत्त, अज्जावि दे पसादा पडिप्फुरंदि।]

सीता—सौभाग्य से ये अस्त्रदेवता हैं। हा आर्यपुत्र, इस समय भी आपका अनुग्रह प्रकट हो रहा है।

६१. लक्ष्मणः—उक्तमासीदार्येण सर्वथैतानि त्वत्प्रसूतिमुपस्थास्यन्तीति।

लक्ष्मण—आर्य ने कहा था कि—'ये अस्त्र पूर्णरूप से तुम्हारी सन्तान को प्राप्त होंगे'।

६२. देव्यौ—

नमो वः परमास्त्रेभ्यो धन्याः स्मो वः परिग्रहात्।
काले ध्यातैरुपस्थेयं वत्सयोर्भद्रमस्तु वः॥११॥

अन्वय—परमास्त्रेभ्यः वः नमः, वः परिग्रहात् धन्याः स्मः। काले ध्यातैः वत्सयोः उपस्थेयम्, वः भद्रम् अस्तु।

दोनों देवियाँ—श्रेष्ठ अस्त्ररूपी आप लोगों (जृम्भकादि अस्त्रों के अधिष्ठातृ देवों) को नमस्कार है। आपको ग्रहण करने से हम सब धन्य हो गए हैं। यथासमय ध्यान करने पर (आप लोग) इन दोनों (लव-कुश) बालकों के पास आ जाया करें। आप लोगों का कल्याण हो॥११॥

संस्कृत-व्याख्या

परमास्त्रेभ्यः—जृम्भकादिश्रेष्ठास्त्रेभ्यः, वः—युष्मभ्यम्, नमः—नमस्कृतिरस्तु। वः—युष्माकम्, परिग्रहात्—स्वीकारात्, धन्याः—कृतकृत्याः, स्मः—भवामः। काले—विशिष्टावसरेषु, ध्यातैः—चिन्तितैः, युष्माभिरिति शेषः,

वत्सयोः—कुशलवयोः, उपस्थेयं—समीपे समागन्तव्यम्। वः—युष्माकम्, भद्रं—कुशलम्, अस्तु—भवेत्। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **परिस्फुरन्ति**—चमक रहे हैं, प्रकट हो रहे हैं। परि+स्फुर्+लट् प्र० ३। (२) **त्वत्प्रसूतिम्**—तुम्हारी सन्तान को। तव प्रसूतिम्, तत्पु०। (३) **उपस्थास्यन्ति**—प्राप्त होंगे। उप+स्था+लृट्+प्र० ३। (४) **वः**—आपको। वः=युष्मभ्यम्। यह युष्मद् च० ३ का रूप है। नमः के कारण चतुर्थी। (५) **वः**—आपके। वः=युष्माकम्, युष्मद्+ष० ३। परिग्रहात्—ग्रहण करने से, स्वीकार करने से। (६) **ध्यातैः**—ध्यान किए जाने पर। ध्या (ध्यै)+क्त+तृ० ३। (७) **उपस्थेयम्**—उपस्थित होना। उप+स्था+यत् (य)। अचो यत् (३-१-९७) से भाव में यत्। आ को ई और उसे गुण होकर ए। (८) **भद्रमस्तु वः**—आपका कल्याण हो। वः युष्मद् ष० ३ का रूप है। इसी भाव का अन्य वचन है—'शिवास्ते सन्तु पन्थानः'।

६३. रामः—

क्षुभिताः कामपि दशां कुर्वन्ति मम संप्रति।
विस्मयानन्दसंदर्भजर्जराः करुणोर्मयः ॥१२॥

अन्वय—संप्रति क्षुभिताः विस्मयानन्दसंदर्भजर्जराः करुणोर्मयः मम काम् अपि दशां कुर्वन्ति॥

राम—इस समय क्षोभ को प्राप्त तथा विस्मय और आनन्द के मिश्रण से जर्जर शोक (रूपी सिन्धु) की तरंगें मेरी अनिर्वचनीय अवस्था कर रही हैं॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या

संप्रति—इदानीम्, क्षुभिताः—क्षोभं प्राप्ताः, विस्मया०—विस्मयस्य आश्चर्यस्य आनन्दस्य हर्षस्य च सन्दर्भेन संमिश्रणेन जर्जराः विशीर्णाः, करुणोर्मयः—करुणस्य सीतावियोगजन्यशोकसिन्धोः ऊर्मयः तरङ्गाः, मम—रामस्य

पाठभेद—६३. का० काले—साम्प्रतम् (इस समय)।

कामपि—अनिर्वचनीयाम्, दशाम्—अवस्थाम्, कुर्वन्ति—विदधति। अत्र रूपकमलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **क्षुभिताः**—क्षोभयुक्त, क्षोभ को प्राप्त। क्षुभ्+क्त। (२) **कामपि**—किसी, अर्थात् अवर्णनीय या अनिर्वचनीय। (३) **विस्मया०**—विस्मय—आश्चर्य और, आनन्द—आनन्द के, सन्दर्भ—मिश्रण या संयोग से, जर्जराः—जर्जर, विशीर्ण। विस्मयश्च आनन्दश्च विस्मयानन्दौ (द्वन्द्व०), तयोः सन्दर्भेण जर्जराः, तत्पु०। (४) **करुणोर्मयः**—शोकरूपी सिन्धु की लहरें। करुण—शोक। यहाँ पर शोकरूपी सिन्धु अर्थ है। उसकी ही लहरें उठती हैं। करुणस्य ऊर्मयः, तत्पु०। (५) इस श्लोक में करुणोर्मयः में करुणरूपी सिन्धु अर्थ होने से रूपक अलंकार है।

६४. देव्यौ—मोदस्व वत्से, मोदस्व। रामभद्रतुल्यौ ते पुत्रकाविदानीं संवृत्तौ।

दोनों देवियाँ—हे पुत्री, प्रसन्न रहो, प्रसन्न रहो। अब तुम्हारे दोनों बालक रामभद्र के सदृश हो गए हैं।

६५. सीता—भगवत्यौ, क एतयोः क्षत्रियोचितविधिं कारयिष्यति? [भअवदीओ, को एदाणं खत्तिओइदविहिं कारइस्सदि?]

सीता—हे दोनों भगवती देवियो, कौन इन दोनों (बालकों) का क्षत्रियोचित संस्कार कराएगा।

६६. रामः—

एषा वसिष्ठशिष्याणां रघूणां वंशनन्दिनी।
कष्टं सीतापि सुतयोः संस्कर्तारं न विन्दति ॥१३॥

पाठभेद—६६. का० काले—वसिष्ठगुप्तानाम् (वसिष्ठ के द्वारा संस्कार कराए जाने से सुरक्षित)

अन्वय—वसिष्ठशिष्याणां रघूणां वंशनन्दिनी एषा सीता अपि सुतयोः संस्कर्तारं न विन्दति (इति) कष्टम् ।।

राम—महर्षि वसिष्ठ के शिष्य रघुवंशी राजाओं के वंश को आनन्दित करने वाली इस देवी सीता को भी अपने दोनों पुत्रों के संस्कार करने वाले आचार्य नहीं मिल रहे हैं, यह कितने दुःख की बात है।।१३।।

संस्कृत-व्याख्या

वसिष्ठशिष्याणां—महर्षिवसिष्ठस्यान्तेवासिनाम्, रघूणां—रघुवंशजानां नृपाणाम्, वंशनन्दिनी—वंशस्य कुलस्य नन्दिनी आनन्ददायिनी, एषा—पुरोवर्तिनी, सीता अपि—जानक्यपि, सुतयोः—स्वपुत्रयोः, कुशलवयोरित्यर्थः, संस्कर्तारम्—उपनयनादिशास्त्रीयविधिसम्पादकम् आचार्यम्, न—नहि, विन्दति—प्राप्नोति, इति कष्टम्—इति दुःखावहो विषयः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **मोदस्व**—प्रसन्न हो। मुद्+लोट्+म० १। (२) **रामभद्र०**—रामचन्द्र के सदृश। रामभद्रेण तुल्यौ, तत्पु०। (३) **संवृत्तौ**—हो गए हैं। संवृत्त—सम्+वृत्+क्त। (४) **क्षत्रियोचित०**—क्षत्रियों के योग्य संस्कार। विधि—संस्कार, जातकर्म आदि संस्कार। क्षत्रियाणाम् उचितः (तत्पु०), स चासौ विधिः, तम्, कर्मधा०। (५) **कारयिष्यति**—कराएगा। कृ+णिच्+लृट् प्र० १। (६) **वसिष्ठ०**—महर्षि वसिष्ठ के शिष्य। वसिष्ठ रघुकुल के गुरु थे। वसिष्ठस्य शिष्याणाम्, तत्पु०। (७) **रघूणाम्**—रघुवंशियों की। (८) **वंशनन्दिनी**—वंश को आनन्दित करने वाली। वंशस्य नन्दिनी, तत्पु०। नन्दयति इति नन्दिनी, नन्द्+णिच्+णिनि+ङीप्। णिच् का लोप। (९) **कष्टम्**—खेद की बात है। (१०) **संस्कर्तारम्**—शास्त्रीय विधि से संस्कार करने वाले आचार्य को। सम्+कृ=संस्कृ+तृच्+द्वि० १। (११) **विन्दति**—प्राप्त कर रही है। विद् (६ उ०)+लट् प्र० १।

६७. भागीरथी—भद्रे, किं तवानया चिन्तया? एतौ हि वत्सौ स्तन्यत्यागात्परेण भगवतो वाल्मीकेरर्पयिष्यामि।

वसिष्ठ एव ह्याचार्यो रघुवंशस्य संप्रति।
स एव चानयोर्ब्रह्मक्षत्रकृत्यं करिष्यति ॥१४॥
यथा वसिष्ठाङ्गिरसौ ऋषिः प्राचेतसस्तथा।
जनकानां रघूणां च वंशयोरुभयोर्गुरुः ॥१५॥

अन्वय––(क) संप्रति हि वसिष्ठः एव रघुवंशस्य आचार्यः, स एव च अनयोः ब्रह्मक्षत्रकृत्यं करिष्यति।

(ख) यथा रघूणां जनकानां च उभयोः वंशयोः वसिष्ठाङ्गिरसौ (गुरू), तथा प्राचेतसः ऋषिः गुरुः ॥

भागीरथी––हे सुशील पुत्री, तुम्हें इसकी क्या चिन्ता है? इन दोनों बालकों को दूध छोड़ने के बाद मैं भगवान् वाल्मीकि को सौंप दूँगी।

इस समय महर्षि वसिष्ठ ही रघुकुल के आचार्य हैं और वही इन दोनों (बालकों) के ब्राह्मणोचित (वेदाध्यापनादि) और क्षत्रियोचित (धनुर्वेदाध्यापनादि) कार्य संपन्न करेंगे ॥१४॥

जिस प्रकार रघुवंशी और जनकवंशी इन दोनों वंशों के राजाओं के (क्रमशः) महर्षि वसिष्ठ और शतानन्द गुरु हैं, उसी प्रकार महर्षि वाल्मीकि भी इन दोनों वंशों के गुरु हैं ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या

(क) संप्रति हि––इदानीं तु, वसिष्ठ एव––महर्षिर्वसिष्ठ एव, रघुवंशस्य––रघुकुलस्य, आचार्यः––कुलगुरुः अस्ति। स एव च––स वसिष्ठ एव, अनयोः––लवकुशयोः, ब्रह्मक्षत्रकृत्यं––ब्राह्मणक्षत्रियोचितविधिम्, करिष्यति––सम्पादयिष्यति। श्लोको वृत्तम्।

(ख) यथा––येन प्रकारेण, रघूणां––रघुवंशजानां नृपाणाम्, जनकानां च––जनकवंशजानां च नृपाणाम्, उभयोः––द्वयोरपि, वंशयोः––कुलयोः, वसिष्ठाङ्गिरसौ––वसिष्ठः ब्रह्मपुत्रः आङ्गिरसः अङ्गिरसः गोत्रापत्यं पुमान्, शतानन्द

पाठभेद––६७. का॰ काले––वसिष्ठः : करिष्यति (एष श्लोको नास्ति)

इत्यर्थः, गुरू—उपाध्यायौ स्तः, तथा—तेनैव प्रकारेण, प्राचेतसः—प्रचेतसोऽपत्यं पुमान्, वाल्मीकिरित्यर्थः, ऋषिः—मुनिः, गुरुः—उपाध्यायोऽस्ति। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **किं चिन्तया०**—तुम्हें इसकी क्या चिन्ता ? किम् के कारण तृतीया। (२) **स्तन्य०**—दूध छोड़ने के बाद। स्तन्य—दूध। स्तने भवं स्तन्यम्, स्तन+यत् (य)। शरीरावयवाच्च (४–३–६२) से यत्। स्तन्यस्य त्यागात्, तत्पु०। परेण दिशावाचक शब्द है और यहाँ पर कालवाचक है, अतः अन्यारादितर० (२–३–२९) से त्यागात् में पंचमी। (३) **अर्पयिष्यामि**—अर्पित करूँगी, सौंप दूँगी। ऋ+णिच्=अर्पय्+लृट् उ० १। ऋ धातु से णिच् करने पर बीच में पुक् (प्) आगम होने से अर्पय् धातु हो जाती है। (४) **ब्रह्मक्षत्र०**—ब्रह्म—ब्राह्मणोचित वेदाध्यापन आदि और, क्षत्र—क्षत्रियोचित धनुर्वेद का अध्यापन आदि, कृत्यम्—कार्य। ब्रह्म च क्षत्रं च ब्रह्मक्षत्रे (द्वन्द्व), तयोः कृत्यम्, तत्पु०। (५) **वसिष्ठाङ्गिरसौ**—वसिष्ठ और आंगिरस अर्थात् शतानन्द। वसिष्ठ रघुकुल के गुरु हैं और शतानन्द जनकवंश के। वसिष्ठश्च आङ्गिरसश्च, द्वन्द्व। (६) **प्राचेतसः**—वाल्मीकि। महर्षि वाल्मीकि वसिष्ठ और शतानन्द के तुल्य ही अत्युच्चकोटि के महर्षि हैं। ये भी जनक और रघु दोनों कुलों के गुरु हैं। ये ही दोनों बालकों के शास्त्रीय विधि से संस्कार करेंगे।

६८. रामः—सुविचिन्तितं भगवत्या।

राम—आपने ठीक सोचा है।

६९. लक्ष्मणः—आर्य, सत्यं विज्ञापयामि। तैस्तैरुपायैरिमौ वत्सौ कुशलवावुत्प्रेक्षे।

एतौ हि जन्मसिद्धास्त्रौ प्राप्तप्राचेतसावुभौ।
आर्यतुल्याकृती वीरौ वयसा द्वादशाब्दकौ ॥१६॥

अन्वय—हि एतौ उभौ वीरौ जन्मसिद्धास्त्रौ, प्राप्तप्राचेतसौ, आर्यतुल्याकृती, वयसा द्वादशाब्दकौ (स्तः)॥

पाठभेद—६९. काले—द्वादशाब्दिकौ (बारह वर्ष की आयु के)।

लक्ष्मण—आर्य, मैं आपसे सच कहता हूँ कि विभिन्न (पाँच) कारणों से मैं इन दोनों बालकों को कुश और लव समझता हूँ।

क्योंकि १. ये दोनों (जन्मजात) वीर हैं, २. इन दोनों को जन्म से ही जृम्भक अस्त्र प्राप्त हैं, ३. दोनों महर्षि वाल्मीकि के पास पहुँचे हुए हैं, ४. आप के सदृश ही इन दोनों की आकृति है और ५. ये दोनों आयु में बारह वर्ष के हैं ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या

हि—यतो हि, एतौ—पुरोवर्तिनौ, उभौ—द्वावेव, वीरौ—शूरौ, जन्म-सिद्धास्त्रौ—जन्मारभ्यैव सिद्धानि प्राप्तानि अस्त्राणि जृम्भकास्त्राणि ययोः तौ, प्राप्त०—प्राप्तः लब्धः प्राचेतसः महर्षिर्वाल्मीकिः याभ्यां तौ, आर्य०—आर्येण पूज्येन रामेण तुल्या सदृशी आकृतिः आकारः ययोः तौ, वयसा—आयुषा, द्वाद-शाब्दकौ—द्वादशवर्षीयौ, स्तः इति शेषः। अत्रानुमानमलंकारः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **सुविचिन्तितम्**—ठीक सोचा है। सु+वि+चिन्त्+णिच्+क्त। (२) **विज्ञापयामि**—बताता हूँ। वि+ज्ञा+णिच्+लट् उ० १। (३) **कुश-लवौ**—कुश और लव। कुशश्च लवश्च, द्वन्द्व। (४) **उत्प्रेक्षे**—समझता हूँ, मानता हूँ। उत्+प्र+ईक्ष्+लट् उ० १। (५) **जन्म०**—जन्म से ही सिद्ध हैं अस्त्र जिन दोनों को। जन्मनः सिद्धानि अस्त्राणि ययोः तौ, बहु०। सिद्ध—सिध्+क्त। (६) **प्राप्तप्राचेतसौ**—जिन्होंने वाल्मीकि ऋषि को प्राप्त किया है। प्राप्तः प्राचेतसः याभ्यां तौ, बहु०। प्राचेतस—प्रचेतस् के पुत्र, महर्षि वाल्मीकि। (७) **आर्य०**—आर्य—पूज्य राम के, तुल्य—सदृश, आकृती—आकृति वाले। आर्येण तुल्या आकृतिः ययोः तौ बहु०। (८) **द्वादशा०**—बारह वर्ष की आयु वाले। द्वादश अब्दाः ययोः तौ, बहु०। समासान्त कप् (क) प्रत्यय। (९) इस श्लोक में दोनों बालकों को कुश और लव मानने में पाँच कारण बताए गए हैं। पाँच कारणों से अनुमान होने से अनुमान अलंकार है।

७०. रामः—वत्सावित्येवाहं परिप्लवमानहृदयः प्रमुग्धोऽस्मि।

राम—ये दोनों (कुश और लव) मेरे पुत्र हैं, इसीलिए मेरा हृदय चंचल हो गया है और मैं अत्यन्त मुग्ध हो गया हूँ।

७१. पृथिवी—एहि वत्से, पवित्रीकुरु रसातलम्।

पृथिवी—हे पुत्री, आओ और रसातल (१. भूतल, २. पाताल) को पवित्र करो।

७२. रामः—हा प्रिये, लोकान्तरं गतासि।

राम—हा प्रिय सीता, तुम पाताल में चली गई हो? (राम ने रसातल का पाताल अर्थ मानकर ऐसा कहा है)।

७३. सीता—नयतु मामात्मनोऽङ्गेषु विलयमम्बा। न सहिष्ये ईदृशं जीवलोकस्य परिभवमनुभवितुम्। [णेदु मं अत्तणो अंगेसु विलअं अंबा। ण सहिस्सं ईरिसं जीअलोअस्स परिभवं अणुभविदुं।]

सीता—हे माता, तुम मुझे अपने अंगों में विलीन कर लो। मैं संसार के ऐसे अपमान को सहन नहीं कर सकती हूँ।

७४. रामः—किमुत्तरं स्यात्?

राम—(पृथिवी का) क्या उत्तर होगा? (अर्थात् पृथ्वी क्या उत्तर देगी, यह मैं जानने के लिए अधीर हूँ)।

७५. पृथिवी—मन्नियोगतः स्तन्यत्यागं यावत्पुत्रयोरवेक्षस्व। परेण तु यथा रोचिष्यते तथा करिष्यामि।

पृथिवी—मेरे आदेशानुसार दूध छोड़ने तक तुम इन दोनों पुत्रों की देख भाल करो। बाद में जैसा मुझे पसन्द होगा, वैसा मैं प्रबन्ध करूँगी।

७६. भागीरथी—एवं तावत्।

(इति निष्क्रान्ते देव्यौ सीता च।)

भागीरथी--ऐसा ही ठीक है।

(तदनन्तर दोनों देवियों और सीता का प्रस्थान।)

७७. रामः--कथं प्रतिपन्न एव तावत्? हा चारित्र-देवते, लोकान्तरे पर्यवसितासि?

(इति मूर्च्छति।)

राम--क्या (सीता ने पाताल में जाना) स्वीकार कर ही लिया? हा सच्चरित्रता की देवता, क्या लोकान्तर (पाताल) में ही तुम्हारा अन्त होगा?

(यह कहकर मूर्च्छित हो जाते हैं)

७८. लक्ष्मणः--भगवन्वाल्मीके, परित्रायस्व परित्रायस्व। एष ते काव्यार्थः?

लक्ष्मण--हे भगवन् वाल्मीकि, (राम को) बचाइए, बचाइए। क्या आपके काव्य का यही अभिप्राय है? (अर्थात् क्या राम के जीवन का अन्त ही आपके काव्य का उद्देश्य है?)।

टिप्पणी

(१) **परिप्लव०**--चंचल हृदय वाला। परिप्लवमानं हृदयं यस्य सः, बहु०। परिप्लवमान--परि+प्लु+शानच्। प्रमुग्धः--मुग्ध, मोहयुक्त। प्र+मुह्+क्त। (२) **पवित्रीकुरु**--पवित्र करो। अपवित्रं पवित्रं कुरु इति, पवित्र+कुरु। अभूततद्भाव में च्वि प्रत्यय और त्र के अ के ई। (३) **रसातलम्**--रसातल के दो अर्थ हैं--१. पृथिवी या भूतल, २. पाताल। पृथिवी के कथन का अभिप्राय है कि तुम भूतल पर रहो, अर्थात् मेरे साथ रहो। राम ने रसातल का अर्थ पाताल समझकर विचार किया कि सीता अब पाताल को जा रही है। रसायाः तलम्, तत्पु०। (४) **लोकान्तरं०**--राम का अभिप्राय है कि तुम पाताल को चली गई हो। अन्यः लोकः लोकान्तरम्, मयूरव्यंसकादि-कर्मधा०। (५) **विलयम्**--लय, विनाश। हे पृथिवी, तुम मुझे अपने अंगों में समा लो। (६) **सहिष्ये**--सहूँगी। सह्+लृट्+उ० १। अनुभवितुम्--अनुभव करने को। अनु+भू+तुमुन्। (७) **मन्नियोगतः**--मेरी आज्ञा से। मम

नियोगतः, तत्पु०। (८) **स्तन्यत्यागं०**—दूध छोड़ने तक। स्तन्यस्य त्यागम्, तत्पु० । (९) **अवेक्षस्व**—देखभाल करो। अव+ईक्ष्+लोट्+म० १। (१०) **रोचिष्यते**—जैसा मुझे पसन्द होगा। पृथिवी का अभिप्राय है कि बाद में जैसा मैं चाहूँगी, वैसा करूँगी। रुच्+लृट् प्र० १। (११) **कथं प्रतिपन्न०**—क्या सीता ने पाताल में जाना स्वीकार कर लिया? प्रतिपन्न एव—स्वीकार ही कर लिया है। प्रतिपन्न—प्रति+पद्+क्त। (१२) **लोकान्तरे**—दूसरे लोक में, अर्थात् पाताल में (१३) **पर्यवसितासि**—समाप्त होगी, वहाँ तुम्हारा अन्त होगा। पर्यवसिता—परि+अव+सो (सा)+क्त+टाप्। सा के आ को द्यति-स्यति० (७-४-४०) से इ। (१४) **काव्यार्थः**—हे वाल्मीकि, क्या यही आपके काव्य का उद्देश्य था कि सीता का अन्त पाताल में हो?

(नेपथ्ये)

७९. अपनीयतामातोद्यम्। भो जङ्गमस्थावराः प्राणभृतो मर्त्यामर्त्याः, पश्यतेदानीं वाल्मीकिनाभ्यनुज्ञातं पवित्रमाश्चर्यम्।

(नेपथ्य में)

(वीणा आदि) चारों प्रकार के वाद्य बन्द कीजिए। हे जंगम और स्थावर प्राणियो, हे मर्त्यसमह (मनुष्यो) और अमर्त्यगण (देवगण), अब आप लोग महर्षि वाल्मीकि द्वारा स्वीकृत पवित्र आश्चर्य देखिए।

८०. लक्ष्मणः—(विलोक्य)

मन्थादिव क्षुभ्यति गाङ्गमम्भो
व्याप्तं च देवर्षिभिरन्तरिक्षम्।
आश्चर्यमार्या सह देवताभ्यां
गङ्गामहीभ्यां सलिलादुपैति ॥१७॥

अन्वय—गाङ्गम् अम्भः मन्थात् इव क्षुभ्यति, अन्तरिक्षं च देवर्षिभिः व्याप्तम्। आश्चर्यम्, आर्या देवताभ्यां गङ्गामहीभ्यां सह सलिलात् उपैति।

पाठभेद—८०. का० काले—उदेति (निकल रही है)।

लक्ष्मण—(देखकर)

गंगा का जल इस प्रकार क्षुब्ध हो रहा है, जैसे मन्थन से (क्षुब्ध होता है) और आकाश देवों तथा ऋषियों से व्याप्त हो गया है। आश्चर्य की बात है कि आर्या (पूज्य सीता) देवी गंगा और पृथिवी के साथ जल से ऊपर आ रही हैं ।।१७।।

संस्कृत-व्याख्या

गाङ्गं—गङ्गासंबन्धि, अम्भः—सलिलम्, मन्थात् इव—मन्थनादिव, क्षुभ्यति—विक्षुब्धं भवति। अन्तरिक्षं च—व्योम च, देवर्षिभिः—देवैः ऋषिभिश्च, व्याप्तं—समाकीर्णम्। आश्चर्यम्—अद्भुतमेतत्, आर्या—देवी सीता, देवताभ्यां—भगवतीभ्याम्, गङ्गामहीभ्यां—भागीरथीपृथिवीभ्याम्, सह—सार्धम्, सलिलात्—गङ्गाया जलात्, उपैति—उत्तिष्ठति। अत्रोत्प्रेक्षाऽलंकारः। इन्द्रवज्रा वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **अपनीयताम्**—हटाओ। अप+नी+कर्मवाच्य लोट् प्र० १। (२) **आतोद्यम्**—वीणा आदि चार प्रकार के वाद्यों को आतोद्य कहते हैं। (३) **जंगम०**—जंगम और स्थावर, चर और अचर। जङ्गमाश्च स्थावराश्च, द्वन्द्व। (४) **प्राणभृतः**—प्राण धारण करने वाले, प्राणी। प्राणान् बिभ्रति इति, प्राण+भृ+क्विप्। ह्रस्वस्य० (६-१-७१) से भृ के बाद तुक् (त्) का आगम। (५) **मर्त्या०**—मर्त्य—मनुष्य और, अमर्त्याः—अमर देवतागण। मर्त्याश्च अमर्त्याश्च, द्वन्द्व। (६) **अभ्यनुज्ञातम्**—आज्ञा दिया गया, स्वीकृत। अभि+अनु+ज्ञा+क्त। (७) **मन्थादिव**—जैसे मन्थन से। क्षुभ्यति—क्षुब्ध हो रहा है, चंचल हो रहा है। क्षुभ्+लट् प्र० १। (८) **गाङ्गम्**—गंगा का। गङ्गाया इदम्, गङ्गा+अण्। (९) **व्याप्तम्**—व्याप्त हो गया है। वि+आप्+क्त। (१०) **देवर्षिभिः**—देवों और ऋषियों से। देवाश्च ऋषयश्च तैः, द्वन्द्व०। (११) **गङ्गा०**—गंगा और पृथ्वी के साथ। गङ्गा च मही च, ताभ्याम्, द्वन्द्व०। (१२) **उपैति**—समीप आ रही है। जल से ऊपर उठकर इधर आ रही है। उप+इ+लट् प्र० १। (१३) मन्थादिव में इव उत्प्रेक्षासूचक है, अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

(नेपथ्ये)

८१.

अरुन्धति जगद्वन्द्ये ! गङ्गापृथ्व्यौ जुषस्व नौ ।
अर्पितेयं तवावाभ्यां सीता पुण्यव्रता वधूः ॥१८॥

अन्वय—हे जगद्वन्द्ये अरुन्धति, नौ गङ्गापृथ्व्यौ जुषस्व । आवाभ्याम् इयं पुण्यव्रता वधूः सीता तव अर्पिता ॥

(नेपथ्य में)

हे जगद्वन्द्य देवी अरुन्धती, हम गंगा और पृथ्वी दोनों पर कृपा कीजिए। हम दोनों पवित्र व्रतवाली यह वधू सीता आपको सौंपते हैं ॥१८॥

संस्कृत-व्याख्या

हे जगद्वन्द्ये—हे लोकस्य पूजनीये, अरुन्धति—महर्षिवसिष्ठस्य पत्नि, नौ—आवाम्, गङ्गापृथ्व्यौ—भागीरथीवसुन्धरे, जुषस्व—प्रीणय। आवाभ्यां—गङ्गापृथिवीभ्याम्, इयम्—एषा, पुण्यव्रता—पवित्रव्रतचारिणी, वधूः—स्नुषा, सीता—जानकी, तव—अरुन्धत्याः, अर्पिता—संरक्षणीयेयमिति प्रदत्ता। अधुना त्वयैव सीतासंरक्षणं कार्यमिति भावः। श्लोको वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **जगद्वन्द्ये**—संसार के द्वारा वन्दनीय। जगतः वन्द्या, संबोधन, तत्पु०। वन्द्या—वन्द्+ण्यत् (य)+टाप्। (२) **गङ्गा०**—गंगा और पृथ्वी। गङ्गा च पृथ्वी च, द्वन्द्व०। (३) **जुषस्व**—प्रसन्न करो। हे अरुन्धती, तुम हम गंगा और पृथ्वी दोनों पर कृपा करो। जुष्+लोट् म० १। (४) **अर्पिता**—तुम्हें सौंपी है। ऋ+णिच्+क्त+टाप्। (५) **पुण्यव्रता**—पवित्र व्रत वाली सदाचारिणी, पतिव्रता। पुण्यं व्रतं यस्याः सा, बहु०।

८२. लक्ष्मणः—अहो आश्चर्यमाश्चर्यम्। आर्ये, पश्य पश्य। कष्टमद्यापि नोच्छ्वसित्यार्यः।

लक्ष्मण—ओह, आश्चर्य है, आश्चर्य है। आर्या अरुन्धती, देखिए, देखिए। दुःख की बात है कि आर्य (राम) अभी तक होश में नहीं आए हैं।

(ततः प्रविशत्यरुन्धती सीता च)

८३. अरुन्धती—

त्वरस्व वत्से वैदेहि ! मुञ्च शालीनशीलताम् ।
एहि जीवय मे वत्सं सौम्यस्पर्शेन पाणिना ।।१६।।

अन्वय—हे वत्से वैदेहि, त्वरस्व। शालीनशीलतां मुञ्च। एहि, सौम्य-स्पर्शेन पाणिना मे वत्सं जीवय ।।

(तदनन्तर अरुन्धती और सीता का प्रवेश)

अरुन्धती—हे पुत्री सीता, शीघ्रता करो और अपनी लज्जाशीलता को छोड़ दो। आओ और अपने कोमल-स्पर्श वाले हाथ से मेरे प्रिय पुत्र (राम) को जीवित करो ।।१६।।

संस्कृत-व्याख्या

हे वत्से—हे पुत्रि, वैदेहि—जानकि, त्वरस्व—शीघ्रतां कुरु। शालीन-शीलतां—विनयस्वभावम्, लज्जाशीलतामित्यर्थः, मुञ्च—त्यज। एहि—आगच्छ, सौम्यस्पर्शेन—कोमलस्पर्शेन, पाणिना—करेण, मे—मम, वत्सं—प्रियपुत्रम्, राममित्यर्थः, जीवय—जीवितं कुरु। श्लोको वृत्तम् ।

टिप्पणी

(१) **न उच्छ्वसिति**—साँस नहीं ले रहे हैं, होश में नहीं आ रहे हैं। उत्+श्वस्+लट् प्र० १। रुदादिभ्यः० (७–२–७६) से ति से पहले इट् (इ) का आगम। (२) **त्वरस्व**—शीघ्रता करो। त्वर्+लोट् म० १। (३) **शालीन०**—शालीन—विनय या लज्जा के, शीलताम्—स्वभाव को। शालीनं शीलं यस्य सः शालीनशीलः, तस्य भावः, ताम्, भाव अर्थ में तल् (त)+टाप्+द्वि० १। शालीन का अर्थ है—सुशील, विनीत, अधृष्ट, लज्जायुक्त। स्यादधृष्टे तु शालीनः, इत्यमरः। पाणिनि ने शालीन की व्युत्पत्ति और अर्थ इस प्रकार दिया है—शालाप्रवेशम् अर्हति इति शालीनः। शाला+खञ् (ईन)। निपातन से खञ प्रत्यय और उत्तरपद प्रवेश का लोप। शालीनकौपीने अधृष्टाकार्ययोः (५–२–२०)। जो मकान में घुसने या रहने के योग्य हो, अर्थात् शिष्ट और विनीत,

---

पाठभेद—८३ काले—प्रियस्पर्शेन (प्रिय स्पर्श वाले) ।

उसे शालीन कहते हैं। (४) एहि—आओ। आ+इ+लोट् म० १। (५) जीवय—जीवित करो, जिलाओ। जीव्+णिच्+लोट् म० १। (६) सौम्य०—कोमल स्पर्श वाले हाथ से। सौम्यः स्पर्शः यस्य तेन, बहु०।

८४. सीता--(ससंभ्रमं स्पृशन्ती) समाश्वसितु समाश्वसित्वार्यपुत्रः। [समस्ससदु समस्ससदु अज्जउत्तो।]

सीता—(घबड़ाहट के साथ स्पर्श करती हुई) आर्यपुत्र, धैर्य रखिए, धैर्य रखिए।

८५. रामः--(समाश्वस्य सानन्दम्) भोः, किमेतत्। (दृष्ट्वा सहर्षाद्भुतम्) कथं देवी जानकी ?। (सलज्जम्) अये, कथमम्बारुन्धती। कथं सर्वे प्रहृष्यन्ते ऋष्यशृङ्गादयोऽस्मद्गुरवः।

राम--(होश में आकर, आनन्द के साथ) अरे, यह क्या? (देखकर हर्ष और आश्चर्य के साथ) देवी सीता (यहाँ) कैसे? (लज्जा के साथ) अरे, माता अरुन्धती (यहाँ) कैसे? क्या कारण है कि ऋष्यशृंग आदि सभी हमारे गुरुजन प्रसन्न हो रहे हैं?

८६. अरुन्धती--वत्स, एषा भागीरथी रघुकुलदेवता देवी गङ्गा सुप्रसन्ना।

अरुन्धती--हे पुत्र (राम), यह राजा भगीरथ द्वारा लाई गई और रघुकुल की देवता भगवती गंगा (तुमसे) बहुत प्रसन्न हैं।

(नेपथ्ये)

८७. जगत्पते रामभद्र, स्मर्यतामालेख्यदर्शने मां प्रत्यात्मवचनम्। सा त्वमम्ब, स्नुषायामरुन्धतीव सीतायां शिवानुध्याना भवेति। तदनृणास्मि।

(नेपथ्य में)

हे विश्वपति रामभद्र, चित्रदर्शन के समय मुझसे कहे गए अपने वचन को स्मरण करो—'हे माता, आप अपनी पुत्रवधू सीता के प्रति अरुन्धती के तुल्य ही शुभचिन्तक रहना'। (तदनुसार काम करने के कारण) अब मैं उऋण हो गई हूँ।

८८. अरुन्धती—इयं ते श्वश्रूर्भगवती वसुन्धरा।

अरुन्धती—यह तुम्हारी सास भगवती पृथिवी हैं।

टिप्पणी

(१) **ससंभ्रमम्**—घबड़ाहट के साथ। संभ्रमेण सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। स्पृशन्ती—छूती हुई। स्पृश्+शतृ+ङीप्। समाश्वसितु—धैर्य धारण कीजिए। सम्+आ+श्वस्+लोट् प्र० १। (२) **समाश्वस्य**—धैर्य धारण करके, होश में आकर। सम्+आ+श्वस्+ल्यप्। सानन्दम्—आनन्द के साथ। आनन्देन सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (३) **सहर्षा०**—हर्ष और आश्चर्य के साथ। हर्षश्च अद्भुतं च हर्षाद्भुते (द्वन्द्व), ताभ्यां सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (४) **सलज्जम्**—लज्जा के साथ। लज्जया सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। (५) **प्रहृष्यन्ते**—प्रसन्न हो रहे हैं। प्र+हृष्+लट् प्र० ३। हृष् धातु दिवादिगणी परस्मैपदी है, अतः प्रहृष्यन्ति रूप होना चाहिए। यहाँ पर कर्मकर्ता में लट् मानकर यक् और आत्मनेपद है। (६) **ऋष्य०**—ऋष्य शृंग आदि। ऋष्यशृंगः आदिः येषां ते, बहु०। अस्मद्०—हमारे गुरु लोग। अस्माकं गुरवः, तत्पु०। (७) **रघुकुल०**—रघुकुल की देवता। रघुकुलस्य देवता, तत्पु०। (८) **सुप्रसन्ना**—बहुत प्रसन्न हैं। सु+प्र+सद्+क्त+टाप्। (९) **जगत्पते**—संसार के स्वामी। जगतां पतिः, संबोधन, तत्पु०। (१०) **स्मर्यताम्**—स्मरण कीजिए। स्मृ+कर्मवाच्य लोट् प्र० १। (११) **आलेख्य०**—चित्रदर्शन के समय। आलेख्यस्य दर्शने, तत्पु०। मां प्रति—मेरे विषय में। प्रति के कारण द्वितीया। (१२) **आत्मवचनम्**—अपने वचन को। आत्मनः वचनम्, तत्पु०। (१३) **स्नुषायाम्**—पुत्रवधू सीता पर। स्नुषा का अर्थ पुत्रवधू है। (१४) **शिवा०**—हितचिन्ता करने वाली। शिवम् अनुध्यानं यस्याः

सा, बहु०। (१५) अनृणा०—मैं उऋण हो गई हूँ। पृथ्वी कह रही है कि मैं अब उऋण हो गई हूँ। राम ने पृथ्वी से प्रार्थना की थी कि तुम अपनी पुत्री सीता की देखभाल करना। पृथ्वी ने सीता के संरक्षण का काम पूरा किया, अतः वह उऋण हो गई है। अविद्यमानम् ऋणं यस्याः सा, बहु०। (१६) श्वश्रूः—सास, अर्थात् पृथिवी। श्वशुरस्य स्त्री, श्वशुर+ऊङ (ऊ)। श्वशुरस्योकाराकारलोपश्च (वा०) से ऊङ प्रत्यय और श्वशुर के उ और अ का लोप होकर श्वश्रू शब्द बनता है।

(नेपथ्ये)

८९. उक्तमासीदायुष्मता वत्सायाः परित्यागे 'भगवति वसुंधरे, सुश्लाघ्यां दुहितरमवेक्षस्व जानकीम्' इति। तदधुना कृतवचनास्मि।

(नेपथ्य में)

प्रियपुत्री सीता के परित्याग के समय चिरंजीव आपने कहा था कि—'हे भगवती पृथिवी, (अपनी) प्रशंसनीय पुत्री जानकी की देखभाल करना'। इसलिए मैं भी अब तुम्हारे वचन का पालन करने से उऋण हो गई हूँ।

९०. रामः—कृतापराधोऽपि भगवति, त्वयानुकम्पयितव्यो रामः प्रणमति।

राम—हे भगवती पृथिवी, अपराधी होते हुए भी आपकी कृपा का पात्र यह राम आपको प्रणाम करता है।

९१. अरुन्धती—भो भोः पौरजानपदाः, इयमधुना वसुन्धराजाह्नवीभ्यामेवं प्रशस्यमाना मया चारुन्धत्या समर्पिता पूर्वं भगवता वैश्वानरेण निर्णीतपुण्यचारित्रा सब्रह्मकैश्च देवैः स्तुता सावित्रकुलवधूर्देवयजनसंभवा जानकी परिगृह्यताम्। कथमिह भवन्तो मन्यते ?

अरुन्धती—हे नागरिको और ग्रामवासी लोगो, इस समय भगवती पृथिवी और गंगा के द्वारा इस प्रकार प्रशंसा की गई, मुझ अरुन्धती के द्वारा सौंपी गई, भगवान् अग्नि के द्वारा पहले ही जिसके चरित्र की पवित्रता का निर्णय किया जा चुका है तथा ब्रह्मा-सहित सभी देवों ने जिसकी स्तुति की है, ऐसी सूर्यवंश (रघुकुल) की वधू एवं यज्ञभूमि से उत्पन्न देवी सीता को आप लोग स्वीकार कीजिए। इस विषय में आप लोगों का क्या मत है?

९२. लक्ष्मणः—आर्य, एवमम्बयारुन्धत्या च निर्भर्त्सिताः पौरजानपदाः कृत्स्नश्च भूतग्राम आर्यां नमस्कुर्वन्ति। लोकपालाः सप्तर्षयश्च पुष्पवृष्टिभिरुपतिष्ठन्ते।

लक्ष्मण—आर्य (राम), इस प्रकार माता अरुन्धती से डाँटे गए नागरिक और ग्रामवासी लोग तथा समस्त प्राणिवर्ग पूजनीया (सीता) को नमस्कार कर रहे हैं। लोकपाल और सप्तर्षि पुष्पों की वर्षा से उनकी पूजा कर रहे हैं।

९३. अरुन्धती—जगत्पते रामभद्र !

नियोजय यथाधर्मं प्रियां त्वं धर्मचारिणीम्।
हिरण्मय्याः प्रतिकृतेः पुण्यां प्रकृतिमध्वरे ॥२०॥

अन्वय—त्वं हिरण्मय्याः प्रतिकृतेः पुण्यां प्रकृतिं धर्मचारिणीं प्रियाम् अध्वरे यथाधर्मं नियोजय।

अरुन्धती—हे जगत्पति रामभद्र,

आप सुवर्णमयी प्रतिमा की पवित्र आधार-स्वरूप अपनी सहधर्मिणी प्रिया सीता को धर्मानुकूल यज्ञ में नियुक्त करो ॥२०॥

संस्कृत-व्याख्या

त्वं—भवान् रामः, हिरण्मय्याः—सुवर्णमय्याः, प्रतिकृतेः—प्रतिमायाः, पुण्यां—पवित्राम्, प्रकृतिं—मूलभूताम्, धर्मचारिणीं—सहधर्मिणीम्, प्रियां—प्रियतमां सीताम्, अध्वरे—यज्ञे, अश्वमेध इत्यर्थः, यथाधर्मं—धर्मानुरूपम्, नियोजय—प्रवर्तय। सीतया सहाश्वमेधमनुतिष्ठेति भावः। श्लोको वृत्तम्।

पाठभेद—९३. का० पुण्यप्रकृतिम् (पवित्र मूलस्वरूप)।

टिप्पणी

(१) **कृतवचना०**--मैंने तुम्हारा कथन पूरा कर दिया है। कृतं वचनं यया सा, बहु०। (२) **कृतापराधः**--अपराधी, किया है अपराध जिसने। कृतः अपराधः येन सः, बहु०। (३) **अनुकम्पयितव्यः**--दया के योग्य। अनु+कम्प्+णिच्+तव्य प्र० १। (४) **पौर०**--पौर--नगरवासी और, जानपदाः --जनपदवासी, ग्रामवासी। पुरे भवाः पौराः, पुर+अण्। जनपदे भवाः जानपदाः, जनपद+अण्। पौराश्च जानपदाश्च, द्वन्द्व०। (५) **वसुन्धरा०**--पृथिवी और गंगा के द्वारा। वसुन्धरा च जाह्नवी च, ताभ्याम्, द्वन्द्व०। (६) **प्रशस्यमाना**--प्रशंसा की जाती हुई। प्र+शंस्+कर्म० शानच्+टाप्। (७) **समर्पिता**--सौंपी गई। सम्+ऋ+णिच्+क्त+टाप्। (८) **वैश्वानरेण**--अग्नि के द्वारा। (९) **निर्णीत०**--निर्णीत--निर्णय किया गया है, पुण्य--पवित्र, चारित्रा--चरित्र जिसका। निर्णीतं पुण्यं चारित्रं यस्याः सा, बहु०। (१०) **सब्रह्मकैः**--ब्रह्मा-सहित। ब्रह्मणा सहितैः, बहु०। (११) **सावित्र०**--सावित्र-कुल--सूर्यवंश की, वधूः--बहू। सवितुः इदं सावित्रम् (सवितृ+अण्), सावित्रं कुलं (कर्मधा०), तस्य वधूः, तत्पु०। (१२) **देवयजन०**--यज्ञभूमि से उत्पन्न। देवयजनात् संभवः यस्याः सा, बहु०। (१३) **कथमिह०**--इस विषय में आप लोगों का क्या विचार है? (१४) **निर्भर्त्सिताः**--डाँटे फटकारे गए। निर्+भर्त्स्+चुरादि० णिच्+क्त+प्र० ३। (१५) **भूतग्रामः**--प्राणियों का समूह। भूतानां ग्रामः, तत्पु०। (१६) **लोकपालाः**--लोकपाल, दिशाओं के पालक। लोकपाल ८ हैं। उनके नाम हैं--इन्द्र, अग्नि, यम, नैर्ऋत, वरुण, मरुत्, कुबेर और ईश। इन्द्रो वह्निः पितृपतिर्नैर्ऋतो वरुणो मरुत्। कुबेर ईशः पतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात्, इत्यमरः। (१७) **सप्तर्षयः**--सप्तर्षि, सात ऋषि। सप्तर्षि ये हैं--मरीचि, अत्रि, अंगिरस्, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ। (१८) **उपतिष्ठन्ते**--पूजा करते हैं। उप+स्था+लट् प्र० ३। देवपूजा अर्थ में उपाद् देवपूजा० वार्तिक से आत्मनेपद। (१९) **नियोजय**--लगाओ, नियुक्त करो। नि+युज्+णिच्+लोट् म० १। (२०) **यथाधर्मम्**--धर्मानुकूल। धर्मम् अनतिक्रम्य, अव्ययी०। (२१) **धर्म०**--धर्म का आचरण करने वाली। धर्मं चरतीति ताम्, तच्छील अर्थ में णिनि, उपपद तत्पु०। (२२) **पुण्यां०**--

पवित्र मूलस्वरूप सीता को। प्रकृति—मूल, मूलरूप, बिम्बरूप। तुम सीता को साथ लेकर अश्वमेध यज्ञ करो।

९४. सीता––(स्वगतम्) अपि जानात्यार्यपुत्रः सीताया दुःखं परिमार्ष्टुम्। [अवि जाणादि अज्जउत्तो सीदाए दुक्खं पडिमज्जिदुं।]

सीता—(मन में) क्या आर्यपुत्र सीता के दुःख को मिटाना जानते हैं?

९५. रामः––यथा भगवत्यादिशति।

राम—जैसी आपकी आज्ञा। (अर्थात् आपकी आज्ञा शिरोधार्य है)।

९६. लक्ष्मणः––कृतार्थोऽस्मि।

लक्ष्मण—मैं कृतार्थ हो गया हूँ।

९७. सीता––प्रत्युज्जीवितास्मि। [पच्चुज्जीविदम्हि।]

सीता—मैं पुनर्जीवित हो गई हूँ।

९८. लक्ष्मणः––आर्ये, अयं लक्ष्मणः प्रणमति।

लक्ष्मण—हे आर्या, यह लक्ष्मण आपको प्रणाम करता है।

९९. सीता––वत्स, ईदृशस्त्वं चिरं जीव। [वच्छ, ईरिसो तुमं चिरं जीअ।]

सीता—हे वत्स, इस प्रकार से तुम चिरंजीवी हो।

१००. अरुन्धती––भगवन्वाल्मीके, उपनयेदानीं सीता-गर्भसंभवौ रामभद्रस्य कुशलवौ।

(इति निष्क्रान्ता।)

अरुन्धती—हे भगवन् वाल्मीकि, आप सीता के गर्भ से उत्पन्न कुश और लव को राम के समीप ले जाइए।

(अरुन्धती का प्रस्थान।)

१०१. रामलक्ष्मणौ--दिष्ट्या तथैवैतत् ।

राम और लक्ष्मण--सौभाग्य से यह वही बात है।

१०२. सीता--(सबाष्पाकुला) क्व तौ पुत्रकौ ?
[कहिं ते पुत्तआ ?]

सीता--(अश्रुपूर्ण नेत्रों से) वे दोनों प्रियपुत्र कहाँ हैं ?

टिप्पणी

(१) **परिमार्ष्टुम्**--धोने को, दूर करने को, मिटाने को। परि+मृज्+तुमुन्। (२) **कृतार्थः**--कृतकृत्य। लक्ष्मण के कथन का अभिप्राय है कि सीता की पुनः प्राप्ति से मेरी तपस्या और सेवा सफल हो गई है। कृतः अर्थः यस्य सः, बहु०। (३) **प्रत्युज्जीविता०**--पुनर्जीवित हो गई हूँ। प्रति+उत्+जीव्+क्त+टाप्। सीता के कथन का अभिप्राय है कि पति की प्राप्ति से मेरा दुःख दूर हो गया है और मैं अब शोकरूपी मृत्युसंकट से मुक्त हो गई हूँ। (४) **उपनय**--समीप ले जाइए। उप+नी+लोट् म० १। (५) **सीता०**--सीता के गर्भ से उत्पन्न। सीतायाः गर्भः (तत्पु०), तस्मात् संभवः ययोः तौ, बहु०। (६) **कुश०**--कुश और लव। कुशश्च लवश्च, द्वन्द्व। (७) **विशेष**--यहाँ पर सीता-राम-संमेलनरूपी गर्भाङ्क अर्थात् अन्तर्नाटक समाप्त होता है। अरुन्धती के प्रस्थान के साथ उसकी समाप्ति है। गर्भाङ्क का लक्षण है--अङ्कोदरप्रविष्टो यो रङ्गद्वारामुखादिमान्। अङ्कोऽपरः स गर्भाङ्कः सबीजः फलवानपि ।। (सा० द० ६-२०)। यह नाटक के अन्दर उपनाटक है, अतः इसे गर्भाङ्क कहते हैं। सप्तम अंक की वाक्य संख्या ६ (हा आर्यपुत्र·····निक्षिपामि) इस गर्भाङ्क का बीज है। वाक्य सं० ७ (सूत्रधारः--प्रविश्य····) से लेकर वाक्य सं० ११ (विश्वंभरात्मजा···विमुञ्चति) तक प्रस्तावना है। इस गर्भांक का फल है--सीता और राम का संमेलन।

(ततः प्रविशति वाल्मीकिः कुशलवौ च)

१०३. वाल्मीकिः--वत्सौ, एष वां रघुपतिः पिता। एष लक्ष्मणः कनिष्ठतातः। एषा सीता जननी। एष राजर्षिर्जनको मातामहः।

(तदनन्तर महर्षि वाल्मीकि तथा कुश और लव का प्रवेश)

वाल्मीकि—हे प्रिय पुत्रो, यह तुम दोनों के पिता रामचन्द्र हैं। यह तुम्हारे चाचा लक्ष्मण हैं। यह तुम्हारी माता सीता हैं। यह तुम्हारे नाना राजर्षि जनक हैं।

१०४. सीता—(सहर्षकरुणाद्भुतं विलोक्य) कथं तातः, कथं जातौ। [कहं तादो, कहं जादा।]

सीता—(हर्ष, दुःख और आश्चर्य के साथ देखकर) पिता जी और ये दोनों पुत्र यहाँ कैसे?

१०५. कुशलवौ—हा तात, हा अम्ब, हा मातामह!

कुश और लव—हा पिता जी! हा माता जी! हा नाना जी!

१०६. रामलक्ष्मणौ—(सहर्षमालिङ्ग्य) ननु वत्सौ, पुण्यैः युवां प्राप्तौ स्थः।

राम और लक्ष्मण—(हर्ष के साथ आलिंगन करके) हे पुत्रो, तुम दोनों (बड़े) पुण्यों से प्राप्त हुए हो।

१०७. सीता—एहि जात कुश, एहि जात लव, चिरस्य मां परिष्वजेथां लोकान्तरादागतां जननीम्। [एहि जाद कुस, एहि जाद लव, चिरस्स मं परिस्सजह लोअंदरादो आअदं जणणिं।]

सीता—हे पुत्र कुश! आओ, हे पुत्र लव! आओ। तुम दोनों लोकान्तर से आई हुई मुझ अपनी माता को बहुत देर तक (जी भर कर) आलिंगन करो।

१०८. कुशलवौ—(तथा कृत्वा) धन्यौ स्वः।

कुश और लव—(वैसा करके) हम दोनों धन्य हैं।

१०९. सीता—भगवन्, एषाहं प्रणमामि। [भअवं, एसा हं पणमामि।]

सीता--हे भगवन्, यह मैं आपको प्रणाम करती हूँ।

११०. वाल्मीकिः--वत्से, एवमेव चिरं भूयाः।

वाल्मीकि--हे प्रिय पुत्री, तुम चिरकाल तक इसी प्रकार (पति और पुत्रों से युक्त) रहो।

टिप्पणी

(१) **वाम्**--तुम दोनों के। युवयोः के स्थान पर वाम् आदेश है। युष्मदस्मदोः० (८-१-२०) से वाम् आदेश। (२) **कनिष्ठतातः**--छोटे चाचा। कनिष्ठः चासौ तातः, कर्मधा०। (३) **मातामहः**--नाना। मातुः पिता, मातृ +डामहच् (आमह)। ऋ का लोप। पितृव्यमातुल० (४-३-२६) से निपातन से मातामह बनता है। (४) **सहर्ष०**--हर्ष, दुःख और आश्चर्य के साथ। हर्षश्च करुणा च अद्भुतं च (द्वन्द्व), तैः सहितं यथा स्यात् तथा, अव्ययी०। पिता और पुत्रों से मिलने से हर्ष, कष्ट की अवस्था में मिलने से दुःख, अकस्मात् मिलने से आश्चर्य। (५) **आलिङ्ग्य**--आलिंगन करके। आ+लिङ्ग्+ ल्यप्। (६) **चिरस्य**--बहुत देर तक। यह षष्ठीविभक्तियुक्त अव्यय है। जैसे--चिरेण, चिरात् आदि। (७) **परिष्वजेथाम्**--तुम दोनों आलिंगन करो। परि+स्वञ्ज्+लोट् म० २। (८) **लोकान्तराद्०**--दूसरे लोक से अर्थात् पाताल से आई हुई। अन्यः लोकः--लोकान्तरः, तस्मात्। मयूरव्यंसकादयश्च (२-१-७२) से समास। (९) **भूयाः**--रहो, होओ। भ+आशीर्लिङ म० १।

(नेपथ्ये)

१११. उत्खातलवणो मधुरेश्वरः प्राप्तः।

(नेपथ्य में)

लवणासुर को मार कर मधुरेश्वर (मथुरा के स्वामी शत्रुघ्न भी) आ गए हैं।

११२. लक्ष्मणः--सानुषङ्गाणि कल्याणानि।

लक्ष्मण--शुभ समाचार भी एक के बाद दूसरे होते जाते हैं।

११३. रामः——सर्वमिदमनुभवन्नपि न प्रत्येमि। यद्वा प्रकृतिरियमभ्युदयानाम्।

राम——इन सब बातों का अनुभव करते हुए भी मुझे इनका विश्वास नहीं होता है। अथवा अभ्युदयों का ऐसा ही स्वभाव (क्रम) होता है।

११४. वाल्मीकिः——रामभद्र, उच्यतां किं ते भूयः प्रियमुपहरामि?

वाल्मीकि——हे रामभद्र, कहो, मैं और क्या अधिक प्रिय तुम्हारे लिए प्रस्तुत करूँ?

११५. रामः——अतः परमपि प्रियमस्ति? किं त्विदं भरतवाक्यमस्तु——

पाप्मभ्यश्च पुनाति वर्धयति च श्रेयांसि सेयं कथा
मङ्गल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गङ्गेव च।
तामेतां परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यस्तरूपां बुधाः
शब्दब्रह्मविदः कवेः परिणतां प्राज्ञस्य वाणीमिमाम् ॥२१॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति महाकविश्रीभवभूतिविरचित उत्तररामचरिते सम्मेलनं नाम सप्तमोऽङ्कः।

अन्वय——माता इव गङ्गा इव च जगतः मङ्गल्या च मनोहरा च सा इयं कथा पाप्मभ्यः च पुनाति च, श्रेयांसि वर्धयति च। अभिनयैः विन्यस्तरूपां शब्दब्रह्मविदः प्राज्ञस्य कवेः परिणताम् इमां ताम् एतां वाणीं बुधाः परिभावयन्तु।

पाठभेद——११५. का० पापेभ्यश्च (पापों से)। काले——पुनातु वर्धयतु (पवित्र करे और बढ़ावे)। नि० माङ्गल्या (मंगलकारिणी)। काले——परिणतप्रज्ञस्य (प्रौढबुद्धि वाले कवि की)।

राम—क्या मेरे लिए इससे भी अधिक कुछ और प्रिय है (अर्थात् पत्नी, पुत्रादि सभी प्रिय वस्तुएँ मुझे मिल गई हैं)। फिर भी यह भरत-वाक्य (अभिनेताओं की सामूहिक मंगल-कामना) पूर्ण हो :—

माता और गंगा के तुल्य संसार का कल्याण करने वाली तथा मनोहर यह सुप्रसिद्ध (रामायण की) कथा पापों से पवित्र करती है और कल्याण की वृद्धि करती है। शब्दब्रह्म के वेत्ता (अर्थात् ब्रह्म-साक्षात्कार करने वाले), विद्वान् कवि (भवभूति) के द्वारा रूपान्तरित (अर्थात् इस नाटक के रूप में प्रस्तुत) तथा अभिनयों के द्वारा (नाटकीय) रूप को प्राप्त कराई गई इस वाणी पर विद्वान् लोग विचार करें।।२१।।

(सबका प्रस्थान।)

महाकवि श्री भवभूति-विरचित उत्तररामचरितनाटक में संमेलन-नामक सप्तम अंक समाप्त हुआ।

संस्कृत-व्याख्या

माता इव—जननीव, गङ्गा इव—भागीरथीव, जगतः—संसारस्य, मङ्गल्या च—कल्याणकारिणी च, मनोहरा च—मनोज्ञा च, सा—सुप्रसिद्धा, इयम्—एषा, कथा—रामायणप्रबन्धरूपा रचना, पाप्मभ्यः—पापेभ्यः, पुनाति च—पवित्रयति च, श्रेयांसि—कल्याणानि, वर्धयति च—समेधयति च। अभिनयैः—आङ्गिकादिचतुर्विधैः अवस्थानुकारैः, विन्यस्तरूपां—विन्यस्तं प्रापितं रूपं स्वरूपं यस्याः ताम्, शब्दब्रह्मविदः—शब्दरूपं ब्रह्म वेत्ति इति तस्य, ब्रह्मसाक्षात्कारिण इत्यर्थः,प्राज्ञस्य—विदुषः, कवेः—महाकविभवभूतेः, परिणतां—नाटकरूपेण परिवर्तिताम्, इमाम्—एताम्, तामेतां—तथाविधामिमाम्, वाणीं—वाचम्, उत्तररामचरितनामकं नाटकमित्यर्थः, बुधाः—विद्वांसः, परिभावयन्तु—आलोचयन्तु। विद्वांसो नाटकस्यास्य गुणदोषविवेचनपूर्वकमनुशीलनं कुर्वन्त्विति भावः। अत्रोपमाऽलंकारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

टिप्पणी

(१) **उत्खात०**—उत्खात—नष्ट किया है, लवणः—लवण नामक राक्षस जिसने। लवणासुर के मारने वाले। उत्खातः लवणः येन सः, बहु०। उत्खा

—उत्+खन्+क्त। (२) मधुरेश्वरः—मधुरा अर्थात् मथुरा नगरी के स्वामी। शत्रुघ्न ने लवणासुर को मारा था। लवण राक्षस के पिता का नाम मधु राक्षस था। उसके नाम पर ही मथुरा का प्राचीन नाम मधु-वन था। शत्रुघ्न ने लवण को मार कर मधुवन का नाम मधुरा किया। मधुरा का ही रूपान्तर मथुरा है। राम ने प्रथम अंक (वाक्य सं० १४५) में लवणासुर को मारने के लिए शत्रुघ्न को भेजा था। वह उसे मारकर अब लौटा है। राम ने शत्रुघ्न के अयोध्या से प्रस्थान के पूर्व ही उसे मधुरा का राजा घोषित कर दिया था और उसका अभिषेक भी कर दिया था। अतः उसे मधुरेश्वर कहा गया है। (३) सानुषङ्गाणि—क्रमबद्ध, एक के बाद दूसरे होने वाले। अनुषङ्गेन सहितानि, बहु०। अनुषङ्ग—अनु+सञ्ज्+घञ् (अ)। (४) कल्याणानि—मंगल, शुभ समाचार। जिस प्रकार दुःख एक के बाद दूसरे आते हैं, वैसे ही शुभ घटनाएँ भी एक के बाद दूसरी आती हैं। (५) न प्रत्येमि—विश्वास नहीं करता हूँ। मुझे इन शुभ घटनाओं की सचाई पर विश्वास नहीं हो रहा है। प्रति+इ+लट् उ० १। (६) प्रकृतिः०—अभ्युदयों का ऐसा ही स्वभाव होता है अर्थात् शुभ घटनाएँ भी एक के बाद दूसरी होती हैं। (७) उपहरामि—उपहार में दूँ, प्रस्तुत करूँ। उप+हृ+लट् उ० १। (८) अतः परम्०—क्या और कोई प्रिय बात रह गई है, अर्थात् सभी प्रिय वस्तुएँ मिल गई हैं। (९) भरतवाक्यम्—नाटकीय अभिनेताओं को भरत कहते हैं। वे नाटक के अन्त में सामूहिक रूप से एकत्र होकर दर्शकों के लिए मंगलकामना करते हैं। कभी-कभी नाटक का नायक ही यह मंगलकामना प्रस्तुत करता है। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरत मुनि के नाम को अमर रखने के लिए इसको 'भरत-वाक्य' कहा जाता है। (१०) पाप्मभ्यः—पापों से। अस्त्री पङ्कं पुमान् पाप्मा पापं किल्विषकल्मषम्, इत्यमरः। (११) पुनाति—पवित्र करती है। पू+लट् प्र० १। (१२) वर्धयति—बढ़ाती है। वृध्+णिच्+लट् प्र० १। (१३) श्रेयांसि—कल्याणों को। श्रेयस्—प्रशस्य+ईयस्। प्रशस्य को श्र आदेश। (१४) कथा—रामायण की कथा। मङ्गल्या—मंगल करने वाली। मङ्गलाय हिता, मङ्गल+यत् (य)+टाप् (१५) मातेव—रामायण की कथा माता के तुल्य मंगलकारिणी है। कुछ विद्वानों ने 'जगतः मातेव' अन्वय करके 'जगत् की माता पृथ्वी के तुल्य'

अर्थ किया है। (१६) **परिभावयन्तु**—विचार करें, अनुशीलन करें। विद्वज्जन उत्तररामचरित नाटक के गुण-दोषों की तात्त्विक समीक्षा करें। परि+भू+णिच् +लोट् प्र० ३। चिन्तन अर्थ वाली भू चुरादि० उभयपदी (भुवोऽवकल्कने) का यह रूप है। (१७) **अभिनयैः**—अभिनयों से। अभिनय चार प्रकार के हैं —आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक। भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः स चतुर्विधः। आङ्गिको वाचिकश्चैवमाहार्यः सात्त्विकस्तथा ॥ (सा० दर्पण ६—२)। (१८) **विन्यस्तरूपाम्**—विन्यस्त—दिया गया है, रूपाम्—रूप जिसको, अर्थात् अभिनयों के द्वारा नाटकीय रूप को प्राप्त कराई गई इस वाणी को। विन्यस्तं रूपं यस्याः ताम्, बहु०। विन्यस्त—वि+नि+अस् (४ प०)+क्त। (१९) **शब्दब्रह्मविदः**—शब्दब्रह्म को जानने वाले। वैयाकरणों ने ब्रह्म को शब्दब्रह्म की संज्ञा दी है। उसे ही वाग्ब्रह्म भी कहते हैं। वाणी के चार भेद माने गए हैं—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। भवभूति शब्दब्रह्म के वेत्ता हैं और कवि हैं। ये दोनों विशेषण महर्षि वाल्मीकि के लिए भी हो सकते हैं:—महर्षि वाल्मीकि शब्दब्रह्म के वेत्ता हैं और कवि हैं। उनकी रचना रामायण को शब्दब्रह्मवित् कवि भवभूति ने उत्तररामचरित के रूप में रूपान्तरित किया है। शब्दब्रह्मवित् का अभिप्राय है—शब्दब्रह्म या ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले। शब्द एव ब्रह्म शब्दब्रह्म, तद् वेत्ति इति तस्य, शब्दब्रह्मन्+विद्+क्विप् (०)+ष० १। (२०) **परिणताम्**—परिवर्तित, नाटक के रूप में परिवर्तित या रूपान्तरित। परि+नम्+क्त+टाप्+द्वि० १। (२१) **प्राज्ञस्य**—विद्वान् भवभूति की। प्रज्ञ—प्र+ज्ञा+क (अ)। प्रज्ञ एव प्राज्ञः, प्रज्ञ+अण्। स्वार्थ में अण्। (२२) जिस प्रकार रामायण की कथा पापनाशक, कल्याणकारिणी, मंगलमयी और मनोहर है, उसी प्रकार उत्तररामचरित भी संसार का कल्याण करे, यह नाटकीय पात्रों की ओर से शुभकामना है। (२३) इस श्लोक में माता इव और गङ्गा इव में इव उपमाबोधक हैं। यहाँ पर उपमा के चारों अंग होने से पूर्णोपमा अलंकार है।

भवभूतेरियं भूतिर्भूयाद् भुवनभूतिभृत्।
भवभूतिं श्रितो लोको मोक्षाभ्युदयमाप्नुयात्।।१।।

भवभूतेः कवीन्द्रस्य, वाणी कामदुघा मता।
ब्रह्मानन्दसहोदर्यां, या तनोति मुदं सदा।।२।।

व्याख्याव्याजेन ग्रन्थस्य, रसभावसमुज्ज्वलम्।
आरिरात्सति 'देवो'ऽयं, भवभूतिं कवीश्वरम्।।३।।

यत्कृपालेशलाभेन, जगद् भाति विभास्वरम्।
चेतश्चेतयते तस्मै, कृतिरेषा समर्प्यते।।४।।

स्यादेषा सुधियां मुदे सुकृतिनां तुष्ट्यै गुणग्राहिणां
छात्राणां हितकाम्यया विरचितामास्वादयेयुर्बुधाः।
भावोद्रेकसमेधिता रसमयी व्याख्या सतां मोदकृत्,
सैषा साधु समर्प्यते गुणविदां हस्तेषु पुण्यात्मनाम्।।५।।

इत्युत्तररामचरितस्याचार्यकपिलदेवद्विवेदिकृतायां 'भारती'-व्याख्यायां सप्तमोऽङ्कः समाप्तः।

समाप्तश्चायं ग्रन्थः।

व्याख्याकृतो वंश-परिचयः

चकास्त्युत्तरप्रदेशस्य, पूर्वस्यां दिशि विश्रुतम् ।
मण्डलं गाधिपुरं (गाज़ीपुर), जाह्नवीतोयपावितम् ॥१॥

गृहंभरो (गहमर) ग्रामवरस्तत्रास्ते प्राज्ञसेवितः ।
धीरैर्वीरैः समायुक्तः, प्रथितः क्षत्रकर्मणि ॥२॥

'छेदीलालः' साधुवरः (साहु), तत्रासीन्महितः सताम् ।
दानवीरो गुणैः श्रेष्ठो, वैश्यवंशविभाकरः ॥३॥

तस्य सूनुः सतां मान्यो, 'बलराम'महोदयः ।
जन्मना पावयन्नास्ते, सत्कुलं साधुसेवितम् ॥४॥

त्यागी तपस्वी धर्मार्थी, देशार्थं त्यक्तजीवनः ।
देशजात्युन्नतौ लग्नः, सदा निष्कामकर्मकृत् ॥५॥

अष्टादशाधिके वर्षे, ऊनविंशशतोत्तरे ।
दिसम्बरस्य मासस्य, षष्ठे शुभदिने तदा ॥६॥

'वसुमत्यां' सुतो जातस्तस्य 'कपिल'-नामकः ।
ज्वालापुरं गुरुकुलं, योऽगाद् ज्ञानोपलब्धये ॥७॥

लब्ध्वोपाधिं कुलात्तस्माद्, 'विद्याभास्कर'-संज्ञिताम् ।
प्राच्यप्रतीच्यविद्या यो, विविधा ह्यात्मसाद् व्यधात् ॥८॥

यजुर्वेदं सामवेदं, योऽकरोत् कण्ठहारताम् ।
'द्विवेदि'-नाम्ना विख्यातो, ग्रन्थविंशकलेखकः ॥९॥

संस्कृतोद्धारप्रवणो, वेदविद्याविशारदः ।
भाषाशास्त्ररुचि'र्देवो', दशभाषाविचक्षणः ॥१०॥

'ओम्शान्ति'मुपायंस्त, साध्वीं शीलवतीं प्रियाम् ।
सप्तसन्ततिसंयुक्तो, 'भारती'-भाव-पेशलः ॥११॥

'भारतेन्दु'श्च 'धर्मेन्दुः', 'ज्ञानेन्दुः' 'प्रतिभा'-भिधा ।
'विश्वेन्दु'श्च गुणैः श्रेष्ठ 'आर्येन्दु'र्लभतां शिवम् ॥१२॥

परिशिष्ट १

श्लोकानुक्रमणी

(सूचना--इस सूची में संख्याओं के द्वारा क्रमशः अंक और श्लोक-संख्या का निर्देश है। कोष्ठ में छन्द दिए गए हैं।

छन्दों की संकेत-सूची

१. अनुष्टुभ् या श्लोक--श्लोक
२. आर्या--आर्या
३. इन्द्रवज्रा--इन्द्र०
४. उपजाति--उप०
५. औपच्छन्दसिक--औप०
६. द्रुतविलम्बित--द्रुत०
७. पुष्पिताग्रा--पुष्पि०
८. पृथ्वी--पृथ्वी
९. प्रहर्षिणी--प्रह०
१०. मञ्जुभाषिणी--मञ्जु०
११. मन्दाक्रान्ता--मन्दा०
१२. मालिनी--मालिनी
१३. रथोद्धता--रथो०
१४. वंशस्थ--वंश०
१५. वसन्ततिलका--वस०
१६. शार्दूलविक्रीडित--शार्दू०
१७. शालिनी--शालिनी
१८. शिखरिणी--शिख०
१९. हरिणी--हरिणी।

परिशिष्ट (२)

पारिभाषिक शब्दों के लक्षण

(१) **नाटक--(क) वीरश्रृङ्गारयोरेकः प्रधानं यत्र वर्ण्यते।**
प्रख्यातनायकोपेतं नाटकं तदुदाहृतम्॥

जिसमें वीर और श्रृंगार में से एक रस प्रधान हो, अन्य रस गौण हों और प्रसिद्ध नायक हो, उसे 'नाटक' कहते हैं।

(ख) नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम्।
पञ्चाधिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः॥
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान् नायको मतः॥
एक एव भवेदङ्गी श्रृङ्गारो वीर एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः॥

(सा० दर्पण ६. ७—१०)

नाटक उसे कहते हैं जिसका कथानक प्रसिद्ध हो, जिसमें मुख प्रतिमुख आदि पाँचों सन्धियाँ हों। इसमें कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस अंक होते हैं। इसका नायक प्रसिद्ध वंश का, धीरोदात्त, प्रतापी, राजर्षि होता है। वह दिव्य हो या दिव्य और अदिव्य दोनों प्रकार के गुणों से मिश्रित हो तथा गुणवान् हो। इसमें श्रृंगार या वीर में से एक रस मुख्य होता है, अन्य रस उसके सहायक तथा गौण होते हैं। इसमें अन्त में निर्वहण सन्धि में अद्भुत रस का प्रयोग करना चाहिए।

(२) **नायक--त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।**
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान् नेता॥

(सा० द० ३-३०)

त्यागी, वीर, कुलीन, समृद्ध, सुरूप, युवा, उत्साही, चतुर, लोकप्रिय, तेजस्वी, पटु एवं सुशील पुरुष नेता होता है अर्थात् नायक में ये गुण होने चाहिए।

(३) धीरोदात्त नायक—महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः॥
(दशरूपक २. ४–५)

महाबली, अतिगम्भीर, क्षमाशील, स्वयं स्वप्रशंसा न करने वाला, स्थिर-प्रकृति, अहंकारहीन तथा दृढ़ निश्चय वाले व्यक्ति को धीरोदात्त नायक कहते हैं।

(४) नायिका—अथ नायिका त्रिभेदा स्वान्या साधारणा स्त्रीति।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता॥
(सा० द० ३–५६)

नायक के सामान्य गुणों से युक्त नायिका होती है। वह तीन प्रकार की होती है—स्वकीय, अन्य और साधारण।

(५) पूर्वरङ्ग—यन्नाट्यवस्तुनः पूर्वं रङ्गविघ्नोपशान्तये।
कुशीलवाः प्रकुर्वन्ति पूर्वरङ्गः स उच्यते॥
(सा० द० ६–२२)

नाटकीय कथा के प्रारम्भ से पूर्व रंगमंच के विघ्नों को दूर करने के लिए अभिनेता जो मंगलाचरणादि करते हैं, उसे पूर्वरङ्ग कहते हैं।

(६) नान्दी—आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥
(सा० द० ६–२४)

नान्दी उसे कहते हैं, जो नाटक के प्रारम्भ में देवता, ब्राह्मण या राजाओं आदि की आशीर्वाद से युक्त स्तुति करता है।

(७) सूत्रधार—नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत्सूत्रं स्यात् सबीजकम्।
रङ्गदैवतपूजाकृत् सूत्रधार उदीरितः॥

बीज सहित नाटक के अनुष्ठान को सूत्र कहते हैं, जो उसको धारण करने वाला अर्थात् संचालन करने वाला होता है तथा रंगमंच के अधिष्ठातृ-देव की पूजा करता है, उसे सूत्रधार कहते हैं।

(८) नेपथ्य--कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।

अभिनेता गण जहाँ पर नाटक के उपयुक्त वेषभूषा धारण करते हैं, उसे नेपथ्य कहते हैं।

(९) प्रस्तावना--सूत्रधारो नटीं ब्रूते मार्षं वाऽथ विदूषकम्।
स्वकार्यं प्रस्तुताक्षेपि चित्रोक्त्या यत्तदामुखम्॥
(दशरूपक ३. ७-८)

आमुख या प्रस्तावना उसे कहते हैं, जहाँ सूत्रधार नटी, मार्ष (पारिपार्श्विक) या विदूषक के साथ इस प्रकार की बात करता है, जिससे प्रस्तुत नाटकीय कथा का निर्देश हो जाए। आमुख को प्रस्तावना भी कहते हैं।

(१०) कञ्चुकी--अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते॥
(नाट्यशास्त्र)

अन्तःपुर में जाने वाले, गुणवान् ब्राह्मण को, जो सब कार्यों के करने में कुशल होता है, कंचुकी कहते हैं।

(११) विदूषक--कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः।
हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात्स्वकर्मज्ञः॥
(सा० द० ३-४२)

जो अपने कार्यों, शारीरिक चेष्टाओं, वेष और बोली आदि के द्वारा जनता को हँसाता है, कलह में प्रेम करता है और अपने हास्य के कार्य को ठीक जानता है, उसे विदूषक कहते हैं। कुसुम, वसन्त आदि उसके नाम होते हैं। यह नायक का मित्र होता है और साधारणतया ब्राह्मण होता है।

(१२) अङ्क--अङ्क इति रूढिशब्दो भावै रसैश्च रोहयत्यर्थान्।
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः॥
यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः।
किंचिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवगन्तव्यः॥
(नाट्यशास्त्र अ० २०. १४-१६)

जो भावों और रसों के द्वारा अर्थों को प्रस्फुरित करता है, जहाँ पर अनेक प्रकार के विधान होते हैं, जहाँ पर एक अर्थ की समाप्ति होती है और बीज का उपसंहार होता है तथा अंशतः बिन्दु का सम्बन्ध बना रहता है, उसे 'अंक' कहते हैं। (१. बीज—उसे कहते हैं, जो प्रारम्भ में संक्षेप में कहा जाता है और आगे चलकर विस्तृत हो जाता है। २. बिन्दु—बीच की कथा के समाप्त होने पर भी प्रधान कथा को आगे अविच्छिन्न रखने के कारण को बिन्दु कहते हैं।)

(१३) स्वगत—अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिह स्वगतं मतम्।

(सा० द० ६—१३७)

जो बात सुनाने योग्य नहीं होती है, उसे 'स्वगत' (मन में) कहते हैं, इसको 'आत्मगत' भी कहते हैं। इसका उद्देश्य यह होता है कि साथ के अभिनेता उस बात को न सुन सकें, केवल श्रोता ही उसे सुन पावें।

(१४) प्रकाश—सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्।

(सा० द० ६–१३८)

जो बात सबको सुनाने के लिए कही जाती है, उसे 'प्रकाश' (स्पष्ट) कहते हैं।

(१५) अपवारित—रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम्।

(दशरूपक १–६६)

जहाँ मुँह दूसरी ओर करके कोई पात्र दूसरे व्यक्ति की गुप्त बात कहता है, उसे 'अपवारित' (एक ओर होकर) कहते हैं।

(१६) जनान्तिक—त्रिपताककरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात्तज्जनान्ते जनान्तिकम्॥

(सा० द० ६–१३९)

जहाँ दूसरे पात्रों के होते हुए भी दो पात्र परस्पर इस प्रकार मन्त्रणा करें कि उसे दूसरे पात्रों को सुनाना अभीष्ट न हो तथा दूसरे पात्रों की ओर त्रिपताका वाले हाथ से संकेत किया जाए कि उसका वारण किया जा रहा है, उसे 'जनान्तिक' कहते हैं। (हाथ की ओट करके दो पात्रों का वार्तालाप करना)।

(१७) आकाशभाषित--किं ब्रवीषीति यन्नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते।
श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत् स्यादाकाशभाषितम्॥
(सा० द० ६-१४०)

जहाँ कोई पात्र 'क्या कहते हो' इस प्रकार कहता हुआ दूसरे पात्र के बिना ही बातचीत करता है तथा अन्य पात्रों के कथन के बिना भी बात को सुनने का अभिनय करके वार्तालाप करता है, उसे 'आकाश-भाषित' कहते हैं। इसके लिए ही 'आकाशे' (आकाश में) भी प्रयुक्त होता है।

(१८) विष्कम्भक--वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः॥
मध्यमेन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः।
शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः॥
(सा० द० ६-५५,५६)

विष्कम्भ या विष्कम्भक भूत और भावी घटनाओं की सूचना के लिए होता है। इसका प्रयोग नाटक में संक्षेप के उद्देश्य से किया जाता है। यह अंक के आदि में रखा जाता है। जहाँ पर विष्कम्भ में एक या दो मध्यम कोटि के पात्र आते हैं, उसे 'शुद्ध विष्कम्भ' कहते हैं। यदि उसमें नीच और मध्यम दोनों कोटि के पात्र हैं तो उसे 'मिश्र विष्कम्भक' कहते हैं।

(१९) प्रवेशक--प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा॥
(सा० द० ६-५७)

प्रवेशक की भाषा प्राकृत होती है। इसमें नीच पात्र ही रहते हैं। यह दो अंकों के बीच में आता है। इसकी अन्य विशेषताएँ विष्कम्भक के तुल्य हैं। यह नाटक के प्रारम्भ में नहीं आ सकता है।

(क) विष्कम्भक और प्रवेशक की समता और भिन्नता इस प्रकार समझनी चाहिए—

विष्कम्भक	प्रवेशक
१—यह भूत और भावी घटना का सूचक है।	१—यह भी भूत और भावी घटना का सूचक है।
२—इसमें एक या दो मध्यम पात्र होते हैं।	२—इसमें सारे पात्र निम्न कोटि के होते हैं।
३—इसकी भाषा संस्कृत या शौरसेनी प्राकृत होगी।	३—इसकी भाषा संस्कृत कभी नहीं होगी।
४—इसका प्रयोग नाटक के प्रथम अंक के प्रारंभ में भी हो सकता है और दो अंकों के बीच में भी।	४—इसका प्रयोग दो अंकों के बीच में ही होगा। प्रथम अंक के प्रारम्भ में कभी नहीं।

(ख) शुद्ध विष्कम्भक, मिश्र विष्कम्भक और प्रवेशक में ये अन्तर हैं—

नाम	पात्र	भाषा
१—शुद्ध विष्कम्भक	मध्यम (१ या २)	संस्कृत
२—मिश्र विष्कम्भक	मध्यम और नीच	संस्कृत और प्राकृत
३—प्रवेशक	नीच	प्राकृत

(२०) भरतवाक्य—

यह नाटक के अन्त में आशीर्वादात्मक श्लोक होता है। भरत का अर्थ नट या अभिनेता है। भरतानां वाक्यम्। नाटकीय पात्रों की ओर से जनता या राष्ट्र की समृद्धि के लिए जो आशीर्वादात्मक श्लोक होता है, वह भरतवाक्य है। नाटक के अन्त में अभिनेताओं के प्रतिनिधि के रूप में सूत्रधार या कई अभिनेता मिलकर इस श्लोक को बोलते हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार भरतवाक्य यह नाम नाट्यशास्त्र के जन्मदाता और नाट्यशास्त्र ग्रन्थ के रचयिता भरत मुनि की स्मृति के लिए रखा गया है। तब इसका अर्थ होगा—भरत मुनि द्वारा आदिष्ट आशीर्वादात्मक वाक्य। कुछ भरतवाक्यों में कवि के जीवन से संबद्ध कुछ महत्त्वपूर्ण संकेत भी प्राप्त होते हैं।

परिशिष्ट (३)

छन्दः-परिचय

(उत्तररामचरित में प्रयुक्त छन्दों के लक्षणादि)

सूचना--प्रत्येक छन्द के आगे विवरण दिया गया है कि वह प्रत्येक अंक में किन-किन श्लोकों में है। साथ ही श्लोकों का योग भी दिया गया है।

(१) संस्कृत में प्रत्येक श्लोक में ४ पाद या चरण होते हैं। श्लोक के चतुर्थांश को पाद या चरण कहते हैं। छन्द दो प्रकार के होते हैं—(क) वर्णवृत्त, (ख) मात्रिक। (क) वर्णवृत्तों में प्रत्येक पाद के वर्णों की गणना की जाती है। (ख) मात्रिकों में मात्राओं की संख्या गिनी जाती है। वर्णवृत्तों को 'वृत्त' कहते हैं, जैसे—इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा आदि। मात्रिक छन्दों को 'जाति' कहते हैं, जैसे--आर्या। वृत्त तीन प्रकार के होते हैं--(क) समवृत्त—जिसमें चारों पादों में वर्णों की संख्या बराबर होती है। जैसे—इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका आदि। अधिकांश छन्द इसी कोटि में आते हैं। (ख) अर्धसम-वृत्त--जहाँ पर प्रथम और तृतीय चरण में तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में समता होती है। जैसे--पुष्पिताग्रा। (ग) विषमवृत्त—जहाँ पर चरणों में समानता नहीं होती है।

(२) दोनों प्रकार के छन्दों में स्वरों पर ध्यान दिया जाता है। अ, इ, उ, ऋ और लृ ये 'लघु' (ह्रस्व) स्वर हैं। आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ ये 'गुरु' (दीर्घ) स्वर कहे जाते हैं। अनुस्वार, विसर्ग तथा संयुक्त अक्षर से पूर्व यदि लघु स्वर भी होता है तो वह गुरु माना जाता है। पाद का अन्तिम लघु अक्षर आवश्यकतानुसार गुरु भी माना जाता है।

सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा।।

(३) संस्कृत में वर्णवृत्तों की गणना के लिए गण का उपयोग किया जाता है। एक गण में तीन अक्षर होते हैं। छन्दों के लक्षण में इन गणों का ही प्रयोग होता है, अतः इनको स्मरण करना अनिवार्य है। लघु वर्ण के लिए '।' सीधी लकीर चिह्न है और गुरुवर्ण के लिए 'ऽ' चिह्न है। अँग्रेजी छन्द-विचार के अनुसार क्रमशः '⌣ –' चिह्न हैं। गण ८ हैं। इनके नाम और लक्षण के लिए निम्नलिखित श्लोक स्मरण कर लेना चाहिए।

मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो, भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।
जो गुरुमध्यगतो रलमध्यः, सोऽन्तगुरुः कथितोऽन्तलघुस्तः॥
मगण ऽ ऽ ऽ, नगण । । ।, भगण ऽ । ।, यगण । ऽ ऽ
जगण । ऽ ।, रगण ऽ । ऽ, सगण । । ऽ, तगण ऽ ऽ ।

दूसरा लक्षण निम्नलिखित है--

आदिमध्यावसानेषु य-र-ता यान्ति लाघवम्।
भ-ज-सा गौरवं यान्ति म-नौ तु गुरुलाघवम्॥

जैसे म या मगण कहने पर अर्थ होगा—तीन गुरु अक्षर, न का अर्थ होगा तीनों लघु अक्षर, भ का अर्थ होगा प्रथम गुरु अक्षर शेष दो लघु अक्षर।

(४) (क) लक्षणों में जहाँ पर 'ल' आता है, उसका अर्थ होगा 'लघु' और 'ग' का अर्थ 'गुरु' अक्षर। यदि 'लौ' या 'गौ' हो तो दो लघु या दो गुरु अर्थ होगा।

(ख) 'यति' का अर्थ है विराम या विश्राम। जहाँ पर एक पद के बीच में उच्चारण करते समय थोड़ा रुकना होता है, उसे 'यति' कहते हैं। लक्षणों में इसका निर्देश किया गया है कि कितने वर्णों के बाद यति आती है। इसका नीचे कोष्ठों में निर्देश किया गया है।

(ग) 'गति' का अर्थ है प्रवाह। श्लोक का अस्खलित गति से धाराप्रवाह पढ़ा जाना।

उत्तररामचरित में १९ छन्दों का प्रयोग हुआ है। अकारादि-क्रम से उनका विवेचन यहाँ किया गया है। उनके लक्षणादि निम्नलिखित हैं—

(१) अनुष्टुप् या श्लोक--श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुःपादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः।।

अनुष्टुप् या श्लोक में प्रत्येक पाद में ८ अक्षर होते हैं। इसमें षष्ठ अक्षर गुरु होता है और पंचम अक्षर सदा लघु होता है। द्वितीय और चतुर्थ चरण में सप्तम अक्षर लघु होता है और प्रथम तथा तृतीय में गुरु होता है। अन्य अक्षर लघु या गुरु हो सकते हैं।

उत्तरराम० में अनुष्टुप् छन्द वाले श्लोक ८४ हैं। जैसे—
१—१ से ६, ८, १०, १२, १३, १६, १७, १९, २१, २२ आदि।

(२) आर्या--यस्याः प्रथमे पादे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या।।

यह मात्रिक छन्द है। इसके प्रथम पाद में १२ मात्राएँ होती हैं, द्वितीय में १८, तृतीय में १२ और चतुर्थ में १५ मात्राएँ।

उत्तर०—३—४१; ६—१३=(२)

(३) इन्द्रवज्रा--स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।

इन्द्रवज्रा में प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं। २ तगण, १ जगण, २ गुरु अक्षर।

उत्तर०—१—११, ४४; २—३; ४—८; ६—२७; ७—४, १७=(७)

(४) उपजाति--
स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः, उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।
अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ताः।
इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेव नाम।।

उपजाति में प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं। यह इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा दोनों छन्दों के मिश्रण से बनता है। किसी चरण में इन्द्रवज्रा छन्द होता है और किसी में उपेन्द्रवज्रा। इन्द्रवज्रा में ११ वर्ण होते हैं—२ तगण, १ जगण, २ गुरु। उपेन्द्रवज्रा में भी ११ वर्ण होते हैं—१ जगण, १ तगण, १ जगण, २ गुरु।

उत्तर०—१—१५; २—६; ३—३५, ४२; ४—१६; ६—१५, २७ =(७)

(५) औपच्छन्दसिक या मालभारिणी—

विषमे ससजा गुरू समे चेत्,
सभरा येन तु मालभारिणीयम्।

औपच्छन्दसिक या मालभारिणी में प्रथम और तृतीय चरण में ११ वर्ण होते हैं—२ सगण, १ जगण, २ गुरु। द्वितीय और चतुर्थ चरण में १२ वर्ण होते हैं—१ सगण, १ भगण, १ रगण, १ यगण। यह अर्धसमवृत्त है।

उत्तर०—५—८=(१)

(६) द्रुतविलम्बित—द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।

द्रुतविलम्बित में प्रत्येक पाद में १२ वर्ण होते हैं। १ नगण, २ भगण, १ रगण।

उत्तर०—३—२७; ४—१५=(२)

(७) पुष्पिताग्रा—अयुजि नयुगरेफतो यकारो
युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।

पुष्पिताग्रा छन्द के प्रथम और तृतीय चरण में १२ वर्ण होते हैं—२ नगण, १ रगण, १ यगण। द्वितीय और चतुर्थ चरण में १३ वर्ण होते हैं—१ नगण, २ जगण, १ रगण, १ गुरु। यह अर्धसमवृत्त है।

उ०—३—१८, २०; ४—४; ५—४; ६—८=(५)

(८) पृथ्वी—(८, ९) जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः।

पृथ्वी छन्द में प्रत्येक पाद में १७ वर्ण होते हैं—१ जगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, १ यगण, १ लघु, १ गुरु। इसमें ८—९ पर यति होती है।

उ०—५—५; ६—१, ३७=(३)

(९) प्रहर्षिणी—(३, १०) म्याशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षिणीयम्।

प्रहर्षिणी छन्द में प्रत्येक पाद में १३ वर्ण होते हैं। १ मगण, १ नगण, १ जगण, १ रगण, १ गुरु। इसमें ३—१० पर यति होती है।

उ०—१—३०, ३१, ४०, ४९; ३—६, १५, ३६, ३९, ४—२६; ५—१, १८; ७—६=(१२)

(१०) मञ्जुभाषिणी—सजसा जगौ भवति मञ्जुभाषिणी।

मञ्जुभाषिणी छन्द में प्रत्येक पाद में १३ वर्ण होते हैं— १ सगण, १ जगण, १ सगण, १ जगण, १ गुरु।

उ०—१—१८; ३—४; ६—४, १७, ४१=(५)

(११) मन्दक्रान्ता—(४, ६, ७)

मन्दाक्रान्ताऽम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्।

मन्दाक्रान्ता में प्रत्येक पाद में १७ वर्ण होते हैं। १ मगण, १ भगण १ नगण, २ तगण, २ गुरु। इसमें ४—६—७ पर यति होती है।

उ०—१—३३; २—१३, १४, २५; ३—६, १५, ३६, ३८; ४—२६; ५—१२; ६—९, २२; ७—६=(१३)

(१२) मालिनी—(८, ७) ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

मालिनी छन्द में प्रत्येक पाद में १५ वर्ण होते हैं—२ नगण, १ मगण, २ यगण। इसमें ८—७ पर यति होती है।

उ०—१—२४, २६, २७; २—२०, २१; ३—५, १९, २३, २५, ४८; ५—२, ३, १३; ६—१२, २४, २६=(१६)

(१३) रथोद्धता—रान्नराविह रथोद्धता लगौ।

रथोद्धता में प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं— १ रगण, १ नगण, १ रगण, १ लघु, १ गुरु।

उ०—१—३४, ३७, ४५=(३)

(१४) वंशस्थ—जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।

वंशस्थ में प्रत्येक पाद में १२ वर्ण होते हैं—१ जगण, १ तगण, १ जगण, १ रगण।

उ०—६—२५=(१)

(१५) वसन्ततिलका—उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

वसन्ततिलका छन्द में प्रत्येक पाद में १४ वर्ण होते हैं— १ तगण, १ भगण, २ जगण, २ गुरु।

उ०—१—७, ६, १४, २५, ३६; २—१०, ११, २२, २३; ३—८, ११, १२, २१, २६, २८, ४७; ४—६, २३, २६; ५—१०, ११, २४, ३३; ६—७, १६, १९=(२६)

(१६) शार्दूलविक्रीडित—(१२, ७)

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम्।

शार्दूलविक्रीडित छन्द में प्रत्येक पाद में १९ वर्ण होते हैं—१ मगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, २ तगण, १ गुरु। इसमें १२—७ पर यति होती है।

उ०—१—३९; २—६, १६, २८, २९, ३०; ३—१६, ३७, ४३, ४५; ४—१, ५, १७, २०, २२, २४; ५—६, १४, १९, २७, ३४, ३५; ६—१८, ४०; ७—२१=(२५)

(१७) शालिनी—(४,७) मात्तौ गौ चेच्छालिनी वेदलोकैः।

शालिनी में प्रत्येक पाद में ११ वर्ण होते हैं—१ मगण, २ तगण, २ गुरु। इसमें ४—७ पर यति होती है।

उ०—१—४२; ३—२; ४—१८; ५—३०, ३२=(५)

(१८) शिखरिणी—(६, ११) रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी।

शिखरिणी छन्द में प्रत्येक पाद में १७ वर्ण होते हैं—१ यगण, १ मगण, १ नगण, १ सगण, १ भगण, १ लघु, १ गुरु। इसमें ६—११ पर यति होती है।

उ०—१—२८, २९, ३५, ३८; २—१, २, २६, २७; ३—१३, ३०, ४०, ४४; ४—३, १०, ११, १२, १३, १४, २१; ५—९, १६, २६; ६—११, १४, २८, ३०, ३३, ३५, ३८, ३९=(३०)

(१९) हरिणी—(६, ४, ७) नसमरसला गः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।

हरिणी छन्द में प्रत्येक पाद में १७ वर्ण होते हैं—१ नगण, १ सगण, १ मगण, १ रगण, १ सगण, १ लघु, १ गुरु। इसमें ६—४—७ पर यति होती है।

उ०—१—२०, २३; २—४; ३—२२, २४, ३१, ३२; ४—१९; ५—२८=(९)

परिशिष्ट (४)

उत्तररामचरितनाटकान्तर्गत सुभाषित

(क) सुभाषित वाक्य

पृष्ठ संख्या

१.	अन्धतामिस्रा ह्यसूर्या नाम ते लोकाः प्रेत्य तेभ्यः प्रतिविधीयन्ते य आत्मघातिनः।	३१८
२.	अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।	६०
३.	अप्रतिष्ठे कुलज्येष्ठे का प्रतिष्ठा कुलस्य नः।	४३८
४.	अयोधातुं यद्वत्परिलघुरयस्कान्तशकलः।	३६०
५.	अव्याहतान्तःप्रकाशा हि देवताः सत्त्वेषु।	५५५
६.	अहो, अनवस्थितो भूतसंनिवेशः।	१६८
७.	आपातदुःसहः स्नेहसंवेगः।	५५५
८.	इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयोः।	८१
९.	एते हि हृदयमर्मच्छिदः संसारभावाः।	२१
१०.	करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी विरहव्यथेव वनमेति जानकी।	१८८
११.	कर्तव्यानि खलु दुःखितैर्दुःखनिर्वापणानि।	२५०
१२.	किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः।	८१
१३.	कियच्चिरं वा मेघान्तरेण पूर्णचन्द्रदर्शनम्?	२९८
१४.	को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तुर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे।	५५०
१५.	गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।	३३६
१६.	जितमपत्यस्नेहेन।	५४९
१७.	तारामैत्रकं चक्षूरागः।	४२७
१८.	तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः।	३१
१९.	तेजस्तेजसि शाम्यतु।	४०६

२०. ते हि नो दिवसा गताः।	४३
२१. दुर्जनोऽसुखमुत्पादयति।	५६
२२. ननु लाभो हि रुदितम्।	२५१
२३. न रथिनः पादचारमभियुञ्जन्ति।	४३२
२४. नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा मूर्ध्नि स्थितिर्न चरणैरवताडनानि।	३३
२५. पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुणो रसः।	१७८
२६. पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति।	३३८
२७. पुराभूतः शोको विकलयति मां नूतन इव।	१६६
२८. प्रकृतिरियमभ्युदयानाम्।	५८४
२९. प्रसवः खलु प्रकर्षपर्यन्तः स्नेहस्य।	२२४
३०. प्रियानाशे कृत्स्नं किल जगदरण्यं हि भवति।	५१७
३१. प्रियाशोको जीवं कुसुममिव घर्मो ग्लपयति।	२५१
३२. भूयसां जीविनामेव धर्म एष यत्र स्वरसमयी कस्यचित् क्वचित्प्रीतिः।	४२७
३३. महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः।	४८१
३४. युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः।	२७
३५. लतायां पूर्वलूनायां प्रसवस्योद्भवः कुतः?	४३१
३६. विना सीतादेव्या किमिव हि न दुःखं रघुपतेः।	५१७
३७. विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि।	२६६
३८. वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहक्रमं बाधते।	४३०
३९. वृद्धास्ते न विचारणीयचरिताः।	४५५
४०. श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम्।	९९
४१. सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम्।	९०
४२. सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति।	१११
४३. सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति।	१४३
४४. सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति।	२१
४५. सर्वमतिमात्रं दोषाय।	४७१
४६. सर्वसाधारणो ह्यष मनसो मूढग्रन्थिरान्तरश्चेतनावतामुपप्लवः संसारतन्तुः।	५४९

४७. साक्षात्कृतधर्माणो महर्षयः। ५४१
४८. सानुषङ्गाणि कल्याणानि। ५८३
४९. सिद्धं ह्येतद्वाचि वीर्यं द्विजानां
बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत्क्षत्रियाणाम्। ४५२
५०. सुलभसौख्यमिदानीं बालत्वं भवति। ३५३
५१. स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्ष इति विप्रतिषिद्धमेतत्। ४८२
५२. हन्त, पण्डितः संसारः। १२६
५३. हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्। ५१९

(ख) सुभाषित श्लोक

अंक-श्लोकसंख्या

१. अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्रार्थ्यते।। १-३९
२. अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति पठ्यते।। ३-१७
३. अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया।
स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्भूतानि सीव्यति।। ५-१७
४. आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां
ये व्याहारास्तेषु मा संशयोऽभूत्।
भद्रा ह्येषां वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता
नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति।। ४-१८
५. ऋषयो राक्षसीमाहुर्वाचमुन्मत्तदृप्तयोः।
सा योनिः सर्ववैराणां सा हि लोकस्य निष्कृतिः।। ५-२९
६. एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक्पृथगिव श्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारा-
नम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्।। ३-४७

७. कामं दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं
कीर्तिं सूते दुर्हृदो निष्प्रलाति।
शुद्धां शान्तां मातरं मङ्गलानां
धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः ॥ ५–३०

८. किन्त्वनुष्ठाननित्यत्वं स्वातन्त्र्यमपकर्षति।
संकटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैर्गृहस्थता ॥ १–८

९. चिरं ध्यात्वा ध्यात्वा निहित इव निर्माय पुरतः
प्रवासे चाश्वासं न खलु न करोति प्रियजनः।
जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलत्रे ह्युपरते
कुकूलानां राशौ तदनु हृदयं पच्यत इव ॥ ६–३८

१०. न किंचिदपि कुर्वाणः सौख्यैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ॥ २–१९

११. न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां विषहते
स तस्य स्वो भावः प्रकृतिनियतत्वादकृतकः।
मयूखैरश्रान्तं तपति यदि देवो दिनकरः
किमाग्नेयो ग्रावा निकृत इव तेजांसि वमति ॥ ६–१४

१२. पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते ॥ ३–२९

१३. प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥ २–२

१४. मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥ २–५

१५. लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ॥ १–१०

१६. वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ॥ २–७

१७. वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा।
भवति हि पुनर्भूयान्भेदः फलं प्रति तद्यथा
प्रभवति शुचिर्बिम्बग्राहे मणिर्न मृदादयः।। २–४

१८. व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः।। ६–१२

१९. सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां
दुःखानि सम्बन्धिवियोगजानि।
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि
स्रोतःसहस्रैरिव संप्लवन्ते।। ४–८

२०. सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता।
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।। १–५

२१. सुहृदिव प्रकटय्य सुखप्रदां
प्रथममेकरसामनुकूलताम्।
पुनरकाण्डविवर्तनदारुणः
परिशिनष्टि विधिर्मनसो रुजम्।। ४–१५

———

परिशिष्ट (५)

उत्तररामचरित से साम्य वाले भवभूति के अन्य नाटकों में प्राप्त श्लोक

(**संकेत-चिह्न**—उ० =उत्तररामचरित, म०=महावीरचरित, मा०=मालतीमाधव)

सूचना—१. यहाँ पर उत्तरराम० से साम्य वाले श्लोकों का प्रारम्भ और अन्त का अंश विवरण के साथ दिया गया है। पूरा श्लोक निर्दिष्ट स्थान पर देखें।

२. जहाँ पर पूरा श्लोक उत्तरराम० के तुल्य है, वहाँ पर अन्य नाटकों के श्लोकों का प्रारम्भ और अन्त का अंश विवरण के साथ दिया गया है।

३. जहाँ पर श्लोकों में कुछ अन्तर है, वहाँ पर दोनों के भेद वाला अंश पृथक्-पृथक् दिया गया है। शेष अंश समान समझना चाहिए।

४. जहाँ पर केवल शब्दों या भावों का साम्य है, वहाँ पर दोनों का पूरा अंश दिया गया है।

१. रामः—किं त्वनुष्ठान ········ मपकर्षति।
संकटा ·········· गृहस्थता॥ (उ० १–८)
विश्वामित्रः—किंत्वनुष्ठान ······ मपकर्षति।
संकटा ········ गृहस्थता॥ (म० ४–३३)

२. रामः— उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः।
तीर्थोदकं च ······· शुद्धिमर्हतः॥ (उ० १–१३)
दशरथः—निसर्गतः पवित्रस्य किमन्यत् पावनं तव।
तीर्थोदकं च ······· शुद्धिमर्हतः॥ (म० ४–२७)

३. रामः—नैसर्गिकी ······ र्न चरणैरवताडनानि। (उ० १–१४)
माधवः—नैसर्गिकी ······ र्न मुसलैरवकुट्टनानि। (मा० ९–५१)

४. रामः—ब्रह्मादयो ········· शरदस्तपांसि।
एतान्यपश्यन् ···· तपोमयानि।। (उ० १–१५, ६–१५)
विश्वामित्रः—ब्रह्मादयो ······ शरदस्तपांसि।
एतान्यदर्शन् ····· तपोमयानि।। (म० १–४२)

५. लक्ष्मणः—गौतमश्च ······· पुरोहितः। (उ० १–१६)
विश्वामित्रः—गौतमश्च ······· पुरोहितः। (म० १–१६)
(नेपथ्ये)—गौतमश्च ······· पुरोहितः। (म० २–४२)

६. रामः—जनकानां ·········· न प्रियः।
यत्र ····· स्वयं कुशिकनन्दनः।। (उ० १–१७)
राजा—जनकानां ······· न प्रियः।
यत्र ···· कल्याणप्रतिभूर्भवान्।। (म० १–५७)

७. रामः—अयमागृहीत ······ महोत्सवः करः। (उ० १–१८)
माधवः—स्वयमागृहीत ····· महोत्सवः करः। (म० ६–६)

८. लक्ष्मण :—पुत्रसंक्रान्त ···· धृतम्।
धृतं बाल्ये तदार्येण पुण्यमारण्यकव्रतम्।। (उ० १–२२)
जनकः—पुत्रसंक्रान्त ······· धृतम्।
त्वया तत् क्षीरकण्ठेन प्राप्तमारण्यकव्रतम्।। (म० ४–५१)

९. रामः—एतस्मिन् ········· पुण्डरीकाः।
बाष्पाम्भः ··· संदृष्टाः कुवलयिनो मया विभागाः।। (उ०१–३१)
मकरन्दः—एतस्मिन् ········ पुण्डरीकाः।
बाष्पाम्भः ·· दृश्यन्तामविरहितश्रियो विभागाः।। (मा० ९–१४)

१०. रामः—यस्य वीर्येण कृतिनो वयं च भुवनानि च। (उ० १–३२)
वसिष्ठः—यत्कृतास्तेन कृतिनो वयं च भुवनानि च। (म० ४–१३)

११. रामः—जीवयन्निव ससाध्वसश्रमस्वेद ···· मर्प्यताम्।
बाहुरैन्दव ········ विभ्रमः।। (उ० १–३४)
माधवः—जीवयन्निव समूढसाध्वसस्वेद ··· मर्प्यताम्।
बाहुरैन्दव ······ विभ्रमः।। (मा० ८–३)

१२. रामः—विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च संमीलयति च। (उ० १–३५)

माधवः—विकारः कोऽप्यन्तर्जडयति च तापं च तनुते। (मा० १–३१)

१३. रामः—म्लानस्य · · · · · · · · · मोहनानि।

एतानि ते सुवचनानि सरोरुहाक्षि

कर्णामृतानि मनसश्च रसायनानि॥ (उ० १–३६)

माधवः—म्लानस्य · · · · · · · · · मोहनानि।

आनन्दनानि हृदयैकरसायनानि

दिष्ट्या ममाप्यधिगतानि वचोऽमृतानि॥ (मा० ६–८)

१४. रामः—जनकानां · · · · · गोत्रमङ्गलम्। (उ० १–५१)

रामः—जनकानां · · · · · · · गोत्रमङ्गलम्। (उ० ६–४२)

१५. शम्बूकः—चतुर्दश · · · · · · राक्षसाः।

त्रयश्च · · · · · · · · रणे हताः॥ (उ० २–१५)

जटायुः—चतुर्दश · · · · · · · राक्षसाः।

त्रयश्च · · · · · · · रणे हताः॥ (म० ५–१३)

१६. रामः—न किंचिदपि · · · · · · · न्यपोहति।

तत्तस्य · · · · · · · प्रियो जनः॥ (उ० २–१९)

विद्याधरः—न किंचिदपि · · · · न्यपोहति।

तत्तस्य · · · · · प्रियो जनः॥ (उ० ६–५)

१७. शम्बूकः—इह समद · · · · · · · · वहन्ति।

फलभर · · · स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः॥ (उ० २–२०)

श्रमणा—इह समद · · · · · · · · · वहन्ति।

फलभर · · · · · · निर्झरिण्यः॥ (म० ५–४०)

माधवः—फलभर · · स्खलनतनुतरंगामुत्तरेण स्रवन्तीम्॥ (मा० ९–२४)

१८. शम्बूकः—दधति · · · · · · · · · मम्बूकृतानि।

शिशिर · · · विकीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगन्धः॥ (उ० २–२१)

सौदामिनी—दधति · · · · · · · मम्बूकृतानि।

शिशिर · · · · · · · गन्धः॥ (मा० ९–६)

श्रमणा—दधति · · · · · · · मम्बूकृतानि।

शिशिर · · · विशीर्णग्रन्थिनिष्यन्दगन्धः॥ (म० ५–४१)

१९. शम्बूकः—गुञ्जत् · · · · घूत्कारवत्कीचक०। (उ० २–२९)
माधवः—गुञ्जत् · · · · घूत्कारसंवेल्लित०। (मा० ५–१९)

२०. तमसा—परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं
दधती विलोलकबरीकमाननम्। (उ० ३–४)
कामन्दकी—परिपाण्डुपांसुलकपोलमाननं
दधती मनोहरतरत्वमागता। (मा० २–४)

२१. रामः—लीलोत्खात · · · · पुष्यत् · · · संक्रान्तयः।
सेकः · · · · · · · पुनर्यत् · · · घृतम्॥ (उ० ३–१६)
माधवः—लीलोत्खात · · · पुष्यत् · · संक्रान्तयः।
सेकः · · · · · पुनर्न · · · · धृतम्॥ (मा० ९–३४)

२२. वासन्ती—त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे। (उ० ३–२६)
मकरन्दः—या कौमुदी नयनयोर्भवतः सुजन्मा। (मा० १–३५)

२३. रामः—त्रस्तैकहायनकुरंगविलोलदृष्टेः, (उ० ३–२८)
मकरन्दः—त्रस्तैकहायनकुरंगविलोलदृष्टिः, (मा० ४–८)

२४. तमसा—०विलपनविनोदोऽप्यसुलभः, (उ० ३–३०)
रामः—०विलपनविनोदोऽप्यसुलभः। (मा० ५–२८)

२५. रामः—दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् · · · · चेतनाम्।
ज्वलयति · · · · · · · · जीवितम्॥ (उ० ३–३१)
माधवः—दलति हृदयं गाढोद्वेगं · · · · चेतनाम्।
ज्वलयति · · · · · · · जीवितम्॥ (मा० ९–१२)

२६. रामः—हा हा देवि स्फुटति · · · जगदविरल · · ज्वलामि।
सीदन्नन्धे · · · · · · · करोमि॥ (उ० ३–३८)
मकरन्दः—मातर्मातर्दलति · · · जगदविकल · · ज्वलामि।
सीदन्नन्धे · · · · · · · करोमि॥ (मा० ९–२०)

२७. तमसावासन्त्यौ—तव वितरतु भद्रं भूयसे मङ्गलाय। (उ० ३–४८)
सूत्रधारः—भद्रं भद्रं वितर भगवन् भूयसे मङ्गलाय। (मा० १–३)

२८. जनकः—अनियत · · · · कुड्मलाग्रम्।
वदन · · · · मञ्जु जल्पितं ते॥ (उ० ४–४)

कामन्दकी—अनियत · · · · · कुड्मलाग्रम्।
वदन · · · · · · · · मुग्धजल्पितं ते ।। (मा० १०-२)

२९. अरुन्धती—याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ ।। (उ० ४-९)
विश्वामित्रः—याज्ञवल्क्यो · · · · · · · जगौ ।। (म० १-१४)
जामदग्न्यः—आदित्यशिष्यः किल याज्ञवल्क्यो
यस्मै मुनिर्ब्रह्म परं विवव्रे ।। (म० २-४३)

३०. कञ्चुकी—सुहृदिव · · · · · · · मनुकूलताम्।
पुनर · · · · परिशिनष्टि · · · · रुजम् ।। (उ० ४-१५)
माधवः—सुहृदिव · · · · · · · मनुकूलताम्।
पुनर · · · प्रविशिनष्टि · · · रुजम् ।। (मा० ४-७)

३१. अरुन्धती—कुवलयदलस्निग्धश्यामः० (उ० ४-१९)
कपालकुण्डला—कुवलयदलश्यामोऽप्यङ्गं० (मा० ५-५)

३२. जनकः—चूडाचुम्बित · · · · · · रौरवीम्।
मौर्व्या · · · · · · · · पैप्पलः ।। (उ० ४-२०)
राजा—चूडाचुम्बित · · · · · · · रौरवीम्।
मौर्व्या · · · · · · · · · पैप्पलः ।। (म० १-१८)

३३. लवः—ज्याजिह्वया · · · मुद्भूरि · · · · मेतत्।
ग्रासप्रसक्त · · · · · · · चापम् ।। (उ०४-२९)
जनकः—ज्याजिह्वया · · · मुद्गारि · · · मेतत्।
ग्रासप्रसक्त · · · · · · · चापम् ।। (म० ३-२९)

३४. चन्द्रकेतुः—० कोऽप्ययं वीरपोतः। (उ० ५-२)
चन्द्रकेतुः—अयं हि शिशुरेकको०। (उ० ५-५)
जामदग्न्यः—कोऽप्येष वीरशिशुकाकृति०। (म० २-३९)

३५. चन्द्रकेतुः—व्यतिकर इव · · · · · वैद्युतश्च। (उ० ५-१३)
मकरन्दः—व्यतिकर इव · · · · · वैद्युतश्च। (मा० ९-५४)
(नेपथ्ये)—व्यतिकर इव · · · · · वैद्युतश्च। (मा० १०-८)

३६. रामः—त्रातुं लोकानिव · · · · · · · · · गुप्त्यै।
सामर्थ्या आविर्भूय · · · · · राशिः ।। (उ० ६-९)

जामदग्न्यः—त्रातुं · · · · · · · · गुप्त्यै।
सामर्थ्या · · · प्रादुर्भूय · · · राशिः॥ (म० २–४१)

३७. रामः—व्यतिषजति · · · · · · · · संश्रयन्ते।
विकसति · · · · · · · · चन्द्रकान्तः॥ (उ० ६–१२)

मकरन्दः—व्यतिषजति · · · · · · · संश्रयन्ते।
विकसति · · · · · · · चन्द्रकान्तः॥ (मा० १–२५)

३८. रामः—वीरो रसः किमयमेत्युत दर्प एव॥ (उ० ६–१९)
रामः—प्रचण्ड इव पिण्डतामुपगतश्च वीरो रसः॥ (म० २–२३)

३९. रामः—अमृताध्मात · · · · · संहननस्य ते। (उ० ६–२१)
जामदग्न्यः—अमृताध्मात · · · · संहननस्य ते। (म० २–४६)

४०. रामः—प्रगल्भव्यापारः स्फुरति · · · · वपुषि॥ (उ० ६–३५)
माधवः—प्रगल्भव्यापारश्चलति · · · · वपुषि॥ (मा० ९–२९)

४१. रामः—जगज्जीर्णारण्यं भवति०। (उ० ६–३८)
माधवः—जगज्जीर्णारण्यं कथमसि। (मा० ५–३०)

४२. भागीरथी—को नाम · · · · · जन्तु · · · मीष्टे। (उ० ७–४)
माधवः—को नाम · · · · जन्तो · · · · मीष्टे। (मा० १०–१३)

४३. देव्यौ—नमो वः परमास्त्रेभ्यो०
काले ध्यातैरुपस्थेयं०॥ (उ० ७–११)

(नेपथ्ये)—ध्यातैर्घ्यातैः संनिधेयं भवद्भिः
स्वं स्वं स्थानं यात यूयं नमो वः॥ (म० १–५०)

परिशिष्ट (६)

भवभूति-विषयक सूक्तियाँ

१. उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।

(विक्रमार्क)

२. कलयति करकमले करवाल-
मर्पैति विभूषणमरिमहिलायाः।
कवयति भवति भवति भवभूति-
रसौ वचसोऽपि कलायाः।। (कस्यापि)

३. कवयः कालिदासाद्या भवभूतिर्महाकविः।
तरवः पारिजाताद्याः स्नुहीवृक्षो महातरुः।। (कस्यापि)

४. कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्।।

(राजतरंगिणी ४–१४४)

५. कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते। कस्यापि

६. जडानामपि चैतन्यं भवभूतेरभूद् गिरा।
ग्रावाप्यरोदीत् पार्वत्या हसतः स्म स्तनावपि।। (कस्यापि)

७. तपस्वी कां गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव।
गिरिजायाः स्तनौ वन्दे भवभूतिसिताननौ।। (भवभूति)

८. बभूव वल्मीकभवः पुरा कवि-
स्ततः प्रपेदे भुवि भर्तृमेण्ठताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
स वर्तते संप्रति राजशेखरः।।

(बालरामायण १–१६)

९. भवभूइ–जलहि–णिग्गय–कव्वामयरसकणा इव प्फुरन्ति।
जस्स विसेसा अज्ज वि वियडेसु कहाणिवेसेसु ।।
(संस्कृत-छाया) (वाक्पतिराजकृत गउडवहो पद्य ७९९)

भवभूतिजलधिनिर्गतकाव्यामृतरसकणा इव स्फुरन्ति।
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथानिवेशेषु ।।

१०. भवभूतिमनादृत्य निर्वाणमतिना मया।
मुरारिपदचिन्तायामिदमाधीयते मनः ।।
(जल्हण-सूक्तिमुक्तावली)

११. भवभूतिर्नाम कविर्निसर्गसौहृदेन भरतेषु वर्तमानः०।
(मालतीमाधवस्य प्रस्तावना)

१२. भवभूतेः शिखरिणी निरर्गलतरङ्गिणी।
रुचिरा घनसन्दर्भे या मयूरीव नृत्यति ।।
(क्षेमेन्द्रकृत सुवृत्ततिलक ३–३३)

१३. भवभूतेः संबन्धाद् भूधरभूरेव भारती भाति।
एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा ।।
(गोवर्धनाचार्यकृत आर्यासप्तशती १–३६)

१४. भव्यां यदि भवभूतिं तात कामयसे तदा।
भवभूतिपदे चित्तमविलम्बं निवेशय ।।
(कस्यापि)

१५. माघश्चोरो मयूरो मुररिपुरपरो भारविः सारविद्यः
श्रीहर्षः कालिदासः कविरथ भवभूत्याह्वयो भोजराजः।
श्रीदण्डी दिण्डिमाख्यः श्रुतिमुकुटगुरुर्भल्लवो भट्टबाणः
ख्याताश्चान्ये सुबन्ध्वादय इह कृतिभिर्विश्वमाह्लादयन्ति ।।
(विश्वगुणादर्शचम्पू, श्लोक ५४९)

१६. मान्यो जगत्यां भवभूतिरार्यः,
सारस्वते वर्त्मनि सार्थवाहः।

वाचं पताकामिव यस्य दृष्ट्वा
जनः कवीनामनुपृष्ठमेति ।।
(उदयसुन्दरीचम्पू)

१७. रत्नावलीपूर्वकमन्यदास्तामसीमभोगस्य वचोमयस्य ।
पयोधरस्येव हिमाद्रिजायाः परं विभूषा भवभूतिरेव ।।
(जल्हण—सूक्तिमुक्तावली)

१८. साऽम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः । (भवभूति)

१९. सुकवित्रितयं मन्ये निखिलेऽपि महीतले ।
भवभूतिः शुकश्चायं वाल्मीकिस्तु तृतीयकः ।। (कस्यापि)

२०. सुकविद्वितयं जाने निखिलेऽपि महीतले ।
भवभूतिः शुकश्चायं वाल्मीकिस्त्रितयोऽन्ययोः ।।
(भोजप्रबन्ध श्लोक १९१)

२१. सुबन्धौ भक्तिर्नः क इह रघुकारे न रमते
धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिचन्द्रोऽपि हृदयम् ।
विशुद्धोक्तिः शूरः प्रकृतिमधुरा भारविगिरः
तथाप्यन्तर्मोदं कमपि भवभूतिर्वितनुते ।।
(सदुक्तिकर्णामृत)

२२. स्पष्टभावरसा चित्रैः पदन्यासैः प्रवर्तिता ।
नाटकेषु नटस्त्रीव भारती भवभूतिना ।।
(धनपालकृत तिलकमंजरी श्लोक ३०)

परिशिष्ट (७)

संक्षिप्त प्राकृत-व्याकरण

[उत्तररामचरित में शौरसेनी और माहाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग हुआ है, अतः प्राकृत के अंश को ठीक ढंग से समझने के लिए संक्षिप्त प्राकृत व्याकरण दिया जा रहा है। इस परिशिष्ट के लिखने में A. C. Woolner की पुस्तक Introduction to Prakrit से विशेष सहायता ली गई है। संक्षेप के लिए निम्नलिखित संकेतों का उपयोग किया गया है—शौ०=शौरसेनी, मा०=माहाराष्ट्री, माग०=मागधी, > = का यह रूप बनता है।]

अध्याय १

प्राकृत-परिचय

(१) प्राकृत को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—(क) प्राचीन प्राकृत या पाली, (ख) मध्यकालीन प्राकृत, (ग) परकालीन प्राकृत या अपभ्रंश। (क) प्राचीन प्राकृत में इनका संग्रह है—३य शताब्दी ई० पू० से २य शताब्दी ई० तक के शिलालेख, पाली, बौद्धग्रन्थ महावंश जातक आदि, प्राचीन जनसूत्रों की भाषा। (ख) मध्यकालीन प्राकृत में इन प्राकृतों का संग्रह होता है—माहाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, परकालीन जैनग्रन्थों की भाषा अर्धमागधी, जैन माहाराष्ट्री और जैन शौरसेनी, पैशाची। (ग) परकालीन प्राकृत में अपभ्रंश है।

(२) **प्राकृत का अर्थ**—प्राकृत शब्द प्रकृति शब्द से बना है। प्रकृतेः आगतं प्राकृतम्। प्रकृति के यहाँ पर दो अर्थ लिए गए हैं। (१) प्रकृति अर्थात् मूलभाषा संस्कृत। वैदिक भाषा को भी संस्कृत में लेने पर यह अर्थ उचित और शुद्ध प्रतीत होता है कि प्राकृत भाषा संस्कृत से निकली है। यहाँ पर यह विशेष रूप से स्मरण रखना चाहिए कि जनसाधारण की भाषा का आधार शिष्ट जनों द्वारा व्यवहृत भाषा ही होती है। शिष्ट-जन-व्यवहृत भाषा

वाचं पताकामिव यस्य दृष्ट्वा
जनः कवीनामनुपृष्ठमेति ।।
(उदयसुन्दरीचम्पू)

१७. रत्नावलीपूर्वकमन्यदास्तामसीमभोगस्य वचोमयस्य ।
पयोधरस्येव हिमाद्रिजायाः परं विभूषा भवभूतिरेव ।।
(जल्हण—सूक्तिमुक्तावली)

१८. साऽम्बा पुनातु भवभूतिपवित्रमूर्तिः । (भवभूति)

१९. सुकविस्त्रितयं मन्ये निखिलेऽपि महीतले ।
भवभूतिः शुकश्चायं वाल्मीकिस्तु तृतीयकः ।। (कस्यापि)

२०. सुकविर्द्वितयं जाने निखिलेऽपि महीतले ।
भवभूतिः शुकश्चायं वाल्मीकिस्त्रितयोऽन्ययोः ।।
(भोजप्रबन्ध श्लोक १९१)

२१. सुबन्धौ भक्तिर्नः क इह रघुकारे न रमते
धृतिर्दाक्षीपुत्रे हरति हरिचन्द्रोऽपि हृदयम् ।
विशुद्धोक्तिः शूरः प्रकृतिमधुरा भारविगिरः
तथाप्यन्तर्मोदं कमपि भवभूतिर्वितनुते ।।
(सदुक्तिकर्णामृत)

२२. स्पष्टभावरसा चित्रैः पदन्यासैः प्रवर्तिता ।
नाटकेषु नटस्त्रीव भारती भवभूतिना ।।
(धनपालकृत तिलकमंजरी श्लोक ३०)

———

परिशिष्ट (७)

संक्षिप्त प्राकृत-व्याकरण

[उत्तररामचरित में शौरसेनी और माहाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग हुआ है, अतः प्राकृत के अंश को ठीक ढंग से समझने के लिए संक्षिप्त प्राकृत व्याकरण दिया जा रहा है। इस परिशिष्ट के लिखने में A. C. Woolner की पुस्तक Introduction to Prakrit से विशेष सहायता ली गई है। संक्षेप के लिए निम्नलिखित संकेतों का उपयोग किया गया है—शौ०=शौरसेनी, मा०=माहाराष्ट्री, माग०=मागधी, > = का यह रूप बनता है।]

अध्याय १

प्राकृत-परिचय

(१) प्राकृत को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—(क) प्राचीन प्राकृत या पाली, (ख) मध्यकालीन प्राकृत, (ग) परकालीन प्राकृत या अपभ्रंश। (क) प्राचीन प्राकृत में इनका संग्रह है—३य शताब्दी ई० पू० से २य शताब्दी ई० तक के शिलालेख, पाली, बौद्धग्रन्थ महावंश जातक आदि, प्राचीन जनसूत्रों की भाषा। (ख) मध्यकालीन प्राकृत में इन प्राकृतों का संग्रह होता है—माहाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, परकालीन जैनग्रन्थों की भाषा अर्धमागधी, जैन माहाराष्ट्री और जैन शौरसेनी, पैशाची। (ग) परकालीन प्राकृत में अपभ्रंश है।

(२) **प्राकृत का अर्थ**—प्राकृत शब्द प्रकृति शब्द से बना है। प्रकृतेः आगतं प्राकृतम्। प्रकृति के यहाँ पर दो अर्थ लिए गए हैं। (१) प्रकृति अर्थात् मूलभाषा संस्कृत। वैदिक भाषा को भी संस्कृत में लेने पर यह अर्थ उचित और शुद्ध प्रतीत होता है कि प्राकृत भाषा संस्कृत से निकली है। यहाँ पर यह विशेष रूप से स्मरण रखना चाहिए कि जनसाधारण की भाषा का आधार शिष्ट जनों द्वारा व्यवहृत भाषा ही होती है। शिष्ट-जन-व्यवहृत भाषा

को जनसाधारण प्रयत्नलाघव आदि के कारण विकृत बना लेते हैं। वही शुद्ध भाषा का प्राकृत रूप हो जाता है। प्रारम्भ में प्रयुक्त भाषा संस्कृत ही थी। उसका ही विकृत रूप प्राकृत है। जनसाधारण में प्रयुक्त भाषा को परिष्कृत करके संस्कृत बनी है, यह समझना भूल है। (२) प्रकृति अर्थात् प्रजा, जन-साधारण, जनसाधारण में प्रयुक्त भाषा। यहाँ पर प्रथम अर्थ लेना उचित है।

(३) **माहाराष्ट्री**—प्राकृत के वैयाकरणों ने माहाराष्ट्री को सर्वोत्तम प्राकृत माना है और मुख्यतः उसके ही नियम दिए हैं। केवल अन्तर वाले स्थलों पर अन्य प्राकृतों का नामोल्लेख किया है। अतएव दण्डी ने काव्यादर्श (१–३५) में कहा है—माहाराष्ट्राश्रयां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः। माहाराष्ट्री प्राकृत का मुख्यतः प्रयोग महाराष्ट्र में होता था। नाटकों में स्त्रियाँ, जो कि शौरसेनी प्राकृत बोलती थीं, पद्य-रचना माहाराष्ट्री में ही करती थीं। प्राकृत पद्यों की भाषा माहाराष्ट्री ही थी। गउडवहो आदि काव्य माहाराष्ट्री में ही हैं।

(४) **शौरसेनी**—वर्तमान मथुरा के चारों ओर के स्थानों को 'शूरसेन' प्रदेश कहते थे। यहाँ पर प्रयुक्त भाषा को शौरसेनी कहते थे। नाटकों में स्त्रियाँ, विदूषक आदि शौरसेनी का ही प्रयोग करते थे। यह प्राकृत संस्कृत के बहुत निकट है। इससे ही वर्तमान 'हिन्दी' निकली है।

(५) **मागधी**—प्राचीन मगध (पूर्वी बिहार) में प्रयुक्त भाषा को मागधी कहते थे। नाटकों में निम्न श्रेणी के पात्र इसका प्रयोग करते थे। इसकी मुख्य विशेषताएँ अध्याय ६ में दी गई हैं। इसमें स के स्थान पर श का प्रयोग होता है, र के स्थान पर ल, ज के स्थान पर य, अकारान्त शब्दों के प्रथमा एकवचन में ए लगता है।

अध्याय २

प्राकृत की मुख्य विशेषताएँ

प्राकृत भाषा की मुख्य विशेषताएँ ये हैं—(१) प्राकृत संयोगात्मक भाषा है, अर्थात् सुप् तिङ आदि शब्द और धातु के साथ संयुक्त रहते हैं। (२) प्राचीन व्याकरण को सरल बनाया गया है। (३) शब्दरूपों और धातुरूपों की संख्या कम होने लगी। (४) शब्दों के विभिन्न रूप संक्षिप्त होकर तीन

या चार प्रकार के ही रह गए अर्थात् केवल तीन या चार प्रकार से ही शब्दरूप चलने लगे। धातुरूप भी प्रायः एक या दो प्रकार से चलने लगे। (५) संक्षेप के कारण उत्पन्न अस्पष्टता के निवारणार्थ परसर्गों (कारक-चिह्न आदि) की सृष्टि प्रारम्भ हुई। उससे ही वर्तमान वियोगात्मक भाषाओं का जन्म हुआ। (६) संक्षेप होने पर भी संस्कृत-व्याकरण के तुल्य प्राकृत-व्याकरण चला। सभी शब्दों के रूप प्रायः अकारान्त शब्द के तुल्य चलने लगे और सभी धातुओं के रूप प्रायः भ्वादिगणी धातुओं के तुल्य चलने लगे। (७) चतुर्थी विभक्ति का अभाव हो गया। प्रथमा और द्वितीया के बहुवचन प्रायः एक हो गये। (८) लङ, लिट् और लुङ लकारों का अभाव हो गया। (९) द्विवचन का अभाव हो गया। (१०) आत्मनेपद का भी प्रायः अभाव हो गया। (११) परसर्गों और सहायक क्रियाओं का अभी विशेष उपयोग नहीं हुआ। (१२) ध्वनि-परिवर्तन मुख्य रूप से हुआ। संयुक्ताक्षरों में प्रायः परसवर्ण या पूर्वसवर्ण का नियम लगा। (१३) कुछ प्राचीन स्वरों और वर्णों का अभाव हो गया। जैसे—ऋ, ऐ, औ, य, श (मागधी में य और श हैं, उसमें स नहीं हैं), ष और विसर्ग। (१४) संस्कृत में अप्राप्त ह्रस्व ऎ और ऒ दो नये स्वर हो गए। (१५) साधारणतया अन्तिम व्यञ्जन का लोप हो जाता है। (१६) ह्रस्व स्वर के बाद दो से अधिक व्यञ्जन नहीं रह सकते और दीर्घ स्वर के बाद एक से अधिक नहीं। (१७) इन परिवर्तनों से कई स्थलों पर शब्द का स्वरूप ही पहचान में नहीं आता। जैसे—वाक्पतिराज का वप्पइराअ, अवतीर्ण का ओइण्ण। (१८) कुछ शब्द संस्कृत के तत्सम ही हैं और अधिकांश शब्द अपने संस्कृत के स्वरूप को सफलता से प्रकट करते हैं।

प्राकृत में परिवर्तन के निम्नलिखित कारण माने गए हैं—(१) प्रयत्न-लाघव, (२) संस्कृति का विकास, (३) जलवायु का प्रभाव, (४) आर्येतरों की भाषा और भाषणशैली का प्रभाव।

अध्याय ३

ध्वनि-विचार

१—(क) **प्रारम्भिक अक्षर**—सामान्य नियम यह है कि न, य, श, ष को

छोड़कर अन्य एकाकी प्रारम्भिक व्यञ्जन उसी रूप में रहते हैं। उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता। न को ण होता है, य को ज और श ष को स।

२—समस्त-पद में उत्तरपद का प्रथमाक्षर मध्यगत शब्द समझा जाता है, अतः उसका लोप हो जाता है। किन्तु धातु-रूप का प्रथमाक्षर प्रायः शेष रहता है। जैसे—आर्यपुत्र>अज्जउत्त, किन्तु आगतम्>आगदं।

३—अनुदात्त अव्ययों के प्रथमाक्षर का लोप हो जाता है। किं पुनः > किं उण; अपि>वि, च>अ।

४—कुछ प्राकृतों में भू धातु के भ को ह हो जाता है। भवति>होइ।

५—समस्त-पद के उत्तरार्ध का प्रथमाक्षर फ शेष रहता है। चित्रफलक >चित्तफलअ।

६—क और प को क्रमशः ख और फ महाप्राण हो जाता है। क्रीड्> खेल, पनस>फणस।

७—उच्चारणस्थानपरिवर्तन हो जाता है। दन्त्य को तालव्य, त्>च्। तिष्ठति>चिट्ठदि। दन्त्य को मूर्धन्य, न् को ण्। नयन>णअण, नूनं>णूणं।

८—श ष स को स हो जाता है। (मागधी में केवल श रहता है।)

९—(ख) **मध्यगत अक्षर**—मध्यगत क ग च ज त द का प्रायः लोप हो जाता है। प ब व का कभी-कभी लोप होता है। मध्यगत य का सदा लोप होता है। लोक>लोअ, हृदय>हिअअ, दिवस>दिअह, प्रिय>पिअ।

१०—मध्यगत क त प को क्रमश ग द ब हो जाते हैं। अतिथि>अदिधि, कृत>किद।

११—शौरसेनी और माहाराष्ट्री में एक मुख्य अन्तर यह है कि संस्कृत का मध्यगत त शौ० में द हो जाता है, पर मा० में उसका लोप हो जाता है। जैसे—जानाति>शौ० जाणादि, मा० जाणाइ; शत>शौ० सद, मा० सअ।

१२—मध्यगत महाप्राण अक्षर ख घ थ ध फ भ को ह हो जाता है। मुख>मुह।

१३—शौरसेनी और माहाराष्ट्री में दूसरा अन्तर यह है कि संस्कृत का

मध्यगत थ शौ० में ध हो जाता है, पर मा० में ह रहता है। मागधी आदि में भी थ को ध होता है। जैसे—अथ>शौ० अध, मा० अह; कथं>शौ० कधं, मा० कहं।

१४—कभी-कभी स्वरों के मध्यगत व्यंजन का लोप न होकर द्वित्व हो जाता है। एक>एक्क, यौवन>जोव्वण, प्रेमन्>पेम्म।

१५—स्वरों के मध्यगत ट ठ को क्रमशः ड ढ हो जाते हैं। कुटुम्ब>कुडुम्ब।

१६—मध्यगत प को व हो जाता है। दीप>दीव, (इसी से हिन्दी में दीपावली>दिवाली)।

१७—ब को व होता है। शबर>सवर।

१८—क को महाप्राण ख होकर ह शेष रहता है। निकष>णिहस। ट को ठ>ढ, वट>वढ। त को थ होकर ह। वसति>वसहि।

१९—उच्चारणस्थानपरिवर्तन। दन्त्य को मूर्धन्य। प्रति>पडि। न को ण। नूनं>णूणं।

२०—श ष स को स होता है। मागधी में श। केशेषु>केसेसु।

२१—ड को प्रायः ल होता है। क्रीडा>कीला।

२२—त द को ल होता है। दोहद>दोहल।

२३—दृश्, दृश, दृक्ष के समासों में द को र होता है। ईदृश>एरिस।

२४—११ से १८ संख्याओं में द को र। एकादश>एक्कारस। हिन्दी ग्यारह, बारह आदि।

२५—म को व होता है। मन्मथ>मा० वम्मह। इसी से ग्राम>गाँव।

२६—मागधी में र को सदा ल होता है। दरिद्र>दलिद्द।

२७—कभी-कभी श ष स को ह होता है। पाषाण>पाहाण।

२८—(ग) **अन्तिम अक्षर**—सभी अन्तिम स्पर्श वर्णों का लोप हो जाता है। अनुनासिकों को अनुस्वार होता है, अः को ओ होता है या उसका लोप होता है।

अध्याय ४

संयुक्ताक्षर-विचार

२९—शब्द के प्रारम्भ में एक ही व्यञ्जन रह सकता है।

३०—शब्द के मध्य में दो व्यंजनों से अधिक नहीं रह सकते हैं। ये भी वर्ण के द्वित्व के रूप में होंगे। जैसे क्क, क्ख आदि, या अनुनासिक के बाद स्पर्श, जैसे—ङ्क, ण्ड।

३१—अतएव संयुक्ताक्षरों को पूर्वसवर्ण या परसवर्ण होता है या मध्य में कोई स्वरभक्ति का स्वर आता है।

३२—पूर्वसवर्ण और परसवर्ण का सामान्य नियम यह है कि समबल वाले वर्णों में परवर्ण प्रबल होता है और असमबल वालों में अधिक बल वाला। व्यंजनों को निम्नलिखित क्रम में रखा जा सकता है। इसमें बाद वाले कम बल वाले हैं। (१) स्पर्श (क से म तक, पंचम वर्ण छोड़कर), (२) वर्गों के पंचम वर्ण, (३) ल स व य र।

३३—पूर्व नियमानुसार क्+त=त्त, ग्+ध=द्ध, द्+ग=ग्ग, प्+त=त्त। दो स्पर्श वर्णों में परसवर्ण होगा। युक्त>जुत्त, दुग्ध>दुद्ध, उद्गम>उग्गम, सप्त>सत्त।

३४—अनुनासिक के बाद उसी वर्ग का स्पर्श होगा तो अनुनासिक उसी रूप में रहेगा, अन्यथा अनुस्वार हो जायगा। क्रौञ्च>कोञ्च, दिङ्मुख>दिंमुह।

३५—स्पर्श के बाद अनुनासिक होगा तो पूर्वसवर्ण होगा। अग्नि>अग्गि।

३६—ल के बाद स्पर्श होगा तो परसवर्ण होगा। वल्कल>वक्कल।

३७—श ष स के बाद स्पर्श (क से म तक) होगा तो परसवर्ण होगा और स्पर्श महाप्राण हो जायगा। जैसे—स्त>त्थ, श्च>च्छ, पश्चात्>पच्छा। इनके स्थान पर ये होते हैं—ष्क और ष्ख>क्ख, ष्ट और ष्ठ>ट्ठ, ष्प और ष्फ>प्फ, स्त और स्थ>त्थ, स्प और स्फ>प्फ।

३८—स्पर्श के बाद ऊष्म (श ष स) हो तो च्छ होता है। अक्षि>अच्छि।

३९—क्ष को साधारणतया क्ख होता है। दक्षिण>दक्खिण, अक्षि>अक्खि।

४०—त्श या त्स को स्स होता है या पूर्व स्वर को दीर्घ और स। पर्युत्सुक>पज्जुस्सुअ, उत्सव>ऊसव।

४१—स्पर्श के बाद व हो तो पूर्वसवर्ण। पक्व>पक्क।

४२—स्पर्श के बाद य हो तो पूर्वसवर्ण। योग्य>जोग्ग।

४३—यदि दन्त्य और य हो तो दन्त्य को तालव्य और पूर्वसवर्ण। सत्य >सच्च, अद्य>अज्ज, सन्ध्या>संझा।

४४—र् और स्पर्श हो तो र् को स्पर्श का सवर्ण अक्षर हो जायगा। चक्र >चक्क, मार्ग>मग्ग, चित्र>चित्त।

४५—ङ और ण् के बाद म हो तो दोनों को अनुस्वार। न्+म्=म्म्, म्+न्=ण्ण्। दिङ्मुख>दिंमुह, उन्मुख>उम्मुह, निम्न>णिण्ण।

४६—अनुनासिक के बाद ऊष्म हो तो अनुनासिक को अनुस्वार। यदि ऊष्म के बाद अनुनासिक हो तो ऊष्म को ह् होता है और स्थानपरिवर्तन होता है। श्न>ण्ह, श्म>म्ह, ष्ण>ण्ह, ष्म>म्ह, स्न>ण्ह, स्म>म्ह। स्नान>ण्हाण, कृष्ण>कण्ह।

४७—अनुनासिक के साथ अन्तःस्थ हो तो अन्तःस्थ अनुनासिक का सवर्ण हो जाएगा। पुण्य>पुण्ण, अन्य>अण्ण।

४८—ऊष्म के साथ अन्तःस्थ हो तो अन्तःस्थ ऊष्म का सवर्ण होगा। पार्श्व>पास, मनुष्य>मणुस्स।

४९—दो अन्तःस्थ हों तो बलवान् अन्तःस्थ प्रबल होगा। इनका क्रम है—ल व र य। मूल्य>मुल्ल, काव्य>कव्व।

५०—क ख प फ से पूर्व विसर्ग ऊष्म के तुल्य माना जाता है। दुःख> दुक्ख।

अध्याय ५

स्वर-विचार

५१—प्राकृत में ऋ लृ स्वर नहीं हैं।

५२—संस्कृत के ऋ के स्थान पर ये आदेश होते हैं। (क) रि, ऋषि> रिसि, (ख) अ, कृत>कद, (ग) इ, दृष्टि>दिट्ठि, (घ) उ, पृच्छति>पुच्छदि।

५३—ऐ औ के स्थान पर क्रमशः ए ओ होते हैं। कौमुदी>कोमुदी।

५४—दीर्घ स्वर के बाद एक व्यंजन ही हो सकता है, अतः संयुक्ताक्षरों से पूर्व ह्रस्व स्वर ही होगा।

५५—ह्रस्व स्वर को दीर्घ होता है, यदि बाद में र्+व्यंजन हो या ऊष्म +य र व या ऊष्म हो। कर्तुम्>कादुं, कर्तव्य>कादव्व, अश्व>आस।

५६—कहीं पर दीर्घ न करके स्वर को सानुस्वार कर देते हैं। दर्शन> दंसण।

५७—कहीं पर सानुस्वार न करके दीर्घ कर देते हैं। सिंह>सीह।

५८—स्वर-परिवर्तन। अ के स्थान पर ये स्वर होते हैं। (क) अ को इ, पक्व>पिक्क, (ख) अ को उ, प्रलोकयति>पुलोएदि, (ग) आ को इ या ए, मात्र>मेत्त।

५९—इ को उ। इक्षु>उच्छु। ई को ए, ईदृश>एरिस।

६०—उ को अ। मुकुल>मउल। उ को इ, पुरुष>पुरिस। उ को ओ, पुस्तक>पोत्थअ। ऊ को ओ, मूल्य>मोल्ल।

६१—ए को इ। वेदना>विअणा, एतेन>एदिणा।

६२—ओ को उ। अन्योन्य>अण्णुण्ण।

६३—स्वर लोप। अनुदात्त स्वर का लोप होता है। अनुस्वार के बाद अपि>पि, स्वर के बाद वि। अनुस्वार के बाद इति>ति, स्वर के बाद त्ति। खलु>खु।

६४—सम्प्रसारण। य को इ, व को उ होता है। अय अव को क्रमशः ए ओ होते हैं। कथयतु>कधेदु, नवमालिका>णोमालिआ, लवण>लोण।

अध्याय ६

सन्धि-विचार

(क) व्यञ्जन-सन्धि

६५—प्राकृत में अन्तिम व्यंजन का लोप हो जाता है, अतः व्यंजन-सन्धि भी बहुत कम शेष रही है। स्वर से पूर्व कुछ व्यञ्जन पुनर्जीवित हो जाते हैं। यदस्ति>जदत्थि। दुर् और निर् का र् शेष रहता है। म् भी कुछ स्थलों पर शेष रहता है। एकैकम्>एक्कमेक्कं।

६६—म् शेष वाले शब्दों के रूप चलते हैं। एक्कमेक्के। अङ्गे-अङ्गे> अंगमंगे।

६७—समस्त-पदों में पूर्वपद के अन्तिम वर्ण को उत्तरपद के साथ पर-सवर्ण हो जाता है। कभी-कभी दोनों पदों को पृथक् भी माना जाता है। दुर्लभ >दुल्लह।

(ख) स्वर-सन्धि

६८—प्राकृत में प्रकृतिवद्भाव (सन्धि का अभाव) सामान्यतया होता है. किन्तु समस्त-पदों में पूर्व और उत्तर पद के स्वरों में सन्धि होती है। राजर्षि>राएसि, जन्मान्तरे>जम्मन्तरे।

६९—यदि समस्त-पद का उत्तरपद इ या उ से प्रारम्भ होता है और उसके बाद संयुक्ताक्षर हों, या ई ऊ हों तो पूर्वपद के अन्तिम अ या आ का लोप हो जाता है। गजेन्द्र>गइन्द, वसन्तोत्सव>वसन्तूसव।

७०—मध्यगत वर्णों के लोप होने पर सन्धि नहीं होती। वाक्य में भी शब्दों में सन्धि नहीं होती।

अध्याय ७

शब्दरूप-विचार

७१—संस्कृत के शब्दरूपों से प्राकृत के शब्दरूपों में दो कारणों से ही मुख्य अन्तर है—(क) पूर्वोक्त ध्वनि-सम्बन्धी नियम तथा अन्य नियम, जिनसे शब्दरूपों पर प्रभाव पड़ता है, (ख) साम्य के आधार पर शब्दरूपों का सरली-करण तथा शब्द को एक प्रकार से दूसरे प्रकार में परिवर्तित करना। प्राकृत में शब्दरूपों को सरल बनाना ही मुख्य कार्य है।

७२—द्विवचन का अभाव हो गया है। चतुर्थी का षष्ठी विभक्ति में ही समावेश हो गया है। प्राकृत के नियमों के कारण व्यञ्जनान्त शब्द प्रायः नहीं रहे हैं। अधिकांश शब्दों के रूप निम्नलिखित रूप से चलते हैं :—

१. पुंलिंग या नपुंसकलिंग शब्द अकारान्त।

२. पुं० या नपुं० शब्द इ या उ अन्त वाले।

३. स्त्रीलिंग शब्द आ, इ, ई, उ, ऊ अन्त वाले।

७३—अकारान्त पुंलिंग **पुत्त=पुत्र** शब्द के रूप।

शौरसेनी			माहाराष्ट्री	
एक०	बहु०		एक०	बहु०
पुत्तो	पुत्ता	प्रथमा	पुत्तो	पुत्ता
पुत्तं	पुत्ते	द्वितीया	पुत्तं	पुत्ता, पुत्ते
पुत्तेण	पुत्तेहिं	तृतीया	पुत्तेण	पुत्तेहि (हिं)
पुत्तादो	पुत्तेहितो	पंचमी	पुत्ताओ	पुत्तेहि
पुत्तस्स	पुत्ताणं	षष्ठी	पुत्तस्स	पुत्ताण (णं)
पुत्ते	पुत्तेसु (सुं)	सप्तमी	पुत्ते, पुत्तम्मि	पुत्तेसु (सुं)

माहाराष्ट्री में चतुर्थी एक० में पुत्ताअ रूप भी मिलता है।

७४—अकारान्त नपुंसक फल शब्द। इसके रूप पुत्त के तुल्य चलते हैं, केवल प्र० द्वि० में एक० में फलं और प्र० द्वि० के बहु० में फलाइं रूप बनेगा।

७५—इकारान्त पुंलिंग **अग्गि=अग्नि** शब्द के रूप।

	एक०	बहु०
प्र०	अग्गी	अग्गीओ, अग्गीणो (मा० अग्गी, अग्गीणो)
द्वि०	अग्गिं	अग्गीणो
तृ०	अग्गिणा	अग्गीहिं (मा० अग्गीहि)
ष०	अग्गिणो (मा० अग्गिस्स)	अग्गीणं (मा० अग्गीण)
स०	अग्गिम्मि	अग्गीसु (सुं)

चतुर्थी और पंचमी का साधारणतया प्रयोग नहीं होता।

७६—इकारान्त नपुंसक दहि=दधि शब्द। अग्गि के तुल्य रूप चलेंगे, केवल प्र० द्वि० एक० में दहिं या दहि और बहु० में दहीइं।

७७—उकारान्त पुंलिंग और नपुंसक के रूप इकारान्त के तुल्य ही चलते हैं। उकारान्त पुं वाउ=वायु शब्द। एक० और बहु० में रूप। प्र० वाऊ, वाउणो (मा० वाऊ); द्वि० वाउं, वाउणो; तृ० वाउणा, वाऊहि (हिं); ष० वाउणो (मा० वाउस्स), वाऊण (णं); स० वाउम्मि, वाउसु (सुं)।

नपुं० महु=मधु शब्द। प्र० द्वि० एक० महु (हुं), बहु० महूइं।

७८—स्त्रीलिंग शब्दों के रूप। तृ० ष० और स० एक० में एक ही रूप होता है। आ ई ऊ अन्त वाले शब्दों के रूप समान होते हैं।

	माला		देवी		वहू=वधू	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०	एक०	बहु०
प्र०	माला	मालाओ, माला	देवी	देवीओ	वहू	वहूओ
द्वि०	मालं	मालाओ, माला	देविं	देवीओ	वहुं	वहूओ
तृ०	मालाए	मालाहि (हिं)	देवीए	देवीहि (हिं)	वहूए	वहूहि (हिं)
पं०	मालादो	मालाहितो	देवीदो	देवीहितो	वहूदो	वहूहितो
	(मा० मालाओ)		(मा० देवीओ)		(मा० वहूओ)	
ष०	मालाए	मालाण (णं)	देवीए	देवीण (णं)	वहूए	वहूण (णं)
स०	मालाए	मालासु (सुं)	देवीए	देवीसु (सुं)	वहूए	वहूसु (सुं)
सं०	माले	—	देवि	—	वहु	—

७९—भत्तु=भर्तृ

	भत्तु=भर्तृ		पिउ=पितृ	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
प्र०	भत्ता	भत्तारो	शौ० पिदा, मा० पिआ	शौ० पिदरो, मा० पिअरो
द्वि०	भत्तारं	—	पिदरं, मा० पिअरं	पिदरो, पिअरो, पिउणो
तृ०	भत्तुणा	भत्तारेहिं	पिदुणा, मा० पिउणा	पिऊहिं
ष०	भत्तुणो	भत्ताराण (णं)	पिदुणो, मा० पिउणो	पिऊणं
स०	शौ० भत्तारे	भत्तारेसु	—	पिऊसु (सुं)

८०—अन्नन्त शब्द न् का लोप होने से अकारान्त हो जाते हैं।

	राअ=राजन्		शौ० माग० अत्त, मा० अप्प=आत्मन्	
प्र०	राआ	राआणो	अत्ता	अप्पा
द्वि०	राआणं	राआणो	अत्ताणअं	अप्पाणं

तृ०	रण्णा	राईहिं	—	अप्पणा
ष०	रण्णो	राईणं	अत्तणो	अप्पणो
स०	राइम्मि, राए	—	—	—
सं०	राअं	—	—	—

८१—इन् अन्त वाले शब्द कुछ अंश में इकारान्त हो जाते हैं और कुछ अंश में संस्कृत के तुल्य इन्नन्त रहते हैं।

८२—अत् अन्त वाले अत् मत् वत् अकारान्त होकर अन्त मन्त वन्त हो जाते हैं। पुत्त के तुल्य रूप चलेंगे।

८३—स् अन्त वाले अस् इस् उस् स् लोप होने से अ इ उ अन्त वाले हो जाते हैं। उसी प्रकार इनके रूप चलेंगे।

८४—

	अस्मद्		युष्मद्	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
प्र०	अहं, हं	अम्हे	तुमं, मा० तं	तुम्हे
द्वि०	मं, मा० ममं	अम्हे, णो	तुमं, ते	तुम्हे, वो
तृ०	मए	अम्हेहिं	तए, तुए	तुम्हेहि
पं०	(ममाओ)	(अम्हेहिंतो)	(तुमाहिंतो)	(तुमाहिंतो)
ष०	मम, मे, मह	अम्हाणं, णो	तुह, ते	तुम्हाणं
स०	मइ	अम्हेसु	तइ	(तुम्हेसु)

८५—तत् (स या त) शब्द के रूप।

	पुंलिंग		नपुं०		स्त्रीलिंग	
प्र०	सो	ते	तं	ताइं	सा	ताओ, ता
द्वि०	तं	ते	तं	ताइं	तं	ताओ, ता
तृ०	तेण (णं)	तेहि (हिं)	तेण (णं)	तेहि (हिं)	ताए, तीए	ताहि (हिं)
ष०	तस्स	तेसिं, ताणं	तस्स	तेसिं, ताणं	ताए, तीए	तासिं, ताणं

स०	तस्सिं, तम्मि	तेसु	तस्सिं, तम्मि	तेसु	ताए, तीए	तासु

अध्याय ८

धातुरूप-विचार

८६—प्राकृत में शब्दरूपों की अपेक्षा धातुरूपों में अधिक अन्तर हुआ है। ध्वनि-नियमों के कारण व्यंजनान्त धातुएँ प्रायः समाप्त हो गई हैं। धातुरूप भी प्रायः एक ही ढंग से चलते हैं। रूपों की संख्या भी कम हो गई है। द्विवचन का अभाव हो गया है। आत्मनेपद प्रायः समाप्त हो गया है। लिट्, लङ्, लुङ् भी प्रायः नष्ट हो गए हैं। भूतकाल का बोध कृदन्त प्रत्ययों से कराया जाता है। उसके साथ सहायक धातु कभी रहती है, कभी नहीं। संस्कृत के धातुरूपों में से केवल ये शेष रहे हैं—लट्, लोट्, विधिलिङ्, लृट्, कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य, कृत् प्रत्यय—क्त, क्तवतु, तुम्, क्त्वा, ल्यप्, शतृ, शानच्।

१० गणों के स्थान पर दो गण ही शेष रहे हैं—(१) भ्वादिगण, (२) चुरादिगण। दोनों गणों के रूप समान ही चलते हैं।

८७—**भ्वादिगण** (लट्) | **चुरादिगण** (लट्)

			शौ०	मा०	शौ०	मा०
शौ० पुच्छदि, मा० पुच्छइ	पुच्छन्ति					
पुच्छसि	शौ० पुच्छध, मा० पुच्छह		कधेदि, कधेसि	कहेइ, कहेहि	कधेन्ति, कधेध	कहेन्ति, कहेह
पुच्छामि	पुच्छामो		कधेमि	कहेमि	कधेमो	कहेमो

८८—**भ्वादिगण** (लोट्) | **चुरादिगण** (लोट्)

शौ० पुच्छदु, मा० पुच्छउ	पुच्छन्तु	कहेदु	कहेन्तु
पुच्छ, पुच्छसु	शौ० पुच्छध, मा० पुच्छह	कहेहि, कहेसु	कहेह
(पुच्छामु)	पुच्छम्ह	(कहेमु)	कहेम्ह

८९—विधिलिङ का प्रयोग अर्धमागधी और जैन माहाराष्ट्री में अधिक प्रचलित है, अन्य प्राकृतों में इसका प्रयोग बहुत कम है।

९०—लृट् में भ्वादिगण और चुरादिगण के रूप समान ही चलेंगे।

शौ०पुच्छिस्सदि मा० पुच्छिस्सइ पुच्छिस्सन्ति
शौ० पुच्छिस्ससि मा० पुच्छिहिसि शौ० पुच्छिस्सध, मा० पुच्छिस्सह
पुच्छिस्सं पुच्छिस्सामो

९१—कर्मवाच्य में संस्कृत य का ज्ज होता है या य रहता ही नहीं है। कभी-कभी लट् के तुल्य रूप चलते हैं। भ्वादिगण परस्मैपद के ही तिङ अन्त में लगते हैं।

शौरसेनी	मागधी
पुच्छीअदि	पुच्छिज्जइ
पुच्छीअसि	पुच्छिज्जसि
पुच्छीआमि	पुच्छिज्जामि (इसी प्रकार बहु० में)

९२—प्रेरणार्थक णिजन्तरूप। इसमें संस्कृत अय का ए रूप शेष रहता है। जैसे—हासयति>हासेइ, निर्वापयति>णिव्वावेदि।

९३—शतृ और शानच् प्रत्यय। (क) शतृ प्रत्यय—

वर्तमान—पुं० पुच्छन्तो स्त्री० पुच्छन्ता नपुं० पुच्छन्तं।
भविष्यत्—पुं० पुच्छिस्सन्तो, स्त्री० पुच्छिस्सन्ता, नपुं० पुच्छिस्सन्तं।

(ख) शानच्—वर्तमान—पुं० पुच्छमाणो, स्त्री०—माणा, —माणी, नपुं०—माणं।

भविष्यत्—पुं० पुच्छिस्समाणो, स्त्री०—माणा, नपुं०—माणं।

९४—तुमुन् प्रत्यय। संस्कृत का तुम् शौरसेनी और मागधी में दुं हो जाता है और माहाराष्ट्री में उं। धातु के बाद तुम् लगता है, सेट् धातु में बीच में इ लगेगा। कर्तुम्>शौ० कादुं, मा० काउं; प्रष्टुम्>शौ० पुच्छिदुं, मा० पुच्छिउं।

९५—क्त्वा प्रत्यय। कृत्वा>कदुअ, गत्वा>गदुअ, पृष्ट्वा>शौ० पुच्छिअ, मा० पुच्छिऊण, नीत्वा>णइअ।

९६—क्त प्रत्यय। संस्कृत तः का दो या ओ प्राकृत शेष रहता है। गतः>गदो, गओ; कृतः>किदो, कओ। इसके बहुत से अनियमित रूप भी हैं।

जैसे—आज्ञप्त>आणत्त, उक्त>उत्त, गृहीत>शौ० गहिद मा० गहिअ, दृष्ट>दिट्ठ, दत्त>दिण्ण, भूत>हुअ।

६७—तव्य, अनीय, य प्रत्यय। तव्य का दव्व शेष रहता है। प्रष्टव्य>>पुच्छिदव्व, गन्तव्य>गच्छिदव्व। अनीय का अणीअ रहता है। करणीय>शौ० मागधी करणीअ, मा० करणिज्ज। य>ज। कार्य>कज्ज।

अध्याय ६

मागधी की विशेषताएँ

६८—पहले जो उदाहरणादि दिए गए हैं, वे शौरसेनी और माहाराष्ट्री के मुख्य रूप से हैं। मागधी की मुख्य विशेषताएँ ये हैं :—

(१) स के स्थान पर श का प्रयोग। शौ० भविस्सदि>भविश्शदि, पुत्तस्स>पुत्तश्श। (२) र के स्थान पर ल का प्रयोग, मुख्यतः शब्द के प्रारम्भ में। राज्ञः>लाआणो, शौ० पुरिसो>पुलिशे, समरे>शमले। (३) य शेष रहता है और ज के स्थान पर भी य हो जाता है। सं० यथा>यधा, जानाति>याणदि, जायते>यायदे। (४) द्य, र्ज, र्य के स्थान पर य्य होता है। शौरसेनी में इन स्थानों पर ज्ज होता है। अद्य और आर्य>अय्य, मद्य>मय्य। (५) ण्य, न्य, ज्ञ, ञ्ज को ञ्ञ हो जाता है। पुण्य>पुञ्ञ, अन्य>अञ्ञ, राज्ञः>लाञ्ञो, अञ्जलि>अञ्ञलि। (६) मध्यगत च्छ को श्च होता है। गच्छ>गश्च, इच्छति>इश्चीअदि। (७) ष्क>स्क या श्क, ष्ट>स्ट या श्ट, ष्प ष्फ>स्प, स्फ, शुष्क>शुस्क, कष्ट>कस्ट। (८) र्थ को स्त होता है। तीर्थ>तिस्त, अर्थः>अस्ते।

———